१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

श्री
दसम गुरुग्रंथ साहिब जी

(प्रथम सैंची)

[हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण]

अनुवाद—

डॉ० जोधसिंह

एम० ए०, पीएच्० डी०, साहित्य रत्न

प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-२२६००३

'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक सत की वानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी।।'

प्रथम संस्करण—१९८३ ई०

आकार—१८×२२÷८

पृष्ठसंख्या – ८२०

भेट— ५०·०० रुपया

मुद्रक

वाणी प्रेस

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियां रोड, लखनऊ—२२६००३

विश्वनागरी लिपि

।। ग्रामे-ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे-ग्रामे कथा शुभा ।।

सब भारतीय लिपियाँ सम-वैज्ञानिक है !

All the Indian Scripts are equally scientific !

भारतीय लिपियों की विशेषता ।

ससार की लिपियो मे नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक है। यह कथन बिलकुल ठीक है। परन्तु यह कहते समय हमे याद रखना चाहिए कि वह सर्वाधिक वैज्ञानिकता, केवल हिन्दी, मराठी, नेपाली, लिखी जानेवाली लिपि मे नही, वरन् समस्त भारतीय लिपियों मे मौजूद है। क, च, त, प आदि के रूपो मे कोई वैज्ञानिकता नही है। वैज्ञानिकता है लिपि का ध्वन्यात्मक होना। नियमित स्वरो का पृथक् होना। अधिक से अधिक व्यजनों का होना। सबको एक 'अ' के आधार पर उच्चरित करना। ['अ' अक्षर-स्वर, सकल अक्षरो का उस भाँति मूल आधार। सकल विश्व का जिस प्रकार 'भगवान्' आदि है जगदाधार।] एक अक्षर से केवल एक ध्वनि। एक ध्वनि के लिए केवल एक अक्षर। जैसा लिखना वैसा ही बोलना, वैसा ही अक्षर का एकाक्षरी नाम। उच्चारण-सस्थान के अनुसार अक्षरो का कवर्ग, चवर्ग आदि मे वर्गीकरण। फिर प्रत्येक वर्ग के अक्षरो का क्रम से एक ही संस्थान मे थोड़ा-थोड़ा ऊपर उठते हुए अनुनासिक तक पहुँचना, आदि-आदि

पंजाबी (गुरमुखी)-देवनागरी वर्णमाला				
ਅ अ	ਆ आ	ਇ इ	ਈ ई	ਉ उ
ਊ ऊ	ਰੀ ऋ	ਏ ए	ਐ ऐ	ਓ ओ
	ਔ औ	ਅੰ अं	ਅ: अः	
ਕ क	ਖ ख	ਗ ग	ਘ घ	ਙ ङ
ਚ च	ਛ छ	ਜ ज	ਝ झ	ਞ ञ
ਟ ट	ਠ ठ	ਡ ड	ਢ ढ	ਣ ण
ਤ त	ਥ थ	ਦ द	ਧ ध	ਨ न
ਪ प	ਫ फ	ਬ ब	ਭ भ	ਮ म
ਯ य	ਰ र	ਲ ल	ਵ व	ਸ਼ श
	ਸ਼ ष	ਸ स	ਹ ह	

ऐसे अनेक गुण हैं जो अभारतीय लिपियों मे एकत्र, एकसाथ नहीं मिलते। किन्तु ये गुण समान रूप से सभी भारतीय लिपियो मे मौजूद है, अतः वे सब नागरी के समान ही 'सर्वाधिक वैज्ञानिक' है। सब ब्राह्मी लिपि से उद्भूत है। ताड़पत्र और भोजपत्र की लिखाई तथा देश-काल-पात्र के अन्य प्रभावो के कारण विभिन्न भारतीय लिपियो के अक्षरो मे यत्र-तत्र परिवर्तन, हिन्दी वाली 'नागरी लिपि' को कोई श्रेष्ठता प्रदान नही करता। भारत की मौलिक सब लिपियाँ 'नागरी लिपि' के समान ही श्रेष्ठ है।

नागरी लिपि को 'भी' अपनाना श्रेयस्कर क्यों ?

"नागरी लिपि" की केवल एक विशेषता है कि वह कमोबेश सारे देश में प्रविष्ट है, जबकि अन्य भारतीय लिपियाँ निजी क्षेत्रो तक सीमित है। वही यह भी सत्य है कि नागरी लिपि मे प्रस्तुत और विशेष रूप से हिन्दी का साहित्य, अन्य लिपियो मे प्रस्तुत ज्ञानराशि की अपेक्षा कम और नवीनतर है। अतः समस्त भाषाओ की ज्ञानराशि को, सर्वाधिक फैली लिपि "नागरी" मे अधिक से अधिक लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से उठाकर सबको सारे राष्ट्र मे, यहाँ तक कि विश्व मे ले आना परम धर्म है। विश्व की सब भाषाओ मे उपलब्ध ज्ञान (सत्साहित्य) है आत्मा, और 'नागरी लिपि' होना चाहिए उसका पर्यटक शरीर।

अन्य लिपियों को बनाये रखना भी कर्तव्य है।

वस्तुतः यह परम धर्म है कि समस्त सदाचार साहित्य को नागरी मे तत्परता और प्राचुर्य मे लिप्यन्तरित करना। किन्तु साथ ही यह भी परम धर्म है कि अन्य लिपियो को उत्तरोत्तर उन्नति के साथ बरकरार रखना। यह इसलिए कि सबका सब कभी लिप्यन्तरित नही हो सकता। अतः अन्य लिपियो के नष्ट होने और नागरी लिपि मात्र के ही रह जाने से अलिप्यन्तरित हमारी समस्त ज्ञानराशि उसी प्रकार लुप्त-सुप्त होकर रह जायगी जैसे पाली का वाङ्मय रह गया। हमारा प्राचीन आप्तज्ञान विलुप्त हो जायगा।

नागरी लिपि वालों पर उत्तरदायित्व विशेष !

इन दोनों परम धर्मो की पूर्ति का सर्वाधिक भार नागरी लिपि वालो पर है, इसलिए कि उनको 'सम्पर्क लिपि' का श्रेष्ठ आसन प्रदत्त है। मैं कह सकता हूँ कि उन्होने अपने कर्तव्य का, जैसा चाहिए था, वैसा निर्वाह नहीं किया। परन्तु उसकी प्रतिक्रिया मे अन्य लिपि वालो को भी "अपराध के जवाब में अपराध" नही करना चाहिए। 'कोयला' बिहार का है अथवा सिंहभूमि का है, इसलिए हम उसको नही लेगे, तो वह हमारे ही लिए घातक होगा। कोयले की क्षति नही होगी। अपनी लिपियों को समुन्नत रखिए, किन्तु नागरी लिपि को भी अवश्य अपनाइए।

उपर्युक्त परिवेश मे नागरी लिपि का पठन और समग्र श्रेष्ठ साहित्य का नागरी में लिप्यन्तरण तो आवश्यक है ही, किन्तु अन्य लिपियाँ भी अपनी लिपि मे दूसरी भाषाओ के सत्साहित्य को लिप्यन्तरित तथा अनूदित कर सकती है। 'अधिकस्य अधिक फलम्।' ज्ञान की सीमा नही निर्धारित है। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने भी अवधी के रामचरितमानस को ओड़िआ भाषा मे गद्य एवं पद्य अनुवाद-सहित, ओडिआ लिपि मे लिप्यन्तरित किया है। परन्तु सम्पर्क और एकीकरण की दृष्टि से 'नागरी लिपि' अनिवार्य है।

नागरी लिपि की वैज्ञानिकता मानव मात्र की सम्पत्ति है।

अब एक कदम आगे बढ़िए। भारतीय लिपियों की सर्वाधिक वैज्ञानिकता युगो की मानव-शृखला के मस्तिष्क की उपज है। क्या मालूम इस अनादि से चल रहे जगत् में कब, क्या, किसने उत्पन्न किया ? भारत संयोग से इस समय इस विज्ञान का कस्टोडियन् है, स्रष्टा नही। भारत भी न जाने कब, कहाँ तक और कितना था ? अतः हम भारतीयों को नागरी लिपि के स्वामित्व का गर्व नही होना चाहिए। वह आज के मानव के पूर्वजो की देन है, सबकी सम्पत्ति है, सकल विश्व उसका समान गौरव से उपयोग कर सकता है। हमारा 'अहम्' उस लिपि की उपयोगिता को नष्ट कर देगा, जिसके हम सँजोये रखनेवाले मात्र है। किन्तु विदेशों मे बसनेवाले बन्धुओ को भी नागरी लिपि के गुणो को अपने ही पूर्वजों की उपज मानकर परखना चाहिए। ये गुण इस निबन्ध के प्रथम अनुबन्ध में अधिकांशतः वर्णित है। न परखने पर उनकी क्षति है, विश्व की क्षति है। पेट्रोल अरब का है, अतः हम उसको नही लेगे, तो क्षति किसकी होगी ? पेट्रोल की नही, अपनी ही।

फिर याद दिला देना ज़रूरी है कि क, प आदि रूपों मे वैज्ञानिकता नही है। वे काफ, पे और के, पी, जैसे ही रूप रख सकते है, किन्तु लिपि मे 'अनुबन्ध प्रथम' मे ऊपर दिये हुए गुणों और क्रम को अवश्य ग्रहण करे। और यदि एक बनी-बनाई चीज़ को ग्रहण करके सार्वभौम सम्पर्क मे समानता और सरलता के समर्थक हों, तो 'नागरी लिपि' के क्रम को अपनी पैतृक सम्पत्ति मानकर, गैर न समझकर, मौजूदा रूप मे भी ग्रहण कर सकते है। वह भारत की बपौती नही है। आज के मानव के पूर्वजो की वह सृष्टि है। इससे विश्व के मानव को परस्पर समझने का मार्ग प्रशस्त होगा।

नागरी लिपि में अनुपलब्ध विशिष्ट स्वर-व्यञ्जनों का समावेश।

हर शुभ काम में कजी निकालनेवाले एक दूर की कौड़ी यह भी लाते है कि "नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक होते हुए भी अपूर्ण है और अनेक स्वर-व्यजनो को अपने में नही रखती। उनको कहाँ तक और कैसे समाविष्ट किया जाय ?" यह मात्र तिल का ताड़ है। मौजूदा कर्तव्य को टालना है।

अल्बत्ता अन्य भाषाओ मे कुछ व्यंजन ऐसे है जो नागरी मे नहीं है— किन्तु अधिक नही। भारतीय भाषा उर्दू की क़ ख़ ग़ ज़ फ़, ये पाँच ध्वनियाँ तो बहुत समय से नागरी लिपि मे प्रयुक्त हो रही हैं। दुःख है कि आज़ादी के बाद से राष्ट्रभाषा के पक्षधर ही उनको गायब करने पर लगे है। इसी प्रकार मराठी ळ है। इनके अतिरिक्त अरबी, इब्रानी आदि के कुछ व्यञ्जन है, किन्तु उनको नागरी की दैनिक लिपि में अनिवार्यतः रखना आवश्यक नही। विशिष्ट भाषाई कार्यों मे उन विशिष्ट भाषाई व्यंजनो को चिह्न देकर दरसाया जा सकता है।

तदर्थ अरबी लिपि का आदर्श सम्मुख।

और यह कोई नयी बात नही। नितान्त अपरिवर्तनशील कहे जाने वालो की लिपि 'अरबी' मे केवल २७-२८ अक्षर होते है। भाषा के मामले मे वे भी अति उदार रहे। "इल्म चीन (अर्थात् दूर से दूर) से भी लाओ"— यह पैग़म्बर का कथन है। जब ईरान मे, फारसी की नई ध्वनियों च, प, ग, आदि से सामना पडा तो उन्होने उनको अरबी-पोशाक चे, पे, गाफ पहना दी। जब हिन्दोस्तान आये तो ट, ड, ड़ आदि से सामना पड़ने पर अरबी ही जामे मे टे, डाल, ड़े आदि तैयार कर लिये। यहाँ तक कि सिन्धी मे नागरी के सब महाप्राण और अनुनासिक, तथा सिन्धी के विशिष्ट अन्तःस्फुट अक्षरो को भी अरबी का लिबास पहना दिया गया। फिर 'नागरी' वाले तो औदार्य का दावा करते है, उनको परेशानी क्या है? और नागरी मे भी तो परिवर्तन होते रहे है। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र मे प्रयुक्त ळ को छोड़ चुके है, और ड, ढ आदि को अवर्गीय दशा मे जोड़ चुके है। नागरी लिपि मे कुछ ही व्यजनो का अभाव है। उनमे से कुछ को स्थायी तौर पर और कुछ को अस्थायी प्रयोग के लिए गढ सकते है। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने यह सेवा बडी सरलता, सफलता और सुन्दरता से की है।

स्वर और प्रयत्न (लहजा) का अन्तर।

अब रहे स्वर। जान लीजिए कि प्रमुख स्वर तीन ही है— अ, इ, उ; उनसे दीर्घ, सयुक्त (डिफ्थाग) बनते है। अतिदीर्घ, प्लुत, लघु, अतिलघु आदि फिर अनेक है जो विश्व मे अनेक रूपो मे बोले जाते है। भारतीय वैदिक एव सस्कृत व्याकरण मे अनेक है। वे स्वतन्त्र स्वर नही है, प्रयत्न है, लहजा है। वे सब न लिखे जा सकते है, न सब सर्वत्र बोले जा सकते है। डायाक्रिटिकल मार्क्स कोशों मे छाप-छापकर चमत्कार भले ही दिखा दिया जाय, प्रयोग मे तो, "एक ही रूप में", अपने निजी देशो मे भी नही बोले जाते। स्वर क्या, व्यजन तक। एक शब्द "पहले" को लीजिए। सब जगह घूम आइए, देखिए उसका उच्चारण किन-किन प्रकार से होता है। एक बिहार प्रदेश को छोड़कर कही भी "पहले" का

लेखानुरूप शुद्ध उच्चारण सुनने को नही मिलेगा। उसी भांति पंजाब, बंगाल, मद्रास के अंग्रेजी के उद्भट विद्वान् अग्रेजी में भाषण देते है—उनके लहजे (प्रयत्न) विलकुल भिन्न होते है। फिर भी न उनका उपहास होता है, न अग्रेजी भाषा का ह्रास।

शास्त्र पर व्यवहार की वरीयता।

शास्त्र और विज्ञान से हमको विरोध नहीं। उसकी रचना, शोध, परिमार्जन, देश-काल-पात्र के अनुसार करते रहिए, परन्तु व्यवहारिकता को अवरुद्ध मत कीजिए। खाद्यपदार्थ के तत्त्वों का गुण-दोष, परिमाण, संतुलन, न्यूनाधिक्य, और खानेवाले की शक्ति के साथ उनका समन्वय, यह सब स्तुत्य है, कीजिए। किन्तु ऐसा नही कि उस समीक्षा के पूर्ण होने तक कोई भूखा रहकर मर ही जाय। थाली रखी है, उसे भोजन करने दीजिए। आज सबसे जरूरी है राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का एक-दूसरे की ज्ञानराशि को समझने के लिए एक सम्पर्क लिपि की व्यापकता।

'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने स्थायी और मुकामी तौर पर अनेक स्वर-व्यंजनों की सृष्टि की है। दक्षिणी भाषाओं मे प्रयुक्त एकार तथा ओकार की ह्रस्व, दीर्घ मात्राएँ हम प्रयोग में ला रहे है। पढने दीजिए, बढने दीजिए। समस्त भाषाओ के ज्ञान-भण्डार को निजी क्षेत्रों से उठाकर धरातल तक नागरी लिपि के माध्यम से पहुँचाइए। नागरी लिपि मानव के पूर्वज की सृष्टि है, मानव मात्र की है। यहाँ से योरोप तक उसकी पहुँच है। यूरोपियों की लिपि-शैली नागरी थी। अक्षरों के रूप कुछ भी रहे हों। किन्हीं कारणो से सामीकुलों में भटककर अलफा-बीटा के क्रम को थोड़े अन्तर के साथ अपना लिया। फिर पुराने सस्कारों से याद आया, तो स्वर-व्यंजन पृथक् माने। किन्तु उनके क्रम-स्थान जैसे के तैसे मिले-जुले रहे। सामीकुल की भाषाओं ने भी प्रमुख स्वर तीन ही माने है, ज़बर-ज़ेर-पेश (अ इ उ)। ै और ौ का उच्चारण अरबी, संस्कृत, अवधी और अपभ्रंश का एक जैसा है— (अई, अऊ)। किन्तु खडी बोली व उर्दू के अै, और औ, ऐनक, औरत जैसे। यह स्वरों की भिन्नता नही है, वरन् लह्जा (प्रयत्न) की भिन्नता है।

पूर्ण वैज्ञानिक कोई वस्तु मनुष्य के पल्ले नही पड सकती है। "पूर्ण विज्ञान" भगवान् का नाम है। सा-रे-ग-म-प-ध-नी ये सात स्वर; उनमें मध्य, मन्द, तार; कुछ में तीव्र, कोमल—बस इतने में भारतीय संगीत बँधा है। उनमें भी कुछ अदा नही हो सकते, अनुभूति मात्र है। किन्तु क्या इतने ही स्वर है? संगीत के स्वरों का इनके ही बीच में अनंत विभाजन हो सकता है। जैसे अणु से परमाणु का, और उसमें भी आगे। किन्तु शास्त्र एक वस्तु है, व्यवहार दूसरी। व्यवहार में उपर्युक्त षडज से

निषाद तक को पकड़ में लाकर संगीत कायम है, क्या उसको रोककर इनके मध्य के स्वरों को पहले तलाश कर लिया जाय ? तब तक संगीत को रोका जाय, क्योंकि वह पूर्ण नही है ? क्या कभी वह पूर्ण होगा ? पूर्ण तो 'ब्रह्म' ही है। "बेस्ट् इज़् द ग्रेटेस्ट् एनिमी ऑफ् गुड् ।" (Best is the greatest enemy of Good.) इसलिए शग्ल और शोशों की आड़ न ली जाय। नागरी लिपि पर्याप्त सक्षम है।

विश्व-व्यापकता के संदर्भ में नागरी लिपि के स्वरों का रूप।

लिखने के भेद— यदि नागरी को हिन्दी क्षेत्र की ही लिपि बनाये रखना है तो इ, उ, ए, ऐ, लिखने के अपने पुरानेपन के मोह मे मुग्ध रहिए। और यदि उसे राष्ट्रलिपि अथवा विश्व तक में, यहाँ तक कि सामीकुल मे भी आसानी से ग्राह्य बनाना चाहते हैं तो अि, अु, अे, अै लिखिए। किन्तु कोई मजबूर नही करता। विनोबा जी ने भी इसका आग्रह नही रखा। आकार और रूप का मोह व्यर्थ है। पुराने ब्राह्मी-शिलालेखो को देखिए। आपके मौजूदा रूप वहाँ जैसे के तैसे कहाँ हैं ?

संस्कृत के तिरस्कार से भाषा-विघटन।

मेरा स्पष्ट मत है कि "सस्कृत" को राष्ट्रभाषा होना चाहिए था। वह होने पर, यह भाषा-विवाद ही न उठता। सबको ही (यहाँ तक कि हिन्दी-भाषी को भी) समान श्रम से सस्कृत सीखने से हमारा अपार ज्ञान-भण्डार सबको हस्तामलक होता और हिन्दी की पैठ मे भी दिन-ब-दिन प्रगति ही होती। उर्दू-हिन्दी की अपेक्षा, अन्य सभी भारतीय भाषाएँ, संस्कृत के अधिक समीप है। किन्तु अब वह बात हाथ से बेहाथ है; और "हिन्दी" ही राष्ट्रभाषा सबको मान्य होना चाहिए। यह इसलिए कि हिन्दी ही एक भारतीय भाषा है जो देश के हर स्थल मे कमोवेश प्रविष्ट है।

आज क्या करना है ?

सार यह कि हुज्जत कम, काम होना चाहिए। शास्त्र पर व्यवहार प्रबल है। समय बड़ा बलवान है, वह आवश्यकतानुसार ढलाई कर देता है। हिन्दी-क्षेत्र में ही घूम-घूमकर प्रतिमा-अनावरण, हिन्दी का महिमा-गान, अनुवादो की धूम, अमुक भाषा की हिन्दी को यह देन, अमुक भाषा मे हिन्दी की यह छाप— यह सब दिशाविहीनता, किलेबन्दी और अभियान त्यागकर नागरी लिपि में विश्व का साहित्य लाइए। टूटी-फूटी ही सही, हिन्दी बोलना भी— (ही नहीं) बल्कि "भी" बोलने का अभ्यास कीजिए। लिपि और भाषा की सार्थकता होगी। मानवमात्र का कल्याण होगा। हमारी एकराष्ट्रीयता चरितार्थ होगी।

—नन्दकुमार अवस्थी

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ।

प्रकाशकीय प्रस्तावना

लोकप्रख्यात धर्मग्रन्थ 'श्री गुरूग्रन्थ साहिब' के हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण के प्रकाशन की योजना सफल सम्पूर्ण हुई। पावन ग्रन्थ ३७६४ पृष्ठों और चार सैंचियो में प्रकाशित होकर हिन्दी जगत के सम्मुख अवतीर्ण हुआ और जनता ने बडी उत्कण्ठा और भावावेश में उसका स्वागत किया। इस सोल्लास प्रतिक्रिया से प्रोत्साहित होकर हमने तत्काल श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिब के नागरी रूपान्तर की योजना बनायी और उसी के फलस्वरूप श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिव की यह प्रथम सैंची पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है। शेष तीन सैंचियाँ मुद्रित हो रही है।

भुवन वाणी ट्रस्ट के 'देवनागरी अक्षयवट' की देशी-विदेशी प्रकाण्ड-शाखाओं में, संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, हिन्दी, कश्मीरी, गुरमुखी, राजस्थानी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, कोंकणी, मलयाळम, तमिळ, कन्नड, तेलुगु, ओड़िया, बँगला, असमिया, नेपाली, अंग्रेज़ी, हिब्रू, ग्रीक, अरामी आदि के वाङ्मय के अनेक अनुपम ग्रन्थ-प्रसून और किसलय खिल चुके हैं, अथवा खिल रहे हैं। इस नागरी अक्षयवट की गुरमुखी शाखा में प्रस्तुत यह 'दसम गुरूग्रन्थ साहिब' ग्रन्थ तीसरा पल्लव-रत्न है।

भूमण्डल पर देश-काल-पात्र के प्रभाव से मानव जाति, विभिन्न लिपियाँ और भाषाएँ अपनाती रही है। उन सभी भाषाओं में अनेक दिव्य वाणियाँ अवतरित है, जो विश्वबन्धुत्व और परमात्मपरायणता का पथ-प्रदर्शन करती है; किन्तु उन लिपियो और भाषाओं से अपरिचित होने के कारण हम इस तथ्य को नही देख पाते। अपनी निजी लिपि और अपनी भाषा मे ही सारा ज्ञान और सारी यथार्थता समाविष्ट मानकर, दूसरे भाषा-भाषियो को उस ज्ञान से रहित समझते हुए हम भेद-विभेद के भ्रमजाल मे भ्रमित होते है।

भूमण्डल की बात तो दूर, हमारे अपने देश 'भारत' में ही अनेक भाषाएँ और लिपियाँ प्रचलित है। एक ब्राह्मी लिपि के मूल से उत्पन्न होने के बावजूद उन सबसे परिचित न होने के कारण हम अपने को परस्पर विघटित समझने लगते है। सारी लिपियाँ और भाषाएँ सीखना-समझना सम्भव भी नही है।

सुतरां, यथासाध्य विश्व, और अनिवार्यतः स्वराष्ट्र की सभी भाषाओ के दिव्य वाङ्मय को राष्ट्रभाषा हिन्दी और सम्पर्कलिपि नागरी में सानुवाद लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से बढ़ाकर उसको सारे राष्ट्र को सुलभ

कराना, समस्त सदाचार-साहित्य-निधि को सारे देश की सम्पत्ति बनाना, यह संकल्प भगवान की प्रेरणा से सन् १९४७ मे मैने अपनाया, और इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु १९६९ ई० मे 'भुवन वाणी ट्रस्ट' की स्थापना हुई। 'श्री गुरूग्रन्थ साहिब' और प्रस्तुत 'श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिब' के हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण भी भाषाई सेतुबन्ध की इसी पुष्कल शृङ्खला की कड़ी है।

आदिग्रन्थ तथा दशम गुरूग्रन्थ की भाषा

आदि श्री गुरूग्रन्थ साहिब की लिपि गुरमुखी है। पृष्ठ ३ पर प्रस्तुत गुरमुखी-देवनागरी वर्णमाला चार्ट से स्पष्ट है कि गुरमुखी अक्षर प्राय: नागरी लिपि के अनुरूप है और सामान्य ध्यान रखने पर गुरमुखी और हिन्दी-भाषी परस्पर दोनो लिपियो का सरलता से पाठ कर सकते है। ग्रन्थ की गुरुवाणियाँ अधिकाश पञ्जाब प्रदेश मे अवतरित है और इस कारण जन-साधारण उनकी भाषा को पञ्जाबी के सदृश अनुमान करता है; जबकि बात ऐसी नही है। श्री गुरूग्रन्थ साहिब की भाषा आधुनिक पञ्जाबी भाषा की अपेक्षा हिन्दी भाषा के अधिक समीप है और हिन्दी-भाषी को पञ्जाबी-भाषी की अपेक्षा गुरु-वाणियों का आशय अधिक बोधगम्य है।

दूसरी ओर यद्यपि श्री दसम गुरूग्रन्थ की भी लिपि गुरमुखी है, परन्तु इसकी भाषा प्राय अपभ्रश हिन्दी मे कविताबद्ध है। इसकी भाषा पंजाबी-भाषियो के लिए और अधिक दुरूह किन्तु हिन्दी-भाषियो के लिए भलीभाँति जानी-पहचानी।

एक और भ्रम !

दूसरी भ्रान्ति है कि सामान्यजन समझते हैं कि ये 'गुरूग्रन्थ' सिक्ख-पन्थ-मात्र के धर्मग्रन्थ है, उनमे सिक्ख अनुयायियों के लिए ही विधि-निषेध वर्णित होगे; जबकि तथ्य यह नही है। अलबत्ता यह सही है कि सकट और त्रास के युग मे एक सत्रस्त मानव-समूह इन वाणियो के बल पर संगठित हुआ और अपूर्व उत्सर्ग एव बलिदान द्वारा उसने समाज को परित्राण दिलाया। परन्तु दिव्य गुरुवाणियो में किसी वर्ग-विशेष, पक्ष-विपक्ष, मित्र-शत्रु की झलक मात्र नही मिलती। सामाजिक एवं धार्मिक आडम्बरो से बन्धनमुक्त करते हुए, शाश्वत सदाचार और सद्विचार के द्वारा गुरु-चिन्तन, आत्म-परमात्म-चिन्तन और मिलन की ओर मानव मात्र को उन्मुख किया गया है। कही यह गन्ध भी नही मिलती कि कौन उत्पीड़ित है, कौन उत्पीडक। मानवीय दुर्बलताओ और दुर्वासनाओ को ही शत्रु मानकर साक्षात् ईश्वरस्वरूप गुरु की कृपा से उनसे स्वत: त्राण, और अन्तत: आवागमन से मुक्ति पाने का नाद ग्रन्थ वाणियो मे ओतप्रोत है।

गुरमुखी मे प्राप्त ऐसे सार्वभौम दिव्य ग्रन्थों के अनुवाद पंजाबी, अंग्रेजी आदि भाषाओ मे भले ही हुए है, किन्तु आम जनता को बोधगम्य हिन्दी टीका उपलब्ध नही है। ग्रन्थ साहिब के आशिक हिन्दी भाष्य तो देखने को मिले; परमानन्द उदासी द्वारा श्री जपुजी की विशद व्याख्या, एवं कई अन्य टीकाएँ भी। किन्तु एक तो वे टीकाएँ समग्र ग्रन्थ की नही है, आंशिक है, दूसरे वे व्याख्याएँ विस्तर मे है और विद्वानो के लिए ही अधिक उपयुक्त है। जनसाधारण की सहज पैठ उनमे सभव नही। इस विचार से प्रेरित होकर ही श्री गुरूग्रन्थ साहिब एवं श्री दसम गुरू ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण सामान्य जनता के कल्याणार्थ प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

आदि श्री गुरूग्रन्थ साहिब का हिन्दी अनुवाद

वाणी और भाव, दोनो का सही निर्वाह करते हुए अनुवाद का कार्य सरल नही था। हिन्दी और गुरमुखी, दोनो भाषाओ मे पर्याप्त गति, भावग्राह्यता, और दर्शन के प्रति सहज निष्ठा, इन सबकी जरूरत थी। इसी खोज के दौरान, डॉ० मनमोहन सहगल, एम० ए०, पीएच्० डी०, डी० लिट्, हिन्दी विभागाध्यक्ष, पजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला से साक्षात् हुआ। ट्रस्ट के पुनीत और गुरुतर कार्य पर प्रसन्न होकर उन्होने बड़े निस्पृह भाव इस गहन कार्य को सम्हाला। उन्हीं के योगदान से, आदिग्रन्थ का सम्पूर्ण हिन्दी सस्करण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो सका। राष्ट्रभाषा में यह एक बड़े अभाव की पूर्ति हुई।

श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिब का प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद

भुवन वाणी ट्रस्ट के भाषाई सेतु-वन्धन कार्य की यह परम्परा है कि जैसे ही किसी भाषा का एक सानुवाद लिप्यन्तरित अनुपम ग्रन्थ प्रकाश में आता है, बिना विराम उस भाषा के दूसरे ग्रन्थ का प्रकाशन आरम्भ हो जाता है। सुतरां, गुरूग्रन्थ साहिब जैसे विशाल और पुनीत ग्रन्थ की अन्तिम (चौथी) सैंची का मुद्रण समाप्ति के समीप पहुँचते ही, यह उत्कण्ठा थी कि गुरुमुखी का अब कौन अन्य श्रेष्ठ ग्रन्थ आरम्भ किया जाय।

ध्यान श्री दसमगुरू ग्रन्थ साहिब की ओर पहले से था। यह ग्रन्थ भी, आदि गुरूग्रन्थ साहिब की भाँति उतने ही पृष्ठो में पूर्ण है। वही आकार, वही चार सैंची और लगभग उतने ही पृष्ठ सम्भावित है। इस ग्रन्थ के प्रणेता श्री गुरु गोविन्दसिह को देश-विदेश मे कौन नही जानता? भारत मे तो बच्चा-बच्चा उनके शौर्य और अद्वितीय बलिदान से परिचित है।

सयोग से सुपात्र विद्वान् डॉ० जोधसिंह, एम० ए०, पीएच्० डी०, प्रोफेसर हिन्दू विश्वविद्यालय, से परिचय हुआ। (अभी ताज़ा समाचार मिला है कि पजाबी विश्वविद्यालय पटियाला मे सिक्ख-दर्शन-विभाग में

रीडर के पद पर नियुक्ति उन्होंने स्वीकार की है।) अस्तु, इन्होंने श्री दशम गुरुग्रन्थ साहिब के हिन्दी अनुवाद का कार्य-भार सम्हाला। उनके ही निस्पृह-भाव से किये गये श्रम के फलस्वरूप यह प्रथम सैंची हिन्दी जगत् के सम्मुख आज इतना शीघ्र प्रस्तुत है। शेष सैंचियाँ यथाशीघ्र क्रमशः प्रकाशित होती जायँगी। श्री दसम गुरुग्रन्थ साहिब के कुछ अंशों के सम्बन्ध मे समाज मे कुछ मतभेद भी है। विद्वान् अनुवादक ने अपनी भूमिका मे उनका बड़ी योग्यता से समन्वय किया है।

नागरी लिप्यन्तरण

गुरुमुखी पाठ को यथावत् शुद्ध रूप मे नागरी लिपि मे प्रस्तुत करने के लिए प्रकाशित अब तक के उपलब्ध नागरी लिप्यन्तरणो को हमने आरम्भ मे आधार बनाया। किन्तु श्री गुरूग्रन्थ साहिब के गुरमुखी सस्करण से मिलान करने पर विदित हुआ कि नागरी लिप्यन्तरणकार ने गुरमुखी पाठ को नागरी लिपि मे रूपान्तरित करते समय, शब्दो को हिन्दी और सस्कृत के समीप पहुँचाने का यत्न हुआ है; जबकि उनको (गुरमुखी पाठ को) केवल नागरी अक्षरो मे यथावत् लिख देना चाहिए था।

सभी भारतीय भाषाओ मे सस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दो का अमित भण्डार है; सुतरां, गुरमुखी मे और श्री गुरूग्रन्थ साहिब की (गुरमुखी) भाषा में भी सस्कृत से उद्भूत अनेक तद्भव शब्दो का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। ज्ञातव्य है कि मूल पोथी के लेख की आर्ष पवित्रता को चिरस्थायी रखने के लिए, आदि पोथी मे यदि कोई अशुद्ध शब्द प्रमादवश लिख गया है, तो आज भी, लाखो प्रतियाँ छप जाने पर भी, उन अशुद्धियों को सशोधित रूप मे लिखना अमान्य समझा गया। उदाहरण के लिए यदि आदि लेख मे 'ओुही', 'गुोविद', 'गुोपाल' आदि लिख गये है, तो उनको आर्ष होने के नाते पूज्य और शाश्वत मानकर जैसे का तैसा ही लिखा जा रहा है, उनको, अगले छापो मे, क्रमशः 'ओही', गोविद', 'गोपाल' नही संशोधित किया गया।

ऐसी सावधानी का निर्देश रहने पर जो शब्द गुरमुखी पाठ मे गुरु ग्रन्थ साहिब की भाषा के अनुरूप शुद्ध लिखे गये हैं, उनके हिन्दीकरण, अथवा सस्कृतीकरण, अथवा तद्भव से तत्सम बनाने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? उदाहरण के लिए नागरी लिप्यन्तरण मे (१) अम्रित को अमृत किया गया है। राग-लय-बद्ध गुरुवाणियो मे इन दोनो प्रयोगो मे एक मात्रा का अन्तर पड़ जाता है। 'अम्रित' मे चार मात्राओ के स्थान पर 'अमृत' में केवल तीन मात्राएँ रहकर छन्द-दोष उत्पन्न करती हैं। (२) उसी प्रकार 'त्रिखा' को 'तृखा' लिखा गया है। गुरमुखी मे ऋ अक्षर का प्रयोग ही नही है। फिर यदि तत्सम रूप ही देना था, तो

'तृषा' चाहिए, न कि 'तृखा'। इसी प्रकार 'स्रिसटि', 'द्रिसटि' आदि को 'सृसटि', 'दृसटि' आदि लिखा गया है, जबकि उनके तत्सम रूप 'सृष्टि' और 'दृष्टि' है। इस प्रकार प्रचलित नागरी लिप्यन्तरण में अनेक शब्द गुरमुखी मूलपाठ से विकृत हो गये है; न अब वे गुरमुखी रहे, न हिन्दी रहे, और न सस्कृत रहे। पावन ग्रन्थ श्री गुरूग्रन्थ साहिब, पवित्र गुरमुखी भाषा मे अवतरित है। अत: नागरी लिपि मे गुरमुखी पाठ को जैसे का तैसा रूपान्तरित करने मात्र का अधिकार है; उसके हिन्दीकरण या संस्कृतीकरण का नही। सुतरां हमने श्री शिरोमणि गुरुद्वारा कमेटी, अमृतसर द्वारा प्रकाशित मूल गुरमुखी लिपि से मिलाकर तद्रूप नागरी में लिप्यन्तरण किया।

श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिब का नागरी लिप्यन्तरण

किन्तु दसम गुरूग्रन्थ मे समस्या दूसरी है। इसमे प्राचीन अपभ्रंश-हिन्दी मे कवित्तो की रचना है। मूल पाठ गुरमुखी लिपि से पृथक् न हो और काव्य के पढ़ने के धारा-प्रवाह में विघ्न न हो, इसके लिए नागरी लिप्यन्तरण मे विशेष सतर्कता रखी गई है। ग्रन्थ का नागरी लिप्यन्तरण ट्रस्ट के कुशल विद्वानो ने बड़े श्रम और अनन्य निष्ठा से किया है।

गुरमुखी एवं नागरी ग्रन्थों के पाठ के मिलान की सुविधा

गुरुमुखी और हिन्दी सस्करण मे कौन पाठ एक-दूसरे मे कहाँ है, यह जानने के लिए हिन्दी मूल पाठ के बीच में छोटे आकार मे पृष्ठ-संख्या दी गई है। उदाहरण— हिन्दी सस्करण का देखिए पृष्ठ ४९८। उसमें मूलपाठ में एक स्थल पर छपा है (मू० ग्रं० २१३)। समझिए कि पृ०४९८ का यह नागरी पाठ गुरमुखी ग्रन्थ मे २१३ पृष्ठ पर और गुरुमुखी ग्रन्थ के पृष्ठ २१३ का यह पाठ नागरी ग्रन्थ के ४९८ पृष्ठ पर प्राप्त है।

विश्वबन्धुत्व के सम्बन्ध में ट्रस्ट की अपेक्षाएँ

प्रश्न यह उठता है कि विश्ववाङ्मय के परस्पर लिप्यन्तरण और अनुवाद से मानव मात्र मे सद्भावना की उपलब्धि क्या सम्भव है ? मेरा नम्र निवेदन है कि यह कठिन है। सृष्टि के आरम्भ से विविध भूखण्डो मे समय-समय पर अवतारी पुरुष और आप्त ग्रन्थ प्रकट होते रहे हैं। फिर भी सगठन और विघटन, दोनो ही वर्तमान है। उनमे चढ़ाव-उतार होता रहता है। तब हमारे टिट्टिभि-प्रयास की क्या बिसात है। साथ ही दूसरा प्रश्न हम रखते है कि यह मानते हुए कि विश्व का समस्त वाङ्मय मानव मात्र की सम्पत्ति है, क्या वह समग्र मानव की पहुँच मे न बनाया जाय ? किसी एक वाङ्मय को यदि हम गैर मानकर उससे विरक्त रहते है तो हम अपने को निर्धन बनाते है। उसी भाँति यदि कोई समूह किसी वाङ्मय विशेष को अपनी ही पूँजी मानकर शेष मानव

समाज को उससे वञ्चित रखता है तो वह व्यक्ति अथवा समूह उस कृपण के सदृश है जो किसी निधि का न स्वय उपभोग कर पाता है, न किसी अन्य को उपभोग करने देता है ।

ट्रस्ट की यह मान्यता है कि धरातल का समस्त वाङ्मय मानवमात्र की सम्पत्ति है । लिपि और भाषा के पट को अनावृत कर उस सबको सर्वसुलभ बनाना चाहिए । भले ही मानव की पार्थक्य-भावना का मूलनाश न हो, परन्तु एकीकरण की ओर कर्तव्य करते रहना हमारे लिए श्रेयस्कर है । छोटे से भी छोटा सत्कार्य कभी व्यर्थ नही जाता, नष्ट नही होता—

"पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गति तात गच्छति ॥"

—गीता ६ : ४०

दश गुरु अवतार

हम इन गुरमुखी के दो पुष्कल ग्रन्थो को नागरी-हिन्दी-जगत् के सम्मुख रखते हुए अपने को कृतकृत्य मानते है । दश गुरुओं के अवतरण का महत्त्व और उस समय की देश की अवस्था पर ध्यान दीजिए ।

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥"

—गीता ४ : ७-८

पन्द्रहवी शताब्दी की बात है, जब भारत एक ओर तो विदेशी आक्रान्ताओ के दमन से त्रस्त था, तो दूसरी ओर उसकी अपनी सामाजिक व्यवस्था दम तोड़ रही थी । रूढिवाद; जातिवाद; ऊँच-नीच का भेद; धर्म मे नाना प्रकार की मान्यताएँ, पाखण्ड, स्वार्थ, स्पर्धा, ईर्ष्या में डूबा हुआ भारतीय समाज विघटन के कगार पर खड़ा था । सहज़ोर और कमज़ोर सभी किकर्तव्यविमूढ स्थिति मे थे । ऐसी तमाच्छन्न दशा में गुरु नानकदेव जी महाराज का दिव्य तेज उदय हुआ । उन्होने क्षेत्र, भाषा, नाना धर्म एव मान्यताएँ, वर्ण, जाति, सबको एक सूत्र मे बँधने और सदाचार तथा परमेश्वर में अटूट श्रद्धा प्राप्त करने का मत्र फूँका । देश-विदेश का पर्यटन कर, समस्त भारतीय परिवार को ज्ञान की ज्योति प्रदान की ।

श्रेय-प्रेय (गुरुमुख-मनमुख)

समाज के हताश आर्तजन गुरु की वाणी को सुन-सुनकर उनके दिव्य तेज की ओर सिमटने लगे । श्रेय अर्थात् समस्त देश और समाज के कल्याण को ही इष्ट मानकर आचरण करना । प्रेय अर्थात् केवल अपने निज

के स्वाथ को देखना। श्रेय मार्ग की सिद्धि पर प्रेय तो स्वतःसिद्ध है। इन्ही श्रेय और प्रेय को श्री गुरूग्रन्थ साहिब में गुरमुख और मनमुख कहकर परमात्मपरायणता और सदाचार का अ द्योपान्त उपदेश किया गया है।

ज्योति में ज्योति का सन्निवेश

गुरु नानकदेव महाराज से एक गुरुपरम्परा दश गुरुओं तक चली। अहिंसा और शान्ति के माध्यम से समाज मे सगठन, आत्मनिर्भरता और सदैव गुरमुख रहने का भाव उत्तरोत्तर प्रखर होता गया। एक गुरु के निर्वाण होते ही उनका दिव्य तेज दूसरे गुरु-कलेवर मे सन्निविष्ट होकर उत्पीड़ित प्रजा और उत्पीड़क, दोनो ही को गुरमुख मार्ग का सदुपदेश करता रहा। उत्पीड़क शासक अथवा उसके कृपापात्र भी गुरुओं के चमत्कार के आगे अनेक अवसरों पर नत हुए। फिर भी नित्य बढ़ते गुरु-परम्परा का प्रभाव और भारतीय समाज मे उत्तरोत्तर सगठन का जागरण देखकर शासन कठोरतम होता गया। यह शान्तरस का अभियान श्री गुरु नानकदेव जी महाराज, श्री गुरु अगददेव जी, श्री गुरु अमरदास जी, श्री गुरु रामदास जी तथा श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज तक चला। गुरु अर्जुनदेव जी महाराज के समय में ही "श्री गुरूग्रन्थ साहिब" का सकलन हुआ। ज्यों-ज्यो गुरु-परम्परा का प्रभाव बढ़ता गया, शिष्यों की संख्या और समाज में सगठन की वृद्धि उत्पन्न होने लगी, त्यों-त्यो उनके विरुद्ध षड्यन्त्रकारियो के कुचक्र भी बढ़ते गये। यहाँ तक कि मुगल बादशाह जहाँगीर की आज्ञा से पञ्चम गुरु श्री अर्जुनदेव जी महाराज का बलिदान हुआ।

शान्त से वीररस का आविर्भाव

शहीद होते समय गुरु अर्जुनदेव जी महाराज ने शिष्यों और समाज को पहली बार यह उपदेश किया कि परकाष्ठा को पहुँची शान्ति के विफल होने पर अब शक्ति के उपयोग का अवसर आ गया।

यही से गुरुपरम्परा और उनके अनुगत समाज मे वीररस का भी उदय हुआ। त्याग और तप के अतिरिक्त खड्ग भी उठा और तब से श्री गुरु हरगोविंद साहिब, श्री गुरु हरिराय, श्री गुरु हरिकृष्ण, अनेको युद्ध एवं छापो मे आततायी शासन से मोर्चा लेते, जूझते रहे। नवम गुरु श्री तेगबहादुर, शहीद हुए।

वीर से रौद्र-रस

गुरु महाराजो की तलवार का लोहा ज्यों-ज्यो प्रखर हो गया, शासन का जुल्म त्यो-त्यो बढ़ता गया। नवम गुरु श्री तेग़बहादुर जी के बलिदान होते ही उनके सुपुत्र श्री गुरु गोविन्दसिंह ने खुलकर शासन के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। रौद्र ने वीररस का स्थान ग्रहण किया। बिजली के सदृश उन्होंने देश के कोने-कोने मे घूमकर अतीत की वीर-

गाथाओं और महापुरुषों के पराक्रम एवं ओज के चरित्रों के वीरकाव्य द्वारा समस्त प्रजा मे वीर और रौद्ररस को जाग्रत् किया। पग-पग पर छापे और युद्ध— शासन की सेना विकल हो उठी। किन्तु समाज की आवश्यकता तो इस रुद्रावतार की शहीदी की थी। दिव्यतेजस्वरूप गुरु गोविंदसिंह जी अपने चार पुत्रों-सहित दिव्यलोक को पधारे।

दसम गुरूग्रन्थ साहिब

दसमेश इन अन्तिम गुरु श्री गोविंदसिंह जी महाराज के वीरकाव्य का सग्रह श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिब का ही हिन्दीस्वरूप आज पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

सुपरिणाम

ये अमर बलिदान तो हुए, परन्तु नृशस शासन ध्वस्त हो गया। दश गुरुओ का अमर ब्रह्मतेज 'श्री गुरूग्रन्थ साहिब' के रूप मे आज भी हमको अलौकिक ज्ञान दे रहा है। वाहगुरू की फतह हुई।

गुरुर्ब्रह्मागुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु ही परमात्मस्वरूप है। गुरु ही सर्वस्व है।

आभार-प्रदर्शन

सर्वप्रथम हम सरदार डॉ० जोधसिंह जी के कृतज्ञ है, जिन्होने निस्पृह भाव से ट्रस्ट के आग्रह पर अनुवाद जैसे जटिल और गहन कार्य को राष्ट्रहित मे अति श्रम से पूर्ण किया। सर्वाधिक श्रेय उनको है।

सदाशय श्रीमानो और उत्तरप्रदेश शासन (राष्ट्रीय एकीकरण विभाग) के प्रति भी हम आभारी है, जिनकी अनवरत सहायता से 'भाषाई सेतुकरण' के अन्तर्गत अनेक ग्रन्थो का प्रकाशन चलता रहता है।

सौभाग्य की बात है कि भारत सरकार के राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) तथा शिक्षा एव सस्कृति मत्रालय ने राष्ट्रभाषा हिन्दी-सहित सभी भाषाओ की समृद्धि और व्यापकता के लिए एक जोड़लिपि "नागरी" के प्रसार पर उपयुक्त बल दिया। उनकी उल्लेखनीय सहायता से हमको विशेष बल मिला है और उसी के फलस्वरूप गुरुमुखी— श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिब की पहली सैंची का प्रकाशन प्रस्तुत वर्ष मे सम्पूर्ण हो सका है।

विश्ववाङ्मय से निःसृत अगणित भाषाई धारा।
पहन नागरी पट, सबने अब भूतल-भ्रमण विचारा॥
अमर भारती सलिला की 'गुरमुखी' सुपावन धारा।
पहन नागरी पट, 'सुदेवि' ने भूतल-भ्रमण विचारा॥

नन्दकुमार अवस्थी
प्रतिष्ठाता, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ—३

अनुवादकीय

भारत भूमि पर पिछले हजारों वर्षों के इतिहास में अनेकों ऋषि, तपस्वी, संत, वीर, योद्धा पैदा हुए है। वेद-मंत्रो के द्रष्टा ऋषि-मुनियों, दधीचि जैसे त्यागियो, जनक जैसे विदेह पुरुषों, विश्वामित्र, वशिष्ठ, पतंजलि, कपिल, शंकराचार्य जैसे महान् तत्त्वचिन्तको तथा हरिश्चन्द्र, दशरथ, राम, कृष्ण आदि युगपुरुषों पर भारतवासियो को गर्व है। इन ऐतिहासिक अथवा प्रागैतिहासिक महान आत्माओं के कार्य व जीवनियाँ आज भी भारतीय जनमानस को काफी हद तक प्रभावित कर रही हैं। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर एक-आधे अपवाद को छोड़कर यह पूर्णतया स्पष्ट है कि भारतीय इतिहास में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास लगभग एकांगी ही रहा है, अर्थात् संत, ऋषि आदि केवल अध्यात्म मे ही निपुण रहे है और योद्धा मात्र रणकौशल, सैन्य-संचालन में ही दक्ष रहे है। योद्धा और संत को एक-दूसरे पर आश्रित रहना पड़ा है और कहा जा सकता है कि ऋग्वेद के पुरुषसूक्त के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सूद्र की परमपुरुष के शरीर से उत्पत्ति दिखानेवाले मंत्र की सही व्याख्या न समझाए जा सकने के कारण और लोगों को गुमराह कर इस वर्ण-व्यवस्था को निहित स्वार्थों के लिए कालान्तर मे रूढ बना दिए जाने के कारण ही भक्ति और शक्ति की धाराएँ भारत में सदैव पृथक्-पृथक् ही चलती रही हैं। परशुराम, द्रोणाचार्य आदि जैसी महान् विभूतियाँ (जो कि जन्म से ब्राह्मण तथा कर्म से क्षत्रिय थे) केवल वीर योद्धा के रूप में ही इतिहास के माध्यम से हमारे सामने उभरी और दूसरी ओर विश्वामित्र (जो कि जन्म से क्षत्रिय थे) जैसे महान पुरुष ब्रह्मर्षि की उपाधि से विभूषित हुए। महाकाव्यों के समय में हम देखते हैं कि ऋषि-मुनि अध्यात्म के महान् स्रोत होने के बावजूद भी यज्ञो की रक्षा मे अपने को असमर्थ पाकर राजाओं से सहायता लेते हैं और प्रत्येक राजा अध्यात्मिक और नैतिक बल के लिए ऋषि-मुनियों की कृपादृष्टि पर आश्रित है।

भक्ति और शक्ति के अपूर्व संयोग की सभावना हम द्वापरयुगीन श्रीकृष्ण के चरित्र मे पाते है। वे एक ओर कंस, केशी और शिशुपाल आदि का वध करनेवाले महान् योद्धा है तो दूसरी ओर कर्मठता, बाहुबल

एवं अध्यात्म के समुद्र, गीता का उपदेश देनेवाले स्थिति-प्रज्ञ ब्रह्मज्ञानी हैं। श्रीकृष्ण का जीवन भारतीय इतिहास मे एक विलक्षण एव अद्‌भुत जीवन है, जिसमे त्याग, तपस्या, भक्ति एव शक्ति का अपूर्व सामजस्य है; परन्तु ध्यान से देखने पर कहा जा सकता है कि कृष्ण के जीवन मे भक्ति और शक्ति का मेल होते हुए भी ये धाराएँ स्पष्टत: अलग-अलग ही बनी रहती हैं। श्रीकृष्ण जी का वह जीवन, जिसमे वे लीलाएँ करते हैं, दानवो का नाश कर योद्धा-रूप मे प्रतिष्ठित होते हैं, एक सत अथवा आध्यान्मिक पुरुष के जीवन के रूप मे चित्रित नही हुआ है और यह हम स्पष्टत· देखते है कि जिस समय महाभारत के युद्ध मे वे सम्मिलित है और तत्त्ववेत्ता के रूप मे गीता का महान् उपदेश दे रहे हैं, उन्होने शस्त्र तक न धारण करने की प्रतिज्ञा कर रखी है। महाभारत के युद्ध की तैयारी शुरू होने तक इस महान् पुरुष मे शक्ति और भक्ति के एक ही समय साथ-साथ दर्शन होने की सभावना बनी रहती है, परन्तु युद्ध की तैयारी के लिए पहुँचे अर्जुन एव दुर्योधन दोनो पाते है कि श्रीकृष्ण सक्रिय युद्ध से अपने-आपको अलग ही रखना चाहते हैं।

गुरु गोविंदसिह जी ने संत सिपाही के रूप मे "खालसा" का सृजन कर भारतीय चितन और युद्धकौशल मे एक अपूर्व योगदान दिया है और भारत मे पहली बार भक्ति और शक्ति का अद्‌भुत मेल प्रस्तुत किया। सिक्ख गुरुओ ने भारतीय जतना पर "खालसा" सृजन का प्रयोग करने मे लगभग ढाई सौ वर्ष का समय लिया और गुरु नानक (जन्म १४६९) से लेकर (बैसाखी १६९९) गुरु गोविंदसिह तक पूरे भारतीय जनमानस का मंथन कर शताब्दियो से स्पष्ट रूप से अलग चली आ रही भक्ति और शक्ति की महान् भारतीय परम्परा को एक-दूसरे के सलग्न कर इसे सत सिपाही के रूप मे "खालसा" की अवधारणा देकर और सपुष्ट किया। पहले पाँच गुरुओ ने युग की गति को देखते हुए भक्ति के साथ-साथ मानसिक पौरुष को पहले मज़बूत आधार के रूप मे प्रस्तुत किया और छठवे, सातवे, नौवे तथा दसवे गुरु ने उसी परम्परा को और मजबूत करते हुए एक हाथ मे तलवार और एक हाथ मे माला लेकर चलनेवाले "खालसा पथ" का निर्माण किया।

कुछ लोगो को गुरु नानक, गुरु अगददेव तथा गुरु अमरदास आदि के भक्तिपूर्ण कार्यो तथा अतिम गुरु गोविदसिह के युद्धपूर्ण जीवन मे सामजस्य प्रतीत नही होता। वे मानते है कि गुरु नानक के उद्‌देश्यो और गुरु गोविंदसिह के लक्ष्यो में समानता नहीं है। ऐसा मानना उन लोगो के लिए तो उचित है जो गुरुओ के जीवन और गुरुवाणी (गुरूग्रंथ साहिब) से अनभिज्ञ है, परन्तु जिन्होने सिक्ख धर्मग्रथों का गहन् अध्ययन

किया है वे इस बात को नही मान सकते। गुरु नानक बेशक एक महान् आध्यात्मिक युगपुरुष थे परन्तु दया, विनम्रता, सेवा, परोपकार के उपदेशों के साथ-साथ वे गुरुग्रंथ मे अपने शिष्यो को यह उपदेश भी देते है कि यदि तुम्हे राष्ट्र, मानवता, स्वाभिमान आदि से सच्चा प्रेम है तो प्रेम के रास्ते पर चलने के लिए सिर को हथेली पर रखकर चल सकने की अर्थात् प्राणो की भी परवाह न करने की आदत डालनी होगी—

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ।
सिरु धरि तली गली मोरी आउ॥
इतु मारगि पैरु धरीजै।
सिरु दीजै काणि न कीजै॥

[गुरूग्रंथ पृ० १४१२]

गुरु अंगददेव यह स्पष्ट मानते है कि योगमार्ग का कर्तव्य, ज्ञानार्जन और ब्राह्मण का कर्तव्य वेदाध्ययन एव मनन है। क्षत्रियो का धर्म वीरोचित कार्य करना तथा शूद्र का कर्तव्य पर-सेवा करना माना गया है, परन्तु अब वस्तुस्थिति को ध्यान में रखकर सभी का कर्तव्य है कि वे सभी मानवता को, भारतीयता को बंधन-मुक्त करने के लिए संगठित होकर ज्ञान, मनन, क्षत्रियत्व तथा सेवा के व्रत को धारण करे और किसी एक काम को किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार न माने। गुरु अगददेव यह कहते है, जो इस रहस्य को समझता है मैं उसका दास हूँ—

जोग सबदं गिआन सबदं बेद सबदं ब्राहमणह।
खत्री सबदं सूर सबदं सूद्र सबद पराक्रितह॥
सरब सबदं एक सबद जे को जाणै भेउ।
नानकु ता का दासु है सोई निरजन देउ॥

[गुरूग्रथ पृ०४६९]

कबीर की अमर वाणी को सिक्ख-गुरुओं ने गुरुग्रंथ मे सकलित किया जिसका सदेश है कि शूरवीर वही है जो असहायो के लिए अपने कर्तव्य का पालन करता हुआ युद्धशील बना रहता है और बेशक शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायँ वह कभी भी रणक्षेत्र से भागता नही—

गगन दमामा बाजिओ परिओ नीसानै घाउ।
खेत जु माडिओ सूरमा अब जूझन को दाउ॥
सूरा सो पहचानीऐ जु लरै दीन के हेत।
पुरजा पुरजा कटि मरै कबहूँ न छाडै खेत॥

[गुरूग्रंथ पृ०११०५]

यह कहा जा सकता है कि गुरु गोविंदसिंह ने सतो को सुख देनेवाली और दुर्मति का नाश करनेवाली "खालसा" रूपी जिस कृपाण का निर्माण किया उसके लिए विनम्रता, सच्चरित्रता एव दृढ़ता रूपी इस्पात की आपूर्ति गुरु नानक एव अन्य गुरुजनो ने की।

दशम ग्रथ के माध्यम से हम देखते हैं कि ग्रंथ के रचयिता का भक्ति और शक्ति के अपूर्व समन्वय का उद्देश्य रहा है। ग्रथ की जाप, अकाल उसतति, ज्ञान प्रबोध, श्री मुखवाक सवैये आदि अध्यात्मवादी रचनाएँ परमात्मा को सर्वत्र सर्वव्यापक और चक्र-चिह्न-जाति-पाँति तथा कालातीत वर्णित करती है तथा उसको अनुभव करने के लिए प्रेमपूर्ण प्रपच-विहीन तथा स्वाभिमानपूर्ण जीवन जीने का सकेत करती हैं। गुरु गोविंदसिह मननशील चितक, साहित्यमर्मज्ञ एव राष्ट्र-नायक थे और उनका दशम ग्रथ राष्ट्रीय एव युगचेतना से अनुप्राणित ग्रथ है। दशम ग्रंथ के चौबीस अवतार आदि रचनाओ को देखकर कुछ पाठको के मन मे यह विचार आ सकता है कि अवतारो के विस्तृत वर्णन का उद्देश्य गुरु जी की अवतार-वादी भावना को सपुष्ट करना ही हो सकता है और इस प्रकार शायद गुरु गोविंदसिह गुरु नानक और गुरु अर्जुनदेव द्वारा प्रतिपादित ओकार को "अजूनी" और अजन्मा मानने की परम्परा से दूर जाते प्रतीत होते है। परन्तु ऐसा वे ही मान सकते हैं जिन्होंने दशम ग्रथ का अध्ययन न करके केवल ऊपरी तौर पर ही कुछ बातों को जानने का प्रयत्न किया हो। गुरु गोविंदसिह का सृजन किया हुआ "सिंह समाज" बेशक एक भिन्न वेश-भूषा, सस्कृति और रहन-सहन वाला समाज है परन्तु यह भिन्न होते हुए भी भारतीय सस्कृति एव उसकी परम्पराओ से विच्छिन्न नही, अपितु किसी न किसी रूप मे उससे जुडा हुआ है। गुरु ग्रथ साहिब के अध्ययन से भी यही बात उभरकर सामने आती है। दशम गुरु के सामने बड़ी विकट परिस्थिति थी और गुलामी की जड़े भारत मे बड़ी गहरी पैठ चुकी थी। स्वाभिमान, धार्मिक स्वतत्रता, जो कि भारतीय सस्कृति का प्राण है, लगभग समाप्तप्राय थी। इतिहास साक्षी है कि स्वधर्म त्यागने की बाध्यता उस समय हर हिन्दू के सिर पर लटकनेवाली तलवार के समान थी और वैचारिक स्वतंत्रता पूर्ण रूप से समाप्त हो चुकी थी। निर्बल भारतीयों को शोषण, अपमान और कटुता से पूर्ण जीवन जीना पड़ रहा था। उस रीतिकालीन समय मे जहाँ तथाकथित राजा महाराजा "अली कली ही सों बँध्यों आगे कौन हवाल" आदि पक्तियो पर मुहरें न्योछावर कर विलासितापूर्ण जीवन जी रहे थे और कवि भी राधाकृष्ण के संयोग-शृंगार के प्रसंगो से आश्रयदाताओं को कामोद्दीप्त कर वाह-वाही लूट रहे थे, गुरु गोविंदसिह ने राम और कृष्ण के युगान्तकारी चरित्रो को अपने काव्य का

विषय बनाकर उनके योद्धास्वरूप की प्रतिष्ठापना की और इन नायकों के जीवन-चरित्र के पुनर्मूल्यांकन की ओर संकेत किया।

भारतीयता से सदियो से जुड़े चले आ रहे सिक्ख-धर्म के परम उन्नायक गुरु गोविंदसिंह के लिए यह उचित ही था कि वे भारतीयों के शौर्य को ललकारने के लिए भारतीय महापुरुषों के जीवन कथानको को अपने काव्य का आधार बनाते और जनमानस मे एक नई चेतना फूंकते। उनके "खालसा" सृजन के अभियान की पूर्णाहुति सन् १६९९ मे वैसाखी वाले दिन हुई और हम देखते है कि धोबी, नाई, कहार और जाट तथा क्षत्री सुनिश्चित रूप से भाई-भाई होकर एक-दूसरे के गले मिलने लगे और युद्धक्षेत्र मे अपने कमाल दिखाने लगे। एक अन्य तथ्य भी यहाँ दृष्टव्य है। "गुरुमुखी लिपि मे हिन्दी साहित्य" के लेखक डॉ० जयभगवान गोयल के शब्दो मे "यदि जायसी, कुतबन मंझन जैसे सूफ़ी कवि हिन्दू कहानियों को अपनाने से हिन्दू नही हो जाते, बल्कि सूफी (मुसलमान) ही रहते है, वरन् उन कथाओ के माध्यम से सूफीमत का प्रचार और प्रसार करने में अधिक सफल रहते है तो गुरु गोविंदसिंह अवतार कथाओ का वर्णन करने मात्र से अवतार भावना के पोषक कैसे हो सकते है, जबकि इन अवतार कथाओं में भी स्थान-स्थान पर आरम्भ अथवा अन्त मे वे इन अवतारो के ब्रह्मत्व का खंडन करते है।" यथा रामावतार के अन्त में रामावतार का कर्ता परमात्मा को सबोधित करता हुआ कहता है—

पाँइ गहे जब ते तुमरे तब ते कोऊ आँख तरे नही आन्यो।
राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहैं मत एक न मान्यो॥
सिम्रिति शास्त्र वेद सभै बहु भेद कहै हम एक न जान्यो।
सिरी असिपान क्रिया तुमरी करि मै न कह्यो सब तोहि बखान्यो॥

गुरु गोविंदसिंह का "असिपान" (हाथ मे शक्ति रूपी कृपाण धारण करनेवाला) परमात्मा के सिवा अन्य कोई नही है। इसी परमात्मा को वे अकालपुरुष कहते है और "चौबीस अवतार" रचना की प्रारम्भिक चौदहवीं चौपाई मे इसी अकाल कर्तापुरुष की अनंतता और सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए गुरु जी कहते है—

ब्रहमादिक सब ही पच हारे।
बिशन महेश्वर कउन बिचारे॥
चंद सूर जिन करे बिचारा।
ता ते जनीयत है करतारा॥ १४॥

उनकी यह भावना गुरु नानकदेव जी की जपुजी मे "एका माई जुगति विआई तिन चेले परवाणु" की भावना से विलकुल मेल खाती है, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों को उस परमतत्त्व से अनभिज्ञ होने की बात कही गई है। फिर दशम ग्रंथ मे के अवतार-वर्णन मे भी हम देखते है कि प्रत्येक अवतार से पहले धरती या संत महात्मा या देवगण "अकाल पुरुष" की आराधना और स्तुति करते है और अकालपुरुष प्रसन्न होकर उनके दुःख को दूर करने के लिए विष्णु को आदेश देते हैं। यथा वामन-अवतार-प्रसंग के प्रारम्भ मे कवि कहता है—

करी जोग आराधना सरब देव।
प्रसन्नं भए कालपुरखं अभेव ॥ २ ॥
दियो आइसं कालपुरख अपारं।
धरो बावना बिशन अषटमवतारं ॥
लई बिशन आज्ञा चल्यो धाइ ऐसे।
लह्यो दारदी रूप भंडार जैसे ॥ ३ ॥

पुनः रुद्र-अवतार मे भी अकालपुरुष की आज्ञा से विष्णु रुद्रावतार धारण करते है—

हस काल प्रसंन्न भए तब ही।
दुख खउनन भूम सुन्यो जब ही ॥
ढिग बिशन बुलाइ लयो अपने।
इह भांत कह्यो तिहको सु पने ॥ ३ ॥

विष्णु के चौदहवे अवतार का वर्णन करते हुए भी देवी-देवताओ से संबंधित अपनी भावना का वे संकेत देते है—

कालपुरख की देहि मो, कोटिक बिशन महेश।
कोटि इंद्र ब्रहमा किते, रवि ससि क्रोर जलेश ॥ १ ॥

अवतारों के वर्णन मे कृष्णावतार-वर्णन ने दशम ग्रंथ मे सबसे अधिक स्थान घेरा है। रामावतार का वर्णन भी पर्याप्त पृष्ठो मे हुआ है। परन्तु हम स्पष्टतः देखते है कि इन अवतारो का वर्णन मात्र लोगो मे वीर-भावना जगाने के लिए हुआ है। कृष्णावतार मे तो यह तथ्य बिलकुल स्पष्ट है। एक ओर तो हम पाते है कि श्रीकृष्ण का युद्ध-प्रबन्ध मे चरित्र एक वीर नायक का है जो कि जनसामान्य के लिए एक आदर्श नायक हो सकता है और लोगो को कंस जैसे उत्पाती तथा उसके अनुचरो जैसे छली

व्यक्तित्वों से संघर्ष करने की प्रेरणा दे सकता है, परन्तु साथ-ही-साथ खडग सिंह जैसे काल्पनिक पात्र का सृजन कर दशम ग्रथ के रचयिता ने अवतारो, देवी-देवताओ की तथाकथित शक्ति के भय का खडन किया है। हम देखते हैं कि खडगसिंह को मारने में साक्षात् शिव, ब्रह्मा, श्रीकृष्ण केवल असफल ही नही होते प्रत्युत् इनकी सामूहिक शक्ति भी खड़गसिंह की दृढ इच्छाशक्ति और परम परमात्मा की भक्ति के सामने उसका कुछ नही बिगाड पाती और ये सब खडगेश के सामने से कई बार भाग खड़े होते है। जहाँ श्रीकृष्ण की सेना मे दिखाए काल्पनिक पात्र अजायब खाँ और गैरत खाँ, महाबली अमिटसिंह से मारे जाते दिखाए गए है, और जो कि शक्तिहीन हो चुके क्षत्रिय-समाज के मनोबल को उठाने मे सहायक तथ्य था, वही साथ-ही-साथ देवताओ और गणो की कृपा पर हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहनेवाले भारतीय समाज के लिए यह एक मार्गदर्शन भी था कि हमे अपनी सहायता स्वय आप करनी है। गुरु गोविंदसिह के उत्तरवर्ती जीवन मे हम इस भावना को जनसामान्य मे साकार करने की उनकी सफलता को भी स्पष्ट देखते हैं कि कैसे देखते ही देखते धोबियो, नाइयों, कहारो, बढ़इयो का कायाकल्प हो गया और वे भी खडगसिंह की तरह परमात्मा के अतिरिक्त किसी भी दैवी शक्ति की परवाह किए बिना युद्ध मे जूझने लगे और शत्रुओ के दाँत खट्टे करने लगे।

गुरु गोविंदसिंह पर दूसरा आक्षेप दशम ग्रंथ के माध्यम से देवी-पूजा की उपासना से संबधित है और इसलिए भी कई विद्वान दशम ग्रंथ को गुरु गोविंदसिंह जी की रचना मानने को तैयार नही है। इसमें कोई संदेह नही है कि चडी देवी से संबंधित प्रकरण दशम ग्रथो में एक से अधिक बार आया है जिसमें कवि देवी के प्रति अपनी विनम्र भावना का परिचय देता है परन्तु इन सब वर्णनो से मान लेना कि ग्रथ का रचयिता देवी का उपासक रहा होगा सर्वथा भ्रामक है। वैसे भी दार्शनिक दृष्टि-कोण से देखने पर किसी देवी या देवता का मानवीकरण करना तर्कसगत और उचित नही है, परन्तु मानव मन के सामने भी यह कठिनाई बहुत ही वास्तविक है कि स्वयं उस परम सत्ता का एक छोटा सा खड होकर वह उस सम्पूर्ण सत्ता को कैसे समझे। मन का यह स्वभाव और उसकी यह अक्षमता एक वैज्ञानिक तथ्य है कि वह किसी भी वस्तु को उसकी समग्रता और निरपेक्षता में नही ग्रहण कर सकता। वह हर पदार्थो को खंड-खड करके उन्हे पहले से उपस्थित बिंबो के साथ समायोजित कर आपेक्षित स्तर पर ही समझ सकता है। यह अलग बात है कि मन यह समायोजन इतनी शीघ्रता से करता है कि स्वय जीव को भी स्पष्ट पता नही लग पाता कि खंडो को जोडने की प्रक्रिया की जा रही है। आध्यात्मिक क्षेत्र मे प्रचलित शब्द "सच्चिदानन्द" मन

की अपूर्णता और खंड-खड में ही समझ सकने के तथ्य का द्योतक है। एक ही परम सत्ता को "सत् चित्" और "आनन्द" को अलग-अलग रूपो मे ग्रहण कर ही मन उसको सच्चिदानन्द कहता है और उस परम तत्त्व को समग्र रूप, विश्वजनीन रूप से समझने मे स्वय अपूर्ण होने के कारण समझ सकने में असमर्थ पाता है। ये सत्, चित् और आनन्द तो दार्शनिक स्तर पर परमतत्त्व को समझने का प्रयत्न करनेवालो का मानसिक प्रवन्ध है, परन्तु ऐसा ही प्रवन्ध मानसिक रूप से कम विकसित अथवा स्थूल रूप से जानने का आग्रह करनेवालो ने भी किया है। उन्होने अपने लिए अपनी संख्या और मानसिक धरातल के अनुरूप करोडो देवी-देवताओं की रचना परमात्मा के कर्तृत्व के आधार पर कर ली है। कोई उसे सर्जक, कोई सहायक पोषक और कोई उसे विघ्ननाशक गणेश के नाम से जानता है। कोई उसे वरुण, कोई सरस्वती और कोई उसे लक्ष्मी तथा लक्ष्मीपति मानता है। गुरुग्रंथ साहिव मे मात्र "सत्य" को ही उसका वास्तविक नाम माना गया है और कहा गया है कि वाकी सभी नाम उसकी सर्वशक्तिसम्पन्नता तथा व्यापकता को सीमित करते हैं :

"किरतम नाम कथे तेरी जिहवा सतनाम तेरा परा पूरवला" (गुरु ग्रथ) गुरु गोविंदसिंह इसी सत्य को महाकाल, अकालपुरुष निरकार के नाम से पुकारते हैं और दशम ग्रंथ मे स्पष्ट कहते है—

जेते वदन त्रिसटि सभ धारे। आपु आपुनी वूझि उचारै ॥
तुम सवही ते रहत निरालम। जानत वेद भेद अरु आलम ॥
निरंकार निरविकार निरलभ। आदि अनील अनादि असंभ ॥
ताको करि पाहन अनुमानत। महाँ मूढ़ कछु भेद न जानत ॥
महाँदेव को कहत सदा शिव। निरकार का चीनत नहि भिव ॥
आपु आपनी बुद्धि है जेती। वरनत भिन्न भिन्न तुहि तेती ॥

[दशम ग्रंथ पृ० १३९७]

अपनी-अपनी वुद्धि को ही आधार मान कर सर्वशक्तिमान परमात्मा की शक्ति को ही कुछ लोगो ने चडी, भवानी, भगवती आदि नाम दिए है। यह प्रवन्ध भी परमात्मा को निरपेक्ष सत्ता अथवा शक्ति के रूप में समझ सकने की असमर्थता का परिचायक है। फिर यह भी संभव नही कि शक्ति को शक्तिमान से अलग करके देखा या समझा जा सके। शक्ति और शक्तिमान वैसे ही एक हैं जैसे आत्मा शरीर से भिन्न होते हुए भी उसका

निरपेक्ष रूप शरीर से अलग करके दिखाया नही जा सकता। स्थूल शरीर दिखाई पडता है और यही स्थूल तत्वों का यौगिक शरीर इसके साथ सदैव संलग्न सूक्ष्म आत्मा का आभास और विश्वास देता है।

शरीर और आत्मा के संबंध में तो यह मान्य हो सकता है, परन्तु उस सूक्ष्म सर्वशक्तिमान परमात्मा का सामान्य मन कैसे साक्षात्कार करे, इसका प्रबन्ध भी पुराणकारों ने किया है। शिव की धरती पर लेटे हुए और उस पर पाँव रखकर चडी (काली) के खड़े होने की मूर्ति भारतीय धर्म-साधना में काफ़ी प्रचलित है। शिव और चडी की इस मुद्रा की दार्शनिक व्याख्या जहाँ यह कहती है कि चंडिका रूपी शक्ति के बिना शिव मात्र शव है और यह शक्ति ही उन्हे शक्तिमान कल्याणकारी शिव बनाती है, वहीं साथ-ही-साथ जो शिव से अलग उनकी शक्ति का दर्शन करना चाहते है उनके लिए यह स्थूल परन्तु सुन्दर प्रबध है। यह सामान्य मन की जिज्ञासा शान्ति का उपाय भर है जो कि भारत में हज़ारों सालों से चलता चला आ रहा है। गुरु गोविंदसिह के समय मे चंडी का यह स्थूल रूप जनसामान्य में भलीभाँति प्रचारित था। गुरु गोविंदसिह ने मार्कण्डेय पुराण पर आधृत चडिका के पूर्व प्रचलित प्रसगों का यथासंभव कवि-कल्पना का पुट देते हुए अनुवाद भर कर दिया है, जिससे लोक-भावना की अभिव्यक्ति तो चडी-चरित्र के माध्यम से अवश्य मानी जा सकती है, परन्तु यह नही माना जा सकता कि गुरु गोविंदसिह किसी स्थूल चंडीदेवी के उपासक थे। यदि ऐसा होता तो दशम ग्रथ मे चडी की पूजा-अर्चना आदि के विधि-विधानो का भी कवि द्वारा अवश्य वर्णन किया जाता जो कि कही नही है। कवि ने मात्र चडिका के युद्धशील रूप का वर्णन किया है जिसमे वह कई बार दैत्यो का नाश करती है। गुरु गोविंदसिह का अभीष्ट जनसामान्य में अत्याचार के विरुद्ध युद्ध करने की भावना भरना था और इस भावना की सपुष्टि उन्हे जिस भी प्रचलित देवी-देवता के चरित्र मे वर्णित मिली उसे ही उन्होने अपने काव्य का विषय बना लिया। यह आश्चर्य का विषय है कि सूफी संत मियाँ मीर स्वर्ण मदिर अमृतसर की नीव अपने हाथो से रखने पर भी मुसलमान बने रहते है और महाराजा रणजीतसिंह समान भाव से मंदिरो, मस्जिदों और गुरुद्वारो को सोना आदि दान करने पर भी सिक्ख बने रह सकते है, परन्तु यदि गुरु गोविंदसिह ने चंडी-चरित्र आदि लिख दिए तो वे कैसे देवी-देवताओ से सबधित विचार-धारा के पोषक माने जा सकते हैं।

अतः उनके द्वारा चडी दी वार तथा चडी-चरित्र-उक्ति-विलास आदि लिखा जाना कोई अप्रासंगिक और आश्चर्यकारी कार्य न होकर युग की माँग की पूर्ति करने का एक महान कार्य था।

इसी प्रकार कई विद्वान उपाख्यान, चरित्र (त्रिया-चरित्र) के आधार पर भी यह कहते है कि इसके कामोद्दीपन करनेवाले आख्यान तथा तत्संबधी तथाकथित अश्लील शब्दावली इस ग्रथ को गुरु गोविंदसिह जी की रचना होने मे पर्याप्त सदेह उत्पन्न करते हैं ।

भारतवर्ष मे हजारो वर्षो से भिन्न-भिन्न तरीको से काम के विरुद्ध सघर्ष चलता चला आ रहा है । हज़ारो-लाखो तपस्वी, मुनि, सन्यासी हो गुज़रे है, परन्तु शायद कोई एक-आध ही अकाम को प्राप्त हो पाया हो । आज किसी भी तथाकथित धार्मिक व्यक्ति के साथ कामवृत्ति को जोड़ना अशोभनीय ही नही माना जाता प्रत्युत् असभव भी माना जाता है । फलस्वरूप अपने-आपको धार्मिक समझने या समझानेवाला व्यक्ति भी काम के प्रति अपनी घृणा को आत्मतुष्टि और दूसरो का आदर जीतने के लिए खुलकर प्रकट करने मे सकोच का अनुभव नही करता । मन की गहराई मे प्रत्येक व्यक्ति कामवासना के अस्तित्व को और उसकी उपयोगिता को किसी-न-किसी रूप मे अवश्य स्वीकार करता है । वास्तव मे जीवन को गंभीरता के लबादे को ओढकर जीनेवालो ने काम की स्वाभाविक वृत्ति को विकृत करने मे काफी योगदान दिया है । काम एक शक्ति है जिसको जितने जोर से दबाया जायेगा वह उतने ही वेग के साथ प्रतिघात करेगी और व्यक्ति को कई गुना अधिक कामुक बना देगी । इस ऊर्जा को रोक कर रखने के लिए हमे अपनी सम्पूर्ण चेतना को इसी मे उलझा देना पड़ता है और हम पूर्ण रूप से काममय हो जाते है । तथाकथित ब्रह्मचारियो के निकृष्ट रूप से पथ-भ्रष्ट होने के पीछे यही एक कारण है । अब व्यक्ति सन्यास लेकर कम अन्न, जल खाकर इस ऊर्जा को कम पैदा करने की दिशा मे अग्रसर होता है, परन्तु यह और भी दु.खद स्थिति है । गृहस्थ तो काम-शक्ति पैदा करता है और उसका अधिकांश भाग नष्ट कर देता है अर्थात् उसकी ऊर्जा का निष्कासन कर्मेन्द्रियो के माध्यम से होता रहता है । अब जिसकी ऊर्जा बाहर जा रही है उसका तो अन्दर की ओर बहने का मौका कभी-न-कभी आ सकता है, परन्तु जो ऊर्जा को न बनने देने के लिए ही प्रयत्नशील है उसके लिए तो अन्तर्यात्रा का कोई प्रश्न ही नही है । अत: कामवासना को मारनेवाले साधु सन्त निश्चित रूप से बुरी अवस्था मे हैं । गुरु गोविंदसिह किसी को भी साधु-संन्यासी होने की सलाह नही देते और गृहस्थ-धर्म के पालन की प्रेरणा देते है । वे स्वयं गृहस्थ थे और उनके चार पुत्र थे जो बाद मे तत्कालीन शासको द्वारा मार डाले गए थे ।

"काम" और व्यवहार मे सामजस्य लाने के लिए ही गुरु गोविंदसिह ने चरित्रोपाख्यानो की रचना की और इनके माध्यम से काम की तीव्रता,

अल्प दृष्टि, प्रवचना और धूर्तताओ को दिखाते हुए अपने अनुगामियों को चेतावनियाँ दी है।

एक बात और भी दृष्टव्य है कि स्त्रियो के कामान्ध रूपो का वर्णन करनेवाली कहानियो को गुरु गोविंदसिह "चरित्र" शब्द के साथ सबोधित करते हैं। चरित्र हमेशा वे आख्यान होते है जिनमे कुछ शिक्षा उपयोगितावादी दृष्टिकोण को ध्यान मे रखकर निहित होती है। ऐसे आख्यानों वाला काव्य उपयोगी तो अवश्य होता है परन्तु उसमे सृजनात्मक तत्त्व यदा-कदा ही दिखाई देते हैं। सृजन और निर्माण का अन्तर ही यह है कि सृजन एक लीला है, एक खेल है, जिसमें खेल-खेल ही मे सब कुछ प्राप्त हो जाता है और लीला में किसी भौतिक सुख की अपेक्षा नही होती। परन्तु निर्माण मे यह बात नहीं है। निर्माण निश्चित रूप से उपयोगितावाद के आधार पर खड़ा होता है। हम कपड़ा खरीदते है तो लीला या खेल के लिए नही खरीदते वरन् उपयोगिता को ध्यान मे रखकर खरीदते है परन्तु हम वीणा-वादन या बाँसुरी-वादन करते या सुनते है तो एक आत्मिक आनंद के लिए, और इस क्रिया मे ही हमें अपार आनद रूपी सपत्ति की प्राप्ति हो जाती है। पहले प्रकार के कार्य को हम निर्माण-कार्य और दूसरे प्रकार के कार्यों को सृजन कह सकते है। ये दोनो प्रकार की कलाएँ अलग-अलग होते हुए भी एक-दूसरे की पूरक भी हो सकती है और जीवन को पूर्ण संतुलित बना सकती हैं। भारतीय चिंतन और इतिहास में भी यह स्पष्ट है कि हम राम के जीवन को चरित्र (चरित) के नाम से और श्रीकृष्ण के जीवन को लीला के रूप में जानते हैं। राम के जीवन से हमें व्यावहारिक जीवन की मर्यादा, गभीरता की शिक्षा तथा श्रीकृष्ण के जीवन से जीवन को सहज रूप मे लीला रूप मे लेने की प्रेरणा मिलती है। यहाँ हमे केवल इतना ही कहना है कि गुरु गोविंदसिह द्वारा रचित चरित्रोपाख्यान जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणों, दुःसाहसिक चरित्रों और कामोशक्ति के गभीर-क्षणों के प्रति सावधान करनेवाली कृति है जिसे शुद्ध उपयोगितावाद को ध्यान मे रखकर लिखा गया है। यही बात "चंडीचरित्र-उक्ति-विलास' आदि रचनाओ पर भी लागू हो सकती है। अन्त मे चरित्रोपाख्यान रचना के उद्देश्य से संबधित डॉ० हरिभजन सिंह के मत को उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा।

"इन कथाओ की रचना स० १७५३ वि० मे आनन्दपुर मे हुई। इस समय गुरु गोविदसिंह धर्मयुद्ध के लिए सेना संगठन कर रहे थे। इनकी श्रोतामडली अधिकांशतः धर्मयुद्ध के सेनानियो की ही रही होगी, ऐसा अनुमान लगाना उचित ही होगा। कथाओ को अपने श्रोताओ के लिए सहज ग्राह्य बनाने के लिए कवि ने कई एक स्थानो पर कथन और वर्णन मे

सुसंस्कृत शैली की आवश्यकताओं की ओर ध्यान नही दिया। अतः कुछ स्थानों पर काम-क्रीड़ा का नग्न-चित्रण उपस्थित हो गया है, जो शिष्ट-संस्कारो पर आघात करता है। सेनानियो के लिए नारी-चरित्र का, विशेषतः उनकी कामपरकता और धूर्तता का अतिरंजित चित्र उपस्थित करने का दायित्व उन परिस्थितियों पर है जिनमे इस ग्रथ को संगठन के सदस्यो के लिए गृहस्थ के मोह का त्याग बहुत आवश्यक था। गुरु गोविंद सिंह से पहले गुरु तेगबहादुर द्वारा भी इसी त्याग का प्रचार प्रारम्भ हो चुका था। दूसरा कारण इस सगठन की भौगोलिक परिस्थिति मे निहित था। आनन्दपुर शिवालिक पर्वतमाला की तलहटी मे बसा हुआ एक नगर है। यही बैठकर गुरुजी को मुगल सत्ता के विरुद्ध धर्मयुद्ध का संचालन करना था। यहाँ युद्ध के साथ धर्म शब्द का प्रयोग साभिप्राय है। वे अपने सेनानियो के युद्ध-कर्म को जितना महत्त्व देते थे, उतना ही उनके धर्म, उनके नैतिक विकास के लिए भी सतर्क थे। इन सेनानियो के मार्ग मे नारी एक बहुत बड़ा प्रलोभन थी। गृहस्थ से दूरी, पार्वत्य क्षेत्र मे नैतिकता का पतनशील स्तर और युद्धो मे शत्रुओं की नारी पर बलात्कार करने की छूट —ये सब परिस्थितियाँ उपर्युक्त प्रलोभनों को बहुत कुछ यथार्थ रूप प्रदान कर रही थी। गुरु गोविंदसिंह ने उपदेश और व्याखयान, दोनो रीतियो से अपने अनुयायियो को इस प्रकार के प्रलोभन के प्रति सावधान किया। उन्होने अपने सैनिको को जिन चार 'बज्जर कुरैहतो'— बज्र कुरीतियो अथवा घातक अपराधों से बचने का उपदेश बड़ी कड़ाई से दिया उनमें से एक था 'परस्त्री-गमन'। इसी उपदेश को सेनानियो के हृदय में बैठाने के लिए चरित्रोपाख्यानो की रचना हुई, ऐसा अनुमान सहज मे ही किया जा सकता है[१]।"

दशम ग्रंथ का अनुवाद-कार्य मेरे लिए कुछ अर्थो मे श्री गुरूग्रथ साहिब के अनुवाद-कार्य से कठिनतर कार्य था, परन्तु भुवन वाणी ट्रस्ट के प्रमुख न्यासी श्री नन्दकुमार अवस्थी जी की सतत् प्रेरणा और उत्साहवर्द्धन के कारण यह गुरुतर कार्य काफी हद तक सरल हो गया और फलस्वरूप यह अनुवाद पाठको की सेवा मे उपस्थित है। मैं श्री अवस्थी जी का आभारी हूँ। अनुवाद को जहाँ सरल सर्वग्राह्य बनाने की चेष्टा की गई है वही साथ-ही-साथ यह भी ध्यान रखा गया है कि यह अनुवाद किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रहो से मुक्त बना रहे और मूल रचनाकार का भाव ज्यों का त्यो बना रहे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दर्शन-विभाग मे कुछ ही समय पूर्व विजिटिंग प्रोफेसर के रूप मे आये पजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ से सम्बद्ध सिक्ख-धर्म एव दर्शन के प्रख्यात विद्वान डॉ० अत्तरसिंह के

१ देखिए पुस्तक "गुरुमुखी लिपि मे हिन्दी काव्य", पृष्ठ ४१२-१३।

विचार-विमर्श से भी मैंने इस कार्य को हाथ मे लेने की प्रेरणा ली है। इस कार्य की पाण्डुलिपि तैयार करने मे मुझे मेरे पुराने सहकर्मियों— सर्वश्री जगदीशनाथ श्रीवास्तव (हिन्दी अधीक्षक), रामनारायण पाण्डेय (हिन्दी अधीक्षक) एव टी० पी० श्रीवास्तव (प्रधान हिन्दी अनुवादक), डी० रे० का०, वाराणसी ने वाछित सहयोग दिया है। स्व० प्रो० साहिबसिह की रचनाओ से भी मै लाभान्वित हुआ हूँ। मैं इन सभी महानुभावो का हृदय से आभारी हूँ।

जोध सिंह
एम० ए०, पीएच्० डी०, साहित्य रत्न

दर्शन-विभाग, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी,
वाराणसी
दिनांक १-३-८३

विषय-सूची

अथ कृष्णावतार इक्कीसवाँ अवतार ५८६-८२०।

विषय	पृष्ठ

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

स्री
दसम गुरूग्रंथ साहिब जी

नागरी लिप्यन्तरण

तथा

हिन्दी अनुवाद

(प्रथम सैंची)

(मूल ग्रन्थ के पृष्ठ १–३६७)

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

स्री वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

श्री दसम गुरू ग्रंथ साहिब

(नागरी लिपि में)

हिन्दी व्याख्या सहित

जापु

स्री मुखवाक पातिशाही १० ॥

॥ छपै छंद ॥ त्व प्रसादि[1] ॥ चक्र चिहन[2] अरु बरन जाति अरु पाति[3] नहिन जिह । रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकति किह । अचल[4] मूरति अनुभव प्रकाश अमितोज[5] कहिज्जै । कोटि इंद्र इंद्राणि साहि साहाणि गणिज्जै । त्रिभवण[6] महीप सुर नर असुर नेति नेति बन त्रिण कहत । तव सरब नाम कथै कवन करम नाम बरनत सुमति ॥ १ ॥ ॥ भुजंग

॥ छप्पय छद ॥ तेरी कृपा से ॥ जिस प्रभु का न तो कोई आकार-विशेष है, न ही वर्ण, जाति तथा कुल-विशेष है, उसके रूप, रंग, आकार एवं वेश आदि का भला कोई क्या वर्णन कर सकता है। वह (प्रभु) सदैव स्थिर रहनेवाला, स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित अनंत बलशाली कहा जाता है और वही करोडों राजाओ का राजा और इन्द्रों का भी इंद्र माना जाता है। (हे प्रभु !) तुम तीनो लोको के सम्राट् हो तथा देव, दानव, मनुष्य, वनस्पतियाँ सभी तुम्हे अद्वितीय मानते है। तेरे सभी नामो का वर्णन कौन कर सकता है ? विद्वानो ने अपनी सुमति के अनुसार केवल तेरे (इष्ट) कार्यों के आधार पर तेरे (कुछ) नामो का (ही) वर्णन किया है ॥ १ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ (हे) कालातीत, कृपालु,

---

१ तेरी कृपा से। २ चिह्न। ३ बन्धु-बान्धव। ४ स्थिर। ५ महान् तेजस्वी। ६ तीन लोक— स्वर्ग, मर्त्य, पाताल।

प्रयात छंद ।। नमसत्वं अकाले । नमसत्वं क्रिपाले । नमसत्वं अरूपे । नमसत्वं अनूपे ।। २ ।। नमसतं अभेखे । नमसतं अलेखे । नमसतं अकाए । नमसतं अजाए ।। ३ ।। नमसतं अगंजे । नमसतं अभंजे । नमसतं अनामे । नमसतं अठामे ।।४।। नमसतं अकरमं । नमसतं अधरमं । नमसतं अनामं । नमसतं अधामं ।। ५ ।। नमसतं अजीते । नमसतं अभीते । नमसतं अबाहे । नमसतं अढाहे[1] ।। ६ ।। नमसतं अनीले[2] । नमसतं अनादे । नमसतं अछेदे[3] । नमसतं अगाधे[4] ।। ७ ।। नमसतं अगंजे । नमसतं अभंजे । नमसतं उदारे । नमसतं अपारे ।।८।। नमसतं सु एकै । नमसतं अनेकै । नमसतं अभूते । नमसतं अजूपे ।। ९ ।। नमसतं न्रिकरमे । नमसतं न्रिभरमे । नमसतं न्रिदेसे । नमसतं न्रिभेसे ।। १० ।। नमसतं न्रिनामे । नमसतं न्रिकामे । नमसतं न्रिधाते । नमसतं न्रिघाते ।। ११ ।। नमसतं न्रिधूते । नमसतं अभूते । मू०ग्रं०१* नमसतं अलोके । नमसत अशोके ।। १२ ।। नमसतं न्रितापे । नमसतं अथापे ।

निराकार, अनुपम प्रभु ! तुझे मेरा नमस्कार है ।। २ ।। (हे) निर्वेश, अलक्ष्य, कायातीत (निराकार), अजन्मा, तुझे प्रणाम है ।। ३ ।। सर्वजेता, अभजनशील, अनाम और किसी एक स्थान-विशेष मे ही न रहनेवाले हे प्रभु ! तुझे प्रणाम है ।। ४ ।। कर्मों से परे, वर्णाश्रम धर्मों से परे, नामो से परे, धामो से परे रहनेवाले हे प्रभु, तुझे नमस्कार है ।। ५ ।। परास्त न हो सकनेवाले, निर्भय, अचल एव कभी भी शौर्य-विहीन न होनेवाले प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ।। ६ ।। (प्राण) वायु-रूप मे जीवो के आधार, अनादि, अछिद्र एव अगाध प्रभु, तुझे मेरा नमस्कार है ।। ७ ।। सर्वाग्रणी, अभजनशील, उदार एव अनन्त प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ।। ८ ।। एक अनेक, (पच) भूतो से परे, बधनातीत हे प्रभु, तुझे मेरा नमस्कार है ।। ९ ।। कर्मकांडो से परे, भ्रमो से दूर, देशो और वेशो से अतीत हे प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ।। १० ।। हे नामातीत, कामनाओ से विहीन, समस्त तत्त्वो से परे बसनेवाले एव आघातो से सुरक्षित प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ।। ११ ।। अचल, अभूत, अदृष्ट एव शोकरहित हे प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ।। १२ ।। तीनो तापो (आध्यात्मिक, दैविक एव भौतिक) से विहीन,

---

१ जो ढह (गिर) न सके । २ उज्ज्वल । ३ जिसका छेदन न हो सके । ४ महा गभीर । * मू० ग्रं० के पाठ १ का गुरमुखी पाठ यहाँ समाप्त होता है । उसकी पहचान के लिए ऐसे ही छोटे अक सर्वत्र निर्धारित किये गये हैं ।

नमसतं त्रिमाने[1] । नमसतं निधाने[2] ।।१३।। नमसतं अगाहे । नमसतं अबाहे । नमसतं त्रिबरगे । नमसतं असरगे[3] ।। १४ ।। नमसतं प्रभोगे । नमसतं सुजोगे । नमसतं अरंगे । नमसतं अभंगे ।। १५ ।। नमसतं अगंमे । नमसतसतु रंमे । नमसतं जलास्रे । नमसतं निरास्रे ।।१६।। नमसतं अजाते । नमसतं अपाते । नमसतं अमजबे[4] । नमसतसतु अजबे ।। १७ ।। अदेसं अदेसे । नमसतं अभेसे । नमसतं न्रिधामे । नमसतं न्रिबामे[5] ।। १८ ।। नमो सरब काले । नमो सरब द्याले । नमो सरब रूपे । नमो सरब भूपे ।। १९ ।। नमो सरब खापे । नमो सरब थापे । नमो सरब काले । नमो सरब पाले ।। २० ।। नमसतस्सतु देवै । नमसतं अभेवै । नमसतं अजनमे । नमसतं सुबनमे ।। २१ ।। नमो सरब गउने[6] । नमो सरब भउने । नमो सरब रंगे । नमो सरब भंगे ।। २२ ।।

जिसे किसी विशिष्ट स्थान पर स्थापित नही किया जा सकता, तीनो लोकों मे मान्य एवं सभी गुणों के कोष प्रभु, तुझे मेरा नमस्कार है ।। १३ ।। समुद्र के समान जिसकी थाह न पाई जा सके, जिसे हिलाया न जा सके, जिससे त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति होती है तथा जो स्वयं अपना रचयिता आप है, ऐसे प्रभु को मेरा नमस्कार है ।। १४ ।। विश्व जिसकी भोग-सामग्री है, विश्व जिसमे पूर्णरूप से सयुक्त है, जिसका कोई वर्ण-विशेष नही है तथा जो अविनाशी है, उस प्रभु को मेरा नमस्कार है ।। १५ ।। हे अगम्य, समस्त लोको में रमण करनेवाले जीवन के आधार, किसी भी आश्रय की अपेक्षा न रखनेवाले प्रभु, तुझे मेरा नमस्कार है ।। १६ ।। हे अजात, पतनविहीन, मत-मतान्तरों से परे आश्चर्यस्वरूप प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ।।१७।। हे प्रभु, तुझे प्रणाम है । तेरा कोई देश या वेश नही । तेरा कोई विशेष घर नही और न ही तूने स्त्री से जन्म लिया है ।। १८ ।। सभी के काल, सभी पर दया करनेवाले, सभी के स्वरूप अर्थात् सभी मे निहित और सभी के सम्राट् हे प्रभु, तुझे प्रणाम है ।। १९ ।। सभी जीवों का सहार करने, सभी को स्थापित करनेवाले सर्वकाल एव सर्व प्रतिपालक प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ।।२०।। हे पूज्य, रहस्यमय, सुवर्णमय, अजन्मा प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ।। २१ ।। सर्वलोको मे गमन करनेवाले, सभी भुवनो मे व्याप्त, सभी रंगो की शोभास्वरूप तथा सभी का सहार करनेवाले हे प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ।। २२ ।। काल के भी काल, दया

---

१ तीन संख्यावाचक रूप— ब्रह्मा, विष्णु और शिव । २ भंडार । ३-उत्पत्ति-रहित । ४ धर्म या सम्प्रदाय से रहित । ५ पत्नी-रहित । ६ भ्रमण करनेवाले ।

नमो काल काले। नमसतसतु द्याले। नमसतं अबरने। नमसतं अमरने ॥ २३ ॥ नमसतं जरारं। नमसतं क्रितारं। नमो सरब धंधे। नमो सत अबंधे ॥२४॥ नमसतं न्रिसाके[1]। नमसतं न्रिबाके। नमसतं रहीमे। नमसतं करीमे ॥ २५ ॥ नमसतं अनंते। नमसतं महंते। नमसतसतु रागे। नमसतं सुहागे[2] ॥ २६ ॥ नमो सरब सोखं[3]। नमो सरब पोखं[4]। नमो सरब करता। नमो सरब हरता ॥ २७ ॥ नमो जोग जोगे। नमो भोग भोगे। नमो सरब द्याले। नमो सरब पाले ॥२८॥ ॥ चाचरी छंद ॥ त्व प्रसादि ॥ अरूप हैं। अनूप हैं। अजूप है। अभूप हैं ॥ २९ ॥ अलेख हैं। अभेख है। अनाम हैं। अकाम हैं ॥ ३० ॥ अधेय हैं। अभेय है। अजीत हैं। अभीत है ॥ ३१ ॥ त्रिमान हैं। निधान हैं। त्रिबरग है। असरग है ॥ ३२ ॥ अनील है। अनादि है। अजेय है। अजादि हैं ॥ ३३ ॥ अजनम हैं। अबरन हैं। अभूत है। अभरन हैं ॥३४॥ मू०ग्रं०२

के घर, अवर्ण एव अमर परमात्मा, तुझे मेरा प्रणाम है ॥ २३ ॥ वृद्धावस्था जिसके पास नही आती, जगत के कर्ता, सांसारिक व्यवहारो को चलाए रखनेवाले बधन-मुक्त हे प्रभु, तुझे मेरा नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे प्रभु, तुझे प्रणाम है; तेरा कोई सबधी-विशेष नहीं, तू निर्भय है; तू सब पर दया करनेवाला है और सब पर कृपा करनेवाला है ॥ २५ ॥ हे अनंत प्रभु, तुझे प्रणाम है। तू सबसे बड़ा है, तुझे नमस्कार है। हे प्रभु, तू प्रेमस्वरूप और महाप्रतापी है ॥ २६ ॥ सबके सहारक, पोषक, सर्जक एव नाश करनेवाले प्रभु, तुझे नमस्कार है ॥ २७ ॥ योगियो मे योगी, भोगियों मे भोगी, सभी पर दयालु एव सबके पालनहार प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ॥ २८ ॥ ॥ चाचरी छद ॥ त्व प्रसादि (तेरी कृपा से)॥ हे प्रभु, तुम अरूप हो, अनुपम हो, अचल एवं अजन्मा हो ॥२९॥ तुम अदृष्ट हो, वेशातीत हो; अनाम हो, अकाम हो ॥ ३० ॥ तुम चिन्तन से परे हो, तुम्हारा रहस्य नही जाना जा सकता, तुम अजेय एव अभय हो ॥ ३१ ॥ तुम तीनो लोको मे मान्य हो, कोषागार, धर्म, अर्थ, काम के भंडार हो तथा तुम किसी के द्वारा पैदा नही होते ॥ ३२ ॥ तुम (प्राण) वायु हो, अनादि हो, अजेय तथा अजात हो ॥ ३३ ॥ हे प्रभु, तुम जन्म धारण नही करते, तुम वर्णों से, भूतों से परे हो। पोषण के लिए तुम किसी पर आश्रित नही हो ॥ ३४ ॥ तुम अजेय एव अभंजनशील हो।

---

१ सम्बन्धी-रहित। २ सौभाग्यशाली। ३ सुखानेवाला। ४ भरनेवाला।

अगंज हैं। अभंज हैं। अझूझ हैं। अझंझ हैं ॥ ३५ ॥ अमीक हैं। रफीक[1] हैं। अधंध[2] हैं। अबंध[3] हैं ॥३६॥ न्रिबूझ हैं। असूझ हैं। अकाल हैं। अजाल हैं ॥३७॥ अलाह[4] हैं। अजाह हैं। अनंत हैं। महंत हैं ॥३८॥ अलीक[5] हैं। न्रिस्रीक हैं। न्रिलंभ हैं। असंभ हैं ॥३९॥ अगंम हैं। अजंम हैं। अभूत हैं। अछूत हैं ॥ ४० ॥ अलोक[6] हैं। अशोक हैं। अक्रम हैं। अभ्रम हैं ॥४१॥ अजीत हैं। अभीत हैं। अबाह हैं। अगाह हैं ॥४२॥ अमान[7] हैं। निधान हैं। अनेक हैं। फिरेक[8] हैं ॥ ४३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ नमो सरब माने। समसती निधाने। नमो देव देवे। अभेखी अभेवे ॥४४॥ नमो काल काले। नमो सरब पाले। नमो सरब गउणे। नमो सरब

तुम्हारा मुकाबला कोई नही कर सकता तथा तुम झमेलो, झंझटो से परे हो ॥ ३५ ॥ तुम अथाह हो, सबके साथी हो, परन्तु जगत के प्रपचों तथा (माया के) बधनों से मुक्त हो ॥ ३६ ॥ तुम्हारे गहरे भेदो को जाना नही जा सकता है, तुम मानव-बुद्धि की पहुँच से परे हो। तुम काल-रहित हो और किसी जाल मे फँस नही सकते ॥ ३७ ॥ हे प्रभु, तुम्हें किसी एक स्थान-विशेष मे नही पाया जा सकता, (क्योकि) तुम स्थानातीत हो। तुम अनन्त एवं सबसे बड़े हो ॥ ३८ ॥ तुम असीमित हो; तुम्हारे जोड का कोई दूसरा नही है। तुम निरालम्ब हो तथा सब संभावनाओं से परे हो ॥ ३९ ॥ हे अगम्य प्रभु, तुम अजन्मा, अभूत एवं स्पर्श से परे हो ॥ ४० ॥ हे प्रभु, तुम अदृश्य हो, चिन्ताओ से परे हो, कर्म-कांडो से दूर हो और भ्रमों से मुक्त हो ॥ ४१ ॥ हे प्रभु, तुम्हें कोई नही जीत सकता, तुम्हे किसी का डर नही है, तुम उस पर्वत के समान हो जिसे हिलाया न जा सके। तुम (समुद्र की तरह) अथाह हो ॥ ४२ ॥ तुम्हे किसी भी नाप तोल से आँका नही जा सकता; तुम (सब गुणो के) भडार हो; तुम एक हो और अपने एक स्वरूप से ही तुमने अनेको रूप बनाए हैं, परन्तु अनेक होते हुए भी आप एक ही हैं ॥ ४३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छद ॥ हे सर्वमान्य, समस्त गुणो के भडार, देवो के भी देव, रहस्यो और वेशों से भी परे प्रभु, तुम्हे (मेरा) प्रणाम है ॥ ४४ ॥ तुम काल के भी काल हो, सब जीवों के पालनकर्ता हो। सर्वव्यापक एवं सभी भुवनों मे गमन कर सकनेवाले प्रभु, तुम्हें मेरा प्रणाम

---

१ साथी। २ धन्धो से रहित। ३ बन्धन-मुक्त। ४ वाहिगुरू-वाचक नाम है। ५ चिह्न-रहित। ६ अगोचर। ७ माप और तोल से रहित। ८ फिर भी एक रूप हैं।

मउणे ।। ४५ ।। अनंगी[1] अनाथे । न्रिसंगी प्रमाथे[2] । नमो भान भाने । नमो मान माने ।।४६।। नमो चंद्र चद्रे नमो भान भाने । नमो गीत गीते नमो तान ताने ।। ४७ ।। नमो न्रित्त न्रित्ते नमो नाद नादे । नमो पान पाने नमो बाद बादे ।। ४८ ।। अनंगी अनामे समसती सरूपे । प्रभंगी प्रमाथे समसती बिभूते ।। ४९ ।। कलंकं बिनाने कलंकी सरूपे । नमो राज राजेश्वरं परम रूपे ।। ५० ।। नमो जोग जोगेश्वरं परम सिद्धे । नमो राज राजेश्वरं परम ब्रिद्धे ।।५१।। नमो शसत्र पाणे । नमो असत्र माणे । नमो परम ज्ञाता । नमो लोक माता ।। ५२ ।। अभेखी अभरमी अभोगी अभुगते । नमो जोग जोगेश्वरं परम जुगते ।। ५३ ।। नमो नित्त नाराइणे क्रूर करमे । नमो प्रेत अप्रेत देवे सुधरमे ।। ५४ ।। नमो रोग

है ।। ४५ ।। हे निराकार, स्वय स्वामी, तेरी बराबरी वाला कोई नहीं है, तू सर्वसहारक है । तुम्हे मेरा नमस्कार है । तू सूर्यो का भी सूर्य है और बड़े-बड़े आदरणीय भी तेरी पूजा करते है ।। ४६ ।। हे चद्रमाओ को प्रकाशित करनेवाले, सूर्यो के भी सूर्य, गीतो के भी गीत एव सुरों के भी स्वर प्रभु, तुम्हे (मेरा) प्रणाम है ।। ४७ ।। तुम नृत्यो के भी आधार नृत्य हो, नादो के भी नाद हो । तुम्हे मेरा प्रणाम है । तुम एक महान नगारची हो (जिसने अपने ढोल की आवाज पर ससार रूपी मेला इकट्ठा किया हुआ है) ।। ४८ ।। हे प्रभु, तुझे नमस्कार है । तेरा न तो कोई अग-विशेष है, न ही तेरा कोई एक नाम है । सब (जीव) तेरा ही स्वरूप है । तू ही प्रलय है, सर्वसहारक है तथा सभी जीवो मे विभूतिस्वरूप भी तू ही है ।। ४९ ।। तू विकार-रहित निष्कलकस्वरूप है । हे राजाओं के सम्राट् और सभी के परम रूप प्रभु, तुझे मेरा प्रणाम है ।। ५० ।। हे योगियो के योगीराज परमसिद्ध पुरुष, राजाओ के राजा, परम बृहद् प्रभु, तुझे प्रणाम है ।। ५१ ।। हे शस्त्रो को धारण करनेवाले अस्त्रयुक्त, परम ज्ञाता एवं सभी लोको का मातृस्वरूप में पालन करनेवाले प्रभु, तुम्हे मेरा नमस्कार है ।। ५२ ।। वेशो, भ्रमो, भोगो से परे रहनेवाले स्वय कभी भी न भोगे जा सकनेवाले योगीश्वर तथा सभी युक्तियों की परम-युक्तिस्वरूप प्रभु, तुम्हे (मेरा) प्रणाम है ।। ५३ ।। हे प्रभु, तुम्हें मेरा नमस्कार है, तू सदा जीवो की रक्षा करनेवाला और हिंसा करने (मारने) वाला भी है । प्रेतात्माओं और अच्छी आत्माओ अर्थात् सबका तू ही स्वामी है तथा तू ही इस सारे ससार का धर्मानुसार पोषण कर

---

१ अंग-रहित । २ नष्ट करनेवाला ।

हरता नमो राग रूपे। नमो शाह शाहं नमो भूप भूपे ।। ५५ ।। नमो दान दाने नमो मान माने। नमो रोग रोगे नमसतं शनाने ।। ५६ ।। नमो मंत्र मंत्रं नमो जंत्र जंत्रं । नमो इषट इषटे नमो तंत्र तंत्रं ।। ५७ ।। सदा सच्चिदानंद सरबं प्रणासी । अनूपे अरूपे समसतुलि निवासी ।।५८।। सदा सिद्ध दा बुद्ध दा ब्रिद्ध करता । अधो उरध अरधं अघं ओघ हरता ।। ५९ ।। मू०ग्रं०३ परम[1] परम[2] परमेस्वरं प्रोछ पालं । सदा सरब दा सिद्ध दाता दयालं ।। ६० ।। अछेदी अभेदी अनामं अकामं । समसतोपराजी समसतसतु धामं ।। ६१ ।। ।। तेरा जोरु[3] ।। ।। चाचरी छंद ।। जलेय हैं। थलेय हैं। अभीत हैं। अभेय हैं ।।६२।। प्रभूअ हैं। अजूअ[4] हैं। अदेस हैं। अभेस हैं ।। ६३ ।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। त्व प्रसादि ।।

रहा है ।। ५४ ।। हे प्रभु, तू सभी जीवों के रोग दूर करनेवाला, प्रेमस्वरूप है। सम्राटों के सम्राट्, राजाओं के भी राजा प्रभु, तुम्हें मेरा प्रणाम है ।। ५५ ।। दानियो के भी दानी प्रभु, संसार में समादृत व्यक्ति भी तेरी पूजा करते है। रोगो के नाशक परम स्नान-रूप-प्रभु, तुम्हे मेरा प्रणाम है ।। ५६ ।। हे प्रभु, तेरा नाम ही सभी मंत्रो का परम मन्त्र है, सबसे बड़ा यन्त्र है और परम तन्त्र है। इष्टो (देवी-देवताओ) के भी इष्ट परमात्मा, तुम्हे मेरा प्रणाम है ।। ५७ ।। हे प्रभु, तुम सत्, चित्, आनन्द, सर्वसंहारक, अनुपम स्वरूप एवं सर्वव्यापी हो ।। ५८ ।। हे प्रभु, तुम सदैव सिद्धिदाता, बुद्धिदाता एवं वृद्धिकर्ता हो। पाताल, आकाश एवं इन दोनों के बीच में तुम्ही व्याप्त हो तथा तुम ही जीवो के अनन्त पापों का नाश करनेवाले हो ।। ५९ ।। हे प्रभु, तुम बड़े स्वामी हो, जीवो की दृष्टि से अदृश्य रहकर भी तुम उनका पोषण कर रहे हो। हे दयालु, तुम ही जीवो को सिद्धियाँ देनेवाले हो ।। ६० ।। तुम्हे न तो कोई तोड़ सकता है, न कोई तुम्हारा भेदन कर सकता है। तुम अनाम, अकाम, सबको पराजित करनेवाले सभी जीवों के निवास हो ।। ६१ ।। तेरा जोर ।। ।। चाचरी छंद ।। हे प्रभु, जल मे, स्थल मे तू ही है। तू अभय है और तेरे रहस्य को समझा नही जा सकता ।। ६२ ।। तू सबका स्वामी है, अचल है; तेरा कोई एक देश नही, तेरा कोई एक वेश नही ।। ६३ ।। ।। भुजग प्रयात छद ।। तेरी कृपा से ।। हे प्रभु, तू अथाह है, तेरे रास्ते

१ आदि। २ परमात्मा। ३ तेरा बल, तेरी ताकत। इसका भाव यह है कि मै जो कुछ कथन करता हूँ सब तेरी ताकत है। ४ गमन-रहित।

अगाधे अबाधे । अनंदी सरूपे । नमो सरब माने । समसती निधाने ।।६४।। नमसत्वं न्रिनाथे । नमसत्वं प्रमाथे । नमसत्वं अगंजे । नमसत्वं अभजे ।। ६५ ।। नमसतं अकाले । नमसतं अपाले । नमो सरब देसे । नमो सरब भेसे ।। ६६ ।। नमो राज राजे[1] । नमो साज साजे । नमो साह साहे । नमो माह माहे[2] ।।६७।। नमो गीत गीते । नमो प्रीत प्रीते । नमो रोख रोखे । नमो सोख सोखे ।। ६८ ।। नमो सरब रोगे । नमो सरब भोगे । नमो सरब जीतं । नमो सरब भीतं ।। ६९ ।। नमो सरब ज्ञानं । नमो परम तानं । नमो सरब मंत्रं । नमो सरब जंत्रं ।। ७० ।। नमो सरब द्रिस्सं । नमो सरब क्रिस्सं । नमो सरब रंगे । त्रिभंगी अनगे ।। ७१ ।। नमो जाव जीवं नमो बीज बीजे । अखिज्जे अभिज्जे समसतं प्रसिज्जे[3] ।। ७२ ।।

मे कोई रुकावट नही डाल सकता । तुम आनन्दस्वरूप हो; सब जीव तुझे मानते हैं और तुम समस्त गुणों के भण्डार हो ।। ६४ ।। हे प्रभु, तेरा कोई स्वामी नही, तुम सबके सहारक हो, अजेय हो तथा अभंजनशील हो । तुम्हे मेरा प्रणाम है ।। ६५ ।। मृत्यु तुम्हारा स्पर्श नही कर सकती, अतः तुम्हे किसी रक्षक की आवश्यकता नही । हे प्रभु, तुम्हे प्रणाम है; तुम सभी देशो और वेशो मे व्याप्त हो ।। ६६ ।। तुम राजाओ मे महाराजा हो, साजो मे भी सर्वोत्तम साज हो, हे प्रभु, तुम्हे नमस्कार है । तुम शाहों मे भी शहशाह हो, चाँदो मे महाचन्द्रमा हो, तुम्हे नमस्कार है ।। ६७ ।। गीतो के भी गीत, परमप्रेमस्वरूप तुम्हे प्रणाम है । तुम भयानक क्रोधस्वरूप (भी) हो और (भारी सृष्टि को) अपने मे समाहित कर लेनेवाले भी हो ।। ६८ ।। हे प्रभु, तुम्हे मेरा प्रणाम है । तुम सर्व जीवों की मृत्यु का कारण हो और तुम्ही सभी जीवो मे व्याप्त हो जगत के पदार्थों का भोग कर रहे हो । सबको जीतनेवाले और सभी को भयभीत कर रखनेवाले भी तुम्ही हो ।।६९।। हे प्रभु, तुम सर्वज्ञ हो, प्रपच-विस्तार हो, सबको वश मे कर लेनेवाले मत्र तथा यत्र हो । तुम्हे (मेरा) प्रणाम है ।। ७० ।। हे प्रभु, तुम सबके पर्यवेक्षक हो, सबको अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले हो । सभी वर्णो मे भी व्याप्त तीनो लोको के सहारक परन्तु (फिर भी) निराकार हो । तुम्हे मेरा प्रणाम है ।। ७१ ।। हे प्रभु, तुम्हे प्रणाम है । तुम जीवो के प्राणाधार हो, सबका मूल कारण हो । तुम दुःखो और भेदो से परे सब पर कृपा करनेवाले हो ।। ७२ ।। हे प्रभु,

१ राजाओ के राजा । २ चन्द्रमाओ के चन्द्रमा । ३ सब पर प्रसन्न होनेवाले ।

क्रिपालं सरूपे कुकरमं प्रणासी । सदा सरबदा रिद्धि सिद्धं निवासी ।। ७३ ।। ।। चरपट छंद ।। त्व प्रसादि ।। अंम्रित करमे । अंम्रित धरमे । अखल जोगे । अचल भोगे ।।७४।। अचल[1] रागे । अटल साजे । अखल धरमं । अलख करमं ।। ७५ ।। सरबं दाता । सरबं ज्ञाता । सरबं भाने । सरब माने ।।७६।। सरबं प्राणं । सरबं त्राणं । सरबं भुगता । सरबं जुगता ।।७७।। सरबं देवं । सरब भेवं । सरबं काले । सरबं पाले ।। ७८ ।। ।। रूआल छंद ।। त्व प्रसादि ।। आदि रूप अनादि मूरति अजोनि[2] पुरख अपार । सरब मान त्रिमान देव अभेव आदि उदार । सरब पालक सरब घालक सरब को पुनि काल । जत्र तत्र बिराजही अवधूत रूप रसाल ।। ७९ ।। नाम ठाम न जात जाकरि रूप रंग न रेख । आदि पुरख[3] उदार

तुम दया के घरस्वरूप हो तथा कुकर्मों के विनाशक हो । सब ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ तुझमे बसती है ।। ७३ ।। ।। चरपट छद ।। तेरी कृपा से ।। हे प्रभु, तेरे कार्य अनित्य है और तेरे विधान को कोई टाल नही सकता । अखिल विश्व में तू सयुक्त है और तेरा शासन सदा चलनेवाला है ।। ७४ ।। हे प्रभु, तेरा शासन चिरन्तन है और तेरी सृष्टि टल नही सकती । तेरे नियम संपूर्ण हैं और तेरे कर्म अदृश्य है ।। ७५ ।। हे प्रभु, तुम सब जीवों के दाता हो, तुम सबके हृदय की बात जाननेवाले हो; सबको प्रकाशित करनेवाले हो तथा सभी तुम्हारी पूजा करते हैं ।। ७६ ।। हे प्रभु, तुम सबके प्राण हो, सबके रक्षक एवं शासक हो । तुम्ही सबमे सयुक्त हो ।। ७७ ।। सबके देव एवं सबके हृदयो के रहस्यों को जाननेवाले तुम ही हो । तुम ही सबके काल हो तथा तुम ही सबके पालनहार हो ।।७८।। ।। रूआल छद ।। तेरी कृपा से ।। (हे प्रभु !) तेरा अस्तित्व सबसे पहले है, तेरे स्वरूप के मूल के बारे मे कोई नही बता सकता । हे परमपुरुष ! तुम अयोनि एव अनन्त हो । सभी जीव तेरे समक्ष नमन करते है । तुम प्रकाशस्वरूप हो, तेरा रहस्य कोई नही जान सका । हे उदार पुरुष ! तुम सबके मूल हो । सब जीवो के रक्षक, संहारक एवं कालस्वरूप तुम ही हो । हे प्रभु ! तुम सर्वत्र अवस्थित हो, सभी रसो के भडार हो, परन्तु रसो के बधनो से अतीत हो ।। ७९ ।। हे प्रभु, तुम्हारा न तो कोई एक नाम है, न एक स्थान है, न रूप है, न रग है और कोई प्रतीक विशेष है । तुम सबके मूल हो, सबमे मौजूद हो, उदारता तेरा स्वरूप है, तुम जन्म नही लेते, तुम

---

१ पर्वत-सम स्थिर । २ योनि-रहित । ३ परब्रह्म (वाहगुरु) ।

मूरति अजोनि आदि असेख। देस मू०ग्रं०४ अउर न भेस जाकरि रूप रेख न राग। जत्र तत्र दिसा[1] विसा[2] हुइ फैलिओ अनुराग[3] ॥८०॥ नाम काम विहीन पेखत धाम हूँ नहि जाहि। सरब मान सरबत्र मान सदैव मानत ताहि। एक मूरति अनेक दरशन कीन रूप अनेक। खेल खेल अखेल खेलन अंत को फिर एक ॥८१॥ देव भेव न जानई जिह वेद अउर कतेब। रूप रंग न जाति पाति सु जानई[4] किह जेब। तात[5] मात न जात जाकरि जनम मरन विहीन। चक्र बक्र फिरै चत्र चवक मानई पुर तीन[6] ॥ ८२ ॥ लोक चउदह के विखै जगु जापई जिह जाप। आदि देव अनादि मूरति थाप्यो सभै जिह थाप। परम रूप पुनीत मूरति पूरन पुरखु अपार। सरब विस्व रचिओ सुयंभव[7] गड़न भंजनहार ॥ ८३ ॥ काल हीन कला

आदि हो और कभी समाप्त नही होते। तुम्हारा कोई एक देश, वेश, रूप और आकार नही। न ही तुम्हे कोई मोह है। हे प्रभु, तुम सर्वत्र प्रेम-रूप होकर फैले हुए हो ॥ ८० ॥ नाम-काम विहीन प्रभु का कोई एक धाम दृष्टिगोचर नही होता। उसी प्रभु के समक्ष सभी जीव झुकते हैं और वही सर्वत्र पूज्य है। वह आप अकेला है, परन्तु अनेक स्वरूपो (जीवो) मे प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। संसार-रचना के खेल के बाद प्रलय के खेल के साथ सभी जीव पुनः उसी एक रूप (परमात्मा) मे अवस्थित हो जाते हैं ॥ ८१ ॥ वह प्रभु ऐसा है, जिसका रहस्य न तो देवतागण जानते हैं, न ही हिन्दुओ की धार्मिक पुस्तके (वेदादि) तथा न ही सामी धर्मों की धार्मिक पुस्तके (कतेबादि) उसके रहस्य को जानती है। उसका स्वरूप क्या है, कोई नही जानता। उसका न कोई पिता है, न जननी है; न जाति है, न कुल है। न वह आवागमन मे आता है। उस प्रभु का ही (काल-रूप) भयानक चक्र चारो दिशाओ मे घूम रहा है और तीनो लोको मे सभी उसके समक्ष नमन करते है ॥ ८२ ॥ जिस प्रभु का जाप चौदह लोको के समस्त जगत मे चल रहा है, जो सर्वप्रथम पूज्य है, जिसका स्वरूप अनादि है और जो समस्त सृष्टि का कर्ता है, वह प्रभु सबका परमस्वरूप पवित्र, पूर्ण, सर्वव्यापक एव अनन्त है। अखिल विश्व का कर्ता वही स्वयभू (अपने-आप से उत्पन्न) प्रभु है जो जगत का रचयिता एव सहारक भी

---

१ चार दिशा (पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण)। २ चार उपदिशा (आग्नेय, नैर्ऋत, वायव्य, ईशान) मे। ३ प्रेम। ४ जानते हैं। ५ पिता। ६ तीनो लोक। ७ अपने-आप उत्पन्न।

संजुगति अकाल पुरख अदेस । धरम धाम सु भरम रहत अभूत अलख अभेस । अंग राग न रंग जाकहु जाति पाति न नाम । गरब गंजन दुसट भंजन मुकति दाइक काम ।। ८४ ।। आप रूप अमीक[1] अन उसतति[2] एक पुरख अवधूत । गरब गंजन सरब भंजन आदि रूप असूत[3] । अंग हीन अभंग अनातम एक पुरख अपार । सरब लाइक सरब घाइक सरब को प्रतिपार ।। ८५ ।। सरब गंता सरब हंता सरब ते अनभेख । सरब सासत्र न जानई जिह रूप रंग अरु रेख । परम बेद पुरान जाकहि नेति भाखत नित्त । कोटि सिम्रिति पुरान सासत्र न आवही वहु चित्ति ।। ८६ ।। ।। मधुभार छंद ।। त्व प्रसादि ।। गुन गन उदार । महिमा अपार । आसन अभंग । उपमा अनंग ।। ८७ ।। अनभउ प्रकास । निस दिन अनास ।

है ।। ८३ ।। प्रभु कालातीत, कलाओ से युक्त, सर्वव्यापक एव किसी एक निश्चित स्थान-विशेष मे रहनेवाला नही है । प्रभु ही धर्म का स्रोत है तथा भ्रमो से परे, पाँचो तत्त्वों से दूर अदृष्ट एव वेशहीन है । उसे शारीरिक मोह नही, न ही उसका कोई रग, जाति, कुल अथवा नाम है । वह प्रभु अहकारियो का अहम् चूर करनेवाला, दुष्टों का दमन करनेवाला, मुक्ति-प्रदाता तथा कामनाओ की पूर्ति करनेवाला है ।। ८४ ।। वह स्वयं अपने स्वरूप से बना अतिगहन, स्तुति से परे, माया के बधनो से दूर केवल एक (महान) पुरुष है । वह अहकारियो के अहकार का नाश करनेवाला अजन्मा आदिपुरुष है । शरीर-रहित अविनाशी प्रभु मे सभी जीवो के विभिन्न अस्तित्व है, क्योकि वह एक ही एक स्वय है और सभी जीवो मे उपस्थित है । प्रभु सव कुछ करने मे समर्थ है । सबका पोषण एव संहार करनेवाला है ।। ८५ ।। प्रभु की गति सब जीवों तक है, वह सर्वसहारक है तथा उसका वेश सबसे निराला है । सभी शास्त्र उसके रूप-रग और आकार को नही जानते । वेद एवं पुराण सभी, सदैव उसे सर्वोच्च के रूप में वर्णन करते है । करोडो स्मृतियों, पुराणो और शास्त्रो के माध्यम से भी उसका वास्तविक स्वरूप समझ मे नही आ सकता ।। ८६ ।। ।। मधुभार छंद ।। ।। तेरी कृपा से ।। हे प्रभु, तुम उदार हो तथा अनत गुणो के स्वामी हो । तुम्हारी महिमा अपरपार है, तेरा आसन स्थिर है और तुम्हारी उपमा किसी से नही दी जा सकती ।। ८७ ।। हे प्रभु, तुम अपने ज्ञान-प्रकाश से प्रकाशित हो और सदैव वने रहनेवाले अविनाशी हो ।

---

१ गंभीर, अथाह । २ बिना वड़ाई । ३ जन्म-रहित ।

आजान बाहु[1] । साहान साहु ॥८८॥ राजान राज । भानान भान[2] । देवान देव उपमा महान ॥८९॥ इंद्रान इंद्र बालान बाल । रंकान रंक कालान काल ॥ ९० ॥ अनभूत अंग । आभा अभंग । गति मिति अपार । गुन गन उदार ॥ ९१ ॥ मुनि गनि प्रनाम । निरभै न्रिकाम । अति दुति प्रचंड । मिति गति अखंड ॥ ९२ ॥ आलिस्य करम । आद्रिस्य धरम । सरबा भरणाढ्य । अनडंड बाढ्य मू०ग्रं०५ ॥९३॥ ॥ चाचरी छंद ॥ त्व प्रसादि ॥ गुबिंदे । मुकंदे । उदारे । अपारे ॥९४॥ हरीअं[3] । करीअं । न्रिनामे । अकामे ॥९५॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ चत्रु चक्र[4] करता । चत्रु चक्र हरता ।

तेरे हाथ वहुत लम्वे है अर्थात् हे शहशाह, सृष्टि-रचना के सभी साधन तेरे वश मे हैं ॥ ८८ ॥ तुम राजाओं के राजा तथा सूर्यों के भी सूर्य हो। हे प्रभु, तुम देवो के भी देव हो, तुम्हारा वड़प्पन महान् है ॥ ८९ ॥ (चपल वुद्धि) इद्रो का भी तू इन्द्र है, परन्तु (सरलता मे) तू बच्चो से भी (सरल) वच्चा है। विनम्र लोगो (गरीवों) मे भी तू सिरमौर है और (रौद्र-रूप) काल का भी तू काल है ॥ ९० ॥ तेरा आकार जगत-रचना के तत्त्वो से निराला है और तेरी आभा अक्षय है। हे प्रभु, तेरी गति और सीमा अपार है। अनन्त गुणो के स्वामी प्रभु, तुम उदार हो ॥ ९१ ॥ अनन्त मुनिगण तुझे प्रणाम करते है। तुम अभय एव निष्काम हो। हे प्रभु, तुम्हारा अद्वितीय तेज किसी से सम्हाला नही जाता और तुम्हारी गति और सीमा अखण्ड है ॥ ९२ ॥ हे प्रभु, तुम्हारे सभी कार्य स्वाभाविक रूप से होते है और तेरा धर्म-पालन एक आदर्श है। ससार के सभी गहने (आकर्पण) तुझमे हैं, परन्तु निश्चित रूप से कोई तुमहारी ओर आँख उठाकर देख नही सकता ॥ ९३ ॥ ॥ चाचरी छद ॥ तेरी कृपा से ॥ हे प्रभु, तू धरती के (जीवो के) रहस्य जाननेवाला मुक्ति-प्रदाता, उदार-हृदय एव अनंत है ॥ ९४ ॥ हे प्रभु, तू जीवो का नाश करनेवाला, उनका पोषण करनेवाला अनाम है तथा तुझे कोई कामना छू भी नही सकती ॥ ९५ ॥ ॥ भुजग प्रयात छंद ॥ हे प्रभु, तुम चारो दिशाओ (के जीवो) के कर्ता और संहारक हो। तुम ही सवको दान देनेवाले हो तथा तुम्ही (सवके हृदय की) वातो को जाननेवाले हो ॥ ९६ ॥ तुम ही चारो दिशाओं मे व्याप्त हो और चारो दिशाओ के पोषक हो। चारो दिशाओ

---

१ जिसका हाथ पैर तक हो। २ सूर्यों के सूर्य। ३ मारनेवाला। ४ चारो दिशाओं के।

चत्रु चक्र दाने । चत्रु चक्र जाने ॥ ९६ ॥ चत्रु चक्र वरती । चत्रु चक्र भरती । चत्रु चक्र पाले । चत्रु चक्र काले ॥ ९७ ॥ चत्रु चक्र पासे । चत्रु चक्र वासे । चत्रु चक्र मान्यै । चत्रु चक्र दान्यै[1] ॥ ९८ ॥ ॥ चाचरी छंद ॥ न सत्रै । न मित्रै । न भरमं । न भित्रै ॥ ९९ ॥ न करमं । न काए । अजनमं । अजाए ॥१००॥ न चित्रै । न मित्रै । परे है । पवित्रै ॥१०१॥ प्रिथीसै । अदीसै । अद्रिस्सै । अक्रिस्सै[2] ॥१०२॥ ॥ भगवती छंद ॥ त्व प्रसादि कथते ॥ कि आछिज्ज देसै । कि आभिज्ज भेसै । कि आगंज करमै । कि आभंज भरमै ॥ १०३ ॥ कि आभिज्ज लोकै । कि आदित्त सोकै । कि अवधूत बरनै । कि बिभूत करनै ॥ १०४ ॥ कि राजं प्रभा हैं । कि धरमं धुजा हैं । कि आशोक बरनै । कि सरबा अभरनै ॥ १०५ ॥ कि जगतं क्रिती हैं । कि छत्रं छत्री हैं । कि ब्रहमं सरूपै । कि

(के जीवो) की रक्षा करनेवाले भी तुम हो और सबका सहार करनेवाले भी तुम हो ॥ ९७ ॥ चारों तरफ तुम ही व्याप्त हो और प्रत्येक स्थान पर जीव तेरी ही पूजा कर रहे हैं । हे प्रभु, तुम ही सबको देनेवाले भी हो ॥ ९८ ॥ ॥ चाचरी छद ॥ हे प्रभु, न तो कोई तेरा दुश्मन है, न मित्र (तुम सबसे ऊँचे हो) । न तो तुम्हे कोई सदेह है, न तुम द्वैतभावना से ग्रस्त हो ॥ ९९ ॥ न तुम कर्म (कांड) के वश मे हो, न शरीर हो और न ही जन्म धारण करते हो ॥ १०० ॥ हे प्रभु, न तो तुम्हारा कोई चित्र (वना सकता) है, न कोई मित्र । तुम सबसे परे हो तथा पवित्र हो, शुद्धोत्तम हो ॥ १०१ ॥ तुम धरती के मालिक हो, अदृष्टा हो और हे प्रभु, तुम कभी भी दुर्बल नही होते ॥ १०२ ॥ ॥ भगवती छद ॥ तेरी कृपा से ॥ हे प्रभु, तेरा स्थान कभी नष्ट न होनेवाला है और तेरा वेश भी नाशवान नही है, तुम सब कर्मकांडो से परे हो और सभी भ्रमो को तोड़नेवाले हो ॥ १०३ ॥ हे प्रभु, तेरा लोक अविनाशी है तथा तुम सूर्य के तेज को भी नष्ट कर सकते हो । तुम अवधूत हो अर्थात् माया की लिप्तता से परे हो, परन्तु सभी विभूतियो, ऐश्वर्य के कर्ता हो ॥ १०४ ॥ राजाओ का तेज तुम ही हो, धर्मो का अलंकार तुम हो । तेरा स्वभाव (स्वरूप) चिंताओ से मुक्त है और सभी जीवो के सौदर्य का मूल हो ॥ १०५ ॥ हे प्रभु, तुम जगत-कर्ता हो, वीरों के भी हो । तुम सौन्दर्य के आधार हो एवं तुम्हारा अनुभव अनुपम है ॥ १०६ ॥ हे प्रभु,

---

१ दाता । २ कमजोर नही ।

अनभउ अनूपै ।। १०६ ।। कि आदि अदेव हैं। कि आपि अभेव हैं। कि चित्रं बिहीनै। कि एकै अधीनै ।।१०७।। कि रोज़ी रज़ाकै। रहीमै रिहाकै। कि पाक बिऐब हैं। कि ग़ैबुल ग़ैब हैं ।। १०८ ।। कि अफ़बुल[1] गुनाह हैं। कि शाहान शाह है। कि कारन कुनिंद[2] हैं। कि रोज़ी दहिंद[3] हैं ।।१०९।। कि राज़क रहीम हैं। कि करमं करीम हैं। कि सरबं कली हैं। कि सरबं दली हैं ।। ११० ।। कि सरबत्र[4] मान्यै। कि सरबत्र दान्यै। कि सरबत्र गउनै[5]। कि सरबत्र भउनै ।।१११।। कि सरबत्र देसै। कि सरबत्र भेसै। कि सरबत्र राजै। कि सरबत्र साजै ।। ११२ ।। कि सरबत्र दीनै। कि सरबत्र लीनैं। कि सरबत्र जाहो[6]। कि सरबत्र भाहो[7] ।। ११३ ।। कि सरबत्र देसै। कि सरबत्र भेसै। कि सरबत्र कालै। कि सरबत्र पालै ।। ११४ ।। कि सरबत्र हंता[8]। कि सरबत्र

तुम सर्वोपरि आदिदेव हो। तुम्हारा रहस्य कोई नही जानता। तुम्हारा कोई चित्र नही (बना सकता) है। तुम अपने ही स्वय के वश मे हो ।। १०७ ।। हे प्रभु, तुम सबको जीविका देनेवाले, सब पर कृपा करनेवाले हो। तुम निष्कलक हो एवं पवित्र हो तथा पूर्ण रूप से गुप्त हो ।। १०८ ।। तुम सबके पापो को माफ करनेवाले, सम्राटो के भी सम्राट् हो। तुम सभी कारणो के मूल हो एव हे प्रभु, तुम ही सबको रोज़ी देनेवाले हो ।। १०९ ।। तुम सबका पालन करनेवाले कृपालु हो और सब कर्मों के कर्ता हो। सभी ताकतो के मालिक प्रभु, तुम ही सभी जीवो का सहार करनेवाले हो ।। ११० ।। सर्वत्र तुम्हारी ही पूजा होती है और सर्वत्र तुम ही दान देनेवाले हो। सभी स्थानों पर गमन करनेवाले सभी लोको मे, हे प्रभु, तुम ही मौजूद हो ।। १११ ।। हे प्रभु, सभी देशो और वेशो मे तुम ही अवस्थित हो। सभी जगह तुम्हारा ही तेज प्रताप है और हर स्थान पर तेरी ही सृष्टि है ।। ११२ ।। हे प्रभु, तूने ही सर्वत्र दान दिया है और तुम ही सर्वत्र रमे हुए हो। हर जगह तेरा ही तेज है और हर स्थान पर तेरा ही प्रकाश है ।। ११३ ।। हर देश और वेश मे, हे प्रभु, तुम ही मौजूद हो। तुम ही सबका काल हो और तुम ही सबका पोषण करनेवाले हो ।। ११४ ।। हे प्रभु, तुम सबके संहारक हो और तुम्हारी पहुँच हर स्थान पर है। तुम ही सभी वेशो

१ माफ करनेवाला। २ मूल, जड। ३ देनेवाला। ४ सर्वत्र। ५ सर्वत्र गमन करनेवाले। ६ तेज। ७ प्रकाश। ८ संहारक।

गंता । कि सरबत्र भेखो । कि सरबत्र पेखो ॥ ११५ ॥ कि
सरबत्र मू०ग्रं०६ काजै । कि सरबत्र राजै । कि सरबत्र सोखै ।
कि सरबत्र पोखै[1] ॥ ११६ ॥ कि सरबत्र त्राणै । कि सरबत्र
प्राणै । कि सरबत्र देसै । कि सरबत्र भेसै ॥ ११७ ॥ कि
सरबत्र मान्यै । सदैवं प्रधान्यै । कि सरबत्र जाप्यै । कि सरबत्र
थाप्यै[2] ॥ ११८ ॥ कि सरबत्र भानै । कि सरबत्र मानै । कि
सरबत्र इंद्रै । कि सरबत्र चंद्रै ॥ ११९ ॥ कि सरबं कलीमै[3] ।
कि परमं फहीमै । कि आकल[4] अलामै । कि साहिब
कलामै ॥ १२० ॥ कि हुसनुल वजू[5] हैं । तमामुल रुजू हैं ।
हमेसुल सलामै । सलीखत मुदामै ॥ १२१ ॥ ग़नीमुल[6]
शिकस्तै । ग़रीबुल परस्तै । बिलंदुल मकानै । ज़िमीनुल

मे हो और सब स्थानों पर तुम ही प्रेक्षक हो ॥ ११५ ॥ हे प्रभु, सभी
स्थानो मे तुम ही कार्य-रूप मे प्रकट हो और सभी स्थानों मे तुम ही
शोभायमान हो । सर्वत्र तुम ही सहारक हो तथा सर्वत्र तुम ही सबका
पोषण करनेवाले हो ॥ ११६ ॥ सभी स्थानो मे दुःखो के हर्ता तुम
ही हो और सर्वत्र तुम ही प्राणस्वरूप उपस्थित हो । सभी स्थानो में
तुम मौजूद हो और प्रत्येक स्थान मे हर वेश मे तुम ही उपस्थित
हो ॥ ११७ ॥ हे प्रभु, सब स्थानो मे (सब जीव) तेरी ही पूजा कर
रहे है । सदैव तू ही (सब देश-कालो में) प्रधान है । हर स्थान
पर तेरा ही जाप चल रहा है और सब जगह तुम ही उपस्थित
हो ॥ ११८ ॥ हे प्रभु, प्रत्येक स्थान मे सूर्य की भाँति तुम ही तेजवान
हो और जीव (अजीव सभी) हर स्थान पर तेरी ही पूजा कर रहे
है । हर स्थान पर तुम ही सब जीवों के राजा हो और प्रत्येक स्थान
में चन्द्रमा (की कोमल चाँदनी) के रूप मे तुम ही विराजमान
हो ॥ ११९ ॥ हे प्रभु, सब जीवो की वाणी (भी) तुम ही हो और
समस्त जीवो मे परम बुद्धिमान भी तुम ही हो । तुम बुद्धि एव ज्ञान
के भण्डार हो तथा वाणी के सम्राट् हो ॥ १२० ॥ हे प्रभु, तुम
सौन्दर्य की मूर्ति हो । सभी जीवों की ओर तुम्हारा ही ध्यान
है । तुम हमेशा बने रहनेवाले हो और सृष्टि-रचना की तुम्हारी
युक्ति चिरन्तन रूप से चली आ रही है ॥ १२१ ॥ हे प्रभु, तुम
शत्रुओ को पराजित करनेवाले हो; गरीबो को पालनेवाले हो ।
हे परमात्मा, तेरा निवास सबसे ऊँचा है और तू सब स्थानो मे मौजूद

---

१ पालक । २ सर्वत्र उपस्थित है । ३ वक्ता । ४ विद्वान् । ५ महान् सुन्दर । ६ दुश्मनों को हरानेवाला ।

ज़मानै ॥१२२॥ तमीज़ुल[1] तमामै। रुज़ूअल निधानै। हरीफुल अज़ीमै। रज़ाइक यक़ीनै ॥१२३॥ अनेकुल तरंग हैं। अभेव हैं अभंग है। अज़ीज़ुल[2] निवाज़ है। ग़नीमुल खिराज़ है ॥१२४॥ निरुकति सरूप है। त्रिमुकति बिभूत है। प्रभुगति प्रभा[3] हैं। सु जुगति सुधा है ॥१२५॥ सदैवं सरूप हैं। अभेदी अनूप हैं। समसतो पराज है। सदा सरब साज है॥ १२६॥ समसतुल सलाम है। सदैवल अकाम हैं। निबाध सरूप है। अगाधि अनूप हैं ॥ १२७॥ ओअं[4] आदि रूपै। अनादि सरूपै। अनंगी अनामे। त्रिभंगी त्रिकामे ॥१२८॥ त्रिबरगं त्रिबाधे। अगंजे

है॥ १२२॥ हे प्रभु, तुम सब जीवो की पहचानस्वरूप हो और तुम सबके ध्यान का भण्डार हो अर्थात् तुम जीवो का इतना ध्यान रखते हो, परन्तु फिर भी तुम इस गुण के भण्डार हो और यह गुण तुम्हारे मे से कभी समाप्त नही होता। हे प्रभु, (दुश्मनो का) तू बड़ा दुश्मन है और यकीनन् तू ही सबको रोजी देता है॥ १२३॥ हे प्रभु, (तुम एक बड़े समुद्र हो और जगत के सारे जीव) तुम्हारी अनेक तरगे है। तुम्हारा रहस्य नही समझा जा सकता, तुम नाशरहित हो। हे प्रभु, जो तुम्हे प्यारे हैं, तुम उन्हे सम्मान प्रदान करते हो, परन्तु शत्रुओं से तुम कर वसूल करते हो अर्थात् जो तुम्हारे सामने अकडते है, उन्हे तुम अवश्य नष्ट कर देते हो॥ १२४॥ हे प्रभु, तेरा स्वरूप उक्ति-कथन के बाहर है, तेरा तेजप्रताप माया के तीनो गुणों से परे है। (जगत के सारे जीव) तेरे ही प्रकाश का उपभोग कर रहे है। हे प्रभु, तुम अमृतस्वरूप हो और सारे जीवो मे भलीभाँति मिले हुए हो॥ १२५॥ हे प्रभु, तुम्हारा स्वरूप सदैव स्थिर है। तेरे जैसा अन्य कोई दूसरा नही है। तुम सबको जीतनेवाले हो और सदा सभी जीवो का सृजन करनेवाले हो॥ १२६॥ हे प्रभु, तुम सभी जीवों की सुरक्षा का मूल हो और सदा ही कामनाओ से मुक्त हो। प्रभु, कोई बाधा आपके सामने आ नही सकती और तुम्हारा पारावार पाया नही जा सकता॥ १२७॥ हे ओंकार-स्वरूप परब्रह्म, तुम ही सबका आदि-कारण हो। अनादि-स्वरूप हो। हे प्रभु, तेरा कोई अग नही और तुम अनाम हो। तीनो लोको का नाश करनेवाले और तीनो भुवनों के जीवो की मनोकामनाओ को पूर्ण करनेवाले तुम ही हो॥ १२८॥ हे प्रभु, तुम्हारे अदर ससार के तीनो पदार्थ (धर्म-अर्थ-काम) मौजूद है।

१ पीछा करनेवाला। २ प्यारा। ३ विशेष शोभा वाला। ४ अकाल-पुरख अर्थात् ईश्वर।

अगाधे। सुभं सरब भागे। सु सरबानुरागे ॥ १२९ ॥ त्रिभुगत सरूप हैं। अछिज्ज हैं अछूत हैं। कि नरकं प्रणास हैं। प्रिथीउल प्रवास हैं ॥ १३० ॥ निरुकति प्रभा हैं। सदैवं सदा हैं। बिभुगति सरूप हैं। प्रजुगति अनूप हैं ॥ १३१ ॥ निरुकति सदा हैं। बिभुगति प्रभा हैं। अनुकति सरूप हैं। प्रजुगति अनूप है ॥ १३२ ॥ ॥ चाचरी छंद ॥ अभंग हैं। अनंग हैं। अभेख हैं। अलेख हैं ॥ १३३ ॥ अभरम हैं। अकरम हैं। अनादि हैं। जुगादि हैं ॥ १३४ ॥ अजै हैं। अबै हैं। अभूत हैं। अधूत हैं ॥ १३५ ॥ अनास हैं। उदास हैं। अधंध हैं। अबंध हैं ॥ १३६ ॥ अभगत हैं। बिरकत हैं। अनास हैं। प्रकाश हैं मू०ग्रं०७ ॥ १३७ ॥

तुम्हारा अकुश तीनों लोको के जीवो पर है। तुम अजेय और अथाह हो। हे प्रभु, तुम्हारे सभी अग मनोरम है और तुम सभी जीवो को प्यार करनेवाले हो ॥ १२९ ॥ हे प्रभु, तेरा स्वरूप ऐसा है जिससे सभी जीव आनंदित है। तेरा अस्तित्व सदैव नव-नवीन है, तुम्हे कोई छू नही सकता। प्रभु, तुम नरकों के नाशक हो और प्रवासी के रूप मे धरती पर (जीव भी) तुम ही हो ॥ १३० ॥ हे प्रभु, तेरा तेज ऐसा है जिसका वर्णन नही हो सकता। तुम सदा वर्तमान हो। हे प्रभु, तुम्हारे अस्तित्व के कारण ही सभी आनदित होते है, तुम सबमे सयुक्त हो और तुम्हारे जैसा सुन्दर अन्य कोई नही है ॥ १३१ ॥ हे प्रभु, तुम सदैव उक्तियों के वर्णन से परे हो। तुम्हारा प्रकाश सबको प्रसन्न करने वाला है। तेरा स्वरूप अकथनीय है। तुम सभी जीवों मे मिले हुए हो, परन्तु तुम्हारे जैसा अन्य सुन्दर कोई नही है ॥ १३२ ॥ ॥ चाचरी छद ॥ हे प्रभु, तुम नाश नही हो सकते, क्योकि तुम्हारा कोई अग नही है। तुम्हारा कोई वेश नही है, अतः तुम चित्रो मे नही (बाँधे जा सकते) हो ॥ १३३ ॥ तुम भ्रमो से परे हो, अतः कर्मकांडों से दूर हो। तुम अनादि हो और युगो के प्रारम्भ से भी पहले के हो अर्थात् समय की गणना से ऊपर हो ॥ १३४ ॥ हे प्रभु, तुम अजय हो, शाश्वत हो, पाँचो तत्त्वों से परे अचल हो ॥१३५ ॥ हे प्रभु, (ससार तो नाशवान है, परन्तु) तुम स्वय नाश से परे हो, तटस्थ हो, जगत की चिताओ से मुक्त एवं बधनो से दूर हो ॥ १३६ ॥ हे प्रभु, तुम मोहातीत हो, विरक्त हो, नष्ट नही हो सकते तथा प्रकाश-स्वरूप हो अर्थात् मोह-आसक्ति आदि का अँधेरा तुम्हारे सामने ठहर नही सकता ॥ १३७ ॥ (सांसारिक कार्य-व्यापारों को चलानेवाले

निर्चित हैं। सुनित हैं। अलिक्ख हैं। अदिक्ख हैं ॥ १३८ ॥ अलेख हैं। अभेख है। अढाह है। अगाह है ॥ १३९ ॥ असंभ है। अगंभ है। अनील है। अनादि हैं ॥ १४० ॥ अनित्त हैं। सुनित्त हैं। अजाति हैं। अजादि है ॥ १४१ ॥ ॥ चरपट छंद ॥ त्व प्रसादि ॥ सरबं हंता। सरबं गंता। सरबं ख्याता। सरबं ज्ञाता ॥ १४२ ॥ सरबं हरता। सरबं करता। सरबं प्राणं। सरबं त्राणं ॥ १४३ ॥ सरबं करमं। सरबं धरमं। सरबं जुगता। सरबं मुक्ता ॥ १४४ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ त्व प्रसादि ॥ नमो नरक नासे। सदैवं प्रकासे। अनंगी सरूपे। अभंगी बिभूते ॥१४५॥ प्रमाथं प्रमाथे। सदा सरब साथे। अगाधि

होकर भी) तुम्हे कोई घबराहट नही, तुम नित्य हो, किसी भी लेखे-जोखे से परे हो। हे प्रभु, तुम्हे (इन आँखो से) देखा नही जा सकता है ॥ १३८ ॥ कोई तुम्हारा चित्र नही, कोई विशेष वेश नही, कोई तुम्हे गिरा नही सकता, और तुम इतने विशाल हो कि कोई तुम्हारा अन्त नही जान सकता ॥ १३९ ॥ हे प्रभु, जीवो के लिए तुम तक पहुँचना असभव है, (क्योकि) तुम अगम्य हो। (परन्तु फिर भी) तुम वायु-स्वरूप होकर जीवो का प्राण हो तथा (युगो-युगातरो के भी) पहले से हो ॥ १४० ॥ हे प्रभु, तुम नाशमान पदार्थो की तरह अनित्य नही हो प्रत्युत् सदैव स्थिर हो। तुम जन्म-मरण के चक्र से परे हो और सब जीवो के मूल हो ॥ १४१ ॥ ॥ चरपट छद ॥ तेरी कृपा से ॥ तुम सभी जीवो को मारनेवाले तथा सभी जीवो मे गमन करनेवाले हो। सभी (जीवो) मे तेरी ही प्रसिद्धि है और तुम ही सबके दिल की जाननेवाले हो ॥ १४२ ॥ हे प्रभु, तुम ही सबका जीवन लेनेवाले और सबको पैदा करनेवाले हो। तुम ही सबके जी-जान हो और सबको कष्टो से छुडानेवाले हो ॥ १४३ ॥ (हे प्रभु !) सभी जीवो मे रमण करते हुए तुम स्वय ही सब कर्म करते हो और तुम स्वय ही सब कर्तव्यो (धर्मों) का पालन करनेवाले हो। सभी मे सयुक्त होता हुआ भी हे प्रभु, तू सबसे अलग है ॥ १४४ ॥ ॥ रसावल छद ॥ तेरी कृपा से ॥ हे नरको का नाश करनेवाले प्रभु, तुम्हे मेरा प्रणाम है। तुम सदैव ही प्रकाशस्वरूप हो। तुम अगो से रहित हो और तुम्हारी विभूतियाँ हमेशा विराजमान है ॥ १४५ ॥ तुम अत्याचारो के भी नाशक हो और सबके (दुर्बलों के भी) साथी हो, तेरा स्वरूप अन्तहीन है और तुम बाधाओ-रहित सभी विभूतियो के स्वामी हो ॥ १४६ ॥ हे अगों और

सरूपे। न्रिबाधि बिभूते ॥ १४६ ॥ अनंगी अनामे। त्रिभंगी त्रिकामे[1]। त्रिभंगी सरूपे। सबंगी अनूपे ॥ १४७ ॥ न पोत्रै न पुत्रं। न सत्रै न मित्रं। न तातै न मातै। न जातै न पातै ॥ १४८ ॥ न्रिसाकं[2] सरीक हैं। अमितो अमीक हैं। सदैवं प्रभा हैं। अजै हैं अजा हैं ॥ १४९ ॥ ॥ भगवती छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ कि ज़ाहर ज़हूर हैं। कि हाज़र हज़ूर हैं। हमेसुल सलाम हैं। समसतुल कलाम हैं ॥ १५० ॥ कि साहिब दिमाग़ हैं। कि हुसनुल चराग़ हैं। कि कामल करीम हैं। कि राज़क रहीम हैं ॥ १५१ ॥ कि रोज़ी दहिंद हैं। कि राज़क रहिंद है। करीमुल कमाल हैं। कि हुसनुल जमाल हैं ॥ १५२ ॥ ग़नीमुल खिराज़ हैं। ग़रीबुल निवाज़ हैं। हरीफुल[3] शिकंन[4] हैं। हिरासुल फिकंन[5] हैं ॥ १५३ ॥ कलकं प्रणास हैं। समसतुल निवास हैं। अगंजुल ग़नीम हैं।

नामो से परे प्रभु, तुम ही तीनो भुवनो का नाश करनेवाले और तीनो भुवनो के जीवों की कामनाएँ पूर्ण करनेवाले हो। (हे प्रभु!) तेरा स्वरूप नाश-रहित है, तुम सर्वांग सपूर्ण हो ॥ १४७ ॥ (हे प्रभु!) न तेरा कोई पुत्र है, न पौत्र, न शत्रु, न मित्र। न तेरा कोई पिता है, न माता तथा न कोई तेरी जाति है और न ही तेरा कुल या वश है ॥ १४८ ॥ (जीवो की तरह) न कोई तेरा सबधी है, न ही तेरा कोई पट्टीदार है। तुम अपरिमित रूप से गहन हो। (हे प्रभु!) तुम सदैव ही प्रकाश हो और हमेशा ही अजेय तथा अजन्मा हो ॥ १४९ ॥ ॥ भगवती छद ॥ तेरी कृपा से ॥ हे प्रभु, तुम्हारा तेज प्रत्यक्ष है; तुम सबके साथ विराजमान हो। तुम हमेशा स्थिर रहनेवाले हो और तुम ही सबकी वाणी का विषय हो ॥ १५० ॥ तुम सर्वोच्च बुद्धि के स्वामी हो और (हे प्रभु!) तुम ही सारे सौंदर्य के मूलस्रोत (दीपकस्वरूप) हो। तुम ही सभी जीवो पर कृपा करनेवाले हो तथा तुम ही सबका रोजगार जुटानेवाले हो ॥ १५१ ॥ सबको रोज़ी देनेवाले तुम ही हो और सबके मुक्ति-दाता भी तुम ही हो। तुम्हारी कृपा की सीमा अपार है तथा तुम्हारा सौन्दर्य (जमाल) भी अनुपम है ॥ १५२ ॥ (हे प्रभु!) तुम (दुर्जय) शत्रुओ से भी कर वसूलनेवाले अर्थात् उनका दमन करनेवाले हो और गरीबो को शरण देनेवाले हो। शत्रुओ का नाश करनेवाले (प्रभु!) तुम अभय हो अर्थात् डर तुमसे दूर रहता है ॥ १५३ ॥ हे प्रभु, तुम (अपने भक्तो की) ग्लानि (पूर्ण

---

१ तीन लोको के प्रिय। २ बिना सम्बन्धी के। ३ नास्तिको के। ४ मारनेवाला। ५ भय-रहित।

रज़ाइक रहीम हैं ॥ १५४ ॥ समसतुल ज़ुबा[1] हैं । कि साहिब किरा[2] है । कि नरकं प्रणास हैं । बहिशतुल निवास है ॥ १५५ ॥ कि सरबुल गवंन हैं । हमेसुल रवंन हैं । तमामुल तमीज़ हैं । समसतुल अज़ीज[3] हैं ॥१५६॥ परं परम ईस है । समसतुल अदीस है । अदेसुल अलेख हैं । हमेसुल अभेख हैं ॥ १५७ ॥ ज़िमीनुल ज़मा हैं । अमीकुल इमा हैं । करीमुल कमाल हैं । कि जुरअति जमाल हैं मू०ग्रं०८ ॥ १५८ ॥ कि अचलं प्रकास हैं । कि अमितो सुबास है । कि अजब सरूप है । कि अमितो बिभूत हैं ॥ १५९ ॥ कि अमितो पसा हैं । कि आतम प्रभा हैं । कि अचलं अनंग हैं । कि अमितो अभंग हैं ॥ १६० ॥ ॥ मधुभार छंद ॥ त्व प्रसादि ॥ मुनि मन

स्थिति) का नाश करनेवाले हो तथा सब जीवो मे व्याप्त हो । दुश्मनों के लिए तुम अजेय हो, सबको रोज़ी देनेवाले (हे प्रभु !) तुम सब पर कृपा करनेवाले हो ॥ १५४ ॥ हे प्रभु, तुम सभी जीवो की ज़बान हो अर्थात् सबके अन्दर तुम ही बोल रहे हो और तुम्हारा प्रताप महान है । तुम नरको (जैसी स्थितियो) का नाश करनेवाले हो तथा तुम्हारा सब जगह होना स्वर्ग के समान सुख देनेवाला है अर्थात् जहाँ तुम हो (तुम्हारा गुणानुवाद हो) वहाँ स्वर्ग है ॥ १५५ ॥ हे प्रभु, तुम सर्वत्र गमन करने मे समर्थ हो और हमेशा रमणीक (आनन्द) हो । तमाम जीवो की पहचान करने (पोषण करने) वाले तुम हो तथा सभी के प्यारे भी तुम ही हो ॥ १५६ ॥ हे प्रभु, जगत के तुम ही परम स्वामी और आदिकाल से सबके ईश्वर हो । तुम किसी भी किस्म के आलेख (चित्र) से परे हो और सब वेशो से भी तुम ऊपर हो ॥ १५७ ॥ हे प्रभु, तुम धरती पर और हर स्थान पर उपस्थित हो और तुम्हारा रहस्य बहुत ही गहन-गभीर है अर्थात् कोई तुम्हारा रहस्य समझ नही सकता । तुम पूर्णकृपालु हो तथा तुम्हारा शौर्य ही तुम्हारा सौदर्य है ॥ १५८ ॥ हे प्रभु, तुम्हारी ज्योति कभी भी बुझनेवाली नही तथा तुम्हारी सुगधि भी अपरिमित है अर्थात् तुम्हारे उपकार भी अनन्त है । तुम्हारा स्वरूप आश्चर्यमय है और तुम्हारी विभूतियों की कोई गिनती नही की जा सकती ॥ १५९ ॥ तुम अनन्त जगत के अनन्त प्रसार हो तथा स्वय के प्रकाश से स्वयं प्रकाशित हो । तुम स्थिर हो और अशरीर हो । हे प्रभु, तुम अनन्त हो और अविनाशी हो ॥ १६० ॥ ॥ मधुभार छद ॥ तेरी कृपा से ॥ हे प्रभु, तपस्वियों

१ जबान (वाणी) । २ महाप्रतापी । ३ प्रिय ।

प्रनाम। गुनि गन मुदाम[1]। अरि बर[2] अगंज। हरि नर प्रभंज ॥ १६१ ॥ अन गन प्रनाम। मुनि मन सलाम। हर नर अखंड। बर नर अमंड ॥ १६२ ॥ अनुभव अनास। मुनि मन प्रकास। गुन गन प्रनाम। जल थल मुदाम ॥१६३॥ अनछिज्ज अंग। आसन अभंग। उपमा अपार। गति मिति उदार ॥ १६४ ॥ जल थल अमंड[3]। दिस विस अभंड। जल थल महंत। दिस विस बिअंत ॥ १६५ ॥ अनुभव अनास। ध्रित धर धुरास। आजान बाहु। एकै सदाहु ॥ १६६ ॥ ओअंकारि आदि। कथनी अनादि। खल खंड खयाल। गुर बर अकाल ॥ १६७ ॥ घर घर प्रनाम।

का मन-ही-मन किया हुआ प्रणाम भी तुम ही हो; तुम सदैव (सभी) गुणो के स्वामी हो। भयकर शत्रुओ के लिए भी तुम अजेय हो तथा सभी मनुष्यो के स्वामी और सहार करनेवाले भी तुम ही हो ॥ १६१ ॥ असख्य जीव तुम्हे प्रणाम करते है, मुनि लोग तुम्हे मन-ही-मन नमस्कार करते है। इस अखिल विश्व मे हे हरि, तुम महानतम हो तथा हे नर-श्रेष्ठ, तुम्हारे सौदर्य को किसी सुन्दरता की आवश्यकता नही ॥ १६२ ॥ हे प्रभु, तुम स्वयं ज्ञानस्वरूप हो और मुनियो के मन का प्रकाश भी तुम ही हो। हे सर्वगुण प्रभु, तुम्हे मेरा प्रणाम है। तुम ही जल-स्थल मे सदैव विराजमान हो ॥ १६३ ॥ तुम्हारा स्वरूप कभी पुराना होनेवाला नही और तुम्हारा आसन भी अचल है। तुम इतने अपरपार हो कि किसी से तुम्हारी तुलना नही की जा सकती, परन्तु तुम फिर भी इतने विनम्र हो कि तुम्हारी क्रियाएँ और मानदण्ड अत्यन्त उदार हैं ॥ १६४ ॥ हे प्रभु, विना किसी प्रकार के विशेष आडंबर के, तुम जल, स्थल (सब जगह) विराजमान हो; हे अयोनि प्रभु, तुम सभी दिशाओ में उपस्थित हो। जल-स्थल के स्वामी प्रभु, हर दिशा में तुम व्याप्त हो, तुम्हारा अन्त नही पाया जा सकता ॥ १६५ ॥ हे अविनाशी प्रभु, तुम स्वय ज्ञानस्वरूप हो और इस धरती का आधार हो। हे आजानवाहु, सभी साधन तेरे वश मे है और तुम सदैव एक ही एक हो ॥ १६६ ॥ हे ओंकार (सभी स्थानों मे सम रूप से व्याप्त) प्रभु, तुम सृष्टि का आदि मूल हो, तुम्हारा वर्णन कथन से परे है। हे प्रभु, तुम विचार आते ही सृष्टि को खंड-खड कर सकते हो, परन्तु तुम सवसे वड़े और कालातीत हो ॥ १६७ ॥ (हे परमात्मा !) घर-घर मे जीव तुझे प्रणाम करते हैं और प्रत्येक जीव के चित्त मे तेरे चरणो और नाम का निवास

---

१ सदैव (नित्य)। २ बड़े। ३ अत्यन्त शोभावाला।

चित चरन नाम। अनछिज्ज गात। आजिज़ न बात ॥१६८॥ अनझ्झ गात। अनरंज बात। अनटुट भंडार। अनठट अपार ॥ १६९ ॥ आडीठ धरम। अति ढीठ करम। अणब्रण अनंत। दाता महंत ॥ १७० ॥ ॥ हरि बोलमना छंद ॥ त्व प्रसादि ॥ करुणालय हैं। अरि घालय हैं। खल खंडन है। महि मंडन हैं ॥ १७१ ॥ जगतेस्वर है। परमेस्वर हैं। कलि कारन हैं। सरब उबारन है ॥ १७२ ॥ ध्रित धारन है। जग कारन हैं। मन मानय है। जग जानय है ॥ १७३ ॥ सरबं भर हैं। सरबं कर है। सरब पासिय हैं। सरब नासिय है ॥ १७४ ॥ करुणा कर हैं। बिस्वंभर हैं। सरबेस्वर हैं। जगतेस्वर हैं ॥ १७५ ॥ ब्रहमंडस हैं। खल खंडस हैं। पर ते पर है। करुणा कर हैं ॥ १७६ ॥

है। हे प्रभु, तेरा शरीर कभी नष्ट होनेवाला नही और किसी भी कार्य के लिए तू किसी का मोहताज नही ॥ १६८ ॥ हे प्रभु, तुम सब झझटो से परे हो तथा किसी भी बात पर क्रोधित होनेवाले नही हो। तुम्हारे भडार अक्षय है और तुम्हारी अनन्तता को (मूर्तियो के माध्यम से मदिरो आदि में) स्थापित नही किया जा सकता ॥ १६९ ॥ हे प्रभु ! तुम्हारी कर्तव्यपरायणता अनन्य है तथा तुम्हारे साहसिक कार्य भी कृपा से पूर्ण है अर्थात् जगत-प्रपच के जटिल कामो को भी तू प्रसन्नतापूर्वक कर रहा है। हे प्रभु, तुम्हारे ऊपर कोई चोट नही कर सकता, तुम अनन्त हो, दानी हो तथा महान् हो ॥ १७० ॥ ॥ हरिबोलमना छद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ हे करुणा के घर, शत्रुओ का दमन करनेवाले, दुष्टो को नष्ट करनेवाले प्रभु, तुम ही सम्पूर्ण धरती को (रग-बिरगे वातावरण को उपस्थित कर) आकर्षक बनानेवाले हो ॥ १७१ ॥ हे प्रभु, तुम जगत के स्वामी हो, परम ईश्वर हो, सभी द्वन्द्वो के मूल कारण हो तथा सबको बचानेवाले भी तुम ही हो ॥ १७२ ॥ हे प्रभु, तुम धरती के आश्रय हो, जगत के कारण हो, जगत के जीव तुम्हे ही मन मे मानते हैं और ससार मे तुम्हे ही जानने का प्रयत्न सदैव चलता रहता है ॥ १७३ ॥ हे प्रभु, तुम सबके पोषक एव कर्ता हो। सभी जीवो के निकट तुम ही हो और सबका सहार करनेवाले भी तुम ही हो ॥ १७४ ॥ तुम करुणा करनेवाले, विश्व का भरण-पोषण करनेवाले हो। हे प्रभु, तुम सर्वेश्वर हो और जगत के स्वामी हो ॥ १७५ ॥ सम्पूर्ण ब्रह्माड के स्वामी तुम हो, दुष्टो को खड-खड करनेवाले तुम हो। परा (विद्या) से भी परे हे प्रभु, तुम ही करुणा करनेवाले हो ॥ १७६ ॥ हे प्रभु, तुम मंत्रो की

अजपा जप हैं। अथपा थप हैं। अक्रिता क्रित हैं। अम्रिता म्रित हैं ॥ १७७ ॥ अम्रिता म्रित हैं। करुणा क्रित हैं। अक्रिता क्रित हैं। धरणी ध्रित हैं ॥ १७८ ॥ अमितेस्वर हैं। परमेस्वर हैं। अक्रिता क्रित हैं। अम्रिता म्रित हैं ॥ १७९ ॥ अजबा क्रित हैं। अम्रिता म्रित हैं। पू०ग्रं०८ नर नाइक हैं। खल घाइक हैं ॥१८०॥ बिस्वंभर हैं। करुणालय हैं। न्रिप नाइक हैं। स्रब पाइक हैं ॥ १८१ ॥ भव भंजन हैं। अरि गंजन हैं। रिपु तापन हैं। जपु जापन हैं ॥ १८२ ॥ अकलं क्रित हैं। सरबा क्रित हैं। करता कर हैं। हरता हर हैं ॥ १८३ ॥ परमातम है। सरबातम हैं। आतम बस हैं। जस के जस हैं ॥ १८४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ नमो सूरज सूरजे नमो चद्र चंद्रे। नमो राज राजे नमो इंद्र इंद्रे। नमो अंधकारे नमो ते तेजेज। नमो ब्रिद ब्रिदे नमो बीज

पहुँच से परे हो और न ही तुम्हे (देवताओ की मूर्तियो की भाँति) स्थापित किया जा सकता है, (क्योकि) तेरी मूर्ति बनायी नही जा सकती। तुम सदैव अमर हो ॥ १७७ ॥ हे अमर प्रभु, तुम दया की मूर्ति हो। तुम्हारी तस्वीर नही बनायी जा सकती; तुम धरती के आधार हो ॥ १७८ ॥ हे प्रभु, तुम्हारी सीमा अपरिमित है, तुम सबसे बड़े स्वामी हो। तुम्हारी प्रतिमूर्ति नही बनायी जा सकती। तुम अमर हो ॥ १७९ ॥ हे प्रभु, तेरा आश्चर्यजनक स्वरूप है; तुम अमर हो। तुम मनुष्यो को मार्गदर्शन देनेवाले हो तथा दुष्टो का दमन करनेवाले हो ॥ १८० ॥ हे प्रभु, तुम सारे जगत के पोषणकर्ता हो, करुणा के घर हो। तुम ही राजाओ के भी नायक हो तथा सबके रक्षक हो ॥ १८१ ॥ हे प्रभु, तुम आवागमन के चक्र को नष्ट करनेवाले हो, दुश्मनो को जीतनेवाले हो। शत्रुओ मे हलचल मचानेवाले तुम ही हो और अपना स्मरण करवानेवाले भी तुम ही हो ॥ १८२ ॥ हे प्रभु, तेरा स्वरूप कलक-रहित एव सम्पूर्ण है। (ब्रह्मा आदि) जिसे संसार का कर्ता कहा जाता है उसे बनानेवाले भी तुम ही हो और (शिव आदि) सहारकों को समाहित करनेवाले भी तुम ही हो ॥ १८३ ॥ हे प्रभु, तुम सर्वोच्च आत्मा हो, सर्वजीवो के प्राण हो। तुम (केवल) अपने ही वश मे हो और जिस प्रकार के तुम हो वैसे तुम स्वय ही हो ॥ १८४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ हे सूर्य को भी तेज देनेवाले सूर्य, चद्रमा को शीतलता प्रदान करने वाले, राजाओ के राजा, इन्द्रो के इंद्र प्रभु, तुमको नमस्कार है। हे प्रभु, तुम्हे प्रणाम है, क्योकि अंधकार और तेज तुम ही हो; तुम ही जीवों का

बीजे ॥ १८५ ॥ नमो राजसं तामसं शांत रूपे । नमो परम तत्तं अतत्तं सरूपे । नमो जोग जोगे नमो ज्ञान ज्ञाने । नमो मंत्र मंत्रे नमो ध्यान ध्याने ॥ १८६ ॥ नमो जुद्ध जुद्धे नमो ज्ञान ज्ञाने । नमो भोज भोजे नमो पान पाने । नमो कलह करता नमो शांत रूपे । नमो इंद्र इंद्रे अनादं बिभूते ॥ १८७ ॥ कलंकार रूपे अलंकार अलंके । नमो आस आसे नमो बांक बंके[1] । अभंगी सरूपे अनगी अनामे । त्रिभंगी त्रिकाले अनंगी अकामे ॥ १८८ ॥ ॥ एक अछरी छंद ॥ अजै । अलै । अभै । अबै ॥ १८९ ॥ अभू । अजू । अनास । अकास ॥ १९० ॥ अगंज । अभंज । अलक्ख । अभक्ख ॥१९१॥ अकाल । दिआल । अलेख । अभेख ॥१९२॥ अनाम । अकाम । अगाह । अढाह ॥ १९३ ॥ अनाथे ।

समूह हो और तुम ही जगत का अदृश्य सूक्ष्म बीज भी तुम ही हो ॥ १८५ ॥ हे प्रभु, तुझे नमस्कार है । (जगत-रचना के गुण) तमस्, रजस्, सत्त्व सब तुझसे ही उद्भूत है (क्योकि प्रकृति तेरी ही रचना है) । तुम परम आत्मा हो और तुम्हारा स्वरूप इन गुणो से नही बना है । तुझे प्रणाम है । हे प्रभु, तुम ही सर्वोच्च योग, ज्ञान, महामन्त्र एव समाधि हो अर्थात् तुम्हारा 'नाम' ही हमारे लिए कठिन तपस्या, ज्ञान, मन्त्र एव समाधि है ॥ १८६ ॥ हे युद्धो के योद्धा, ज्ञान के ज्ञानी, भोज्य पदार्थो के प्राण, सब कुछ अपने ही अधीन रखनेवाले प्रभु, तुम्हे प्रणाम है । ससार के द्वन्द्वो के कारण तथा शाति के पुज, देवताओ के भी देवता तथा अनादि काल से तेजस्वी प्रभु, तुम्हे प्रणाम है ॥१८७॥ हे सर्वदोषों से परे, सौन्दर्य को भी सुन्दरता प्रदान करनेवाले, सर्व जीवो की आशाओ के केन्द्र अनुपम प्रभु, तुम्हे नमस्कार है । हे अभजनशील स्वरूपवाले निराकार अनाम प्रभु, तुम ही तीनो भुवनो के सहारक, त्रिकाल (भूत, वर्तमान, भविष्य) मे अवस्थित, निराकार हो और तुम ही सर्वकामनाओ से परे हो ॥ १८८ ॥ ॥ एक अछरी छद ॥ हे प्रभु, तुम अज्ञेय, अविनाशी, अभय और कालातीत हो ॥ १८९ ॥ हे प्रभु, तुम अजन्मा, अचल, अविनाशी और (सबकी छत्रछाया देनेवाले) आकाश हो ॥ १९० ॥ तुम अजेय, अभजनशील, अदृश्य एव अपने भरण-पोषण की चिन्ता से मुक्त हो ॥ १९१ ॥ हे प्रभु, तुम कालातीत दयालु, गणनाओ से परे और किसी भी वेश से न संबध रखनेवाले हो ॥ १९२ ॥ हे प्रभु, तेरा कोई (एक) नाम नही, तुम कामनाओं से परे, अजेय एव अपरम्पार हो ॥ १९३ ॥ हे प्रभु, तुम्हारा

---

[1] सुहावने ।

प्रमाथे। अजोनी। अमोनी ।। १९४ ।। न रागे। न रंगे। न रूपे। न रेखे ।। १९५ ।। अकरमं। अभरमं। अगंजे। अलेखे ।। १९६ ।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। नमसतुल प्रणामे समसतुल प्रनासे। अगंजुल अनामे समसतुल निवासे। न्रिकामं बिभूते समसतुल सरूपे। कुकरमं प्रणासी सुधरमं बिभूते ।।१९७।। सदा सच्चिदानंद सत्रं प्रणासी। करीमुल कुनिंदा समसतुल निवासी। अजाइब बिभूते गज़ाइब ग़नीमे। हरीअं करीअं करीमुल रहीमे ।। १९८ ।। चत्र चक्र वरती चत्र चक्र भुगते। सुयंभव सुभं सरबदा सरब जुगते। दुकालं प्रणासी दइआलं सरूपे। सदा अंग संगे अभंगं बिभूते ।। १९९ ।। मू०ग्रं०१०

स्वामी कोई नही है, तुम सबको मथ (कर रख दे) सकनेवाले हो। तुम अजन्मा हो तथा (अनत) मौनस्वरूप हो ।। १९४ ।। हे प्रभु, तुम मोह और रंगभेद से दूर, जीवो की भाँति स्वरूप न रखनेवाले सर्व चिह्नो (प्रतीको) से परे हो ।। १९५ ।। तुम कर्मकांडो से और अधविश्वासों से नही पाए जा सकते। तुम अजेय हो और तुम्हारा चित्र या मूर्ति आदि नही बन सकती ।। १९६ ।। ।। भुजंग प्रयात छद ।। उस वंदनीय प्रभु को मेरा प्रणाम है जो सभी का सहारक है, अजेय है, नामो से परे है तथा सर्वव्यापक है। निष्काम रूपी विभूति से सुशोभित एव सारे जीवो के परम स्वरूप प्रभु को मेरा प्रणाम है। वह कुकर्मो को नाश करनेवाला तथा स्वधर्म (कर्तव्य) को निभानेवाला ऐश्वर्ययुक्त प्रभु है ।। १९७ ।। हे प्रभु, तुम्हे प्रणाम है; तुम सत् (सदा बने रहनेवाले), चित् (चैतन्य, सर्वज्ञ, सब कुछ जाननेवाले) तथा आनन्दस्वरूप हो। तुम दुष्टो का दमन करनेवाले हो, सब पर कृपा करनेवाले, सबको पैदा करनेवाले तथा सभी जीवों मे निवास करनेवाले हो। हे प्रभु, तुम आश्चर्यजनक विभूतियो के स्वामी तथा (मानवता के) शत्रुओ पर ग़जब (कहर) ढानेवाले हो। तुम स्वयं ही सहारक, सृजनकर्ता एवं कृपा करनेवाले दयालु हो ।। १९८ ।। हे प्रभु, तुम्हे प्रणाम है। तुम चारो दिशाओ अर्थात् सारे विश्व मे मौजूद हो, चारों ओर तुम्हारा हुक्म ही चल रहा है। तुम स्वयं अपने ही आप द्वारा उद्भूत हो, सौंदर्य हो और सर्वदा सभी जीवो में सयुक्त हो। हे प्रभु, जीवो के काल (आवागमन) का कष्ट दूर करनेवाले भी तुम ही हो और तुम ही साक्षात् दया के स्वरूप हो। तुम सदैव सभी जीवो के अंग-संग हो और तुम्हारी विभूतियाँ (निधियाँ) कभी भी क्षय (समाप्त) होनेवाली नही ।। १९९ ।।

ੴ सतिगुर प्रसादि ॥

उतार खासे दसखत का पातिशाही १० ॥

अकाल पुरख की रच्छा हमनै। सरब लोह दी रच्छिआ हमनै। सरब काल जी दी रच्छिआ हमनै। सरब लोह जी दी सदा रच्छिआ हमनै। आगै लिखारी के दसखत ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ चउपई ॥ प्रणवो आदि एकंकारा। जल थल महीअल कीओ पसारा। आदि पुरख अबिगत अबिनाशी। लोक चत्र दस जोति प्रकाशी ॥१॥ हसत कीट के बीच समाना। राव रंक जिह इकसर जाना। अद्वै अलख पुरख अबिगामी। सभ घट घट के अंतरजामी ॥२॥ अलख रूप अच्छै अन भेखा। राग रंग जिह रूप न रेखा। बरन चिहन सभहूँ ते न्यारा। आदि पुरख अद्वै अबिकारा ॥३॥ बरन चिहन जिह जात न पाता। सत्र मित्र जिह तात न

पातशाही १० (गुरू गोबिंद सिंह) के हस्ताक्षरित पक्तियो की प्रतिलिपि ॥ कालातीत पुरुष (परमात्मा) हमारा रक्षक है। सर्वलोह (अभेद्य) हमारा रक्षक है। सबका काल (परमात्मा) हमारा रक्षक है। सर्वलोह (अभेद्य) परमात्मा हमारा सदैव रक्षक है। आगे लेखक (गुरू गोबिंद सिंह) के हस्ताक्षर ॥ तेरी कृपा (से लिखता हूँ) ॥ ॥ चौपाई ॥ मै उस आदि (पुरुष) ओकार को प्रणाम करता हूँ, जिसने जल, स्थल एव आकाश (अर्थात् हर स्थान) मे अपने-आपको व्याप्त किया हुआ है। वह आदिपुरुष, अव्यक्त एव अविनाशी है और उसने चौदह भुवनो को अपनी ज्योति से प्रकाशमान कर रखा है ॥ १ ॥ वह हाथी से लेकर छोटे कीडे तक मे (समान रूप से) समाया हुआ है तथा राजा और भिखारी दोनो उसके लिए एक समान हैं। वह (प्रभु) अद्वितीय है, दिखाई न देनेवाला है तथा प्रत्येक जीव के हृदय तक पहुँच रखनेवाला है ॥ २ ॥ उस (परमात्मा) का रूप वर्णन से परे है, वह अक्षय है, वेश से परे है, मोह से दूर है तथा उसका कोई विशेष चक्र-चिह्न नही वताया जा सकता। वह (परमात्मा) वर्ण, चिह्न आदि से न्यारा, सारी सृष्टि का कर्ता, सबमे मौजूद, अद्वैत एव विकारो से रहित है ॥ ३ ॥ जिस परमात्मा का कोई वर्ण, चिह्न, जाति, शत्रु, मित्र, पिता, माता आदि नही है, वह सबसे दूर भी है और (आत्म-

माता । सभ ते दूरि सभन ते नेरा । जल थल महीअल जाहि बसेरा ।। ४ ।। अनहद रूप अनाहद बानी । चरन शरन जिह बसत भवानी । ब्रहमा बिशन अंतु नही पायो । नेति नेति मुख चार बतायो ।। ५ ।। कोटि इंद्र उपइंद्र बनाए । ब्रहमा रुद्र उपाइ खपाए । लोक चत्र दस खेल रचायो । बहुर आप ही बीच मिलायो ।। ६ ।। दानव देव फनिंद अपारा । गंध्रब जच्छ रचै सुभ चारा । भूत भविक्ख भवान कहानी । घट घट के पट पट की जानी ।। ७ ।। तात मात जिह जात न पाता । एक रंग काहू नहि राता । सरब जोत के बीच समाना । सभहूँ सरब ठौर पहिचाना ।। ८ ।। काल रहित अनकाल सरूपा । अलख पुरख अबिगत अवधूता । जाति पाति जिह चिहन न बरना । अबिगत देव अछै अनभरमा ।। ९ ।। सभ को काल सभन को करता । रोग सोग दोखन को हरता ।

स्वरूप मे) सबसे पास भी है । उसका निवास जल, थल, आकाश —सभी स्थानों मे है ।। ४ ।। उसका स्वरूप सीमाओ से परे है और उसकी वाणी किसी आधार पर आधारित नही है । देवी भवानी भी उस परमात्मा के चरणो की शरण मे है । ब्रह्मा और विष्णु उसकी सीमा को नही जान सके और अपने चारो मुखो से ब्रह्मा ने ही कहा है कि उस (परमात्मा) के समान अन्य कोई दूसरा नही है ।। ५ ।। उसी (अकालपुरुष) ने करोड़ों इद्र और उपइद्रो का सृजन किया; उसी ने ब्रह्मा तथा रुद्र आदि को बनाया तथा उनका सहार किया । उस (प्रभु) ने ही चौदह लोको का प्रपच बनाया और (जब चाहा) इस तमाशे को अपने मे लीन कर लिया ।। ६ ।। उसी (परमात्मा) ने अनेको दानव, देवता और शेषनाग, गंधर्व, यक्ष आदि का सृजन किया है । भूतकाल, वर्तमान एव भविष्य की कहानियो का आधार भी वही (प्रभु) है जो प्रत्येक हृदय की तह की प्रत्येक बात बात जानता है ।। ७ ।। उसकी कोई माँ, पिता, जाति आदि नही है । न ही वह किसी जाति-विशेष अथवा वश-विशेष से विशिष्ट रूप से संबधित है । वह (प्रभु) सभी मे मौजूद है तथा मैंने उसे सबमे और सभी स्थानो मे बसते हुए अनुभव किया है ।। ८ ।। वह प्रभु मृत्यु से मुक्त है और उसका अस्तित्व समय के प्रभाव मे नही आता । वह अव्यक्त, अदृश्य पुरुष माया के प्रभावो से भी परे है । उसका कोई जाति, चिह्न या वर्ण नही है तथा वह अव्यक्त देव है अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओ के समान नही है । वह सब प्रकार से अक्षय तथा भ्रमविहीन है ।। ९ ।। वह (प्रभु) सबका काल है तथा सभी का कर्ता

एक चित्त जिह इक छिन ध्यायो। काल फास के बीच न आयो ॥१०॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ कबित ॥ कतहूँ सुचेत हुइकै चेतना को चारु किओ कतहूँ अचिंत हुइकै सोवत अचेत हो। मू०ग्रं०११ कतहूँ भिखारी हुइकै माँगत फिरत भीख कहूँ महादानि हुइकै माँगिओ धन देत हो। कहूँ महाराजन को दीजत अनंत दान कहूँ महाराजन ते छीन छित लेत हो। कहूँ बेद रीत कहूँ ता सिउ बिपरीत कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुर गुन समेत हो ॥ १ ॥ ११ ॥ कहूँ जच्छ गंध्रब उरग कहूँ बिद्याधर कहूँ भए किंनर पिसाच कहूँ प्रेत हो। कहूँ हुइकै हिंदूआ गाइत्री को गुपत जप्यो कहूँ हुइकै तुरका पुकारे बाँग देत हो। कहूँ कोक काब हुइ पुरान को पड़त मत कतहूँ कुरान को निदान जान लेत हो। कहूँ बेद रीत कहूँ ता सिउ बिपरीत कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुर गुन समेत हो ॥ २ ॥ १२ ॥ कहूँ देवतान के दिवान मै बिराजमान कहूँ दानवान को गुमान मत देत हो। कहूँ इंद्र

है। रोग, शोक एव दुःख को दूर करनेवाला है। जिसने उस प्रभु का स्मरण दत्तचित (एकाग्र) होकर एक क्षण के लिए भी किया है, वह काल के चक्र (आवागमन) मे से मुक्त हो गया है ॥ १० ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ कवित्त ॥ हे प्रभु, कही तुम पूर्ण चैतन्यस्वरूप होकर चेतना के भी सौदर्य के रूप मे विराजमान हो, परन्तु कही पर तुम ही निश्चित होकर (दुनिया के प्रपचो से बेखबर) सोनेवाले हो। कही तुम भिखारी बनकर भिक्षा माँगते हो और कही स्वय ही महादानियो के रूप मे माँगा हुआ दान देते हो। कही महाराजाओ को भी अनन्त निधियाँ दानस्वरूप देते हो और कही महाराजाओ को ही राज्य विहीन कर देते हो। (हे प्रभु, तेरी लीला आश्चर्यजनक है।) कही तुम वैदिक कर्मकाडी के रूप मे, कही बिलकुल उस से उलटा, कही तुम तीनो गुणो (रज-तम-सत्त्व) से परे और कही देवगुणो से सुशोभित होते हो ॥ १ ॥ ११ ॥ हे प्रभु, यक्ष, गधर्व, शेषनाग, ज्ञानवान, किन्नर, पिशाच, प्रेत आदि तुम ही हो। कही तुम हिन्दू होकर गायत्री का गुप्त जाप करनेवाले हो और कही मुसलमान के रूप मे (प्रातः) 'अज़ान' देनेवाले हो। कही कवि-रूप मे पुराणो के मत को पढनेवाले तथा कही कुर्आन के तत्त्व को समझनेवाले तुम ही हो। कही तुम वैदिक कर्मकांडी के रूप मे, कही बिलकुल उससे विपरीत, कही तुम तीनो गुणो से परे और कही देवगुणो से शोभायमान होते हो ॥ २ ॥ १२ ॥ (हे प्रभु!) तुम कही देवताओ के दरबार की शोभा हो तो कही दानवो को अहकार-बुद्धि

राजा को मिलत इंद्र पदवी सो कहूँ इंद्र पदवी छपाइ छीन लेत हो। कतहूँ बिचार अबिचार को बिचारत हो कहूँ निज नार पर नार के निकेत[1] हो। कहूँ बेद रीत कहूँ ता सिउ बिपरीत कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुर गुन समेत हो ॥ ३ ॥ १३ ॥ कहूँ शस्त्रधारी कहूँ बिद्या के बिचारी कहूँ मारत अहारी कहूँ नार के नकेत हो। कहूँ देव बानी कहूँ सारदा भवानी कहूँ मंगला म्रिड़ानी[2] कहूँ स्याम कहूँ सेत हो। कहूँ धरम धामी कहूँ सरब ठउर गामी कहूँ जती कहूँ कामी कहूँ देत कहूँ लेत हो। कहूँ बेद रीत कहूँ ता सिउ बिपरीत कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुर गुन समेत हो ॥ ४ ॥ १४ ॥ कहूँ जटाधारी कहूँ कंठी धरे ब्रहमचारी कहूँ जोग साधी कहूँ साधना करत हो। कहूँ कान फारे कहूँ डंडी हुइ पधारे कहूँ फूक फूक पावन को प्रिथीपै धरत हो। कतहूँ सिपाही हुइकै साधत सिलाहन[3] कौ कहूँ छत्री हुइकै अरि मारत मरत हो। कहूँ भूम भार कौ उतारत हो महाराज कहूँ

देनेवाले हो। कही तुम इंद्र को इद्रत्व प्रदान करनेवाले और कही उसी इंद्र का पद छीनकर उसे छिपाकर इंद्र को भटकानेवाले हो। कही सुविचारो और कुविचारो को धारण करनेवाले, कही अपनी स्त्री मे रत तथा कही पर-नारी के घर की शोभा भी तुम ही हो। कही तुम वैदिक कर्मकांडी के रूप मे, कही बिलकुल उससे विपरीत, कही तुम तीनों गुणो से परे और कही देवगुणो से शोभायमान होते हो ॥ ३ ॥ १३ ॥ हे प्रभु, तुम कही पर तो योद्धा, कही विद्वान्, कही आहार की खोज मे निकले शिकारी तथा कही स्त्री को भोगनेवाले हो। हे प्रभु, तुम कही देववाणी के रूप मे, कही सरस्वती, दुर्गा, मुर्दो को रौदनेवाली चडी के रूप मे तथा कही श्याम वर्ण के और कही सफ़ेद रग वाले हो। कही तुम धर्म के धाम हो, सर्वव्यापक हो, यति हो, कामी हो और कही दान देनेवाले तथा कही दान लेनेवाले हो। कही (हे प्रभु !) तुम वैदिक कर्मकांडी के रूप मे, कही बिलकुल उससे विपरीत, कही तुम तीनों गुणो से परे और कही तुम देवगुणो से शोभायमान होते हो ॥ ४ ॥ १४ ॥ कही तुम जटाजूट धारण करने वाले ऋषि, कही माला पहननेवाले ब्रह्मचारी, कही योग-साधना मे लीन योगी हो। कभी तुम (हे प्रभु !) कनफटा योगी बनते हो कही दडी साधु के रूप मे पदार्पण करते हो तथा कही (जैन साधु के रूप मे) फूंक-फूंक कर पैर धरती पर रखते हो। कही तुम सिपाही बनकर शस्त्रो की

१ घर। २ दुर्गा देवी। ३ शस्त्र।

सब भूतन[1] की भावना भरत हो ॥ ५ ॥ १५ ॥ कहूँ गीत नाद के निदान कौ बतावत हो कहूँ न्रितकारी[2] छित्रकारी के निधान हो। कतहूँ पयूख हुइकै पीवत पिवावत हो कतहूँ मयूख ऊख कहूँ मद पान हो। कहूँ महा सूर हुइकै मारत मवारान[3] कौ कहूँ महादेव देवतान के समान हो। कहूँ महादीन कहूँ द्रबके अधीन कहूँ बिद्या मै प्रबीन कहूँ भूंम कहूँ भान हो ॥ ६ ॥ १६ ॥ मू०ग्रं०१२ कहूँ अकलंक कहूँ मारत मयंक[4] कहूँ पूरन प्रजंक[5] कहूँ सुद्धता की सार हो। कहूँ देव धरम कहूँ साधना के हरम कहूँ कुतसत कुकरम[6] कहूँ धरम के प्रकार हो। कहूँ पउनहारी कहूँ बिद्या के बिचारी कहूँ जोगि जती ब्रहमचारी नर कहूँ नार हो। कहूँ छत्रधारी कहूँ छाला धरे छैल भारी कहूँ छक वारी कहूँ छल के प्रकार

साधना करते हो और कही क्षत्री-रूप मे मरते-मारते हो। हे महाराजन्, कही तुम ही पृथ्वी को अत्याचारियो के भार से मुक्त करते हो और कही ससार के जीवो की कामनाओ को पूरा करते हो ॥ ५ ॥ १५ ॥ हे प्रभु, तुम ही कही पर सुर और ताल के लक्षणो की व्याख्या करनेवाले हो और तुम ही नृत्यकला और चित्रकला के भडार हो। कही पर तुम ही गाय और बछड़ा बनकर दूध पी और पिला रहे हो (सृष्टि पैदा कर उसका पोषण करनेवाले हो), कही तुम ही (सूर्य की) किरणो के पुज ही अर्थात् सबको जीवन देनेवाले हो तथा कही-कही तुम ही मद मे मस्त दिखाई पडते हो। कही तुम ही शूरवीर बनकर शत्रुओ का नाश करनेवाले हो और कही तुम ही देवताओ के भी देवतुल्य हो। कही तुम ही अति विनम्र, अत्यत अहंकारी तथा विद्या मे प्रवीण पडित हो। हे प्रभु, तुम ही कही भूमि हो और कही भूमि के मूल स्रोत सूर्य हो ॥ ६ ॥ १६ ॥ तुम कही पर निष्कलंक हो, कही चद्रमा को मारनेवाले (गौतम ऋषि) हो, कही पूर्ण रूप से शय्या-सुख मे लिप्त हो तो कही तुम ही शुद्धता के सार तत्त्व हो। तुम ही कही पर देवताओ का धर्म (शुभकर्म) हो और कही पर तुम ही (आत्मा को ऊँचाइयो पर ले जानेवाली) साधना का घर हो। ससार के कुत्सित कर्म भी तुम ही हो तथा धर्म के विभिन्न रूप भी, (हे प्रभु!) तुम ही हो। तुम ही कही पर पवन का आहार करनेवाले, विद्या के विचारक, योगी, यती, ब्रह्मचारी तथा नर एव नारी हो। कही तुम छत्रधारी राजा हो और कही तुम ही मृगछाला धारण करनेवाले गुरू हो। कही तुम ही

---

१ जीवो की। २ नाच। ३ वैरी। ४ चद्रमा। ५ स्त्री-समेत सेज, पर्यंक। ६ घृणित कर्म।

हो ।। ७ ।। १७ ।। कहूँ गीत के गवय्या कहूँ बेन के बजय्या कहूँ न्रित्त के नचय्या कहूँ नर को अकार हो । कहूँ बेद बानी कहूँ कोक की कहानी कहूँ राजा कहूँ रानी कहूँ नार के प्रकार हो । कहूँ बेन के बजय्या कहूँ धेन के चरय्या कहूँ लाखन लवय्या कहूँ सुंदर कुमार हो । सुद्धता की सान हो कि संतन के प्रान हो कि दाता महादान हो न्रिदोखी निरंकार हो ।। ८ ।। १८ ।। निरजुर निरूप हो कि सुंदर सरूप हो कि भूपन के भूप हो कि दाता महादान हो । प्रान के बचय्या दूध पूत के दिवय्या रोग सोग के मिटय्या किधौ मानी महा मान हो । बिद्या के बिचार हो कि अद्वै अवतार हो कि सिद्धता की सूरत हो कि सुद्धता की सान हो । जोबन के जाल हो कि काल हूँ के काल हो कि सत्रन के सूल हो कि मित्रन के प्रान हो ।। ९ ।। १९ ।। कहूँ ब्रहम बाद कहूँ बिद्या को बिखाद कहूँ नाद को ननाद कहूँ पूरन

छले जानेवाले हो तथा कही तुम ही विभिन्न छल रूपो के प्रकार हो ।। ७ ।। १७ ।। हे प्रभु, तुम कही गीतो के गायक, कही बाँसुरी बजाने वाले (कृष्ण), कही नर्तक तथा कही नर-रूप मे (शोभायमान) हो । (एक ओर) कही तुम वेदो का गभीर ज्ञान हो तो दूसरी ओर रति-रहस्य को बतानेवाले की कहानी भी तुम ही हो । तुम ही स्वय राजा, रानी तथा नारियो के विभिन्न प्रकार हो । कही बाँसुरी बजानेवाले, गायो को चराने वाले (कृष्ण) और लाखो को आकर्षित करनेवाले सुदर कुमार तुम ही हो । शुद्धता का सौदर्य भी तुम ही हो, सतो के ध्यान का बिदु भी तुम ही हो, महादानियो को देनेवाले दाता भी तुम ही हो और हे निर्वैर प्रभु, तुम ही निराकार हो ।। ८ ।। १८ ।। हे प्रभु, (काल के अनन्त प्रवाह के रूप मे) तुम हमेशा प्रवाहित होनेवाला एक अरूप झरना हो, सुदर स्वरूप वाले हो, राजाओ के राजा हो और महादानियो को भी देनेवाले दाता हो । प्राणो के रक्षक, दूध-पुत्र (सांसारिक सुख) देनेवाले, रोग और शोक का नाश करनेवाले तथा कही पर अभिमानियो का मान तोडनेवाले महामानी भी तुम ही हो । विद्याओ का सार तत्त्व तुम ही हो और अद्वैतस्वरूप तुम ही हो । हे प्रभु, तुम ही सिद्धियो की युक्ति हो तथा तुम ही शुद्धता के सौदर्य हो । यौवन के मोहपाश भी तुम ही हो, काल के भी काल तुम ही हो । शत्रुओ की पीड़ा भी तुम ही हो और मित्रो की मित्रता रूपी प्राण भी तुम ही हो ।। ९ ।। १९ ।। हे प्रभु, तुम कही ब्रह्म-आचरण के समान उच्च हो तथा कही विद्या (दाव-पेचों) के कारण विषाद को उत्पन्न करनेवाले हो ।

भगत हो। कहूँ बेद रीत कहूँ बिद्या को प्रतीत कहूँ नीत अउ अनीत कहूँ ज्वाला सी जगत हो। पूरन प्रताप कहूँ इकांती को जाप कहूँ ताप को अताप कहूँ जोग ते डिगत हो। कहूँ बर देत कहूँ छल सों छिनाइ लेत सरब काल सरब ठौर एक से लगत हो॥ १०॥ २०॥ त्व प्रसादि॥ ॥ स्वये॥ स्रावग[1] सुद्ध समूह सिधान के देखि फिर्यो घर जोग जती के। सूर सुरारदन[2] सुद्ध सुधाइक संत समूह अनेक मती के। सारे ही देस को देखि रह्यो मत कोऊ न देखीअत प्रानपती के। स्री भगवान की भाइ क्रिपा हूँ ते एक रती बिनु एक रती के॥ १॥ २१॥ माते मतंग जरे जर संग अनूप उतग सुरंग सवारे। कोट तुरंग कुरंग से कूदत पउन के गउन कउ जात निवारे। भारी भुजान के भूप भली बिधि न्यावत सीस न जात बिचारे। एते भए तो कहा

कही तुम शब्द की ध्वनि हो तो कही (शब्द मे ध्यान लगानेवाले) पूर्ण भक्त हो। तुम कही कर्मकाड, कही विद्या के प्रेम, कही नीति तथा कही अनीति तथा कही ज्वाला के समान देदीप्यमान होनेवाले प्रतीत होते हो। कही तुम पूर्ण प्रतापी, कही एकात मे जाप करनेवाले, कही कष्टो को भी कष्ट-मुक्त करनेवाले और योग-पद से गिर पडनेवाले (पाखडी) योगी हो। कही तुम वरदान देनेवाले हो, कही देकर छल से छीन लेनेवाले हो। परन्तु, हे प्रभु, फिर सब समय तथा सभी स्थानो मे तुम सदैव एक से ही (अर्थात् अलिप्त) दिखाई देनेवाले हो॥ १०॥ २०॥ तेरी कृपा से॥ ॥ सवैये॥ मैंने पुण्यात्माओ, जैन एव बौद्धभिक्षुओ, पहुँचे हुए योगियो, सिद्धो, ब्रह्मचारियों के आश्रमो को देख लिया है। शूरवीर, दैत्य, अमृत पीनेवाले देवताओं एव अन्य कई मतो के सतों के झुडो को भी मैंने देख-परख लिया है। सभी देशो के मत-मतांतर मैं देख चुका हूँ, परन्तु कोई भी मत यह नही बतलाता कि कैसे उस प्राणपति प्रभु से साक्षात्कार किया जा सकता है। यदि वास्तव रूप मे परमात्मा के प्रति (समर्पण) भावना का उदय होकर उस परमात्मा की कृपा-प्राप्ति नही हो सकी तो (मेरे विचार से) इन सारे मतांतरो का मूल्य एक रत्ती भर भी नही है॥ १॥ २१॥ यदि स्वर्ण-आभूषणो से सजाए हुए सुदर रगो वाले विशालकाय मस्त हाथी हों, हिरणो की तरह कूदनेवाले और पवन-वेग से भी तेज दौड़नेवाले करोड़ो घोड़े हों, बलवान भुजाओ वाले नरेश द्वार पर सिर झुकाकर खड़े रहनेवाले हों; इस प्रकार के प्रतापी सम्राट् लेने पर भी क्या होता है; अंतिम समय मे (तो ऐसे सम्राटो को भी) नगे पैर ही इस (असार) ससार

---

[1] पुण्यात्माओं। [2] दैत्य।

भए भूपति अंत कौ नांगे ही पाइ पधारे ॥२॥२२॥ जीत फिरै सभ देस दिसान को बाजत ढोल म्रिदंग मू०ग्रं०१३ नगारे। गुंजत गूढ़ गजान के सुंदर हंसत ही हय राज हजारे। भूत भविक्ख भवान के भूपति कउन गनै नही जात बिचारे। स्री पति स्री भगवान भजे बिनु अंत कउ अंत के धाम सिधारे॥ ३ ॥ २३ ॥ तीरथ न्हान दइआ दम दान सु संजम नेम अनेक बिसेखै। बेद पुरान कतेब कुरान ज़िमीन ज़मान सबान के पेखै। पउन अहार जती जत धार सबै सु बिचार हजारक देखै। स्री भगवान भजे बिनु भूपति एक रती बिनु एक न लेखै॥ ४ ॥ २४ ॥ सुद्ध सिपाह दुरंत[1] दुबाह सु साजि सनाह दुरजान[2] दलैंगे। भारी गुमान भरे मन मै कर परबत पख हलै न हलैंगे। तोर

से जाना होता है॥ २ ॥ २२ ॥ यदि कई देश-देशांतरो को जीतकर द्वार पर हमेशा विजयश्री को सूचित करनेवाले नगाड़े बजते हो, सुंदर हाथियो के झुड-के-झुड गरजते रहते हो और घुडशालो मे हजारो घोड़े हिनहिनाते रहते हो, तथा इस प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त भूतकाल मे भी असंख्य राजा हो चुके हों, वर्तमान मे भी हो और भविष्य मे भी इतने हों कि अनुमान न लगाया जा सके, तब भी माया के स्वामी प्रभु के स्मरण के बिना ये सब राजा, महाराजा अन्त मे यमपुरी को ही प्रयाण करेंगे (तथा सब ऐश्वर्य यही धरा-का-धरा रह जायगा) ॥ ३ ॥ २३ ॥ यदि कोई तीर्थों के स्नान, जीव-दया, मन को विकारो की तरफ से रोकने के प्रयत्न, दान, पुण्य, मन की एकाग्रता के अन्य साधन अपनाता रहे; वेद-पुराण, कुर्आन आदि धरती के सभी धर्मग्रथों का पठन-पाठन करे; केवल पवन का आहार करे अर्थात् भूखा रहे, ब्रह्मचर्य पूर्ण जीवन व्यतीत करे तथा अन्य कई ऐसे साधनो के बारे मे ही सोचता रहे, तब भी सारी सृष्टि के स्वामी परमात्मा का स्मरण करने के विना, प्रभु के प्रेम से रहित व्यक्ति का कोई भी साधन किसी काम का नही है ॥ ४ ॥ २४ ॥ बहादुर योद्धा जो कि अजेय हो और जिनके तेज को बर्दाश्त न किया जा सके, जो कवच आदि धारण कर युद्धभूमि मे दुर्जनों को पददलित कर उनका नाश कर देनेवाले हो; जिनके मन मे यह भी गर्व हो कि पर्वत चाहे पंख लगाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए विवश हो जायँ पर वे अपने स्थान से नही हिलेगे; जो शत्रुओ को चकनाचूर कर, सामने अड़नेवालो की गर्दन मरोड़कर मस्त हाथियों का भी मद-मर्दन कर सकते हों; ऐसे बहादुर योद्धा भी माया के स्वामी

१ भयानक। २ वैरी, दुष्ट।

अरीन मरोर मवासन भाते मतंगन मान मलैंगे। स्री पति स्री भगवान क्रिपा बिनु त्याग जहानु निदान चलैंगे ॥ ५ ॥ २५ ॥ बीर अपार बडे बरिआर अबिचारहि सार की धार भछय्या। तोरत देस मलिंद मवासन माते गजान के मान मलय्या। गाढ़े गढ़ान के तोड़न हार सु बातन ही चक चार लवय्या। साहिब स्री सभ को सिर नाइक जाचिक अनेक सु एक दिवय्या ॥ ६ ॥ २६ ॥ दानव देव फनिंद[1] निसाचर भूत भविक्ख भवान जपैंगे। जीव जिते जल मै थल मै पल ही पल मै सभ थाप थपैंगे। पुंन प्रतापन बाढत जै धुन पापन के बहु पुंज खपैंगे। साध समूह प्रसंन फिरै जग सत्र सभै अवलोक चपैंगे ॥ ७ ॥ २७ ॥ मानव इंद्र गजिंद्र नराधिप जौन त्रिलोक को राजु करैंगे। कोटि शनान गजादिक दान अनेक सुअंबर साज बरैंगे। ब्रहम महेशर बिशन सचीपति

परमात्मा की कृपा के बिना अत समय खाली हाथ ही ससार से विदा होते है ॥ ५ ॥ २५ ॥ अनत शूरवीर, बलशाली योद्धा जो चिन्तामुक्त होकर शस्त्रो के प्रहारो को सहन करते है, कई देशो को जीतते है, दुर्जेय शत्रुओ को झुका लेते हैं, मस्त हाथियो का मद-मर्दन कर लेते है, दुर्भेद्य किलो को तोड़ देते है और वातो ही वातो मे सारी पृथ्वी को जीतने की क्षमता रखते है, उस प्रभु-पिता के समक्ष भिखारी है, जिन्हे (वल) प्रदान करने वाला माया और जीवो का स्वामी, वह परमात्मा स्वय ही है ॥ ६ ॥ २६ ॥ जो परमात्मा जल और धरती पर अर्थात् सब जीवो को पैदा करने की क्षमता रखता है, उसका जो भी जीव स्मरण करते रहे, कर रहे है अथवा भविष्य मे उसका स्मरण करे चाहे वे दैत्य हो अथवा देवता, शेषनाग नाग हो अथवा भूत-प्रेत, उन सबके भले कार्यों और तेज-वृद्धि की जयकार की ध्वनि बढती ही जाती है और उनके द्वारा किए गए बुरे कर्मों के ढेरो के ढेर नाश हो जाते हैं। परमात्मा का स्मरण करनेवाले मनुष्य जगत मे प्रसन्न-मन विचरण करते है, जबकि विकारी जीव ऐसे लोगो को देखकर तेजहीन होते रहते है ॥ ७ ॥ २७ ॥ जो मनुष्य हाथियो का स्वामी होकर, चक्रवर्ती राजा वनकर सारी सृष्टि पर शासन करते है, करोड़ो तीर्थों पर स्नान कर हाथी आदि दान कर कई स्वयबरो मे विवाह आदि करते है, (इन सवकी तो वात ही छोड़ो) ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा शचीपति इन्द्र आदि भी अन्त मे मौत के वश मे चले जाते है। केवल वही मनुष्य वार-वार जन्म-मरण के चक्र मे नही पड़ता, जो परमात्मा की शरण

1 शेषनाग।

अंत फसे जम फास परैगे । जे नर स्त्री पति के प्रस हैं पग ते नर फेर न देह धरैगे ॥ ८ ॥ २८ ॥ कहा भयो दोऊ लोचन मूँदकै बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो । न्हात फिर्‌यो लीए सात समुंद्रन लोक गयो परलोक गवायो । बासु किओ बिखिआन सो बैठ कै ऐसे ही ऐस सु बैस बितायो । साचु कहौ सुन लेहु सभै जिन प्रेमु किओ तिन ही प्रभु पायो ॥ ९ ॥ २९ ॥ काहू लै पाहन पूज धरो सिर काहू लै लिंगु गरे[1] लटकायो । काहू लख्यो हरि अवाची[2] दिसा महि काहू पछाह[3] को सीस निवायो । कोऊ बुतान कौ पूजत है पसु कोऊ म्रितान[4] कौ पूजन मू०ग्र०१४ धायो । कूरक्रिआ उरझ्यो सभ ही जग स्री भगवान को भेदु न पायो ॥ १० ॥ ३० ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ तोमर छंद ॥ हरि जनम मरन बिहीन । दस चार चार[5] प्रबीन । अकलंक ।

मे विनम्र-भाव से समर्पित होता है अर्थात् अहम् को त्यागकर अपने कर्मो को प्रभु-चरणो मे समर्पित करता रहता है ॥ ८ ॥ २८ ॥ क्या हुआ यदि कोई (मनुष्य) दोनो आँखे बद कर बगुले की तरह समाधि मे बैठा रहा । इसका कोई लाभ नही हो सकता । यदि कोई मनुष्य सातो समुद्रो मे जीवन भर स्नान करने के चक्कर मे घूमता रहा तो समझ लो उसने इस लोक को भी गँवाया और प्रभु-स्मरण के बिना परलोक को भी बिगाड लिया । जिसने (उपर्युक्त साधनो को छोडकर) जमकर विषयो का उपभोग किया उसने भी अपनी आयु व्यर्थ बिता दी । (हे भाई !) सच बात तो यह है, इसे सब ध्यान से सुन लो कि (उपर्युक्त साधनो मे लगकर नही) परमात्मा को वही प्राप्त कर सकता है, जिसने परमात्मा से (तथा परमात्मा की सृष्टि से) सच्चा प्यार किया है ॥ ९ ॥ २९ ॥ किसी ने पत्थर (शालिग्राम) की पूजा कर उसके आगे प्रणाम किया है और किसी ने शिवलिंग को गले मे लटकाया है । किसी मनुष्य ने परमात्मा को दक्षिण (द्वारिका) की ओर रहनेवाला माना है तो किसी ने पश्चिम मे (मक्का-मदीना मे) उसका निवास मानकर उस दिशा मे सिर झुकाया है । कोई मूर्ख मूर्तियो को परमात्मा समझकर उसकी पूजा कर रहा है तो कोई कब्रगाहो मे उसकी पूजा के लिए दौड़-धूप कर रहा है । इस प्रकार सारा ही ससार झूठे कर्मकांडो मे उलझा हुआ है और परमात्मा का रहस्य इनमे से कोई भी नही जान सका है ॥१०॥३०॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ तोमर छद ॥ परमात्मा जन्म-मरण से परे है ।

---

१ गले । २ दक्षिण दिशा । ३ पश्चिम दिशा । ४ कब्र । ५ अष्टादश विद्याएँ ।

रूप अपार। अनछिज्ज तेज उदार ॥ १ ॥ ३१ ॥ अनभिज्ज रूप दुरंत। सभ जगत भगत महंत। जस तिलक भू भ्रित भान दस चार चार निधान ॥ २ ॥ ३२ ॥ अकलंक रूप अपार। सभ लोक शोक बिदार। कल काल करम बिहीन। सभ करम धरम प्रबीन ॥३॥३३॥ अन खंड अतुल प्रताप। सभ थापिओ जिह थाप। अन छेद भेद अछेद। मुखचार गावत बेद ॥ ४ ॥ ३४ ॥ जिह नेत निगम कहंत। मुख चार बकत बिअंत। अनभिज्ज अतुल प्रताप। अनखंड अमित अथाप ॥ ५ ॥ ३५ ॥ जिह कीन जगत पसार। रचिओ बिचार बिचार। अनत रूप अखंड। अतुल प्रताप प्रचंड ॥६॥३६॥ जिह अंड ते ब्रहमंड। कीने सु चौदह खंड। सभ कीन जगत पसार। अबियकत रूप उदार ॥ ७ ॥ ३७। जिह कोटि इंद्र न्रिपार। कई ब्रहम बिशन बिचार। कई राम क्रिशन रसूल। बिनु भगत को न कबूल ॥ ८ ॥ ३८ ॥ कई

अठारह विद्याओ मे प्रवीण है। वह अपार ब्रह्म निष्कलक है। उसका उदार तेज कभी भी कम नही होता है ॥१॥३१॥ वह अलिप्त रूप से सबमे छुपा हुआ है। सारे ससार के भक्तो का महत है। वह संसार का यश रूपी तिलक और पृथ्वी को सूर्य के समान जीवन देनेवाला है। वह अठारह विद्याओ का भडार है ॥२॥३२॥ वह अपार रूपवान, निष्कलक है। वह सम्पूर्ण लोको के शोको का नाश करनेवाला है। वह कलियुगी कर्मकाडो से परे है। वह सभी धर्म-कर्मो मे प्रवीण है ॥३॥३३॥ वह तुलनातीत अखड ऐश्वर्य है और उसी ने सभी स्थापनाओ को स्थापित कर रखा है। वह भेद-रहित कभी भी खंडित नही होनेवाला है और चारो वेद उसी का गायन करते है ॥ ४ ॥ ३४ ॥ जिसे निगम नित्य कहते हैं और वेद अनन्त कहते है, वह अपरिमित ऐश्वर्यशाली परमात्मा निर्लिप्त है। वह किसी के द्वारा स्थापित न हो सकनेवाला अपरिमित है ॥५॥३५॥ जिसने जगत का प्रसार किया और बड़े विचारपूर्वक रचना की, वह अनंत रूपवान अखड, प्रचड प्रतापशाली परमात्मा अपरिमित है ॥ ६ ॥ ३६ ॥ जिसने अण्डे से ब्रह्माड, चौदह भुवनो एव सारे जगत का प्रसार किया, वह उदार ब्रह्म अव्यक्त है ॥ ७ ॥ ३७ ॥ जिसने करोडो इंद्रों जैसे नृप, कई ब्रह्मा, विष्णु, राम, कृष्ण, रसूल आदि का सृजन किया। इनमें से कोई भी भक्ति के विना उसके द्वारा स्वीकृत नही किया जाता ॥ ८ ॥ ३८ ॥ उसने

सिंध[1] बिंध[2] नगिंद्र। कई मच्छ कच्छ फनिंद्र। कई देव आदि कुमार। कई क्रिशन बिशन अवतार ॥ ९ ॥ ३९ ॥ कई इंद्र बार बुहार। कई बेद अउ मुख चार। कई रुद्र छुद्र सरूप। कई राम क्रिशन अनूप ॥ १० ॥ ४० ॥ कई कोक काब भणंत। कई बेद भेद कहंत। कई शासत्र सिम्रिति बखान। कहूँ कथत ही सु पुरान ॥ ११ ॥ ४१ ॥ कई अगनहोत्र करंत। कई उरध ताप दुरंत। कई उरध बाहु[3] संन्यास। कहूँ जोग भेस उदास ॥ १२ ॥ ४२ ॥ कहूँ निवली करम करंत। कहूँ पउन अहार दुरंत। कहूँ तीरथ दान अपार। कहूँ जग्ग करम उदार ॥ १३ ॥ ४३ ॥ कहूँ अगनिहोत्र अनूप। कहूँ निआइ राज बिभूत। कहूँ सासत्र सिम्रिति रीत। कहूँ बेद सिउ बिपरीत ॥ १४ ॥ ४४ ॥ कई देस देस फिरंत। कई एक ठौर सिथंत। कहूँ करत जल महि जाप। कहूँ सहत तन पर ताप ॥ १५ ॥ ४५ ॥ कहूँ बास बनहि मू०ग्रं०१५ करंत। कहूँ ताप तनहि सहंत। कहूँ ग्रिहसत धरम अपार। कहूँ राज रीत

कई समुद्र, विन्ध्याचल जैसे पर्वत, कई कच्छप, मच्छ एवं फणिधरो, देवताओं, कृष्ण, विष्णु आदि अवतारों को रचा ॥९॥३९॥ कई इंद्र उसके द्वार पर झाड़ू देते हैं, कई वेद और ब्रह्मा हैं। कई रुद्र क्षुद्र रूप मे उसके सामने है तथा कई राम एवं कृष्ण अनुपम रूप मे है ॥ १० ॥ ४० ॥ कई कवि काव्य की रचना करते है तथा कई वेदो के ज्ञान-भेद का वर्णन करते है। कई शास्त्र व स्मृतियों की व्याख्या करते है तथा कई पुराणो की कथा कहते हैं ॥ ११ ॥ ४१ ॥ कई अग्निहोत्र करते है, कई दुष्कर रूप से उर्ध्व-तप करते है। कई उलटा लटककर सन्यास करते है तथा कई योगियों के वेश मे उदासीन घूमते है ॥ १२ ॥ ४२ ॥ कही निउली कर्म करते है, कही हवा खाकर रहते है। कही तीर्थो मे अपार दान करते है और कही उदार यज्ञकर्म करते है ॥१३॥४३॥ कई अनुपम रूप से हवन करते है, कई राजाओ की विभूतियो से सुशोभित होकर न्याय करते है। कही शास्त्र-स्मृतियों की परम्पराओ का पालन हो रहा है तो कही वेद के विपरीत बाते हो रही है ॥ १४ ॥ ४४ ॥ कई देश-विदेश मे घूम रहे है और कई एक ही ठिकाने पर स्थित है। कही जल मे जाप चल रहा है तो कही तन पर तपन को सहन किया जा रहा है ॥ १५ ॥ ४५ ॥ कई वन मे रह रहे है। कई कष्टों को तन पर सह रहे है। कही लोग

---

१ समुद्र। २ विन्ध्य नामक पहाड़। ३ लटककर।

उदार ॥ १६ ॥ ४६ ॥ कहूँ रोग रहत अभरम । कहूँ करम करत अकरम । कहूँ सेख ब्रहम सरूप । कहूँ नीत राज अनूप ॥ १७ ॥ ४७ ॥ कहूँ रोग सोग बिहीन । कहूँ एक भगत अधीन । कहूँ रंक राज कुमार । कहूँ बेद ब्यास-बतार ॥ १८ ॥ ४८ ॥ कई ब्रहम बेद रटंत । कई सेख नाम उचरंत । बैराग कहूँ सनिआस । कहूँ फिरत रूप उदास ॥ १६ ॥ ४६ ॥ सभ करम फोकट जान । सब धरम निहफल मान । बिन एक नाम अधार । सभ करम भरम बिचार ॥ २० ॥ ५० ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ लघु निराज छंद ॥

जले हरी । थले हरी । उरे हरी । बने हरी ॥ १ ॥ ५१ ॥
गिरे हरी । गुफे हरी । छिते हरी । नभे हरी ॥ २ ॥ ५२ ॥
इहाँ हरी । उहाँ हरी । जिमी हरी । जमा हरी ॥ ३ ॥ ५३ ॥
अलेख हरी । अभेख हरी । अदोख हरी । अद्वैख हरी ॥ ४ ॥
॥ ५४ ॥ अकाल हरी । अपाल हरी । अछेद हरी । अभेद हरी ॥ ५ ॥ ५५ ॥ अजंत्र हरी । अमंत्र हरी । सुतेज हरी ।

गृहस्थ-धर्म का व्यापक रूप से पालन कर रहे है और कही उदार मन से राज्य-धर्म का निर्वाह कर रहे है ॥१६॥४६॥ हे प्रभु, तुम कही पर रोग, भ्रम-मुक्त रूप से विचरण कर रहे हो, कही तुम ही कर्म करते हुए भी निष्कर्म हो । कही तुम शेषनाग और ब्रह्म के स्वरूप हो और कही नीतिवेत्ता के अनुपम रूप मे विराजमान हो ॥ १७ ॥ ४७ ॥ कही तुम ही रोग-शोक से विहीन हो और कही तुम मात्र भक्तो के अधीन हो । कही तुम ही राजा, रंक और राजकुमारो के रूप में तथा कही वेद और व्यास के रूप मे विराजमान हो ॥ १८ ॥ ४८ ॥ कई ब्रह्मा वेदो को रट रहे है, कई शेषनाग नाम का उच्चारण कर रहे है । कही वैराग्य है तो कही सन्यास है और कही रूपवान तपस्वी उदास घूम रहे है ॥ १९ ॥ ४९ ॥ ये सभी कर्म व्यर्थ है और ये सभी धर्म निष्फल मानने चाहिए । एक नाम के आधार के बिना सभी कर्म भ्रम हैं ॥ २० ॥ ५० ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ लघु निराज छद ॥ हरि जल मे, स्थल मे है, यहाँ है, बन मे है ॥१॥५१॥ हरि पर्वत मे, कन्दरा मे, धरती और व्योम मे है ॥२॥५२॥ हरि यहाँ है, वहाँ है, धरती मे है, ब्रह्मांड मे है ॥ ३ ॥ ५३ ॥ हरि अलेख है, वेशातीत है, दुखातीत है तथा द्वेष से परे है ॥ ४ ॥ ५४ ॥ हरि कालातीत, बधनो से परे, अनश्वर एव भेदो से परे है ॥ ५ ॥ ५५ ॥ हरि यंत्रो, मंत्रों से परे है । वह तंत्रो से परे तेजवान है ॥ ६ ॥ ५६ ॥ हरि

अतंत्र[1] हरी ॥ ६ ॥ ५६ ॥ अजात हरी । अपात हरी । अमित हरी । अमात हरी ॥ ७ ॥ ५७ ॥ अरोग हरी । असोक हरी । अभरम हरी । अकरम हरी ॥ ८ ॥ ५८ ॥ अजै हरी । अभै हरी । अभेद हरी । अछेद हरी ॥ ९ ॥ ५९ ॥ अखंड हरी । अभंड हरी । अडंड[2] हरी । प्रचंड हरी ॥ १० ॥ ॥ ६० ॥ अतेव हरी । अभेव हरी । अजेव हरी । अछेव हरी ॥ ११ ॥ ६१ ॥ भजो हरी । थपो हरी । तपो हरी । जपो हरी ॥ १२ ॥ ६२ ॥ जलस तुही । थलस तुही । नदिस तुही । नदस तुही ॥ १३ ॥ ६३ ॥ ब्रिछस तुही । पतस तुही । छितस तुही । उरधस तुही ॥ १४ ॥ ६४ ॥ भुजस तुअं[3] । भजस तुअं । रटस तुअं । ठटस[4] तुअं ॥१५॥६५॥ जिमी तुही । जमा तुही । मकी तुही । मका तुही ॥ १६ ॥ ६६ ॥ अभू तुही । अभै तुही । अछू तुही । अछै तुही ॥ १७ ॥ ६७ ॥ जतस तुही । ब्रतस तुही । गतस तुही । मतस तुही ॥ १८ ॥ ॥ ६८ ॥ तुही तुही । मू०ग्रं०१६ तुही तुही । तुही तुही । तुही तुही ॥ १९ ॥ ६९ ॥ तुही तुही । तुही तुही । तुही

जाति से, पतन से, परिमिति से एव गर्भ से परे है ॥ ७ ॥ ५७ ॥ हरि रोग से शोक से, भ्रम से एव कर्मो से परे है ॥ ८ ॥ ५८ ॥ हरि अजय, अभय, अभेद एव अखड है ॥ ९ ॥ ५९ ॥ हरि अखड है, स्त्रियातीत, दडातीत एव प्रचड है ॥ १० ॥ ६० ॥ हरि ही सीमातीत है, वेशातीत है, अजय है तथा अक्षय है ॥ ११ ॥ ६१ ॥ हरि का ही भजन करो, हरि की ही मन मे स्थापना करो, हरि का ही तप करो तथा हरि का ही जाप करो ॥ १२ ॥ ६२ ॥ तुम्ही जल मे हो, स्थल मे हो, नदियो-नालों मे भी तुम ही हो ॥ १३ ॥ ६३ ॥ वृक्षो मे, पत्तो मे, धरती में, आकाश मे तुम ही हो ॥ १४ ॥ ६४ ॥ तुम ही भुजबल हो और भजन करनेवाले हो । तुम ही रटनेवाले और पूजा करनेवाले हो ॥ १५ ॥ ६५ ॥ तुम धरती हो, ससार हो, घर बनानेवाले और घर भी तुम ही हो ॥ १६ ॥ ६६ ॥ तुम अजन्मा अभय हो । तुम तक पहुँच नही हो सकती, तुम ही अक्षय हो ॥ १७ ॥ ६७ ॥ यतीत्व भी तुम हो, व्रत भी तुम हो; गति भी तुम हो और मत-मतांतर भी तुम हो ॥ १८ ॥ ६८ ॥ तुम ही, तुम ही, तुम ही, तुम ही, तुम ही, तुम ही, तुम ही, तुम ही ॥ १९ ॥ ६९ ॥ तू ही, तू ही, तू ही, तू ही, तू ही, तू ही,

१ जादू से परे । २ सजा से परे । ३ तुमको (अकालपुरख को)। ४ पूजता ।

तुही। तुही तुही ॥ २० ॥ ७० ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ कबित्त ॥ खूक[1] मलहारी गज गदहा बिभूत धारी गिदूआ[2] मसान[3] बास करिओ ई करत है। घुघू[4] मट बासी लगे डोलत उदासी म्रिग तरवर सदीव मोन साधे ई मरत है। बिंद के सधय्या ताहि हीज[5] की बडय्या देत बंदरा सदीव पाई नागे ई फिरत है। अंगना अधीन काम क्रोध मै प्रबीन एक ज्ञान के बिहीन छीन कैसे कै तरत है ॥ १ ॥ ७१ ॥ भूत बनचारी छित छउना सभै दूधाधारी पउन के अहारी सु भुजंग जानीअतु है। त्रिण के भछय्या धन लोभ के तजय्या तेतो गऊअन के जय्या ब्रिख भय्या मानीअतु है। नभ के उडय्या ताहि पंछी की बडय्या देत बगुला बिड़ाल ब्रिक धिआनी ठानीअतु है। जेतो बडे ज्ञानी तिनो जानी पै बखानी नाहि ऐसे न प्रपञ्च मन भूल आनीअतु है ॥ २ ॥ ॥ ७२ ॥ भूम के बसय्या ताहि भूचरी के जय्या कहै नभ के उडय्या सो चरय्या कै बखानीऐ। फल के भछय्या ताहि बाँदरी के जय्या कहै आदिस फिरय्या तेतो भूत कै पछानीऐ।

तू ही, तू ही ॥ २० ॥ ७० ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ कवित्त ॥ सूअर मल खाता है, हाथी और गधा मिट्टी मे लोटा करते हैं, गिद्ध श्मशान मे रहा करते है। उल्लू भी श्मशान मे रहता है, मृग उदासीनो की तरह वन मे घूमा करते है और पेड़ सदा मौन-साधना मे लीन चुपचाप खड़े रहते है। ब्रह्मचर्य (विन्दु) की साधना करनेवाले नपुसक कई है और नगे पाँव घूमनेवाले वदर सख्या मे अनेक है। अंगो को वश मे करने पर, परन्तु काम-क्रोध को मन मे धारण किये रहने पर अज्ञानी मनुष्य कैसे भवसागर को पार कर सकते है ॥ १ ॥ ७१ ॥ भूत सदा वनों मे निवास करते है, धरती के जीवो के बच्चे माँ के दूध द्वारा पोषित होते हैं और साँप केवल पवन का आहार करते है। तृण खानेवाले और लोभ को त्यागनेवाले जीव भी है और गो-पुत्र वृक्षो को ही भाई-बहिन मानते है। पक्षी नभ मे उडनेवाले है तथा बगुला, विलाव, बाघ आदि ध्यान लगाने मे सिद्धहस्त माने जाते है। जो जितना बडा ज्ञानी है उसने जितना जाना उसका वर्णन कर दिया है, परन्तु इन सब प्रपचो से भी मन मे टिकाव नही आता ॥ २ ॥ ७२ ॥ भूमि पर बसनेवालो को भूचर तथा नभ में उडनेवालो को चिड़िया कहते है। फलो के भक्षण करनेवालो को वानर कहते हैं और सर्व दिशाओ मे घूमनेवालो को भूत के नाम से जाना

---

१ सूअर। २ शृगाल। ३ श्मशान। ४ उल्लू। ५ हिजड़ा।

जल के तरय्या को गंगेरी[1] सी कहत जग आग के भछय्या सो चकोर सम मानीऐ। सूरज सिवय्या ताहि कउल की बडय्या देत चंद्रमा सिवय्या कौ कवी कै पहिचानीऐ ॥ ३ ॥ ७३ ॥ नाराइण कच्छ मच्छ तिंदूआ कहत सभ कउल नाभ कउल जिह ताल मै रहतु है। गोपी नाथ गूजर गुपाल सभै धेनचारी रिखीकेस नाम कै महंत लहीअतु है। माधव भवर औ अटेरू को कनय्या नाम कंस को बधय्या जमदूत कहीअतु है। मूड़ रूड़ पीटत न गूड़ता को भेद पावै पूजत न ताहि जाके राखे रहीअतु है ॥ ४ ॥ ७४ ॥ बिस्वपाल जगतकाल दीनद्याल बैरी साल सदा प्रतिपाल जम जाल ते रहत है। जोगी जटाधारी सती साचे बडे ब्रहमचारी ध्यान काज भूख प्यास देह पै सहत है। निउली करम जल होम पावक पवन होम अधो मुख एक पाइ ठाढे न बहत है। मानव फनिंद देव दानव न पावै भेव बेद औ कतेब नेति नेति कै कहत है ॥ ५ ॥ ७५ ॥ नाचत फिरत

जाता है। जल में रहनेवाले गगेरी श्रेणी के जलचर कहलाते है और अग्नि का भक्षण करनेवाले चकोर के समान माने जाते है। सूर्य (की किरणो) का सेवन करनेवालो को कमल की उपमा दी जाती है और चन्द्रमा की चाँदनी पर मुग्ध होनेवाले को कवि कहा जाता है ॥ ३ ॥ ७३ ॥ परमात्मा को नारायण, कच्छप, मत्स्य, तेंदूआ, नाभि-कमल आदि कहा जाता है। उसे गोपीनाथ, गूजर, गायो का पालनकर्ता, गायो को चरानेवाला तथा ऋषिकेश महत नाम से भी जाना जाता है। उसे माधव, भ्रमर, अटल निश्चय वाला कन्हैया नाम भी दिया जाता है, जो कस के लिए यमदूत के रूप मे जाना जाता है। परन्तु संसारी मूढ जीव परमात्मा के गूढ रहस्य को तो समझते नही, केवल रूढ़ियो का पालन करने मे ही धर्म मानते है और उसकी पूजा नही करते जो परमात्मा सबका रक्षक है ॥ ४ ॥ ७४ ॥ वह परमात्मा विश्व का पालक, जगत का काल, दीनों का बंधु, शत्रुओ का नाश करनेवाला यम-जाल से रहित है। योगी, जटाधारी तपस्वी, सतियाँ तथा अनेको ब्रह्मचारी भूख-प्यास को अपने शरीर पर सहते है। कई प्राणी न्योली क्रियाएँ करते है, जल-बध, अग्नि और वायु से सबधित हवन करते हुए अधोमुख होकर रहते है और कभी एक पाँव पर (वर्षो तक) खड़े रहते है। परन्तु उस परमात्मा का रहस्य शेषनाग, देव, दानव कोई नही जान सकता, उसे तो वेद और

---

[1] एक किस्म का कीड़ा जो जल-मध्य रहता है।

मोर बादर करत घोर दामनी अनेक मू०ग्रं०१७ **भाउ करिओ ई करत है। चंद्रमा ते सीतल न सूरज ते तपत तेज इंद्र सों न राजा भव भूम को भरत है। शिव से तपस्सी आदि ब्रहमा से न बेद चारी सनतकुमार सी तपस्सिआ न अनत है। ज्ञान के विहीन काल फास के अधीन सदा जुग्गन की चउकरी फिराए ई फिरत है॥ ६ ॥ ७६ ॥ एक शिव भए एक गए एक फेर भए रामचंद्र क्रिशन के अवतार भी अनेक हैं। ब्रहमा अरु बिशन केते बेद औ पुरान केते सिम्रिति समूहन कै हुइ हुइ बितए हैं। मोनदी मदार केते असुनी कुमार केते अंसा अवतार केते काल बस भए है। पीर औ पिकांबर केते गने न परत एते भूम ही ते हुइ कै फेरि भूम ही मिलए हैं॥ ७ ॥ ७७ ॥ जोगी जती ब्रहमचारी बडे बडे छत्रधारी छत्र ही की छाइआ कई कोस लौ चलत है। बडे बडे राजन के दाबति फिरति देस बडे बडे राजन के द्रप को दलत है। मान से महीप औ दिलीप कैसे छत्रधारी बडो अभिमान भुजदंड को करत है। दारा से**

कतेव भी 'नेति-नेति' कहकर पुकारते है ॥ ५ ॥ ७५ ॥ मोर सदा नृत्य करता है तथा बिजली भी अपनी चमक के साथ अनेक भाव प्रदर्शित किया करती है। चद्रमा से अधिक कोई शीतल नही, सूर्य से अधिक तेजवान कोई नही है तथा इन्द्र के समान (मेघ-रूप होकर) कोई पृथ्वी को जल से भरनेवाला अन्य नही है। शिव के समान कोई तपस्वी नही और ब्रह्मा के समान कोई वेदपाठी नही तथा सनत्कुमार का तप भी अनन्य है, परन्तु ये सव ज्ञान-विहीन प्राणी कालचक्र के वश मे सदा युगो के चक्र के साथ-साथ ही घूमा करते है ॥ ६ ॥ ७६ ॥ शिव हुए, वे भी गए, एक फिर हुए, लेकिन वे भी गए; इसी प्रकार राम और कृष्ण के भी अनेको अवतार हुए है। कितने ही व्रह्मा, विष्णु, वेद, पुराण और स्मृतियो के समूह होकर वीत चुके है। कितने ही मन्दराचल पर्वत और कितने ही अश्विनीकुमार हुए है, कितने ही अशावतार पैदा होकर काल-चक्र मे फँसकर रह गए है। कितने ही पीर-पैगम्बर इस धरती से पैदा हुए है और अन्त मे इस धरती मे ही मिलकर समाप्त हो गए है ॥७॥७७॥ अनेको वहुत वड़े योगी, यति, व्रह्मचारी और सम्राट् हुए है, जो कोसो तक छत्र की छाया मे चलकर अपने वैभव को प्रकट करते है। ऐसे सम्राट् वडे-वडे राजाओ की भूमि को हडप कर जाते है और उनके गर्व को चूर करते है। मान्धाता के समान महीपति और महाराजा दिलीप जैसे छत्रधारी

दिलीसर द्रुजोधन से मानधारी भोगभोग भूंम अंत भूंम मै मिलत है ।। ८ ।। ७८ ।। सिजदे करे अनेक तोपची कपट भेस पोसती अनेक दा निवावत है सीस कौ । कहा भयो मल्ल जौ पै काढत अनेक डंड सो तौ न डंडौत अशटांग अथतीस कौ । कहा भयो रोगी जौ पै डार्यो रह्यो उरध मुख मन ते न मूँड निहरायो आद ईस कौ । कामना अधीन सदा दामना प्रबीन एक भावना बिहीन कैसे पावै जगदीस कौ ।। ९ ।। ७९ ।। सीस पटकत जाके कान मै खजूरा धसै मूँड छटकत मित्र पुत्र हूँ के शोक सौ । आक को चरय्या फलफूल को भछय्या सदा बन को भ्रमय्या अउर दूसरो न बोक सौ । कहा भयो भेड जौ घसत सीस ब्रिचछन सो माटी को भछय्या बोल पूछ लीजै जोक सौ । कामना अधीन काम क्रोध मै प्रबीन एक भावना बिहीन कैसे भेटै परलोक सौ ।। १० ।। ८० ।। नाच्यो ई करत मोर दादर

हुए हैं, जिन्हे अपने बाहुबल पर गर्व था । दारा शिकोह जैसे दिल्लीश्वर और दुर्योधन जैसे अभिमानी इस धरती के भोगो को भोगते हुए अन्त मे इस धरती मे ही मिल गए है ।। ८ ।। ७८ ।। केवल सिर झुकाकर प्रणाम करना ही महान् कार्य हो तो तोपची भी तोप दागने के लिए बार-बार झुकता है, परन्तु उसका झुकना तो कपट से दूसरो की जान लेनेवाला होता है । इसी प्रकार अफीमची भी सिर झुकाता जाता है । पहलवान भी वैसे तो डण्ड-बैठक लगाता है, पर उसकी इस कस्रत को ईश्वर के आगे की गई दडवत नही कहा जा सकता । वह योगी कहाँ गया जो ऊपर की ओर मुँह उठाकर तो ईश्वर को देखने का बहाना बनाया करता था, परन्तु वास्तव मे उसने कभी मन का मुडन करके ईश्वर को जानने की कोशिश नही की । कामनाओ के अधीन होकर दमन करनेवाले भावना-विहीन लोग कैसे परमात्मा को प्राप्त कर सकते है ।। ९ ।। ७९ ।। यदि सिर झटकने-घुमाने से परमात्मा प्राप्त होता हो तो जिसके कान मे खनखजूरा चला जाता है या जिसको मित्र या पुत्र का शोक प्राप्त हो जाता है वह भी सिर को पटकता है । इसी प्रकार फल-फूल खानेवालो और वनवासी बने रहने वालो मे जगली बकरों से बढकर अन्य कोई नही है । वे भेड़ कहाँ गयी जो हमेशा अपने सिर को पेडों के तनो से ही घिसती रहती थीं और उस जोक से भी पूछा जा सकता है जो मात्र मिट्टी ही खाती है कि कैसे कोई कामनाओ के वश मे बना रहकर, काम-क्रोध मे दक्ष बना रहकर और भावना-विहीन होकर तथा उपर्युक्त प्रपच करके परलोक मे सद्गति पा सकता है ।। १० ।। ८० ।। मोर सदा नाचा करता है, मेढक हमेशा शोर

करत सोर सदा घनघोर घन करिओ ई करत है। एक पाइ ठाढे सदा बन मै रहत ब्रिछ फूकफूक पाव भूम स्रावग धरत है। पाहन अनेक जुग एक ठउर बासु करै काग अउर चील देसदेस बिचरत है। ग्यान के बिहीन महा दान मै न हूजै लीन भावना बिहीन दीन कैसे मू०ग्रं०१८ **कै तरत है॥ ११ ॥ ८१ ॥ जैसे एक स्वाँगी कहूँ जोगीआ बैरागी बनै कबहूँ संन्यास भेस बन कै दिखावई। कहूँ पउनहारी कहूँ बैठे लाइ तारी कहूँ लोभ की खुमारी सौ अनेक गुन गावई। कहूँ ब्रहमचारी कहूँ हाथ पै लगावै बारी कहूँ डंडधारी हुइकै लोगन भ्रमावई। कामना अधीन तर्‍यो नाचत है नाचन सो ग्यान के बिहीन कैसे ब्रहम लोक पावई॥ १२ ॥ ८२ ॥ पंच बार गीदर पुकारे परे सीत काल कुंचर औ गदहा अनेक दा पुकार ही। कहा भयो जो पै कलवत्र[1] लीओ कासी बीच चीर चीर चोरटा कुठारन सौ मारही। कहा भयो फासी डार बूड्यो जड़ गंगधार डार**

किया करता है और बादल हमेशा गरजते ही रहते है। वृक्ष सदा वन में एक पाँव पर ही खडे रहते है और जैन श्रमण सदा फूंक-फूंककर धरती पर पैर रखते है। पत्थर युगो तक एक ही स्थान पर पड़े रहते है तथा कौवे और चीले देश-विदेशो का भ्रमण करते रहते है। परन्तु इन सब कर्मों के बावजूद ज्ञानविहीन बने रहकर महादानी प्रभु के प्रेम मे लीन हुए बिना, भावना-विहीन होकर कोई कैसे ससार-सागर को पार कर सकता है॥ ११ ॥ ८१ ॥ स्वाँगी की तरह जीव कभी योगी, कभी बैरागी, कभी संन्यासी बन जाता है। कही मात्र पवन को आहार बनाता है, कही ध्यानमग्न होने का ढोग करता है और कही धन के लालच मे अनेक प्रकार की स्तुतियाँ किया करता है। कही ब्रह्मचारी बनकर तो कही हाथ मे दड धारण कर लोगो को भ्रम मे डालता है। परन्तु कामना के अधीन होकर नाच नाचनेवाला (जीव) ज्ञान-विहीन बना रहकर कैसे ब्रह्मलोक को प्राप्त कर सकता है॥ १२ ॥ ८२ ॥ शीतकाल मे तो गीदड भी पाँच बार चिल्लाता है और उसी प्रकार हाथी और गधे भी अनेको वार चिल्लाते है। काशी मे करवत लेने (आरे से तन को चिरवा देने) से भी क्या हो जायगा, क्योकि लकडी को भी कुल्हाडी से काट-काटकर फेका जाता है। मूर्ख व्यक्ति मुक्ति के लालच मे गले मे फाँसी लगाकर गगा मे डूबकर आत्महत्या करते है, परन्तु ठग भी तो लोगो को लूटने के लिए

[1] आरा।

डार फास ठग मार मार डारही। डूबे नरक धार मूढ़ ज्ञान के बिना बिचार भावना बिहीन कैसे ज्ञान को बिचारही ॥१३॥८३॥ ताप के सहे ते जो पै पाईऐ अताप नाथ तापना अनेक तन घाइल सहत है। जाप के कीए ते जो पै पायत अजाप देव पूदना[1] सदीव तुही तुही उच्चरत है। नभ के उडे ते जौ पै नाराइण पाईयत अनल अकाश पंछी डोलबो करत है। आग मै जरे ते गत रॉड की परत कत पताल के बासी किउ भुजंग न तरत है॥ १४ ॥ ८४ ॥ कोऊ भयो मुंडीआ संन्यासी कोऊ जोगी भयो कोऊ ब्रहमचारी कोऊ जती अनमानबो। हिंदू तुरक कोऊ राफज़ी[2] इमामसाफी[3] मानसकी जात सभै एकै पहिचानबो। करता करीम सोई राज़क[4] रहीम ओई दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो। एक ही की सेव सभ ही को गुरदेव एक एक ही

मार-मारकर गगा मे फेक देते है। ज्ञान के बिना तो नरक की धारा मे ही बहना होगा और भावना-विहीन होकर, प्रेम से विहीन होकर सच्चे ज्ञान का विचार मन मे नही आ सकता॥ १३ ॥ ८३ ॥ यदि ताप को सहन करने मात्र से उस तापातीत प्रभु से मेल हो सकता हो तो युद्ध मे घायल सैनिक का शरीर तो धूप-ताप आदि को सहन करता है। यदि मात्र जाप करने से उस जापातीत प्रभु को प्राप्त किया जा सका होता तो 'पूदना' नामक पक्षी सदैव 'तूही-तूही' का उच्चारण किया करता है। व्योमाचारी बनने से यदि नारायण की प्राप्ति हो सके तो 'अनल' नामक पक्षी सदा आकाश में उडता ही रहता है। इसी प्रकार अग्नि मे जलने पर यदि विधवा को सद्गति प्राप्त होने की सभावना है तो पाताल के वासी सर्पो (जो भीषण गर्मी मे रहते है और विष मे सदैव जलते रहते है) को सद्गति प्राप्त क्यों नही होती अर्थात् सती-प्रथा एक कुप्रथा है, ऐसे प्रपचो का त्याग किया जाना चाहिए॥ १४ ॥ ८४ ॥ ससार मे अपनी रुचि के अनुसार कोई मुँड़िया, कोई सन्यासी, कोई योगी एव कोई यति अथवा ब्रह्मचारी बन गया है। कोई हिन्दू, तुर्क, राफजी या इमामसाफी कहलाता है, परन्तु सबकी जाति एक है अर्थात् सभी मानवता के अंग है, सभी मनुष्य है। इन सबके लिए परमात्मा तो एक ही है, कोई उसे कर्ता कहता है, कोई करीम, कोई रोज़ी देनेवाला, कोई उसे रहम करने वाला कृपालु कहता है। इनमे कोई भेद नही है और भ्रम से हमे कोई भेद नही मानना चाहिए। एक प्रभु की सेवा करना ही हमारा कर्तव्य

१ एक पंछी जो 'तूंही', 'तूही' बोलता है। २ शीआः मुसलमान। ३ सुन्नी मुसलमान। ४ रोज़ी देनेवाला।

सरूप सभै एकै जोत जानबो ॥ १५ ॥ ८५ ॥ देहुरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओई मानस सभै एक पै अनेक को भ्रमाउ है। देवता अदेव जच्छ गध्रब तुरक हिंदू न्यारे न्यारे देसन के भेस को प्रभाउ है। एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान खाक बाद आतश[1] औ आब[2] को रलाउ है। अलह अभेख सोई पुरान औ कुरान ओई एक ही सरूप सभै एक ही बनाउ है ॥ १६ ॥ ॥ ८६ ॥ जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे न्यारे न्यारे हुइकै फेरि आग में मिलाहिगे। जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है धूर के कनूका फेर धूर ही समाहिगे। जैसे एक नद ते तरंग कोट मू०ग्रं०१८ उपजत है पान के तरंग सभै पान ही कहाहिगे। तैसे बिस्व रूप ते अभूत भूत प्रगट होइ ताही ते उपज सभै ताही में समाहिगे ॥ १७ ॥ ८७ ॥ केते कचछ मचछ केते उन कउ करत भचछ केते अचछ वचछ हुइ सपचछ उड्ड

है, वह एक ही सबका गुरुदेव है और उसका एक ही स्वरूप ज्योति-रूप मे सबमे शोभायमान हो रहा है ॥ १५ ॥ ८५ ॥ मदिर और मस्जिद मे पूजा और नमाज मे ठीक वैसे ही कोई अतर नही है, जैसे मनुष्य (मनुष्यता के दृष्टिकोण से) एक होने पर भी भिन्न दिखाई देते है। देव, अदेव, यक्ष, गन्धर्व, तुर्क और हिन्दू के नाम से मनुष्य को पुकारना मात्र भिन्न-भिन्न देशो और वेशो का प्रभाव है, क्योकि सबके नयन, कान, देह के अग, वाक्शक्ति एकसमान है और सभी मिट्टी, वायु, तेज एवं जल आदि के मिश्रण से समान रूप मे बने हैं। (मुसलमानो का) अल्लाह, (हिन्दुओ का वेशातीत) परमात्मा, पुराण और कुर्आन सभी एक ही है और उसी एक स्वरूप से ही अखिल विश्व का निर्माण हुआ है ॥ १६ ॥ ८६ ॥ जैसे अग्निसमूह से अनेको चिगारियाँ ऊपर को उठकर पुनः उसी अग्नि मे समा जाती है, जैसे धूल मे से कई धूल के कण ऊपर उठते है और पुनः उसी धूल मे समा जाते है, जैसे एक ही नदी मे से करोडो लहरे उठकर पुनः उसी जल मे समा जाती है और पानी पुनः पानी ही कहलाता है, वैसे ही उस विश्व-रूप परमात्मा से भूत-अभूत (सूक्ष्मतत्त्व) पैदा होते है और पुनः उसी मे समा जाते है ॥ १७ ॥ ८७ ॥ कितने ही कच्छप, मत्स्य और कितने ही उनका भक्षण करनेवाले, कितने ही अश्व एव अन्य हुए है, परन्तु यह स्पष्ट है कि वे सब नाश को प्राप्त होगे। नभ मे कितने पक्षी है जो एक-दूसरे का भक्षण करते हैं, लेकिन

1 अग्नि। 2 पानी।

जाहिगे । केते नभ बीच अच्छ पच्छ कउ करैगे मच्छ केतक प्रतच्छ हुइ पचाइ खाइ जाहिगे । जल कहा थल कहा गगन के गउन कहा काल के बनाए सभै काल ही चबाहिगे । तेज जिउ अतेज मै अतेज जैसे तेज लीन ताही ते उपज सभै ताही में समाहिगे ॥ १८ ॥ ८८ ॥ कूकत फिरत केते रोवत मरत केते जल मै डुबत केते आग मै जरत है । केते गंग बासी केते मदीना मका निवासी केतक उदासी के भ्रमाए ई फिरत है । करवत सहत केते भूम मै गडत केते सूआ पै चढत केते दूख कउ भरत है । गैन मै उडत केते जल मै रहत केते ज्ञान के बिहीन जक जारे ई मरत है ॥ १९ ॥ ८९ ॥ सोध हारे देवता बिरोध हारे दानो बडे बोध हारे बोधक प्रबोध हारे जापसी । घस हारे चंदन लगाइ हारे चोआ चार पूज हारे पाहन चढाइ हारे लापसी । गाह हारे गोरन मनाइ हारे मड़ी मट्ट लीप हारे भीतन लगाइ हारे छापसी । गाइ हारे गंध्रब बजाइ हारे किन्नर सभ पच

वे सब काल द्वारा पचा लिये जायँगे । क्या जल, स्थल या क्या गगन-वासी इन सबको काल ने बनाया है और कालचक्र मे ही ये सब चबा लिये जायँगे । प्रकाश जैसे अधकार मे और अंधकार प्रकाश मे समा जाता है, वैसे ही सब उसी परमात्मा से उत्पन्न होकर उसी मे समा जायँगे ॥ १८ ॥ ८८ ॥ कितने ही जीव चीख-पुकार रहे है, कितने ही रोते हैं, कितने ही मरते है, असंख्य आग मे जल रहे है और कितने ही जल मे डूब जाते है । अनेको गगा-वास करते है, अनेको मक्का-मदीना मे निवास करते हैं और अनेको ही उदासीन होकर इधर-उधर भ्रमण करते हैं । अनेको ही पुण्यलोक मे करवत (आरा) की धार सहन करते है, अनेको भूमि मे अपने-आप को गड़ाकर, शूलो की शय्या पर लेट कर दुःख को सहन करते है । अनेको गगन-विहार करते है, अनेकों जल मे विचरण करते है, परन्तु ज्ञान-विहीन ये सब जीव व्यर्थ ही मर-जी रहे है ॥ १९ ॥ ८९ ॥ उस परमात्मा को पाने के लिए देवताओ ने खोज की, परन्तु थक गए और उसे न पा सके । दानवो ने उस परम सत्ता का सदैव बिरोध किया, परन्तु हार गए, बौद्धिक प्रयत्नो को करनेवाले बुद्धिजीवी भी थक गए और जाप करनेवाले प्रबुद्ध व्यक्ति भी थक कर हार गए । पडित लोग उसके लिए चंदन घिस-घिसकर हार गए और पत्थरो को मिष्टान्नो आदि का भोग लगाकर हार-थक गए । श्मशान मे साधना करनेवाले भी उस (प्रभु) को पाने के प्रयत्न मे थक गए और भभूत लगाकर घूमनेवाले भी थक गए । उसे पाने के प्रयत्नों मे

हारे पंडत तपंत हारे तापसी ।। २० ।। ६० ।। ।। त्व प्रसादि ।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। न रागं न रंगं न रूपं न रेख । न मोह न क्रोहं न द्रोहं न द्वैखं । न करमं न भरमं न जनमं न जातं । न मित्रं न सत्रं न पित्रं न मातं ।। १ ।। ६१ ।। न नेहं न गेहं न कामं न धामं । न पुत्रं न मित्रं न सत्रं न भामं । अलेखं अभेखं अजोनी सरूपं । सदा सिद्‌ध दा बुद्‌ध दा ब्रिद्‌ध रूपं ।। २ ।। ६२ ।। नही जान जाई कछू रूप रेख । कहा बास ताको फिरै कउन भेख । कहा नाम ताको कहा कै कहावै । कहा कै बखानो कहै मै न आवै ।। ३ ।। ६३ ।। न रोगं न सोगं न मोहं न मातं । न करम न भरमं न जनमं न जातं । अद्वैखं अभेखं अजोनी सरूपे । नमो एक रूपे नमो एक रूपे ।। ४ ।। ६४ ।। परेअं परा परम प्रगिआ प्रकासी । अछेद अछै आदि अद्वै अबिनासी । न जातं न पातं न रूपं न रगे । नमो आद अभगे नमो आद

गधर्व, किन्नरगण गायन कर हार गए, पडित-तपस्वी तप कर-करके हार गए, परन्तु उस परमात्मा की अनतता का पार नही पा सके ।। २० ।। ९० ।। ।। तेरी कृपा से ।। ।। भुजग प्रयात छद ।। (हे प्रभु !) न तुम्हे किसी से अनुराग-विशेष है, न तुम्हारा कोई रग-विशेष है और न ही तुम्हारा आकार है। तुम्हे मोह, क्रोध, ईर्ष्या नही है और न तुम विश्वासघात करते हो। कर्म, भ्रम, जन्म, जाति के चक्र मे तुम नही हो। तुम्हारा मित्र, शत्रु, पिता, माता नही है ।। १ ।। ९१ ।। हे प्रभु, न तुम्हे किसी से प्रेम-विशेष है, न तुम्हारा कोई घर है और न ही तुम्हारी कोई कामना है। तुम्हारा कोई पुत्र, मित्र, शत्रु अथवा स्त्री नही है। तुम निराकार वेशो से परे अयोनि अर्थात् अजन्मा हो। तुम सिद्धियो की प्रज्ञा का बृहद् रूप हो ।। २ ।। ९२ ।। तुम्हारे स्वरूप को नही जाना जा सकता। ये नही बताया जा सकता कि तुम्हारा निवास कहाँ है और तुम किस वेश मे रहते हो। तुम्हारा क्या नाम है और तुम कहाँ पर जन्मा कहलाते हो —इसका मैं वर्णन नही कर सकता ।। ३ ।। ९३ ।। तुम रोग, शोक, मोह एव जन्म से परे हो। कर्म, भ्रम, जन्म एव जाति से भी तुम परे हो। ईर्ष्या, वेश से परे हे प्रभु, तुम अयोनि हो। हे सदैव एक ही रूप मे रहनेवाले, तुम्हे मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।। ४ ।। ९४ ।। हे प्रभु, तुम दूर से भी दूर परम प्रजा को प्रकाशित करनेवाले अक्षय, अद्वैत एव अविनाशी हो। तुम्हारी न जाति है, न स्वरूप है और न ही कोई वर्ण-विशेष है। हे अभजन प्रभु ! तुम्हे मेरा प्रणाम है ।। ५ ।। ९५ ।। तुमने

अभंगे ॥ ५ ॥ ९५ ॥ किते क्रिशन से मू०ग्रं०२० कीट कोटै उपाए । उसारे गड़े फेरि मेटे बनाए । अगाधे अभै आदि अद्वै अबिनासी । परेअं परा परम पूरन प्रकासी ॥ ६ ॥ ९६ ॥ न आधं न ब्याधं अगाध सरूपे । अखंडत प्रताप आदि अछै बिभूते । न जनमं न मरनं न बरनं न ब्याधे । अखडे प्रचंडे अदडे असाधे ॥ ७ ॥९७ ॥ न नेहं न गेहं सनेह सनाथे । उदडे अमंडे प्रचंडे प्रमाथे । न जाते न पाते न सत्रे न मित्रे । सु भूते भविक्खे भवाने अचित्रे ॥ ८ ॥ ९८ ॥ न रायं न रंक न रूपं न रेखं । न लोभं न चोभं अभूतं अभेखं । न सत्रं न मित्रं न नेहं न गेहं । सदैवं सदा सरब सरबत्र सनेहं ॥९॥९९॥ न कामं न क्रोधं न लोभं न मोहं । अजोनी अछै आदि अद्वै अजोहं । न जनमं न मरनं न बरनं न ब्याधं । न रोगं न सोगं अभै निरबिखाधं ॥ १० ॥ १०० ॥ अछेदं अभेदं अकरमं अकालं ।

कितने ही कृष्ण जैसे छोटे-छोटे जीव पैदा किए और पुन.पुनः पैदा कर फिर उनको नष्ट किया । हे प्रभु, तुम गहन, गम्भीर, अभय, अद्वैत एवं अविनाशी हो तथा कालातीत परम पूर्ण प्रकाशस्वरूप हो ॥ ६ ॥ ९६ ॥ तुम्हे कोई व्याधि ग्रसित नही कर सकती, तुम गम्भीर हो । तुम्हारा प्रताप एवं विभूतियाँ अक्षय है और उनका कभी भी खण्डन नही होता । तुम्हारा न जन्म होता है, न मृत्यु, न तुम्हारा कोई वर्ण-विशेष है और न तुम्हे कोई शारीरिक सुख होता है । तुम अखण्ड, प्रचण्ड, दण्डातीत एवं असाध्य हो ॥ ७ ॥ ९७ ॥ तुम्हे किसी से विशेष प्रेम नही है और तुम्हारा कोई विशेष घर नही है, परन्तु फिर भी तुम स्नेहपूर्ण एव सबके साथ हो । तुम किसी के निमन्त्रण मे नही और तुम्हारा कोई (तर्कों से) मण्डन नही कर सकता । तुम प्रचण्ड हो, तुम्हारा कोई शत्रु, मित्र, जाति-पाँति आदि नही है । तुम भूत, भविष्य और वर्तमान मे अवस्थित हो, परन्तु निराकार हो ॥ ८ ॥ ९८ ॥ न तुम राजा हो, न भिखारी, न ही तुम्हारा कोई रूप है, न ही तुम्हारा कोई आकार है । लोभ, क्षोभ, भूतो एवं वेश से तुम परे हो और तुम्हारा कोई शत्रु, मित्र, राग, द्वेष और घर-विशेष नही है । तुम सदैव सर्व स्थानो मे रमण करनेवाले एवं सबसे स्नेह करनेवाले हो ॥ ९ ॥ ९९ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मोह तुम्हे नही है । तुम अयोनि, अक्षय, अनादि, अद्वैत हो और तुम्हे देखा नही जा सकता । जन्म, मरण, व्याधि, वर्ण आदि से तुम परे हो । रोग, शोक से परे (हे प्रभु !) तुम अभय एव विषयातीत हो ॥ १० ॥ १०० ॥ तुम नष्ट न होनेवाले अभेद,

अखंडं अभंडं प्रचंडं अपालं। न तातं न मातं न जातं न कायं। न नेहं न गेहं न भरमं न मायं॥ ११ ॥ १०१ ॥ न रूपं न भूपं न कायं न करमं। न त्रासं न प्रासं न भेदं न भरमं। सदैवं सदा सिद्‌ध ब्रिद्‌ध सरूपे। नमो एक रूपे नमो एक रूपे॥ १२ ॥ ॥ १०२ ॥ न्रिउकतं प्रभा आदि अनुकतं प्रतापे। अजुगतं अछै आदि अविकते अथापे। बिभुगत अछै आदि अच्छै सरूपे। नमो एक रूपे नमो एक रूपे॥ १३ ॥ १०३ ॥ न नेहं न गेहं न सोकं न साकं। परेअं पवित्रं पुनीतं अताकं। न जातं न पातं न मित्रं न मंत्रे। नमो एक तत्रे नमो एक तंत्रे॥ १४ ॥ ॥ १०४ ॥ न धरमं न भरमं न सरमं न साके। न बरमं न चरमं न करमं न बाके। न सत्रं न मित्र न पुत्रं सरूपे। नमो आदि रूपे नमो आदि रूपे॥ १५ ॥ १०५ ॥ कहूँ कंज के मंज

निष्कर्म एव काल के प्रभाव से मुक्त हो। तुम अखण्ड, प्रचण्ड हो और तुम्हे अपने पालन के लिए किसी (माता) की आवश्यकता नही। तुम्हारा कोई पिता, माता, जाति अथवा शरीर नही है और इसीलिए तुम्हे किसी से स्नेह विशेष नही है तथा न तुम्हे कोई भ्रम है और न ही तुम्हारा कोई घर है। तुम निर्विकार हो॥ ११ ॥ १०१ ॥ न तुम्हारा कोई स्वरूप है और (राजा होते हुए भी) न तुम्हारा शरीर है और न ही तुम्हे कोई कर्म करना पडता है। तुम्हे कोई डर भी नही और न ही तुम्हे कोई भ्रम है। तुम अभेद सत्ता हो तथा सर्वदा सिद्धियो के बृहद् स्वरूप हो। हमेशा समरूप रहनेवाले (हे प्रभु!) तुम्हे मैं नमस्कार करता हूँ॥ १२ ॥ १०२ ॥ निरुक्त ग्रन्थो की प्रभा भी तुम ही हो और तुम्हारे प्रताप का वर्णन नही किया जा सकता। किसी भी युक्ति से तुमको वश मे नही किया जा सक्ता। तुम अक्षय, अनादि, अव्यक्त एव सब स्थापनाओ से परे हो। तुम सारी विभूतियो के समूह, अनादि एव अक्षय स्वरूप हो। हे समरूप रहनेवाले, तुम्हे मेरा नमस्कार है॥ १३ ॥ १०३ ॥ स्नेह-विशेष, घर-विशेष तुम्हारा कोई नही है और न ही तुम्हे कोई शोक या तुम्हारा कोई संबधी-विशेष हैं। तुम परमपवित्र एव सभी आश्रयो से परे हो। न तुम्हारी कोई जाति-पाँति है, न तुम्हारा कोई मित्र है और न ही तुम्हे जानने का कोई विशेष मत्र है। एक-तत्र (प्रेम का धागा) स्वरूप प्रभु, तुम्हे मेरा प्रणाम है॥ १४ ॥ १०४ ॥ तुम्हारा कोई धर्म-विशेष नही है और तुम भ्रमो, श्रमो, सबधो से परे हो। आकार, कर्म, एव वाणी से भी तुम परे हो। शत्रु, मित्र, पुत्रस्वरूप भी तुम नही हो। हे (सृष्टि के) आदिस्वरूप प्रभु, तुम्हे मेरा नमस्कार है॥ १५ ॥ १०५ ॥

के भरम भूले। कहूँ रंक के राज के धरम अलूले। कहूँ देस के भेस के धरम धामे। कहूँ राज के साज के बाज तामे॥ १६॥ १०६॥ कहूँ अच्छ के पच्छ के सिद्ध साधे। कहूँ सिद्ध के बुद्ध के ब्रिद्ध लाधे। कहूँ अंग के रंग के संग देखे। कहूँ जंग के रंग के रंग पेखे॥१७॥१०७॥ कहूँ धरम के करम के हरम जाने। कहूँ धरम के करम के भरम माने। कहूँ चार चेशटा कहूँ चित्र रूपं। कहूँ परम प्रज्ञा कहूँ सरब भूपं मू०ग्रं०२१ ॥ १८॥ १०८॥ कहूँ नेह ग्रेहं कहूँ देह दोखं। कहूँ अउखधी रोग के शोक सोखं। कहूँ देव बिद्या कहूँ दैत-बानी। कहूँ जच्छ गंध्रब किनर कहानी॥ १६॥ १०६॥ कहूँ राजसी सातकी तामसी हो। कहूँ जोग बिद्या धरे तापसी हो। कहूँ रोग हरता कहूँ जोग जुगतं। कहूँ भूम की भुगत मै भरम भुगतं॥२०॥११०॥ कहूँ देव कंनिआ कहूँ दानवी हो।

कही तुम भ्रमर-रूप होकर कमल फूल की सुगन्धि लेने मे भूले फिर रहे हो, कही तुम राजा और रंक के धर्म को बता रहे हो, कही तुम देश और वेशो के धर्मो का धाम बने बैठे हो और कही राज-सज्जा मे बैठकर तमस्-वृत्ति को साकार कर रहे हो॥ १६॥ १०६॥ हे प्रभु, कही तुम ज्ञान-विज्ञान के माध्यम से सिद्धियों की साधना कर रहे हो और कही सिद्धियों और प्रज्ञा के भेदो को खोज रहे हो। कही तुम सृष्टि-रचना के प्रत्येक अग के रंग के साथ दिखाई दे रहे हो और कही युद्ध की युद्धशीलता के रग में दृष्टमान हो रहे हो॥ १७॥ १०७॥ कही तुम धर्म के और कर्म के धाम के रूप मे जले जाते हो और कही कर्मकाण्ड-स्वरूपी धर्म को भ्रम माननेवाले माने जाते हो। कही तुम्हारी चेष्टाएँ परम सुन्दर है और कही तुम सर्व सम्राटों के रूप मे तथा परम प्रज्ञा के रूप मे दिखाई देते हो॥ १८॥ १०८॥ हे प्रभु, कही तुम स्नेह-रूप ग्रहणकर्ता-स्वरूप और कही देह के दु ख-स्वरूप दिखाई पड़ते हो। कही तुम ही ओषधि बनकर रोगो से उत्पन्न दुःखो का हरण करते हो। कही तुम देव, विद्या, दानव, वाणी हो और कही तुम ही यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों की कथा-वार्त्ता हो॥ १९॥ १०९॥ तुम ही कही पर रजो, सत्त्व और तमस् गुण को धारण करनेवाले हो और तुम ही योगविद्या के धारक तपस्वी हो। तुम ही कही पर रोगो का हरण करनेवाले हो और तुम ही कही योग की युक्ति हो। हे प्रभु, कही पर तुम ही भूमि को भोगनेवाले भ्रम मे पड़े हुए व्यक्ति के स्वरूप में दिखाई देते हो॥ २०॥ ११०॥ तुम ही कही

कहूँ जच्छ बिद्या धरे मानवी हो। कहूँ राजसी हो कहूँ राज कंनिआ। कहूँ स्रिशटिकी प्रिशटकी रिशट पुंनिआ ॥२१॥१११॥ कहूँ बेद बिद्या कहूँ ब्योम बानी। कहूँ कोक की काब्य कत्थे कहानी। कहूँ अद्र सारं कहूँ भद्र रूपं। कहूँ मद्रबानी कहूँ छिद्र रूपं ॥ २२ ॥ ११२ ॥ कहूँ बेद बिद्या कहूँ काब रूपं। कहूँ चेशटा चार चित्रं सरूपं। कहूँ परम पुरान को पार पावै। कहूँ बैठ कुरान के गीत गावै ॥ २३ ॥ ११३ ॥ कहूँ सुद्ध सेखं कहूँ ब्रहम धरमं। कहूँ ब्रिध अवसथा कहूँ बाल करमं। कहूँ जुआ सरूपं जरा रहत देहं। कहूँ नेह देहं कहूँ त्याग ग्रेहं ॥ २४ ॥ ११४ ॥ कहूँ जोग भोग कहूँ रोग रागं। कहूँ रोग हरता कहूँ भोग त्यागं। कहूँ राज साजं कहूँ राज रीतं। कहूँ पूरण प्रगिआ कहूँ परम प्रीतं ॥ २५ ॥ ११५ ॥ कहूँ आरबी तोरकी पारसी हो। कहूँ पहलवी पसतवी संसक्रिती

पर देवकन्या और तुम ही कही पर दानवकन्या के रूप में दिखाई देते हो। कही पर यक्षविद्या को धारण करनेवाले मानव हो और कही रजोगुण को धारण करनेवाली चचल राजकन्या भी तुम्ही हो। हे प्रभु, सृष्टि के तल का सुदृढ आधार भी तुम्ही हो ॥ २१ ॥ १११ ॥ तुम ही कही पर वेदविद्या, आकाशवाणी हो तथा कही पर सामान्य कवियो की कथा-कहानी हो। कही तुम लौहस्वरूप हो और कही तुम्हारा स्वरूप अत्यन्त सुन्दर है। तुम ही कही पर मधुर वाणी के रूप मे प्रतिष्ठित हो और तुम ही कही पर छिद्रान्वेषण करनेवाली आलोचनात्मक वार्त्ता हो ॥२२॥११२॥ हे प्रभु, कही तुम वेदविद्या और कही सामान्य काव्य का रूप हो। कही तुम सुन्दर चेष्टाओ के रूप मे अभिव्यक्त हो रहे हो। कही तुम पुराणो के मर्म का हृदयगम कर रहे हो और कही पर कुर्आन शरीफ के गीतो का गायन कर रहे हो ॥ २३ ॥ ११३ ॥ कही तुम शुद्ध शेख हो और कही ब्राह्मण-धर्म का पालन करनेवाले हो। कही तुम वृद्धावस्था मे हो और कही बाल-कर्मो को करनेवाले हो। कही तुम युवास्वरूप मे बुढ़ापे से रहित हो और कही स्नेह और त्याग के स्वरूप हो ॥ २४ ॥ ११४ ॥ कही योग और भोग तथा रोग और राग के रूप मे हो और कही रोग-नाशक और भोगो को त्यागनेवाले स्वरूप मे हो। हे प्रभु, कही तुम राजसी सज्जा से युक्त हो और कही राज्य-विहीन हो। कही पर तुम पूर्ण प्रज्ञास्वरूप होते हुए अलिप्त हो, परन्तु कही पर तुम ही परम प्रीति-स्वरूप हो ॥ २५ ॥ ११५ ॥ तुम ही कही अरव, तुर्क और पारसी हो तथा तुम ही कही पहलवी, पश्तदी तथा सस्कृत के ज्ञाता हो। कही तुम

हो। कहूँ देस भाखिआ कहूँ देवबानी। कहूँ राज बिद्या कहूँ राजधानी ॥ २६ ॥ ११६ ॥ कहूँ मंत्र बिद्या कहूँ तंत्र सारं। कहूँ जंत्र रीतं कहूँ शसत्र धारं। कहूँ होम पूजा कहूँ देव अरचा। कहूँ पिंगुला चारणी गीत चरचा ॥ २७ ॥ ॥ ११७ ॥ कहूँ बीन बिद्या कहूँ गान गीतं। कहूँ मलेछ भाखिआ कहूँ बेद रीतं। कहूँ न्रित बिद्या कहूँ नाग बानी। कहूँ गारड़ू गूड़ कत्थै कहानी ॥ २८ ॥ ११८ ॥ कहूँ अचछरा पचछरा मचछरा हो। कहूँ बीर बिद्या अभूतं प्रभा हो। कहूँ छैल छाला धरे छत्रधारी। कहूँ राज साजं धिराजाधिकारी ॥ २९ ॥ ॥११९॥ नमो नाथ पूरे सदा सिद्ध दाता। अछेदी अछै आदि अद्वै बिधाता। न त्रसतं न ग्रसतं समसतं सरूपे। नमसतं नमसतं तुअसतं अभूते ॥ ३० ॥ १२० ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ अब्यकत तेज अनभउ प्रकास। अच्छै सरूप मू०ग्रं०२२

देश की सामान्य बोली के रूप मे प्रतिष्ठत हो और कही तुम ही देववाणी (सस्कृत) हो। कही तुम राजाओ की विद्या हो और कही पर तुम स्वय राजाओ का अधिष्ठान हो ॥ २६ ॥ ११६ ॥ तुम ही कही मत्रविद्या और तत्रो का सार हो और तुम ही कही यत्रो की प्रक्रिया एव शस्त्रों को धारण करनेवाले हो। तुम ही कही होम-यज्ञ एवं देव-अर्चना हो और तुम ही कही पिंगल (नियमानुसार पद्य-रचना), चारणो को स्तुतिपरक वाणी और सामान्य कवियों के गीतो की चर्चा का विषय हो ॥२७॥११७॥ तुम कही वीणा की विद्या और कही ज्ञान का गीत हो। कही तुम म्लेच्छ भाषा हो और कही वैदिक विधि-विधान हो। कही तुम नृत्यकला और कही सुन्दर सगीत हो और कही गरुड के समान गूढ एव गम्भीर कथाएँ कहने वाले हो ॥ २८ ॥ ११८ ॥ कही तुम ज्ञानस्वरूपी अक्षर हो। कही चचल अप्सरा हो। कही वीरोचित विद्या, एवं अद्वितीय सौदर्य हो। कही तुम सुन्दर नवयुवक हो, कही मृगछाला पर बैठनेवाले हो तथा कही पर छत्र धारण करनेवाले राजाधिराज हो ॥ २९ ॥ ११९ ॥ हे सदा सिद्धियों को प्रदान करनेवाले पूर्णनाथ, तुम्हे मेरा प्रणाम है। तुम अभजन, अक्षय, अनादि, अद्वैत एव विधाता हो। न तुम्हे किसी से भय है, न तुम किसी वधन मे ग्रस्त हो और तुम सर्वभूतो के स्वरूप हो। (सर्वभूतों के स्वरूप होते हुए भी) भूतो से अतीत प्रभु, तुम्हे मेरा नमस्कार है ॥ ३० ॥ १२० ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ हे प्रभु, तुम अव्यक्त, तेज हो और अनुभव से प्रकाशित होनेवाले हो। तुम अक्षयस्वरूप अद्वैत, अविनाशी, अभजन एवं अक्षय तेज का भडार, दाता, सबमे प्रच्छन्न रूप

अद्वै अनास । अनतुट्ट तेज अनखुट भंडार । दाता दुरंत सरबं प्रकार ॥ १ ॥ १२१ ॥ अनभूत तेज अनछिज्ज गात । करता सदीव हरता सनात । आसन अडोल अनभूत करम । दाता दइआल अनभूत धरम ॥ २ ॥ १२२ ॥ जिह सत्र मित्र नही जनम जात । जिह पुत्र भ्रात नही मित्र मात । जिह करम भरम नही धरम ध्यान । जिह नेह गेह नही ब्योत बान ॥ ३ ॥ ॥ १२३ ॥ जिह जात पात नही सत्र मित्र । जिह नेह गेह नही चिहन चित्र । जिह रंग रूप नही राग रेख । जिह जनम जात नही भरम भेख ॥ ४ ॥ १२४ ॥ जिह करम भरम नही जात पात । नही नेह गेह नही पित्र मात । जिह नाम थाम नही बरग ब्याध । जिह रोग सोक नही सत्र साध ॥ ५ ॥ ॥ १२५ ॥ जिह त्रास वास नही देह नास । जिह आदि अंत नही रूप रास । जिह रोग सोग नही जोग जुगति । जिह त्रास आस नही भूम भुगति ॥ ६ ॥ १२६ ॥ जिह काल ब्याल कटिओ न अंग । अच्छै सरूप अक्खै अभंग । जिह नेति नेति

से अवस्थित हो ॥ १ ॥ १२१ ॥ हे अनुभूति के माध्यम से जाने जा सकने वाले तेजस् एव अविनाशी प्रभु, तुम कर्ता और सदैव दु.खो के हर्ता हो। तुम्हारा आसन अटल तथा तुम सर्वभूतो के कर्मो से परे रहनेवाले दयालु एव सामान्य जीवो के धर्मो से परे हो ॥ २ ॥ १२२ ॥ तुम वह परम सत्ता हो जिसका शत्रु, मित्र, जन्म, जाति, पुत्र, भ्राता एवं माता आदि कोई नही है। तुम वह हो जो कर्मो, भ्रमो तथा कथित धार्मिक साधनाओं, स्नेह, घर एव योजनाओ की चितन पद्धति से परे हो ॥ ३ ॥ १२३ ॥ तुम वह शक्ति हो जिसकी जाति-पाँति, शत्रु-मित्र, स्नेह, घर, चिह्न, चित्र, रग-रूप, राग, आकार, जन्म, जाति-भ्रम एवं वेश आदि कुछ नही है ॥ ४ ॥ १२४ ॥ तुम वह शक्ति हो जिसको कर्म, भ्रम, जाति-पाँति स्नेह, घर, माता, पिता, नाम और वर्गीकरण (अलगाव) की व्याधियो से ग्रसित नही माना जाता और तुम्हारे लिए रोग, शोक, शत्रु एव साधु आदि का कोई विशेष महत्त्व नही है ॥ ५ ॥ १२५ ॥ तुम वह हो जो भय, आवाज, देहनाश, आदि-अत, रूप-राशि, रोग-शोक, योग-युक्ति, भय-आशा, भूमि-भोग आदि से परे हो ॥ ६ ॥ १२६ ॥ तुम वह हो जिसको काल रूपी सर्प ने कभी नही काटा। तुम अक्षयस्वरूप एव अभजनशील वह शक्ति हो जिसे वेद नेति-नेति कहकर उच्चारण करते है और जिसे कतेब (सामी धर्मो की चार धर्म पुस्तकें— तौरेत, ज़बूर, इजील और कुर्आन)

उचरंत बेद। जिह अलख रूप कत्थत कतेब ॥ ७ ॥ १२७ ॥ जिह अलख रूप आसन अडोल। जिह अमित तेज अचछै अतोल। जिह ध्यान काज मुन जन अनंत। कई कलप जोग साधत दुरंत ॥८॥१२८॥ तन सीत घाम बरखा सहंत। कई कलप एक आसन बितंत। कई जतन जोग बिद्या बिचार। साधंत तदपि पावत न पार ॥ ९ ॥ १२९ ॥ कई उरध बाह देसन भ्रमंत। कई उरध मद्ध पावक झुलंत। कई सिम्रिति शासत्र उचरंत बेद। कई कोक काब कत्थत कतेब ॥ १० ॥ १३० ॥ कई अगन होत्र कई पउन अहार। कई करत कोट स्रिति को अहार। कई करत साक पै पत्र भचछ। नही तदपि देव होवत प्रतचछ ॥ ११ ॥ १३१ ॥ कई गीत गान गंधरब रीत। कई बेद शासत्र बिद्या प्रतीत। कहूँ बेद रीत जगिआदि करम। कहूँ अगन होत्र कहूँ तीरथ धरम ॥१२॥१३२॥ कई देस देस भाखा रटंत। कई देस देस बिद्या पड़ंत। कई करत भाँत

अव्यक्त रूप मानते है ॥ ७ ॥ १२७ ॥ तुम वह हो जो अदृष्ट रूप से अटल आसन पर विराजमान हो और जिसके असीमित एव अक्षय तेज की तुलना नही की जा सकती। तुम वह शक्ति हो जिसका ध्यान अनत मुनि जन करते हैं और योगी कई कल्पों तक दुष्कर साधनाओ मे लीन रहते है ॥ ८ ॥ १२८ ॥ तुम्हे पाने के लिए वे तन पर सर्दी, गर्मी, वर्षा को सहते हुए कई कल्पो तक एक ही आसन मे बैठे रहते हैं। कई लोग यत्न-पूर्वक योगविद्या का अनुसरण करते हुए साधना करते है, परन्तु फिर भी तुम्हारा पार नही पा सकते ॥ ९ ॥ १२९ ॥ कई तपस्वी बाँहों को आकाशोन्मुख करके देशो का भ्रमण करते है। कई ऊपर-नीचे अग्नि में झुलसते है, कई स्मृतियों, शास्त्रों एव वेदों का उच्चारण करते है। कई काव्य-रचना एवं कतेब आदि धर्मग्रन्थो की रचना करते है ॥१०॥१३०॥ कई जीव हवन आदि करते है तथा कई मात्र पवन के आहार पर ही जीवित रहते हैं। कई लोग केवल मिट्टी का आहार करते है और कई केवल पत्तों आदि का भक्षण कर उस प्रभु को पाने का कठिन व्रत लेते है, परन्तु फिर भी वह देवाधिदेव प्रत्यक्ष नही होता ॥ ११ ॥ १३१ ॥ गीत, गायन एवं गधर्व-क्रियाएँ अनेक हैं। कई लोग वेद-शास्त्र आदि विद्याओ मे ही लिप्त हैं। कही वैदिक रीति से यज्ञादि कर्म हो रहे है, कही हवन और कही तीर्थाटन के धर्म का पालन किया जा रहा है ॥ १२ ॥ १३२ ॥ कही देश-विदेश की भाषाओं एव विद्याओ को पढ़ा एव रटा जा रहा है। कई

भाँतन बिचार । मू०ग्रं०२३ नही नैक तास पायत न पार ।। १३ ।। ।। १३३ ।। कई तीरथ तीरथ भरमत सु भरम । कई अगन होत्र कई देव करम । कईं करत बीर बिद्या बिचार । नही तदपि तास पायत न पार ।। १४ ।। १३४ ।। कहूँ राज रीत कहूँ जोग धरम । कई सिम्रित सासत्र उचरत सु करम । निउली आदि करम कहूँ हसत दान । कहूँ अस्वमेध मख को बखान ।। १५ ।। १३५ ।। कहूँ करत ब्रहम बिद्या बिचार । कहूँ जोग रीत कहूँ बिरध चार । कहूँ करत जच्छ गधरब गान । कहूँ धूप दीप कहूँ अरघ दान ।। १६ ।। १३६ ।। कहूँ पित्र करम कहूँ बेद रीत । कहूँ न्रित नाच कहूँ गान गीत । कहूँ करत सासत्र सिम्रिति उचार । कई भजत एक पग निराधार ।। १७ ।। ।। १३७ ।। कई नेह देह कई गेह बास । कई भ्रमत देस देसन उदास । कई जल निवास कई अगन ताप । कई जपत उरध लटकंत जाप ।। १८ ।। १३८ ।। कई करत जोग कलपं

लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से उस प्रभु के बारे मे विचार-विश्लेषण कर रहे हैं, परन्तु उस महान शक्ति के बारे मे जरा सा भी नही जाना जा सका ।। १३ ।। १३३ ।। कई लोग भ्रमवश अनेको तीर्थो पर भ्रमण करते है और कई हवन आदि देवकर्मो मे प्रवृत्त है । कई वीर विद्या-विचार मे लीन है, परन्तु फिर भी कोई उस प्रभु का अन्त नही पा सका ।। १४ ।। १३४ ।। कही राजसी कार्य हो रहे है और कही योगधर्म का निर्वाह हो रहा है । कई स्मृतियो, शास्त्रो के उच्चारण का सुकर्म कर रहे है और कही न्योली आदि साधनाएँ करके हाथियो को दानस्वरूप दिया जा रहा है । कही अश्वमेध यज्ञ हो रहे है और उनकी महिमा का वर्णन किया जा रहा है ।। १५ ।। १३५ ।। कही ब्राह्मणगण ब्रह्मविद्या का विचार कर रहे है और कही योग्य रीति से चारों आश्रमो का पालन किया जा रहा है । कही यक्ष-गन्धर्व गायन कर रहे है और कही धूप-दीप आदि के पश्चात् दान-पुण्य किया जा रहा है ।। १६ ।। १३६ ।। कही पितृकर्म और वेदविधानो का पालन किया जा रहा है, तो कही नृत्य, गायन आदि चल रहा है । कही स्मृतियो एव शास्त्रो का उच्चारण हो रहा है, तो कई जीव एक पैर पर खड़े होकर उस प्रभु का भजन कर रहे हैं ।। १७ ।। १३७ ।। कई लोग शारीरिक मोह के वश गृहस्थ आदि मे लिप्त है और कई उदासीन होकर देशाटन मे लगे हुए है । कई साधक जल मे निवास कर रहे हैं और कई अग्नि मे तप रहे है । कई उलटे लटककर उस प्रभु का जाप कर रहे है ।। १८ ।। १३८ ।। कई लोग कल्पो

प्रजंत। नही तदपि तास पायत न अंत। कई करत कोटि बिद्या बिचार। नही तदपि दिशट देखे मुरार॥ १९॥ १३९॥ बिन भगत सकत नही परत पान। बहु करत होम अर जग्ग दान। बिन एक नाम इक चित्त लीन। फोकटो सरब धरमा बिहीन॥ २०॥ १४०॥ ॥ त्व प्रसादि॥ ॥ तोटक छंद॥ जै जंपहु जुग्गण जूह जुअं। भै कंपहु मेर पयाल भुअं। तप तापस सरब जलेर थलं। धन उचरत इंद्र कुमेर बलं॥ १॥ ॥ १४१॥ अनखेद सरूप अभेद अभिअं। अनखंड अभूत अछेद अछिअं। अनकाल अपाल दिआल असुअं। जिह ठटीअं मेर अकास भुअं॥ २॥ १४२॥ अनखंड अमंड प्रचंड नरं। जिह रचीअं देव अदेव बरं। सभ कीनी दीन ज़िमीन ज़मा। जिह रचीअं सरब मकीन मका॥ ३॥ १४३॥ जिह राग न रूप न रेख रखं। जिह ताप न साप न सोक सुखं। जिह रोग न सोग न भोग भुयं। जिह खेद न भेद न छेद छयं॥ ४॥ ॥ १४४॥ जिह जात न पात न मात पितं। जिह रचीअं

तक योगसाधना करते है, परन्तु फिर भी उस (प्रभु) का अन्त नही पा सके। कई करोड़ो विद्याओं पर विचार कर रहे हैं, परन्तु फिर भी वह मुरारि उन्हे प्रत्यक्ष नही होता॥ १९॥ १३९॥ विना भक्ति के कोई हाथ नही पकड़ता। यद्यपि बहुत से हवन, यज्ञ, दान आदि किये जायँ तो भी एक प्रभु के नाम में चित्त को लीन किये बिना सभी कर्मकाण्ड यथार्थ धर्म से विहीन माने जायँगे॥२०॥१४०॥ ॥ तेरी कृपा से॥ ॥ तोटक छंद॥ सब मिलकर उस प्रभु की जय-जयकार करो जिसके भय से धरती, पाताल और सुमेरु पर्वत तक कांपते हैं। उसी को पाने के लिए जल, स्थल सभी जगह तपस्वी तपस्या करते है और इन्द्रादिक भी उसके बल को महान मानते हैं॥ १॥ १४१॥ वह प्रभु अशोक, अभेद एवं अभय है। वह प्रभु अखण्ड, भूतों से परे, अभंजनशील, अक्षय, कालातीत, स्वयंभू, दयालु है और वही सुमेरु, आकाश एव धरती का अधिष्ठान है॥२॥१४२॥ वह अखण्ड, मण्डनातीत, प्रचण्ड आदिपुरुष है, जिसने देव, अदेव, धरती, समस्त विश्व और विश्व के दृष्टिमान पदार्थों की रचना की॥३॥१४३॥ उसको न किसी से स्नेह-विशेष है और न ही उसका कोई आकार-विशेष है। ताप, शाप, शोक, सुख, रोग, शोक, भोग, खेद, भेद एवं नश्वरता का उस पर कोई प्रभाव नही पड़ता॥ ४॥ १४४॥ उसकी जाति, माता-पिता आदि नही है और उसी ने धरती, क्षत्रिय एवं छत्र की रचना

छत्री छत्र छितं। जिह राग न रेख न रोग भणं। जिह द्वैख न दाग न दोख गणं ॥ ५ ॥ १४५ ॥ जिह अंडह ते ब्रहमंड (मू०ग्रं०२४) रच्यो। दस चार करी नव खंड सच्यो। रज तामस तेज अतेज किओ। अनभउ पद आप प्रचंड लिओ ॥ ६ ॥ ॥ १४६ ॥ त्रिअ सिंधर बिंध नगिंध नगं। त्रिअ जच्छ गंध्रब फणिंद भुजं। रच देव अदेव अभेव नरं। नरपाल न्रिपाल कराल त्रिगं ॥ ७ ॥ १४७ ॥ कई कीट पतंग भुजंग नरं। रचि अंडज सेतज उतभुजं। कीए देव अदेव सराध पितं। अनखंड प्रताप प्रचंड गतं ॥ ८ ॥ १४८ ॥ प्रभ जात न पात न जोत जुतं। जिह तात न मात न भ्रात सुतं। जिह रोग न सोग न भोग भुअं। जिह जंपहि किंनर जच्छ जुअं ॥ ९ ॥ ॥ १४९ ॥ नर नार नपुंसक जाहि कीए। गण किंनर जच्छ भुजंग दीए। गज बाज रथादिक पांत गनं। भव भूत भविक्ख भवान तुअं ॥ १० ॥ १५० ॥ जिह अंडज सेतज जेर रजं। रच भूम अकास पताल जलं। रच पावक पउन प्रचंड बली।

की है। उसको राग, द्वेष का रोग नही है और ईर्ष्या आदि की कालिमा से वह मुक्त है ॥ ५ ॥ १४५ ॥ जिसने एक अडे (हिरण्यगर्भ) मे सारे विश्व की रचना करके चौदह भुवनो एव नौ खण्डो का सृजन किया। उसी प्रभु ने रज, तमस्, तेज, अधकार का सृजन किया और स्वयं प्रचण्ड रूप से इस सारी सृष्टि मे शोभायमान हुआ ॥ ६ ॥ १४६ ॥ उसने समुद्र, विंध्य पर्वत जैसे नगेन्द्र को वनाया तथा यक्ष, गन्धर्व, शेषनाग, देव, अदेव, नर, नरपालो और भयकर विषधरो का सृजन किया ॥ ७ ॥ १४७ ॥ कई कीडे, पतगे, सर्प एव मानवो-सहित उसने विभिन्न अंडजो, स्वेदजों एव वनस्पति (उद्भिजो) की रचना की। उसी ने देव, अदेव, श्राद्ध, पितृ इत्यादि का सृजन किया और वही अपने अखण्ड, प्रचण्ड प्रताप-सहित इन सवमें गतिमान हुआ ॥ ८ ॥ १४८ ॥ प्रभु की कोई जाति नही है और वह सवमे ज्योति-रूप होकर संयुक्त है। जिस प्रभु के माता-पिता, भ्राता, पुत्र आदि कोई नही और जिसे रोग, शोक और भूमि-भोग से कोई लगाव नही, उसे यक्ष एव किन्नर आदि स्मरण कर रहे हैं ॥ ९ ॥ १४९ ॥ नर-नारी एवं नपुंसक सब उसी की रचना हैं। गण, किन्नर, यक्ष, हाथी, घोड़े, रथ आदि सब उसी की देन हैं। वह प्रभु वर्तमान, भूत, भविष्य मे विद्यमान है ॥ १० ॥ १५० ॥ उस प्रभु ने अण्डज, स्वेदज, जेरज से पैदा होनेवाले जीवो की रचना की और भूमि, आकाश, पाताल एव जल का

बन जासु किओ फल फूल कली ॥ ११ ॥ १५१ ॥ भूअ मेर अकाश निवास छितं । रच रोज इकादस चंद्र ब्रितं । दुत चंद दिनीसह दीप दई । जिह पावक पउन प्रचंड मई ॥ १२ ॥ ॥ १५२ ॥ जिह खंड अखंड प्रचंड कीए । जिह छत्र उपाइ छिपाइ दीए । जिह लोक चतरदस चार रचे । गण गंध्रब देव अदेव सचे ॥ १३ ॥ १५३ ॥ अनधूत अभूत अछूत मतं । अनगाध अब्याध अनादि गतं । अनखेद अभेद अछेद नरं । जिह चार चतर दिस चक्र फिरं ॥ १४ ॥ १५४ ॥ जिह राग न रंग न रेख रुगं । जिह सोग न भोग न जोग जुगं । भूअ भंजन गंजन आदि सिरं । जिह बंदत देव अदेव नरं ॥ १५ ॥ ॥ १५५ ॥ गण किंनर जच्छ भुजंग रचे । मणि माणक मोती लाल सुचे । अनभंज प्रभा अनगंज ब्रितं । जिह पार न पावत पूर मतं ॥ १६ ॥ १५६ ॥ अनखंड सरूप अडंड प्रभा । जै जंपत बेद पुरान सभा । जिह बेद कतेब अनंत कहै । जिह भूत

सृजन किया । उसी ने अग्नि, पवन रूपी प्रचण्ड शक्तियों को बनाया और उसी ने वनो का निर्माण किया जिसमे फल-फूल, कलियाँ आदि शोभायमान हैं ॥ ११ ॥ १५१ ॥ उसी ने भूमि, सुमेरु पर्वत, आकाश एव निवास के लिए इस धरती का निर्माण किया तथा दिन-रात, चन्द्र, तिथियो आदि की रचना की । चन्द्र और सूर्य जैसे दीपो का निर्माण किया और अग्नि, पवन जैसी प्रचण्ड शक्तियो को बनाया ॥ १२ ॥ १५२ ॥ जिसने बृहद् खण्डो का निर्माण किया और उन खण्डो पर राज्य करनेवाले क्षत्रपतियों को रचकर उनका नाश भी किया । उसी प्रभु ने चौदह सुन्दर लोको का निर्माण किया जिसमे गण, गन्धर्व, देव, अदेव आदि अवस्थित है ॥ १३ ॥ १५३ ॥ वह प्रभु कालिमा से मुक्त, भूतो से परे और अगम्य है । वह गहन, गम्भीर, व्याधि-रहित एव अनादि काल से गतिशील है । वह खेद-रहित, अभेद्य, अक्षय पुरुष है और उसका चक्र चारो दिशाओ मे गतिशील है ॥ १४ ॥ १५४ ॥ वह राग, रंग, आकार से परे, शोक, भोग, योगातीत है । वह पृथ्वी का नाश करनेवाला और सृजन करनेवाला आदि सृजनकर्ता है, जिसकी वन्दना देव, अदेव और मानव सभी करते है ॥१५॥१५५॥ उसी ने गण, किन्नर, यक्ष, सर्प, मणि-माणिक्य, मोती, लाल, हीरे आदि की रचना की । उसकी प्रभा अनन्त और उसका वृत्तान्त अनन्त है एव ससार के सम्पूर्ण मत भी उसका अन्त नही पा सकते ॥ १६ ॥ १५६ ॥ उस प्रभु का स्वरूप अखण्ड है और उसका तेज़

अभूत न भेद लहै ।। १७ ।। १५७ ।। जिह बेव पुरान कतेब जपै । सुतसिंध अधोमुख ताप तपै । कई कलपन लौ तप ताप करै । नही नेक क्रिपानिध पान परै ।। १८ ।। १५८ ।। जिह फोकट धरम (मू०ग्रं०२५) सभै तजिहै । इक चित क्रिपानिध को भजिहै । तेऊ या भवसागर को तर है । भव भूल न देह पुनर धर है ।। १९ ।। १५९ ।। इक नाम बिना नही कोट ब्रिती । इम बेद उचारत सारसुती । जोऊ वा रस के चस के रस है । तेऊ भूल न काल फधा फस है ।।२०।।१६०।। ।। त्व प्रसादि ।। ।। नराज छंद ।। अगंज आदि देव है अभंज भंज जानीऐ । अभूत भूत है सदा अगंज गंज मानीऐ । अदेव देव है सदा अभेव भेव नाथ है । समस्त सिद्ध ब्रिद्धदा सदीव सरब साथ है।। १ ।। १६१ ।। अनाथनाथ नाथ है अभंजभंज है सदा । अगंज गंज गंज है सदीव सिद्ध ब्रिद्धदा । अनूप रूप सरूप है

अबाध है । वेद-पुराण आदि उसी की जय-जयकार करते हैं । वह प्रभु ही एक ऐसा है जिसे वेद-कतेब ने अनन्त कहा है और भूत-अभूत कोई भी उसके भेद को नही जान सका है ।। १७ ।। १५७ ।। वेद-पुराण और कतेब उसी का स्मरण करते हैं और कई ऋषि-पुत्र सिर झुकाकर उसी के तेज से शक्ति प्राप्त कर रहे है । कई लोग कल्पो तक तपस्या मे लीन हैं, परन्तु फिर भी कृपानिधि प्रभु तनिक सा भी उनके हाथ नही लग सका ।। १८ ।। १५८ ।। जो व्यर्थ के धार्मिक विधि-विधानो का त्याग कर एकचित्त होकर उस कृपा के समुद्र प्रभु का भजन करेगे, वे ही इस भव-सागर को पार कर सकेंगे। और पुनः देह धारण नही करेगे अर्थात् जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जायँगे ।। १९ ।। १५९ ।। करोड़ो वृत्तियाँ व्यर्थ है यदि 'नाम' स्मरण की वृत्ति नही जागी, इस प्रकार के कथनो का उच्चारण वेद एव विद्या की देवी सरस्वती आदि किया करती हैं। जिनको उस रस (नाम-रस) की लगन लग गई वे भूलकर भी काल-फांस मे नही फँसेगे ! ।। २० ।। १६० ।। ।। तेरी कृपा से ।। ।। नराज छंद ।। वह देव (प्रभु) अनश्वर है और दृढ़तम पदार्थो का भी भजन करनेवाले के रूप मे जाना जाता है। वह भूतातीत सूक्ष्म भी है और स्वयं भूत अर्थात् स्थूल भी है, उसे सर्वदा अभंजनशीलो का भी भंजन करनेवाला मानना चाहिए। वह देव भी है, अदेव भी है, रहस्य भी है और सामान्य ज्ञान का नाथ भी है। वह समस्त सिद्धियो की वृद्धि करनेवाला, सदैव सबके साथ रहनेवाला है ।। १ ।। १६१ ।। वह अनाथो का नाथ और अभंज का भंजन करनेवाला है। उसके भडार सदा अक्षय है और सिद्धियो की वृद्धि

अछिज्ज तेज मानीऐ। सदीव सिद्ध सुद्धदा प्रताप पत्र जानीऐ ॥ २ ॥ १६२ ॥ न राग रंग रूप है न रोग राग रेख है। अदोख अदाग अदक्ख है अभूत अभ्रम अभेख है। न तात मात जात है न पात चिहन बरन है। अदेख असेख अभेख है सदीव बिस्व भरन है ॥ ३ ॥ १६३ ॥ बिस्वंभर बिस्वनाथ है बिसेख बिस्व भरन है। जिमी ज़मान के बिखै सदीव करम भरम है। अद्वैख है अभेख है अलेख नाथ जानीऐ। सदीव सरब ठउर मै बिसेख आन मानीऐ ॥ ४ ॥ १६४ ॥ न जंत्र मै न तंत्र मै न मंत्र बसि आवई। पुरान औ कुरान नेति नेति कै बतावई। न करम मै न धरम मै न भरम मै बताईऐ। अगंज आदि देव है कहो सु कैसि पाईऐ ॥ ५ ॥ १६५ ॥ जिमी ज़मान के बिखै समस्त एक जोत है। न घाट है न बाढ है न घाट बाढ होत है। न हान है न बान है समान रूप जानीऐ। मकीन औ मकान अप्रमान तेज मानीऐ ॥ ६ ॥ १६६ ॥ न देह

करनेवाला है। उसका स्वरूप अनुपम है और उसका तेज कभी समाप्त न होनेवाला है। वह सदैव सिद्धियो का शोधन करनेवाला तेज-प्रताप का स्वय ही उदाहरण है ॥ २ ॥ १६२ ॥ वह राग-रग, रूप, रोग, आकार-प्रकार नही है। वह दोषो से परे, बेदाग, अदृष्ट, अभूत, भ्रमों से परे एवं वेशातीत है। उसका माता-पिता, जाति, चिह्न, वर्ण आदि कुछ नही है। वह अदृष्ट, अशेष, अवेश ब्रह्म सदा से सदा के लिए विश्व का पोषणकर्ता है ॥ ३ ॥ १६३ ॥ वह विश्वम्भर विश्व का नाथ है और विश्व का भरण-पोषण करनेवाला है। वह धरती और सारे विश्व मे सदैव हो रहे कर्म के रूप मे प्रतीत होता रहता है। उसे द्वेष-रहित, वेश-रहित, अदृष्ट नाथ के रूप मे जानो और उसे ही सभी स्थानों मे विशेष रूप से अवस्थित मानो ॥ ४ ॥ १६४ ॥ वह यंत्र, मत्र, तत्र से वश में नही आ सकता। उसे ही पुराण और कुर्आन 'नेति-नेति' कहकर पुकारते हैं। वह किसी कर्म, धर्म एव भ्रम-विशेष मे निहित नही है। जो अनश्वर परमात्मा है, बताओ भला उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है ! ॥ ५ ॥ १६५ ॥ इस अखिल विश्व मे एक ही ज्योति है, जो न घटती है और न बढ़ती है। वह ज्योति न कम है, न अधिक है। न उसका कभी क्षय होता है और न वह स्थूल रूप से आदेश आदि देती है। वह हमेशा समरूप से विद्यमान है। वह सभी गृहों और सभी स्थानो मे तेजस्वरूप से अवस्थित है, जिसे (तर्कों से) प्रमाणित नही किया जा सकता ॥६॥१६६॥ वह परमात्मा न देह है, न घर है, न जाति-पाँति है, न मित्र है, न मत्र है; न माता है, न पिता है, न अंश-

है न गेह है न जात है न पात है। न मंत्र है न मित्र है न तात है न मात है। न अंग है न रंग है न संग साथ नेह है। न दोख है न दाग है न द्वैख है न देह है॥ ७॥ १६७॥ न सिंघ है न स्यार है न राउ है न रक है। न मान है न मउत है न साक है न संक है। न जच्छ है न गंध्रब है न नरु है न नार है। न चोर है न शाह है न शाह को कुमार है॥ ८॥ १६८॥ न नेह है न गेह है न देह को बनाउ है। न छल है न छिद्र है न छल को मिलाउ है। न जंत्र है न मंत्र है न तंत्र को (मू०ग्रं०२६) सरूप है। न राग है न रंग है न रेख है न रूप है॥ ९॥ १६९॥ न जंत्र है न मंत्र है न तंत्र को बनाउ है। न छल है न छिद्र है न छाइआ को मिलाउ है। न राग है न रंग है न रूप है न रेख है। न करम है न धरम है अजनम है अभेख है॥१०॥१७०॥ न तात है न मात है अख्याल अखंड रूप है। अछेद है अभेद है न रंक है न भूप है। परेय है पवित्र है पुनीत है पुरान है। अगंज है अभंज है करीम है क़ुरान है॥११॥१७१॥ अकाल है अपाल है खिआल है अखंड है। न रोग है न सोग है न भेद है न भंड है। न अंग है न रंग है न संग है न साथ है। प्रिया है पवित्र है पुनीत है प्रमाथ है॥ १२॥ १७२॥ न सीत है न

विशेष है, न रग है, न कोई साथी-विशेप है। वह दोष, दाग, द्वेष, देह आदि कुछ नही है॥ ७॥ १६७॥ वह सिंह-स्यार, राव-रक, मान-मृत्यु सवधी शका आदि वृत्ति कुछ नही है। वह यक्ष, गधर्व, नर-नारी, चोर, साहूकार या राजकुमार आदि कुछ नही है॥ ८॥ १६८॥ वह स्नेह, घर, देह, छल-छिद्र आदि कुछ भी नही है और न ही वह यत्र, मत्र, तत्र, राग-रग, आकार आदि का स्वरूप है॥ ९॥ १६९॥ वह न यत्र, मंत्र, तंत्र, छल-छिद्र, अविद्या, राग, रग-रूप अथवा आकार है। वह कर्म, धर्म भी नही है, वह अजन्मा एव वेशो से परे है॥ १०॥ १७०॥ वह मात्र पिता-माता के रूप मे ही नही जाना जाता, बल्कि वह विचारातीत अखड-स्वरूप है। वह अक्षय, अभेद है और न ही वह रक है तथा न ही वह सम्राट् है। वह सबसे परे (प्रभु) पवित्र है, पुनीत तथा सबसे प्राचीन है। वह स्वय तो अभजनशील है परन्तु सव पर कृपा करनेवाला (पवित्र) कुर्आन-स्वरूप है॥ ११॥ १७१॥ वह अकाल है और उसका पोषण कोई अन्य नही करता। वह अखंड चितन (निर्विकल्प समाधि) है। वह रोग, शोक, भेद, नारि, अंग, रग, सग-साथ कुछ नही है। वह प्रिय,

सोच है न ग्राम है न धाम है। न लोभ है न मोह है न क्रोध है न काम है। न देव है न दैत है न नर को सरूप है। न छल है न छिद्र है न छिद्र की बिभूत है ॥ १३ ॥ १७३ ॥ न काम है न क्रोध है न लोभ है न मोह है। न द्वैख है न भेख है न दूई है न द्रोह है। न काल है न बाल है सदीव द्याल रूप है। अगंज है अभंज है अभरम है अभूत है ॥ १४ ॥ १७४ ॥ अछेद छेद है सदा अगंज गंज गंज है। अभूत भेख है बली अनूप राग रंग है। न द्वैख है न भेख है न काम क्रोध करम है। न जात है न पात है न चित्र चिहन बरन है ॥ १५ ॥ १७५ ॥ बिअंत है अनंत है अनंत तेज जानीऐ। अभूम अभिज्ज है सदा अछिज्ज तेज मानीऐ। न आध है न ब्याध है अगाध रूप लेखीऐ। अदोख है अदाग है अछै प्रताप पेखीऐ ॥ १६ ॥ १७६ ॥ न करम है न भरम है न धरम को प्रभाउ है। न जंत्र है न तंत्र है न मंत्र को रलाउ है। न छल है न छिद्र है न छिद्र को सरूप है। अभंग है अनंग है अगंजसी बिभूत है ॥ १७ ॥ १७७ ॥

पवित्र पुनीत और अतिशक्तिशाली है ॥ १२ ॥ १७२ ॥ वह न शीतलता है, न चिंतन है, न छाया है न धूप है। वह लोभ, मोह, क्रोध, काम, देव, दैत्य, नर आदि का स्वरूप भी नही है। वह छल-छिद्र और ससार की तुच्छ विभूतियाँ भी नही है ॥ १३ ॥ १७३ ॥ वह (प्रभु) काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, वेश, द्वैत, द्रोह आदि नही है। वह काल और कालचक्र में पड़नेवाला बालक भी नही है, वह तो सर्वदा दयालु बना रहनेवाला है। वह अनश्वर, अभंजनशील है, भ्रमो से परे सूक्ष्म रूप है ॥ १४ ॥ १७४ ॥ वह सदा दृढतम का भी उच्छेदन करनेवाला, असख्य भंडारो का भेदन करनेवाला है। वह सूक्ष्म स्वरूप मे अनुपम बलशाली राग-रंगो का मूल रूप है। वह द्वेष, वेश, काम, क्रोध, कर्म, जाति, पाँति, चित्र, चिह्न, वर्ण आदि से परे है ॥ १५ ॥ १७५ ॥ वह अनन्त है, उसे अनंत तेजस्वरूप कहा जा सकता है। वह भूमि के भोगो से निर्लिप्त है, उसे सदा अक्षय तेजस्वरूप करके माना जा सकता है। वह व्यापक प्रभु आधि-व्याधि आदि नही है। वह इस प्रकार के दोषो से मुक्त, बेदाग अक्षय प्रतापशाली है ॥ १६ ॥ १७६ ॥ वह कर्म, भ्रम, धर्म के विधि-विधानों के प्रभाव से परे, यत्र, मत्र, तत्र आदि के सयोग से अप्रभावित है। वह छल-छिद्र आदि कुछ नही है। वह अभंग, अनंग और कभी न समाप्त होनेवाली विभूति है ॥ १७ ॥ १७७ ॥ वह काम-क्रोध, लोभ-मोह, आधि-व्याधि आदि का

न काम है न क्रोध है न लोभ मोह कार है। न आध है न गाध है न ब्याध को बिचार है। न रंग राग रूप है न रूप रेख रार है। न हाउ है न भाउ है न दाउ को प्रकार है ॥१८॥१७८॥ गजाधपी नराधपी करंत सेव है सदा। सितसपती तपसपती बनसपती जपस सदा। अगसत आदि जे बडे तपसपती बिसेखीऐ। ब्यंत ब्यंत ब्यंत को करंत पाठ पेखीऐ॥ १९ ॥ १७९ ॥ अगाध (मू०ग्रं०२७) आद देव की अनाद बात मानीऐ। न जात पात मंत्र मित्र सत्र सनेह जानीऐ। सदीव सरब लोक को क्रिपाल खयाल मै रहै। तुरंत द्रोह देह के अनंत भाँत सो बहै ॥ २० ॥ १८० ॥
॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ रूआमल छंद ॥ रूप राग न रेख रंग न जनम मरन बिहीन। आदि नाथ अगाध पुरख सु धरम करम प्रबीन। जंत्र मंत्र न तंत्र जाको आदि पुरख अपार। हसत कीट बिखै बसै सभ ठउर मै निरधार॥ १ ॥ १८१ ॥ जाति पाति न तात जाको मंत्र मात्रि न मित्र। सरब ठउर बिखै रम्यो जिह चक्र चिहन न चित्र। आदि देव उदार मूरति अगाध नाथ

विचार भी नही है। वह न राग-रंग, रूप-आकार, हाव-भाव आदि ही है ॥ १८ ॥ १७८ ॥ गजराज, नटराज सदा उसकी सेवा करते है। वरुण, सूर्य, चन्द्रमा सदा उसका जाप करते है। अगस्त्य आदि बड़े-बड़े तपस्वी-विशेष तथा अनेको अन्य जीव उसी का स्मरण करते हुए देखे जाते हैं ॥ १९ ॥ १७९ ॥ उस अपरिमित आदिदेव प्रभु की कथा-वार्त्ता भी अनादि है। जाति-पाँति, मत्र, मित्र, शत्रु, स्नेह आदि वह नही है। सदैव सर्वलोको पर कृपा करनेवाले प्रभु का ध्यान मुझे बना रहे। वह प्रभु देह के अनत दु:खो का तुरन्त शमन करनेवाला है ॥ २० ॥ १८० ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ रूआमल छद ॥ वह प्रभु रूप, राग, आकार, रग, जन्म-मरण से विहीन है तथा उसे आदिनाथ गम्भीर पुरुष और सुधर्म-कर्म मे प्रवीण कहा जाता है। उस आदिपुरुष को यत्र, मत्र, तत्र से वश मे नही किया जा सकता, और वह हाथी से लेकर छोटे कीट तक मे समान रूप से अवस्थित है ॥ १ ॥ १८१ ॥ जिसकी जाति-पाँति, पिता-माता, मत्र, मित्र, कुछ भी नही है और चक्र-चिह्नो से परे रहनेवाला जो प्रभु सभी स्थानो मे रमण कर रहा है, वह आदिदेव उदारता की प्रतिमूर्ति, सबका नाथ अनन्त है और सब विषादो से दूर है ॥ २ ॥ १८२ ॥ जिसके मर्म को देव, वेद, कतेब, सनक, सनन्दन आदि सेवा करने पर भी नही जान पाये तथा यक्ष, किन्नर, मत्स्य, मानव, सर्प आदि भी उसके रहस्य को नही जान पाते, उसी

अनंत। आदि अंति न जानीऐ अबिखाद देव दुरंत ॥ २ ॥ ॥ १८२ ॥ देव भेव न जानही जिह मरम बेद कतेब। सनक अउ सनके सनंदन पावही नही सेब। जच्छ किनर मच्छ मानस मुरग उरग अपार। नेति नेति पुकारही शिव सक्र औ मुखचार ॥ ३ ॥ १८३ ॥ सरब सपत पतार के तर जापही जिह जाप। आदिदेव अगाधि तेज अनादि मूरति अताप। जंत्र मंत्र न आवई कर तंत्र मंत्र न कीन। सरब ठउर रहिओ बिराज धिराज राज प्रबीन ॥ ४ ॥ १८४ ॥ जच्छ गंध्रब देव दानो न ब्रहम छत्रीअन माहि। बैसनं के बिखै बिराजै सूद्र भी वह नाहि। गूड़ गउड न भील भीकर ब्रहम सेख सरूप। रात दिवस न मद्ध उरध न भूम अकाश अनूप ॥ ५ ॥ १८५ ॥ जात जनम न काल करम न धरम करम बिहीन। तीरथ जात्र न देवपूजा गोर के न अधीन। सरब सपत पतार के तर जानीऐ जिह जोत। शेश नाम सहंस फन नहि नेत पूरन होत ॥ ६ ॥ १८६ ॥ सोध सोध हटे सभै सुर बिरोध दानव सरब। गाइ गाइ हटे गंधरब गवाइ किनर गरब। पढ़त पढ़त थके महाकबि गढ़त गाढ़ अनंत। हार हार कहिओ सभू

प्रभु को शिव, इन्द्र एव ब्रह्मा नेति-नेति कहकर पुकारते है ॥ ३ ॥ १८३ ॥ सप्त पातालो के जीव उसी का जाप कर रहे है, वह आदिदेव, अनादि-स्वरूप सर्व-तापो से रहित यन्त्र-मंत्र आदि से वश मे आनेवाला नही है। वह प्रभु, सर्व स्थानो मे अधिष्ठान-स्वरूप होकर विराजमान है ॥४॥१८४॥ वह यक्ष, गन्धर्व, देव, दानव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैष्णव, शूद्र आदि के अन्तर्मन मे भी विराजमान नही है। वह राजपूत, गौड़, भील, ब्राह्मण, शेख आदि के स्वरूप में भी अवस्थित नही है। वह रात, दिवस-मध्य, उर्ध्व, भूमि, अनुपम आकाश आदि मे भी नही है ॥ ५ ॥ १८५ ॥ जाति, जन्म, काल, कर्म एवं धर्म-कर्म आदि से वह विहीन है तथा वह तीर्थयात्रा, देव-पूजा, श्मशान-साधना के अधीन भी नही है। सातो पातालो के जीव उसी की ज्योति है और शेषनाग सहस्र फनो से उसके नाम का स्मरण करता है, तब भी वह स्मरण पूरा नही होता ॥ ६ ॥ १८६ ॥ देव, दानव सभी उसको खोज-खोजकर थक गए है तथा गन्धर्व एव किन्नरों का गर्व भी उस प्रभु का गायन कर-करके चूर हो चुका है। महाकवि भी अनन्त प्रकार की कथाओ की रचना कर-करके एवं पढ-पढ़के थक चुके है, परन्तु सबको अंत मे थककर यही कहना पड़ा है कि उस प्रभु का नाम अत्यत दूर की

मिल नाम नाम दुरंत ।। ७ ।। १८७ ।। बेद भेद न पाइओ लखिओ न सेब कतेब । देव दानो मूड़ मानो जच्छ न जानै जेब । भूत भव्व भवान भूपति आदि नाथ अनाथ । अगन बादि जले थले महि सरब ठउर निवास ।। ८ ।। १८८ ।। देह गेह न नेह सनेह अबेह नाथ अजीत । (मू०ग्रं०२८) सरब गंजन सरब भंजन सरब ते अनभीत । सरब करता सरब हरता सरब द्याल अद्वेख । चक्र चिहन न बरन जाको जात पात न भेख ।। ९ ।। १८९ ।। रूप रेख न रंग जाको राग रूप न रंग । सरब लाइक सरब घाइक सरब ते अनभंग । सरब दाता सरब ज्ञाता सरब को प्रतिपाल । दीनबंधु दयाल सुआमी आदिदेव अपाल ।। १० ।। ।। १९० ।। दीनबंधु प्रबीन स्त्रीपति सरब को करतार । बरन चिहन न चक्र जाको चक्र चिहन अकार । जाति पाति न गोत्र गाथा रूप रेख न बरन । सरब दाता सरब ज्ञाता सरब भूअ को भरन ।। ११ ।। १९१ ।। दुशट गंजन सत्र भंजन परम पुरख प्रमाथ । दुशट हरता स्रिशट करता जगत मै जिह गाथ । भूत भव्व भविक्ख भवान प्रमान देव अगंज । आदि अंत अनादि

बात है ।। ७ ।। १८७ ।। वेदो ने भी उसका रहस्य नही जाना और कतेब भी उसकी सेवा को नही देख सके । देव, दानव, मानव, मूर्ख हैं और यक्ष भी उसका कुछ अता-पता नही जानते । वह प्रभु, भूत, भविष्य, वर्तमान का सम्राट्, नाथो का नाथ आदिनाथ है और अग्नि, वायु, जल-स्थल सर्व स्थानो मे उसका निवास है ।। ८ ।। १८८ ।। वह प्रभु देह, घर, स्नेह आदि से परे है तथा कभी न जीता जा सकनेवाला, सबका नाश करनेवाला अभय है । वह सर्वकर्ता, सर्वसहारक, सर्वदयालु एव अद्वैत-स्वरूप चक्र, चिह्न, वर्ण, जाति-पाँति, वेश से अतीत है ।। ९ ।। १८९ ।। जिसका रूप, रेख, राग, रग कुछ नही है, वह सब कुछ करने मे समर्थ सर्वसहारक अजेय, सर्वदाता, सर्वज्ञ एव सबका पालन करनेवाला प्रभु है । वह प्रभु दीनबन्धु, दयालु स्वामी तथा आदिदेव है ।। १० ।। १९० ।। वह दीनबन्धु प्रवीण ऐश्वर्य का स्वामी सबका कर्ता, वर्ण, चिह्न, चक्र. आकार, जाति-पाँति, गोत्र, रूप आदि से परे है । वह प्रभु सबको देनेवाला सर्वज्ञ तथा सारे भूमण्डल का पोषण करनेवाला है ।। ११ ।। १९१ ।। वह दुष्टो का नाश करनेवाला, शत्रुओ का भजन करनेवाला अतिबलशाली परमपुरुष सृष्टि का कर्ता है और सारे ससार मे उसी की गाथा का वर्णन हो रहा है । वह भूत, भविष्य, वर्तमान मे प्रमाणित अनश्वर, देवाधिदेव है तथा उसे ही

स्त्री पति परम पुरख अभंज ॥ १२ ॥ १९२ ॥ धरम के अन करम जेतक कीन तउन पसार । देव अदेव गंधरब किंनर मच्छ कच्छ अपार । भूम अकाश जले थले महि मानीऐ जिह नाम । दुशट हरता पुशट करता स्रिशट धरता काम ॥ १३ ॥ १९३ ॥ दुशट हरना स्रिशट करना द्याल लाल गोबिंद । मित्र पालक सत्र घालक दीनद्याल मुकंद । अघौ डंडण दुशट खंडण कालहूँ के काल । दुशट हरणं पुशट करणं सरब के प्रतिपाल ॥ १४ ॥ ॥ १९४ ॥ सरब करता सरब हरता सरब के अनकाम । सरब खंडण सरब दंडण सरब के निज भाम । सरब भुगता सरब जुगता सरब करम प्रबीन । सरब खंडण सरब दंडण सरब धरम अधीन ॥ १५ ॥ १९५ ॥ सरब सिम्रितन सरब शासत्रन सरब बेद बिचार । दुशट हरता बिस्व भरता आदि रूप अपार । दुशट दंडण पुशट खंडण आदिदेव अखंड । भूम अकाश जले थले महि जपत जाप अमंड ॥ १६ ॥ १९६ ॥ स्रिशट चार बिचार

आदि एव अत मे अनादिस्वरूप से रमण करनेवाला पति अनश्वर परम-पुरुष कहा जाता है ॥ १२ ॥ १९२ ॥ धर्म के अन्य जितने भी कर्म है, सबका प्रसार उसी ने किया है तथा देव, अदेव, गंधर्व, किन्नर, मत्स्य, कच्छप आदि का रचयिता भी वही है। भूमि, आकाश, जल, स्थल में जिसके नाम की मान्यता है, वह प्रभु दुष्टो का दमन करनेवाला और अच्छाई को पुष्ट करनेवाला तथा सृष्टि को धारण करनेवाला है ॥ १३ ॥ १९३ ॥ वह दयालु, गोविन्द, दुष्टो का दमन करनेवाला, सृष्टि का कर्ता, मित्रो का पोषक, शत्रुओ का नाशक, दीनदयालु मुकुन्द नाम से जाना जाता है। वह काल का भी काल, पापियो को दडित करनेवाला, दुष्टो को खडित करनेवाला, दुष्टो का दमन करनेवाला और धर्म को मडित करनेवाला सबका प्रतिपालक है ॥ १४ ॥ १९४ ॥ वह सर्वकर्ता, सर्वसंहारक, सबकी कामनाओ को पूरा करनेवाला, सबको खडित और दडित करनेवाला तथा सबको स्त्री-स्वरूप मे प्रेम करनेवाला है। वह सर्वविभूतियो का स्वामी, सर्वयुक्तियो से सम्पन्न, सर्वकर्मो मे प्रवीण, सबका खडन एव सबको दण्ड देनेवाला तथा सर्वकर्तव्यो को अपने अधीन रखनेवाला है ॥ १५ ॥ १९५ ॥ सारी स्मृतियो, शास्त्रो एव वेदो का सम्पूर्ण विचार भी वही है। वह दुष्टसहारक, विश्वपोषक, आदिरूप है। वह आदि, अखड देव, दुष्टो को खंडित कर धर्म की पुष्टि करनेवाला है। भूमि, आकाश, जल, स्थल में सभी उस अनस्थापित प्रभु का जाप चल रहा है ॥ १६ ॥ १९६ ॥ सृष्टि के जितने आचरण विचार ज्ञान के

जेते जानीऐ सबिचार। आदिदेव अपार स्रीपति दुशट पुशट प्रहार। अंनदाता ज्ञान ज्ञाता सरब मान महिंद्र। बेद ब्यास करे कई दिन कोटि इंद्र उपइंद्र ॥ १७ ॥ १९७ ॥ जनम जाता करम ज्ञाता धरम चार बिचार। बेद भेव न पावई शिव रुद्र अउ मुखचार। (मू०ग्रं०२९) कोट इंद्र उपिंद्र बिआसक सनक सनत-कुमार। गाइ गाइ थके सभै गुन चक्रत भे मुखचार ॥ १८ ॥ ॥ १९८ ॥ आदि अंति न मद्ध जा को भूत भव्व भवान। सत दुआपर त्रितीआ कलजुग चत्र काल प्रधान। ध्याइ ध्याइ थके महामुनि गाइ गंध्रब अपार। हार हार थके सभै नही पाईऐ तिह पार ॥ १९ ॥ १९९ ॥ नारदादिक बेद बिआसक मुनि महान अनंत। ध्याइ ध्याइ थके सभै कर कोट कशट दुरंत। गाइ गाइ थके गंध्रब नाच अपछ्र अपार। सोध सोध थके महासुर पाइओ नहि पार ॥ २० ॥ २०० ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ दोहरा ॥ एक समै स्री आतमा उचरिओ मत सिउ बैन। सभ प्रताप जगदीश को कहो सकल बिध तैन ॥ १ ॥ २०१ ॥

माध्यम से जाने जा सकते है, वे सब उस आदिदेव श्रीपति (परमात्मा) मे अवस्थित है जो दुष्टो पर भयकर प्रहार करनेवाला है। वह प्रभु अन्नदाता, ज्ञान और ज्ञाता तथा सर्वत्र मान्य भूपति है। वेद, इन्द्र, उपेन्द्र आदि कई दिनो तक उस पर प्रवचन करते है (परन्तु उसका अन्त नही पाया जा सकता) ॥ १७ ॥ १९७ ॥ वह जन्म देनेवाला, सर्वकर्मकांड मे पारंगत तथा धर्म पर सुन्दर विचार करनेवाला है, परन्तु उसका और उसके विचारो का शिव, रुद्र एव ब्रह्मा भी रहस्य नही समझ सके। करोड़ो इद्र, उपेन्द्र, व्यास, सनत, सनत्कुमार, ब्रह्मा आदि उसके गुणो का गायन कर-करके थक चुके है ॥ १८ ॥ १९८ ॥ उसका आदि, अत, मध्य, भूत, भविष्य, वर्तमान कुछ भी नही है तथा वह सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग चारो युगो मे प्रधान है। महामुनि एवं गधर्व आदि उसका ध्यान एव गायन कर थक चुके हैं और हार चुके है, परन्तु उसका कोई पार नही पा सका ॥ १९ ॥ १९९ ॥ नारदादि, वेदव्यास आदि अनत महान् मुनि करोडो कष्ट सहन कर उसका ध्यान कर-करके थक गए है। गंधर्व गायन कर एव अप्सराएँ नृत्य कर-कर थक चुकी है और महान् देवतागण भी उसकी खोज करते-करते हार गए है, परन्तु कोई उसका अन्त नही पा सका ॥ २० ॥ २०० ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ दोहा ॥ एक बार आत्मा ने बुद्धि से कहा कि उस जगदीश के प्रताप का सब भाँति से वर्णन

॥ दोहरा ॥ को आतमा सरूप है कहा स्त्रिशट को बिचार । कउन धरम को करम है कहो सकल बिसथार ॥ २ ॥ २०२ ॥
॥ दोहरा ॥ कह जीतब कह मरन है कवन सुरग कह नरक । को सुघड़ा को मूड़ता कहा तरक अवतरक ॥ ३ ॥ २०३ ॥
॥ दोहरा ॥ को निंदा जस है कवन कवन पाप कह धरम । कवन जोग को भोग है कवन करम अपकरम ॥ ४ ॥ २०४ ॥
॥ दोहरा ॥ कहो सु सम कासो कहै दम को कहा कहंत । को सूरा दाता कवन कहो तंत को मंत ॥५॥२०५॥ ॥ दोहरा ॥ कहा रंक राजा कवन हरख सोग है कवन । को रोगी रागी कवन कहो तत्त मुहि तवन ॥ ६ ॥ २०६ ॥ ॥ दोहरा ॥ कवन रिशट को पुशट है कहा स्त्रिशट को बिचार । कवन ध्रिशट को भ्रिशट है कहो सकल बिसथार ॥ ७ ॥ २०७ ॥
॥ दोहरा ॥ कहा करम को करम है कहा भरम को नास । कहा चितन की चेशटा कहा अचेत प्रकास ॥ ८ ॥ २०८ ॥
॥ दोहरा ॥ कहा नेम संजम कहा कहा ज्ञान अज्ञान । को रोगी सोगी कवन कहा धरम की हान ॥९॥२०९॥ ॥ दोहरा ॥

करो ॥ १ ॥ २०१ ॥ ॥ दोहा ॥ आत्मा का (यथार्थ) स्वरूप क्या है तथा सृष्टि-विचार क्या है। धर्म का कर्म कौन सा है, इसे विस्तार-पूर्वक कहो ॥ २ ॥ २०२ ॥ ॥ दोहा ॥ जीना-मरना क्या है, स्वर्ग-नरक क्या है। चतुरता क्या है तथा मूर्खता क्या है, तर्क क्या है तथा वितर्क क्या है ॥ ३ ॥ २०३ ॥ ॥ दोहा ॥ निंदा क्या है, यश क्या है, पाप क्या है, धर्म क्या है। योग क्या है, भोग क्या है, सुकर्म क्या है तथा दुष्कर्म क्या है ॥ ४ ॥ २०४ ॥ ॥ दोहा ॥ समरसता किसे कहते है तथा दमन किसे कहते है, शूरवीर कौन है, दानी कौन है, तत्व क्या है तथा मत्र क्या है ॥ ५ ॥ २०५ ॥ ॥ दोहा ॥ रक-राजा कौन है, हर्ष एव शोक क्या है, रोगी कौन है, रागी (लिप्त) कौन है —यह तत्त्व-विचार मुझे समझाकर कहो ॥ ६ ॥ २०६ ॥ ॥ दोहा ॥ बलवान कौन है तथा सृष्टि की रचना का विचार क्या है। धृष्ट कौन है तथा भ्रष्ट कौन है, इसे विस्तारपूर्वक कहो ॥ ७ ॥ २०७ ॥ ॥ दोहा ॥ कर्मठता का कर्म कौन सा है तथा भ्रम का नाश कैसे होता है। चित्त की चेष्टाएँ क्या है तथा अचिन्त्य प्रकाश क्या है ॥ ८ ॥ २०८ ॥ ॥ दोहा ॥ नियम, सयम, ज्ञान-अज्ञान क्या है। रोगी एवं शोकाकुल कौन है और धर्म की अधोगति कहाँ होती है ॥ ९ ॥ २०९ ॥ ॥ दोहा ॥ शूरवीर कौन है, सुन्दर कौन है और योग

को सूरा सुंदर कवन कहा जोग को सार। को दाता ग्यानी कवन कहो बिचार अबिचार ॥१०॥२१०॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ दीरघ त्रिभंगी छंद ॥ दुरजन दल दंडण असुर बिहंडण दुशट निकंदण आदि ब्रिते। चछरासुर मारण पतित उधारण नरक निवारण गूड़ गते। अछै अखंडे तेज प्रचंडे खंड (मू०ग्रं०३०) **उदंडे अलख मते। जै जै होसी महखासुर मरदन रंम कपरदन छत्र छिते॥ १ ॥ २११ ॥ आसुरी बिहंडण दुशट निकंदण पुशट उदंडण रूप अते। चंडासुर चंडण. मुंड बिहंडण धूम्र बिधुंसण महख मते। दानव प्रहारन नरक निवारन अधम उधारन उरध अधे। जै जै होसी महखासुर मरदन रंम कपरदन आदि ब्रिते ॥२॥२१२॥ डावरू डवंकै बबर बवंकै भुजा फरकै तेज बर। लंकुड़ीआ फाधै आयुध बाधै सैन बिमरदन काल असुरं। अशटाइध चमकै भूखण दमकै अति सित झमकै फुंक फनं। जै**

का सार क्या है। दाता कौन है, ज्ञानी कौन है, यह विचार-अविचार मुझसे कहो ॥ १० ॥ २१० ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ दीर्घ त्रिभगी छद ॥ (हे प्रभु-सत्ता!) तुम दुर्जनो के दलो को दडित करनेवाली, असुरो का नाश करनेवाली, दुष्टो को जड़ से नष्ट करनेवाली आदि (ईश्वरीय) वृत्ति हो। चछरासुर नामक राक्षस को मारकर पतितो का उद्धार करनेवाली, नरकादि दु खो की निवृत्ति करनेवाली, तुम्हारी गति अति गहन है। तुम अक्षय, अखंड, प्रचण्ड तेजवाली अदृष्ट एव दडातीत हो। हे ईश्वरीय शक्ति, तुम्हारी जय हो। तुमने ही महिषासुर का मर्दन किया था और तुम ही सारी सृष्टि का एक-छत्र आश्रय हो ॥ १ ॥ २११ ॥ तुम ही आसुरी वृत्तियो को विनष्ट करनेवाली, दुष्टो को खण्डित कर उन्हे दिए दड की पुष्टि करनेवाली हो। तुम ही ने चडासुर को सबक सिखाया, उसका सिर काटा तथा धूम्रलोचन एव महिषासुर को मारकर उन्हे मति (तथा गति) प्रदान की। दानवो पर प्रहार कर तूने ही पृथ्वी से नरक का निवारण किया। नीचे-ऊपर सब जगह व्याप्त हे शक्ति, तूने अधमो का उद्धार किया। हे महिषासुर को मारनेवाली तथा युद्ध मे रमण कर असुरो का कपाल भेदन करनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥ २ ॥ २१२ ॥ युद्ध मे डमरू वजता है, तुम्हारा बवर शेर दहाड़ता है और तेजवान् भुजाएँ फडक रही हैं। विभिन्न शस्त्रो से लैस तुम असुरो का काल हो और सेना का मर्दन करनेवाली हो। तुम्हारे अष्ट-आयुध चमक रहे है और गहनो की तरह दमक रहे है। तुम बिजली की तरह चमक रही हो और नाग की तरह फुफकार रही हो। हे दैत्यो को जीतनेवाली और

जै होसी महखासुर मरदन रंम कपरदन दैत जिणं ॥ ३ ॥ ॥ २१३ ॥ चंडासुर चंडण मुंड बिमुंडण खंड अखंडण खून खिते । दामनी दमंकण धुजा फरंकण फणी फुकारन जोध जिते । सर धार बिबरखण दुशट प्रकरखण पुशट प्रहरखण दुशट मथे । जै जै होसी महखासुर मरदन भूम अकाश तल उरध अधे ॥ ४ ॥ ॥ २१४ ॥ दामनी प्रहासन सु छब निवासन स्रिशट प्रकाशन गूड़ गते । रकतासुर आचन जुद्ध प्रमाचन न्रिदै न राचन धरम ब्रिते । स्रोणंत अंचिती अनल बिवंती जोग जयंती खड़ग धरे । जै जै होसी महखासुर मरदन पाप बिनासन धरम करे ॥ ५ ॥ २१५ ॥ अघ ओघ निवारन दुशट प्रजारन स्रिशटि उबारन सुद्ध मते । फणीअर फुंकारण बाघ बकारण शसत्र प्रहारण साध मते । सैहथी सनाहन अशट प्रबाहन बोल निबाहन तेज अतुलं । जै जै होसी महखासुर मरदन भूम अकाश पताल जलं ॥ ६ ॥ २१६ ॥ चाचर चमकारन चिच्छुर हारन धूम

महिषासुर का मर्दन करनेवाली (ईश्वरीय शक्ति)! तुम्हारी जय हो ॥ ३ ॥ २१३ ॥ चड और मुड नामक असुरो का नाश करनेवाली और सारे क्षितिज तक मे रक्त का अखड प्रवाह बहानेवाली महाशक्ति, तुम्हारी ध्वजा फडक रही है और योद्धाओ को जीतनेवाली तुम्हारे स्वरूप मे बिजली दमक रही है। तुम तीरो की वर्षा करनेवाली हो, दुष्टो को खंडित कर उनका मंथन करनेवाली हो। हे भूमि, आकाश, पाताल, ऊपर, नीचे सबमे व्याप्त महिषासुर का नाश करनेवाली तुम्हारी जय हो ॥ ४ ॥ २१४ ॥ हे विद्युत् की-सी हँसी हँसनेवाली सुछविमान, तुम सृष्टि की रचयिता शक्ति हो और तुम्हारी गति गहन है। तुम असुरो के रक्त का आचमन करनेवाली, युद्ध को धुआँधार बनानेवाली, सदैव सजग धर्म की वृत्ति हो। रक्त-प्रवाहो से लापरवाह अग्निस्वरूपा तुम योग-माया को जय करनेवाली खड्ग को धारण करनेवाली हो। हे पापो का नाश करनेवाली तथा महिषासुर का नाश करनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥५॥२१५॥ तुम पापो का नाश करनेवाली, दुष्टो को जला देनेवाली, सृष्टि का उद्धार करनेवाली शुद्ध मति हो। सैहथी, सन्नाह आदि शस्त्रो को आठो भुजाओ से चलानेवाली और वचन को निभानेवाली तुम अतुल तेजवाली हो। हे भूमि, आकाश, पाताल एवं जल मे निवास करनेवाली तथा महिषासुर का मर्दन करनेवाली तुम्हारी जय हो ॥ ६ ॥ २१६ ॥ युद्धस्थल मे तुम शस्त्रो को चमकानेवाली, असुरो को हरानेवाली, धुएँ की तरह आगे वढ़ती चली जानेवाली, देदीप्यमान मस्तक वाली हो। तुम

धुकारन द्रप्प मथे । दाड़वी प्रदंते जोग जयते मनुज मथंते गूड़ कथे । करम प्रणासन चंद प्रकाशन सूरज प्रतेजन अशट भुजे । जै जै होसी महखासुर मरदन भरम बिनासन धरम धुजे ॥ ७ ॥ ॥ २१७ ॥ घुंघरू घमंकण शसत्र झमंकण फणीअर फुंकारण धरम धुजे । अशटाट प्रहासन त्रिशट निवासन दुशट प्रणासन चक्र गते । केसरी प्रवाहे सुद्ध सनाहे अगम अथाहे एक ब्रिते । जै जै होसी महखासुर मरदन आदि कुमार अगाध ब्रिते ॥ ८ ॥ ॥ २१८ ॥ सुर नर मुन वदन दुशट निकंदन (मू०ग्रं०३१) भ्रित बिनासन म्रित मथे । कावरू कुमारे अधम उधारे नरक निवारे आद कथे । किंकणी प्रसोहण सुर नर मोहण सिघारोहण बितल तले । जै जै होसी सभ ठउर निवासन वाइ पताल अकाश अनले ॥ ९ ॥ २१९ ॥ संकटी निवारन अधम उधारन तेज प्रकरखण तुंद तवे । दुख दोख दहती जुआल जयंती आदि

भयकर दाँतो वाली हो । योगमाया को जप करनेवाली हो और मनुष्यो का सहार करनेवाली हो । तुम्हारी कथा गहन है । हे अष्ट भुजाओ वाली, तुम चन्द्र एव सूर्य को प्रकाशित करनेवाली हो और सर्वकर्मो का नाश करनेवाली हो । हे भ्रमो का नाश करनेवाली, धर्म की ध्वजा एवं महिषासुर का मर्दन करनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥ ७ ॥ २१७ ॥ युद्ध-स्थल मे घुँघरूँ की झकार, शस्त्रो की चमक और सर्पों की फुकार के समान ध्वनि करनेवाली, तुम धर्म की प्रतीक हो । अट्टहास करनेवाली, दुष्टो का नाश करनेवाली, चारो दिशाओ मे गतिशील, सपूर्ण सृष्टि मे निवास करनेवाली हो । तुम शेर पर सवार होकर आगे बढनेवाली अगम, अथाह एव शुद्ध शक्ति हो । हे महिषासुर को मर्दन करनेवाली, अगाध वृत्ति एव आदिस्वरूप मे अवस्थित तुम्हारी जय हो ॥ ८ ॥ २१८ ॥ सुर, नर, मुनि तुम्हारा वदन करते है, तुम दुष्टो का नाश करनेवाली हो एव मृतको मे स्वच्छन्द घूमकर भय का नाश करनेवाली हो । तुमने कई अधमो का उद्धार किया है । नरको का निवारण किया है एवं तुम्हारी कथा अनन्त है । किंकणी धारण किए हुए सुर एवं नर को मोहने वाली, सिह पर आरोहण करनेवाली, तल-वितल मे निवास करनेवाली हो । हे वायु, पाताल, आकाश, अग्नि एव सर्व स्थानो मे निवास करनेवाली तुम्हारी जय हो ॥ ९ ॥ २१९ ॥ सकट का निवारण करनेवाली, नीचे का उद्धार करनेवाली, अनन्त तेजवान एव क्रोधवान हो । दु ख एव दोषों का दहन करनेवाली, ज्वाला के समान जलनेवाली, तुम आदि-अनादि, अगाध एव अक्षय हो, शुद्धता को समर्पित, तर्क-वितर्को की जननी, जाप

अनादि अगाधि अछे। सुद्धता समरपण तरक बितरकण तपत प्रतापण जपत जिवे। जै जै होसी शसत्र प्रकरखण आदि अनील अगाधि अभे॥ १० ॥ २२० ॥ चंचला चखंगी अलक भुजंगी तुंद तुरंगण तिच्छ सरे। कर कसा कुठारे नरक निवारे अधम उधारे तूर भुजे। दामनी दमंके केहर लंके आदि अतंके क्रूर कथे। जै जै होसी रकतासुर खंडण सुंभ चक्रत्त नसुंभ मथे॥ ११ ॥ २२१ ॥ बारज बिलोचन ब्रितन बिमोचन सोच बिसोचन कउच कसे। दामनी प्रहासे सुक सर नासे सुब्रित सुबासे दुशट ग्रसे। चंचला प्रअंगी बेद प्रसंगी तेज तुरंगी खंड सुरं। जै जै होसी महखासुर मरदन आदि अनादि अगाधि उरधं॥ १२ ॥ २२२ ॥ घंटका बिराजै रुणझुण बाजै भ्रम भै भाजै सुनत सुरं। कोकल सुन लाजै किलबिख भाजै सुख उपराजै मद्ध उरं। दुरजन दल दज्झै अन तन रिज्झै सभै न भज्जै रोह रणं। जै जै होसी महखासुर मरदन चंड चक्रतन

करनेवाले को महान तेजवान बनानेवाली हो। हे शस्त्रो को प्रेम करनेवाली, आदि, अनादि, अगाध, अभय शक्ति, तुम्हारी जय हो ॥१०॥२२०॥ तुम चंचल अंगों वाली, सर्प के समान जटाओवाली, तीक्ष्ण बाणो वाली, अश्व के समान तेज हो। हाथ मे कुठार आदि शस्त्र लेकर नरक का निवारण करनेवाली एवं अधमो का उद्धार करनेवाले भुजबल वाली हो। तुम बिजली के समान सिंह की पीठ पर सवार दमकती हो और तुम्हारी भयकर कथाओं से आतंक छा जाता है। हे शुम्भ-निशुम्भ, रक्तासुर आदि का वध करनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥ ११ ॥ २२१ ॥ हे कमल नेत्रोवाली, दुःख, शोक एव चिन्ताओ को दूर करनेवाली तुम कवच को धारण करनेवाली हो। तुम्हारा हास्य बिजली के समान है और तुम सबका नाश करनेवाली, सुवृत्तियो को पुष्ट करनेवाली तथा दुष्टो को ग्रस लेनेवाली हो। तुम चंचला प्रिय अगोवाली वह महान शक्ति हो जो महान ज्ञानवान होकर तेज अश्व पर चलनेवाली सुरम्य हो। हे आदि-अनादि, अगाध, सर्वदा ऊर्ध्वोन्मुखी तथा महिषासुर का वध करनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥ १२ ॥ २२२ ॥ घटे, घड़ियालो की ध्वनि और तुम्हारा स्वर सुनकर भ्रम एव भय भाग जाते है। तुम्हारा स्वर सुनकर कोकिला भी लजाती है और तुम्हारा स्वर सुनकर जहाँ एक ओर विकारों का नाश होता है, वही दूसरी ओर हृदय में अनन्त सुख उत्पन्न होता है। दुर्जनो के दलों को नष्ट करनेवाली, तुम महान शक्ति हो। शत्रुदल तुम्हारे भय के कारण युद्धस्थल से भागने मे भी समर्थ नही हो पाता। हे चड को

आदि गुरं ॥ १३ ॥ २२३ ॥ चाचरी प्रजोधन दुशट बिरोधन रोस अरोधन क्रूत ब्रिते । धूम्राछ बिधुंसन प्रलै प्रजुंसन जग्ग बिधुंसन सुद्ध मते । जालपा जयंती सत्र मथंती दुशट प्रदाहन गाड़ मते । जै जै होसी महखासुर मरदन आदि जुगादि अगाधि गते ॥ १४ ॥ २२४ ॥ खत्रोआण खतंगी अभ अभंगी आदि अनंगी अगाधि गते । ब्रिड़लाछ विहंडण चच्छर दंडण तेज प्रचंडण आदि ब्रिते । सुर नर प्रतिपारन पतित उधारन दुशट निवारन दोख हरे । जै जै होसी महखासुर मरदन बिस्व बिधुंसन स्रिशट करे ॥ १५ ॥ २२५ ॥ दामनी प्रकासे उन तन नासे जोति प्रकासे अतुल बले । दानवी प्रकरखण सरवर वरखण दुशट प्रधरखण बितल तले । अशटाइध वाहण वोल (मू०ग्रं०३२) निबाहण सत पनाहण गूड़ गते । जै जै होसी महखासुर मरदन आदि अनादि अगाधि ब्रिते ॥ १६ ॥ २२६ ॥ दुख दोख

भयभीत करनेवाली एव महिषासुर का वध करनेवाली आदिशक्ति, तुम्हारी जय हो ॥ १३ ॥ २२३ ॥ हे क्रूर वृत्ति वाली शेष से परिपूर्ण तुम चाचरी आदि शस्त्रो का प्रयोग करनेवाली और दुष्टो का विरोध करनेवाली हो। तुम धूम्राक्ष का विध्वस करनेवाली, प्रलय करनेवाली और संपूर्ण जगत का विध्वस करनेवाली शुद्ध मति-स्वरूप हो। तुम जालपा को जय करनेवाली, एवं शत्रुओ का मथन करनेवाली तथा दुष्टो का दहन करनेवाली हो। हे आदि, युगादि मे अगाध रूप से गतिशील, महिषासुर का वध करनेवाली तुम्हारी जय हो ॥१४॥२२४॥ हे क्षत्रियो का नाश करनेवाली, अभय, अभजनशील आदि एव अशरीरी अगाध गति, तुम वृडलाक्ष एव चक्षरासुर आदि दैत्यो का वध करनेवाली एवं दण्ड देनेवाली आदिशक्ति हो। तुम देवताओ एव मनुष्यो की रक्षा करनेवाली, पतितो का उद्धार करनेवाली, दुष्टो का नाश करनेवाली तथा दु.खो को दूर करनेवाली हो। हे विश्व को विध्वस कर पुन. उसकी सृष्टि करनेवाली तथा महिषासुर का वध करनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥ १५ ॥ २२५ ॥ बिजली के समान तुम्हारे प्रकाश से असुरों के तन नष्ट हो जाते है। तुम अपरिमित बल एवं ज्योति वाली हो। तुम दानवो का विनाश करनेवाली, दृढ शक्ति हो। परन्तु साथ-ही-साथ सरोवर के कमल के समान भी हो। तुम आठ प्रकार के शस्त्रो को चलानेवाली अपने वचन को निभानेवाली, गूढ गति वाली, सन्तों की आश्रयस्थली हो। हे आदि-अनादि शक्ति एव महिषासुर को ध्वस्त करनेवाली, तुम्हारी जय हो ॥ १६ ॥ २२६ ॥ दुःख और दोषो को खा जानेवाली, सेवको की रक्षा करनेवाली एवं सन्तो को दर्शन

प्रभचच्छण सेवक रच्छण संत प्रतच्छण सुद्‌ध सरे। सारंग सनाहे दुशट प्रदाहे अर दल गाहे दोख हरे। गंजन गुमाने अतुल प्रवाने संतज माने आदि अंते। जै जै होसी महखासुर मरदन साध प्रदच्छन दुशट हंते॥ १७॥ २२७॥ कारण करीलो गरब गहीली जोत जतीली तुंद मते। अशटाइध चमकण शसतर झमकण दामन दमकण आदि ब्रिते। डुकडुकी दमंकै बाघ बबंकै भुजा फरंगै सुद्‌ध गते। जै जै होसी महखासुर मरदन आदि जुगादि अनादि मते॥ १८॥ २२८॥ चछरासुर मारण नरक निवारण पतित उधारण एक भटे। पापान बिहंडण दुशट प्रचंडण खंड अखंडण काल कटे। चंद्रानन चारै नरक निवारै पतित उधारै मुंड मथे। जै जै होसी महखासुर मरदन धूम्र बिधुंसन आदि कथे॥ १९॥ २२९॥ रकतासुर मरदन चंड चक्करदन दानव अरदन बिड़ाल बधे। सर धार बिबरखण दुरजन धरखण

देनेवाली तुम शुद्ध जलस्वरूप हो। तुम तलवार, कवच आदि को धारण कर दुष्टो का दहन करनेवाली एव शत्रुदल मे भ्रमण करनेवाली तथा दुःखो को दूर करनेवाली हो। तुम आदि-अत मे स्थित सन्तो द्वारा मान्य अतुलनीय प्रमाणवाली तथा गर्व को चूर करनेवाली हो। हे साधुओ की प्रदक्षिणा स्वीकार करनेवाली, दुष्टों का हनन करनेवाली तथा महिषासुर का विनाश करनेवाली, तुम्हारी जय हो॥ १७॥ २२७॥ तुम सब कारणो का कारण हो, गर्व का नाश करनेवाली, ज्योतिस्वरूप, तुरन्त निर्णय लेनेवाली मति हो। हे आदिशक्ति, तुम्हारे अष्ट आयुध चमकते है और तुम्हारे शस्त्र विजली के समान दमकते है। तुम्हारी डुगडुगी बज रही है, तुम्हारा बाघ गरज रहा है और हे शुद्ध गति वाली, तुम्हारी भुजाएँ फड़क रही है। हे युगो-युगान्तरो की मतिस्वरूपा एव महिषासुर का मर्दन करनेवाली, तुम्हारी जय हो॥१८॥२२८॥ हे चछरासुर को मारने वाली, नरक का निवारण करनेवाली, एव पतितो को उद्धार करनेवाली सुभट शक्ति, तुम पापो का नाश करनेवाली और दुष्टो का नाश करनेवाली और काल को भी काटनेवाली हो। चन्द्र-मुख से भी सुन्दर, पतितो का उद्धार करनेवाली, नरक का निवारण करनेवाली, मुण्डमाल धारण करने वाली, धूम्र, महिषासुर आदि राक्षसो को मारनेवाली, तुम्हारी जय हो॥ १९॥ २२९॥ तुम रक्तासुर को मर्दन करनेवाली तथा चड, चक्रदन, वृड़ाल आदि राक्षसो का वध करनेवाली हो। बाणो की वर्षा करनेवाली, दुर्जनो के हृदय को धड़कानेवाली अपरिमित क्रोध करनेवाली एव धर्मध्वजा की रक्षा करनेवाली हो। धूम्राक्ष का नाश करनेवाली

अतुल अमरखण धरम धुजे। धूम्राछ बिधुंसन स्रोणत चुंसन सुंभ नपाति निसुंभ मथे। जै जै होसी महखासुर मरदन आदि अनील अगाध कथे ॥२०॥२३०॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ तुम कहो देव सरबं बिचार। जिम किओ आपि करते पसार। जद्दपि अभूत अनभै अनंत। तउ कहो जथामत त्रैण तंत ॥ १ ॥ २३१ ॥ करता करीम कादर क्रिपाल। अद्वै अभूत अनभै दिआल। दाता दुरंत दुख दोख रहत। जिह नेति नेति सभ बेद कहत ॥ २ ॥ २३२ ॥ कई ऊच नीच कीनो बनाउ। सभ वार पार जाको प्रभाउ। सभ जीव जंत जानंति जाहि। मन मूड़ किउ न सेवंति ताहि ॥ ३ ॥ २३३ । कई मूड़ पत्र पूजा करत। कई सिद्ध साध सूरज सिवंत। कई पलट सूरज सिजदा कराइ। प्रभ एक रूप द्वै कै लखाइ ॥ ४ ॥ ॥ २३४ ॥ अनछिज्ज तेज अनभै प्रकास। दाता दुरंत अद्वै अनास। सभ रोग सोग ते रहत रूप। अनभै अकाल अच्छै सरूप ॥५॥२३५॥ करुणानिधान कामल क्रिपाल। दुख दोख हरत दाता (मू०ग्रं०३३) दिआल। अंजन बिहीन अनभंज नाथ।

और शुम्भ-निशुम्भ का रक्त पीनेवाली, हे आदि-अगाध कथा वाली तथा महिषासुर का वध करनेवाली आदिशक्ति! तुम्हारी जय हो ॥२०॥२३०॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ पाधड़ी छद ॥ हे देव, तुम यह सब विचार कहो कि उस कर्ता ने यह सृष्टि-प्रसार कैसे किया। यद्यपि वह अभूत, अभय एवं अनंत है, तब उसने कैसे इस ससार-तन्त्र का विस्तार किया ॥ १ ॥ २३१ ॥ वह कर्ता, कृपालु एव कर्म करनेवाला अद्वैत, अभूत, अभय एव दयालु है। वह प्रच्छन्न दाता एव दुःख-दोष से रहित है और सभी वेद उसी के लिए नेति-नेति कहते है ॥ २ ॥ २३२ ॥ उसी ने कई ऊँचे और निचले स्तर के जीवो का निर्माण किया और इस-उस तरफ उसी का प्रभाव है। सब जीव-जन्तु उसी को जानते है, परन्तु हे मेरे मूढ मन, तुम उसकी सेवा क्यो नही करते हो! ॥ ३ ॥ २३३ ॥ कई मूर्ख पत्र-पूजा करते है, कई सिद्धियो की साधना मे सूर्य-पूजा करते है, कई पश्चिम की तरफ सज्दा करते है, परन्तु वह प्रभु तो एक रूप ही है। उसको द्वैत-रूप मे कैसे देखा जा सकता है! ॥ ४ ॥ २३४ ॥ वह अक्षय तेज एव अनन्त प्रकाश से युक्त दाता, अद्वैत एवं अनश्वर है। वह सब रोग, शोक, आकार, भय, काल आदि से रहित अक्षयस्वरूप है ॥ ५ ॥ २३५ ॥ वह अत्यत चतुर, कृपालु, करुणानिधान, दुःख-दोषो को हरनेवाला दयालु है। वह कालिमा-विहीन,

जल थल प्रभाउ सरबत्र साथ ॥ ६ ॥ २३६ ॥ जिह जात पात नही भेद भरम । जिह रंग रूप नही एक धरम । जिह सत्र मित्र दोऊ एक सार । अच्छै सरूप अबिचल अपार ॥ ७ ॥ ॥ २३७ ॥ जानो न जाइ जिह रूप रेख । कहि बास तास कहि कउन भेख । कहि नाम तास है कवन जात । जिह सत्र मित्र नही पुत्र भ्रात ॥ ८ ॥ २३८ ॥ करुणानिधान कारण सरूप । जिह चक्र चिहन नही रंग रूप । जिह खेद भेद नही करम काल । सभ जीव जंत की करत पाल ॥ ९ ॥ २३९ ॥ उरधं बिरहत सिद्धं सरूप । बुद्ध अपाल जुद्धं अनूप । जिह रूप रेख नही रंग राग । अनछिज्ज तेज अनभिज अदाग ॥ १० ॥ २४० ॥ जल थल महीप बन तन दुरंत । जिह नेति नेति निसदिन उचरंत । पाइओ न जाइ जिह पैर पार । दीनान दोख दहिता उदार ॥ ११ ॥ २४१ ॥ कई कोट इंद्र जिह पानहार । कई कोट रुद्र जुगीआ दुआर । कई बेद ब्यास ब्रहमा अनंत । जिह नेति नेति निसदिन उचरंत ॥१२॥२४२॥

अभजनशील, जल-स्थल को प्रभावित करनेवाला सर्वत्र रमण करनेवाला नाथ है ॥ ६ ॥ २३६ ॥ जिसे जाति-पाँति का भेद-भ्रम नही है, जिसका रग-रूप और कोई एक धर्म-विशेष नहीं है, जिसे शत्रु और मित्र दोनों एक समान है, वह प्रभु अविचल, अपार एव अक्षयस्वरूप है ॥ ७ ॥ २३७ ॥ जिसकी रूप-रेखा को नही जाना जा सकता, जिसके आवास और वेश को नही जाना जा सकता, जिसके नाम और जाति के बारे मे कुछ नही कहा जा सकता, जिसका शत्रु, मित्र, पुत्र, भ्राता आदि कोई नही है ॥८॥२३८॥ वह करुणानिधान सब कारणो का कारणस्वरूप है। जिसका चक्र-चिह्न, रग-रूप कोई नही है, जो खेद, भेद, काल, कर्म से परे है, वही सब जीवों का पोषणकर्ता है ॥ ९ ॥ २३९ ॥ वह बृहदाकार है एवं सिद्धि-स्वरूप है। वह अपरिमित ज्ञानी है एवं युद्ध मे भी अनुपम है। जिसका रूप, आकार, रग-राग कुछ भी नही है, वह अक्षय तेजवाला, अभिज्ञ एवं बेदाग है ॥ १० ॥ २४० ॥ वह जल-स्थल का महीप एवं वनो मे प्रच्छन्न रूप से अवस्थित है और जिसे दिन-रात नेति-नेति (अर्थात् ऐसा भी नहीं, ऐसा भी नही) कहकर पुकारा जाता है तथा जिसका अत नही पाया जा सकता, वह प्रभु दीनो के दु:खो का दहन करनेवाला उदार प्रभु है ॥ ११ ॥ २४१ ॥ कई करोड़ इन्द्र जिसका पानी भरते है, करोड़ो रुद्र योगी-भेष मे जिसके द्वार पर खड़े रहते है, कई वेदव्यास और ब्रह्माओ का जिसने सृजन किया है। वे सब उसे रात-दिन नेति-नेति कहकर पुकारते है ॥ १२ ॥ २४२ ॥

त्व प्रसादि ।। स्वये ।।

दीनन की प्रतिपाल करै नित संत उबार गनीमन गारै । पच्छ पसू नग नाग नराधिप सरब समै सभ को प्रतिपारै । पोखत है जल मै थल मै पल मै कल के नही करम बिचारै । दीनदयाल दयानिधि दोखन देखत है पर देत न हारै ।। १ ।। २४३ ।। दाहत है दुख दोखन कौ दल दुज्जन के पल मै दल डारै । खंड अखंड प्रचंड प्रहारन पूरन प्रेम की प्रीत संभारै । पार न पाइ सकै पदमापति बेद कतेब अभेद उचारै । रोज ही राज बिलोकत राज़क रोख रूहान की रोज़ो न टारै ।। २ ।। २४४ ।। कीट पतग कुरंग भुजंगम भूत भविक्ख भवान बनाए । देव अदेव खपे अहमेव न भेव लख्यो भ्रम सिउ भरमाए । बेद पुरान कतेब कुरान हसेब थके कर हाथ न आए । पूरन प्रेम प्रभाउ बिना पति सिउ किन स्री पदमापति पाए ।। ३ ।। २४५ ।। आदि अनंत अगाध अद्वैख सु भूत भविक्ख (मू०ग्रं०३४) भवान अभै है ।

।। तेरी कृपा से ।। ।। सवैये ।। वह प्रभु दीनो का पोषण करनेवाला, नित्य संतो का उद्धार करनेवाला तथा अत्याचारियो का नाश करनेवाला है । पक्षी, पशु, पर्वत, नाग, मनुष्य सभी का वह रक्षक है । पल भर मे वह जल-स्थल के सभी जीवो की सहायता बिना उनके कुकर्मो के विचार के कृपापूर्वक करता है । वह दीनदयालु दया का समुद्र है, जो हमारे दोषो को तो देखता है, परन्तु फिर भी हमे दान देता ही जाता है ।। १ ।। २४३ ।। वह दुखियो के दुःख का नाश करनेवाला तथा दुर्जनों के दलो के पल मे नष्ट करनेवाला है । वह दुखियो के दु.ख से पीड़ित हो प्रेमियो के सरक्षण के लिए अपने प्रचड प्रहारो से दुष्टो को खड-खड करनेवाला है । उस प्रभु का अन्त वेद-कतेवादि भी नही जान पाए । सब दीन होकर अपनी रोजी के लिए रोज उस प्रभु की ओर निहारते है, परन्तु वह हर आत्मा को उसके जीवन-निर्वाह के लिए कृपापूर्वक देता है ।। २ ।। २४४ ।। कीट, पतगे, हिरण, सर्प, भूत, भविष्य, वर्तमान सब उसी के बनाए है । देव-दानव सब अपने अहम् मे समाप्त हो गए, परन्तु सब भ्रम मे ही भ्रमित रहे, कोई उसका अन्त नही जान सका ! वेद, पुराण, कतेवादि सभी हारकर थक गए पर उस प्रभु का अन्त नही पा सके ! पूर्णप्रेम और भावना के विना कौन परमात्मा के रहस्य को समझ सका है ।।३।।२४५।। वह प्रभु अनादि, अनत, अगाध, द्वेषरहित, अभय तथा भूत, भविष्य एव वर्तमान मे अवस्थित है । वह स्वय अन्तहीन है, अनातम,

अंति बिहीन अनातम आप अदाग अदोख अछिद्र अछै है। लोगन के करता हरता जल मै थल मैं भरता प्रभ वै है। दीन दयाल दया कर स्रीपति सुंदर स्री पदमापति ए है॥ ४॥ ॥ २४६॥ काम न क्रोध न लोभ न मोह न रोग न सोग न भोग न भै है। देह बिहीन सनेह सभो तन नेह बिरक्त अगेह अछै है। जान को देत अजान को देत ज़मीन को देत ज़मान को दे है। काहे को डोलत है तुमरी सुध सुंदर स्री पदमापति लै है॥ ५॥ २४७॥ रोगन ते अर सोगन ते जल जोगन ते बहु भाँति बचावै। सत्रु अनेक चलावत घाव तऊ तन एक न लागन पावै। राखत है अपनो कर दै करि पाप संबूह न भेटन पावै। और की बात कहा कह तो सौ सु पेट ही के पट बीच बचावै॥ ६॥ २४८॥ जच्छ भुजंग सु दानव देव अभेव तुमै सभ ही कर ध्यावै। भूम अकाश पताल रसातल जच्छ भुजंग सभै सिर न्यावै। पाइ सकै नही पार प्रभाहू को नेत ही नेतह बेद बतावै। खोज थके सभ ही खुजीआसुर हार परे हरि हाथ

बेदाग, द्वेषरहित एव छिद्र-रहित अक्षय है। संसार का कर्ता-हर्ता, जल-स्थल मे पोषण करनेवाला वह प्रभु है। वह दीनो का रक्षक प्रभु श्रीपति एव पद्मापति के नाम से जाना जाता है॥ ४॥ २४६॥ उस प्रभु को न काम है न क्रोध है, न लोभ है, न मोह है, न रोग, शोक अथवा भय है। वह निराकार सबसे प्रेम करनेवाला तथा किसी से भी न प्रेम करनेवाला अगेह तथा अक्षय है। वह जड़, चेतन, धरती और नभ मे निवास करने वाले सबको देता है। हे प्राणी, तुम क्यो घबराते हो, तुम्हारा ध्यान वह परमात्मा अवश्य रखेगा॥ ५॥ २४७॥ वह रोगो-शोको एव जल-व्याधियो से रक्षा करता है। उसकी कृपा हो तो चाहे शत्रु अनेको वार करे परन्तु तन पर एक भी नही लगता। वह अपना वरदहस्त देकर सबकी रक्षा करता है और उसकी कृपा से पाप पास भी नही आता। और क्या कहा जाय, उसकी महिमा तो इतनी अनत है कि वह बच्चे की रक्षा माता के गर्भ मे भी करता है॥ ६॥ २४८॥ हे ईश्वर! यक्ष, सर्प, दानव, देव निर्विकार रूप से तुम्हारा ही ध्यान करते है। भूमि, आकाश, पाताल, रसातल सभी जगह यक्ष एव सर्प तुम्हारे सामने ही सिर नवाते है। प्रभु की प्रभुता का भेद तो कोई नही जान सका और वेद भी उसे नेति-नेति ही बताते है। सब अन्वेषक उसको खोजकर थक गए, परन्तु वह परमात्मा अभी तक किसी के हाथ नही लग सका॥ ७॥ २४९॥

न आवै ।। ७ ।। २४९ ।। नारद से चतुरानन से रुमना रिख से सभहूँ मिलि गायो । बेद कतेब न भेद लख्यो सभ हार परे हरि हाथ न आयो । पाइ सकै नही पार उमापति सिद्ध सनाथ सनंतन ध्यायो । ध्यान धरो तिह को मन मै जिह को अमितोजु सभै जग छायो ।। ८ ।। २५० ।। बेद पुरान कतेब कुरान अभेद न्रिपान सभै पच हारे । भेद न पाइ सक्यो अनभेद को खेदत है अनछेद पुकारे । राग न रूप न रेख न रंग न साक न सोग न संगि तिहारे । आदि अनादि अगाध अभेख अद्वैख जप्यो तिनही कुल तारे ।। ९ ।। २५१ ।। तीरथ कोट कीए इशनान दीए बहु दान महा ब्रत धारे । देस फिर्यो करि भेस तपोधन केस धरे न मिले हरि प्यारे । आसन कोट करे अशटांग धरे बहु न्यास करे मुख कारे । दीनदयाल अकाल भजे बिन अंत को अंत के धाम सिधारे ।।१०।।२५२।। ।। त्व प्रसादि ।। ।। कबित ।। अत्र के चलय्या छित छत्र के धरय्या छत्रधारिन छलय्या (मू०ग्रं०३५) महा सत्रन के साज हैं । दान के

नारद, ब्रह्मा, रूमना ऋषि आदि सबने मिलकर गायन किया । वेद-कतेबो ने भी उसके रहस्य को नही जाना । वे सब हार गए परन्तु परमात्मा उनके हाथ नही आ सका । सिद्ध, नाथ, सनत्कुमार तथा शिव भी उसका अन्त नही जान सके । हे जीव, मन मे उस प्रभु का स्मरण कर, जिसका तेज सारे संसार मे छाया हुआ है ।। ८ ।। २५० ।। वेद, पुराण, कतेब, कुर्आनादि ग्रथ उस अद्वैत ब्रह्म के निरूपण मे थक चुके है । ये सब उस अभेद प्रभु का भेद न पा सकने के कारण खेदयुक्त हैं और उसको अक्षय शक्ति के नाम से पुकारते है । हे प्रभु ! तुम राग, रूप, आकार, सम्बन्ध, शोक आदि से रहित हो । जिसने उस अनादि, अगाध, अवेश, द्वेष-रहित परमात्मा का स्मरण किया है, वह ही पूर्ण रूप से इस भवसागर से तैर सका है ।। ९ ।। २५१ ।। जिन लोगो ने तीर्थो पर करोडो स्नान किए, दान दिए, महाव्रतो को धारण किया, देश-विदेश मे भेस बनाकर घूमे, तपस्या की, केश बढाए, परन्तु उनको परमात्मा नही मिल सका । करोड़ो आसन जिन्होने लगाए, अष्टाग योगसाधना की और विचित्र वेश धारण किए; उन सबको दीनदयालु, कालातीत प्रभु के भजन के विना मृत्यु के घर मे ही प्रवेश करना पड़ा ।। १० ।। २५२ ।। ।। तेरी कृपा से ।। ।। कवित्त ।। हे प्रभु ! तुम अस्त्रो के चलानेवाले, धरती के छत्र को धारण करनेवाले, अनेको सम्राटो को छलनेवाले भयकर शत्रुओ का दमन करनेवाले हो ।

दिवय्या महा मान के बढय्या अवसान के दिवय्या हैं कटय्या जमजाल हैं। जुद्ध के जितय्या औ बिरुद्ध के मिटय्या महा बुद्ध के दिवय्या महा मान हूँ के मान हैं। ज्ञान हूँ के ज्ञाता महा बुद्धता के दाता देव काल हूँ के काल महा काल हूँ के काल हैं॥ १ ॥ २५३ ॥ पूरबी न पार पावैं हिंगुला हिमालै ध्यावै गोर गरदेजी गुन गावै तेरे नाम हैं। जोगी जोग साधैं पउन साधना कितेक बाधैं आरब के आरबी अराधैं तेरे नाम हैं। फरा के फिरंगी मानैं कंधारी कुरेसी जानैं पचछम के पचछमी पछानैं निज काम हैं। मरहटा मघेले तेरी मन सों तपसिआ करैं दिड़वै तिलंगी पहचानैं धरम धाम हैं॥ २ ॥ २५४ ॥ बंग के बंगाली फिरहंग के फिरंगावाली दिल्ली के दिलवाली तेरी आज्ञा मै चलत हैं। रोह के रुहेले माघ देस के मघेले बीर बंगसी बुंदेले पाप पुंज को मलत हैं। गोखा गुन गावै चीन मचीन के सीस न्यावै तिबती धिआइ दोख देह के दलत हैं। जिनै तोहि ध्यायो तिनै पूरन प्रताप पायो सरब धन धाम फल फूल सों फलत हैं॥ ३ ॥ २५५ ॥ देव देवतान कौ सुरेस दानवान कौ

आप दान देनेवाले, मान-सम्मान को बढ़ानेवाले बुद्धिप्रदाता तथा यम के चक्र को कष्ट देनेवाले हैं। आप युद्ध को जितानेवाले, विरोधियो को मिटानेवाले, बुद्धिप्रदाता स्वय साक्षात् मान-सम्मान हो। आप ज्ञान के ज्ञाता, महान् बौद्धिकता के स्वामी प्रदाता देव, काल एवं महाकाल के भी काल हो॥ १ ॥ २५३ ॥ पूर्व दिशा के निवासी तेरा पार नही पा सके तथा हिंगलाज, हिमालय आदि एवं गोर, गरदेजी (अरब का एक शहर) आदि भी तेरे नाम का स्मरण करते है। कितने ही योगी योगसाधना, पवनसाधना करते हैं और कितने ही अरबदेशीय अरब लोग तेरे नाम की आराधना कर रहे है। फ़्रांस के फिरगी, कधार के कुरेशी तथा पश्चिम के लोग भी मात्र तुझे ही पहचानते है। मराठा, मगध-प्रदेशीय लोग मन मे तेरी ही तपस्या करते है तथा तैलगी लोग भी तुझे ही धर्म का धाम करके जानते है ॥२॥२५४॥ बग देश के बंगाली, दिल्ली के निवासी, पश्चिमी देशों के फिरगी तेरी आज्ञा मे चलते है। रुहेलखण्ड के रुहेले, मगध देश के मागधी लोग, बुदेलखण्ड के वीर लोग तेरा नाम लेकर पापपुंजों का नाश करते है। गोरखे, चीनी, तिब्बती सब तेरा स्मरण कर अपनी देही के दु:खों को दूर करते है। जिसने भी तेरा स्मरण किया उसने पूर्णतेज को प्राप्त किया है और उसका धन-धान्य फला-फूला है॥ ३ ॥ २५५ ॥ तुम्हे

सहेस गंगधान कौ अभेस कहीअतु हैं। रंग मै रंगीन राग रूप मै प्रबीन और काहू पै न दीन साध अधीन कहीअतु हैं। पाईऐ न पार तेज पुंज मै अपार सरब बिद्या के उदार हैं अपार कहीअतु हैं। हाथी की चिंघार पल पाछै पहुचत ताहि चीटी की पुकार पहिले ही सुनीअतु हैं॥ ४॥ २५६॥ केते इंद्र द्वार केते ब्रहमा मुखचार केते क्रिशनावतार केते राम कहीअतु हैं। केते सस रासी केते सूरज प्रकासी केते मुंडीआ उदासी जोग द्वार दहीअतु हैं। केते महा दीन केते ब्यास से प्रबीन केते कुमेर कुलीन केते जच्छ कहीअतु हैं। करत है बिचार पै न पूरन को पावै पार ताही ते अपार निराधार लहीअतु हैं॥ ५॥ ॥ २५७॥ पूरन अवतार निराधार हैं न पारावार पाईऐ न पार पै अपार कै बखानीऐ। अद्वै अबिनासी परम पूरन प्रकासी महा रूप हूँ के रासी हैं अनासी कै कै मानीऐ (मू०ग्रं०३६)। जंत्र हूँ न जात जाकी बाप हूँ न माइ ताकी पूरन प्रभा की सु छटा कै अनमानीऐ। तेज हूँ को तंत्र हैं कि राजसी को जंत्र हैं कि

ही देवताओ का देव इद्र, दानियो मे गगाधर शिव एव वेशातीत कहा जाता है। तुम ही रंग मे रगीनी हो, राग-रूप मे प्रवीणता के नाम से जाने जाते हो। तुम किसी के सामने दीन नही वनते तथा साधु-सतों के अधीन रहते हो। तुम्हारा पार नहीं पाया जा सकता, तुम अपार तेज-पुज हो, विद्या के उदार स्वामी हो और तुम्हे ही अपरपार कहा जाता है। हे प्रभु! तुम हाथी की चिंघाड तो वाद मे सुनते हो परन्तु चीटी की पुकार तुम तक पहले ही पहुँच जाती है॥ ४॥ २५६॥ तेरे द्वार पर कितने ही इद्र, ब्रह्मा, कृष्ण, एव राम खड़े रहते है। तुम्हारे इच्छुक अनन्त चन्द्रमा, सूर्य, मुँडिया, उदासीन, साधु और योगी द्वार पर धूनी रमाए वैठे है। कितने पैगम्वर, प्रवीण व्यास और यक्ष आदि है जो तेरा विचार निरंतर करते है, परन्तु तेरा पूर्ण अन्त नही जान सके और ये सव भी तुझे निराधार (विना किसी आश्रय के अवस्थित) मानते है॥ ५॥ २५७॥ तुम पूर्ण अवतार, विना किसी के आश्रय के हो, तुम्हारा पारावार नही जाना जा सकता, तुम्हारा वर्णन कैसे किया जाय। तुम अद्वैत, अविनाशी एव परम पूर्णप्रकाश, महान् रूपराशि एवं अविनाशी हो। उसका कोई यत्र-मत्र, जाति, माँ-बाप नही है। वह पूर्णप्रभा की छटा के रूप मे अनुमानित किया जाता है। वह तेज का तंत्र है या राजकाज का यंत्र है अथवा मोहनी स्त्रियो का मत्र या इन सवकी प्रेरणा है, कहा नही जा

मोहनी को मंत्र हैं निजंत्र कै कै जानीऐ ।। ६ ।। २५८ ।।
तेज हूँ को तरु हैं कि राजसी को सरु हैं कि सुद्धता को घरु हैं
कि सिद्धता की सार हैं । कामना की खान हैं कि साधना की
सान हैं बिरकतता की बान हैं कि बुद्ध को उदार हैं । सुंदर
सरूप है कि भूपन को भूप हैं कि रूपहूँ को रूप है कुमतन को
प्रहार है । दीनन को दाता हैं गनीमन को गारक हैं साधन को
रच्छक हैं गुनन को पहार हैं ।। ७ ।। २५९ ।। सिद्ध को सरूप
हैं कि बुद्ध को बिभूत हैं कि क्रुद्ध को अभूत हैं कि अच्छै
अबिनासी हैं । काम को कुनिंदा हैं कि खूबी को दहिंदा हैं
गनीमन गरिंदा हैं कि तेज को प्रकासी हैं । काल हूँ के काल हैं
कि सत्रन के साल है कि मित्रन को पोखत हैं ब्रिद्धता की बासी
हैं । जोग हूँ को जत्र हैं कि तेज हूँ को तंत्र हैं कि मोहिनी को
मंत्र है कि पूरन प्रकासी है ।। ८ ।। २६० ।। रूप को निवास है
कि बुद्ध को प्रकास हैं कि सिद्धता को बास हैं कि बुद्ध हूँ को
घरु हैं । देवन को देव है निरंजन अभेव हैं अदेवन को देव हैं
कि सुद्धता को सरु हैं । जान को बचय्या हैं इमान को दिवय्या

सकता ।। ६ ।। २५८ ।। वह तेज का तरु है, गतिशीलता का प्रेरणादायक सरोवर है अथवा शुद्धता का घर या सिद्धियो का सार तत्त्व है । वह कामनाओ की खान है, या साधना की शान है, या विरक्तता का गौरव है अथवा उदार बुद्धि का स्वामी है । कहा नही जा सकता कि वह प्रभु सुदर स्वरूपवाला है या राजाओ का भी राजा है कि रूप का भी रूप है अथवा कुमति का नाश करनेवाला है । वह प्रभु दीनो का दाता है, दुष्टो का नाशक है, साधुओ का रक्षक है तथा गुणों का महान् पर्वत है ।। ७ ।। २५९ ।। वह सिद्धि का स्वरूप है, बुद्धि की विभूति से पूर्ण है, अभूतपूर्व क्रोधी है तथा अक्षय अविनाशी है । वह कार्य करनेवाला, विशेषताओ को देनेवाला, दुष्टो का नाश करनेवाला तथा तेज को प्रकाशित करनेवाला है । वह काल का काल, शत्रुओ को नष्ट करनेवाला, मित्रो का रक्षक तथा वृहदता का आवासी है । वह योग का यंत्र, तेज़ का पुज, मोहनी का वशीकरण मत्र तथा पूर्णप्रकाश है ।। ८ ।। २६० ।। वह रूप का निवास, बुद्धि का प्रकाश, सिद्धियो का निवास और बुद्धि का घर है । देवताओ का वह देवता है, कालिमा से रहित है तथा अदेवों का भी देवता है तथा शुद्धता का सरोवर है । वह (भक्तो की) जान बचानेवाला, ईमान पर दृढ़ बनाए रखनेवाला, यम-जाल को काटनेवाला तथा सम्पूर्ण

जमजाल के कटय्या हैं कि कामना को कर हैं। तेज को प्रचंड है अखंडण को खड हैं महीपन को मड है कि इसत्री हैं न नरु हैं ॥ ९ ॥ २६१ ॥ बिस्व को भरन हैं कि अपदा को हरन हैं कि सुख को करन हैं कि तेज को प्रकास है। पाईऐ न पार पारावार हूँ को पार जा को कीजत बिचार सु बिचार को निवास है। हिंगला हिमालै गावै हबशी हलब्बी ध्यावै पूरबी न पार पावै आसा ते अनास हैं। देवन को देव महादेव हूँ के देव हैं निरंजन अभेव नाथ अद्वै अबिनास हैं ॥ १० ॥ २६२ ॥ अंजन बिहीन है निरंजन प्रबीन हैं कि सेवक अधीन है कटय्या जमजाल के। देवन के देव महादेव हूँ के देवनाथ भूम के भजय्या हैं मुहय्या महा बाल के। राजन के राजा महा साज हूँ के साजा महा जोग हूँ के जोग है धरय्या द्रुम छाल के। कामना को कर हैं कुबुद्धता को हर है कि सिद्धता के साथी हैं कि काल हैं (मू०ग्रं०३७) कुचाल के ॥ ११ ॥ २६३ ॥ छीर कै सी छीरावध छाछ कै सी छत्रानेर छपाकर कैसी छब कालिंद्री के कूल के। हसनी सी सीहा रूम हीरा सी हुसैनाबाद गंगा कै सी धार चली सातो सिंध

कामनाओ को पूरा करनेवाला है। वह तेज को प्रचड करनेवाला, खडित न हो सकनेवालो को भी खडित करनेवाला, महीपो की रक्षा करनेवाला स्वय न स्त्री है और न ही पुरुष है ॥ ९ ॥ २६१ ॥ आप विश्व का पोषण करनेवाले, आपदाओ को दूर करनेवाले, सुखकारक है तथा तेज का प्रकाश रूपी प्राण है। जिसका अन्त नही जाना जा सकता, वह सर्व विचारो का आप निवासस्थान है। हिंगलाज, हिमालय, हब्शी एवं अन्य तुम्हारा ध्यान करते हैं तथा पूर्वी लोग भी तुम्हारा अत नही जान सकने के कारण निराश हो गए है। तुम देवताओ के देव, महादेव के भी देव हो, निरजन, अद्वैत, अविनाशी नाथ हो ॥ १० ॥ २६२ ॥ हे प्रभु ! तुम हर प्रकार की कालिमा से मुक्त हो, प्रवीण हो, सेवको के अधीन हो और जम-जाल को काटनेवाले हो। देवो के भी देव हो महादेव के भी नाथ, भूमि को भोगनेवाले एव हर पदार्थ को प्राप्त करानेवाले हो। राजाओ के भी राजा हो तथा सज्जाओ की भी महान् सज्जा हो तथा पेड़ो की छाल धारण करनेवाले योगियो के महायोगी हो। कामनाओ को पूरा करनेवाले कुबुद्धि को दूर करनेवाले, सिद्धियो के साथ रहनेवाले आप समस्त कुचालो के भी काल है ॥ ११ ॥ २६३ ॥ अवध दूध के समान है तथा छत्रानेर नामक नगरी छाछ के समान है। चद्रमा की छवि के समान यमुना का

रूल के। पारा सी पलाऊ गढ रूपा कै सी रामपुर सोरा सी सुरंगाबाद नीके रही झूल के। चंपा सी चंदेरी कोट चाँदनी सी चाँदागड़ि कीरति तिहारी रही मालती सी फूल के ॥ १२ ॥ ॥ २६४ ॥ फटक सी कैलास कमाऊ गढ काशीपुर सीसा सी सुरंगाबाद नीकै सोहीअतु है। हिम्मा सी हिमालै हरहार सी हलब्बानेर हंस कै सी हाजीपुर देखे मोहीअतु है। चंदन सी चंपावती चंद्रमा सी चंद्रागिर चाँदनी सी चाँदागड़ जोन जोहीअतु है। गंगा सम गंगधार बकान सी बिलंदावाद कीरति तिहारी की उजिआरी सोहीअतु है ॥ १३ ॥ २६५ ॥ फरा सी फिरंगी फरासीस के दुरंगी मकरान के म्रिदंगी तेरे गीत गाईअतु है। भखरी कंधारी गोर गखरी गरदेजा चारी पउन के अहारी तेरो नामु ध्याईअतु है। पूरब पलाऊ कामरूप औ कमाऊ सरब ठउर मै बिराजै जहा जहा जाईअतु है। पूरन प्रतापी जंत्र मंत्र के अतापी नाथ कीरति तिहारी को न पार पाईअतु है ॥ १४ ॥ ॥ २६६ ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ अद्वै अनास

तट सुदर है। रोम नगरी हसिनी है के समान तथा हुसैनाबाद हीरे के समान है तथा गगा की सुन्दर धारा सातो समुद्रों को लजानेवाली है। पलायूगढ़ पारे के समान है, रामपुर चाँदी के समान है तथा सुरंगाबाद शोरे के समान है। चदेरी चम्पा के फूल के समान है, चाँदागढी करोड़ों चाँदनियों के समान है, परन्तु, हे ईश्वर ! तुम्हारी कीर्ति मालती के सुन्दर पुष्प के समान है ॥ १२ ॥ २६४ ॥ कैलास, कुमायूँ, काशीपुर आदि स्थान स्फटिक के समान उज्ज्वल है तथा सुरगाबाद आदि स्थान शीशे के समान शोभायमान है। हिमालय धवल, हलबानेर आकाशगगा की तरह तथा हाजीपुर हस के समान मन को मोहनेवाला है। चंपावती चंदन के समान, चद्रगिरि चद्रमा के समान तथा चाँदागढ़ नगरी चाँदनी के समान दिखाई देती है। गंगधार (गांधार) गगा के समान, बुलदाबाद बगुले की तरह दिखाई देता है। ये सब तुम्हारी कीर्ति के उजाले के प्रतीक है ॥ १३ ॥ २६५ ॥ फ्रास के फिरंगी, फारस के लोग तथा मकरान प्रदेश के निवासी तेरे गीत गाते है। भक्खर, कधार, गक्खर एवं अरब देशों के वीर तथा पवन का आहार करनेवाले अन्य लोग तेरे नाम का स्मरण करते है। पूर्व मे पलायू, कामरूप, कुमायूँ आदि सर्व स्थानो मे जहाँ भी जायँ आप विराजमान है। तुम पूर्णप्रतापी हो, यत्र-मत्रो से अप्रभावित रहने वाले नाथ हो, तुम्हारी कीर्ति का अन्त नही पाया जा सकता ॥१४॥२६६॥

आसन अडोल । अद्वै अनंत उपमा अतोल । अच्छै सरूप अब्यकत नाथ । आजान बाहु सरबा प्रमाथ ॥ १ ॥ २६७ ॥ जह तह महीप बन तन प्रफुल्ल । सोभा बसंत जह तह प्रडुल्ल । बन तन दुरंत खग म्रिग महान । जह तह प्रफुल्ल सुंदर सुजान ॥ २ ॥ २६८ ॥ फुलतं प्रफुल्ल लहिलहित मोर । सिर ढुरहि जान मन मथह चोर । कुदरत कमाल राजक रहीम । करुणानिधान कामल करीम ॥ ३ ॥ २६९ ॥ जह तह बिलोक तह तह प्रसोह । आजान बाह अमितोज मोह । रोसं बिरहत करुणानिधान । जह तह प्रफुल्ल सुंदर सुजान ॥ ४ ॥ २७० ॥ बन तन महीप जल थल महान । जह तह प्रसोह करुणानिधान । जगमगत तेज पूरन प्रताप । अंबर ज़मीन जिह जपत जाप ॥ ५ ॥ २७१ ॥ सातो अकाश सातो पतार । बिथर्यो अद्रिशट जिह करम जारि (मू०ग्रं०३८) ।

॥ उसतति संपूरनं ॥

॥ तेरी कृपा से ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ तुम अद्वैत, अविनाशी तथा अटल आसन वाले हो । तुम अद्वैत, अनत एव उपमाओ से परे हो । तुम अक्षय-स्वरूप वाले अव्यक्त नाथ, आजानुबाहु तथा समस्त जीवो का नाश करने वाले हो ॥ १ ॥ २६७ ॥ यहाँ-वहाँ सब जगह तुम राजा हो तथा वनो मे तनो मे प्रफुल्लित हो रहे हो । तुम वसन्त के रूप मे शोभायमान होकर यहाँ-वहाँ बिखरे हुए हो । खगो मे, मृगो मे तुम ही छुपे हो । हे सुन्दर सुजान ! तुम सर्वत्र सौंदर्य-रूप मे विराजमान हो ॥ २ ॥ २६८ ॥ तुम्हे फूलता देखकर मोर प्रसन्न हो रहे है और ऐसा लग रहा है मानो सिर झुका कर कामदेव के प्रभाव को स्वीकार कर रहे है । हे रहम करनेवाले, सब को रोज़ी देनेवाले ! तुम्हारी क़ुद्रत आश्चर्यजनक है । तुम करुणानिधान, चतुर एव कृपालु हो ॥ ३ ॥ २६९ ॥ जहाँ कही भी मैं देखता हूँ, वहाँ-वहाँ आपका स्पर्श अनुभव होता है । तुम लम्बी भुजाओवाले हो, अमित ओज एव मन को मोहनेवाले हो । तुम रोष के भी बृहद्‌रूप हो और करुणा के भी समुद्र हो । हे सुदर सुजान ! तुम यहाँ-वहाँ सर्वत्र फल-फूल रहे हो ॥ ४ ॥ २७० ॥ वनो और तनों के राजा तुम जल एव स्थल मे महान् हो । हर स्थान पर तुम्हारा स्पर्श है, तुम करुणानिधान हो । हे पूर्णप्रतापी ! तुम्हारा तेज जगमगा रहा है तथा आकाश एव धरती तुम्हारा ही जाप जप रहे है ॥ ५ ॥ २७१ ॥ सातों आकाश, सातो पातालों मे जिसका कर्म-जाल अदृष्टस्वरूप मे बिखरा पड़ा है, उसकी स्तुति सपूर्ण (होती है) ।

१ ओं स्री वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

अथ

बचित्र नाटक ग्रंथ लिख्यते ॥ त्वप्रसादि ॥

स्री मुखवाक पातिशाही १० ॥

॥ दोहरा ॥ नमशकार स्रीखड़ग को करौ सु हितु चितु लाइ ।
पूरन करौ गिरंथ इह तुम मुहि करहु सहाइ ॥ १ ॥

त्रिभंगी छंद ॥ स्री काल जी की उसतति ॥

खग खंड बिहंडं खल दल खंडं अति रण मंडं बरबंडं । भुज दंड अखंडं तेज प्रचंड जोति अमंडं भान प्रभं । सुख संता करणं दुरमति दरणं किलबिख हरणं अस सरणं । जै जै जग कारण स्रिशट उबारण मम प्रतिपारण जै तेगं ॥ २ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ सदा एक जोत्यं अजूनी सरूपं । महांदेव देवं महा भूप भूपं । निरंकार नित्यं निरूपं न्रिबाणं । कलं कारणेयं नमो खड़ग पाणं ॥ ३ ॥ निरंकार न्रिबिकार नित्यं

॥ दोहा ॥ मैं अपने हृदय एव चित्त से श्री खड़ग को नमस्कार करता हूँ । यह ग्रथ पूर्ण करो और इस कार्य में आप मेरी सहायता कीजिए ॥ १ ॥ ॥ त्रिभगी छद ॥ ॥ श्री काल जी की स्तुति ॥ यह खड़ग अच्छी तरह से काटनेवाली, दुष्टो के दलो को नष्ट करनेवाली, युद्ध का मंडन करनेवाली बलवान शक्ति है । यह भुजाओ का अखंड तेज है, इसकी ज्योति प्रचड है और इसकी प्रभा भानु के समान है । यह खड़ग अथवा कृपाण संतो को सुख देनेवाली, दुर्मति का दलन करनेवाली और विषय-विकारो को नष्ट करनेवाली है । मैं ऐसी कृपाण रूपी शक्ति की जय कहता हूँ और उसकी शरण मे हूँ जो सारी सृष्टि का मूल है और मेरा पोषण करनेवाली है ॥ २ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ हे प्रभु शक्ति, तुम सदैव एक ज्योतिस्वरूप एव अजन्मा हो, महांदेवो की भी देव और राजाओ की भी राजा हो । तुम नित्य, निराकार, अरूप एवं निर्वाण-स्वरूप हो । हे खडगधारी प्रभु, तुम सर्व कलाओ का कारण हो ॥ ३ ॥

निरालं। न ब्रिद्धं बिसेखं न तरुनं न बालं। न रंकं न रायं न रूपं न रेखं। न रंगं न रागं अपारं अभेखं ॥ ४ ॥ न रूपं न रेखं न रंग न रागं। न नामं न ठामं महा जोति जागं। न द्वेखं न भेखं निरंकार नित्यं। महा जोग जोगं सु परमं पवित्यं ॥ ५ ॥ अजेयं अभेय अनामं अठामं। महा जोग जोगं महा काम कामं। अलेखं अभेखं अनीलं अनादं। परेयं पवित्रं सदा न्रिबिखादं ॥ ६ ॥ सु आदं अनादं अनीलं अनंतं। अद्वेखं अभेखं महेसं महंतं। न रोखं न सोखं न द्रोहं न मोहं। न कामं न क्रोधं अजोनी अदोहं ॥ ७ ॥ परेयं पवित्रं पुनीतं पुराणं। अजेयं अभेयं भविक्ख्यं भवाणं। न रोगं न सोगं सु नित्यं नवीनं। अजायं सहायं सु परमं प्रबीनं ॥ ८ ॥ सु भूतं भविक्खं भवानं भवेयं। नमो न्रिबिकारं नमो न्रिजुरेयं। नमो देव देवं नमो राज राजं। निरालंब नित्यं सु राजाधिराजं ॥९॥ अलेखं अभेखं अभूतं अद्वैखं। न रागं न रंगं न रूपं न

हे निराकार, निर्विकार, नित्य एव निराली शक्तिस्वरूप प्रभु, तुम न वृद्ध होते हो न तरुण होते हो और न वालक का ही रूप लेते हो। न तुम रंक हो, न राजा हो। न तुम्हारा कोई रूप है न रेख है, न रग है न राग है। तुम अपार हो और भेष-रहित हो ॥ ४ ॥ न तुम्हारा कोई रूप है, न रेख है। न कोई रग है, न राग है। तुम नाम, स्थान से विहीन जलनेवाली महाज्योति हो। तुम न द्वेष हो, न किसी वेश मे निहित हो। तुम नित्य निराकार हो। तुम महायोग, परम पवित्र हो ॥ ५ ॥ तुम अजेय, अभय, अनाम एव स्थानातीत हो। तुम महायोग हो और महान् कामनाओ की भी कामना हो। हे अलेख, निरवेश, अनील, अनादि प्रभु, तुम परे से परे पवित्र हो तथा सदा विषाद से रहित हो ॥ ६ ॥ तुम आदि, अनादि, अनील एव अनत हो। द्वेष, वेश से रहित तुम धरती के स्वामी हो। रोष, शोक, द्रोह एव मोह से तुम मुक्त हो। काम, क्रोध से विहीन तुम अयोनि एव अदृष्ट हो ॥ ७ ॥ हे महाकाल प्रभु, तुम कलहातीत, पवित्र, पुनीत एव सुप्राचीन, अजेय, अभय, वर्तमान एव भविष्य मे वने रहनेवाले हो। तुम रोग-शोक-मुक्त, नित्यनवीन, अजन्मा, सर्व-सहायक और परम प्रवीण हो ॥ ८ ॥ तुम भूत, भविष्य, वर्तमान हो। हे निर्विकार एवं रोगो से मुक्त, तुम्हे मेरा प्रणाम है। हे देवो के देव, राजाओ के राजा, निरालव, नित्य राजाधिराज, तुम्हे मेरा प्रणाम है ॥९॥ तुम अलेख, अवेश, अभूत एव द्वेषो से परे हो। तुम न राग हो, न रग हो,

रेखं । (मू०ग्रं०३९) महां देव देवं महा जोग जोगं । महा काम कामं महा भोग भोगं ।।१०।। कहूँ राजसं तामसं सातकेयं । कहूँ नार को रूप धारे नरेयं । कहूँ देवियं देवतं दईत रूपं । कहूँ रूप आनेक धारे अनूपं ।। ११ ।। कहूँ फूल ह्वैकै भले राज फूले । कहूँ भवर ह्वैकै भलीभाँति भूले । कहूँ पवन ह्वैकै बहे बेगि ऐसे । कहे मो न आवै कथौ ताहि कैसे ।। १२ ।। कहूँ नाद ह्वैकै भलीभाँति बाजे । कहूँ पारधी ह्वै धरे बान राजे । कहूँ म्रिग ह्वैकै भलीभाँति मोहे । कहूँ काम की जिउ धरे रूप सोहै ।। १३ ।। नही जानि जाई कछू रूप रेखं । कहा बास ताको फिरै कउन भेखं । कहा नाम ताको कहा कै कहावै । कहा मै बखानो कहे मो न आवै ।। १४ ।। न ताको कोई तात मातं न भायं । न पुत्रं न पौत्रं न दाया न दायं । न नेहं न गेहं न सैनं न साथं । महाराज राजं महानाथ नाथं ।। १५ ।। परम्मं पुरानं पवित्रं परेयं । अनादं अनीलं असंभं अजेयं । अभेदं अछेदं पवित्रं प्रमाथं । महा दीन दीनं

न रूप हो न आकार हो । तुम महादेवों के भी देव महान् योगियो के भी योगीराज, कामनाओं की भी कामना एव महान् भोगो को भी भोगनेवाले हो ।। १० ।। कही तुम रजस्, तमस् एव सत्त्व हो । कही नारी का रूप धारण किये हुए नर (अर्धनारीश्वर) हो । कही तुम देवी एव दैत्य के रूप में हो और कही पर अनेक अनुपम रूपों को धारण करनेवाले हो ।। ११ ।। कही तुम फूल बनकर कल्पवृक्ष के फूलों के समान फूले हो । कही तुम भ्रमर बनकर भलीभाँति रूप से फूलो मे ही भूले फिर रहे हो । कही पवन होकर ऐसे वेग से तुम बह रहे हो कि मै कह नही सकता । तुम्हारा वर्णन कैसे करूँ ? ।। १२ ।। तुम कही नाद-रूप होकर बज रहे हो, कही शिकारी के रूप मे बाण लिये शोभायमान हो रहे हो, कही तुम मृग होकर भलीभाँति मोह मे फँसे पड़े हो और कही पर तुम कामिनी-रूप में शोभायमान हो ।। १३ ।। तुम्हारे रूप-आकार को नही जाना जा सकता । तुम्हारा आवास कहाँ है, तुम किस वेश मे घूमते हो, तुम्हारा नाम क्या है, तुम कहाँ के हो, इसका मैं क्या वर्णन करूँ, मुझसे कहा नही जाता ।। १४ ।। न तुम्हारा कोई पिता, माता या भाई है । न तुम्हारा कोई पुत्र, पौत्र, धाय आदि है । न तुम्हे कोई स्नेह-विशेष है, न तुम्हारा कोई घर है, न तुम्हारी सेना है, न तुम्हारा कोई संग-साथ है । हे महान् राजा, तुम नाथो के भी नाथ हो ।। १५ ।। तुम परम पुराने,

महा नाथ नाथं ॥ १६ ॥ अदागं अदग्गं अलेखं अभेखं। अनंतं अनीलं अरूपं अद्वैखं। महा तेज तेजं महा ज्वाल ज्वालं। महा मंत्र मंत्रं महा काल कालं ॥ १७ ॥ करं बाम चाप्यं क्रिपाणं करालं। महा तेज तेजं बिराजै बिसालं। महा दाड़ दाड़ं सु सोहं अपारं। जिनै चरबीयं जीव जग्यं हजारं ॥ १८ ॥ डमा डंम डउरू सिता सेत छत्रं। हाहा हूह हासं झमा झम्म अत्रं। महा घोर सबदं बजे संख ऐसं। प्रलै काल के काल की ज्वाल जैसं ॥ १९ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ घणं घंट बाजं। धुणं मेघ लाजं। भयो सद्द एवं। हड़्यो नीरधेवं ॥ २० ॥ घुरं घुंघरेयं। धुणं नेवरेयं। महा नाद नादं। सुरं निरबिखाद ॥ २१ ॥ सिरं माल राजं। लखे रुद्र लाजं। सुभे चार चित्रं। परम्मं पवित्रं ॥ २२ ॥ महा गरज गरजं। सुणे दूत लरजं। स्रवं स्रोण सोहं। महा मान मोहं ॥ २३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ स्रिजे सेतजं जेरजं उतभुजेवं। रचे

पवित्र और झगडो से दूर हो। तुम अनादि, कलुषरहित, स्वयंभू तथा अजेय, अभेद, अक्षय, पवित्र, बलशाली, पैगम्बरो के भी धर्म एवं महानाथो के भी नाथ हो ॥ १६ ॥ तुम बेदाग, प्रकाश, अलेख, निर्वेश, अनन्त, अरूप, अद्वेष, महातेज, महाज्वाल, महामंत्र एव महाकाल के भी काल हो ॥ १७ ॥ तुम्हारे बाये कर मे धनुष, कृपाण है। तुम महातेज हो तथा तेजस्वी विशाल रूप मे विराजमान हो। तुम भयंकर मुख एवं दाँतो वाले वह अपार स्वरूप हो, जिसने हज़ारो यज्ञो एवं जीवो का भक्षण किया है ॥ १८ ॥ तुम्हारा डमरू डमडम बजता है और तुम्हारा छत्र काला और सफेद है। तुम्हारे चारो ओर भयंकर अट्टहास एवं प्रकाश रहता है। शख ऐसे बजते है और ऐसी महाघोर ध्वनि को करते है मानो प्रलय भाव मे धुआँधार अग्नि लगी हो ॥ १९ ॥ ॥ रसावल छद ॥ बादल रूपी घण्टे वज रहे है और मेघो के धनुष बन रहे है और कुछ इस प्रकार का वातावरण बन रहा है मानो समुद्र मे बाढ़ आ गई हो ॥ २० ॥ घुंघुरुओ की ध्वनि हो रही है और धनुषो की टकार सुनाई पड़ रही है और इस प्रकार के निर्विषाद स्वर निकल रहे है, मानो महानाद बज रहा हो ॥ २१ ॥ सिर पर माला शोभायमान हो रही है और तुम्हारे स्वरूप को देखकर रुद्र भी लजा रहे है। तुम सुन्दर चित्र हो तथा परमपवित्र हो ॥ २२ ॥ तुम्हारी महान गर्जना को सुनकर दूतगण भयाकुल हो रहे हैं। हे महामानी और सबको मोहनेवाले ! तुम्हारी यह ध्वनि कानो को सुन्दर प्रतीत होती है ॥ २३ ॥ ॥ भुजग प्रयात छंद ॥ तुमने स्वेदज,

अंडजं खंड ब्रहमंड एवं । दिसा बिदिसायं जिमी आसमाणं । चतुर बेद कथयं (मू०ग्रं०४०) कुराणं पुराणं ।। २४ ।। रचे रैण दिवसं थपे सूर चंद्रं । ठटे दईव दानो रचे बीर बिंद्रं । करी लोह कलमं लिख्यो लेख माथं । सभै जेर कीने बली काल हाथं ।। २५ ।। कई मेट डारे उसारे बनाए । उपारे गड़े फेरि मेटे उपाए । क्रिआ काल जू की किनू न पछानी । घन्यो पै बिहैहै घन्यो पै बिहानी ।। २६ ।। किते क्रिशन से कीट कोटै बनाए । किते राम से मेटि डारे उपाए । महा दीन केते प्रिथी मांझ हूए । समै आपनी आपनी अंति मूए ।। २७ ।। जिते अउलीआ अंबीआ होइ बीते । तित्यो काल जीता न ते काल जीते । जिते राम से क्रिशन हुइ बिशन आए । तित्यो काल खापिओ न ते काल घाए ।। २८ ।। जिते इंद्र से चंद्र से होत आए । तित्यो काल खापा न ते काल घाए । जिते अउलीआ अंबीआ गउस ह्वै हैं । सभै काल के अंत दाड़ा तलै हैं ।।२९।। जिते मानधातादि राजा सुहाए । सभै बाँधिकै काल जेलै

जेरज, उद्‌भिज, अण्डज एवं खण्ड-ब्रह्माण्डों की सरचना की । तुमने दिशा, विदिशा, धरती, आकाश रचकर चारो वेद, कुर्आन, पुराण आदि का कथन किया ।। २४ ।। रात-दिन, सूर्य, चन्द्रदेव, दानव आदि वीरो की रचना की । लौह कलम से सबके माथे पर लेख लिखे एवं महाबलियो को भी अपने अधीन किया ।।२५।। तुमने कई को मिटाये, धराशायी किये और फिर बनाये । फिर उनका उच्छेदन किया, फिर गढ़न किया, मिटाया एव पैदा किया । हे काल ! तुम्हारी क्रियाओ को कोई भी पहचान न सका और अनेको पर तुम्हारी माया प्रभाव डाल चुकी है और अनेकों पर डालेगी ।। २६ ।। तुमने कृष्ण के समान करोडो कीट बनाये । तुमने राम के समान कितनो को ही पैदा किया और मिटा डाला । पृथ्वी पर कितने ही पैगम्बर हुए, परन्तु सभी अन्त मे कालवश होकर मृत्यु को प्राप्त हुए ।। २७ ।। ससार मे जितने भी ऋषि, मुनि एव औलिया हुए, सबको काल ने जीत लिया परन्तु वे काल को न जीत सके । जितने भी राम-कृष्ण के समान विष्णु-रूप होकर आये सबको काल ने खपा दिया, परन्तु ये सब काल का कुछ भी न कर पाये ।। २८ ।। जितने इन्द्र, चन्द्र आदि के समान हुए, काल ने सबका नाश कर दिया, परन्तु वे काल का कुछ भी न कर पाये । जितने औलिया, ऋषि, मुनि एव विभिन्न प्रकार के जीव है, सबको अन्त में काल की दाढ़ के नीचे ही जाना है ।। २९ ।। जितने भी मान्धाता आदि

चलाए। जिनै नाम ताको उचारो उबारे। बिना साम ताको लखे कोट मारे ॥ ३० ॥ ॥ रसावल छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ चमंकहि क्रिपाणं। अभूतं भयाणं। धुणं नेवराणं। घुरं घुंघ्रयाणं ॥ ३१ ॥ चतुर बाँह चारं। निजूट सुधारं। गदा पाँस सोहं। जमं मान मोहं ॥ ३२ ॥ सुभं जीभ ज्वालं। सु दाढ़ा करालं। बजी बंब संकं। उठे नाद बंखं ॥ ३३ ॥ सुभं रूप स्यामं। महा सोभ धामं। छवे चार चित्रं। परेअं पवित्रं ॥ ३४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ सिरं सेत छत्रं सु सुभ्रं बिराजं। लखे छैल छाइआ करे तेज लाजं। बिसालाल नैनं महाराज सोहं। ढिगं अंसुमालं हसं कोट क्रोहं ॥३५॥ कहूँ रूप धारे महाराज सोहं। कहूँ देव कंनिआन के मान मोहं। कहूँ बीर ह्वैकै धरे बान पानं। कहूँ भूप ह्वैकै बजाए निशानं ॥ ३६ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ धनुर बान धारे। छके छैल भारे। लए खग्ग ऐसे। महाबीर जैसे ॥ ३७ ॥ जुरे

राजा हुए, काल ने सबको बाँधकर आगे लगा लिया। जितने भी नामों का उच्चारण किया जाय बिना उस प्रभु की शरण के ऐसे करोड़ो मृत्यु को प्राप्त हुए ॥३०॥ ॥ रसावल छन्द ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ तुम्हारी कृपाण चमकती है और तुम अभूतपूर्व भय-स्रोत हो। तुम्हारे नूपुर ऐसे बज रहे हैं, मानो बादल गरज रहे हो ॥ ३१ ॥ तुम्हारी सुन्दर चार बाँहें एवं जटाजूट है। तुम्हारे हाथो मे गदा एव फाँस शोभायमान है और यम का भी मान समाप्त करनेवाली है ॥ ३२ ॥ तुम्हारी जीभ ज्वाला के समान एव दाँत भयकर हैं। भयकर नाद हमेशा तुम्हारे चारों ओर से उठा करता है ॥ ३३ ॥ तुम शुभ श्याम-रूप हो तथा महाशोभा के धाम हो। तुम्हारी छवि चारुचित्र के समान है और तुम कलह से परे पवित्र हो ॥ ३४ ॥ ॥ भुजग प्रयात छद ॥ तुम्हारे सिर पर श्वेत छत्र विराजमान है और तुम्हारे प्रताप को देखकर स्वय तेज लजायमान है। हे महाराज ! तुम्हारे विशाल नयन शोभायमान है और तुम्हारे पास महाक्रोध एवं हास्य का प्रतीक अशुमाल विराजमान है ॥३५॥ कही तुम रूप धारण कर महाराज के समान शोभायमान हो। कही देवकन्याओ के मान और मोह के रूप मे विराजमान हो। कही शूरवीर होकर हाथ मे बाण पकडनेवाले हो और कही राजा होकर नगाड़े को बजानेवाले हो ॥ ३६ ॥ ॥ रसावल छद ॥ तुमने धनुष-बाण धारण कर रखा है और अनेक युवाओ को आश्चर्य मे डाल रखा है। महावीरो के समान तुमने खड्ग धारण कर रखा है ॥ ३७ ॥ जब भीषण जग के लिए लोग इकट्ठा होते है

जंग जोरं। करे जुद्ध घोरं। क्रिपानिधि दिआलं। सदायं क्रिपालं॥ ३८॥ (मू०ग्रं०४१) **सदा एक रूपं। सभै लोक भूपं। अजेयं अजायं। सरन्नियं सहायं॥ ३९॥ तपै खग्ग पानं। महा लोक दानं। भविक्खयं भवेअं। नमो निरजुरेअं॥ ४०॥ मधो मान मुंडं। सुभं रुंड झुंडं। सिरं सेत छत्रं। लसं हाथ अत्रं॥ ४१॥ सुणे नाद भारी। त्रसे छत्र धारी। दिशा बसत्र राजं। सुणे दोख भाजं॥ ४२॥ सुणे गद्द सद्दं। अनंतं बिहद्दं। घटा जाणु स्यामं। दुतं अभिरामं॥ ४३॥ चतुर बाह चारं। करीटं सु धारं। गदा संख चक्रं। दिपै क्रूर बक्रं॥ ४४॥ ॥ नराज छंद॥ अनूप रूप राजियं। निहार काम लाजियं। अलोक लोक सोभियं। बिलोक लोक लोभियं॥ ४५॥ चमक्कि चंद्र सीसियं। रहियो लजाइ ईसियं। सु सोभ नाग भूखणं। अनेक दुशट दूखणं॥ ४६॥**

और घमासान युद्ध होता है, तब, हे कृपानिधि दयालु, सदा तुम्हारी कृपा बनी रहती है॥ ३८॥ तुम सदैव एक रूप, सर्व लोकों के भूप, अजेय, अजन्मा एव शरणागत की सहायता करनेवाले हो॥ ३९॥ तुम्हारे हाथ मे खड्ग तप रहा है और तुम महादानी लोक को दान दे रहे हो। हे भविष्य और वर्तमान तथा समस्त तापो से रहित, तुम्हे मेरा नमस्कार है॥ ४०॥ मधु (राक्षस) के मान का मुण्डन करनेवाले और शुभ का नाश करनेवाले, सिर पर श्वेत छत्र धारण करनेवाले (काल) तुम्हारे हाथों मे अस्त्र शोभायमान है॥ ४१॥ तुम्हारा भारी नाद सुनकर छत्रधारी भी भयभीत हो जाते है। तुम्हारे वस्त्र दिशाओं के हैं, जो तुम्हारे तन पर शोभायमान है। तुम्हारी ध्वनि सुनकर दुःख भाग जाते है॥ ४२॥ तुम्हारा बुलावा सुनकर अनन्त प्रसन्नता प्राप्त होती है। ऐसा लगता है, घटाओ के रूप मे श्याम तुम ही हो और अद्वितीय अभिराम रूप मे विराजमान हो॥ ४३॥ तुम्हारी सुन्दर चार बाँहे है, तुमने सुन्दर मुकुट धारण कर रखा है, गदा-शख-चक्र एव तुम्हारी क्रूर भृकुटी देदीप्यमान हो रही है॥ ४४॥ ॥ नराज छद॥ तुम्हारा अनुपम रूप ऐसा शोभायमान हो रहा है, जिसे देखकर कामदेव भी लजा रहा है। तुम्हारा प्रकाश समस्त लोको की शोभा है और समस्त लोक इसे अवलोकन करने का लोभ करते रहते है॥ ४५॥ तुम्हारे सिर पर चन्द्र इस प्रकार चमक रहा है, जिसे देखकर शिव भी लजा रहे है। तुमने नागों के आभूषण पहन रखे हैं, जो अनेकों दुःखो को दूर करनेवाले है॥ ४६॥ तुम्हारे हाथों मे धारण

क्रिपाण पाण धारियं। करोर पाप टारियं। गदा ग्रिसट पाणियं। कमाण बाण ताणियं ॥ ४७ ॥ सबद्द संख बज्जियं। घणंकि घुंमर गज्जियं। शरनि नाथ तोरियं। उबार लाज मोरियं ॥ ४८ ॥ अनेक रूप सोहियं। बिसेख देव मोहियं। अदेव देव देवलं। क्रिपा निधान केवलं ॥४९॥ सु आदि अंति एकयं। धरे सरूप अनेकियं। क्रिपाण पाण राजई। बिलोक पाप भाजई ॥ ५० ॥ अलंक्रितं सु देहियं। तनो मनो कि मोहियं। कमाण बाण धारही। अनेक शत्र टारही ॥ ५१ ॥ घमक्कि घुंघरं सुरं। नवंन नाद नूपरं। प्रज्वाल बिज्जुलं जुलं। पवित्र परम निरमलं ॥ ५२ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ नव नेवर नाद सुरं न्रिमलं। मुख बिज्जुल ज्वाल घण प्रजुलं। मदरा कर मत्त महा भभकं। बन मै मनो बाघ बचा बबकं ॥ ५३ ॥ भव भूत भविक्ख भवान भुवं। कल कारण उबारण एक तुवं। सम ठौर निरंतर नित्त नयं। म्रिद मंगल रूप तुयं सु भयं ॥ ५४ ॥ ढिड़दाड़ कराल

की हुई कृपाण करोड़ो पापो को दूर करनेवाली है। तुम्हारे हाथ मे गदा भारी है और तुम्हारी कमान से बाण तने हुए हैं ॥ ४७ ॥ तुम्हारे शख का शब्द बादलो के गर्जन के समान है। हे नाथ ! मै तुम्हारी शरण में हूँ। मुझे उबारकर मेरी लाज रखो ॥ ४८ ॥ अनेक रूपो मे शोभायमान देव-विशेष तुम मन को मोहनेवाले हो। देव और अदेव सबके लिए तुम पूज्य हो तथा शुद्ध रूप से कृपा के समुद्र हो ॥ ४९ ॥ तुम आदि और अन्त मे एक ही रूप हो। तुमने अनेको रूपो को (स्वय अपनी इच्छा से) धारण किया है। तुम्हारे हाथो मे सुशोभित कृपाण को देखकर पाप भाग खड़े होते है ॥ ५० ॥ तुम्हारी देह अलकृत है और तन-मन को मोहने वाली है। तुम्हारी कमान जब बाण धारण करती है, तो अनेको शत्रु भाग खड़े होते है ॥ ५१ ॥ तुम्हारे नूपुरो का नाद और घुँघुरुओ का स्वर मेघ-गर्जन के समान है। बिजली तुम्हारी ज्वाला है और तुम परम पवित्र निर्मल हो ॥ ५२ ॥ ॥ तोटक छद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ तुम्हारे नूपुरो का स्वर निर्मल है और तुम्हारे मुख से बिजली की ज्वाला प्रज्वलित हो रही है। तुम्हारे हाथो की आवाज ऐसी है, मानो वन मे शेर के बच्चे दहाड़ रहे हो ॥ ५३ ॥ तुम भूत, भविष्य और वर्तमान मे विराजमान हो और इस कलियुग मे एक तुम ही उद्धार करनेवाले हो। तुम सर्व स्थानो पर नित्य निरन्तर नव-रूप हो और तुम्हारा मगल रूप मृदुल है ॥ ५४ ॥

दूं सेत उधं । जिह भाजत दुशट बिलोक जुधं । मद मतत क्रिपाण कराल धरं । जय सद्द सुरा सुरयं उचरं ॥ ५५ ॥ नव किंकण नेवर नाद हुअं । चल चाल सभा चल कंप भुअं । (मू०ग्रं०४२) घण घुंघर घंटण घोर सुरं । चर चार चरा चरयं हुहरं ॥ ५६ ॥ चल चौदहूँ चक्रन चक्र फिरं । बढवं घटवं हरीअं सुभरं । जग जीव जिते जलयं थलयं । अस को जु तवाइसुअं मलयं ॥ ५७ ॥ घट भादव मास की जाण सुभं । तन सावरे रावरीअं हुलसं । रद पंकत दामनीअं दमकं । घन घुंघर घंट सुरं घमकं ॥ ५८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ घटा सावणं जान स्यामं सुहायं । मणी नील नगियं लखं सीस न्यायं । महा सुंद्र स्यामं महा अभिरामं । महा रूप रूपं महा काम कामं ॥ ५९ ॥ फिरै चक्र चउदहूँ पुरीयं मधिआणं । इसो कौन बीयं फिरै आइसाणं । कहो कुंट कौनै लिखै भाज बाचै । सभं सीस के संग स्री काल नाचै ॥ ६० ॥ करे कोट कोऊ धरे कोट ओटं । बचैगो न किउ हूँ कर काल चोटं । लिखं जंत्र

तुम्हारे भयंकर दो दृढ सफेद दाँत हैं, जिन्हे देखकर दुष्ट युद्ध मे भाग खड़े होते है। तुम्हारे हाथो मे कराल कृपाण है, जिससे ध्वनि हमेशा निकला करती है ॥ ५५ ॥ तुम्हारी नव किंकिणी के नाद से सभी चलायमान हो जाते हैं और भूमि काँपने लगती है। तुम्हारे घण्टे की घन गर्जन से चर-अचर सभी भयभीत हो जाते हैं ॥ ५६ ॥ चौदहो भुवनो मे तुम्हारा चक्र घूमता है और जीव घटते-बढते मृत्यु को प्राप्त होते तथा पोषित होते रहते है। जल-स्थल मे जितने भी जीव है, ऐसा कौन है, जिसने आपकी आज्ञा का उल्लघन किया हो ॥ ५७ ॥ भादो मास की शुभ घटा के समान तुम्हारा तन हुलस रहा है। चमकती बिजली और बजते हुए घट बादलों की गर्जन के समान स्वर दे रहे है ॥ ५८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ सावन की श्याम घटा ऐसे शोभायमान हो रही है, मानो नीलमणि देखकर हृदय प्रफुल्लित हो रहा हो। (हे काल !) तुम महासुन्दर श्याम अभिराम, रूपों के रूप और कामनाओ की भी महाकामना हो ॥ ५९ ॥ तुम्हारा चक्र चौदह पुरियो मे फिर रहा है। ऐसा कौन वीर है, जो आपकी आज्ञा को मोड़ दे ! (यदि कोई ऐसा हो) तो बताओ वह कौन सी दिशा मे बचकर भाग जायेगा, क्योकि सबो के सिर पर काल नाच रहा है ॥ ६० ॥ कोई करोड़ो यत्न करे और किलो का आश्रय ले, तब भी काल की चोट से कोई बच नही पायेगा। बेशक कितने ही यत्र एवं मंत्र पढ़े जायँ, परन्तु बिना

केते पड़ं मंत्र कोटं । बिना शरन ता की नही और ओटं ।।६१।। लिखं जत्र थाके पड़ं मंत्र हारे । करे काल ते अंत लै कै बिदारे । कितिओ तत्र साधं जु जनमं बितायो । भए फोकटं काज एकै न आयो ।। ६२ ।। किते नास मूँदं भए ब्रहमचारी । किते कंठ कंठी जटा सीस धारी । किते चीर कानं जुगीसं कहायं । सभे फोकट धरम कामं न आयं ।। ६३ ।। मधु कीटभं राछसे से बलीअं । समे आपनी काल तेऊ दलीअं । भए सुंभ नैसुंभ स्रोणंत बीजं । तेऊ काल कीने पुरेजे पुरेजं ।। ६४ ।। बली प्रिथीअं मानधाता महीपं । जिनै रत्थ चक्रं कीए सात दीपं । भुजं भीम भरथं जगं जीत डंड्यं । तिनै अंत के अंत को काल खंड्यं ।। ६५ ।। जिनै दीप दीपं दुहाई फिराई । भुजादंड दै छोणि छत्रं छिनाई । करे जग्ग कोटं जसं अनेक लीते । वहै बीर बंके बली काल जीते ।। ६६ ।। क़ई कोट लीने जिनै दुरग ढाहे । किते सूरबीरान के सैन गाहे । कई जंग कीने सु साके

उसकी शरण मे गए अन्य कोई आश्रय नही है ।। ६१ ।। लोग यंत्र लिख कर और मत्र पढकर हार गए है, परन्तु अन्त मे काल के हाथो नाश को प्राप्त हुए है । कितने ही लोगो ने तत्र-साधना मे जन्म बिता दिया है, परन्तु अन्त मे सब व्यर्थ हो गए और एक भी तत्र-मत्र काम न आ सका ।। ६२ ।। कितने ही नासिका को बन्द करके ब्रह्मचारी हो गए और कितनो ने ही गले मे कण्ठी और शीश पर जटाएँ धारण की । कितने ही लोग कान फडवाकर योगेश्वर कहलाये, परन्तु यह सब व्यर्थ के धर्म उनके किसी काम न आये ।। ६३ ।। मधु-कैटभ जैसे बली राक्षस भी अपना समय आ जाने पर अन्त मे काल के द्वारा नष्ट कर दिए गए । शुभ-निशुभ रक्तबीज आदि हुए परन्तु काल ने उनको भी खण्ड-खण्ड कर दिया ।।६४।। पृथु, मान्धाता और वलि जैसे महीप हुए, जिन्होने अपने रथ के चक्रो से सात द्वीपो का निर्माण किया, भीम जैसे बलशाली ने महाभारत को जीतकर दुष्टो को दण्ड दिया परन्तु उनको भी अन्त मे काल ने खण्डित कर दिया ।। ६५ ।। जिन्होने द्वीपो मे घोषणाएँ करवाई और अपनी भुजाओ से दण्ड देकर पृथ्वीपतियो के छत्र को छीन लिया । जिन्होने करोड़ो यज्ञ कर सुयश को प्राप्त किया, उन्ही वीर-बाँकुरो को अन्त मे काल ने जीत लिया ।। ६६ ।। कई करोड़ ऐसे वीरो का नाश किया, जिन्होने अनेक किले गिरा दिए । कइयो ने शूरवीरो की सेनाओ का मन्थन किया । कइयों ने अनेको जग किए, परन्तु काल की मार से वे वीर भी गिरे हुए देखे

पवारे। वहै दीन देखे गिने काल मारे ॥ ६७ ॥ जिनै पातिशाही करी कोट जुग्गियं। रसं आनरसं भली भाँति भुगियं। वहै अंत को पाव नागे पधारे। गिरे दीन देखे हठी काल मारे ॥ ६८ ॥ जिनै खंडीअं दंड धारं (मू०ग्रं०४३) अपारं। करे चंद्रमा सूर चेरे दुआरं। जिनै इंद्र से जीत कै छोड डारे। वहै दीन देखे गिरे काल मारे ॥ ६९ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जिते राम हूए। सभै अंति मूए। जिते किशन ह्वैहै। सभै अंत जैहै ॥ ७० ॥ जिते देव होसी। सभै अंत जासी। जिते बोध ह्वैहै। सभै अंति छैहै ॥ ७१ ॥ जिते देवरायं। सभै अंत जाय। जिते दईत एसं। तितियो काल लेसं ॥७२॥ नरसिंघावतारं। वहे काल मारं। बडो डंडधारी। हण्यो काल मारी ॥ ७३ ॥ दिजं बावनेयं। हण्यो काल तेयं। महा मच्छ मुंडं। फधिओ काल झुंडं ॥ ७४ ॥ जिते होइ बीते। तिते काल जीते। जिते शरन जैहै। तितिओ राख लैहै ॥ ७५ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ बिना शरन ताकी न अउरै उपायं। कहा देव दईतं कहा रंक रायं। कहा पातिशाहं

गए ॥ ६७ ॥ जिन्होंने करोड़ों युगो तक राज्य किया और रस-अनरस का भलीभाँति भोग किया, वे भी अन्त मे नगे ही पाँव यहाँ से गए और हठी काल के द्वारा वे दीन भी धराशायी देखे गए ॥ ६८ ॥ जिन्होंने बड़े-बड़े दंडाधिकारियो का नाश किया, जिन्होंने इन्द्र जैसो को जीतकर छोड़ दिया, उन्ही दीनो को काल द्वारा मारे जाते देखा गया है ॥ ६९ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जितने भी राम हुए सभी अत मे मृत्यु को प्राप्त हुए। जितने कृष्ण होंगे वे सब भी अत मे जायँगे ॥ ७० ॥ जितने देवता होगे, वे भी अन्त मे जायँगे। जितने बुद्ध होगे वे सभी अन्त मे क्षय को प्राप्त होंगे ॥ ७१ ॥ जितने देवराज होंगे अन्त मे सभी जायँगे। जितने रावणादि दैत्य होगे सभी काल के धागे के साथ बँधे हुए है ॥ ७२ ॥ नृसिह-अवतार भी काल द्वारा नष्ट कर दिए गए। बड़े दडधारियो का भी काल ने हनन किया ॥ ७३ ॥ वामन को भी काल ने समाप्त किया। महामत्स्य-अवतार भी काल के चक्र में फँस गया ॥ ७४ ॥ जितने भी व्यतीत हो गए है, वे सभी काल द्वारा जीते गए है। जितने भी शरणागत होंगे, उनकी (काल) रक्षा करेगा ॥ ७५ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छद ॥ उसकी शरण के बिना अन्य उपाय नही है, चाहे कोई देव हो, दैत्य हो, राजा हो अथवा रंक हो। चाहे कोई बादशाह हो,

कहा उमरायं । बिना शरन ताकी न कोट उपायं ॥ ७६ ॥
जिते जीव जंतं सु दुनीअं उपायं । सभै अंति कालं बली काल घायं । बिना शरन ताकी नही और ओटं । लिखे जंत्र केते पढ़े मंत्र कोट ॥ ७७ ॥ ॥ नराज छंद ॥ जितेकि राज रंकयं । हने सु काल बंकयं । जितेकि लोक पालयं । निदान काल दालयं ॥ ७८ ॥ क्रिपाण पाण जे जपै । अनंत थाट ते थपै । जितेक काल ध्याइ है । जगत्ति जीत जाइ है ॥ ७९ ॥
बचित्र चारु चित्रयं । परमय्यं पवित्रयं । अलोक रूप राजियं । सुणे सु पाप भाजिय ॥ ८० ॥ बिसाल लाल लोचनं । बिअंत पाप मोचनं । चमक्क चंद्र चारियं । अघी अनेक तारिय ॥ ८१ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जिते लोक पालं । तिते जेर कालं । जिते सूर चंद्र । कहा इंद्र बिद्रं ॥ ८२ ॥
॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ फिरै चौदहूं लोकयं काल चक्रं । सभै नाथ नाथे भ्रमं भउह बक्रं । कहा राम क्रिशनं कहा चंद सूरं । सभै हाथ बाधे खरे काल हजूरं ॥ ८३ ॥ ॥ सवैया ॥ काल ही

या उमराव हो, बिना उसकी शरण के कोई अन्य उपाय नही है ॥ ७६ ॥
जितने भी जन्तु ससार मे पैदा किए गए है, उन सबको अत मे बलशाली काल ने समाप्त कर दिया है । बेशक कोई कितने ही यत्र और मत्र लिखे या पढ़े, परन्तु बिना उसकी (काल की) शरण मे गए अन्य कोई आश्रय नही है ॥ ७७ ॥ ॥ नराज छद ॥ जितने भी राजा-रक हुए हैं, काल बाँकुरे ने सबको नष्ट कर दिया है । जितने भी लोकपाल हुए है, काल ने सबका दलन किया है ॥ ७८ ॥ जो उस कृपाणधारी काल-रूप परमात्मा का स्मरण करेगा वह अनन्त रूप से स्थापित होगा । जिन्होने काल का स्मरण किया, वे सब अत मे इस जगत से जीतकर जायँगे ॥७९॥
उसका चित्र विचित्र, सुन्दर एव परम पवित्र है । वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा है, जिसके स्वरूप के बारे मे सुनकर पाप भाग जाते है ॥ ८० ॥
उसके विशाल लाल नेत्र अनन्त पापो को दूर करनेवाले है । उसकी चद्रमा के समान चमक ने अनेक पापियो को भवसागर से पार कर दिया है ॥८१॥
॥ रसावल छद ॥ जितने भी लोकपाल है, वे सब काल के अधीन है । सूर्य, चद्र, इद्र-वृन्द सब काल के अधीन है ॥८२॥ ॥ भुजग प्रयात छद ॥ चौदह लोको मे काल-चक्र घूम रहा है । उसकी वक्र भौहो ने सभी नाथों को नाथ रखा है । राम, कृष्ण, चद्र, सूर्य सभी उस काल के सम्मुख हाथ बाँधे खड़े है ॥ ८३ ॥ ॥ सवैया ॥ काल को ही प्राप्त कर अथवा समय

पाइ भयो भगवान सु जागत या जग जाकी कला है। काल ही पाइ भयो ब्रहमा शिव काल ही पाइ भयो जुगीआ है। काल ही पाइ सुरासुर गंध्रब जच्छ भुजंग दिसा बिदिसा है। (मू०ग्रं०४४) और सकाल सभै बसि काल के एक ही काल अकाल सदा है ॥ ८४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ नमो देव देवं नमो खड़ग धारं। सदा एक रूपं सदा निरबिकारं। नमो राजसं सातकं तामसेअं। नमो निरबिकारं नमो निरजुरेअं ॥ ८५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ नमो बाण पाणं। नमो निरभयाणं। नमो देवदेवं। भवाणं भवेअं ॥८६॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ नमो खग्ग खंडं क्रिपाणं कटारं। सदा एक रूप सदा निरबिकारं। नमो बाण पाणं नमो दंड धार्‌यं। जिनै चौदहूँ लोक जोतं बिथार्‌यं ॥ ८७ ॥ नमसकारयं मोर तीरं तुफगं। नमो खग्ग अदग्गं अभेअं अभंगं। गदायं ग्रिसटं नमो सैहथीअं। जिनै तुल्लीयं बीर बीयो न थीअं ॥ ८८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ नमो चक्र पाणं। अभूतं भयाणं। नमो उग्र दाड़ं। महा ग्रिसट गाड़ं ॥ ८९ ॥ नमो तीर तोपं। जिनै सत्र घोपं। नमो

के अन्तर्गत ही विष्णु हुआ जिसकी कला से यह संसार का चक्र चल रहा है। ब्रह्मा, शिव, योगी सब काल ही मे पैदा हुए है तथा काल के अन्तर्गत ही सुर, असुर, गंधर्व, यक्ष, भुजग, दिशाएँ, विदिशाएँ निर्मित हुई है। अन्य सभी काल के वश मे है, केवल एक काल (प्रभु) ही कालातीत है ॥ ८४ ॥ ॥ भुजग प्रयात छद ॥ हे खड़ग-धारक देवो के देव ! तुम्हे नमस्कार करता हूँ। तुम सदा समरूप मे रहनेवाले निर्विकार हो ! हे रोग-रहित, रजस्, तमस्, सत्त्वगुणस्वरूप, निर्विकार, तुम्हे मेरा प्रणाम है ॥८५॥ ॥ रसावल छद ॥ हे हाथो मे वाण रखनेवाले, अभय, देवो के देव, वर्तमान, भविष्य मे अवस्थित रहनेवाले ! तुम्हे मेरा प्रणाम है ॥८६॥ ॥ भुजग प्रयात छंद ॥ हे खडग, खाँडे, कृपाण एव कटार-स्वरूप, निर्विकार, सदा समरूप रहने वाले ! मैं तुम्हे नमस्कार करता हूँ। हे हाथो मे वाण एव दड धारण करनेवाले और चौदह लोको मे अपनी ज्योति को फैलानेवाले ! मै तुम्हे नमस्कार करता हूँ ॥ ८७ ॥ हे तीर, तुफग, खड़गस्वरूप, वेदाग, अभय एव अभजनशील ! मैं तुम्हे नमस्कार करता हूँ। हे भारी गदावाले एव वरछीस्वरूप ! तुम्हें नमस्कार है। जिसने अपनी वरछी पर वीरों को तौल दिया, वह तुम्हारे सिवा अन्य कोई नही है ॥ ८८ ॥ ॥ रसावल छद ॥ हे अभूत, भयकर विशाल दाढ़ों वाले, वृहद् एव गभीर चक्रपाणि ! तुम्हे मेरा

धोप पट्टं । जिनै दुशट दट्टं ॥ ९० ॥ जिते शसत्र नामं । नमशकार तासं । जिते असत्र भेयं । नमशकार तेयं ॥ ९१ ॥ ॥ सवैया ॥ मेर करो त्रिण ते मुहि जाहि गरीबनिवाज़ न दूसर तोसो । भूल छिमो हमरी प्रभ आपन भूलनहार कहूँ कोऊ मोसो । सेव करी तुमरी तिन के सभ ही ग्रिह देखीअत द्रब्ब भरोसो । या कल मै सभ काल क्रिपान के भारी भुजान को भारी भरोसो ॥ ९२ ॥ सुंभ निसुंभ से कोट निसाचर जाहि छिनेक बिखै हन डारे । धूमरलोचन चंड अउ मुंड से माहख से पल बीच निवारे । चामर से रणचिचछुर से रकतिच्छण से झट दै झझकारे । ऐसो सु साहिबु पाइ कहा परवाह रही इह दास तिहारे ॥ ९३ ॥ मुंडहु से मधुकीटभ से मुर से अघ से जिनि कोटि दले है । ओट करी कबहूँ न जिनै रण चोट परी पग द्वै न टले है । सिंध बिखै जे न बूडै निसाचर पावक बाण बहे न जले है । ते अस तोर बिलोक अलोक सु लाज को

प्रणाम है ॥८९॥ हे तीर, तोप, शत्रुओ का नाश करनेवाले ! तुमको मेरा प्रणाम है । हे युद्ध मे काम आनेवाले लौह-वस्त्रो, जिससे शत्रु प्रभावहीन हो जाता है ! तुम्हे भी मेरा प्रणाम है ॥९०॥ जितने भी शस्त्रो के नाम हैं, उन सबको मेरा नमस्कार है । जितने भी अस्त्र है, उन सबको मेरा नमस्कार है ॥ ९१ ॥ ॥ सवैया ॥ मेरे जैसे तिनके को सुमेरु पर्वत बना देनेवाला गरीवनिवाज़ तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नही है । हे प्रभु ! मेरी भूल को क्षमा करो, क्योकि मेरे से बढ़कर भूलनहार कौन है ! जिन्होने तुम्हारी सेवा की है, उन सबके घर मे द्रव्य एवं आत्मविश्वास देखने को स्पष्ट मिलता है । इस कलियुग मे कृपाण रूपी काल और भारी भुजाओं का ही अधिक-से-अधिक भरोसा है ॥ ९२ ॥ जिसने शुभ-निशुभ से करोड़ो निशाचर क्षण भर मे समाप्त कर दिए । धूम्रलोचन, चड और मुड तथा महिषासुर जैसो को जिसने पल भर मे नष्ट कर दिया । चामर, रणचिच्छुर, रक्तवीज जैसे राक्षसो को जिसने शीघ्र ही छटकाकर दूर फेंक दिया, ऐसे साहिव को प्राप्त कर, तुम्हारे इस सेवक को किसी की भी परवाह नही है ॥ ९३ ॥ मुडकासुर, मधु-कैटभ, मुर एवं अघासुर जैसे करोड़ो का जिसने दलन किया है । ऐसे वीर जिन्होने रणक्षेत्र मे कभी किसी का आश्रय नही लिया और जो लड़ाई मे दो पैर भी पीछे नही हटे । ऐसे राक्षस जो समुद्र मे भी नही डूबे और अग्नि-बाणो का भी जिन पर कोई प्रभाव नही हुआ, वे तुम्हारी कृपाण को देखकर लज्जा को त्यागकर

छाडिकै भाजि चले है ।।९४।। रावण से महरावण से घटकानहु से पल बीच पछारे । बारदनाद अकंपन से जग जंग जुरे जिन सिउ जम हारे । कुंभ अकुंभ से जीत सभै जग सातहूँ सिंध (मू०ग्रं०४५) हथिआर पखारे । जे जे हुते अकटे बिकटे सु कटे करि काल क्रिपान के मारे ।। ९५ ।। जो कहूँ काल ते भाज के बाचिअत तो किह कुंट कहो भजि जइयै । आगे हूँ काल धरे अस गाजत छाजत है जिह ते नसि अइयै । ऐसो न कै गयो कोई सु दाव रे जाहि उपाव सो घाव बचइयै । जाते न छूटिए मूड़ कहूँ हसि ताकी न किउ शरणागति जइयै ।। ९६ ।। क्रिशन अउ बिशन जपे तुहि कोटिक राम रहीम भली बिधि ध्यायो । ब्रहम जप्यो अरु संभ थप्यो तिह ते तुहि को किनहूँ न बचायो । कोट करी तपसा दिन कोटिक काहू न कौडी को काम कढायो । काम का मंत्र कसीरे के काम न काल को घाउ किनहूँ न बचायो ।। ९७ ।। काहे को कूर करे तपसा इन की कोऊ कौडी के काम न ऐहै । तोहि बचाइ सकै कहु कैसे कै आपन

भाग चले है ।। ९४ ।। रावण, कुभकर्ण, घटकासुर जैसो को तुमने पल मे नष्ट किया । मेघनाद जैसे, जो जग मे आने पर यमराज को भी हरा देते थे; कुभ, अकुभ जैसे राक्षसों, जिन्होने सबको जीतकर सातो समुद्रो मे अपने शस्त्रो का लहू धोया है, आदि विकट वीर काल की कृपाण से मृत्यु को प्राप्त हुए है ।। ९५ ।। यदि काल से बचकर कोई भागना चाहे तो वताओ वह किस दिशा मे भागकर जायगा ? जिधर कोई जायगा उधर ही काल का खड़ग गर्जन करता हुआ शोभायमान होता दिखाई देगा । अब तक कोई भी ऐसा दाँव बता नही सका, जिससे काल के घाव से बचा जा सके । हे मूढ मन ! जिससे किसी भी प्रकार छूटा नहीं जा सकता, तुम उसकी शरण मे क्यो नही जाते हो ! ।। ९६ ।। तुमने करोड़ो कृष्णों एवं विष्णुओ का, राम और रहीमो का ध्यान किया । तुमने ब्रह्मा का जाप किया, शिव का स्मरण किया, शिवलिग-रूप मे उसकी स्थापना की, तब भी तुम्हे कोई नही बचा सका । तुमने करोड़ो दिन करोड़ो की तपस्या की, परन्तु किसी से भी तुम्हारा कौडी मूल्य का भी काम न निकल सका । काम आनेवाला प्रभु-नाम का मंत्र सामान्य कार्यों में उलझे हुए सामान्य बर्तन बनानेवालो के किसी काम का नही होता और बाकी सब प्रपंच काल के घाव से रक्षा नही कर सकते ।। ९७ ।। हे कूकर मन, इन सवकी क्यों तपस्या कर रहे हो, ये सब तुम्हारे जरा-सा भी काम नही आ सकते ।

घाव बचाइ न ऐहै । कोप कराल की पावक कुंड मै आप टंग्यो तिम तोहि टंगैहै । चेत रे चेत अजौ जीअ मै जड़ काल क्रिपा बिनु काम न ऐहै ।। ९८ ।। ताहि पछानत है न महा पसु जाको प्रतापु तिहूँ पुर माही । पूजत है परमेशर कै जिहकै परसै परलोक पराही । पाप करो परमारथ कै जिह पाप न ते अति पाप लजाही । पाइ परो परमेशर के जड़ पाहन मै परमेशर नाही ।। ९९ ।। मोन भजे नही मान तजे नही भेख सजे नही मूँड मुडाए । कंठ न कंठी कठोर धरै नही सीस जटान के जूटु सुहाए । साचु कहौ सुनि लै चिति दै बिनु दीन दिआल की साम सिधाए । प्रीत करे प्रभु पायत है किरपाल न भीजत लाँड कटाए ।। १०० ।। कागद दीप सभै करि कै अरु सात समुंद्रन की मसु कै हो । काट बनासपती सगरी लिखबे हू के लेखन काज बनै हो । सारसुती बकता करि कै जुगि कोटि गनेशि कै हाथ लिखै हो । काल क्रिपान बिना बिनती न तऊ तुम को प्रभ नैक रिझै हो ।। १०१ ।। (मू०ग्रं०४६)

।। इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे स्री काल जी की उसतति प्रियम धिआइ सपूरनम सतु सुभम सतु ।। १ ।। अफजू ।।

जो अपनी चोट को ठीक नही कर सकते, वे सब तुम्हारी रक्षा क्या करेगे । क्रोध की अग्नि मे ये सब टँगे हुए है, इसी तरह तुम्हे भी टाँग देगे । हे जड जीव ! तू अब भी सावधान हो जा क्योकि काल की कृपा बिना तुम्हारे कुछ भी काम नही आयेगा ।।९८।। हे पशु, जिसका प्रताप त्रिलोको मे फैला हुआ है । हे मूढ, तू उनकी पूजा कर रहा है, जिनकी पूजा करने से परलोक और भी दूर हो जाता है । तुम परमार्थ के नाम पर ऐसे पाप कर रहे हो, जिन पापो को करने से घोर पाप स्वय लजा जायँ । हे जड़, उस परमेश्वर के पैर पकडो, इन पत्थरो मे परमेश्वर नही है ।। ९९ ।। उसे मौन भजन से, मान तजने से, वेश बनाने से, एव मूंड मुँड़ाने से नही पाया जा सकता । कठ मे कठी धारण करने से या शीश पर जटा-जूट बढा लेने से भी उसे प्राप्त नही किया जा सकता । मैं तुम्हे सच कहता हूँ कि बिना दीनदयालु की शरण मे गए बिना काम नही बनेगा । परमात्मा को केवल प्रेम से पाया जा सकता है, मात्र सुन्नत करा लेने से परमात्मा का हृदय द्रवित नही होता ।। १०० ।। सारे द्वीपो को कागज बनाकर सातो समुद्रो की स्याही बना ली जाय, सारी वनस्पति को काटकर लेखनी बना लिया जाय, सरस्वती (विद्या की देवी) स्वय वक्ता हो और करोड़ो

युगों तक लिखनेवाला लेखक गणेश हो, तब भी हे काल-कृपाण-प्रभु, तुम्हारे सामने विनीत हुए बिना ये सब प्रपंच तुम्हे रिझा नही सकते ॥ १०१ ॥

॥ इति श्री विचित्र नाटक ग्रंथ मे काल जी की स्तुति का
प्रथम अध्याय सम्पूर्ण ॥ १ ॥ अफजू ॥

॥ चौपई ॥ तुमरी महिमा अपर अपारा । जा का लह्यो न किनहू पारा । देव देव राजन के राजा । दीन दिआल गरीब निवाजा ॥ १ ॥ ॥ दोहिरा ॥ मूक ऊचरै शासत्र खटि पिंग गिरन चड़ि जाइ । अंध लखै बधरो सुनै जौ काल क्रिपा कराइ ॥ २ ॥ ॥ चौपई ॥ कहा बुद्ध प्रभ तुच्छ हमारी । बरनि सकै महिमा जु तिहारी । हम न सकत करि सिफत तुमारी । आप लेहु तुम कथा सुधारी ॥ ३ ॥ कहा लगै इहु कीट बखानै । महिमा तोरि तुही प्रभ जानै । पिता जनम जिम पूत न पावै । कहा तवन का भेद बतावै ॥ ४ ॥ तुमरी प्रभा तुमै बनि आई । अउरन ते नही जात बताई । तुमरी क्रिआ तुमही प्रभ जानो । ऊच नीच कस सकत बखानो ॥५॥ शेशनाग सिर सहस बनाई । द्वै सहंस रसनाह सुहाई । रटत

॥ चौपाई ॥ तुम्हारी महिमा अपरपार है, इसका कोई अन्त नही पा सका ! तुम देवाधिदेव हो, राजाओं के राजा हो, दीनदयालु हो और गरीबनिवाज हो ॥ १ ॥ ॥ दोहा ॥ यदि काल की कृपा हो तो गूंगा षट्शास्त्र का उच्चारण कर सकता है, लँगड़ा पर्वत पर चढ सकता है, अंधा देख सकता है और बहरे को सुनाई देना प्रारम्भ हो सकता है ॥ २ ॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु, मेरी तुच्छ बुद्धि मे कहाँ इतनी शक्ति है, जो तुम्हारी महिमा का वर्णन कर सके। मै आपकी प्रशसा का वर्णन नही कर सकता। आप स्वय ही (मेरी लिखी) कथा मे सुधार करने की कृपा करें ॥ ३ ॥ यह कीट कहाँ तक तुम्हारी महिमा का वर्णन कर सकता है, तुम्हारी महिमा, हे प्रभु, तुम स्वयं ही जानते हो। पिता के जन्म के बारे मे जैसे पुत्र नही जान सकता, वैसे ही तुम्हारे रहस्य का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ ॥ ४ ॥ तुम्हारी प्रभा का पार तुम ही पा सकते हो, अन्य कोई उसका वर्णन नही कर सकता। हे प्रभु, अपनी क्रियाओ को तुम ही जानते हो, तुम ऊँचे हो या नीचे हो, मैं कैसे इसका बखान कर सकता हूँ ! ॥५॥ शेषनाग सहस्र सिर बनाकर दो सहस्र जीभो से तुम्हारा नाम रटे तब भी तुम्हारा अन्त नही पा सकता ॥ ६ ॥ तुम्हारे कार्य-व्यापार को कोई क्या कहे, तुम्हारी बातो को समझने मे बुद्धि उलझ जाती है। तुम्हारे सूक्ष्म स्वरूप का वर्णन

अब लगे नाम अपारा। तुमरो तऊ न पावत पारा ।। ६ ।।
तुमरी क्रिआ कहा कोऊ कहै। समझत बात उरझ मति रहै।
सूछम रूप न बरना जाई। बिरध सरूपहि कहो बनाई ।। ७ ।।
तुमरी प्रेम भगति जब गहिहौ। छोर कथा सभ ही तब
कहिहौ। अब मै कहो सु अपनी कथा। सोढी बंस उपजिया
जथा ।।८।। ।। दोहरा ।। प्रिथम कथा संछेपते कहो सु हित
चितु लाइ। बहुरि बडो बिसथार कै कहिहौ सभो सुनाइ ।। ९ ।।
।। चौपई ।। प्रिथम काल जब करा पसारा। ओअंकार ते
स्रिशटि उपारा। कालसैण प्रथमै भयो भूपा। अधिक अतुल
बलि रूप अनूपा ।। १० ।। कालकेत दूसर भूअ भयो। क्रूर
बरस तीसर जग ठयो। कालधुज चतुरथ न्रिप सोहै। जिह
ते भयो जगत सभ कोहै ।। ११ ।। सहसराछ जा को सुभ सोहै।
सहस पाद जा के तन सोहै। शेखनाग पर सोइबो करै। जग
तिह शेखसाइ उच्चरै ।। १२ ।। एक स्रवण ते मैल निकारा।
ताते मधु कीटभ तन धारा। दुतीअ कान ते मैलु निकारी।
ता ते भई स्रिशटि इह सारी ।। १३ ।। तिन को काल बहुर बध

नही किया जा सकता, इसलिए मैं तुम्हारे वृहद् (सगुण) स्वरूप का कथन कर रहा हूँ ।। ७ ।। तुम्हारी प्रेम-भक्ति जब मुझे प्राप्त होगी, तभी मैं सक्षेप मे तुम्हारी कथा कह सकूँगा। अब मैं अपनी कथा कहता हूँ कि किस प्रकार सोढी वंश मे (जिसमे गुरु गोविंद सिह पैदा हुए थे) उत्पन्न हुआ ।। ८ ।। ।। दोहा ।। आरम्भ की कथा (सकोचवश) अति संक्षेप मे चित्त को लगाकर कथन किया। पुनः अव अत्यन्त विस्तारपूर्वक सभी को सुनाते हुए कथन करूँगा ।। ९ ।। ।। चौपाई ।। जब काल ने सृष्टि का प्रथम बार प्रसार किया तो ओकार से सृष्टि को पैदा किया। कालसेन (विष्णु) प्रथम राजा हुआ जो कि अतुल वलशाली तथा अनुपम था ।।१०।। दूसरा राजा कालकेतु (व्रह्मा) शोभायमान हुआ और तीसरा क्रूरवर्ष (शिव) नामक राजा हुआ। चौथा राजा कालध्वज (महाविष्णु) हुआ जिससे सारा जगत अस्तित्व मे आया ।। ११ ।। उसकी सहस्र आँखे शोभायमान है और उसके हजारो पैर विराजमान है। वह शेषनाग पर सोया करता है और इसीलिए ससार उसे शेषशय्यागामी के नाम से पुकारता है ।। १२ ।। उसने एक कान से मैल निकाला जिससे मधु और कैटभ ने शरीर धारण किया। उसने दूसरे कान से मैल निकाला जिससे यह सारी सृष्टि वनी ।। १३ ।। मधु-कैटभ का काल ने वध किया और

करा। तिन को मेध समुंद मो परा। चिकन तास जल पर (मू०ग्रं०४७) तिर रही। मेधा नाम तबहि ते कही ॥ १४ ॥ साध करम जे पुरख कमावै। नाम देवता जगत कहावै। कुक्रित करम जे जग मै करही। नाम असुर तिन को सभ धरही ॥ १५ ॥ बहु बिथार कह लगै बखानीअत। ग्रंथ बढन ते अति डरु मानीअत। तिन ते होत बहुत न्रिप आए। दच्छ प्रजापति जिन उपजाए ॥ १६ ॥ दस सहंस्र तिहि ग्रिह भई कंनिआ। जिह समान कह लगै न अंनिआ। काल क्रिआ ऐसी तह भई। ते सभ ब्याह नरेसन दई ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ बनता कद्रू दिति अदिति ए रिख बरी बनाइ। नाग नागरिप देव सभ दईत लए उपजाइ ॥ १८ ॥ ॥ चौपई ॥ ता ते सूरज रूप को धरा। जा ते बंस प्रचुर रवि करा। जौ तिन के कहि नाम सुनाऊँ। कथा बढन ते अधिक डराऊँ ॥ १९ ॥ तिन के बंस बिखै रघु भयो। रघुबंसहि जिह जगहि चलयो। ता ते पुत्र होत भयो अज बर। महारथी अरु महा धनुरधर ॥ २० ॥ जब तिन

उनकी मेदा समुद्र मे गिरी। उस चरबी की चिकनाहट समुद्र पर तैरने लगी, तभी से इस धरती को मेधा (मेदिनी) नाम से पुकारा जाने लगा ॥ १४ ॥ जो पुरुष साधु कर्म करते है, उन्हे जगत में देवता नाम से जाना जाता है तथा जो कुकृत्य करते है सभी उनको असुर के नाम से जानते हैं ॥ १५ ॥ अधिक विस्तार से मै वर्णन तो करूँ, परन्तु ग्रंथ के विस्तार होने का भय बना हुआ है। उन राजाओ के बाद बहुत से राजा आए जिन्होने दक्ष और प्रजापति का सृजन किया ॥ १६ ॥ उनके घर मे दस सहस्र कन्याएँ उत्पन्न हुई, जिनके समान अन्य कोई नही था। कालचक्र का प्रभाव कुछ ऐसा हुआ कि वे सब राजाओं को ब्याह दी गयी ॥ १७ ॥ ॥ दोहा ॥ बिनता, कद्रू, दिति, अदिति का ऋषियों से विवाह कर दिया गया, जिनसे नाग, गरुड़, देव, दैत्य आदि उत्पन्न हुए ॥ १८ ॥ ॥ चौपाई ॥ उनमे से किसी ने सूर्य का रूप धारण किया जिसने प्रचुर रूप से वंशवृद्धि की। उनके वंश के लोगों के नाम यदि कहकर बताऊँ तो कथा-विस्तार का भय बन जायगा ॥ १९ ॥ उन्ही के वश मे रघु नामक राजा हुए जिससे ससार मे रघुवंश का चलन हुआ। उन्ही से अज नाम श्रेष्ठ पुत्र पैदा हुआ जो महारथी एव धनुर्धर था ॥२०॥ जब उसने योग-वेश (सन्यास) धारण किया तो राजपाट दशरथ को दे

भेस जोग को लयो। राजपाट दसरथ को दयो। होत भयो वहि महा धनुरधर। तीन त्रिआन बरा जिह रुचि कर ॥ २१ ॥ प्रिथम जयो तिह राम कुमारा। भरथ लच्छमन सत्रबिदारा। बहुत काल तिन राज कमायो। काल पाइ सुरपुरहि सिधायो ॥ २२ ॥ सीअ सुत बहुरि भए दुइ राजा। राजपाट उनही कउ छाजा। मद्र देस एस्वरज बरी जब। भाँति भाँति के जग्ग कीए तब ॥ २३ ॥ तही तिनै बाँधे दुइ पुरवा। एक कसूर दुतीय लहूरवा। अधिक पुरी ते दोऊ बिराजी। निरख लंक अमरावति लाजी ॥ २४ ॥ बहुत काल तिन राज कमायो। जाल काल ते अंत फसायो। तिन ते पुत्र पौत्र जे वए। राज करत इह जग को भए ॥ २५ ॥ कहाँ लगे ते बरन सुनाऊँ। तिन के नाम न संख्या पाऊँ। होत चहूँ जुग मै जे आए। तिन के नाम न जात गनाए ॥२६॥ जो अब तौ किरपा बल पाऊँ। नाम जथा मत भाख सुनाऊँ। कालकेत अरु कालराइ भन। जिन ते भए पुत्र घर अनगन ॥ २७ ॥ कालकेत (मू०ग्रं०४८) भयो बली अपारा।

दिया। वह भी महान् धनुर्धर था जिसने अपनी रुचि-अनुसार तीन स्त्रियों से शादी की ॥ २१ ॥ पहली रानी से राम नामक कुमार पैदा हुआ। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न अन्य रानियो से पैदा हुए। उन लोगो ने बहुत समय तक राज्य किया और कालान्तर मे वे सब सुरपुर सिधार गए ॥२२॥ सीता के दो पुत्र पुनः राजा हुए और राजपाट पर शोभायमान हुए। जब उन्होने मद्र देश पर अपनी ऐश्वर्य पताका फहराई तब उन्होने भाँति-भाँति के यज्ञ किए ॥ २३ ॥ वही उन्होने दो नगर बसाए जिनमे से एक 'कसूर' है तथा दूसरा 'लाहौर' है। ये दोनो पुरियाँ अत्यन्त शोभावाली थी और इनके सामने अमरपुरी (स्वर्गपुरी) भी लज्जाशील हो जाती थी ॥ २४ ॥ उन्होने भी बहुत समय तक राज किया पर अन्त मे काल-चक्र मे फँस गए। उनके जो पुत्र-पौत्र हुए वे भी इस जगत पर राज करते रहे ॥ २५ ॥ कहाँ तक मैं उनका वर्णन करूँ, वे असख्य है। जो चारो युगो मे उत्पन्न हुए उनके नाम गिनाए नही जा सकते ॥ २६ ॥ यदि अब आपकी कृपा हो तो अपनी मति-अनुसार मैं उनके नामो का उच्चारण करूँ। कालकेतु और कालराय का नाम लेता हूँ जिनसे अगणित पुत्र हुए ॥ २७ ॥ कालकेतु महाबली था जिसने कालराय को नगर से निकाल दिया था। वह भागकर सनोढ़ देश मे चला गया और

कालराइ जिनि नगर निकारा। भाज सनौढ देस ते गए। तही भूप जा बिआहत भए ॥ २८ ॥ तिह ते पुत्र भयो जो धामा। सोढीराइ धरा तिहि नामा। बंस सनौढ त दिन ते थीआ। परम पवित्र पुरख जू कीआ ॥ २९ ॥ ता ते पुत्र पौत्र हुइ आए। ते सोढी सभ जगत कहाए। जग मै अधिक सु भए प्रसिद्धा। दिन दिन तिन के धन की ब्रिद्धा ॥ ३० ॥ राज करत भए बिबिध प्रकारा। देस देस के जीत न्रिपारा। जहॉ तहॉ तिह धरम चलायो। अत्र पत्र कह सीस ढुरायो ॥३१॥ राजसूअ बहु बारन कीए। जीत जीत देसेस्वर लीए। बाजमेध बहु बारन करे। सकल कलूख निजु कुल के हरे ॥३२॥ बहुर बंस मै बढो बिखाधा। मेट न सका कोऊ तिह साधा। बिचरे बीर बनैतु अखंडल। गहि गहि चले भिरन रन मंडल ॥ ३३ ॥ धन अरु भूम पुरातन बैरा। जिन का मूआ करति जग घेरा। मोह बाद अहंकार पसारा। काम क्रोध जीता जग सारा ॥ ३४ ॥ ॥ दोहरा ॥ धनि धनि धन को भाखीऐ जा का जगतु गुलामु। सभ निरखत या को फिरै सभ

वहाँ के राजा के यहाँ उनका ब्याह हुआ ॥ २८ ॥ उस स्थान पर उनका जो पुत्र हुआ उसका नाम सोढ़ीराय रखा गया। उसी दिन से सनौढ़ वश चला और परमपिता परमात्मा ने इसको आगे बढाया ॥ २९ ॥ उनसे जो पुत्र-पौत्र पैदा हुए वे सब इस ससार में सोढी कहलाए। जग मे वे अधिक प्रसिद्ध हो गए और दिन-प्रतिदिन उनके यहॉ धन-धान्य की वृद्धि होने लगी ॥ ३० ॥ उन्होने विविध प्रकार से राज किया और देश-देशान्तरों के राजाओ को जीता। सर्वत्र उन्होने धर्म का प्रसार किया और अपने सिर पर छत्र झुलवाया ॥ ३१ ॥ बहुत बार उन्होने राजसूय यज्ञ किये और देशो के राजाओ को जीत लिया। उन्होने कई बार अश्व-मेध यज्ञ किये तथा अपने वंश के सभी पाप नष्ट कर दिए ॥ ३२ ॥ फिर इन वशों (दोनो वंशो) मे वैर-भावना बढी और उस वैर-भावना को कोई भी साधु-संत मिटा नही सका। बलशाली वीर (फिर) विचरण करने लगे और रणमडल मे एक-दूसरे से भिड़ने लगे ॥ ३३ ॥ धन और भूमि शत्रुता के प्राचीन कारण है जिनसे सारा ससार घिरा हुआ है। मोह, अहम् एव आडम्बर के प्रसार ने तथा काल-क्रोध ने सारा जग जीत लिया है ॥ ३४ ॥ ॥ दोहा ॥ उसी को धन्य कहा जाय जिसका सारा ससार गुलाम है। सभी उसी की ओर निहारते है और सब उसी के

चल करत सलाम ॥ ३५ ॥ ॥ चौपई ॥ काल न कोऊ करन सुमारा । बैर बाद अहंकार पसारा । लोभ मूल इह जग को हूआ । जासो चाहत सभै को मूआ ॥ ३६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे शुभि बस बरननं दुतीआ धिआइ ॥ २ ॥ अफजू ॥ १३७ ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ रचा बैर बादं बिधाते अपारं । जिसै साधि साकिओ न कोऊ सुधारं । बली कामरायं महा लोभ मोहं । गयो कउन बीरं सु याते अलोहं ॥ १ ॥ तहा बीर बंके बकै आप मद्धं । उठै शसत्र लै लै मचा जुद्ध सुद्धं । कहूँ खप्परी खोल खंडे अपारं । नचै बीर बैताल डउरू डकारं ॥ २ ॥ कहूँ ईस सीसं पुऐ रुंड मालं । कहूँ डाक डउरू कहूँ कं बितालं । चवी चावडीअं किलंकार कंकं । गुथी लुत्थ जुत्थं बहे बीर बंकं ॥ ३ ॥ परी कुट्ट कुट्टं रुले तच्छ मुच्छं । रहे हाथ डारे उभै उरध मुच्छं ।

सामने सिर झुकाते हैं ॥ ३५ ॥ ॥ चौपाई ॥ काल का स्मरण किसी ने नही किया और बैर-विरोध, अहकार का प्रसार ही होता रहा । सारे संसार का मूल अब लोभ ही हो गया है, जिससे सभी चाहते है कि अन्य समाप्त हो जायँ (ताकि सब कुछ हड़प किया जा सके) ॥ ३६ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रथ का वश-वर्णन नामक द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥ अफजू ॥ १३७ ॥

॥ भृजंग प्रयात छंद ॥ विधाता ने यह वैर और विवाद का युद्ध शुरू करवा दिया जिसे कोई भी साधु-सन्त साध न सका । महाबली कामराय महा लोभ और मोह मे ग्रस्त था और इस लोभ-मोह से कौन बच सका है ! ॥ १ ॥ रणभूमि में वीर-बाँकुरे आपस मे वाद-विवाद कर रहे है । वे शस्त्र लेकर युद्ध की धूम मचा रहे हैं । कही खोपड़ी, कही शिरस्त्राण, कही खड्ग दिखाई दे रहे है तथा कही वैताल वीर डमरू बजा-बजाकर नाच रहे हैं ॥ २ ॥ कही शिव सिरो की माला पिरोकर पहने हुए है, कही डाकिनियाँ एवं वैताल गर्जन कर रहे हैं । चौबीस चामुण्डाएँ किलकारियाँ भर रही हैं और वीर बाँको की लाशे आपस मे गुत्थमगुत्था हो रही हैं ॥ ३ ॥ भीषण भार के कारण मस्तक और तरकश इधर-उधर तमाम पड़े हुए हैं और वीर धरती पर लेटे हुए हाथ उठा-उठाकर लड़ने का

कहूँ (मू०ग्रं०४९) खोपरी खोल खिगं[1] खतंगं[2]। कहूँ खत्रीअं खग्ग खेतं निखंगं ॥ ४ ॥ चवी चाँवडी डाकनी डाक मारै। कहूँ भैरवी भूत भैरों बकारै। कहूँ बीर बैताल बंके बिहारं। कहूँ भूत प्रेतं हसै मास हारं ॥ ५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ महाबीर गज्जे। सुणै मेघ लज्जे। झंडा गड्ड गाढे। मंडे रोस बाढे ॥ ६ ॥ क्रिपाणं कटारं। भिरे रोस धारं। महाबीर बंकं। भिरे भूम हंकं ॥ ७ ॥ मचे सूर शसत्रं। उठी झार[3] असत्रं। क्रिपाणं कटारं। परी लोह मारं ॥ ८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ हलब्बी जुनब्बी सरोही दुधारी। बही कोप काती क्रिपाणं कटारी। कहूँ सैहथीअं कहूँ सुद्ध सेलं। कहूँ सेल सांगं भई रेलपेलं ॥ ९ ॥ ॥ नराज छंद ॥ सरोख सूर साजिअं। बिसारि शंक बाजिअं। निशंक शसत्र मारहीं। उतार अंग डारहीं ॥ १० ॥ कछू न कान राखहीं। सु मारि मारि भाखहीं। सु हाँक हाठ रेलियं। अनंत शसत्र

प्रयास कर रहे है। कही पर खोपड़ियाँ, शिरस्त्राण, घोड़े एव बाण पड़े हुए है तो कही पर क्षत्रिय खड्ग-प्रहार से कटे हुए धराशायी दिखाई दे रहे हैं ॥ ४ ॥ चामुण्डा, डाकिनियाँ डकार रही है और भैरव तथा भूतगण भभक रहे है। कही वैताल विहार कर रहा है तथा कही भूत-प्रेत अट्टहास करके मास का भक्षण कर रहे है ॥ ५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ महावीरो की गर्जना सुन मेघ लजायमान हो उठे। अपने-अपने झडे गाड़ दिए गए जिससे दोनो पक्षों मे और अधिक क्रोध का सचार हुआ ॥ ६ ॥ रुष्ट होकर दोनों उनके वीर कृपाणो एवं कटारों को लेकर भिड़ पड़े। अनेकों महावीर उस युद्धभूमि में एक-दूसरे से भिड़ उठे ॥ ७ ॥ शूरमाओ के शस्त्र चल उठे एवं अस्त्रों की वर्षा होने लगी। कृपाण, कटार और लोहे की मार चारो तरफ पडने लगी ॥ ८ ॥ ॥ भुजग प्रयात छद ॥ अलब्बी, जुनब्बी, सरोही एवं दुधारी कृपाण एव कटारियाँ क्रोधित होकर चल निकली। कही बर्छी और शूल आदि शस्त्रो के कारण भगदड़ मच गई ॥ ९ ॥ ॥ नराज छंद ॥ रुष्ट हुए शूरवीर शोभायमान हो रहे है और शकाओ से निवृत्त होकर घोडों पर सवार है। बिना किसी शंका के शस्त्रों के वार चल रहे है और वीर अंगों को काटते चले जा रहे है ॥ १० ॥ किसी ने भी कुछ उठा नही रखा और मारो-मारो की ध्वनि गूंज रही है। एक-दूसरे को धकेलने का हाँका सुनाई पड़ रहा है और

१ घोड़े। २ बाण। ३ वर्षा।

झेलियं ।। ११ ।।　हज़ार हूर अंबरं ।　बिरुद्धकै सुअंबरं । करूर भाँत डोलही ।　सु मार मार बोलही ।। १२ ।।　कहूँ कि अंगि कट्टीअं ।　कहूँ सरोह पट्टीअं ।　कहूँ सु मास मच्छीअं । गिरे सु तच्छ मुच्छीअं ।। १३ ।।　ढमक्क ढोल ढालयं ।　हराल हाल चालयं ।　झटाक झट्ट बाहीअं ।　सु बीर सैन गाहीअं ।। १४ ।।　नवं निसाण बाजिअं ।　सु बीर धीर गाजिअं । क्रिपाण बाण बाहही ।　अजात अंग लाहही ।।१५।।　बिरुद्ध क्रुद्ध राजियं ।　न चार पैर भाजियं ।　संभार शसत्र गाजही ।　सु नाद मेघ लाजही ।। १६ ।।　हलंक हॉक मारही ।　सरक्क शसत्र झारही ।　भिरे बिसारि शोकियं ।　सिधारि देव लोकियं ।। १७ ।।　रिसे बिरुद्ध बीरियं ।　सु मारि झारि तीरियं ।　शबद सख बज्जियं ।　सु बीर धीर सज्जियं ।।१८।। ।। रसावल छद ।। तुरी संख बाजे ।　महांबीर साजे ।　नचे तुंद ताजी ।　मचे सूर गाजी ।। १९ ।।　झिमी तेज तेगं ।　मनो

अनन्त शस्त्रो के वारो को झेला जा रहा है ।। ११ ।।　आसमान की हज़ारो परियाँ मृत्यु का रूप धारण कर धरती पर स्वयवर के लिए क्रूर बनकर डोल रही है और मारो-मारो की बोली लगा रही है ।। १२ ।।　किसी का अग कटा हुआ है और किसी ने अग को बाँधा हुआ है ।　शरीर की मांसपेशियाँ और तरकश आदि इधर-उधर बिखरे पड़े है ।। १३ ।।　ढोल और ढाल की धमक सुनाई पड़ रही है और शस्त्र चलाये जा रहे है । झटपट शस्त्रो के प्रहार से वीर लोग सेना का मथन कर रहे है ।। १४ ।। नये नगाडे बज रहे है और धैर्यवान वीर गरज रहे है ।　ये वीर कृपाण और बाणो से अगो का छेदन कर रहे है ।। १५ ।।　एक-दूसरे के विरुद्ध क्रोधित खड़े हुए वीर शोभायमान हो रहे है और चार पग भी भागकर इधर-उधर नही होते ।　वे शस्त्रो को सम्हालकर इस प्रकार गरज रहे है कि उनकी गर्जना को सुनकर बादल भी लजायमान हो रहे है ।। १६ ।। चिल्ला-चिल्लाकर हाँका देने के स्वर मे साथ-ही-साथ खीच-खीचकर वे शस्त्रो को चला रहे है ।　शोक-दुःख को भूलकर ये वीर आपस मे भिड़े हुए है और देवलोक को जा रहे है ।। १७ ।।　विरोधी पक्षों के वीर अत्यन्त रुष्ट है और तीरो की मार से सबको झाड रहे हैं ।　शख की ध्वनि को सुनकर वीर फिर एक-दूसरे के सामने लड़ने के लिए तैयार खड़े दिखाई देते हैं ।। १८ ।।　।। रसावल छद ।। तुरही एव शख बज रहे है एव महावीर लड़ाई के लिए सन्नद्ध तैयार है ।　तेज़ घोड़े नाच रहे है और शूरमाओ ने धूम मचा दी है ।। १९ ।।　तेज़ तलवारे इस प्रकार

बिज्ज बेगं। उठै नद्द नादं। धुनं न्रिबिखादं॥ २०॥ तुटै खग्ग खोलं। मुखं मार बोलं। धका धीक धक्कं। गिरे हक्क बक्कं॥ २१॥ दलं दीह गाहं। अधो अंग लाहं। प्रयोघं प्रहारं। बकै मार मारं। (मू० ग्रं०५०) ॥ २२॥ नदी रकत पूरं। फिरी गैणि हूरं। गजे गैण काली। हसी खप्पराली॥ २३॥ महां सूर सोहं। मंडे लोह क्रोहं। महां गरब गज्यं। धुणं मेघ लज्यं॥ २४॥ छके लोह छक्कं। मुखं मार बक्कं। मुखं मुच्छ बंकं। भिरे छाड शंकं॥ २५॥ हकं हाक बाजी। घिरी सैण साजी। चिरे चार ढूके। मुखं मार कूके॥ २६॥ रुके सूर संगं। मनो सिंध गंगं। ढहे ढाल ढक्कं। क्रिपाणं कड़क्कं॥ २७॥ हकं हाक बाजी। नचे तुंद ताजी। रसे रुद्र पागे। भिरे रोस जागे॥ २८॥ गिरे सुद्ध सेलं। भई रेल पेलं। पलं हार नच्चे। रणं बीर

चमक रही हैं मानो बिजली वेग से चल रही हो। रणक्षेत्र से ध्वनि उठ रही है, जो एक रसध्वनि है॥ २०॥ खड्ग एव टोप टूट चुके है और मुख की बोली भी मार खा चुकी है। ऐसे वीर युद्ध के धक्को में हक्के-बक्के होकर गिर पड़े है॥ २१॥ दीर्घ दलों का मन्थन किया जा रहा है और आधे अग कट रहे है। लोहे के मूसल के प्रहार और मारामार के साथ बकवाद चल रही है॥ २२॥ नदियाँ रक्त से भर गई है और मृत्यु रूपी अप्सरा व्योम मे घूम चुकी है। महाकाली भी गगन से गरज रही है और खप्पर को हाथ मे लेकर हँस रही है॥ २३॥ महान शूरवीर शोभायमान हो रहे है और क्रोधित होकर लौहास्त्रो को चला रहे है। वे महान गर्व के साथ गरज रहे है और उनकी ध्वनि सुनकर मेघ भी लजा रहे है॥ २४॥ वीरगण लौह का भरपेट भोजन कर रहे हैं और मुख से मार-मार चिल्ला रहे हैं। बड़ी-बड़ी मूंछों वाले रण-बांकुरे सब शकाओ को छोडकर आपस मे भिड़ चुके है॥ २५॥ घोड़ों को हाँककर सभी सेना को घेरा जा रहा है। चारो दिशाओं को नापा जा रहा है और कई वीर मार के कारण तड़प-तड़पकर मुख से चिल्ला रहे हैं॥ २६॥ शूरवीरों का बहाव इस प्रकार रुक गया है जैसे गंगा का बहाव समुद्र मे जाकर समाप्त हो जाता है। ढाल आदि पर कृपाणे कड़क रही है॥ २७॥ घोड़ो को हाँका जा रहा है और तेज़ अश्व नृत्य कर रहे हैं। रुद्र के चरणों का ध्यान धर अत्यन्त रुष्ट होकर वीर आपस मे भिड गए हैं॥ २८॥ बर्छियो के साथ गिरे हुए वीरो के कारण भगदड़ मची हुई है। मांसाहारी जीव नृत्य कर रहे है और दूसरी ओर

मच्चे ॥ २९ ॥ हसे मासहारी । नचे भूत भारी । महां ढीठ ढूके । मुखं मार कूके ॥ ३० ॥ गजे गैण देवी । महां अंस भेवी । भले भूत नाचं । रसं रुद्र राचं ॥ ३१ ॥ भिरै बैर रुज्झै । महां जोध जुज्झै । झंडा गड्ड गाढे । दजे बैर बाढे ॥ ३२ ॥ गजं गाह बाधे । धनुरबान साधे । बहे आप मद्धं । गिरे अद्ध अद्धं ॥ ३३ ॥ गजं बाज जुज्झै । बली बैर रुज्झै । न्रिभै शसत्र बाहै । उभै जीत चाहै ॥ ३४ ॥ गजे आन गाजी । नचे तुंद ताजी । हकं हाक बज्जी । फिरै सैन भज्जी ॥ ३५ ॥ मदं मत्त माते । रसं रुद्र राते । गजं जूह साजे । भिरे रोस बाजे ॥ ३६ ॥ झमी तेज तेगं । घणं बिज्ज बेगं । बहे बार बैरी । जलं जिउ गंगैरी ॥ ३७ ॥ अपो आप बाहं । उभै जीत चाहं । रसं रुद्र राते । महां मत्त माते ॥ ३८ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ मचे बीर बीरं अभूतं

रणवीरो ने युद्ध की धूम मचा रखी है ॥ २९ ॥ मासाहारी हँस रहे है और भारी भरकम भूत आदि नृत्य कर रहे हैं। महाखल एकत्र हो गए हैं और उनके मुखो के तीव्र स्वर चारो ओर सुनाई पड़ रहे है ॥ ३० ॥ आसमान मे देवी भी गरज रही हैं जो कि स्वय बड़ी देवी की अंश हैं। भूत नाच रहे है और रुद्र भी रसमग्न है ॥ ३१ ॥ वैर मे पूर्णरूप से लिप्त होकर वीर आपस मे भिड रहे है और महान योद्धा जूझ रहे है। झंडों को गाड़ा जा रहा है जिससे शत्रुता का भाव और वढ रहा है ॥३२॥ हाथी पर हौदा बाँधे और धनुष-वाण को साधते हुए वीर सेना के मध्य में दिखाई पड़ रहे हैं और खण्ड-खण्ड होकर गिर रहे है ॥ ३३ ॥ हाथी और घोड़े भी आपस मे जूझ रहे है और शूरवीर भी आपस मे गुत्थमगुत्था हो रहे है। वे सव अभय होकर शस्त्र चला रहे है और अपनी-अपनी जीत की इच्छा कर रहे है ॥ ३४ ॥ शूरमा गरज रहे है और तीव्रगामी अश्व नाच उठे। हाँक की भीषण आवाज़ सुनकर इस घोडो का मुँह फिर गया है और ये सेना की ओर भाग खड़े हुए है ॥ ३५ ॥ वीर मदमस्त होकर और रौद्र रस में लीन होकर हाथियो के समूह को सजाकर पूर्ण रोष के साथ आपस मे भिड गए है ॥ ३६ ॥ तलवार की झमाझम इस प्रकार दिखाई दे रही हो जैसे वादल मे विजली हो। शत्रुओं का रक्त इस प्रकार वह रहा है जैसे गंगा मे जल वह रहा हो ॥ ३७ ॥ अपनी-अपनी भुजाएँ उठाकर सभी अपनी-अपनी जीत की इच्छा व्यक्त कर रहे है तथा सभी वीर मदमस्त होकर रौद्र-रस का आनन्द ले रहे हैं ॥ ३८ ॥ ॥ भुजग छद ॥ आश्चर्यजनक रूप से वीर वीरो से भिड़

भयाणं। बजी भेर भुंकार धुक्के निसाणं। नवं नद्द नीसाण गज्जे गहीरं। फिरै रुंड मुंडं तनं तच्छ तीरं॥ ३९॥ बहे खग्ग खेतं खिआलं खतंगं। रुले तच्छ मुच्छं महा जोध जंगं। बँधे बीर बाना बडे ऐंठिवारे। घुमै लोह घुट्टं मनो मत्तवारे॥ ४०॥ उठी कूह जूहं समर सार बज्जियं। किधो अंत के काल को मेघ गज्जियं। भई तीर भीरं कमाणं कड़क्कियं। बजे लोह क्रोहं महां जंगि मच्चियं॥ ४१॥ बिरच्चे महां जंग जोधा जुआणं। खुले (मू०ग्रं०५१) खग्ग खत्री अभूतं भयाणं। बली जुज्झ रुज्झै रसं रुद्र रत्ते। मिले हत्थ बक्खं महा तेज तत्ते॥ ४२॥ झमी तेज तेगं सु रोसं प्रहारं। रुले रुंड मुंडं उठी शसत्र झारं। बबक्कंत बीरं भभक्कंत घायं। मनो जुद्ध इंद्रं जुट्यो ब्रितरायं॥ ४३॥ महां जुद्ध मच्चियं महां सूर गाजे। अपो आप मै शसत्र सों शसत्र बाजे। उठे झार सांगं

उठे है। भेरी बज चुकी है और पताकाएँ झूल चुकी है। नये नाद के साथ पताकाओ के समक्ष वीर गर्जन कर रहे है और कई रुण्ड-मुण्ड होकर तरकश और तीर लिये घूम रहे है॥ ३९॥ मैदान मे खड्ग, बर्छी आदि शस्त्र चल रहे है और कई महान योद्धा बड़े-बड़े शहतीरो की तरह मैदान मे पड़े धूल-धूसरित हो रहे है। वड़ी-बड़ी अँकड़ वाले वीर अशक्त होकर बँध गए हैं और मतवाले होकर लोहू के घूंट पी रहे है॥ ४०॥ सारी दिशाओ से युद्ध मे लोहा वजने के कारण कूक ही कूक सुनाई दे रही है और ऐसा लग रहा है मानो प्रलयकाल का मेघ-गर्जन हो रहा है। तीरों की भीड़ लग गई है और कमानो की कड़कड़ाहट सुनाई पड रही है। क्रोध में लोहा बज रहा है और महान युद्ध छिड़ा हुआ है॥ ४१॥ युवक योद्धाओ ने महान युद्ध की रचना की है और क्षत्रियो के आश्चर्यजनक रूप से भयकारक खड्ग म्यानो से बाहर आ गए हैं। महाबली रौद्र-रस मे लिप्त युद्ध मे मग्न हो गए है और महातेजस्वी होकर अपने हाथो से हाथ और सीने से सीना मिला रहे है॥ ४२॥ रोषपूर्ण प्रहारो से तेज तलवारो की चमक बढ गई है और शस्त्रो की वर्षा से रुण्ड-मुण्ड वीर धूल मे लोट रहे है। वीर चिल्ला रहे है और उनके घाव भी भभककर रक्त फेक रहे है। ऐसा युद्ध चल रहा है, मानो इन्द्र और वृत्रासुर आपस में भिडे हो॥ ४३॥ शूरमाओ की गर्जन से महायुद्ध तेजी पर है और आपस मे शस्त्र बज रहे है। बर्छियो की वर्षा हो रही है और क्रोधित होकर लोहे की धूम मची हुई है। ऐसा लग रहा है जैसे वसन्त का खेल चल

मचे लोह क्रोहं । मनो खेल बासंत माहंत सोहं ॥ ४४ ॥
॥ रसावल छंद ॥ जिते बैर रुज्झं । तिते अंत जुज्झं । जिते खेत भाजे । तिते अंति लाजे ॥ ४५ ॥ तुटे देह बरमं । छुटी हाथ चरमं । कहूं खेत खोलं । गिरे सूर टोलं ॥ ४६ ॥
कहूँ मुछ मुक्खं । कहूँ शसत्र सक्खं । कहूँ खोल खग्गं । कहूँ परम पग्गं ॥ ४७ ॥ गहे मुच्छ बंकी । मंडे आन हंकी । ढका ढुक्क ढालं । उठे हाल चालं ॥४८॥ ॥ भुजंग छंद ॥ खुले खग्ग खूनी महांबीर खेतं । नचे बीर बैतालयं भूत प्रेतं । बजे डंक डउरू उठे नाद संखं । मनो मल्ल जुट्टे महां हत्थ बक्खं ॥ ४९ ॥ ॥ छपै छद ॥ जिनि सूरन सग्राम सबल सामुहि ह्वै मंड्यो । तिन सुभटन ते एक काल कोऊ जिअत न छड्यो । सभ खत्री खग खंड खेत भू मंडप अहुट्टे । सार धार धर धूम मुकत बंधन ते छुट्टे । ह्वै टूक टूक जुज्झे सभै पाव न पाछै डारियं । जैकार अपार सु धार ह्व अंबा शिवलोक सिधारियं ॥ ५० ॥ ॥ चउपई ॥ इह बिध मचा घोर संग्रामा ।

रहा हो ॥ ४४ ॥ ॥ रसावल छद ॥ जितने भी वैर-भावना से लिप्त थे, सभी जूझ मरे । जितने भाग गए वे अन्त तक लज्जित होते रहे ॥ ४५ ॥ देह के कवच टूट गए और हाथो की चमड़ी कट गई । कही शिरस्त्राण पड़े हुए है और कही शूरवीर गिरे पडे है ॥ ४६ ॥ कही मूंछोवाले भयकर चेहरे पडे है और कही खाली शस्त्र पडे हुए है । कही खड्गो के म्यान पड़े हुए है और कही पैर ही पैर पड़े हुए है ॥ ४७ ॥ बाँकी मूँछो वालो ने फिर युद्धभूमि को आ पकडा है और चिल्लाहट शुरू कर दी है । ढालो की आवाज़ से फिर वही स्थिति पैदा हो गई है ॥४८॥ ॥ भुजग छद ॥ खड्ग खुल गए है और खूनी महावीर मारे जा रहे है । भूत-प्रेत एव बैताल आदि नाच रहे है, डमरू की डमक बज उठी है और शखो का नाद सुनाई पड रहा है । वीर इस प्रकार आपस मे भिड़े पड़े है, मानो पहलवान एक-दूसरे के कमर मे हाथ डालकर जुटे हुए हो ॥ ४९ ॥ ॥ छप्पय छद ॥ जिन शूरमाओ ने इस बलशाली सग्राम का मण्डन किया, उन सुभटो मे से कोई भी काल द्वारा जीवित नही छोडा गया । सभी क्षत्री खड्ग से खण्डित होकर भूमण्डल से हट गए और लोहे की धार का स्वाद चख बधन से मुक्त होकर छूट गए । सभी टुकड़े-टुकड़े होकर जूझते रहे, परन्तु किसी ने भी पैर पीछे नही डाला और काली की जय-जयकार के साथ सभी शिवलोक सिधार गए ॥ ५० ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार

सिधए सूरि सूरि के धामा। कहा लगै वह कथो लराई। आपन प्रभा न बरनी जाई॥ ५१॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद॥ लवी सरब जीते कुशी सरब हारे। बचे जे बली प्रान लै कै सिधारे। चतुर बेद पठियं कीयो काशि बासं। घनै बरख कीने तहां ही निवासं॥ ५२॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे लवी कुशी जुद्ध बरनन नामु त्रितीआ धिआइ समापतम सतु सुभम सतु॥ ३॥ अफजू॥ १८६॥

॥ भुजंग प्रयात छंद॥ जिनै बेद पठिओ सु बेदी कहाए। तिनै धरम के करम नीके चलाए। पठे कागदं मद्र राजा सुधारं। अपो आप मो बैर भावं बिसारं॥ १॥ न्रिपं मुकलियं दूत सो काशि आयं। सभै बेदियं (मू०ग्रं०५२) भेद भाखे सुनायं। सभै बेदपाठी चले मद्र देसं। प्रनामं कीयो आनकै कै नरेसं॥ २॥ धुनं बेद की भूप ता ते कराई। सभै पास बैठे सभा बीच भाई। पड़े सामबेद जुजरबेद कत्थं। रिगंबेद पढियं करे भाव हत्थं॥ ३॥ ॥ रसावल छंद। अथरबेद

घोर सग्राम हुआ और शूरवीर शूरवीरो के घर स्वर्ग सिधार गए। कहाँ तक उस लड़ाई का कथन करूँ। मेरी बुद्धि द्वारा उसका वर्णन नही हो सकता॥ ५१॥ ॥ भुजग प्रयात छद॥ लव के कुल के सभी जीत गए और कुश के वश के सभी लोग हार गए। जो बलशाली बच गए वे प्राण लेकर भागे (कुश के वशवालो ने) चारो वेदो का पठन किया और काशी-वास लिया और बहुत वर्षो तक वही निवास किया॥ ५२॥

॥ इति बचित्र नाटक ग्रन्थ के लव-कुश-युद्ध-वर्णन नामक तृतीय अध्याय समाप्त॥ ३॥ अफजू॥ १८६॥

॥ भुजंग प्रयात छद॥ जिन्होने वेद-पाठ किया वे वेदी कहलाये और उन्होने धर्म के कर्मो का चलन किया। (कालान्तर मे) उन्होने मद्र देश के राजा के पास पत्र भेजा कि हमे आपस का वैर-भाव त्याग देना चाहिए॥ १॥ राजा ने दूत को काशी भेजा जिसको वेदियो ने सारा भेद एव बाते बताईं। सभी वेदपाठी मद्र देश की ओर चल दिए। राजा ने उन्हे आकर प्रणाम किया॥ २॥ राजा ने उनसे वेदध्वनि कराई और सभी लोग सभा के बीच मे विराजमान हुए। सामवेद, यजुर्वेद, ऋग्वेद आदि का पठन हुआ॥ ३॥ ॥ रसावल छद॥ अथर्ववेद

पट्ठियं। सुणे पाप नट्ठियं। रहा रीझ राजा। दीआ सरब साजा ॥ ४ ॥ लयो बनबासं। महां पाप नासं। रिखं भेस कीयं। तिसै राज दीयं ॥ ५ ॥ रहे होर लोगं। तजे सरब सोगं। धनं धाम त्यागे। प्रभं प्रेम पागे ॥ ६ ॥ ॥ अड़िल ॥ बेदी भयो प्रसंन राज कह पाइकै। देत भयो बर दान हीऐ हुलसाइकै। जब नानक कल मै हम आन कहाइ है। हो जगत पूज करि तोहि परमपद पाइ है ॥७॥ ॥ दोहरा ॥ लवी राज दे बन गए बेदिअन कीनो राज। भाँति भाँति तिनि भोगियं भूअ का सकल समाज ॥ ८ ॥ ॥ चउपई ॥ त्रितिय बेद सुनबे तुम कीआ। चतुर बेद सुनि भूअ को दीआ। तीन जनम हमहूँ जब धरिहै। चौथे जनम गुरू तुहि करिहै ॥ ९ ॥ उत राजा काननहि सिधायो। इत इन राज करत सुख पायो। कहा लगे करि कथा सुनाऊँ। ग्रंथ बढन ते अधिक डराऊँ ॥१०॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे बेद पाठ भेट राज चतुरथ धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ ४ ॥ अफजू ॥ १९९ ॥

पढा गया जिसके सुनने से पाप भाग जाते है। राजा प्रसन्न हुआ और उसने सर्वस्व दे दिया ॥ ४ ॥ राजा ने वनवास ले लिया जिससे महापाप नष्ट हो जाते है। ऋषिवेश वालो को (कुशवशियो को) राज्य दे दिया ॥ ५ ॥ अन्य लोग भी वही उनके साथ रहे और सर्वशोको का त्याग किया गया। धन और धाम को त्यागकर (लववशी) प्रभु के प्रेम मे मग्न हो गए ॥ ६ ॥ ॥ अड़िल ॥ राज्य को प्राप्त कर वेदी प्रसन्न हुए और प्रसन्न होकर वरदान देने लगे। जब कलयुग मे हम नानक के नाम से जाने जायेगे तो सारा ससार हमे मानेगा और आपको परम पद प्राप्त होगा ॥ ७ ॥ ॥ दोहा ॥ लवकुल के लोग राज्य देकर वन को चले गए और वेदियो ने राज्य किया तथा भिन्न-भिन्न प्रकार से भूमि और समाज के सकल भोगो को भोगा ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ तीन वेद तुमने सुने और चौथे वेद को सुनकर तुमने भूमि-ऐश्वर्य का दान कर दिया। हम जब तीन जन्म लेगे तो चौथे जन्म मे तुम्हे गुरु धारण करेगे ॥ ९ ॥ उधर राजा जगल मे चला गया तथा इस तरफ इन लोको ने राज्य करते हुए सुख को प्राप्त किया। कहाँ तक इस कथा को सुनाऊँ क्योकि ग्रन्थ-विस्तार से मैं अधिक डरता हूँ ॥ १० ॥

॥ इति श्री वचित्र नाटक ग्रन्थ का वेद-पाठ भेट राज नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ अफजू ॥ १९९ ॥

॥ नराज छंद ॥ बहुरि बिखाध बाधियं। किनी न ताहि साधियं। करंम काल यौ भई। सु भूम बंस ते गई ॥ १ ॥ ॥ दोहरा ॥ बिप्र करत भए सूद्र ब्रिति छत्री बैसन करम। बैंस करत भए छत्रि ब्रिति सूद्र सु दिज को धरम ॥२॥ ॥ चौपई ॥ बीस गाव तिन के रहि गए। जिन मो करत क्रिसानी भए। बहुत काल इह भाँति बितायो। जनम समै नानक को आयो ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ तिन बेदियन के कुल बिखे प्रगटे नानक राइ। सभ सिक्खन को सुख दए जह तह भए सहाइ ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ तिन इह कल मो धरमु चलायो। सभ साधन को राहु बतायो। जे ता के मारगि महि आए। ते कबहूँ नही पाप (मू०ग्रं०५३) संताए ॥ ५ ॥ जे जे पंथ तवन के परे। पाप ताप तिन के प्रभ हरे। दूख भूख कबहूँ न संताए। जाल काल के बीच न आए ॥ ६ ॥ नानक अंगद को बपु धरा। धरम प्रचुरि इह जग मो करा। अमरदास पुनि नामु कहायो। जन दीपक ते दीप जगायो ॥ ७ ॥ जब बर दानि समै वहु आवा। रामदास तब गुरू कहावा। तिह

॥ नराज छद ॥ पुनः आपस मे वैर-विषाद बढा जिसे कोई भी ठीक न कर पाया। कालक्रम कुछ ऐसा हुआ कि इस वश के हाथो से सारी भूमि छिन गई ॥ १ ॥ ॥ दोहा ॥ विप्रो ने शूद्रवृत्ति और वैश्यो का कर्म क्षत्रियो ने करना शुरू कर दिया। वैश्यो ने क्षत्रियो का कर्म प्रारम्भ कर दिया और शूद्रो ने ब्राह्मणो का धर्म (कर्तव्य) करना शुरू कर दिया ॥२॥ ॥ चौपाई ॥ इनके पास केवल बीस गाँव रह गए जिनमे ये खेती-बाड़ी करने लगे। इस प्रकार वहुत समय बीता, तब नानक का जन्म-समय आया ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ उन वेदियो के वश मे नानकराय ने जन्म लिया, जिसने अपने सब शिष्यो की सर्वत्र सहायता कर उन्हे सुख प्रदान किया ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ उन्होने कलियुग मे धर्मचक्र चलाया तथा सब साधु-सतो को (सत्य का) मार्ग दिखाया। जो इनके मार्ग (मत) मे दीक्षित हुए उन्हे कभी भी पाप ने नही सताया ॥ ५ ॥ जिन्होने इनके पथ को स्वीकार किया उनके पापो और (त्रिविध) तापो को परमात्मा ने नष्ट कर दिया। उन्हे दुःख एव भूख कभी नही सताती और भ्रम-जाल तथा कालचक्र मे नही फँसते ॥ ६ ॥ नानक ने अगद का शरीर धारण किया तथा धर्म का प्रचार इस संसार मे किया। पुनः उन्ही का नाम अमरदास हुआ मानो दीपक से दीपक जला हो ॥ ७ ॥ जब वरदान का

वर दानि पुरातनि दीआ। अमरदासि सुरपुरि मगु लीआ ॥८॥ स्री नानक अंगदि करि माना। अमरदास अंगद पहिचाना। अमरदास रामदास कहायो। साधनि लखा मूढ़ नहि पायो ॥९॥ भिन भिन सभहूँ करि जाना। एक रूप किनहूँ पहिचाना। जिन जाना तिन ही सिध पाई। बिन समझे सिध हाथ न आई ॥ १० ॥ रामदास हरि सों मिल गए। गुरता देत अरजनहि भए। जब अरजन प्रभ लोक सिधाए। हरिगोबिंद तिह ठाँ ठहराए ॥ ११ ॥ हरिगोबिंद प्रभ लोक सिधारे। हरीराइ तिह ठाँ बैठारे। हरीक्रिशन तिन के सुत वए। तिन ते तेगबहादर भए ॥ १२ ॥ तिलक जंञू राखा प्रभ ताका। कीनो बडो कलू महि साका। साधनि हेति इती जिनि करी। सीसु दीआ परु सी न उचरी ॥ १३ ॥ धरम हेत साका जिनि कीआ। सीसु दीआ परु सिररु न दीआ। नाटक चेटक कीए कुकाजा। प्रभ लोगन कह आवत लाजा ॥ १४ ॥

वह समय आया उस समय रामदास गुरू हुए। अमरदास उन्हे पुराना वरदान देकर वैकुठधाम चले गए ॥ ८ ॥ श्री नानक को अगद माना गया और अमरदास अगद के रूप मे पहचाने गए। अमरदास ही रामदास कहलाए, जिसे सत पुरुषो ने तो समझ लिया परन्तु मूर्ख इस भेद को नही जान सके ॥ ९ ॥ आम लोगो ने तो इन सबको भिन्न-भिन्न रूपो मे ही जाना, परन्तु किसी विरले ने ही इन्हे एक रूप समझा। जिन्होने इन्हे एक रूप ही जाना, उन्ही को सिद्धियाँ प्राप्त हुईं तथा बिना समझे कुछ हाथ नही लगता ॥ १० ॥ रामदास जब परमात्मा मे लीन हुए तो वे गुरु-पद अर्जुन को दे गए। जब अर्जुन प्रभु-लोक को सिधारे तो उन्होने अपनी गद्दी पर हरिगोविंद को स्थापित किया ॥ ११ ॥ हरिगोविंद जब परमतत्त्व मे लीन हुए तो हरिराय उनके स्थान पर बैठे। उनके पुत्र हरिकृष्ण हुए तथा उनके बाद तेगबहादुर हुए ॥ १२ ॥ प्रभु ने उनकी तिलक और जनेऊ-रक्षक भावना की पूर्ण सुरक्षा की और इसी भावना के अतर्गत उन्होने कलियुग मे महान् कार्य किया। साधुत्व की रक्षा के लिए जिसने (अपने जीवन की) इतिश्री कर दी उस (गुरू तेगबहादुर) ने शीश दे दिया, परन्तु मुँह से जरा सी भी कष्ट की आवाज तक न निकाली ॥ १३ ॥ धर्म के लिए जिसने महान् बलिदान-कार्य किया उसने सिर दे दिया, परन्तु सत्य का आग्रह न छोडा। सत्य की आड़ लेकर लोगो को ठगने के लिए जो नाटक और कुकर्म किये जाते है, अध्यात्म-प्रभुता-सपन्न

॥ दोहरा ॥ ठीकरि फोरि दिलीसि सिरि प्रभ पुर कीआ पयान । तेगबहादर सी क्रिआ करी न किनहूँ आन ॥ १५ ॥ तेगबहादर के चलत भयो जगत को सोक । है है है सभ जग भयो जै जै जै सुरलोक ॥ १६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे पातिशाही बरनन नाम पचमो धिआइ समापतम सतु सभम सतु ॥ ५ ॥ अफजू ॥ २१५ ॥

चौपई ॥

अब मै अपनी कथा बखानो । तप साधत जिह बिधि मुहि आनो । हेमकुंट परबत है जहाँ । सपतस्रिग सोभित है तहाँ ॥ १ ॥ सपतस्रिग तिह नामु कहावा । पंडराज जह जोगु कमावा । तह हम अधिक तपस्सिआ (मू०ग्रं०५४) साधी । महांकाल कालका अराधी ॥ २ ॥ इह बिधि करत तपस्सिआ भयो । द्वै ते एक रूप ह्वै गयो । तात मात मुर अलख अराधा । बहु बिधि जोग साधना साधा ॥ ३ ॥ तिन जो करी अलख की सेवा । ता ते भए प्रसंनि गुरदेवा । तिन प्रभ

लोगो को ऐसे प्रपचों से लज्जा का अनुभव होता है ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ शरीर रूपी मिट्टी के घड़े को दिल्लीश्वर (औरंगजेब) के सिर पर फोडकर स्वयं प्रभु-पुरी को प्रयाण किया; उस तेगबहादुर के समान महान् कार्य किसी ने नही किया ॥ १५ ॥ तेगबहादुर के ससार से कूच करते ही जगत मे सर्वत्र शोक छा गया। जगत मे हाहाकार मच गया तथा स्वर्ग मे जय-जयकार होने लगा ॥ १६ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के गुरुपद-वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ अफजू ॥ २१५ ॥

॥ चौपाई ॥ अब मैं अपनी कथा कहता हूँ कि कैसे तपस्या मे लीन मुझे लाया गया। जहाँ हेमकुट पर्वत है वहाँ सप्तश्रृग शोभायमान हैं ॥१॥ पांडव राजाओ ने योगसाधना की जिससे उस स्थान का नाम सप्त-श्रृग हुआ। वहाँ मैंने अत्यधिक तपस्या की और काल के भी महाकाल की आराधना की ॥ २ ॥ इस प्रकार तपस्या करते-करते मेरा द्वैत-रूप उस परमात्मस्वरूप मे मिलकर दो से एक हो गया। मेरे माता-पिता ने अलक्ष्य प्रभु की आराधना की और भिन्न प्रकार की सुयोग्य साधनाएँ की ॥ ३ ॥ उन्होने जिस भाँति अदृष्ट परमात्मा की सेवा की उससे

जब आइस मुहि दीया। तब हम जनम कलू महि लीया ॥ ४ ॥ चित न भयो हमरो आवन कहि। चुभी रही स्रुति प्रभु चरनन महि। जिउ तिउ प्रभ हमको समझायो। इम कहि कै इह लोक पठायो ॥ ५ ॥ ॥ अकालपुरख बाच इस कीट प्रति ॥ ॥ चौपई ॥ जब पहिले हम स्रिशटि बनाई। दईत रचे दुशट दुखदाई। ते भुजबल बवरे ह्वै गए। पूजत परम पुरख रहि गए ॥ ६ ॥ ते हम तमकि तनक मो खापे। तिन की ठउर देवता थापे। ते भी बल पूजा उरझाए। आपन ही परमेशर कहाए ॥ ७ ॥ महांदेव अचुत कहवायो। बिशन आप ही को ठहरायो। ब्रहमा आप पारब्रहम बखाना। प्रभ को प्रभू न किनहूँ जाना ॥ ८ ॥ तब साखी प्रभ अशट बनाए। साख नमित देबे ठहराए। ते कहै करो हमारी पूजा। हम बिन अवरु न ठाकुरु दूजा ॥ ९ ॥ परम ततत को जिनि न पछाना। तिन करि ईशर तिन कह माना। केते सूर चंद

गुरुदेव (परमात्मा) प्रसन्न हुए। उस परमात्मा ने जब मुझे आज्ञा दी तो मैंने इस कलियुग मे जन्म लिया ॥ ४ ॥ मेरी सुरति प्रभु-चरणो मे इतनी लीन थी कि मेरा चित्त आने को बिलकुल तैयार नही था। प्रभु ने जैसे-तैसे मुझे समझाया और इस प्रकार यह कहकर इस लोक मे भेजा ॥५॥ ॥ अकालपुरुष उवाच इस कीट के प्रति ॥ ॥ चौपाई ॥ जब पहले मैंने सृष्टि का सृजन किया तो परम अत्याचारी दैत्यो की रचना की। वे अपने भुजबल के कारण बावरे हो गए और परमपुरुष की पूजा का उन्होने त्याग कर दिया ॥ ६ ॥ उनको मैंने क्रोधित होकर क्षण भर मे नष्ट कर दिया और उन देवताओ को उत्पन्न किया। वे भी अपने बल और अपनी पूजा मे उलझकर रह गए तथा प्रत्येक स्वय को परमेश्वर कहलाने लगा ॥ ७ ॥ महादेव ने अपने आपको सर्वोच्च कहलाना शुरू कर दिया और विष्णु ने स्वय को सबसे ऊँचा घोषित कर दिया। ब्रह्मा ने स्वय को परब्रह्म मान लिया तथा प्रभु को सर्वप्रभु किसी ने भी नही जाना ॥८॥ तब परमात्मा ने पाँच तत्त्व, सूर्य-चन्द्र एव धर्मराज आदि आठो को साक्षी-स्वरूप बनाया कि वे हो रहे पाप-पुण्य की साक्षी रहे। उन्होने भी कहना शुरू कर दिया कि हमारी पूजा करो, हमारे सिवा अन्य कोई ठाकुर नही है ॥ ९ ॥ जिन्होने स्वय परम-तत्त्व को नही पहचाना है वे भी अपने आपको परमात्मा कहलाने लगे। कई ऐसा मानने भी लगे और सूर्य-चन्द्र की पूजा करने लगे। यज्ञ-याज्ञ, प्राणायाम आदि को प्रमाण मानने

कह मानै। अगनहोत्र कई पवन प्रमानै ॥ १० ॥ किनहूँ प्रभु पाहन पहिचाना। न्हाति किते जल करत बिधाना। केतक करम करत डरपाना। धरमराज को धरम पछाना ॥ ११ ॥ जे प्रभ साथ नमित ठहराए। ते हिआँ आइ प्रभू कहवाए। ताकी बात बिसर जाती भी। अपनी अपनी परत सोभ भी ॥ १२ ॥ जब प्रभ को न तिनै पहिचाना। तब हरि इन मनुछन ठहराना। ते भी बसि ममता हुइ गए। परमेशर पाहन ठहरए ॥ १३ ॥ तब हरि सिद्ध साध ठहिराए। तिन भी परम पुरख नही पाए। जे कोई होत भयो जगि सिआना। तिन तिन अपनो पंथु चलाना ॥ १४ ॥ परम पुरख किनहूँ नह पायो। बैर बाद हंकार बढायो। पेड पात आपन ते जलै। प्रभ कै पंथ न कोऊ चलै ॥ १५ ॥ जिनि (मू०ग्रं०५५) जिनि तनकि सिद्ध को पायो। तिन तिन अपना राहु चलायो। परमेशर न किनहूँ पहिचाना। मम उचारते भयो

लगे ॥ १० ॥ किसी ने पत्थर (की मूर्तियो) में प्रभु को मान लिया और कई विविध तीर्थस्नानों को परमतत्त्व मानने लगे। कितने ही लोग ये सब कर्म करते हुए भी (इन कर्मो के खोखलेपन को समझकर) भयभीत होने लगे और धर्मराज (यमराज) के धर्ममार्ग मे चलने लगे अर्थात् मात्र नैतिकता को ही परमतत्त्व मानने लगे ॥ ११ ॥ जिनको प्रभु ने मात्र साक्षी निमित्त उत्पन्न किया था वे सब यहाँ आकर अपने आपको प्रभु कहलाने लगे। उनकी बात भी भूल जाती और बेशक वे अपनी-अपनी शोभा मे लगे भी रहते ॥ १२ ॥ परन्तु जब प्रभु को इन लोगो ने भी पहचानने से इन्कार कर दिया तो परमात्मा का मन इनकी ओर से क्षुब्ध हो उठा। ये सब भी ममता के वशीभूत हो गए और इन्होने परमेश्वर को पत्थरो में निर्वासित करा दिया ॥ १३ ॥ तब परमात्मा ने सिद्धो और साधुओ का सृजन किया, परन्तु वे भी परमपुरुष को नही पा सके। जो कोई भी ज़रा-सा यज्ञादि मे चतुर हुआ, उसने अपना धर्म (मत) चला दिया ॥ १४ ॥ परमपुरुष का रहस्य कोई न पा सका बल्कि उलटा इन्होने वैर-भावना एव अहकार को ही बढ़ाया। सब ये भी पेड़-पत्तो पर निर्वाह कर सात्त्विक जीवन तो व्यतीत करने लगे, परन्तु प्रभु-मार्ग पर कोई भी नही चला ॥ १५ ॥ जिसने ज़रा-सी सिद्धि प्राप्त की उसने अपना मत चला दिया। परमेश्वर को किसी ने भी नही पहचाना और 'मेरा, मेरा' का उच्चारण करते हुए सब पागल हो

दिवाना ।। १६ ।। परम तत्त किनहूँ न पछाना । आप आप भीतरि उरझाना । तब जे जे रिखराज बनाए । तिन आपन पुनि सिम्रिति चलाए ।। १७ ।। जे सिम्रितन के भए अनुरागी । तिन तिन क्रिआ ब्रहम की त्यागी । जिन मनु हरि चरनन ठहरायो । सो सिम्रितन के राह न आयो ।। १८ ।। ब्रहमा चार ही बेद बनाए । सरब लोक तिह करम चलाए । जिनकी लिव हरि चरनन लागी । ते बेदन ते भए तिआगी ।। १९ ।। जिन मत बेद कतेबन त्यागी । पारब्रहम के भए अनुरागी । तिन के गूड़ मत्त जे चलही । भाँति अनेक दुखन सो दलही ।। २० ।। जे जे सहित जातन संदेह । प्रभ को संगि न छोडत नेह । ते ते परमपुरी कह जाही । तिन हरि सिउ अंतरु कछु नाही ।। २१ ।। जे जे जीय जातन ते डरे । परम पुरख तजि तिन मग परे । ते ते नरक कुंड मो परही । बार बार जग मो बपु धरही ।। २२ ।। तब हरि बहुरि दत्त उपजाइओ । तिन भी अपना पंथु चलाइओ । कर मो नख

गए ।। १६ ।। परमतत्त्व को किसी ने नही पहचाना और सब भीतर ही भीतर अपने-आप मे उलझकर रह गए । फिर जिन जिन ऋषियों का सृजन किया गया, उन्होने भी अपनी-अपनी स्मृतियो का चलन किया ।।१७।। जो-जो स्मृतियो के अनुरागी हो गए उन सबने ब्रह्मक्रिया (ब्रह्म-आचरण) का त्याग कर दिया । जिन्होने अपना मन हरि-चरणो मे जोड़ा वे स्मृतियो के मार्ग पर नही चले ।। १८ ।। ब्रह्मा ने चार वेदों का सृजन किया और सभी लोग उस मत के अनुयायी हो गए । परन्तु जिनकी सुरति हरि-चरणो के साथ लग गई वे सब वेदो को त्याज्य मानने लगे ।। १९ ।। जिन्होने अपनी बुद्धि को वेद-कतेबादि से दूर रखा, वे वास्तव मे परब्रह्म के सच्चे अनुरागी सिद्ध हुए । जो ऐसे पुरुषो के मतानुसार कार्य करता है, वह अनेक प्रकार के दुःखो को नष्ट कर देता है ।। २० ।। जो मात्र देह को भी प्रभु-प्रेम के वशीभूत होकर (मानव मात्र के कल्याण के लिए) समर्पित करते है, वे परम-पुरी को प्राप्त होते है और उनमे तथा हरि मे कोई अन्तर नही रह जाता है ।। २१ ।। जो-जो जीव वर्णाश्रम-धर्म से डरकर इस मार्ग के बधनो मे पड़े रहे और परम-पुरुष को हृदयगम नही कर सके, वे सब नरककुड को प्राप्त होगे और बार-बार जन्म लेते रहेगे ।। २२ ।। तब पुनः परमात्मा ने दत्तात्रेय को पैदा किया और उसने भी अपना पथ चला दिया । उसने भी नख-शिख और

सिर जटा सवारी । प्रभ की क्रिआ कछू न बिचारी ।। २३ ।।
पुनि हरि गोरख कौ उपराजा । सिक्ख करे तिनहूँ बड राजा ।
स्रवन फारि मुद्रा दुऐ डारी । हरि की प्रीति रीति न
बिचारी ।। २४ ।। पुनि हरि रामानंद को करा । भेस बैरागी
को जिन धरा । कंठी कंठि काठ की डारी । प्रभ की क्रिआ
न कछू बिचारी ।। २५ ।। जे प्रभ परम पुरख उपजाए । तिन
तिन अपने राह चलाए । महादीन तबि प्रभ उपराजा ।
अरब देस को कीनो राजा ।। २६ ।। तिन भी एकु पंथु उपराजा ।
लिंग बिना कीने सभ राजा । सभ ते अपना नामु जपायो ।
सतिनामु काहू न द्रिड़ायो ।।२७।। सभ अपनी अपनी उरझाना ।
पारब्रहम काहू न पछाना । तप साधत हरि मोहि बुलायो ।
इम कहिकै इह लोक पठायो ।। २८ ।। (मू०ग्रं०५६)

अकाल पुरख बाच ।। चौपई ।।

मैं अपना सुत तोहि निवाजा । पंथु प्रचुर करबे कह
साजा । जाहि तहाँ तै धरमु चलाइ । कबुधि करन ते लोक

जटाजूट के सँवारने पर बल दिया, परन्तु प्रभु की क्रिया पर तनिक भी विचार नही किया ।। २३ ।। फिर गोरख को उत्पन्न किया गया जिसने बड़े-बड़े राजाओ को अपना शिष्य बनाया । उसने भी कान फाडकर मुद्राएँ धारण की, परन्तु प्रभु-प्रेम की रीति पर ज़रा भी विचार नही किया ।। २४ ।। फिर प्रभु ने रामानन्द को भेजा जिसने वैराग्य-वेश धारण किया और गले मे लकड़ी की माला पहनी । प्रभु-प्रेम को इसने भी नही जाना ।। २५ ।। प्रभ ने जिन-जिन महापुरुषो को पैदा किया, उन सबने अपने-अपने मत चला दिए । तब परमात्मा ने पैगम्बर को बनाया और उसे अरब देश का राज्य दिया ।। २६ ।। उसने भी एक मत का निर्माण किया और सब राजाओ की सुन्नत करा दी । सबसे अपना नाम स्मरण कराया और सत्यनाम को किसी ने भी दृढ नही किया ।। २७ ।। सब अपने-अपने मत-मतान्तरो मे उलझकर रह गए और परब्रह्म को किसी ने भी नही पहचाना । मै तपसाधना मे लीन था जब प्रभु ने मुझे बुलाया और यह कहकर इस लोक मे भेजा ।। २८ ।।

।। अकालपुरुष उवाच ।। ।। चौपाई ।। मैने तुम्हे अपना पुत्र स्थापित किया है और तुम्हारा सृजन धर्म के प्रचलन के लिए किया है । यहाँ से वहाँ

हटाइ ॥ २९ ॥ ॥ कबि बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ ठाढ भयो मै जोरि करि बचन कहा सिर न्याइ। पंथ चलै तब जगत मै जब तुम करहु सहाइ ॥३०॥ ॥ चौपई ॥ इह कारनि प्रभ मोहि पठायो। तब मै जगत जनमु धरि आयो। जिम तिन कही इनै तिम कहिहौ। अउर किसू ते बैर न गहिहौ ॥ ३१ ॥ जे हम को परमेशर उचरिहै। ते सभ नरकि कुंड महि परिहै। मो को दासु तवन का जानो। या मैं भेदु न रंच पछानो ॥ ३२ ॥ मैं हो परम पुरख को दासा। देखनि आयो जगत तमासा। जो प्रभ जगति कहा सो कहिहौ। म्रित लोग ते मोनि न रहिहौ ॥ ३३ ॥ ॥ नराज छंद ॥ कहियो प्रभू सु भाखिहौ। किसू न कान राखिहौ। किसू न भेख भीज हौ। अलेख बीज बीज हौ ॥ ३४ ॥ पखाण पूज हौ नही। न भेख भीज हौ कही। अनंत नामु गाइहौ। परम्म पुरख पाइहौ ॥ ३५ ॥ जटा न सीस धारिहो। न मुंद्रका सु धारिहो। न कान काहू को धरो। कहियो प्रभू सु मै करो ॥ ३६ ॥ भजो सु एकु

जाकर तुम धर्मचक्र को चलाओ और लोगों को दुर्बुद्धिपूर्ण कार्यो हटाओ ॥ २९ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ मैं हाथ जोड़कर खडा हो गया और मैंने सिर झुकाकर कहा कि जगत मे धर्म का प्रचलन तभी होगा जब तुम सहायता करो ॥ ३० ॥ ॥ चौपाई ॥ इसलिए प्रभु ने मुझे भेजा और मैं इस जगत मे जन्म लेकर आया। जो उसने मुझसे कहा वही मै यहाँ कहूँगा और मेरा किसी से भी वैर-विरोध नही होगा ॥ ३१ ॥ जो मुझे परमेश्वर के नाम से जानेगे वे सब नरककुड मे पडेगे। मुझे मात्र उस (प्रभु) का दास समझो और इसमे अन्य कोई भी रहस्यवाली अलग बात नही है ॥ ३२ ॥ मैं तो परम-पुरुष का सेवक हूँ जो जगत-प्रपच को देखने आया है। प्रभु ने जगत के प्रति जो निर्देश दिए है, उन्हे अवश्य कहूँगा और मृत्युलोक के कर्मकांड, शोषण, अत्याचार आदि को देखकर चुप हो नही बैठूंगा ॥ ३३ ॥ ॥ नराज छद ॥ जो प्रभु ने कहा है वही कहूँगा और किसी का लिहाज़ नही रखूंगा ! मैं किसी वेश-विशेष को मान्यता नही दूंगा और उस अदृष्ट प्रभु के नाम का बीज इस धरती पर बोऊँगा ॥ ३४ ॥ मै पत्थर-पूजक और वेश मे रत रहनेवाला नही हूँ। उस प्रभु के अनन्त नामो का गायन करूँगा और परमपुरुष को प्राप्त करूँगा ॥ ३५ ॥ सिर पर जटाएँ और कामो मे मुद्राएँ धारण नही करूँगा। किसी का ध्यान विशेष किए विना, जो प्रभु ने कहा है, वे सब कार्य करता रहूँगा ॥३६॥ केवल

नामयं। सु काम सरब ठामयं। न जाप आन को जपो। न अउर थापना थपो॥ ३७॥ बिअंति नामु ध्याइहो। परम जोति पाइहो। न ध्यान आन को धरौ। न नाम आन उचरौ॥ ३८॥ तवक्क नाम रत्तियं। न आन मान मत्तियं। परम्म ध्यान धारियं। अनंत पाप टारियं॥ ३९॥ तुमेव रूप राचियं। न आन दान माचियं। तवक्क नामु उचारियं। अनंत दूख टारियं॥ ४०॥ ॥ चौपई॥ जिन जिन नामु तिहारो ध्याइआ। दूख पाप तिन निकटि न आइआ। जे जे अउर ध्यान को धरही। बहिस बहिस बादन ते मरही॥ ४१॥ हम इह काज जगत मो आए। धरम हेत गुरदेव पठाए। जहाँ तहाँ तुम धरम बिथारो। दुसट दोखियनि पकरि पछारो॥ ४२॥ याही काज धरा हम जनमं। समझ लेहु साधू सभ मनमं। धरम चलावन संत उबारन। (मू०ग्रं०५७) दुशट सभन को मूल उपारन॥ ४३॥ जे जे भए पहिल अवतारा। आपु आपु तिन जापु उचारा। प्रभ दोखी कोई न

एक प्रभु-नाम का स्मरण करूँगा जो सर्वस्थानो मे सहायक है। न किसी अन्य का जाप करूँगा और न ही उस प्रभु की स्थापित की गई मान्यताओ के अतिरिक्त अन्य मान्यताओ की स्थापना करूँगा॥ ३७॥ उसके अनन्त नामो का स्मरण कर परमज्योति को प्राप्त करूँगा। किसी अन्य का ध्यान नही करूँगा, न ही किसी अन्य के नाम का उच्चारण करूँगा॥ ३८॥ तेरे ही नाम मे लीन अन्य किसी मान-सम्मान से मद-मस्त नही होऊँगा। परमध्यान को धारण करूँगा और अनत पापो का नाश करूँगा॥ ३९॥ तुम्हारे स्वरूप मे लीन अन्य किसी दान की अपेक्षा नही करूँगा। तुम्हारे नाम का स्मरण कर अनन्त दुःखो को दूर करूँगा॥ ४०॥ ॥ चौपाई॥ जिस-जिसने तुम्हारा नाम स्मरण किया, दुःख-पाप उसके पास नही आया। जो-जो अन्य का ध्यान करते है, वे सब वाद-विवाद मे ही नष्ट हो जाते है॥ ४१॥ मेरा तो जगत मे आने का उद्देश्य धर्म है और गुरुदेव (प्रभु) ने मुझे इसीलिए भेजा है। सर्वत्र तुम धर्म का प्रसार करो और दुष्टों को पकडकर पछाड़ो॥ ४२॥ इसी कार्य के लिए हमने जन्म धारण किया है, हे साधु-सन्तो! इसको तुम भली-भाँति मन मे समझ लो। हमने धर्म चलाने और सतो के उद्धार के लिए तथा दुष्टों को समूल नष्ट करने के लिए जन्म लिया है॥ ४३॥ जो-जो अवतार पूर्वकाल में हो चुके है उन सबो ने अपने-अपने नाम का

बिदारा। धरम करम को काहु न डारा ॥ ४४ ॥ जे जे गउस अंबीआ भए। मै मै करत जगत ते गए। महापुरख काहू न पछाना। करम धरम को कछू न जाना ॥ ४५ ॥ अवरन की आसा किछु नाही। एकै आस धरो मन माही। आन आस उपजत किछु नाही। वा की आस धरो मन माही ॥ ४६ ॥ ॥ दोहरा ॥ कोई पड़त कुरान को कोई पड़त पुरान। काल न सकत बचाइकै फोकट धरम निदान ॥ ४७ ॥ ॥ चौपई ॥ कई कोटि मिलि पढ़त कुराना। बाचत किते पुरान अजाना। अंति काल कोई काम न आवा। दाव काल काहू न बचावा ॥ ४८ ॥ किउ न जपो ता को तुम भाई। अंति काल जो होइ सहाई। फोकट धरम लखो कर भरमा। इन ते सरत न कोई करमा ॥ ४९ ॥ इह कारनि प्रभ हमैं बनायो। भेदु भाखि इह लोक पठायो। जो तिन कहा सु सभन उचरौं। डिभ विभ कछु नैक न करौं ॥ ५० ॥ ॥ रसावल छंद ॥ न जटा मूंड धारौं। न मुंद्रका सवारौं।

जाप करवाया है। प्रभु के द्वेषियो का नाश किसी ने नही किया और सच्चे धर्म और कर्म की परम्परा नही बनायी ॥ ४४ ॥ जितने भी राग-नाद के प्रेमी एव सम्राट् हुए है, वे सब "मैं, मैं" करते ही अर्थात् अहंकार-वश होकर ही इस ससार से कूच कर गए हैं। उस महान् पुरुष (प्रभु) को किसी ने नही पहचाना और धर्म के कर्म मे रुचि नही दिखाई ॥ ४५ ॥ अन्यो की आशा को त्यागकर केवल एक प्रभु की आशा मन मे स्थिर करो। जिसकी आशा करने से अन्य सब आशाएँ पैदा होनी बद हो जायँ, केवल उसी की आशा मन मे रखो ॥ ४६ ॥ ॥ दोहा ॥ कोई कुर्आन को तथा कोई पुराण को पढता है परन्तु ये सब व्यर्थ के धर्म है, क्योकि ये सब काल-चक्र से नही बचा सकते ॥ ४७ ॥ ॥ चौपाई ॥ कई करोड लोग कुर्आन पढ रहे है तथा कितने ही अनजान पुराणो का अध्ययन कर रहे है। अतकाल कोई भी काम नही आयेगा और काल के दाँव को कोई भी नही बचा सकेगा ॥ ४८ ॥ हे भाई! तुम उसका स्मरण क्यों नही करते जो अतकाल मे तुम्हारा सहायक होगा। व्यर्थ के पाखडो को भ्रम करके जानो, क्योकि इनसे कोई काम चलनेवाला नही है ॥ ४९ ॥ इसी कारण प्रभु ने हमारा सृजन किया और इस रहस्य को समझाकर इस लोक मे भेजा। जो उसने कहा है उस सबका उच्चारण करूँगा तथा कोई भी पाखड या कपट नही करूँगा ॥ ५० ॥ ॥ रसावल छद ॥ न जटाओ

जपो तास नामं । सरै सरब कामं ।। ५१ ।। न नैनं मिचाऊँ । न डिभं दिखाऊँ । न कुकरमं कमाऊँ । न भेखी कहाऊँ ।।५२।। ।। चौपई ।। जे जे भेख सु तन मै धारै । ते प्रभ जन कछु कै न बिचारै । समझ लेहु सभ जन मन माही । डिभन मै परमेशरु नाही ।। ५३ ।। जे जे करम करि डिभ दिखाई । तिन परलोगन मो गति नाही । जीवत चलत जगत के काजा । स्वाँग देखि करि पूजत राजा ।। ५४ ।। स्वाँगन मै परमेशरु नाही । खोजि फिरै सभ ही को काही । अपनो मनु कर मो जिह आना । पारब्रहम को तिनी पछाना ।। ५५ ।। ।। दोहरा ।। भेख दिखाए जगत को लोगन को बसि कीन । अंत कालि काती कट्यो बासु नरक मो लीन ।।५६।। ।। चौपई ।। जे जे जग को डिभ दिखावै । लोगन मूँडि अधिक सुखु पावै । नासा मूँद करै परणामं । (मू०ग्रं०५८) फोकट धरम न कउडी कामं ।। ५७ ।। फोकट धरम जिते जग करही । नरकि

को रखो तथा न ही मुद्राओ को धारण करो । केवल उसी के नाम का स्मरण करो, जिससे सब कामनाएँ सिद्ध होती है ।।५१।। न आँख बद करके समाधि लगाऊँगा (और ससार के दु.खो से दूर भागूँगा) तथा न ही कोई अन्य आडवर करूँगा । न कुकर्म करूँगा और न ही किसी विशेष वेश वाला कहाऊँगा ।। ५२ ।। ।। चौपाई ।। जिन-जिन लोगो ने तन पर वेशों को धारण किया है, समझ लो उन्होने प्रभु के बारे मे कुछ भी विचार नही किया है । सभी लोग इस बात को भलीभाँति मन मे समझ ले कि पाखंडो मे परमेश्वर नही है ।। ५३ ।। जो कर्म करने में पाखड करते है, उनकी परलोक मे मुक्ति नही होती । वे सासारिकता के वशीभूत होकर जीवित रहने का प्रयत्न करते है और उनके स्वाँगो को देखकर राजा लोग भी उनकी पूजा करते है (क्योकि वे स्वय पाखडी होते है) ।। ५४ ।। तरह-तरह के वेष धारण करने से परमेश्वर को नही पाया जा सकता, क्योकि इस प्रकार के प्रयत्नो से बहुत से लोग उसे खोज चुके है । जिसने अपने मन मे उसका ध्यान किया उसी ने वास्तविक रूप में परब्रह्म की पहचान की है ।। ५५ ।। ।। दोहा ।। जिन्होने वेश दिखाकर लोगों को वशीभूत किया हुआ है, वे अन्त मे काल द्वारा नष्ट तो कर ही दिए जायेगे उनका निवास भी नरक मे होगा ।। ५६ ।। ।। चौपाई ।। जो-जो ससार को पाखण्ड दिखाते हैं और लोगो को लूटकर सुख को प्राप्त करते है, नासिकाओ को बन्द करके प्रणाम करते है, उनके ये सब कर्म एव धर्म व्यर्थ हैं ।। ५७ ।। पाखण्डपूर्ण धर्मों (कर्मों) को करने से जीव नरककुण्ड मे

कुंड भीतर ते परही। हाथि हलाए सुरग न जाहू। जो मनु जीत सका नहि काहू ॥ ५८ ॥ ॥ कबि बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ जो निज प्रभ मो सो कहा सो कहिहौ जग माहि। जो तिह प्रभ कौ ध्याइ हैं अंत सुरग को जाहि ॥ ५६ ॥ ॥ दोहरा ॥ हरि हरि जन दुइ एक हैं बिब बिचार कछु नाहि। जल ते उपज तरंग जिउ जल ही बिखै समाहि ॥ ६० ॥ ॥ चौपई ॥ जे जे बादि करत हंकारा। तिन ते भिन रहत करतारा। बेद कतेब बिखै हरि नाही। जानि लेहु हरि जन मन माही ॥६१॥ आँख मूँदि कोऊ डिभ दिखावै। आँधर की पदवी कह पावै। आँखि मीच मग सूझ न जाई। ताहि अनंत मिलै किम भाई ॥ ६२ ॥ बहु बिसथार कह लउ कोई कहै। समझत बाति थकति हुऐ रहै। रसना धरै कई जौ कोटा। तदपि गनत तिह परत सु तोटा ॥ ६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब आइसु प्रभ को भयो जनमु धरा जग आइ। अब मै कथा संछेपते सभहूँ कहत सुनाइ ॥ ६४ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे आगिआ काल जग प्रवेश करन नाम खशटमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ ६ ॥ अफजू ॥ २७६ ॥

पड़ता है। केवल हाथ हिलाने से और मन को जीते विना स्वर्ग नही जाया जा सकता ॥५८॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ जो परमात्मा ने मुझसे कहा वही मै ससार मे कह रहा हूँ। जो प्रभु का स्मरण करेंगे वे ही अन्त मे स्वर्ग मे जायेगे ॥ ५९ ॥ ॥ दोहा ॥ हरि एव हरिजन एक ही है एव इनमे कोई भेद-विचार नही है। ये वैसे ही हैं जैसे जल से तरंग पैदा होती है और जल मे ही समा जाती है ॥ ६० ॥ ॥ चौपाई ॥ जो अहकारवश वाद-विवाद करते है, वे कर्ता पुरुष उनसे दूर ही रहता है। वेद, कतेव आदि मे ईश्वर नही है, इस तथ्य को प्रत्येक व्यक्ति को मन मे जान लेना चाहिए ॥ ६१ ॥ आँखे मूँदकर यदि कोई पाखण्ड दिखाता है तो उसे अंधे का पद प्राप्त होता है। जिसे आँख वन्द करके रास्ते का तो पता लग नही पाता, वह उस अनन्त प्रभु को मात्र आँख बन्द करके कैसे प्राप्त कर सकता है ॥ ६२ ॥ और कोई कितने विस्तार से कहेगा, क्योकि उसके भेद को समझते-समझते जीव थक जाता है। यदि कई करोड़ जिह्वाएँ भी हो जायँ तव भी उसके गुणो को गिनने के लिए कम पड़ जायेंगी ॥ ६३ ॥ ॥ दोहा ॥ जव प्रभु की आज्ञा हुई तभी मैंने इस

संसार में जन्म धारण किया और अब मैं कथा को संक्षेप रूप में प्रस्तुत करता हूँ ।। ६४ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के आज्ञाकाल-यज्ञ-प्रवेशकरण नामक छठवे अध्याय की शुभ समाप्ति ।। ६ ।। अफजू ।। २७६ ।।

अथ कबि जनम कथनं ।।

।। चौपई ।। मुर पित पूरब कियसि पयाना । भाँति भाँति के तीरथि नाना । जब ही जात त्रिबेणी भए । पुंन दान दिन करत बितए ।। १ ।। तहीं प्रकाश हमारा भयो । पटना शहिर बिखै भव लयो । मद्र देस हमको ले आए । भाँति भाँति दाईअन दुलराए ।। २ ।। कीनी अनिक भाँति तन रच्छा । दीनी भाँति भाँति की सिच्छा । जब हम धरम करम मो आए । देवलोक तब पिता सिधाए ।। ३ ।। (मू०ग्रं०५६)

।। इति स्री बचित्र नाटक ग्रथ नाम सपतमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ।। ७ ।। अफजू ।। २८२ ।।

कवि के जन्म का कथन

।। चौपाई ।। मेरे पिता ने पूर्व दिशा की ओर प्रयाण किया और वहाँ भिन्न-भिन्न तीर्थो पर स्नान किया । जब वे त्रिवेणी (प्रयाग) गए तो वहाँ पुण्यदान करते हुए उन्होने कुछ दिन व्यतीत किए ।। १ ।। वही हमने मातृगर्भ मे प्रवेश किया तथा पटना शहर मे जन्म लिया । तदोपरान्त हमे मद्र देश (वर्तमान पजाब) मे ले आया गया जहाँ भाँति-भाँति की सेविकाओ ने दुलार-प्यार से हमारा पोषण किया ।। २ ।। हमारे शरीर की रक्षा अनेक भाँति से करके उसे पुष्ट किया गया तथा हमे भिन्न-भिन्न प्रकार की विद्याओ मे सुशिक्षित किया गया । जब हम धर्म-कर्म को समझने की स्थिति मे पहुँचे तो उसी समय हमारे पिता देवलोक को प्रयाण कर गये ।। ३ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के सातवे अध्याय की शुभ समाप्ति ।। ७ ।। अफजू ।। २८२ ।।

अथ राज साज कथनं ॥

॥ चौपई ॥ राज साज हम पर जब आयो। जथा-शकत तब धरम चलायो। भाँति भाँति बन खेल शिकारा। मारे रीछ रोझ झंखारा ॥ १ ॥ देस चाल हम ते पुनि भई। शहिर पावटा की सुधि लई। कालिंद्री तटि करे बिलासा। अनिक भाँत के पेखि तमासा ॥ २ ॥ तह के सिंघ घने चुनि मारे। रोझ रीछ बहु भाँति बिदारे। फ़तेशाह कोपा तबि राजा। लोह परा हम सों बिनु काजा ॥३॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तहा शाह स्री शाह संग्राम कोपे। पंचो बीर बंके प्रिथी पाइ रोपे। हठी जीत मल्ल सु गाजी गुलाबं। रणं देखीऐ रंग रूपं सहाबं ॥ ४ ॥ हठियो माहरी चंदयं गंगरामं। जिनै कित्तीयं जित्तीयं फौज तामं। कुपे लालचंदं कीए लाल रूपं। जिनै गंजीयं गरब सिंघं अनूपं ॥ ५ ॥ कुपिओ माहरू काहरू रूप धारे। जिनै खांन खावीनीयं खेत मारे। कुपिओ देवतेशं

राज-साज का कथन

॥ चौपाई ॥ जब हमारे ऊपर गुरु-गद्दी का बोझ पड़ा तब हमने यथाशक्ति धर्म का निर्वाह किया। भाँति-भाँति के खेलो के साथ वन मे शिकार किए और वहाँ रीछ, नीलगाय, बारहसिघे आदि मारे ॥ १ ॥ परिस्थितियो के अनुसार हम पर भी (तत्कालीन शासको का) आक्रोश हुआ और फलस्वरूप हम पावटा शहर मे आ गए। वहाँ अनेक भाँति के कौतुको को देखते हुए यमुना के तट पर ऐश्वर्यपूर्वक निवास किया ॥२॥ वहाँ के कई शेरो को चुनकर मारा तथा नीलगाय एव रीछो को नष्ट किया। फतेहशाह नामक राजा हमारे पर नाराज हुआ और बिना कारण ही हमसे झगड पड़ा ॥ ३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छद ॥ वहाँ सगोशाह भी सग्राम मे कुपित हो उठा और हमारे पाँचो वीर धरती पर पैर गडाकर खड़े हो गए। हठी जीतमल महान योद्धा था जिसका युद्ध देखकर रग-रूप निखर उठता था ॥ ४ ॥ गगाराम नाम का युद्धकला मे निपुण ऐसा व्यक्ति था, जिसने कितनी ही फौजो को जीता हुआ था। लालचन्द्र भी अनुपम रूप से लाल हो रहा था और उसने भी कई शेरो का गर्व चूर किया हुआ था ॥ ५ ॥ रण मे माहिर वह व्यक्ति प्रलय-रूप धारण कर क्रोधित हो उठा और उसने भी कई मुगलों को युद्धस्थल मे मार

दयाराम जुद्धं। कीयो द्रोण की जिउ महाँ जुद्ध सुद्धं॥ ६॥ क्रिपाल कोपीयं कुतको संभारी। हठी खानहयात के सीस भारी। उठी छिच्छि इच्छं कढा मेझ जोरं। मनो माखनं मट्टकी कान्ह फोरं॥ ७॥ तहाँ नंदचंदं कीयो कोपु भारो। लगाई बरच्छी क्रिपाणं संभारो। तुटी तेग त्रिक्खी कढे जम्म दड्ढं। हठी राखीयं लज्ज बंसं सनड्ढं॥ ८॥ तहाँ मातलेयं क्रिपालं करुद्धं। छकियो छोभ छत्री कर्‍यो जुद्ध सुद्धं। सहे देह आपं महाबीर बाणं। करो खान बानीन खाली पलाणं॥ ९॥ हठियो साहबं चंद खेतं खत्रियाणं। हने खान खूनी खुरासान भानं। तहाँ बीर बंके भली भाँति मारे। बचे प्रान लै कै सिपाही सिधारे॥ १०॥ तहाँ शाह संग्राम कीने अखारे। घने खेत मो खान खूनी लतारे। न्रिपं गोपलायं खरो खेत गाजै। म्रिगा झुंड मद्ध्यं मनो सिंघ राजै॥ ११॥ तहाँ एक बीरं हरीचंद कोप्यो। भली भाँति सो खेत मो पाव रोप्यो। महाँ क्रोध कै तीर तीखे प्रहारे।

दिया। ब्राह्मण दयाराम भी क्रोधित हो उठा और उसने भी द्रोणाचार्य की तरह भीषण युद्ध किया॥ ६॥ कृपालचन्द भी डडे को सँभालते हुए क्रोधित हो उठा और उसने हयात खाँ के सिर पर डडे का वार किया। हयात खाँ का भेजा इस प्रकार फूटकर बाहर निकल पड़ा जैसे कृष्ण ने मटकी को फोड़कर मक्खन निकाला हो॥ ७॥ वहाँ नन्दचन्द भी कुपित हो उठा और उसने भी कृपाण को सँभालते हुए बर्छी से वार किया। उसकी कृपाण शत्रु के शरीर मे ही टूट गई, परन्तु फिर भी उस हठी ने सनौढ वंश की लाज रख ली॥ ८॥ मामा कृपालचन्द भी क्रोधित हुए और इस क्षत्री ने भी क्रोध मे आकर भीषण युद्ध किया। अपनी देह पर तो इस महावीर ने वाणो के वार सहे, परन्तु मुगलो के घोड़ो को सवारो से रहित कर दिया॥ ९॥ हठी साहबचन्द ने भी युद्धक्षेत्र मे क्षत्रियों के समान युद्ध किया और कई खुरासान के भयकर मुगलो का हनन किया। वहाँ अनेक बाँके वीरो को मारा गया और जो बच गए उनको उनके सिपाही लेकर भाग निकले॥ १०॥ वही पर सगोशाह ने अखाड़ा मण्डित कर अनेक मुगलो को खून से लथपथ कर गिरा दिया। राजा गोपाल खेल मे खड़ा इस प्रकार गरज रहा था मानो मृगो के झुंड मे सिंह शोभायमान हो॥ ११॥ वहाँ एक वीर हरिचन्द था जो अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने भलीभाँति रणक्षेत्र मे अपने पैर जमाए रखा। महा

लगै जौनि के ताहि पारै पधारे ॥१२॥ ॥ रसावल छंद ॥ हरीचंद क्रुद्धं । हने सूर सुद्धं । (मू०ग्रं०६०) भले बाण बाहे । बडे सैन गाहे ॥ १३ ॥ रसं रुद्र राचे । महॉ लोह माचे । हने शसत्रधारी । लिटे भूप भारी ॥ १४ ॥ तबै जीत मल्लं । हरीचंद भल्लं । ह्रिदै ऐंच मार्यो । सु खेतं उतार्यो ॥ १५ ॥ लगे बीर बाणं । रिसियो तेजि माणं । समुह बाज डारे । सुवरगं सिधारे ॥१६॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ खुलै खान खूनी खुरासान खग्गं । परी शसत्र धारं उठी झाल अग्गं । भई तीर भीरं कमाण कड़क्के । गिरे बाज ताजी लगे धीर धक्के ॥ १७ ॥ बजी भेर भुंकार धुक्के नगारे । दुहू ओर ते बीर बंके बकारे । करे बाहु आघात शसत्रं प्रहारं । डकी डाकणी चॉवडी चीतकारं ॥ १८ ॥ ॥ दोहरा ॥ कहा लगे बरनन करौ मचियो जुद्धु अपार । जे लुज्झे जुज्झे सभै भज्जे सूर हजार ॥ १९ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छद ॥ भजियो शाह पाहाड़ ताजी त्रिपायं ।

क्रोधित होकर उसने तीरो के तीखे प्रहार किए और उसके तीर जिसको भी लगे वह ससार से कूच कर गया ॥ १२ ॥ ॥ रसावल छद ॥ हरिचन्द ने क्रुद्ध होकर शूरमाओ के समूहो का हनन किया । उसने तेज़ बाण चलाए और सेना का घोर मथन किया ॥ १३ ॥ रौद्र रस मे लीन वीरो ने भीषण युद्ध किया । अनेक शस्त्रधारी मारे गए और बड़े-बड़े राजा धराशायी हो गए ॥ १४ ॥ तभी जीतमल को योद्धा हरिचंद ने खीचकर बाण हृदय मे मारा और उसे धराशायी कर दिया ॥ १५ ॥ वीरो को बाण लगे और उनका तेज एव गर्व शान्त हुआ । घोडो के समूह गिर गए और स्वर्ग सिधार गए ॥ १६ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छद ॥ खूनी खुरासानी मुगलो के खड्ग म्यानो से निकल आए और शस्त्रो की धार की टकराहट से रणक्षेत्र झिलमिला उठा । तीरो की भीड़ लग गई और कमानो की कडकड़ाहट भी सुनाई देने लगी । धक्को से कई अश्व रणक्षेत्र मे खेत रहे ॥ १७ ॥ भेरियो की ध्वनि और नगाड़ो की धडधडाहट गूँज उठी । दोनो तरफ से बाँके वीर गर्जन करने लगे और भुजाओ से शस्त्र प्रहार करने लगे । युद्धस्थल मे चामुडा और डाकिनियो का चीत्कार सुनाई पड़ने लगा ॥ १८ ॥ ॥ दोहा ॥ भीषण सग्राम हुआ, इसका कहाँ तक वर्णन किया जाय । जो युद्धस्थल मे डटे रहे वे सब जूझ गए परन्तु हजारो सिपाही भाग (भी) गए ॥ १९ ॥ ॥ भुजग प्रयात छद ॥ (फतह) शाह घोडे पर सवार हो पहाड़ो की ओर भाग निकला । उस वीर ने तो कोई तीर भी नही चलाया । ढढ़वाल का मधुकर

चलियो बीरीया तीरीया ना चलायं। जसो डड्ढवालं मधुक्कर सु साहं। भजे संगि लैकै सु सारी सिपाहं ॥ २० ॥ चक्रत चौपियो चंद गाजी चंदेलं। हठी हरीचंदं गहे हाथ सेलं। करियो सुआमि धरमं महा रोस रज्झियं। गिरियो टूक टूक ह्वै इसो सूर जुज्झियं ॥ २१ ॥ तहाँ खान नैजाबतै आन कै कै। हनिओ शाह संग्राम को शसत्र लै कै। कितै खान बानीनहूँ असत्र झारे। सही शाह संग्राम सुरगं सिधारे ॥ २२ ॥ ॥ दोहरा ॥ मारि नजाबत खान कौ संगो जुझे जुझार। हा हा इह लोकै भइओ सुरग लोक जैकार ॥ २३ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ लखे शाह संग्राम जुज्झे जुझारं। तवं कीट बाणं कमाणं संभारं। हनियो एक खानं खिआलं खतंगं। डसियो सत्रु को जानु स्यामं भुजंगं ॥ २४ ॥ गिरियो भूम सो बाण दूजो संभार्यो। मुखं भीखनं खान के तान मार्यो। भजियो खान खूनी रहियो खेत ताजी। तजे प्राण तीजे लगे बाण बाजी ॥ २५ ॥ छुटी मूरछना हरीचंदं संभारे। गहे

शाह तथा जसवाल का राजा भी सारे सिपाहियो को साथ लेकर भाग खड़ा हुआ ॥ २० ॥ हठी हरिचन्द ने हाथ मे भाला पकडते हुए चंद्रवशी चदेलो और गाजियो को भागने से रोका और अपने सेनापति होने के कर्तव्य का निर्वाह किया। इस शूरवीर से जो भी भिडा दो टुकड़े होकर गिर पड़ा ॥ २१ ॥ वही पर नजाबत खाँ ने आकर सग्राम शाह को शस्त्रो से मार दिया। इस खान ने बाणों और अन्य अस्त्रो से कितनो ही को मार दिया। सग्राम शाह भी इसी के हाथो स्वर्ग को सिधार गए ॥ २२ ॥ ॥ दोहा ॥ सगोशाह ने नजाबत खाँ को मार दिया और स्वय भी खेत रहे। उनके मरने से इस लोक मे तो हाहाकार मच गया, परन्तु स्वर्ग मे जय-जयकार होने लगी ॥ २३ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ संग्राम शाह को रण मे मरते देखकर तुम्हारे इस कीट ने भी कमान को सँभाला और अपने तीर से एक खान का हनन किया। मेरा बाण शत्रु को ऐसा लगा मानो उसे काले नाग ने डस लिया हो ॥ २४ ॥ वह जब तक भूमि पर गिरा तब तक मैने दूसरा बाण सँभाला और उसे भीखन खान के मुँह पर तानकर मारा। भीखन खान तो भाग गया परन्तु उसका घोडा वही खेत रहा। तीसरे बाण से एक अन्य ने अपने प्राण तजे ॥ २५ ॥ हरिचन्द की अब मूर्च्छा टूटी और उसने बाण पकड़कर खीच-खीचकर मारने शुरू कर दिये। उसके बाण

बाण कामाण भे ऐच मारे। लगे अंग जाके रहे ना संभारं। तनं त्यागते देवलोकं पधारं ॥ २६ ॥ दुयं बाण खैंचे इकं बार मारे। बली बीर बाजीन ताजी (मू०ग्रं०६१) बिदारे। जिसै बान लागै रहै न सभारं। तनं बेधिकै ताहि पारं सिधारं ॥ २७ ॥ सभै स्वाम धरमं सु बीरं संभारे। डकी डाकणी भूत प्रेलं बकारे। हसै बीर बैताल औ सुद्ध सिद्धं। चवी चावडीयं उडी ग्रिद्ध ब्रिद्धं ॥ २८ ॥ हरीचंद कोपे कमाणं संभारं। प्रथम बाजीयं ताण बाणं प्रहारं। दुतिय ताक कै तीर मो कौ चलायं। रखिओ दईव मैं कान छ्वैकै सिधायं ॥ २९ ॥ व्रितिय बाण मार्यो सु पेटी मझारं। बिधिअं चिलकतं दुआल पारं पधारं। चुभी चिंच चरमं कछु घाइ न आयं। कल केवलं जान दासं बचायं ॥ ३० ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जबै बाण लाग्यो। तबै रोस जाग्यो। करं लै कमाणं। हनं बाण ताणं ॥ ३१ ॥ सभै बीर धाए। सरोघं चलाए। तबै ताकि बाणं। हन्यो एक जुआणं ॥३२॥

जिसके अग को भी लगते वह सँभल न पाता और तन त्यागकर देवलोक सिधार जाता ॥ २६ ॥ वह वीर दो-दो तीरो को खीचकर एक बार मे मार रहा था और उस वीर ने घोड़ो को नष्ट कर दिया। जिसे भी उसके बाण लगते थे, उससे सँभलते नही थे और तन को चीरकर पार निकल जाते थे ॥ २७ ॥ सभी वीरो ने अपने-अपने स्वामिधर्म को निबाहा (और डटकर युद्ध किया)। युद्धस्थल मे डाकिनियाँ, भूत-प्रेत चिल्ला रहे थे और बैताल झुडो मे हँस-हँसकर घूम रहे थे। गिद्ध उड़ रहे थे, चीलो की ध्वनि भी सुनाई दे रही थी ॥२८॥ हरिचन्द ने कुपित होकर धनुष को सँभाला और पहला बाण उसने घोडे को निशाना लगाकर मारा। दूसरा तीर उसने मेरी ओर निशाना लगाकर चलाया। मेरी रक्षा परमात्मा ने की और वह तीर मेरे कान को छूता हुआ निकल गया ॥ २९ ॥ तीसरा बाण उसने मारा जो मेरी पेटी (चमडे का कमर-बंद) मे लगा और उसे काटता हुआ अदर धँस गया। उसकी नोक मेरे शरीर मे चुभी परन्तु कोई घाव-विशेष नही हुआ। उस काल-रूप प्रभु ने इस सेवक के प्राण बचाए ॥ ३० ॥ ॥ रसावल छद ॥ जैसे ही बाण की नोक मुझे चुभी वैसे ही मेरा क्रोध जाग्रत् हो उठा। मैने हाथ मे धनुष लेकर तानकर बाण मारा ॥ ३१ ॥ उधर सभी वीरो मे भाग-दौड़ मची हुई थी और उनके शस्त्र चल रहे थे। इसी बीच मैने वह

हरीचंद मारे। सु जोधा लतारे। सु कारोड़ रायं। वहै काल घायं॥ ३३॥ रणं त्यागि भागे। सभै त्रास पागे। भई जीत मेरी। क्रिपा काल केरी॥ ३४॥ रणं जीति आए। जयं गीत गाए। धनंधार बरखे। सभै सूर हरखे॥ ३५॥ ॥ दोहरा॥ जुद्ध जीत आए जबै टिकै न तिन पुर पाव। काहलूर मै बाँधियो आन अनंदपुर गाव॥ ३६॥ जे जे नर तह ना भिरे दीने नगर निकार। जे तिह ठउर भले भिरे तिनै करी प्रतिपार॥ ३७॥ ॥ चउपई॥ बहुत दिवस इह भाँति बिताए। संत उबार दुशट सभ घाए। टाँग टाँग करि हने निदाना। कूकर जिमि तिन तजे पराना॥ ३८॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे भगाणी जुद्ध बरनन नाम अशटमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु॥ ८॥ अफजू॥ ३२०॥

तीर मारा, जिससे एक बलवान (हरिचन्द) मारा गया॥३२॥ हरिचन्द को मारकर अन्य योद्धाओ को भी दलित किया। वही करोडीराय भी काल द्वारा मार डाला गया॥ ३३॥ यह देखकर सब युद्ध को त्यागकर भाग निकले और सभी (अपने मुखिया राजाओ को मरा देखकर) भयभीत हो उठे। हे कालस्वरूप प्रभु! तेरी कृपा से मेरी जीत हुई॥ ३४॥ हम लोग रण को जीतकर आए और चारो ओर जय के गीत गाए जाने लगे। उसके बाद धन की वर्षा की गई अर्थात् शूरवीरों को पुरस्कृत किया गया, जिससे सभी शूरवीर अत्यत प्रसन्न हुए॥ ३५॥ ॥ दोहा॥ जो लोग मेरे साथ युद्ध जीतकर आए, उनके अब खुशी के कारण पाँव धरती पर न पढ़ते थे। वहाँ से आकर मैंने आनन्दपुर गाँव को भी कहलूर किले (पहाड़ी राजा भीमचद की राजधानी) के समान विस्तृत एव दृढ किया॥ ३६॥ जिन लोगो ने वहाँ लडाई मे भाग नही लिया उन्हे अब नगर छोड़ देने को (तथा अन्यत्र बस जाने को) कहा गया (क्योकि अब यह समझा गया कि ये लड़ाइयाँ तो किसी न किसी रूप मे चलती ही रहेगी अत: जो अपनी अधिक सुरक्षा चाहते हैं वे अन्यत्र चले जायँ)। जिन लोगो ने युद्ध मे भाग लिया उनको (अस्त्र-शस्त्र, धन-धान्य देकर) और अधिक दृढ़ किया गया॥ ३७॥ ॥ चौपाई॥ इस प्रकार बहुत से दिन व्यतीत हुए। साधुवृत्ति वालों की रक्षा की गई और अत्याचारियो का नाश किया गया। दुष्टो को चुन-चुनकर मारा और परपीड़क कुत्ते की मौत मारे गए॥ ३८॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रथ के भगाणी-युद्ध-वर्णन नाम्क आठवे अध्याय की शुभ समाप्ति॥ ८॥ अफजू॥ ३२०॥

अथ नदौण का जुद्ध बरननं ॥

॥ चौपई ॥ बहुत कालि इह भाँति बितायो । मीआखान जंमू कह आयो । अलफखान नादौण पठावा । भीमाचंद तन बैर बढावा ॥ १ ॥ जुद्ध काज न्रिप हमै बुलायो । आपि तवन की ओर सिधायो । तिन कठगढ़ नवरस पर बाँधो । तीर तुफंग नरेशन (मू०ग्रं०६२) साँधो ॥२॥ ॥ भुजंग छंद ॥ तहा राज सिंघं बली भीमचंद । चड़िओ रामसिंघ महाँ तेजवंदं । सुखंदेव गाजी जसारोट राजं । चड़े क्रुद्ध कीने करे सरब काजं ॥ ३ ॥ प्रिथीचंद चड़िओ डढे डढवारं । चले सिध ह्वै काज राजं सुधारं । करी ढूक ढोअं किरपालचंदं । हटाए सभै मारि कै बीर ब्रिंदं ॥ ४ ॥ दुतिय ढोअ ढूकै वहै मारि उतारी । खरे दाँत पीसै छुभै छत्रधारी । उतै वै खरे बीर बंबै बजावै । तरे भूप ठाँढे बडो सो कुपावै ॥ ५ ॥ तबै

नदौण-युद्ध का वर्णन

॥ चौपाई ॥ इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हुआ । मीआँखान जम्मू के सूबेदार से कह आया कि अलिफ खाँ को (सेना देकर) नादौण भेजा जाय, क्योकि वहाँ का राजा भीमचद हमारे प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार कर रहा है ॥१॥ राजा (भीमचद) ने युद्ध मे सहायता करने के लिए हमे बुलाया और स्वय अलिफ खाँ की तरफ युद्ध के लिए बढा । इन लोगो ने एक ऊँचे टीले पर किलेबदी की और सभी (पहाडी) राजाओ ने तीर-तलवारे सँभाल ली तथा निशाना साध लिया ॥२॥ ॥ भुजग छद ॥ वहाँ राजसिंह और बली भीमचद थे । रामसिंह भी महान् तेजवान था, उसने भी चढाई कर दी । जसरोट का राजा सुखदेव भी महान् शूरमा था । ये सब राजा पूरी तैयारी के साथ युद्ध के लिए चढ आए ॥ ३ ॥ पृथ्वीचद भी दृढ होकर और राज-काज को सुधार करके चढाई करने के लिए चड पडे । कृपालचद ने भी साथ दिया और यह वीर ऐसा था जिसने कई वीरवृन्दो का सफाया किया हुआ था ॥ ४ ॥ जो कोई दूसरा सामने आता उसे ये सब मार सकने मे समर्थ राजागण क्षुब्ध होकर दाँत पीस रहे थे । पहाड़ो की ऊपरी चट्टानो पर खड़े उधर ये वीर गरज रहे थे इधर तराई मे खड़े वीर भी क्रोधित हो रहे थे ॥ ५ ॥ तभी भीमचंद ने स्वय क्रोध मे आकर

भीमचंदं कीयो कोप आप । हनूमान के मंत्र को मुख जापं । सभै बीर बोले हमै भी बुलाय । तबै ढोअ कै कै सु नीके सिधायं ॥ ६ ॥ सभै कोप कै कै महॉबीर ढूके । चले बारिबे बारको जिउ भभूके । तहॉ बिझुड़िआलं हठियो बीर द्यालं । उठियो सैन लै संगि सारी क्रिपालं ॥ ७ ॥ ॥ मधुभार छंद ॥ कुप्पिओ क्रिपाल । नच्चे मराल । बज्जे बजंत । क्रूरं अनंत ॥ ८ ॥ जुज्झंत जुआण । बाहै क्रिपाण । जीअ धारि क्रोध । छड्डे सरोध ॥ ६ ॥ लुज्झै निदाण । तज्जंत प्राण । गिर परत भूम । जणु मेघ झूम ॥ १० ॥

रसावल छंद ॥

क्रिपाल कोप्यं । हठी पाव रोप्यं । सरोघं चलाए । बडे बीर घाए ॥ ११ ॥ हणे छत्रधारी । लिटे भूप भारी । महॉ नाद बाजे । भले सूर गाजे ॥ १२ ॥ क्रिपालं करुद्धं । कीयो जुद्ध सुद्धं । महॉबीर गज्जे । महॉ सार बज्जे ॥ १३ ॥ करियो जुद्ध चंडं । सुणियो नाव खंडं । चलियो शसत्र बाही ।

हनुमान-चालीसा का मुख मे जाप किया । सभी वीरो ने कहा कि हमे भी आप आवश्यकता पड़ने पर आगे बुला लीजिएगा । तब सभी पास हो-होकर आगे की तरफ वढने लगे ॥ ६ ॥ सभी महावीर क्रोधित होकर इस तरह चले मानो खेत की वाढ को जलाने के लिए चिगारियाँ चली । वही पर विझुडवाल का हठी राजा दयालचन्द और कृपालचद भी सारी सेना के साथ खडे थे ॥ ७ ॥ ॥ मधुभार छद ॥ कृपालचन्द क्रोधित हो उठा, घोड़े नाच उठे, रणवाद्य बज उठे और अनन्त क्रूरता दृष्टिगत होने लगी ॥ ८ ॥ जवान जूझने लगे, कृपाणे चलाने लगे और हृदय मे क्रोधित होकर वाण-वर्षा करने लगे ॥ ९ ॥ युद्ध के लिए जूझने लगे और प्राण त्याग करने लगे । भूमि पर इस प्रकार गिरने लगे मानो बादल झूम रहे हो ॥ १० ॥

॥ रसावल छद ॥ कृपालचन्द ने क्रोधित होकर युद्धस्थल मे पैर जमाये, वाण-वर्षा की तथा बडे-बडे वीरो को घायल किया ॥ ११ ॥ छत्रधारियो का हनन किया और बड़े-बड़े राजाओ को धराशायी किया । भयकर ध्वनि हो रही थी और शूरमा गरज रहे थे ॥ १२ ॥ कृपालचन्द ने क्रुद्ध होकर भयंकर युद्ध किया । महावीर गरजने लगे और रणस्थल मे लोहा वजने लगा ॥ १३ ॥ ऐसा प्रचण्ड युद्ध हुआ जिसकी ध्वनि

रजौती निबाही ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ कोप भरे राजा सभै कीनो जुद्ध उपाइ। सैन कटोचन की तबै घेर लई अरराइ ॥ १५ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ चले नांगलू पांगलू वेदड़ोलं। जसवारे गुलेरे चले बांध टोलं। तहाँ एक बाजियो महाँबीर द्यालं। रखी लाज जौनै सभै बिझड़वालं ॥ १६ ॥ तबं कोट तीलौ तुफंग संभारो। ह्रिदे एक रावंत के तकि मारो। गिरियो झूम भूमै करियो जुद्ध सुद्ध। तऊ मारि बोलियो महाँ मानि क्रुद्धं ॥ १७ ॥ तजियो (मू॰ग्रं॰६३) तुपकं बान पानं संभारे। चतुर बानयं लै सु सब्बियं प्रहारे। त्रियो बाण लै बाम पाण चलाए। लगे या लगे ना कछू जानि पाए ॥१८॥ सु तउ लउ दईव जुद्ध कीनो उझारं। तिनै खेद कै बारि के बीच डारं। परी मार बुंगं छुटी बाण गोली। मनो सूर बैठे भली खेल होली ॥ १९ ॥ गिरे बीर भूमं सरं सांग पेलं। रंगे स्रोण बस्त्रं मनो फाग खेलं। लीयो जीति बैरी कीया आन डेरं। तेऊ जाइ पारं रहे बारि केरं ॥ २० ॥ भई रात्र गुबार

नवखण्ड (पूरी पृथ्वी) पर सुनी गई। शस्त्रो को चलाकर राजपूतो ने अपनी शान का निर्वाह किया ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ राजाओ ने क्रोधित होकर व्यूह-रचना की, तभी कृपालचन्द की सेना को मुगलो की सेना ने घेर लिया ॥ १५ ॥ ॥ भुजग छद ॥ नगल, पांगी प्रदेश के निवासी, वेदडोल, जसवार एव गुलेर के निवासी सभी झुण्ड बाँधकर आगे बढ़े। वही पर महावीर दयालचन्द गरजा और उसने सभी बिझड़वालो की लाज रख ली ॥ १६ ॥ तुम्हारे इस सेवक ने भी तब तक तुफग (छोटी बंदूक) सँभाली और निशाना साधकर एक राजा के सीने मे मारा। वह झूमकर भूमि पर गिर पडा और उसने भी भीषण युद्ध किया। उसको मारकर मै भी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा ॥ १७ ॥ बदूक को छोडकर मैंने बाण हाथ मे लिये और चार बाणो से इकट्ठा प्रहार किया। तीन बाण बाये हाथ से चलाये और वे लगे या नही लगे कुछ पता नही चल सका ॥ १८ ॥ तब तक दैवयोग से युद्ध बन्द हो गया और शत्रुसेना को खदेड़ दिया गया। टीलो पर से बाण एव गोलियो की बौछार इस प्रकार होती रही मानो शूरवीर लोग भली प्रकार से होली खेल रहे हो ॥ १९ ॥ तीर-तलवार के घाव खाते हुए शूरमा भूमि पर गिरे और उनके वस्त्र इस प्रकार खून से रँगे हुए थे मानो सबने फाग खेला हो। शत्रु को जीतकर हम सब अपने डेरो मे आ गए और वे लोग (शत्रु) भी

के अरध जामं। तबै छोरिगे बार देवै दमामं। सभै रात्रि बीती उदियो दिउसराणं। चले बीर चालाक खग्गं खिलाणं॥ २१॥ भज्यो अलफखानं न खाना संभार्यो। भजे और बीरं न धीरं बिचार्यो। नदी पै दिनं अशट कीने मुकामं। भली भाँति देखे सभै राज धामं॥ २२॥ ॥ चौपई॥ इत हम होइ बिदा घरि आए। सुलह नमित वै उतहि सिधाए। संधि इनै उनकै संगि कई। हेत कथा पूरन इत भई॥ २३॥ ॥ दोहरा॥ आलसून कह मारिकै इह दिसि दियो पियान। भाँति अनेकन के करे पुर अनंद सुख आन॥ २४॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे नदौन जुद्ध बरननं नामु नौमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु॥ ९॥ अफजू॥ ३४४॥

चौपई॥

बहुत बरख इह भाँति बिताए। चुनि चुनि चोर सभै गहि घाए। केतकि भाजि शहिर ते गए। भूख मरत फिरि

नदी पार जाकर ठहर गए॥ २०॥ रात्रि के अंधकार मे सुबह की तैयारी के लिए नगारे आदि बजाने का प्रबध होने लगा। रात्रि बीतने पर सूर्य उदित हुआ और चतुर वीर तलवार का खेल खेलने के लिए चल दिए॥ २१॥ अलिफ ख़ान रसद-सामग्री छोड़कर भाग खडा हुआ तथा उसके सिपाही भी धैर्य छोड़कर भाग गए। नदी पर आठ दिन तक हमने निवास किया और भली प्रकार से राजाओ के महल आदि देखे॥२२॥ ॥ चौपाई॥ इधर हम विदा होकर अपने घर (आनन्दपुर) आये, उधर वे राजागण मुगलो से सन्धि करने के लिए उनकी तरफ चले गए। इन राजाओ ने मुगलो के साथ सन्धि कर ली और इस प्रकार यह सहायता की कथा संपूर्ण होती है॥ २३॥ ॥ दोहा॥ आलसून नामक ग्राम को विजय करके मैंने इस दिशा की ओर प्रयाण किया और आनन्दपुर मे आकर अनेक प्रकार के सुखो का उपयोग किया॥ २४॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के नदौण-युद्ध-वर्णन नामक नवे अध्याय की शुभ समाप्ति॥ ९॥ अफजू॥ ३४४॥

॥ चौपाई॥ बहुत वर्ष इसी भाँति बीत गए और इसी अवधि मे हमने चोरो-चोरो को पकड़-पकडकर मारा। बहुत से चोर तो शहर

आवत भए ।। १ ।। तब लौ खान दिलावर आए । पूत अपन हम ओर पठाए । द्वैकु घरी बीती निसि जबै । चड़त करी खानन मिलि तबै ।। २ ।। जब दल पार नदी के आयो । आन आलमै हमै जगायो । शोरु परा सभ ही नर जागे । गहि गहि शसत्र बीर रिस पागे ।। ३ ।। छूटन लगी तुफंगै तब ही । गहि गहि शसत्र रिसाने सभ ही । क्रूर भाँति तिन करी पुकारा । शोरु सुना सरता के पारा ।। ४ ।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। बजी भेर भुंकार धुंके नगारे । महाँबीर बानैत बंके बकारे । (मू०ग्रं०६४) भए बाहु आघात नच्चे मरालं । क्रिपा सिंधु काली गरज्जी करालं ।। ५ ।। नदीयं लखियो काल रात्रं समानं । करे सूरमा सीत पिंगं प्रमानं । इते बीर गज्जे भए नाद भारे । भजे खान खूनी बिना शसत्र झारे ।। ६ ।। ।। नराज छंद ।। निलज्ज खान भज्जियो । किनी न शसत्र सज्जियो । सु त्याग खेत कौ चले । सु बीर बीरहा भले ।।७।। चले तुरे तुराइकै । सके न शसत्र उठाइकै । न लै हथिआर

छोड गए परन्तु जब भूखे मरने लगे तो वापस आ गए ।। १ ।। तब तक दिलावर खाँ ने अपना पुत्र हमारी ओर भेज दिया । जब दो घडी के लगभग रात बीती तो इन खानो ने मिलकर चढ़ाई की ।। २ ।। जब दल नदी पार कर गया तो आलमशाह ने हमे जगाया । शोर को सुनकर सब लोग जग गए और वीरगण क्रोधित होकर शस्त्रो को हाथ मे लेकर आगे बढे ।। ३ ।। उसी समय छोटी तोपनुमा बदूके छूटने लगी और हाथो मे शस्त्र लिये योद्धागण क्रोधित होने लगे । वीर के आक्रोशपूर्ण स्वर सरिता के पार सुनाई पड़ने लगे ।। ४ ।। ।। भुजंग प्रयात छद ।। भेरी की ध्वनि और नगाडो की गडगडाहट वज उठी तथा बाँके महावीर जगली पशुओ की तरह दहाडने लग । बाजूओ पर आघात पड़ने लगे और अश्व नाच उठे तथा रणदेवी काली गरज उठी ।। ५ ।। नदी भी कालरात्रि के समान प्रतीत होने लगी, क्योकि नदी के शीत जल ने शूरवीरो के अगों को निर्जीव-सा कर दिया । जब इधर से वीर गरजे और भयकर नाद होने लगा तो उधर के खूनी खानजादे बिना शस्त्र चलाए ही भाग खड़े हुए ।। ६ ।। ।। नराज छद ।। खान निर्लज्जतापूर्वक भाग खडा हुआ और किसी ने शस्त्र को धारण नही किया । कई वीरवर रणक्षेत्र को त्यागकर भाग गए ।। ७ ।। घोड़ो को दौडाकर भाग गए और शस्त्र भी नही उठा सके । वे ऐसे वीर थे जो अब कभी भी शस्त्र उठाकर

गज्जही । निहार नारि लज्जही ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ बरवा गॉउ उजार कै करे मुकाम भलान । प्रभ बल हमै न छुइ सकै भाजत भए निदान ॥ ९ ॥ तव बल ईहॉ न पर सकै बरवा हना रिसाइ । सालिन रस जिम बानीयो रोरन खात बनाइ ॥ १० ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे खानजादे को आगमन त्रासित उठि जैबो बरननं नाम दसमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ १० ॥ अफजू ॥ ३५४ ॥

हुसैनी जुद्ध कथनं ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ गयो खानजादा पिता पास भज्जं । सकै ज्वाबु दै ना हने सूर लज्जं । तहा ठोक बाहॉ हुसैनी गरज्जिय । सभै सूर लै कै सिला साज सज्जियं ॥ १ ॥ करियो जोर सैनं हुसैनी पयानं । प्रथम कूटिकै लूट लीने अवानं । पुरनि डड्ढवालं कीयो जीत जेरं । करे बंदि कै राज

गरजेगे नही, प्रत्युत नारियों को भी देखकर लजा जायेंगे ॥ ८ ॥ ॥ दोहा ॥ भागते समय मुगल सेनाओ ने बरवा नामक ग्राम को उजाड़ दिया परन्तु ईश्वर की कृपा से हमको वे छू भी न सके और भाग गए ॥९॥ हे ईश्वर ! तेरी कृपा से यहाँ तो वे कुछ कर नही सके, परन्तु क्रोध मे आकर उन्होने बरवा ग्राम पर ही अपना क्रोध शान्त किया और यह ऐसे ही हुआ जैसे एक बणिक पुत्र, जो मांसाहारी नही है परन्तु मांस के रस का अनुभव किसी सब्ज़ी को खाकर उसके रस से करता है एव अपनी कामना को तृप्त हुआ मानता है ॥ १० ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ मे खानज़ादे के आगमन और त्रसित होकर भाग जाने के वर्णन नामक दसवे अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ १० ॥ अफजू ॥ ३५४ ॥

हुसैनी-युद्ध-कथन

॥ भुजग प्रयात छंद ॥ जब खानज़ादा भागकर पिता के पास गया तो वहाँ सेना के नाश और भागने का कोई उत्तर न दे सका । वहाँ भुजाओ को ठोकता हुआ हुसैनी गरजा और उसने शूरमाओ को लेकर सेना को सुसज्जित किया ॥ १ ॥ हुसैनी ने प्रयाण किया और उसकी सेना ने अपना बाहुबल दिखाना प्रारम्भ कर दिया । पहले तो उसने आम आबादियो को लूटा और फिर डढवाल के राजा को परास्त कर झुका दिया

पुत्रान चेरं ॥ २ ॥ पुनरि दून को लूट लानो सुधारं । कोई सामुहे ह्वै सक्यिो न गवार । लीयो छीन अंनं दलं बाँटि दीयं । महाँ मूड़ियं कुतसतं काज कीयं ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ कितक दिवस बीतत भए करत उसै उतपात । गुआलेरीयन की परत भी आन मिलन की बात ॥ ४ ॥ जौ दिन दुइक न वे मिलत तब आवत अरराइ । कालि तिनू के घर बिखै डारी कलह बनाइ ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ गुआलेरीया मिलन कह आए । रामसिंघ भी संगि सिधाए । चतरथ आन मिलत भए जामं । फूटि गई लखि नजरि गुलामं ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ जैसे रवि के तेज ते रेत अधिक तपताइ । रवि बल छद्र न जानई आपन ही गरबाइ (मू०ग्रं०६५) ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ तैसे ही फूल गुलाम जाति भयो । तिनै न द्रिशट तरे आनत भयो । कहलूरीया कटौच संगि लहि । जाना आन न मो सरि महि महि ॥ ८ ॥ तिन जो धन आनो थो साथा । ते दे रहे हुसैनी हाथा । देत लेत आपन कुरराने । ते धनि लै निजि

और कई राजपूतो को बंदी बना लिया ॥ २ ॥ पुनः उसने दून के क्षेत्र को लूट लिया और कोई भी मूर्ख उसके सामने टिक न सका । उसने अन्न आदि छीनकर अपने दल मे बाँट दिया तथा इस महामूढ ने अत्यन्त कुत्सित कार्य किया ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार उत्पात मचाते उसे काफी दिन बीत गए और इधर गुलेरियो के हमसे आ मिलने की बात सुनाई देने लगी ॥ ४ ॥ यदि दो दिन तक वे न आ मिलते तो शत्रु चढाई कर देता, परन्तु दैवयोग से उनके घर मे भी कलह प्रारम्भ हो गई थी ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब गुलेरिए मिलने के लिए आए तो (गुलेर के राजा गोपाल के साथ) रामसिह भी साथ आ गया । चतुरथ भी रात को आ मिला, जिसे देखकर गुलाम हुसैनी को बहुत बुरा लगा ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ जिस प्रकार सूर्य के तेज से रेत गर्म होती है और सूर्य की शक्ति को न पहचानती हुई अपने तेज और गर्मी पर गर्व करती है ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ वैसे ही वह गुलाम (हुसैनी) अपनी शक्ति को देखकर फूला नही समा रहा था तथा अपने साथ पहाड़ी राजाओ के बल को नजरअदाज कर रहा था । कहलूर के राजा (भीमचद) और कटोच (कृपालचद) राजा को साथ लेकर वह समझ रहा था कि मेरे समान धरती पर कोई नही है ॥ ८ ॥ गोपाल भी हुसैनी से मिलने गया तथा जो धन अपने साथ लाया था उसे हुसैनी को सौप दिया । इसी

धाम सिधाने ।। ९ ।। चेरो तबै तेज तन तयो । भला बुरा कछु लखत न भयो । छंद बंद नह नैकु बिचारा । जात भयो दे तबहि नगारा ।। १० ।। दाव घाव तिन नैकु न करा । सिघहि घेरि ससा कहु डरा । पंद्रह पहरि गिरद तिह कीयो । खान पान तिन जान न दीयो ।। ११ ।। खान पान बिनु सूर रिसाए । साम करन हित दूत पठाए । दास निरख संगि सैन पठानी । फूलि गयो तिन की नही मानी ।। १२ ।। दस सहंस्र अबही कै देहू । नातर मीच मूँड पर लैहू । सिघ संगतीया तहा पठाए । गोपालै सु धरमु दे ल्याए ।।१३।। तिन के संगि न उनकी बनी । तब क्रिपाल चित मो इह गनी । ऐसि घाति फिरि हाथ न ऐहै । सभहूँ फेरि समो छलि जैहै ।। १४ ।। गोपालै सु अबै गहि लीजै । कैद कीजीऐ कै बध कीजै । तनक भनक जब तिन सुन पाई । निज दल जात भयो भटराई ।। १५ ।।

लेन-देन मे वे आपस मे झगड़ने लगे और इधर हुसैनी के सरदार से धन लेकर गोपालचन्द अपने घर को चल दिया ।। ९ ।। जब गुलाम (हुसैनी) को पता लगा तो वह बहुत तमतमाया और उसे भले-बुरे की पहचान भूल गई । उसने राजनीति का भी तनिक विचार नही किया तथा नगाड़ो पर चोट देता हुआ गोपालचन्द की ओर बढ चला ।।१०।। गोपाल ने तो कोई छल-कपट नही किया था (परन्तु फिर भी उसके किले को घेर लिया गया), फिर भी खरगोशों के झुड से घिरा देखकर शेर कही डरता है । पन्द्रह प्रहर तक उसने किले को घेरे रहा और खान-पान की सामग्री अंदर नही जाने दी ।। ११ ।। खाद्य-सामग्री के अभाव मे वीर शिथिल होने लगे तो गोपालचद ने सधि-प्रस्ताव के साथ दूत हुसैनी के पास भेजे । गुलाम हुसैनी अपने साथ (अन्य पहाडी राजाओ तथा) पठानो की सेना देखकर फूला नही समा रहा था, उसने गोपालचद के पक्ष की एक भी बात नही मानी ।। १२ ।। उसने (गर्व के साथ) यह कहा कि दस हज़ार रुपया अभी दो अन्यथा मौत को स्वीकार करो । (तब पहाड़ी राजाओ ने) हमारी सगत का एक सिक्ख भेजा जो राजा गोपालचन्द को ले आया ।। १३ ।। उसकी (गोपालचन्द की) उसके (हुसैनी के) साथ बातचीत सफल नही हो सकी । यह देखकर कृपालचन्द ने चित्त में यह सोचा कि ऐसा अवसर फिर हाथ नही आयेगा और मिले हुए समय का यदि लाभ न उठाया गया तो हम सब हाथ मलते रह जायेगे ।। १४ ।। गोपालचन्द को अभी पकडकर कैद कर लिया जाय या उसका वध कर दिया जाय । इस बात की भनक जब राजा गोपाल को लगी तो वह

।। मधुभार छंद ।। जब ग्यो गुपाल । कुप्यो क्रिपाल । हिंमत हुसैन । जुंमै लुझैन ।। १६ ।। करिकै गुमान । जुंमै जुआन । बज्जे तबल्ल । दुंदभ दबल्ल ।। १७ ।। बज्जे निशाण । नच्चे किकाण । बाहै तड़ाक । उट्ठै कड़ाक ।। १८ ।। बज्जे निशंग । गज्जे निहंग । छुट्टै क्रिपान । लिट्टै जुआन ।।१९।। तुप्पक तड़ाक । कैबर कड़ाक । सैहथी सड़ाक । छोही छड़ाक ।। २० ।। गज्जे सु बीर । बज्जे गहीर । बिचरे निहंग । जैसे पिलंग ।। २१ ।। हुक्के किकाण । धुक्के निशाण । बाहै तड़ाक । झल्लै झड़ाक ।। २२ ।। जुज्झे निहंग । लिट्टे मलंग । खुल्ले किसार । जनु जटा धार ।। २३ ।। सज्जे रंजिद्र । गज्जे गजिंद्र । उत्तरि खान । लै लै (मू०ग्रं०६६) कमान ।। २४ ।। ।। त्रिभंगी छंद ।। कुपियो किरपालं सज्जि मरालं बाह बिसालं धरि ढालं । धाए सभ सूरं रूप करूरं चमकत नूरं मुखि लालं । लै लै सु क्रिपानं बान

अपने दल मे जा मिला ।। १५ ।। ।। मधुभार छंद ।। जब गोपाल गया तो कृपालचन्द बहुत क्रोधित हुआ तथा हुसैनी खॉ की ओर से हिम्मत बाँध कर लड़ने के लिए चल पडा ।। १६ ।। अहकारवश शूरवीर चल पड़े । दुन्दुभियाँ और नगाडे बज उठे ।। १७ ।। नगाडे बजते है, घोड़े नाचते है, गोलियाँ तडातड चल रही है और शस्त्रो की खड़खड़ाहट गूँज रही है ।। १८ ।। जग मे नि शक होकर शूरमा गरज रहे है, कृपाणे हाथो से छूट रही है और शूरवीर मर रहे हैं ।। १९ ।। तोपो और बन्दूको की तड़तड़ बोली सुनाई पड रही है, तीर कड़क रहे है, बर्छियो और गड़ासो की सायँ-सायँ गूंजने लगी ।। २० ।। शूरवीर गरज रहे है और गम्भीर नगाड़े बज रहे है । महाबली इस तरह विचरण कर रहे है मानो निर्जन स्थान पर शेर गरज रहे हो ।। २१ ।। घोडे हिनहिना रहे है, नगाडे बज रहे है । एक ओर वीर हथियार चला रहे है तथा दूसरी ओर शस्त्रो की वर्षा को झेला जा रहा है ।। २२ ।। शूरवीर लड रहे है और पहलवानो की तरह धरती पर लोट रहे है । शूरवीरो के केश इस प्रकार खुले है मानो शिव ने अपनी जटाओ को खोला हो ।। २३ ।। हाथी सजे हुए है और गरज रहे है । हाथियो पर से धनुष हाथ मे ले-लेकर बडे-बडे खान उतरे हुए है ।। २४ ।। ।। त्रिभगी छद ।। कृपालचन्द गुस्से मे आकर अपनी भुजाओ पर हथियारो एव ढाल को सजाकर घोडो को दौडा रहा है । क्रूर रूप मे सभी वीर दौड रहे है और उनके मुख पर लाली चमक रही है । उन्होने कृपाणे पकड रखी है, धनुष बाण चला रहे है और भयकर

कमानं सजे जुआनं तन तत्तं । रणि रंग कलोलं मार हि बोलं जनु गज डोलं बन मत्त ॥ २५ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ तबै कोपियं रांगड़ेशं कटोचं । मुखं रकत नैनं तजे सरब सोचं । उतै उट्ठियं खान खेतं खतंगं । मनो बिहचरे मास हेतं पिलंगं ॥ २६ ॥ बजी भेर भुंकार तीरं तड़क्के । मिले हत्थि बत्थं क्रिपानं कड़क्के । बजे जंग नीसाण कत्थे कथीयं । फिरैं रुंड मुंडं तनं तच्छ तीरं ॥ २७ ॥ उठै टोप टूकं गुरज्जै प्रहारे । रुले लुत्थ जुत्थं गिरे बीर मारे । परै कत्तियं घात निरघात बीरं । फिरै रुंड मुंडं तनं तच्छ तीरं ॥ २८ ॥ बही बाहु आघात निरघात बाणं । उठे नद्द नादं कड़क्के क्रिपाणं । छके छोभ छत्री तजै बाण राजी । बहे जाहि खाली फिरैं छूछ ताजी ॥ २९ ॥ जुटे आप मै बीर बीरं जुझारे । मनो गज्ज जुट्टे दंतारे दंतारे । किधो सिंघ सो सारदूलं अरुज्झे । तिसी

रूप से क्रोधित हो रहे है । रणक्षेत्र मे शूरवीर किलकारियाँ मार रहे है और ऐसे विचरण कर रहे है मानो वन मे हाथी घूम रहा हो ॥ २५ ॥ ॥ भुजग छद ॥ तभी काँगड़े का राजा कृपालचन्द कटोच अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसका मुँह एव आँखे रक्त से लाल हो उठी तथा उसने विचार-बुद्धि का एकदम त्याग कर दिया । उधर से खान ने भी तीर पकड़कर युद्ध की तैयारी की और वह ऐसा लग रहा था जैसे मासाहारी चीता हो ॥ २६ ॥ भेरियो की ध्वनि बज उठी है और बाणों की तड़तड़ वर्षा शुरू हो गई । कृपाण के कड़कते ही हाथ पसलियो की तरफ़ (घाव पर) जा लगते है । युद्ध मे नगाड़े बज रहे है, जिनका कविगण कथन किया करते है । युद्धस्थल मे सिर-रहित धड़ घूम रहे है और शरीर तीरो से बिंधे हुए हैं ॥ २७ ॥ शिरस्त्राण गदाओ के वार से टुकड़े-टुकड़े होकर गिरे पड़े हैं और मरे हुए वीरों की लाशों के झुड धूल-धूसरित हो रहे है । कटारो के एव छुरों के घाव खाकर एवं शिरो को धड़ों से अलग करवाकर भी तथा तीरो से छलनी की तरह छनकर भी वीर लड़ रहे है ॥ २८ ॥ कृपाणो की समरस वर्षा हो रही है और बाणो के निशाने चूक नही रहे है । नगाड़ो की ध्वनि बज रही है और कृपाणे कड़क रही है । शूरवीर पूर्ण क्रोध मे तीरो की पंक्तियों को छोड रहे हैं और फलस्वरूप कही पर शूरवीर इधर-उधर लोट रहे है और कही पर घोड़े वीरों से रहित अकेले दौड रहे हैं ॥ २९ ॥ बहादुरो के साथ बहादुर जूझ रहे है और वे तलवारो समेत इस प्रकार लग रहे है मानो दांत वाले हाथी दाँत वाले हाथियो से लड़ाई कर रहे हो अथवा शेर शेर से भिड़ा हुआ

भाँति किरपाल गोपाल जुज्झे ।। ३० ।। हरीसिंघ धायो तहाँ एक बीरं । सहे देह आपं भली भाँति तीरं । महाँ कोप कै बीर ब्रिंदं संघारे । बडो जुद्ध कै देवलोकं पधारे ।। ३१ ।। हठी हिंमतं किंमतं लै क्रिपानं । लए गुरज चल्लं सु जल्लाल खानं । हठे सूरमा मत्त जोधा जुझारं । परी कुट्ट कुट्टं उठी शस्त्र झारं ।। ३२ ।। ।। रसावल छंद ।। जसंवाल धाए । तुरंगं नचाए । लयो घेरि हुसैनी । हन्यो साँग पैनी ।। ३३ ।। तिनू बाण बाहे । बडे सैन गाहे । जिसै अंगि लाग्यो । तिसै प्राण त्याग्यो ।। ३४ ।। जबै घाव लाग्यो । तबै कोप जाग्यो । संभारी कमाणं । हणे बीर बाणं ।। ३५ ।। चहूँ ओर ढूके । मुखं मार कूके । न्रिभै शस्त्र बाहैं । दोऊ जीत चाहैं ।।३६।। रिसे खानज़ादे । महाँ मद्द मादे । महाँ बाण बरखे । सभै सूर हरखे ।। ३७ ।। करै बाण अरचा । धनुरबेद चरचा ।

हो । कृपालचन्द और गोपालचन्द का युद्ध भी इसी भाँति चल रहा है ।। ३० ।। वहाँ पर हुसैनी खान की ओर से एक शूरवीर हरीसिंह युद्ध करने के लिए आ गया । उसने अपने शरीर पर भली प्रकार तीरों के वार को सहन किया । महा क्रोधित होकर उसने वीरवृन्दो का संहार किया और उससे युद्ध करके बहुत से वीर देवलोक को चल दिए ।। ३१ ।। हुसैनी खान का ही एक वीर हिम्मत बडी ही कीमती कृपाण लेकर आया और उधर से जलाल खान भी अपनी गदा को लेकर आगे चला । हठवादी शूरवीर मस्त होकर सुन्दर ढग से लड़े और शस्त्रो की चोट पर चोट पडने लगी ।। ३२ ।। ।। रसावल छद ।। गोपालचन्द की ओर से यशवाल नरेश (केशरीचन्द्र) दौड़कर आया और उसने घोड़े को कुदाया तथा हुसैनी खान को घेरकर एक तीक्ष्ण बर्छी से वार किया ।। ३३ ।। उसने बहुत बाण चलाये और बड़ी सेना का मन्थन किया । जिसके अंग मे शस्त्र लग जाता है, वह प्राण त्याग देता है ।। ३४ ।। जब घाव लगता है तो क्रोध और जाग्रत् हो उठता है तथा शूरवीर अपने धनुष सम्हालकर वीरो का हनन करते है ।। ३५ ।। चारो ओर से वीर घेरा डालकर मुख से मारो, मारो की आवाज़ निकालते है । वीर अभय होकर शस्त्र चला रहे हैं तथा दोनो पक्ष के लोग अपनी-अपनी जीत चाहते है ।। ३६ ।। पठानो के पुत्र क्रोधित हुए है और मदमस्त होकर जब बाणो की वर्षा करते है तो सभी शूरवीर प्रसन्न हो उठते है ।। ३७ ।। तीरो की अर्चना हो रही है और धनुर्वेद की भी चर्चा यहाँ प्रासगिक है । बर्छी को सम्हालकर शूरवीर के जिस स्थान पर मारना चाहते है, मार

सु सांगं सम्हालं। करै तउन ठामं ॥ ३८ ॥ बली (मू०ग्रं० ६७) बीर रुज्झे। समुह शस्त्र जुज्झे। लगै धीर धक्कं। क्रिपाणं झनक्कं ॥ ३९ ॥ कड़क्कं कमाणं। झणंके क्रिपाणं। कड़क्कार छुट्टै। झणंकार उट्ठै ॥ ४० ॥ हठी शस्त्र झारै। न शंका बिचारै। करै तीर मारं। फिरै लोह धारं ॥ ४१ ॥ नदी स्रोण पूरं। फिरै गैण हूरं। उभै खेत पालं। बके बिक्करालं ॥ ४२ ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ तह हड़हड़ाइ हस्से मसाण। लिट्टे गजिंद्रि छुट्टे किकाण। जुट्टे सु बीर तह कड़क जंग। छुट्टी क्रिपाण बुट्ठे खतंग ॥ ४३ ॥ डाकन डहक्कि चावड चिकार। काकं कहक्कि बज्जै दुधार। खोलं खड़क्कि तुप्पकि तड़ाकि। सैथं सड़क्कि धक्कं धहाकि ॥ ४४ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ तहा आप कीनो हुसैनी उतारं। सभू हाथ बाणं कमाणं संभारं। रुपे खान खूनी करै लाग जुद्धं। मुखं रकत नैणं भरे सूर क्रुद्धं ॥ ४५ ॥ जग्यो जंग जालम सु जोधं

देते हैं ॥ ३८ ॥ बहादुर लड़ने मे पूर्ण रूप से लिप्त है और बहुत से शस्त्रो के साथ जूझ रहे है। धैर्यवान बहादुरो की धकमपेल चल रही है और कृपाणो की चमक दिखाई दे रही है ॥ ३९ ॥ कृपाणे चमक रही है और धनुष कडक रहे है। चारो तरफ से कड़कड़ एव खड़खड़ाहट सुनाई दे रही है ॥ ४० ॥ हठी शूरवीर शंका-रहित होकर शस्त्र चला रहे हैं और तीरो की मार करते हुए लौह-वर्षा कर रहे है ॥ ४१ ॥ नदी रक्त से भर गई और आकाश मे (मृत्यु की) परियाँ मँड़रा रही है। दोनो ओर से शूरवीर रणक्षेत्र मे भयकर रूप से चिल्लाते हुए युद्धस्थल का धर्म निभा रहे है ॥ ४२ ॥ ॥ पाधडी छद ॥ युद्धस्थल मे हड़हड़ा कर भूत हँस रहे है, गजराज लेटे हुए है और घोड़े छुट्टा दौड़ रहे है। शूरवीर उस कडकड़ाते युद्ध मे जुटे हुए है, जिसमे कृपाणे चल रही है और तीर बरस रहे है ॥ ४३ ॥ डाकिनियाँ बोल रही है और चील्हे चीख़ रही है। दो धारोवाली तलवारे चल रही है और कौवे भी काँव-काँव कर रहे है। लोहटोप खड़खड़ा रहे है और तोपे तड़तड़ा रही है। बर्छियाँ साँय-साँय कर रही है और धक्को पर धक्का चल रहा है ॥ ४४ ॥ ॥ भुजंग छद ॥ युद्धस्थल मे हुसैनी ख़ान स्वयं उतरा। सबने हाथ में बाणो एवं कमानो को सँभाल लिया। रूपवान शूरवीर एवं ख़ूनी ख़ान युद्ध करने लगे तथा शूरवीरो के चेहरे एवं आँखे क्रोध से भर उठी ॥ ४५ ॥ ज़ालिम एव लड़ाकू शूरवीरो का युद्ध जाग्रत् हो उठा है। रणबाँकुरे

जुझारं। बहे बाण बाँके बरच्छी दुधारं। मिले बीर बारं महाँ धीर बंके। धका धक्कि सैथं क्रिपाणं झनंके ॥ ४६ ॥ भए ढोल ढंकार नद्दं नफीरं। उठै बाहु आघात गज्जै सु बीरं। नभं नद्द नीशान बज्जे अपारं। रुले तच्छ मुच्छं उठी शस्त्र झारं ॥ ४७ ॥ टका टुक्क टोपं ढका ढुक्क ढालं। महाँ बीर बानैत बंके बिकालं। नचे बीर बैतालयं भूत प्रेतं। नची डाकिणी जोगणी उरध हेतं ॥ ४८ ॥ छुटी जोग तारी महाँ रुद्र जागे। डग्यो ध्यान ब्रहमं सभै सिद्ध भागे। हसे किनरं जच्छ बिद्दिक्षा धरेयं। नची अच्छरा पच्छरा चारणेयं ॥ ४९ ॥ पर्‌ओ घोर जुद्धं सु सैना परानी। तहाँ खाँ हुसैनी मंडिओ बीर बानी। उतै बीर धाए सु बीरं जस्वारं। सभै बिउत डारे बगा से अस्वारं ॥ ५० ॥ तहाँ खाँ हुसैनी रह्यो एक ठाढं। मनो जुद्ध खंभं रणं भूम गाडं। जिसै कोप कै कै हठी बाणि मार्‌यो। तिसे छेद कै पैल पारे

तीर, बर्छियाँ एव दो मुँह वाली तलवारे चला रहे हैं। बड़े-बड़े शूरवीरों के साथ धैर्यवान शूरवीर आ मिले है और चोट पर चोट करके बर्छी एवं कृपाणो की झनकार सुना रहे है ॥ ४६ ॥ ढोलो की डमडम बन रही है और भुजाओ पर आघात करते हुए वीर गरज रहे है। अनन्त नये-नये नगाड़ो के शव्द निकल रहे है तथा शस्त्रो की मार से मरे हुए शहतीरो के समान वीर धूल-धूसरित हो रहे हैं ॥ ४७ ॥ लोहे के टोपो की टक-टक सुनाई देती है और ढालो की ढक-ढक सुनाई पड़ती है। बाणों से युक्त शूरवीर वड़े भयानक दिखाई दे रहे हैं। भूत-प्रेत-बैताल आदि नृत्य कर रहे हैं और व्योमवासिनी डाकिनियाँ एव योगिनियाँ नाच रही है ॥ ४८ ॥ शिवजी की भी योगसमाधि भग हो गई है तथा व्रह्मा का ध्यान भी हिल गया है। सभी सिद्ध डर के मारे भाग खड़े हुए। यक्ष, किन्नर आदि विद्याधारी हँसने लगे है तथा अप्सराएँ एवं चारण लोग नाच उठे हैं ॥ ४९ ॥ इतना भयानक युद्ध चल रहा है कि सारी सेना भाग खड़ी हुई है। उसी समय हुसैनी खान ने वीरतापूर्ण शव्दो मे गर्जन किया। उस ओर से यशवाल के वीर युद्ध करने के लिए आगे वढ़े है। सभी घुडसवारो को योजनावद्ध ढग से काटकर फेक दिया गया है, जिस प्रकार दर्जी कपड़े को काटता है ॥ ५० ॥ उस भयानक युद्ध मे हुसैनी खान ही इस प्रकार खड़ा रहा मानो युद्धभूमि मे स्तम्भ गड़ा हुआ है। जिसको वह क्रोधित होकर वाण मारता है, उसे वह वाण छेदकर पार हो जाता

पधार्‌यो ॥ ५१ ॥ सहे बाण सूरं सभै आण ढूकै । चहूँ ओर ते मार ही मार कूकै । भली भाँति सो अस्त्र अउ शस्त्र झारे । गिरे भिशत को खाँ हुसैनी सिधारे ॥ ५२ ॥ ॥ दोहरा ॥ जबै हुसैनी जुज्झियो भयो सूर मन रोसु । भाजि चले अवरै सभै उठ्यो (मू०ग्रं०६८) कटोचन जोसु ॥ ५३ ॥ ॥ चौपई ॥ कोपि कटोचि सभै मिलि धाए । हिंमति किंमति सहित रिसाए । हरीसिंघ तब किया उठाना । चुनि चुनि हने पखरिया जुआना ॥ ५४ ॥ ॥ नराज छंद ॥ तबै कटोच कोपीयं । संभार पाव रोपीयं । सरक्क शस्त्र झारही । सु मारि मारि उचारही ॥ ५५ ॥ चंदेल चौपियं तबै । रिसात धात भे सबै । जिते गए सु मारियं । बचे तिते सिधारियं ॥ ५६ ॥ ॥ दोहरा ॥ सात सवारन के सहित जूझै संगत राइ । दरसो सुनि जुज्झै तिनै बहुर जुझत भ्यो आइ ॥ ५७ ॥ हिंमत हूँ उतर्‌यो तहाँ बीर खेत मंझार । केतन के तनि घाइ सहि केतनि के तनि झार ॥ ५८ ॥ बाज तहाँ जूझत भयो हिंमत

है ॥ ५१ ॥ पास आ-आकर सभी शूरवीर तीरो की मार को सहन करते हैं तथा मारो-मारो की आवाज़ करते है । शूरवीर अस्त्र और शस्त्रों को भली प्रकार चला रहे है और इस प्रकार हुसैनी खान स्वर्ग को सिधार गया ॥ ५२ ॥ ॥ दोहा ॥ जब हुसैनी खान जूझकर मर गया तो सारे शूरवीरो को अत्यन्त क्रोध हुआ । अन्य सब तो भाग चले परन्तु कटोचों को बहुत जोश आया ॥ ५३ ॥ ॥ चौपाई ॥ सभी कटोचवासी क्रोधित होकर दौड़ पड़े । हिम्मत जैसे कीमती शूरवीर भी क्रोधित हो उठे । हरीसिंह ने भी तब शस्त्र उठाये और चुन-चुनकर बख्तरबन्द जवानो का हनन किया ॥ ५४ ॥ ॥ नराज छद ॥ उसी समय कटोच (कृपालचन्द) क्रोधित हुआ और उसने क्रोध मे आकर सम्हालकर अपने पैर को एक स्थान पर जमा दिया । वह शीघ्रतापूर्वक शस्त्र चलाने लगा और मारो, मारो का उच्चारण करने लगा ॥ ५५ ॥ क्रोध मे आकर चन्देल भी चौकन्ना होकर युद्धस्थल की ओर बढ़ा । जितने भी आगे गये वे मारे गये और जो बचे वे भाग गये ॥ ५६ ॥ ॥ दोहा ॥ सात सवारो के साथ हमारी संगत का सिक्ख भी रणभूमि मे खेत रहा । और दरसो नामक सिख ने जब यह सुना तो वह भी जूझता हुआ कट मरा ॥ ५७ ॥ हिम्मत भी अकेला ही उस रणस्थल मे कूद पड़ा और उस शूरवीर ने कितनो को ही बचाते हुए अपने तन पर घाव सहे और बहुत से लोगों को मार डाला ॥ ५८ ॥ उसका घोड़ा युद्धस्थल मे मारा गया और

गयो पराइ। लोथ क्रिपालहि की न्मित कोपि परे अरराइ ॥ ५९ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ बला बैर रुज्झै। समुहि सार जुज्झै। क्रिपाराम गाजी। लर्यो सैन भाजी ॥ ६० ॥ महाँ सैन गाहै। न्रिभै शस्त्र बाहै। घन्यो काल कै कै। चलै जस्स लै कै ॥ ६१ ॥ बजे संख नादं। सुरं निरबिखादं। बजे डौर डड्ढं। हठे शसत्र कड्ढं ॥६२॥ परी भीर भारी। जुझै छत्र धारी। मुखं मुच्छ बंकं। मँडे बीर हंकं ॥ ६३ ॥ मुखं मारि बोलै। रणं भूमि डोलै। हथ्यारं संभारै। उभै बाज डारै ॥ ६४ ॥ ॥ दोहरा ॥ रण जुज्झत किरपाल कै नाचत भयो गुपाल। सैन सभै सिरदार वै भाजत भई बिहाल ॥ ६५ ॥ खान हुसैन क्रिपाल के हिंमत रण जूझंत। भाजि चले जोधा सभै जिम दे मुकट महंत ॥ ६६ ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिध शत्रु सभै चुनि मारे। गिरे आपने सूर संभारे। तह घाइल हिंमत कह लहा। रामसिंघ गोपाल

हिम्मत भी भाग गया। कृपालचन्द की लाश के लिए शत्रु-सेना क्रोधित हो उठी ॥ ५९ ॥ ॥ रसावल छद ॥ महाबली युद्ध मे जा भिड़े और सम्मुख होकर जूझने लगे। कृपाराम शूरवीर के सामने लड़ती हुई सेना भाग खड़ी हुई ॥ ६० ॥ महान् सेना का मन्थन किया गया और अभय होकर शस्त्र चलाये गए। जिस-जिसको काल ने मार डाला वह यश का अर्जन करता हुआ चला गया ॥ ६१ ॥ शंखनाद हो उठे और एक रस-ध्वनियाँ निकलने लगी। डमरू एवं डफलियाँ वजने लगी और हठी शूरवीर शस्त्र निकाले हुए है ॥ ६२ ॥ वहुत भीड़ हो गई है तथा कई छत्रधारी (राजा) मारे गए। बाँकी मूँछो वाले बाँके वीर डटे हुए है ॥ ६३ ॥ मुँह से मार, मार की आवाज़े करते हुए वीर रणभूमि मे विचरण कर रहे है। हथियारो को सँभालकर दोनो ओर के पक्ष घोड़ों को मार रहे हैं ॥ ६४ ॥ ॥ दोहा ॥ रण में कृपालचन्द को देखकर गोपालचन्द नाच उठा तथा कृपालचन्द की सेना अपने सेनापति को खोकर व्याकुल होकर भाग उठी ॥ ६५ ॥ हुसैनखान, कृपालचन्द एव हिम्मत के रण मे खेत जाने से उनकी सेना के सभी योद्धा उसी प्रकार भाग खड़े हुए जैसे किसी मठाधीश को मुकुट अर्पण कर लोग पीछे हट जाते है ॥६६॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार सभी शत्रु चुन-चुनकर मारे गये और सबने (गोपाल तथा रामसिह ने) अपने-अपने गिरे हुए शूरवीरो को सम्हाला। घायल पडे हुए हिम्मत को देखकर रामसिह ने गोपालचन्द से कहा ॥६७॥

सिउँ कहा ॥ ६७ ॥ जिन हिंमत अस कलह बढायो । घाइल आजु हाथ वह आयो । जब गुपाल ऐसे सुनि पावा । मारि दियो जीअत न उठावा ॥ ६८ ॥ जीत भई रन भयो उजारा । सिम्रिति करि सभ घरो सिधारा । राखि लियो हमको जगराई । (मू०ग्रं०६६) लोह घटा अनतै बरसाई ॥ ६९ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे हुसैनी बधह क्रिपाल हिंमत सगतीआ बध बरनन नाम गिआरमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ ११ ॥ अफजू ॥ ४२३ ॥

॥ चौपई ॥ जुद्ध भयो इह भाँति अपारा । तुरकन को मार्‌यो सिरदारा । रिसतन खान दिलावर तए । इतै सऊर पठावत भए ॥ १ ॥ उतै पठिअ उन सिंघ जुझारा । तिह भलान ते खेद निकारा । इत गजसिंघ पंमा दल जोरा । धाइ परे तिन ऊपर भोरा ॥ २ ॥ उतै जुझारसिंघ भ्यो आडा । जिम रन खंभ भूमि रनि गाडा । गाडा चलै न हाडा चलिहै । सामुहि सेल समर मो झलिहै ॥ ३ ॥ बाट चड़ै दल दोऊ

जिस हिम्मत ने हमारी कलह को बढावा दिया वह आज घायल अवस्था में हमारे हाथ लगा है। जब गोपाल ने यह सुना तो उसे (हिम्मत को) वही मार दिया और जीवित नही छोडा ॥ ६८ ॥ जीत हो गई तथा युद्ध-स्थल निर्जन हो गया। अब लोगो को घरो की याद आयी और सब घरो की ओर चल दिये। परमात्मा ने हमारी रक्षा की और इस लौह-घटा की वर्षा दूसरो पर ही हो गई ॥ ६९ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रथ के हुसैनी वध, कृपाल, हिम्मत, सगतीआ-वध-वर्णन नामक ग्यारहवे अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ ११ ॥ अफजू ॥ ४२३ ॥

॥ चौपाई ॥ इस प्रकार यह भयंकर युद्ध हुआ और उसमें मुगलो का सरदार मारा गया। दिलावर खान यह सुनकर बहुत क्रोधित हुआ और उसने फिर शूरवीरो को इधर भेजा ॥ १ ॥ वहाँ से उसने जुझार सिंह को भेजा। भलान नगर से उसे खदेड़ दिया गया। इधर गजसिंह पंमा ने अपना दल इकट्ठा किया और जुझारसिंह पर भोर मे ही टूट पड़े ॥ २ ॥ उधर जुझारसिंह इस भांति अडिगता से खड़ा हुआ मानो रणस्थल मे खभा गाड़ दिया गया हो। झंडा बेशक हिल जाए पर राजपूत अपनी जगह से हिलनेवाले नही है, क्योकि वह सम्मुख होकर बरछी के वारो को सहारता है ॥ ३ ॥ उधर चंदेले और इधर जसवालीए

जुझारा। उत चंदेल इतै जसवारा। मंडिओ बीर खेत मो जुद्धा। उपज्यो समर सूर मन क्रुद्धा ॥ ४ ॥ कोप भरे दोऊ दिस भट भारे। इतै चंदेल उतै जसवारे। ढोल नगारे बजे अपारा। भीम रूप भैरो भभकारा ॥ ५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ धुणं ढोल बज्जे। महाँ सूर गज्जे। करे शस्त्र घावं। चड़े चित्त चावं ॥ ६ ॥ न्रिभै बाज डारे। परग्घं प्रहारे। करे तेग घायं। चड़े चित्त चायं ॥ ७ ॥ बकै मार मारं। न शंका बिचारं। रुलै तच्छ मुच्छं। करै सुरग इच्छं ॥ ८ ॥ ॥ दोहरा ॥ नैक न रन ते मुरि चले करै निडर ह्वै घाइ। गिर गिर परै पवंग ते बरे बरंगन जाइ ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिधि होत भयो संग्रामा। जूझे चंद नराइन नामा। तब जुझार एकल ही धयो। बीरन घेरि दसो दिस लयो ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ धस्यो कटक मैं झटक दै कछू न शक बिचार। गाहत भयो सुभटन बड बाहति भयो हथिआर ॥ ११ ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिधि घने घरन को गारा। भाँति भाँति के

राजा अपने-अपने शूरवीरों को बाँटकर चल पड़े। वीरो ने रणक्षेत्र मे युद्ध किया और शूरमा अत्यन्त क्रोधित हो उठे ॥ ४ ॥ इधर चदेले और उधर जसवालीए दोनो ओर के वीर बड़े ही क्रोध मे थे। ढोल और नगाड़े बज उठे और मासाहारी भैरव की भयानक गर्जना भी सुनाई देने लगी ॥ ५ ॥ ॥ रसावल छद ॥ ढोलो की ध्वनि हुई तथा महावीर गर्जने लगे। हथियारो से घाव करने लगे, क्योकि उनके हृदय मे मरने का चाव है ॥ ६ ॥ अभय घोडो को मार डाला गया। कुल्हाड़ी के वार चल रहे है। वे तलवारो के घाव कर रहे है, क्योकि उन्हे मरने की खुशी है ॥ ७ ॥ मार, मार की आवाज़ आ रही है। योद्धाओ को मारने मे कोई शका या विचार नही किया जा रहा है। वीर शहतीरों की तरह धरती पर लोट रहे है, परन्तु सबको स्वर्ग की इच्छा (अवश्य) है ॥ ८ ॥ ॥ दोहा ॥ वीर ज़रा सा भी मैदान से नही पीछे हटते और निडर होकर घाव कर रहे है। वे इधर घोड़ो से गिरते हैं, उधर योगिनियो का वरण करते है ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार सग्राम हुआ जिसमे चद और नारायण जूझ गए। तब जुझारसिह अकेला ही रह गया और उसे वीरों ने दसो दिशाओ से घेर लिया ॥ १० ॥ ॥ दोहा ॥ वह बिना किसी डर के शत्रुसमूह में जा धँसा और बडे-बड़े शूरवीरों को लथाड़ता हुआ शस्त्र चलाने लगा ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस

करि हथिआरा। चुनि चुनि बीर पखरिआ मारे। अंति देवपुर आप पधारे॥ १२॥

॥ इति स्री वचित्र नाटक ग्रंथे जुझारसिंघ जुद्ध बरननं नाम द्वादसमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु॥ १२॥ अफजू॥ ४३५॥

शहजादे को आगमन मद्र देस॥

॥ चौपई॥ इह बिधि सो बध भयो जुझारा। आन बसे तब धाम लुझारा। तब अउरंग मन माहि रिसावा। मद्र देस को पूत पठावा॥ १॥ तिह आवत सभ लोक डराने। बडे बडे गिर हेर लुकाने। हमहूँ लोगन अधिक डरायो। काल करम को मरम न पायो॥ २॥ कितक लोक तजि संगि सिधारे। जाइ बसे गिरवर जह भारे। चित मूजीयन अधिक डराना। तिनै उबारन अपना जाना॥ ३॥ तब अउरंग जिय मॉझ रिसाए। एक अहदीआ इहाँ पठाए। हम ते भाजि बिमुख ते गए। तिन के धाम गिरावत भए॥४॥

प्रकार उसने बहुत से घरों को तबाह किया तथा भाँति-भाँति के हथियारों से वार किये। उसने बहुत से जिरहबख्तर वाले वीरों को मारा तथा अंत मे स्वयं भी देवलोक सिधार गया॥ १२॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रथ के जुझारसिंह-युद्ध-वर्णन नामक बाहरवे अध्याय की शुभ समाप्ति॥ १२॥ अफजू॥ ४२५॥

शहजादे का मद्र देश आगमन

॥ चौपाई॥ इस प्रकार जुझारसिंह का वध हुआ और तब सभी शूरवीर अपने-अपने घरो मे आ बसे। औरगजेब तब मन मे बहुत क्षुब्ध हुआ और उसने मद्र देश (पंजाब) की ओर अपना पुत्र भेजा॥ १॥ उसके आने से सब लोग डर गए और बड़े-बड़े राजा पहाडो मे जा छुपे। हमको भी लोगो ने बहुत डराया, परन्तु काल के रहस्य को कौन जानता है कि वह कहाँ पर घेरेगा॥ २॥ बहुत से लोग हमारा साथ छोड़कर भाग गए और पहाड़ो मे जा बसे। (हीन) कायरो का मन बहुत डरा और उनका भला करने की सोचकर मैंने उन्हे अपनाया (और साहस बँधाया)॥ ३॥ तब औरंगजेब (का पुत्र) मन मे बहुत क्रोधित हुआ और उसने एक दूत हमारे पास भेजा। जो हमसे विमुख होकर भाग

जे अपने गुर ते मुख फिरहै। इहाँ उहाँ तिसके ग्रिह गिरहै। इहाँ उपहास न सुरपुर बासा। सभ बातन ते रहै निरासा ॥५॥ दूख भूख तिनको रहै लागी। संत सेव ते जो है त्यागी। जगत बिखै कोई काम न सरही। अंतहि कुंड नरक की परही ॥ ६ ॥ तिन को सदा जगत उपहासा। अंतहि कुंड नरक की बासा। गुर पग ते जे बिमुख सिधारे। इहाँ उहाँ तिन के मुख कारे ॥ ७ ॥ पुत्र पउत्र तिन के नही फरै। दुख दै मात पिता को मरै। गुर दोखी सग की म्रित पावै। नरक कुंड डारे पछुतावै ॥ ८ ॥ बाबे के बाबर के दोऊ। आप करे परमेशर सोऊ। दीन शाह इनको पहिचानो। दुनी पती उन को अनुमानो ॥ ९ ॥ जो बाबे के दाम न देहै। तिन ते गहि बाबर के लैहै। दै दै तिन को बडो सजाइ। पुनि लैहै ग्रिह लूटि बनाइ ॥ १० ॥ जब ह्यैहैं बेमुखी बिना धन। तब चड़िहैं सिक्खन कह माँगन। जे जे सिक्ख तिनै धन देहैं। लूटि मलेछ तिनू को लैहैं ॥ ११ ॥ जब हुइहै तिन दरब

गए थे उनके घरो को ये लोग (आक्रमणकारी) गिराते गए ॥ ४ ॥ जो अपने गुरु से मुँह फेरेगा, उसका यहाँ तथा वहाँ सब जगह घर गिरेगा। यहाँ वे हास्यास्पद बनेगे और वहाँ स्वर्ग मे भी उनको स्थान नही मिलेगा। इस प्रकार वे सब ओर से निराश हो जायँगे ॥ ५ ॥ जो सतो की सेवा करने से कतराएँगे, दु.ख-भूख हमेशा उनको सताएँगे। जगत मे उनका कोई काम पूरा नही होगा और वे अत में नरकगामी होगे ॥ ६ ॥ ससार मे सदा उनकी हँसी होगी और अत मे उनका आवास नरक होगा। गुरु-चरणो से विमुख होकर जो जायँगे, उनके यहाँ-वहाँ सब जगह मुख काले होगे ॥ ७ ॥ उनके पुत्र-पौत्रो का परिवार आगे फले फूलेगा नही और वे माता-पिता को भी दुःख देकर मरेगे। गुरु से विद्वेष करनेवाला कुत्ते की मौत मरता है तथा नरककुड मे पडा पश्चात्ताप करता है ॥ ८ ॥ बाबा (नानक) और बाबर दोनो को परमेश्वर ने पैदा किया है। बाबा (नानक) को धर्म का बादशाह और उनको (बाबर के वशजो को) दुनियादारी का बादशाह जानो ॥ ९ ॥ जो धर्म के लिए अर्थदान नही करेगा उससे दुनियादारी का बादशाह (बाबर का वशज) छीन लेगा। इस प्रक्रिया मे न देनेवालो को सजा भी मिलेगी और घर भी लूटे जायंगे ॥ १० ॥ जब ये विमुखमना लोग निर्धन हो जायँगे तब फिर सिक्खो से (भिक्षा) माँगेगे। जो-जो सिक्ख इनको धन देगा, मुगल उसको भी लूट लेगे ॥ ११ ॥ जब इन सबके पास द्रव्य समाप्त हो जायगा तो

बिनासा। तब धरिहै निज गुर की आसा। जब ते गुर दरशन को ऐहैं। तब तिन को गुर मुख न लगैहैं॥ १२॥ बिदा बिना जैहैं तब धामं। सरिहैं कोई न तिन को कामं। गुर दर ढोई न प्रभ पुर वासा। दुहूँ ठउर ते (मू०ग्रं०७१) रहे निरासा॥ १३॥ जे जे गुर चरनन रत ह्वैहैं। तिन को कशटि न देखन पैहैं। रिद्ध सिद्ध तिन के ग्रिह माहीं। पाप ताप छ्वै सकैं न छाहीं॥ १४॥ तिह मलेछ छ्वैहै नहीं छाहाँ। अश्ट सिद्ध ह्वैहै घरि माहाँ। हास करत जो उदम उठैहै। नवो निद्धि तिन के घरि ऐहै॥ १५॥ मिरज़ाबेग हुतो तिह नामं। जिन ढाहे बिमुखन के धामं। सभ सनमुख गुर आप बचाए। तिन के बार न बाँकन पाए॥ १६॥ उत अउरंग जिय अधिक रिसायो। चार अहदीयन अउर पठायो। जे बेमुख ताँ ते बचि आए। तिनके ग्रिह पुनि इनै गिराए॥ १७॥ जे तजि भजे हुते गुर आना। तिन पुनि गुरू अहदीअहि जाना। मूत्र डार तिन सीस मुँडाए। पाहुरि जानि ग्रिहहि लै आए॥ १८॥ जे जे भाज हुते बिनु आइसु। कहो

फिर ये अपने (इसी) गुरू के पास आयँगे। जब ये स्वार्थ-वृत्ति को धारण कर गुरू के पास आएंगे तो गुरू इनको मुँह नही लगाएगा॥ १२॥ जो बिना आज्ञा के घरो को भाग जायँगे उनका कोई काम पूरा नही होगा। उनको न गुरू के द्वार पर स्थान मिलेगा और न ही प्रभुपुरी मे उनका आवास होगा। वे दोनो स्थानो से निराश ही होंगे॥ १३॥ जो लोग गुरू के चरणो मे प्रीति लगाए रहेंगे उनको कष्ट छू तक नही पायगा। ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ उनके घर मे होगी और पाप-ताप उनको छू नही सकेगा॥ १४॥ उनकी छाया को म्लेच्छ छू नही सकेंगे और आठों सिद्धियाँ उनके घर पर निवास करेगी। जो हँसते हुए उद्यमशील बने रहेंगे, नौ निधियाँ उनके घर पर बनी रहेंगी॥ १५॥ उस दूत का नाम मिर्ज़ा वेग था जिसने भाग जानेवाले के घरो को गिराया था। जो गुरु के समक्ष बने रहे उनका वाल भी वाँका नही हुआ॥ १६॥ उधर औरंगज़ेब और अधिक क्रोधित हुआ और उसने चार दूत और भेज दिए। गुरु से भागकर जानेवाले जो लोग वच गए थे उनके घर इन चारों ने गिरा दिए॥ १७॥ जो गुरु को त्यागकर भाग गए थे उन्होने मुगलों के इन सिपाहसालार दूतो को ही गुरु मान लिया और इन गुरुओ ने इन लोगो के सिर मूत्र डालकर मुंडवा दिए। भागनेवालो ने इसी को अमृत

अहदीअहि किनै बिताइसु । मूँड मूँडि करि शहरि फिराए । कार भेट जनु लैन सिधाए ।। १९ ।। पाछे लागि लरिकवा चले । जानुक सिक्ख सखा हैं भले । छिके तोबरा बदन चढ़ाए । जनु ग्रिह खान मलीदा आए ।। २० ।। मसतक सुभ पनहीयन घाइ । जनु करि टीका दए बनाइ । सीस ईट के घाइ करेही । जनु तिनु भेट पुरातन देही ।। २१ ।। ।। दोहरा ।। कबहूँ रण जूझ्यो नही कछु दै जसु नहि लीन । गाँव बसति जान्यो नही जम सो किन कहि दीन ।। २२ ।। ।। चौपई ।। इह बिध तिनो भयो उपहासा । सभ संतन मिलि लख्यो तमासा । संतन कष्ट न देखन पायो । आप हाथ दै नाथ बचायो ।। २३ ।। ।। चारनी ।। ।। दोहिरा ।। जिसनो साजन राखसी दुशमन कवन बिचार । छ्वै न सकै तिह छाहि को निहफल जाइ गवार ।। २४ ।। जे साधू शरणी परे तिन के

जानकर स्वीकार किया ।। १८ ।। जो-जो विना आज्ञा के भाग गए थे उनको इन मुगल दूतो ने अन्यो का पता वताने को कहा । इन सवको सिर मुँड़वाकर शहरो मे घुमाया गया मानो ये सव मुगल महन्तो की ओर से लोगो से धार्मिक दान एकत्र करते घूम रहे हों ।। १९ ।। इन सवके पीछे बच्चे मज़ाक करते हुए चल पड़े मानो ये कोई वहुत ही भले लोग हो । घोड़ो और बैलों के समान इनके मुँह पर रस्सी की जालियाँ बँधी हुई है मानो ये मलीदा खाने के इच्छुक लग रहे हो ।। २० ।। इनके मस्तको पर जूतो के घावो के निशान इस प्रकार वने हुए हैं मानो किसी ने टीका लगाया हो । सिर पर ईंट-पत्थरो के घाव यह वता रहे है कि लोगो ने इन्हें कोई पुराना दान देकर अपने-आपको सफल किया है ।। २१ ।। ।। दोहा ।। ये लोग न तो कभी रणक्षेत्र मे जूझे न ही इन्होने किसी यश का अर्जन किया और न ही इनके बारे मे कोई यह जानता था कि ये किस गाँव मे रहते हैं, परन्तु फिर भी पता नही यम (मुगलो) को किसने इनके वारे मे वता दिया ।। २२ ।। इस प्रकार इन लोगो का उपहास हुआ जिसे सव भले लोगो ने तमाशा समझकर देखा । सन्तो का कष्ट उस ईश्वर से देखा नही जाता और वह नाथ हमेशा अपना हाथ देकर उनकी रक्षा करता है ।।२३।। ।। चारनी ।। ।। दोहा ।। जिसका स्वामी (ईश्वर) रक्षक हो उसका शत्रु बेचारा क्या कर सकता है । उसकी परछाईं को भी कोई मूर्ख छू नही सकता और उसको कष्टित करने के सव प्रयत्न निष्फल हो जाते है ।। २४ ।। जो भले पुरुषों की शरण में जाता है उनके बारे में

कवण बिचार। दंत जीभ जिम राखिहै दुशट अरिष्ट सँघार ॥ २५ ॥ (मू०ग्रं०७२)

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे शाहजादे व अहदीआ गमन बरनन नाम तरौदसमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ १३ ॥ अफजू ॥ ४६० ॥

॥ चौपई ॥ सरबकाल सभ साध उबारे। दुखु दै कै दोखी सभ मारे। अदभुति गति भगतन दिखराई। सभ संकट ते लए बचाई ॥ १ ॥ सभ संकट ते संत बचाए। सभ कंटक कंटक जिम घाए। दास जान मुरि करी सहाइ। आप हाथु दै लयो बचाइ ॥ २ ॥ अब जो जो मै लखे तमासा। सो सो करो तुमै अरदासा। जो प्रभ क्रिपाकटाछ दिखैहै। सो तव दास उचारत जैहै ॥ ३ ॥ जिह जिह बिधि मै लखे तमासा। चाहत तिन को कियो प्रकासा। जो जो जन्म पूरबले हेरे। कहिहो सु प्रभु प्राक्रम तेरे ॥ ४ ॥ सरबकाल है पिता अपारा। देबि कालका मात हमारा। मनुआ गुर मुरि मनसा माई। जिनि मो को सुभ क्रिआ पड़ाई ॥ ५ ॥

क्या विचार किया जाय; उनके साथ रहते हुए तो इस प्रकार रक्षा होती है, जैसे जीभ की रक्षा दाँतो के बीच हमेशा ही होती रहती है ॥ २५ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के शहज़ादे व दूत-गमन-वर्णन नामक तेरहवे अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ १३ ॥ अफजू ॥ ४६० ॥

॥ चौपाई ॥ हे सर्वकाल परमात्मा ! तुमने साधु पुरुषों का उद्धार किया है और विद्वेषी लोगो को कष्ट देकर मारा है। तुमने भक्तो को अद्भुत गति दिखलाई है और उनको सब सकटो से बचाया है ॥१॥ सन्तों को सभी सकटो से बचाते हुए सब दुःखो को उसी प्रकार दूर कर दिया है, जिस प्रकार छोटे-छोटे काँटो को कुचल दिया जाता है। सेवक जानकर आपने मेरी सहायता की और अपने वरद् हस्त द्वारा मेरी रक्षा की ॥ २ ॥ अब मैंने जो-जो तमाशे देखे हैं, वह मै बताता हुआ तुम्हे समर्पित करता हूँ। जैसे-जैसे प्रभु की कृपा-कटाक्ष मेरे ऊपर होती जायेगी वैसे-वैसे तुम्हारा यह दास उच्चारण करता चला जायेगा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार मैंने खेल देखे है मैं उन सबको प्रकट करना चाहता हूँ। जो-जो अपने पूर्वजन्म मैंने देखे है, उनको, हे प्रभु, मै आपके पराक्रम से कहूँगा ॥ ४ ॥ सर्वकाल (परम सत्ता) हमारा पिता है और महाशक्ति हमारी माँ है। (सत्त्व गुणी) मन मेरा गुरु है और इस मन की चित्तवृत्तियाँ, जिन्होंने मुझे शुभ

जब मनसा मन भया बिचारी । गुर मनुआ कह कह्यो सुधारी । जे जे चरित्र पुरातम लहे । ते ते अब चहिअत हैं कहे ॥ ६ ॥ सरबकाल करुणा तब भरे । सेवक जानि दया रस ढरे । जो जो जनमु पूरबलो भयो । सो सो सभ सिमरण कर दयो ॥ ७ ॥ मो को इती हुती कह सुद्धं । जस प्रभ दई क्रिपा करि बुद्धं । सरबकाल तब भए दयाला । लोह रच्छ हमको सभ काला ॥ ८ ॥ सरबकाल रच्छा सभ काला । लोह रच्छ सरबदा बिसाला । ढीठ भयो तब क्रिपा लखाई । ऐंडो फिरो सभन भयो राई ॥ ९ ॥ जिह जिह बिध जनमन सुधि आई । तिम तिम कहे गरंथ बनाई । प्रथमे सतिजुग जिह बिधि लहा । प्रथमे देबि चरित्र को कहा ॥ १० ॥ पहिले चंडी चरित्र बनायो । नख सिख ते क्रम भाख सुनायो । छोर कथा तब प्रथम सुनाई । अब चाहत फिर करौ बडाई ॥ ११ ॥ (मू०ग्रं०७२)

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे सरबकाल की बेनती बरनन नामु चोदसमो धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥ १४ ॥ अफजू ॥ ४७१ ॥

कर्मों मे प्रवृत्त किया है, मेरी माँ है ॥ ५ ॥ पवित्र मन की जब मेरे पर कृपा हुई तो इस मन रूपी गुरु ने सुधारकर सब कुछ कहा । जितने पुराने (अवतारो के) चरित्र मैंने देखे है, अब मैं उन सबका वर्णन करना चाहता हूँ ॥ ६ ॥ सर्वकाल ने तब करुणापूरित होकर इस सेवक पर दया रूपी रस की वर्षा की । मेरे जो-जो पूर्वजन्म हुए वे मुझे सब स्मरण करा दिए ॥ ७ ॥ मुझे इतनी सुधि कहाँ थी, मुझे तो प्रभु ने कृपा करके बुद्धि प्रदान की । सर्वकाल की मेरे ऊपर दया हुई और सभी कालो मे लौह-रक्षक होकर उसने हमारी सुरक्षा की ॥ ८ ॥ परमात्मा हर समय हमारा रक्षक है और वह सर्वदा विशाल प्रभु लोहे की दीवार की भाँति हमारी रक्षा करता है । आपकी कृपा को देखकर मै कितना ढीठ हो गया हूँ कि घमड मे आकर सबका राजा बना घूम रहा हूँ ॥ ९ ॥ जिस-जिस भाँति मुझे जन्मो का स्मरण होता आया, वैसे-वैसे मैंने ग्रन्थ मे वर्णन किया है । पहले जैसे मैने सतयुग को देखा उसी तरह सबसे पहले देवी के चरित्र को कहा गया है ॥ १० ॥ पहले भी चण्डी-चरित्र कहे गए है, परन्तु मैंने नख से लेकर शिख तक क्रमानुसार कह सुनाया है । मेरे द्वारा पहले कही हुई कथाओ को छोडकर अब मैं और अधिक वृहद् रूप से गुणानुवाद करना चाहता हूँ ॥ ११ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के सर्वकाल के सम्मुख प्रार्थना-वर्णन नामक चौदहवे अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ १४ ॥ अफजू ॥ ४७१ ॥

१ ओं स्री वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

अथ चंडीचरित्र उकति बिलास

॥ स्वैया ॥ आदि अपार अलेख अनंत अकाल अभेख अलक्ख अनासा । कै शिव शकति दए स्रुति चार रचो तम सत्त तिहू पुर बासा । दिउस निसा ससि सूर कै दीप सु सृष्टि रची पँच तत्त प्रकासा । बैर बढाइ लराइ सुरासुर आपहि देखत बैठ तमासा ॥ १ ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिपा सिंध तुमरी क्रिपा जौ कछु मो परि होइ । रचों चंडका की कथा बाणी सुभ सभ होइ ॥ २ ॥ जोत जगमगै जगति मै चंड चमुंड प्रचंड । भुज दंडन दंडनि असुर मंडन भुइ नव खंड ॥ ३ ॥ ॥ स्वैया ॥ तारन लोक उधारन भूमहि दैत संघारन चंड तुही है । कारन ईस कला कमला हरि अद्रसुता जह देखो तुही है । तामस ता ममता नमता कविता कवि के मन मद्धि गुही है । कीनो है कंचन लोह

चंडीचरित्र-उक्ति-विलास

॥ सवैया ॥ आदिपुरुष परमात्मा (वाहिगुरू) सबसे पहले अवस्थित, लेखों, वेशों से परे अविनाशी है। ऐसे परमात्मा ने शिव-शक्ति, चार वेद, तीनो गुणो (रज, सत, तमस्) को बनाया और सब भुवनो मे व्याप्त किया। दिन-रात, सूर्य-चन्द्र दीपक बनाए तथा पाँचो तत्त्वो का प्रकाश कर सारे विश्व का सृजन किया। परमात्मा ने सुरो और असुरों का द्वन्द्व बढ़ाया और स्वयं सबमे अंतर्निहित होकर सारे तमाशे को देखता है ॥ १ ॥ ॥ दोहा ॥ हे कृपा-समुद्र ! यदि आपकी कुछ कृपा मुझ पर हो तो मैं चंडिका देवी की कथा की रचना करूँ ताकि मेरी काव्य-प्रतिभा और निखर जाय ॥२॥ तेरी ज्योति विश्व मे जगमगा रही है। तू चंड-चामुडा अत्यन्त प्रचंड है और अपनी बलिष्ठ भुजाओ से दैत्यों का नाश करनेवाली तथा नवखडो की सर्जक शक्ति है ॥ ३ ॥ ॥ सवैया ॥ लोगो का उद्धार करनेवाली तथा भूमि से दैत्यो का संहार करनेवाली चडिका तुम ही हो। तुम ही शिव की शक्ति, विष्णु की लक्ष्मी तथा पर्वत-पुत्री (पार्वती) हो। तुम ही तमस् गुण, ममत्व, विनम्रता तथा कवि की काव्य-प्रतिभा हो। तेरे पारसस्वरूप ने जिसका स्पर्श किया है, उसे इस संसार

जगत्र मै पारस सूरत जाहि छुही है ।। ४ ।। ।। दोहरा
करन सभ भै हरन नाम चंडका जास । रचौं चरित्र ब
करो सबुद्ध प्रकास ।। ५ ।। ।। परहा ।। आइस अब
ग्रंथ तउ मै रचौ । रतन प्रमुद कर बचन चीन ता
भाखा शुभ सम करहो धरिहो क्रित्त मै । अदभुत कथ
समझ करि चित्त मै ।। ६ ।। ।। स्वैया ।। त्रास कुटंब
उदास अवास को त्यागि बस्यो वनराई । नाम सुरत्थ
बेख समेत समाध समाध लगाई । चंड अखंड खंडे
भई सुर रच्छन को समुहाई । बूझहु जाइ तिनै
अगाधि कथा किह भाँति सुनाई ।। ७ ।। ।। तोट
।। मुनीशरो बाच ।। हरि सोइ रहै सज सैन तहा ।
कराल बिसाल जहा । भयो नाभ सरोज ते बिसुकरता
मैल ते दैंत रचे जुगता ।। ८ ।। मधु कैटभ नाम धरो
अति दीरघ देह भए जिनके । तिन देख लुकेश डरे
मै । जग मात को ध्यानु धर्‌यो जिय मै

मे लोहे से सोने के स्वरूप में तुमने बदल दिया है ।।४।। ।। दोहा
नाम चंडिका है वह सबको प्रसन्न करनेवाली तथा अभय
है। मेरी बुद्धि प्रकाशित करो ताकि तुम्हारे विचित्र चरित्र
कर सकूँ ।। ५ ।। ।। परहा ।। अब यदि आज्ञा हो तो मैं ग्रंथ
करूँ और प्रमुदित करनेवाले वचनो को इसमे जड़ित कर दूं ।
मे मैं सुन्दर भाषा को प्रयुक्त करूँगा और जो मैने चित्त मे सम
अद्‌भुत कथा का वर्णन करूँगा ।। ६ ।। ।। सवैया ।। कुटब
उदासीन होकर घर छोड़कर घने जंगल में आ बैठे ऋषि का
है, जिसने मुनियों का वेश धारण कर समाधि लगा रखी है ।
वाली चडिका राक्षसो का नाश करने के लिए तथा देवताओ
करने के लिए सबके सम्मुख प्रस्तुत है । सुरथ ऋषि ने अपने
से कहा कि हे साधु ! अब तुम बूझो कि यह सुन्दर कथा क्या
।। तोटक छद ।। ।। मुनीश्वरोवाच ।। हरि वहाँ पर शय्या सज
हुए है, जहाँ अपार जल-समूह है । उनकी नाभि के कमल से
ब्रह्मा का जन्म हुआ तथा कान की मैल से राक्षसो को युक्ति
गया ।। ८ ।। उनके नाम मधु तथा कैटभ रखे गए तथा
अत्यन्त विशाल थे । उन्हे देखकर लोकेश (ब्रह्मा) स्वयं मे

॥ दोहरा ॥ छुटी चंड जागे ब्रहम कर्यो जुद्ध को साज। दैत सभै घटि जाहि जिउ बढै देवतन राज ॥ १० ॥ ॥ स्वैया ॥ जुद्ध कर्यो तिन सों भगवंत न मार सकै अति दैत बली (मू०ग्रं०७४) है। साल भए तिन पंच हजार दुहूँ लरते नहि बाँह टली है। दैतन रीझ कह्यो बर माँग कह्यो हरि सीसन देह भली है। धारि उरू परि चक्र सों काटकै जोति लै आपनै अंग मली है ॥ ११ ॥ ॥ सोरठा ॥ देवन थाप्यो राज मधु कैटभ कौ मारिकै। दीनो सकल समाज बैकुंठगामी हरि भए ॥ १२ ॥

॥ इति स्री मारकडे पुराने चंडी चरित्र उकति बिलास मधु कैटभ बधहि प्रथम धयाइ ॥ १ ॥

॥ परहा ॥ बहुरि भयो महखासुर तिन को किआ कीआ। भुजा जोर करि जुद्ध जीत सभ जगु लीआ। सुर समूह संघारे रणहि पचारकै। टूक टूक कर डारे आयुध धारकै ॥ १३ ॥ ॥ स्वैया ॥ जुद्ध कर्यो महिखासुर दानव

टूटने पर विष्णु ने युद्ध की तैयारी की ताकि दैत्य कम हो जायँ तथा देवताओं के राज्य मे वृद्धि हो जाय ॥ १० ॥ ॥ सवैया ॥ भगवान ने दैत्यों से युद्ध किया पर वे उन बलवान दैत्यों को मार न सके। लडते-लड़ते पाँच हजार वर्ष बीत गए, परन्तु वे थके नही। दैत्य विष्ण के पराक्रम से प्रसन्न होकर कहने लगे, तुम कोई वर माँग लो। तब विष्णु ने उनकी देह माँगी अर्थात सिर माँगा जो दैत्यों ने दे दिया। भगवान ने अपनी गोदी में रखकर उनके सिर काट लिये तथा उनकी शक्ति को अपने मे मिला लिया ॥ ११ ॥ ॥ सोरठा ॥ मधु-कैटभ को मारकर देवताओं के राज्य की स्थापना की गई। सारा देवसमाज (जो कि बदी था) उनके हवाले किया तथा भगवान स्वय वैकुंठधाम को चले गए ॥ १२ ॥

॥ इति श्री मार्कण्डेय पुराण मे श्री चडीचरित्न-उक्ति-विलास मे मधु-कैटभ-वध नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

॥ परहा ॥ फिर महिषासुर हुआ उसने जो किया (वह इस प्रकार है); उसने भुजबल ये युद्ध कर सारे विश्व को जीत लिया। देवों के झड समूह उसने रणक्षेत्र मे ललकारकर मार दिये और अपने शस्त्रो से खड-खड कर दिए ॥ १३ ॥ ॥ सवैया ॥ महिपासुर ने युद्ध किया और सारी देवसेना को मार गिराया। बड़े-बड़े वलियो को उसने दो-दो टुकड़े

मारि सभै सुर सैन गिरायो। कै कै टूटूक दए अर खेत महाँबरबंड महा रन पायो। स्रउण तरंग सन्यो निसर्यो जसु या छबि को मन मै इहि आयो। मारिकै छत्रनि कुंडकै छेत्र मै मानहु पैठिकै रामजू न्हायो ॥ १४ ॥ ॥ स्वैया ॥ लै महखासुर अस्त्र सु शस्त्र सभै कलवत्र जिउ चीर कै डारे। लुत्थ पै लुत्थ रही गुथ जुत्थ गिरे गिर से रथ सैंधव मारे। गूद सने सित लोहू मै लाल कराल परे रन मैं गजकारे। जिउ दरजी जम ब्रित के सीत मै बागे अनेक कता करि डारे ॥ १५ ॥ ॥ स्वैया ॥ लै सुर संग सभै सुरपाल सु कोप कै सत्र की सैन पै धाए। दै मुख ढार लिए करवार हकार पचार प्रहार लगाए। स्रउन मै दैंत सुरंग भए कबि ने मन भाउ इहै छबि पाए। राम मनो रन जीत कै भालक दै सिर पाउ सभै पहराए ॥ १६ ॥ ॥ स्वैया ॥ घाइल घूमत है रन मै इक लोटत है धरनी बिललाते। दउरत बीच कबंध फिरै जिह देखत काइर हैं डरपाते। यो महिखासुर जुद्धु कियो तब जंबुक गिरझ भए रंगराते। स्रौन प्रवाह मै पाइ पसार के सोए

करके रणक्षेत्र मे फेंक दिया और उस महाबली ने घोर युद्ध किया। रक्त से लथपथ उसे देखकर कवि के मन मे वह ऐसा लग रहा है, जैसे क्षत्रियों को मारकर परशुराम उनके रक्त मे नहाए हुए हों ॥ १४ ॥ ॥ सवैया ॥ महिषासुर ने अपने अस्त्र-शस्त्रो से, आरे से लकड़ी चीरने के समान सबको चीर दिया। लाश पर लाश गिर गई और पहाड़ो के समान बडे-बड़े घोडे झुड के झुड गिरे पड़े है। श्वेत चर्बी और लाल रक्त से सने काले हाथी रणक्षेत्र मे गिरे पड़े है। ये सब ऐसे मरे पड़े है जैसे दर्जी कपडो को काट-काटकर ढेरो के ढेर लगा देता है ॥ १५ ॥ ॥ सवैया ॥ इद्र ने सभी देवताओ को लेकर शत्रु की सेना पर धावा बोल दिया। मुँह पर ढाल लगाकर, हाथो मे कृपाण पकड़कर तथा ललकारकर घाव किए। दैत्य लहू मे रँग गए है तथा कवि को ऐसे लग रहे हैं मानो राम ने युद्ध जीतने के बाद सभी रीछो-भालुओं को (लाल रग का) सिरोपा (सिक्ख-समाज मे सम्मान-हित दिया गया वस्त्र एवं भेंट) प्रदान किया है ॥ १६ ॥ ॥ सवैया ॥ कई रणक्षेत्र में घायल घूम रहे है और कई धरती पर पड़े तड़फ रहे है। वही पर कबंध घूम रहे है, जिन्हे देखकर कायर लोग भयभीत हो रहे है। महिषासुर ने ऐसा युद्ध किया कि गीदड़ और चीले (मांस मिलने की खुशी मे) अत्यन्त प्रसन्न हो गई हैं तथा

हैं सूर मनो मदमाते ।। १७ ।। ।। स्वैया ।। जुद्धु किओ महखासुर दानव देखत भान चलै नही पंथा । स्रौन समूह चल्यो लखिकै चतुरानन भूलि गए सभ ग्रंथा । मास निहारकै ग्रिज्झ रड़ै चटसार पड़ै जिमु बारक संथा । सारसुती तट लै भट लोथ स्रिगाल कि सिद्ध बनावत कंथा ।। १८ ।। ।। दोहरा ।। अगनत (मू०ग्रं०७५) मारे गनै को भजै जु सुर करि त्रास । धारि ध्यान मन शिवा को तकी पुरी कैलास ।। १९ ।। ।। दोहरा ।। देवन को धन धाम सभ दैतन लिओ छिनाइ । दए काढ सुरधाम से बसे शिवपुरी जाइ ।।२०।। ।। दोहरा ।। कितकि दिवस बीते तहाँ न्हावन निकसी देव । बिध पूरब सभ देवतन करी देव की सेव ।। २१ ।। ।। रेखता ।। करी है हकीकत मालूम खुद देवी सेती लिया महखासुर हमारा छीन धाम है । कीजै सोई बात मात तुम कउ सुहात सभ सेवकि कदीम तक आए तेरी साम है । दीजै बाज देस हमै मेटिऐ कलेस लेस कीजिए अभेस उनै बडो यह

शूरवीर रक्त-प्रवाह के बीच पाँव पसारकर मस्त हो सो रहे है ।। १७ ।। ।। सवैया ।। महिषासुर के युद्ध को देखकर सूर्य भी रास्ता भूल गया है । रक्त के प्रवाह को देखकर ब्रह्मा भी अपने ग्रथों की सुधि भूल गए हैं । मांस को देखकर गिद्ध इस प्रकार पक्ति मे बैठ गये है मानो विद्यालय में बैठे बच्चे पढ़ रहे हों । युद्धस्थल मे गीदड लाशो को ऐसे खीच रहे है मानो सरस्वती नदी के किनारे बैठे सिद्धगण अपनी गुदड़ियाँ खीच-तान कर ठीक कर रहे हो ।। १८ ।। ।। दोहा ।। कितने देवता मारे गए हो, कितने भाग गए —कौन उनकी गिनती कर सकता है ! सभी देवता मन मे शिव का ध्यान कर कैलास पर्वत की ओर चल दिए ।। १९ ।। ।। दोहा ।। दैत्यो ने देवताओ के सभी धाम और उनका धन छीन लिया । उन्हे सुरपुरी से निकाल दिया और वे सब कैलासपुरी मे आकर बस गए ।। २० ।। ।। दोहा ।। काफी दिन बीतने के बाद जब देवी वहाँ एक दिन नहाने के लिए आयी तो देवताओ ने विधिपूर्वक उसकी वन्दना अर्चना की ।। २१ ।। ।। रेखता ।। देवी को देवताओ ने अपनी सारी व्यथा सुनाई और बताया कि महिषासुर ने हमारे धाम छीन लिये है । हे माता, आपको जो अच्छा लगे आप करे, हम सब सेवक आपकी शरण मे आए है । हमे हमारा देश वापस दिलाइए, हमारे क्लेशों का निवारण कीजिए और उन दैत्यो को वस्त्र-रहित निर्धन कर दो, हे माँ ! यह बहुत बड़ा काम है जिसे आप ही कर सकती है । कुत्ते को कोई नही मारता या

काम है। कूकर को मारत न कोऊ नाम लै कै ताहि मारत है ता को लै कै खावंद को नाम है ।। २२ ।। ।। दोहरा ।। सुनत बचन ए चंडका मन मै उठी रिसाइ। सभ दैतन को छै करउ बसउ शिवपुरी जाइ ।। २३ ।। दैतन के बध को जबै चंडी किओ प्रकास। सिंघ संख अउ अस्त्र सभ शस्त्र आइगे पास ।। २४ ।। दैत संघारन के नमित काल जनमु इह लीन। सिंघ चंड बाहन भयो शत्रुन कउ दुखु दीन ।। २५ ।। ।। स्वैया ।। दारुन दीरघु दिग्गज से बल सिंघहि के बल सिंघ धरे है। रोम मनो सर कालहि के जन पाहन पीत पे ब्रिच्छ हरे है। मेर के मद्धि मनो जमनालर केतकी पुंज पै भ्रिगु ढरे है। मानो महा प्रिथ लै कै कमान सु भूधर भूम ते न्यारे करे है ।। २६ ।। ।। दोहरा ।। घटा गदा त्रिसूल अस संख सरासन बान। चक्र बक्र कर मै लिए जन ग्रीखम रित भान ।। २७ ।। चंड कोप करि चंडका ए आयुध कर लीन। निकटि बिकटि पुर दैत के

भला-बुरा कहता, बल्कि उसके स्वामी को भला-बुरा कहता है और फटकारता है, इसी प्रकार यह मार हमे नही पड़ी है बल्कि आप हमारी स्वामिनी है आप पर पड़ी है ।। २२ ।। ।। दोहा ।। यह वचन सुनकर चडिका मन मे क्रोधित हो उठी और कहने लगी कि मैं सब दैत्यो का नाश कर देती हूँ, तव तक तुम सब शिवपुरी मे निवास करो ।। २३ ।। दैत्यों के वध का जैसे ही विचार चडी के मन मे प्रकाशित हुआ तो शेर, शख तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र उसके पास स्वय आ गए ।। २४ ।। दैत्यो का नाश करने के लिए मानो यह काल ने स्वय जन्म लिया है। शत्रुओ को महान् दु:ख देनेवाला शेर चडी का वाहन बन गया ।। २५ ।। ।। सवैया ।। शेर का भयानक रूप हाथी के समान है और वह एक बड़े शेर के समान बलशाली है। शेर के वाल मानो वाण है और ऐसे लग रहे है जैसे पीले पहाड़ पर वृक्ष उगे हुए हो। शेर की पीठ की लकीर (मेरुदण्ड) ऐसी लग रही है मानो पर्वत से जमुना की धारा की लकीर हो। शरीर पर काले बाल कही-कही ऐसे दिखाई दे रहे है, मानो केतकी के फूल पर भौरे बैठे हो। शेर के अलग-अलग दिखनेवाले सुगठित अग ऐसे दिखाई दे रहे है, मानो राजा पृथु ने धनुष उठाकर अपने बल से धरती से पहाड़ो को पृथक्-पृथक् कर दिया हो ।। २६ ।। ।। दोहा ।। देवी ने अपने भयानक हाथो मे घटा, गदा, त्रिशूल, कृपाण, शख, धनुष आदि ले लिये हैं। उसके हाथो मे पकड़े अस्त्र-शस्त्र इतने दु:खदायी हैं, मानो ग्रीष्म ऋतु का तपता हुआ सूर्य हो ।। २७ ।। अत्यन्त क्रोधित होकर चडिका ने ये शस्त्र

घंटा की धुन कीन ।। २८ ।। ।। दोहरा ।। सुनि घंटा केहरि शबदि असुरन असि रन लीन । चड़े कोप कै जूथ हुइ जतन जुद्धु को कीन ।। २९ ।। पैंतालीस पदम असुर सज्यो कटक चतुरंग । कछु बाएँ कछु दाहनै कछु भट न्रिप के संग ।। ३० ।। भए इकट्ठे दल पदम दस पंद्रह अरु बीस । पंद्रह कीने दाहने दस बाएँ संगि बीस ।।३१।। ।। स्वैया ।। दउर सभै इक बार ही दैत सु आए है चंड के सामुहि कारे। लै करि बान कमानन तान घने अरु कोप सों सिंघ प्रहारे । चंड सँभार (मू०ग्रं०७६) तबै कर वार हकार कै शत्र समूह निवारे । खांडव जारन को अगनी तिह पारथ लै जनु मेघ बिडारे ।। ३२ ।। ।। दोहरा ।। दैत कोप इक सामुहे गयो तुरंगम डारि । सनमुख देवी के भयो सलभ दीप अनुहार ।। ३३ ।। ।। स्वैया ।। बीर बली सिरदार दईत सु क्रोध कै म्यान ते खग्गु निकार्यो । एक दयो तन चंड प्रचंड कै दूसर केहिर के सिर झार्यो । चंड सँभार तबै बलुधारि लयो गहि नारि धरा पर मार्यो । जिउ धुबिआ सरता तट जाइकै लै पट को पट साथ पछार्यो ।। ३४ ।।

हाथ मे लिये और दैत्यपुरी के निकट घटे की भयंकर ध्वनि की ।। २८ ।। ।। दोहा ।। घटे और शेर की ध्वनि सुनकर असुरो ने कृपाणे हाथो मे लेकर क्रोधित होकर, झुडो के रूप मे युद्ध करने का प्रयत्न आरम्भ किया ।।२९।। असुरो की पैंतालीस पदम सुसज्जित चतुरगिणी सेना में से कुछ राजा के साथ तथा कुछ उसके दाएँ-बाएँ होकर चलने लगी ।। ३० ।। पैंतालीस पदम दल इकट्ठा हुआ जिसमे पद्रह दायी ओर दस बायी ओर तथा बीस पदम राजा के साथ-साथ था ।। ३१ ।। ।। सवैया ।। वे सभी काले दैत्य दौड़कर एक ही बार मे चंडी के सम्मुख आ खड़े हुए और हाथो मे धनुष-बाण ले-लेकर, तान-तानकर सिह पर प्रहार करने लगे । चडी ने सभी वारो को सँभाला और ललकारकर शत्रुसमूह का वैसे ही खंडन कर दिया मानो खांडव वन को जलने से बचाने के लिए आए बादलों को अर्जुन ने छिन्न-भिन्न कर दिया हो ।। ३२ ।। ।। दोहा ।। एक दैत्य घोड़े को दौड़ाकर देवी के सामने ऐसे जा खडा हुआ मानो दीपक के सम्मुख शलभ (पतगा) जा खड़ा हुआ हो ।।३३।। ।। सवैया ।। उस महाबली दैत्य सरदार ने कुपित हो म्यान वे खड़्ग निकाला । एक बार उसने चडी पर और दूसरा शेर के सिर पर किया । चंडी ने सब वारो को सँभालते हुए बलशाली भुजाओं से उसे पकड़कर ऐसे धरती पर दे मारा, जैसे नदी किनारे धोबी

॥ दोहरा ॥ देवी मार्‌यो दैत इउ लर्‌यो जु सनमुख आइ। पुनि शत्रुनि की सैन मै धसी सु संख बजाइ ॥ ३५ ॥ ॥ स्वैया ॥ लै करि चंड कुवंड प्रचंड महाँ बरबंड तबै इह कीनो। एक ही बार निहार हकार सुधार बिदार सभै दलु दीनो। दैत घने रन माहि हने लखि स्रोन स्रमे कवि इउ मनु चीनो। जिउ खगराज बडो अहिराज समाज कै काट कता करि लीने ॥ ३६ ॥ ॥ दोहरा ॥ देवी मारे दैत बहु प्रबल निबल से कीन। शस्त्र धार करि करन मै चमूं चाल कर दीन ॥ ३७ ॥ भजी चमूं महखासुरी तकी शरनि निज ईस। धाइ जाइ तिन इउ कह्‌यो हन्यो पदम भट बीस ॥ ३८ ॥ सुन महखासुर मूड़ मत मन मै उठ्‌यो रिसाइ। आज्ञा दीनी सैन को घेरो देवी जाइ ॥ ३९ ॥ ॥ स्वैया ॥ बात सुनी प्रभ की सभ सैनहि सूर मिले इकु मंत्र कर्‌यो है। जाइ परैं चहूँ ओर ते धाइ कै ठाट इहै मन मद्धि धर्‌यो है। मार ही मार पुकार परे असि लै करि मै दलु इउ बिहर्‌यो है। घेरि लई चहूँ ओर ते चंड सु चंद मनो परवेख पर्‌यो है ॥ ४० ॥ ॥ स्वैया ॥ देखि

कपडों को लकडी के तख्ते पर पटककर पछाड़ता है ॥३४॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार जो दैत्य भी सामने आया देवी ने मार दिया तथा पुनः शख बजाकर शत्रुसमूह मे जा घुसी ॥ ३५ ॥ ॥ सवैया ॥ महाबलशाली चडिका हाथ मे धनुष लेकर, क्रोधित हो देखकर तथा भयकर ललकार से शत्रुदल को छिन्न-भिन्न कर दिया। दैत्यो के झुंडो को कटा हुआ तथा रक्तरजित देखकर कवि को ऐसा लगता है मानो गरुड़ ने सर्पो को काट-काटकर टुकडे-टुकड़े करके इधर-उधर फेक दिया हो ॥ ३६ ॥ ॥ दोहा ॥ देवी ने बहुत से दैत्यो को मारा तथा बहुत से प्रबल असुरो को निर्बल कर दिया। हाथो मे शस्त्र लेकर देवी ने ऐसा भयंकर रूप दिखाया कि चतुरगिणी सेना भाग खड़ी हुई ॥ ३७ ॥ महिषासुर की सेना भाग कर अपने स्वामी के पास पहुँची और उसे बताया कि हम लोगो के बीस पदम असुर मारे जा चुके है ॥ ३८ ॥ यह सुनकर मूढ़मति महिषासुर मन मे क्षुब्ध हो उठा और उसने आज्ञा दी कि देवी को घेर लिया जाय ॥ ३९ ॥ ॥ सवैया ॥ अपने स्वामी की बात सुनकर सबने यह मत व्यक्त किया कि मन मे दृढ निश्चय के साथ चारों दिशाओं से आक्रमण कर दिया जाय। मार-मार की पुकार के साथ दल चारो ओर विचरण करने लगा तथा सबने चडी को ऐसे घेर लिया मानो चद्रमा बादलो मे

चमूँ महखासुर की करि चंड कुवंड प्रचंड धर्‌यो है। दच्छन बाम चलाइ घने सर कोप भयानक जुद्‌धु कर्‌यो है। भंजन भे अरि के तन ते छुट स्रउन समूह धरान पर्‌यो है। आठवो सिंध पचायो हुतो मनो या रन मै बिधि ने उगर्‌यो है ॥ ४१ ॥ ॥ दोहरा ॥ कोप भई अरि दल बिखै चंडी चक्र सँभार। एक मारि कै द्वै किए द्वै ते कीने चार ॥ ४२ ॥ ॥ स्वैया ॥ इह भाँत को जुद्‌धु कर्‌यो सुनि कै कवलास मै ध्यान छुट्‌यो हरि का। (मू०ग्रं०७७) पुनि चंड सँभार उभार गदा धुनि संख बजाइ कर्‌यो खरका। सिर सत्रुनि के पर चक्र पर्‌यो छुट ऐसो बह्‌यो करि के बरका। जनु खेलन को सरता तट जाइ चलावत है छिछली लरका ॥ ४३ ॥ ॥ दोहरा ॥ देख चमूँ महिखासुरी देवी बलहि सँभारि। कछु सिंघहि कछु चक्र सों डारे सभै सँघारि ॥ ४४ ॥ इक भाजे न्रिप पै गए कह्‌यो हती सभ सैन। इउ सुनिकै कोप्यो असुर चढ़ि आयो रन ऐन ॥ ४५ ॥ ॥ स्वैया ॥ जूझ परी सभ सैन लखी जब तौ महखासुर खग्ग

प्रविष्ट होकर घिर गया हो ॥ ४० ॥ ॥ सवैया ॥ महिषासुर की सेना को देखकर प्रचंड धनुष चंडिका ने हाथ में पकड लिया और बाएँ हाथ से घनघोर बाण-वर्षा कर युद्ध किया। शत्रुओ के दलो को काटने पर रक्त का समूह इतना धरती पर गिरा मानो परमात्मा ने सातो समुद्रो के साथ एक आठवाँ (रक्त-) समुद्र और बना दिया हो ॥४१॥ ॥ दोहा ॥ शत्रु-दल मे चक्र को सँभालकर चडी ने कुपित होकर असुरो के एक से दो, दो से चार-चार टुकड़े कर दिए ॥ ४२ ॥ ॥ सवैया ॥ इस प्रकार का भयंकर युद्ध हुआ कि कैलास पर्वत पर शिवजी की समाधि भग हो गई। चंडी ने पुनः गदा को सँभाला और शंख वजाकर भीषण नाद किया। शत्रुओ के सिर पर चक्र ऐसे घूम रहा है, मानो बच्चे नदी तट पर पानी के ऊपर पतली ठीकरियो को ज़ोर-ज़ोर से चला, पानी के तल को काटने का खेल खेल रहे हो ॥ ४३ ॥ ॥ दोहा ॥ महिषासुर की सेना को देखकर देवी ने अपने वल को सँभाला तथा कुछ को शेर के माध्यम से कुछ को चक्र से मारकर सबको नष्ट कर दिया ॥ ४४ ॥ एक दैत्य भागकर अपने राजा (महिषासुर) के पास गया और उससे कहा कि हमारी सब सेना नष्ट कर दी गई है। यह सुनकर महिषासुर युद्ध के लिए सुसज्जित हो चल पड़ा ॥ ४५ ॥ ॥ सवैया ॥ जव महिषासुर ने देखा कि सारी सेना युद्ध मे जूझ गई है तो उसने अपना खड़ग सँभाला और प्रचंड चंडिका के सम्मुख

जनु सूर को राम जलांजल दीनो ।। ४६ ।। ।। स्वैया ।। सभ सूर सँघार दए तिह खेत महाँ बरबंड पराक्रम कै । तह स्रउनत सिंध भयो धरनी परि पुंज गिरे असि कै धम कै । जगमात प्रताप हने सुर ताप सुदानव सैन गई जम कै । बहुरौ अरि सिंधुर के दल पैठ कै दामन जिउ दुरगा दमकै ।।५०।। ।। दोहरा ।। जब महखासुर मारिओ सभ दैतन को राज । तब काइर भाजे सभै छाड्यो सकल समाज ।। ५१ ।। ।। कबितु ।। महाबीर कहरी दुपहरी को भान मानो देवन कै काज देवी डार्यो दैत (मू०ग्रं०७८) मारिकै । अउर दलु भाज्यो जैसे पउन हूँ ते भाजे मेघ इंद्र दीनो राज बलु आपनो सो धारिकै । देस देस के नरेश डारे है सुरेश पाइ कीनो अभखेक सुरमंडल बिचारिकै । इहाँ भई गुपति प्रगट जाइ तहाँ भई जहाँ बैठे हरि हरि अंबरि को डारिकै ।। ५२ ।।

।। इति स्री मारकडे पुराने स्री चडी चरित्र उकति बिलास महखासुर बधहि नाम दुतीआ धिआइ ।। २ ।।

।। सवैया ।। जब उस बलशालिनी ने अपने पराक्रम से सभी शूरवीर दैत्यों को मार दिया तब धरती पर रक्त के पुज गिरने से रक्त का समुद्र बन गया । जगत्-माता ने अपने प्रताप से देवताओं के कष्टों का निवारण कर दिया और असुर यमपुरी चले गए । पुनः देवी हाथियो के दलों में बिजली के समान दमकने लगी ।। ५० ।। ।। दोहा ।। जब महिषासुर को मारकर देवताओं को राज्य दिया गया तो (बचे-खुचे) कायर डर के मारे अपना सामान आदि भी छोड़कर भाग खड़े हुए ।। ५१ ।। ।। कवित्त ।। महाबली, दुपहर के सूर्य के समान तेजवान महिषासुर को देवी ने देवताओ को सुख देने के लिए मार डाला । उसका बचा दल ऐसे भागा जैसे पवन के सामने मेघ भाग जाते है । देवी ने अपने भुजबल से इन्द्र को राज्य वापस दिलाया । देश-देशान्तरों के नरेश इन्द्र के पैरो पर डाल दिए और सुरमडली ने विचारपूर्वक इन्द्र का अभिषेक किया । इस प्रकार चडी यहाँ पर लोप हो गई और वहाँ जा प्रकट हुई जहाँ शिवजी शेर की खाल बिछाकर बैठे थे ।। ५२ ।।

।। इति श्री मार्कण्डेय पुराण मे श्री चडीचरित्र-उक्ति-विलास, महिषासुर-वध नामक द्वितीय अध्याय समाप्त ।। २ ।।

।। दोहरा ।। लोप चंडका होइ गई सुरपति कौ दे राज ।
दानव मार अभेख करि कीने संतन काज ।। ५३ ।।
।। स्वैया ।। याते प्रसंन भए है महाँ मुनि देवन के तप मै सुख पावै । जग्य करै इक बेद ररै भव ताप हरै मिलि ध्यानहि लावै । झालर ताल म्रिदंग उपंग रबाब लिए सुर साज मिलावै । किंनर गंध्रप गान करै गनि जच्छ अपच्छर निरत दिखावै ।। ५४ ।। संखन की धुन घंटनि की करि फूलन की बरखा बरखावै । आरती कोटि करै सुर सुंदर पेख पुरंदर के बलि जावै । दानत दच्छन दै कै प्रदच्छन भाल मै कुंकम अच्छत लावैं । होत कुलाहल देवपुरी मिलि देवन के कुलि मंगलि गावै ।। ५५ ।। ।। दोहरा ।। ऐसे चंड प्रताप ते देवन बढ्यो प्रताप । तीन लोक जै जै करै ररै नाम सति जाप ।। ५६ ।। इसी भाँति सो देवतन राज कियो सुखु मान । बहुर सुंभ नैसुंभ दुइ दैत बडे बलिवान ।। ५७ ।।
।। दोहरा ।। इंद्रलोक के राज हित चड़ि धाए न्रिप सुंभ ।

।। दोहा ।। इस प्रकार इद्र को राज्य देकर चडिका लोप हो गई । उसने दानवो को मारकर बेहाल कर दिया था और साधु पुरुषो के (धर्म) कार्य का सरक्षण किया था ।।५३।। ।। सवैया ।। (दानवो के नष्ट हो जाने से) महामुनिगण प्रसन्न हो गए है और देवताओ मे ध्यान लगाकर सुख-प्राप्ति कर रहे है । कही यज्ञ किया जा रहा है, कही वेदपाठ हो रहा है और कही सामूहिक रूप से समाधि लगाई जा रही है । झालर, ताल, मृदग, रबाब आदि वाद्ययत्रो के स्वर मिलाए जा रहे है । कही किन्नर और गधर्व गायन कर रहे है तथा कही पर यक्ष एवं अप्सराएँ नृत्य कर रही है ।। ५४ ।। (वे) शखो एव घटिकाओ की ध्वनि के बीच फूलो की वर्षा कर रहे हैं । सौदर्ययुक्त देवता भिन्न प्रकार की आरतियाँ कर रहे है और इन्द्र को देखकर न्योछावर हो रहे है । दान देकर और इद्र की परिक्रमा करके मस्तक पर कुकुम एव अक्षत आदि का टीका लगा रहे है । सारी देवपुरी मे उल्लासमय कोलाहल व्याप्त हो गया है और देवताओ के घरो मे मगलगान की ध्वनि सुनाई पड़ रही है ।। ५५ ।। ।। दोहा ।। इस प्रकार चडिका के प्रताप से देवताओ के पराक्रम मे वृद्धि हुई और तीनो लोको से जय-जयकार और सत्य के जाप की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी ।। ५६ ।। इसी प्रकार देवताओ ने सुखपूर्वक राज किया, परन्तु फिर (कालान्तर मे) शुभ और निशुभ नामक दो दैत्य महाबलशाली हो गए ।। ५७ ।।

सैना चतुरंगनि रची पाइक रथ है कुंभ ॥५८॥ ॥ स्वैया ॥ बाजत डंक परी धुन कान सु संक पुरंदर मूंदत पउरै । सूर मै नाहि रही दुत देखि कै जुद्ध को दैत भए इक ठउरै । काँप समुंद्र उठे सिगरे बहु भार भई धरनी गति अउरै । मेरु हल्यो दहल्यो सुरलोक जबै दल सुंभ निसुंभ के दउरै ॥ ५९ ॥ ॥ दोहरा ॥ देव सभै मिलि कै तबै गए सक्र पहि धाइ । कह्यो दैत आए प्रबल कीजै कहा उपाइ ॥ ६० ॥ ॥ दोहरा ॥ सुनि कोप्यो सुरपाल तब कीनो जुद्ध उपाइ । सेख देवगन जे हुते ते सभ लिए बुलाइ ॥६१॥ ॥ स्वैया ॥ भूंम को भार उतारन को जगदीश बिचारकै जुद्ध ठटा । गरजै (मू०ग्रं०७९) मदमत्त करी बदरा बग पंत लसै जन दंत गटा । पहरे तन त्रान फिरै तह बीर लिए बरछी करि बिज्जु छटा । दल दैतन को अरि देवन पै उमड्यो मानो घोर घमंड घटा ॥ ६२ ॥ ॥ दोहरा ॥ सगल दैत इकठे भए कर्यो जुद्ध

॥ दोहा ॥ इंद्रलोक को जीतने के लिए राजा शुंभ अपनी पैदल, रथ और हाथियों वाली चतुरंगिणी सेना लेकर आ चढा ॥ ५८ ॥ ॥ सवैया ॥ युद्ध के नगाड़ो की ध्वनि सुन मन मे शंकायमान हो इंद्र ने (किले के) द्वार बंद कर दिये । शूरवीरो मे आमने-सामने लड़ने की शक्ति नहीं रही, यह जानकर सभी दैत्य एक स्थान पर एकत्र हो गए । उनके जमाव को देखकर सभी समुद्र काँप उठे तथा धरती की गति भी अन्य प्रकार की (विचित्र) हो गई । शुंभ एवं निशुंभ के दलों को दौडते हुए देखकर सुमेरु पर्वत हिल उठा और सुरलोक भयाकुल हो उठा ॥५९॥ ॥ दोहा ॥ सभी देवता तब एकत्र होकर इंद्र के पास गए और कहने लगे कि प्रबल दैत्यों ने धावा बोल दिया है, कोई उपाय कीजिए ॥ ६० ॥ दोहा ॥ यह सुनकर देवराज क्रोधित हो उठा और युद्ध के उपाय करने लगा । इसी क्रम में उसने बाकी सब देवताओं को भी बुला लिया ॥६१॥ ॥ सवैया ॥ संसार के स्वामी परमेश्वर ने भूमि का भार हलका करने के लिए इस युद्ध का आयोजन किया । मदमस्त हाथी बादलो की तरह गरजने लगे और उनके सफेद दाँत ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो बगुलों की पंक्तियाँ अवस्थित हो । तन पर लौहकवच पहने और हाथो मे बर्छियाँ लिये वीर विद्युत्-छटा से युक्त दिखाई पड़ रहे थे । दैत्यों के दल अपने शत्रु देवताओ पर ऐसे उमड़ रहे थे मानो घोर घटाएँ चारो ओर से घिर रही हो ॥ ६२ ॥ ॥ दोहा ॥ सभी दैत्यो ने इकट्ठे होकर युद्ध का उपक्रम किया और देवपुरी मे जाकर देवराज इंद्र को घेर लिया ॥ ६३ ॥

के साज । अमरपुरी महि जाइ कै घेरि लिओ सुरराज ।। ६३ ।। ।। स्वैया ।। खोलि कै द्वार किवार सभै निकसी असुरार की सैन चली । रन मै तब आनि इकत्र भए लखि सत्र की पत्र जिउ सैन हली । द्रुम दीरघ जिउ गज बाज हले रथ पाइक जिउ फल फूल कली । दल सुंभ को मेघ बिडारन को निकस्यो मघवा मानो पउन बली ।। ६४ ।। इत कोप पुरंदर देव चड़े उत जुद्ध को सुंभ चड़े रन मै । कर बान कमान क्रिपान गदा पहिरे तन त्रान तबै तन मै । तब मार मची दुहूँ ओरन ते न रह्यो भ्रम सूरन के मन मै । बहु जंबुक ग्रिज्झ चले सुनि कै अति मोद बढ्यो शिव के गन मै ।। ६५ ।। राज पुरंदर कोप किओ इत जुद्ध को दैत जुरे उत कैसे । सिआम घटा घुमरी घनघोर कै घेरि लिओ हरि को रवि तैसे । सक्र कमान के बान लगे सर फोक लसै अरि के उर ऐसे । मानो पहार करार मै चोंच पसार रहे सिसु सारक जैसे ।। ६६ ।। ।। स्वैया ।। बान लगे लख सुंभ दईत धसे रन लै करवारन को । रंगभूम मै शत्र

।। सवैया ।। (किले के) सभी द्वारो और किवाड़ो को खोलकर असुरो के शत्रु इद्र की सेना बाहर की ओर चली । रणस्थल पर आकर सब इकट्ठे हो गए और इद्र की सेना को देखकर शत्रु की सेना पत्ते की तरह काँपने लगी । पेड़ो के समान लम्बे हाथी और घोड़े विचरण करने लगे तथा फलों-फूलो और कलियो के समान अगणित रथी और पैदल वीर चलने लगे । शुभ के मेघ रूपी दल को छिन्न-भिन्न करने के लिए महाबली पवन की तरह इद्र बाहर निकला ।। ६४ ।। इधर कुपित होकर इद्र निकला उधर शुभ ने युद्ध के लिए चढाई कर दी । वीरो के हाथो मे धनुष-बाण, कृपाण, गदा आदि हैं और तन पर उन्होने कवच धारण कर रखे है । बिना किसी भ्रम के दोनो ओर से भीषण मारकाट प्रारम्भ हो गई जिससे गीदड़, गिद्ध आदि युद्धस्थल मे आने लगे और शिव के गणों (भूत-प्रेतादि) का भी हर्षोल्लास बढने लगा ।। ६५ ।। देखो, एक ओर तो इंद्र क्रोधित हो रहा है और दूसरी ओर किस प्रकार दैत्यसमूह युद्ध के लिए इकट्ठा हुआ है । दैत्य-सेना ऐसे लग रही है मानो भगवान के (रथ) सूर्य को काली घनघोर घटाओ ने घेर लिया हो । इद्र के धनुष से निकले तीखे बाणो की शत्रुओ के हृदयो के आर-पार निकली नोके ऐसी लग रही है, मानो पर्वतों की कंदराओ मे सारस-शिशुओ ने चोचे फ़ैला रखी हों ।। ६६ ।। ।। सवैया ।। शुभ को बाणो से बिंधता देख असुरगण तलवारे

गिराइ दए बहु स्त्रउन बह्यो असुरारन को। प्रगटे गन जंबुक
ग्रिज्झ पिसाच सु यौ रन भाँति पुकारन को। सु मनो भट
सारसुती तट न्हात है पूरब पाप उतारन को ॥ ६७ ॥ जुद्ध
निसुंभ भयान रच्यो अस आगे न दानव काहू कर्‌यो है।
लोथन ऊपरि लोथ परी तह गीध स्रिगालनि मासु चर्‌यो है।
गूँद बहै सिर केसन ते सित पुंज प्रवाह धरान पर्‌यो है।
मानो जटाधर की जट ते जनु रोस कै गंग को नीर ढर्‌यो
है ॥ ६८ ॥ बार सिवार भए तिह ठउर सु फेन जिउ छत्र
फिरे तरता। कर अंङलका सफरी तलफै भुज काट भुजंग करे
करता। हय नक्रु धुजा द्रुम स्त्रउणत नीर मै चक्र जिउ चक्र
फिरै गरता। तब सुंभ निसुंभ दुहूँ मिल दानव मार करी रन
मै सरता ॥६९॥ ॥ दोहरा ॥ सुर हारे जीते असुर (मू०ग्रं०८०)
लीने सकल समाज। दीनो इंद्र भजाइकै महाँ प्रबल दल
साज ॥ ७० ॥ ॥ स्वैया ॥ छीन भंडार लयो है कुबेर ते
शेशहुँ ते मनमाल छडाई। जीत लुकेश दिनेश निशेश गनेश

हाथ मे ले रण मे कूद पड़े। युद्धभूमि में उन्होंने अनेक शत्रुओं को मार
गिराया और इस भाँति देवताओं का काफी रक्त बहा। विभिन्न प्रकार के
गण, गीदड़, गिद्ध, पिशाच आदि प्रकट होकर रणभूमि में कई प्रकार की
ध्वनियाँ करते हुए ऐसे लग रहे हैं मानो शूरवीर सरस्वती नदी में स्नान करते
समय गायन कर विभिन्न प्रकार के पाप उतार रहे हों ॥ ६७ ॥ निशुभ ने
ऐसा भीषण युद्ध प्रारम्भ कर दिया जैसा उससे पहले किसी दानव ने उस
समय तक नही किया था। लाशों पर लाशे पट गई है जिनका मांस गीदड
एवं गिद्ध खा रहे हैं। सिरो से बहनेवाली चरबी का श्वेत प्रवाह इस प्रकार
धरती पर पड़ रहा है, मानो शिव के बालो से उमडकर गंगा की धारा बह
निकली हो ॥ ६८ ॥ सिरो के बाल सेवार की तरह और राजाओं के
छत्र पानी पर झाग की तरह तैर रहे है। हाथों की अँगुलियाँ मछली की
तरह तडफ रही है और कटी हुई भुजाएँ सर्पो के समान लग रही है। रक्त
रूपी पानी में घोड़े, रथ, रथो के पहिए भँवर बना-बनाकर घूम रहे है।
शुभ और निशुभ दोनो ने मिलकर इतना घनघोर युद्ध किया है कि रणक्षेत्र मे
खून की नदी बह निकली है ॥६९॥ ॥ दोहा ॥ इस युद्ध मे देवताओं की हार
हुई और महाबली असुरो ने सब कुछ छीनकर इंद्र को भगा दिया ॥ ७० ॥
॥ सवैया ॥ असुरो ने कुबेर से द्रव्य-भंडार छीन लिया और शेषनाग से
ाणिमाला भी छीन ली। उन्होंने ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्रमा, गणेश, वरुण आदि

जलेश दिओ है भजाई । लोक किए तिन तीनहु आपने दैत पठै तह दै ठकुराई । जाइ बसे सुर धाम तेऊ तिन सुंभ निसुंभ की फेरी दुहाई ॥ ७१ ॥ ॥ दोहरा ॥ खेत जीत दैतन लिओ गए देवते भाज । इहै बिचार्यो मन बिखै लेहु शिवा ते राज ॥ ७२ ॥ ॥ स्वैया ॥ देव सुरेश दिनेश निशेश महेशपुरी महि जाइ बसे है । भेस बुरे तहाँ जाइ दुरे सिर केस जुरे रन ते जु त्रसे है । हाल बिहाल महा बिकराल सँभाल नही जनु काल ग्रसे है । बार ही बार पुकार करी अति आरतवंत दरीन धसे है ॥ ७३ ॥ कान सुनी धुनि देवन की सभ दानव मारन को प्रन कीनो । हुइ कै प्रतच्छ महा बरचंड सु क्रुद्ध ह्वै जुद्ध बिखै मन दीनो । भाल को फोरि कै काली भई लखि ता छबि को कबि को मन भीनो । दैत समूहि बिनासन को जमराज ते म्रित्त मनो भव लीनो ॥ ७४ ॥ ॥ स्वैया ॥ पान क्रिपान धरे बलवान सु कोप कै बिज्जुल जिउ गरजी है । मेर समेत हले गरूए गिर शेश के सीस धरा लरजी है । ब्रहम धनेश दिनेश

को मारकर भगा दिया । तीनो लोको को उन्होने जीतकर अपना राज्य स्थापित किया । सभी असुर देवपुरियो मे जा बसे और उनके नामो से घोषणाएँ होने लगी ॥ ७१ ॥ ॥ दोहा ॥ दैत्यो ने युद्ध जीत लिया और देवगण भाग गए । अब उन्होने मन्त्रणाएँ की और यही विचार तय हुआ कि जगत्-कल्याणकारिणी आदिशक्ति के प्रताप से पुनः राज्य प्राप्त किया जाय ॥ ७२ ॥ ॥ सवैया ॥ देवराज इन्द्र, सूर्य एवं चन्द्र सभी शिवपुरी मे जाकर बस गए । देवताओ के वेश धूल-धूसरित हो गए है और सिर पर युद्ध के भय के कारण जटाएँ बढ गई है । वे अपने-आपको सँभाल नही पा रहे है और ऐसा लग रहा है मानो उन्हे काल ने ग्रस लिया हो । बार-बार रक्षात्मक पुकारे लगा रहे है तथा अत्यन्त दुःखी होकर कदराओ मे छिपे पड़े हुए है ॥ ७३ ॥ महाप्रचड चडिका ने जब अपने कानो से देवताओ की पुकार सुनी तो प्रत्यक्ष प्रकट होकर उसने दानवो को मारने का प्रण किया और अपना चित्त युद्ध की ओर लगा दिया । उसी समय चडी के मस्तक को फोड़कर कालीदेवी प्रकट हुई । इस दृश्य को देखकर कवि को ऐसा लगता है मानो दैत्य-समूह का विनाश करने के लिए स्वय मृत्यु ने काली-रूप मे अवतार धारण किया हो ॥ ७४ ॥ ॥ सवैया ॥ हाथ मे कृपाण पकडकर वह बलशालिनी क्रोधित होकर बिजली के समान गरज उठी है । उसकी गर्जना को सुनकर सुमेरु पर्वत जैसे भारी-भारी

डर्‌यो सुनिकै हरि को छडिआ तरजी है। चंड प्रचंड अखंड लिए कर काल का काल ही जिउ अरजी है॥ ७५॥ ॥ दोहरा॥ निरख चंडका तास को तबै बचन इह कीन। हे पुत्री तूं कालका होहु जु मुझ मै लीन॥ ७६॥ सुनत बचन यह चंड को ताँ महि गई समाइ। जिउ गंगा की धार मै जमना पैठी धाइ॥ ७७॥ ॥ स्वैया॥ बैठ तबै गिरजा अर देवन बुद्धि इहै मन मद्धि बिचारी। जुद्ध किए विनु फेर फिरै नहि भूम सभै अपनी अवधारी। इंद्र कह्‌यो अब ढील बने नहि मात सुनो यह बात हमारी। दैतन के बध काज चली रण चंड प्रचंड भुजंगनि कारी॥ ७८॥ ॥ स्वैया॥ कंचन से तन खंजन से द्रिग कंजन की सुखमा सकुची है। लै करतार सुधा कर मै मधु मूरत सी अँग अंग रची है। आनन की सर को सस नाहिन अउर कछू उपमा न बची है। स्त्रिग (मू०ग्रं०८१) सुमेर के चंड बिराजत मानो सिँघासन बैठी सची है॥ ७९॥ ॥ दोहरा॥ ऐसे स्त्रिग सुमेर के सोभत चंड प्रचंड। चंद्रहास

पर्वत भी हिल गए और शेषनाग के फन पर धरती भी काँप उठी है। ब्रह्मा, कुबेर, सूर्य आदि भी डर गए तथा उसकी भीषण गर्जना को सुनकर शिव की छाती भी धडक उठी। महाप्रतापिनी चडी समरस अवस्था में काल के भी काल को हाथ से पकड़कर इस प्रकार कहने लगी॥ ७५॥ ॥ दोहा॥ चडी ने उसको (काली को) देखकर कहा, हे पुत्री! तुम मुझमे ही लीन हो जाओ॥ ७६॥ चंडी के वचनो को सुनकर कालीदेवी चडी मे ऐसे विलीन हो गई जैसे गगा की धारा में यमुना की धारा समा जाती है॥ ७७॥ ॥ सवैया॥ तब देवी पार्वती एवं देवताओ ने मिलकर यही विचार किया कि असुरो ने तो सारी भूमि अपनी मान ली है; यह बिना युद्ध किए वापस नही मिलेगी। इन्द्र ने कहा, हे माता! अब देरी मत करो और तब देवी दैत्यो के वध के लिए भयकर नागिन की तरह चल दी॥ ७८॥ ॥ सवैया॥ देवी का तन सोने के समान और आँखे खजन पक्षी के समान है, जिनके सामने कमल के फूलो की सुषमा भी सकुचा रही है। ऐसा लगता है मानो ब्रह्मा ने अग-अग मे अमृत भरकर कोई भव्य मूर्ति तैयार की हो। चद्रमा भी मुँह की बराबर नही कर सकता तथा अन्य कोई उपमा उपयुक्त भी नही लगती। सुमेरु पर्वत की चोटी पर बैठी देवी सिंहासन पर बैठी इद्राणी (शचि) के समान प्रतीत हो रही है॥ ७९॥ ॥ दोहा॥ इस प्रकार सुमेरु पर्वत की चोटी पर हाथ में

करि बर धरे जन जम लीने दंड ।। ८० ।। किसी काज को दैत इकु आयो है तिह ठाइ । निरख रूप बरचंड को गिर्‌यो मूरछा खाइ ।। ८१ ।। उठि सँभारि करि जोर कै कही चंड सों बात । न्रिपति सुंभ को भ्रात हौं कह्‌यो बचन सुकचात ।।८२।। तीन लोक जिन बसि किए अति बल भुजा अखंड । ऐसो भूपति सुंभ है ताहि बरो बरि चंड ।। ८३ ।। सुनि राकश की बात को देवी उत्तर दीन । जुद्ध करें बिन नहि बरौं सुनहु दैत मतहीन ।। ८४ ।। ।। दोहरा ।। इह सुन दानव चपल गति गयो सुंभ के पास । पर पाइन कर जोर कै करी एक अरदास ।। ८५ ।। अउर रतन न्रिप धाम तुअ त्रिआ रतन ते हीन । बधू एक बन मै बसै तिह तुम बरो प्रबीन ।। ८६ ।। ।। सोरठा ।। सुनी मनोहरि बात न्रिप बूझ्‌यो पुनि ताहि को । मोसो कहियै भ्रात बरनन ताहि सरीर को ।। ८७ ।। ।। स्वैया ।। हरि सो मुख है हरिती दुख है अलिकै हरि हार प्रभा हरनी है । लोचन है हरिसे सरसे हरिसे भरुटे हरिसी बरुनी

तलवार लिये चडिका ऐसी प्रतीत हो रही है मानो यमराज ने अपने हाथ मे कालदड पकड़ रखा हो ।। ८० ।। किसी कारणवश एक दैत्य उधर आ निकला । काली के भयंकर स्वरूप को देखकर वह मूर्च्छित होकर जा गिरा ।। ८१ ।। जब होश मे आया तो वह दैत्य अपना-आप सँभालकर देवी से कहने लगा कि मैं सम्राट् शुभ का भाई हूँ । तब उसने थोड़ा सकुचाकर कहा ।। ८२ ।। जिसने तीनों लोकों को अपने प्रचंड भुजवल से अपने वश मे कर लिया है, वह सम्राट् शुभ है, आप उसका वरण कीजिए अर्थात् उससे विवाह कीजिए ।। ८३ ।। राक्षस की बात सुनकर देवी ने उत्तर दिया कि हे मतिहीन दैत्य ! मैं युद्ध किए बिना उसका वरण नही करूँगी ।। ८४ ।। ।। दोहा ।। यह सुनकर तीव्रगति से वह दानव शुभ के पास गया और पैरो पर गिरकर तथा हाथ जोड़कर उसने एक प्रार्थना की ।। ८५ ।। हे नृप ! बाकी सब रत्न तो पास है, परन्तु तुम स्त्री रूपी रत्न से विहीन हो । एक सुदर वधू वन मे रह रही है, हे प्रवीण ! तुम उसका वरण करो ।। ८६ ।। ।। सोरठा ।। राजा ने जब इस मनोहर बात को सुना तो उससे कहा, हे भाई ! मुझे बताओ कि उसका शरीर कैसा है ।।८७।। ।। सवैया ।। उसका मुँह चद्रमा के समान दुःखो का नाश करनेवाला है और केशराशि शिव के गले में पड़े साँपो के हार के समान बल्कि सर्पों की शोभा को भी मात करनेवाली है । उसकी आँखें कमल के फूलो के

है । केहरि सो करहा चलबो हरि पै हरि की हरिनी तरनी है । है कर मै हरि पै हरि सों हरि रूप किए हरि की धरनी है ॥८८॥ ॥ कबितु ॥ मीन मुरझाने कंज खंजन खिसाने अलि फिरत दिवाने बन डोलै जित तितही । कीर अउ कपोत बिब कोकला कलापी बन लूटे फूटे फिरै मन चैन हूँ न कितही । दारम दरक गयो पेख दसननि पाँत रूप ही की क्रांत जग फैल रही सितही । ऐसी गुन सागर उजागर सु नागर है लीनो मन मेरो हरि नैन कोर चितही ॥ ८९ ॥ ॥ दोहरा ॥ बात दैत की सुंभ सुनि बोल्यो कछु मुसकात । चतुर दूत कोऊ भेजिए लखि आवै तिह घात ॥ ९० ॥ ॥ दोहरा ॥ बहुरि कही उन दैत अब कीजै एक बिचार । जो लाइक भट सैन मै भेजहु दै अधिकार ॥ ९१ ॥ ॥ स्वैया ॥ बैठो हुतो न्रिप मद्धि सभा उठि कै करि जोरि कह्यो मम जाऊँ । बातन ते रिझवाइ

समान आनदित करनेवाली हैं तथा उसकी भौहे शिव के धनुष के आकार की है तथा बरौनियाँ तीरो की तरह है । उसकी कमर शेर के समान पतली है तथा चाल हाथी के समान मदमस्त करनेवाली है । वह तरुणी हर एक के मन मोह लेनेवाली है, उसके हाथ मे तलवार है तथा वह शेर की सवारी करनेवाली है । हिरण के समान वह सुदर स्वरूप वाली स्वर्ण-रूप मे शोभायमान है और शिव की पत्नी है ॥८८॥ ॥ कवित्त ॥ चचल वह इतनी है कि मत्स्य भी उसकी चचलता देखकर मूच्छित हो जाते है, नेत्रो को देखकर कमल एवं खंजन भी ईर्ष्यालु हो उठते है तथा भ्रमर उसकी भौहों को देखकर पागल हो उठते हैं तथा वन मे इधर-उधर डोला करते है । नासिका को देखकर तोते, गर्दन को देखकर कबूतर और आवाज़ को सुनकर कोयल अपने मन का चैन खोकर लुटे-लुटे से जगलों में घूमते हैं । दाँतो की पक्तियो को देखकर अनार के दाने लज्जित हो रहे है और उसके रूप की काति से सारा ससार प्रकाशित हो रहा है । वह ऐसे गुणो की सागर एवं सौदर्यशालिनी है कि उसने अपनी चितवन से मेरा मन मोह लिया है ॥ ८९ ॥ ॥ दोहा ॥ दैत्य की बात सुनकर शुभ ने मुस्कराकर कहा कि वहाँ सही घात लगाने के लिए तथा सुअवसर की पहचान करने के लिए कोई चतुर दूत भेजा जाय ताकि उसे पकड़कर लाया जा सके ॥९०॥ ॥ दोहा ॥ पुनः उस दैत्य ने कहा, अब यह विचार कीजिए और सारी सेना मे जो योग्य शूरवीर हो उसको सभी अधिकार देकर भेजिए ॥ ९१ ॥ ॥ सवैया ॥ राजा सभा के बीच बैठा हुआ था वही धूम्रलोचन नामक वीर ने हाथ जोड़कर कहा कि इस कार्य के लिए मैं जाता

मिलाइ हों नातरि केसन ते गहि लाऊँ। क्रुद्ध करै तब जुद्धु करौं (मू०ग्रं०८२) रण स्रउणत की सरतान बहाऊँ। लोचन धूम कहै बल आपनो स्वासन साथ पहार उडाऊँ ॥६२॥ ॥ दोहरा ॥ उठे बीर को देख कै सुंभ कही तुम जाहु। रीझै आवै आनिओ खीझै जुद्ध कराहु ॥ ६३ ॥ तहा धूम्रलोचन चले चतुरंगन दलु साज। गिर घेर्‌यो घन घटा जिउँ गरज गरज गजराज ॥६४॥ धूम्रनैन गिरराज तट ऊचे कही पुकार। कै बर सुंभ न्रिपाल को कै लर चंड सँभार ॥ ६५ ॥ रिप के बचन सुनंत ही सिंघ भई असवार। गिर ते उतरी बेग दै कर आयुध सभ धार ॥ ६६ ॥ ॥ स्वैया ॥ कोप कै चंड प्रचंड चड़ी इत क्रुद्ध कै धूम्र चड़े उत सैनी। बान क्रिपानन मार मची तब देवी लई बरछी कर पैनी। दउर दई अरि के मुखि मै कटि ओठ दए जिमु लोह कौ छैनी। दाँत गंगा जमुना तन स्याम सो लोहू बहयो तिन माहि त्रिबैनी ॥ ६७ ॥ घाउ लगै रिसकै द्रिग

हूँ। पहले तो मैं बातो से रिझाकर अन्यथा केशो से पकड़कर उसे लाऊँगा। यदि उसने मुझे अधिक क्रोधित कर दिया तो मैं युद्ध करके रणस्थल में खून की नदियाँ बहा दूँगा। धूम्रलोचन ने कहा कि मुझमें इतना बल है कि मैं अपने नि:श्वासो से पहाड़ तक उड़ा सकता हूँ ॥ ९२ ॥ ॥ दोहा ॥ उस वीर को उठा हुआ देखकर शुभ ने कहा कि तुम जाओ और यदि वह प्रसन्नतापूर्वक आती है तो ठीक है अन्यथा युद्ध करके उसे लेकर आओ ॥ ९३ ॥ धूम्रलोचन चतुरगिणी सेना लेकर वहाँ से चल पड़ा और गजराज के समान शक्तिशाली उस दैत्य ने उस पर्वत को घनघोर घटाओं की तरह घेर लिया, जिस पर चडी विराजमान थी ॥ ९४ ॥ धूम्रलोचन ने पर्वत की चोटी पर खड़े होकर जोर से पुकारकर कहा कि हे चडिके, या तो नृपति शुभ का वरण करो, अथवा युद्ध करो ॥ ९५ ॥ शत्रु के वचनो को सुनकर देवी सिंह पर सवार हो गई और सभी शस्त्र धारण कर वेग-सहित पर्वत से नीचे उतरी ॥९६॥ ॥ सवैया ॥ उधर से क्रोधित होकर प्रचंड वेग मे चडी ने चढ़ाई की, इधर से धूम्रलोचन की सेना भी आगे बढी। बाणों और कृपाणो की चल रही मार मे देवी ने अपने हाथ में एक पैनी बरछी पकड़ी और दौड़कर शत्रु के मुख मे ऐसे मारी कि जैसे लोहे को छेनी काटती है, इस बरछी ने उसके ओठो को काट दिया। उस दैत्य का शरीर काला है और दाँत गंगा के समान है। लाल रक्त मिलकर ये तीनो त्रिवेणी का रूप धारण कर गए हैं ॥ ९७ ॥ अपने को घाव लगे

धूम्र सु कै बलि आपनो खग्गु सँभार्यो। बीस पचीसक वार करे तिन केहरि को पगु नैकु न हार्यो। धाइ गदा गहि फोरिकै फउज को घाउ शिवा सिर दैत के मार्यो। स्रिंग धराधर ऊपरि को जन कोप पुरंद्रनै बज्र प्रहार्यो ॥ ९८ ॥ लोचन धूम उठे किलकार लए सँग दैतन के कुरमा। गहि पान क्रिपान अचानक तान लगाई है केहरि के उरमा। हरि चंड लयो बरि कै कर ते अरु मूँड कट्यो असुरं पुरमा। मानो आँधी बहे धरनी पर छूट खजूर ते टूट पर्यो खुरमा ॥ ९९ ॥ ॥ दोहरा ॥ धूम्रनैन जब मारिओ देवी इह परकार। असुर सैन बिन चैन हुइ कीनो हाहाकार ॥१००॥

॥ इति स्री मारकंड पुराने चडीचरित्र उकति बिलास धूम्रनैण बधहि नाम त्रितीय ध्याइ ॥ ३ ॥

॥ स्वैया ॥ शोरु सुन्यो जब दैतन को तब चंड प्रचंड तची अखियाँ। हरि ध्यानु छुट्यो मुन को सुनिकै धुनि टूटि खगेस गई पखियाँ। द्रिग ज्वाल बढी बड़वानल जिउँ

देखकर धूम्रलोचन ने बलपूर्वक अपना खड्ग सँभाल लिया। दैत्य ने बीस-पचीस वार लगातार कर दिए, परन्तु शेर एक पैर भी पीछे नही हटा। दुर्गा ने गदा पकडकर सेना की घेरेबदी तोड़ी और दैत्य धूम्रलोचन के सिर पर ऐसे वार किया मानो इद्र ने वज्र से किसी पहाड़ी किले पर प्रहार किया हो ॥ ९८ ॥ धूम्रलोचन ने किलकारियाँ मारते हुए दैत्यसमूह को साथ ले, हाथ मे कृपाण से अचानक शेर के हृदय पर वार किया। चडी ने भी अपने हाथ के खड्ग से धूम्रलोचन का सिर काटकर असुरो की ओर ऐसे उछाल फेका है जैसे आँधी आने पर खजूर के पेड़ से, खजूर छिटककर दूर जा गिरता है ॥ ९९ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार जब देवी ने धूम्रनैन को मार दिया तो असुर-सेना व्याकुल होकर हाहाकार कर उठी ॥ १०० ॥

॥ इति श्री मार्कण्डेयपुराण के चडीचरित्र उक्ति-विलास मे धूम्रलोचन-वध नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

॥ सवैया ॥ जब दैत्यो का शोर सुना तो प्रचड चडी ने टेढ़ी नजर से देखा। उसके क्रोधित होने पर शिव जैसे ऋषि का ध्यान भंग हो गया तथा गरुड़ जैसे पक्षी के घबराकर पख छितरा गए। देवी की नेत्र-ज्वाला से दानव-दल भस्मीभूत हो गया और इस दृश्य की उपमा कवि ने

कवि ने उपमा तिह की लखियाँ । सभु छारु भयो दलु दानव को जिमु धूम हलाहल की मखियाँ ॥१०१॥ ॥ दोहरा ॥ अउर सकल सैना जरी बच्यो सु एकै प्रेत । चंड बचायो जानिकै अउरन मारन हेत (मू०ग्रं०८३) ॥ १०२ ॥ भाज निसाचर मंद मत कही सुंभ पहि जाइ । धूम्रनैन सैना सहित डार्‌यो चंड खपाइ ॥ १०३ ॥ सकल कटे भट कटक के पाइक रथ है कुंभ । यौ सुनि बचन अचरज ह्वै कोप किओ न्रिप सुंभ ॥ १०४ ॥ ॥ दोहरा ॥ चंड मुंड द्वै दैत तब लीने सुंभ हकार । चलि आए न्रिप सभा महि करि लीने अस ढार ॥ १०५ ॥ अभबंदन दोनो किओ बैठाए न्रिप तीर । पान दए मुख ते कह्‌यो तुम दोनो मम बीर ॥ १०६ ॥ निज कट को फैटा दयो अरु जमधर कर वार । ल्यावहु चंडी बाँध के ना तर डारो मार ॥ १०७ ॥ ॥ स्वैया ॥ कोप चड़े रन चंड अउ मुंड सु लै चतुरंगन सैन भली । तब शेश के सीस धरा लरजी जन मद्धि तरंगनि नाव हली । खुर बाजन धूर

इस प्रकार दी है कि दानवदल नेत्र की ज्वाला रूपी वडवाग्नि से ऐसे जल गया मानो जहरीली मक्खियाँ धुएँ के प्रभाव से सरलता से नष्ट हो जाती है ॥ १०१ ॥ ॥ दोहा ॥ सारी सेना तो जलकर नष्ट हो गई, केवल एक प्रेत बचा और उसे भी देवी ने जान-बूझकर बचाया ताकि वह वापस जाकर इस नाश की बात बता सके तथा अन्यो को मरने के लिए वहाँ ला सके ॥ १०२ ॥ उस मदमति निशाचर ने भागकर जाकर शुभ से कहा कि हमारी सारी सेना समेत धूम्रलोचन को देवी ने नष्ट कर दिया है ॥ १०३ ॥ पैदल, रथी एव हाथियो से युक्त सारी सेना काट डाली गई है, यह सुनकर राजा शुभ को आश्चर्य हुआ तथा वह क्रोधित हो उठा ॥ १०४ ॥ ॥ दोहा ॥ तब शुंभ ने चड एवं मुड नामक दो दैत्यो को पुकारा जो कृपाण-ढाल हाथ मे लेकर सभा मे आ उपस्थित हुए ॥ १०५ ॥ दोनो ने राजा का अभिवदन किया और उन्हे राजा के पास बैठाया गया । राजा ने पान का बीड़ा उन्हे देते हुए कहा कि तुम दोनों मेरे शूरवीर हो ॥ १०६ ॥ राजा ने अपना कमरबंद और यमधर नामक तलवार उनको देते हुए कहा कि चडी को बाँधकर यहाँ ले आओ अथवा जान से मार डालो ॥ १०७ ॥ ॥ सवैया ॥ क्रोधित होकर चतुरगिणी सेना लेकर चंड और मुड ने चढाई कर दी । असुरदल की भगदड़ से शेषनाग के सिर पर स्थित पृथ्वी वैसे ही काँप उठी जैसे जलधारा

उडी नभि को कवि के मन ते उपमा न टली। भव भार अपार निवारन को धरनी मनो ब्रहम के लोक चली ॥ १०८ ॥ ॥ दोहरा ॥ चंड मुंड दैतन दुहूँ सबल प्रबल दलु लीन। निकटि जाइ गिर घेरिकै महाँ कुलाहल कीन ॥ १०९ ॥ ॥ स्वैया ॥ जब कान सुनी धुनि दैतन की तब कोपु कियो गिरजा मन मै। चड़ सिंघ सु संख बजाइ चली सभि आयुध धार तबै तन मै। गिर ते उतरी दल बैरन के पर यौ उपमा उपजी मन मै। नभ ते बहरी लख छूट परी जनु कूक कुलंगन के गन मै ॥ ११० ॥ चंड कुवंड ते बान छुटे इक ते दस सउ ते सहस तह बाढे। लच्छक हुइ करि जाइ लगे तन दैतन मॉझ रहे गडि गाढे। को कवि ताहि सराह करे अति सै उपमा जु भई बिनु काढे। फागन पउन के गउन भए जनु पातु बिहीन रहे तरु ठाढे ॥ १११ ॥ ॥ स्वैया ॥ मुंड लई करवार हकार कै केहरि के अंग अंग प्रहारे। फेर दई तन दउर के गउर को घाइल कै निकसी अँग धारे। स्रउण भरी थहरै कर दैत के को

मे नाव काँप जाती है। अश्वो के खुरो से उड़ती धूल को देखकर कवि कहता है कि ऐसा लग रहा है मानो पृथ्वी अपना बोझ हलका करने के लिए ब्रह्मलोक की ओर प्रयाण कर रही हो ॥ १०८ ॥ ॥ दोहा ॥ चंड और मुड दोनो ने एक सवल एवं प्रचंड सैन्यदल लिया और पर्वत के निकट जाकर भीषण कोलाहल करना प्रारम्भ कर दिया ॥१०९॥ ॥ सवैया ॥ जब दैत्यो की ध्वनियाँ गिरिजा ने अपने कानो से सुनी तो वह अत्यन्त कुपित हो उठी। वह सब शस्त्रो को धारण कर शखध्वनि करती हुई सिंह पर सवार होकर आगे वढ़ी। वह पर्वत से सीधी शत्रुओं के दल पर ऐसे टूट पड़ी जैसे चील कूँज नामक चिड़ियों के दल पर आसमान से नीचे की ओर सीधे झपट्टा मारती है ॥ ११० ॥ दुर्गा के धनुप से निकलनेवाले वाण एक से दस, दस से सौ और सौ से हजार-हजार हो गए। यही वाण लाखों की संख्या मे राक्षसों के शरीरो मे जा गड़े। उन वाणों को निकाले विना असुरो के शरीरों की उपमा देता हुआ कवि कहता है कि वे वाण-विंधे असुर ऐसे लग रहे है, जैसे फाल्गुन के महीने मे पवन के चलने से पत्त-झड़े पेड़ दिखाई दे रहे हो ॥ १११ ॥ ॥ सवैया ॥ मुंड ने ललकारकर तलवार हाथ मे पकड़कर शेर के अंगो पर प्रहार किया। फिर उसने दौड़कर दुर्गा के शरीर पर तलवार चलायी जो देवी को घायल करती हुई वाहर निकली। रक्त से सनी हुई तलवार की उपमा देते हुए कवि कहता है कि

उपमा कवि अउर बिचारे। पान गुमान सो खाइ अघाइ मनो जमु आपनी जीभ निहारे ॥ ११२ ॥ घाउ कै दैत चल्यो जबही तब देवी निखंग ते बान सु काढे। कान प्रमान लउ खैंच कमान चलावत एक अनेक हुइ बाढे। मुंड लै ढाल दई मुख ओट धसे तिह मद्धि रहे गडि गाढे। मानहु कूरम पीठ पै नीठ भए (मू०ग्रं०८४) है सहस फन के फन ठाढे ॥ ११३ ॥ सिघहि प्रेरकै आगे भई करि मै असि लै बरचड सँभार्यो। मारिकै धूरि किए चकचूर गिरे अरिपूरमहाँ रन पार्यो। फेरि कै घेरि लयो रन माहि सु मुंड को मुंड जुदा करि मार्यो। ऐसे पर्यो धरि ऊपर जाइ जिउँ बेलहि ते कदूआ कटि डार्यो ॥ ११४ ॥ ॥ स्वैया ॥ सिघ चड़ी मुख संख बजावत जिउँ घन मै तड़ता दुत मंडी। चक्र चलाइ गिराइ दयो अरि भाजत दैत बडे बरबंडी। भूत पिसाचनि मास अहार करै किलकार खिलार कै झंडी। मुंड को मुंड उतार दयो अब चंड को हाथ लगावत चंडी ॥११५॥ ॥ स्वैया ॥ मुंड महाँ रन मद्धि हन्यो फिर कैबर चंड तबै इह कीनो। मार

तलवार इस प्रकार से लाल है मानो यमराज पान खाकर अपनी जीभ बाहर निकालकर देख रहा हो ॥ ११२ ॥ घाव देकर वह दैत्य ज्योही जाने को उद्यत हुआ तो देवी ने अपने तरकश से बाण निकाला। उसे कान तक खीचकर चलाया जो चलते ही एक से अनेक हो गया। मुड ने ढाल का आश्रय लेकर अपने-आपको बचाया, परन्तु वे बाण ढाल मे ऐसे गड़ गए मानो कच्छप की पीठ पर शेषनाग के हजारो फन अवस्थित हो ॥ ११३ ॥ शेर को ललकारकर चडिका हाथ मे कृपाण लिये आगे बढ़ी। उसने शत्रुओ के समूह को मारकर चकनाचूर करके भीषण संग्राम किया। घूमकर देवी ने मुड को घेर लिया और उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। मुड दैत्य का सिर धरती पर ऐसे उछलकर गिरा जैसे बेल से टूटने पर कद्दू गिरता है ॥ ११४ ॥ ॥ सवैया ॥ देवी चडिका सिह पर सवार होकर शंख बजाती हुई ऐसी लग रही है मानो घटाओ मे बिजली चमक रही हो। उसने अपने चक्र से बड़े-बड़े महाबली असुरो को मार गिराया। रणस्थल मे भूत-पिशाच किलकारियाँ मारते हुए मांस का आहार कर रहे है। मुड का वध हो चुका, अब चडिका चंड-वध के कार्य मे हाथ लगा रही है ॥ ११५ ॥ ॥ सवैया ॥ मुड को रण मे मारकर चंडी की बरछी ने शत्रु-सेना को खंड-खंड कर दिया। बरछी को हाथ मे लेकर चंडी

बिदार दई सभ सैन सु चंडका चंड सो आहव कीनो। लै बरछी कर मै अरि को सिर कैबर मार जुदा करि दीनो। लै कै महेश त्रिशूल गनेश को रुंड किओ जन मुंड बिहीनो ॥११६॥

॥ इति स्री मारकंडे पुराने स्री चंडी चरित्रे चंडमुंड बधहि चतुर्थ ध्याइ ॥ ४ ॥

॥ सोरठा ॥ घाइल घूमत कोट जाइ पुकारै सुंभ पै। मारे देवी घोट सुभट कटक के बिकट अति ॥ ११७ ॥ ॥ दोहरा ॥ राज गात के बात इह कही सु ताही ठौर। मरिहो जिअति न छाडिहो कहयो सति नहि और ॥ ११८ ॥ तुंड सुंभ के चंडका चढि बोली इह भाइ। मानो अपनी म्रितु को लीनो असुर बुलाइ ॥ ११९ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुंभ निसुंभ सु दुहूँ मिलि बैठ मंत्र तब कीन। सैना सकल बुलाइ कै सुभट बीर चुन लीन ॥ १२० ॥ रकतबीज को भेजिए मंत्रनि कही बिचार। पाथर जिउँ गिर डार कै चंडहि हनै हकार ॥१२१॥ ॥ सोरठा ॥ भेजो कोऊ दूत ग्रह ते ल्यावै ताहि को। जीत्यो जिन पुरहूत भुज बलि जाके अमित है ॥ १२२ ॥

ने चंड दैत्य का सिर धड़ से ऐसे से अलग कर दिया, मानो शिव ने त्रिशूल हाथ मे लेकर गणेश का सिर धड़ से अलग कर दिया हो ॥ ११६ ॥

॥ इति श्री मार्कण्डेय पुराण का चंडीचरित्र चंड-मुंड-वध नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

॥ सोरठा ॥ अनेकों घायलो ने दौड़कर शुंभ को जा पुकारा और कहा कि हमारे विकराल सैन्यसमूह एवं सेनापतियों को देवी ने मार दिया है ॥ ११७ ॥ ॥ दोहा ॥ राजा ने उसी स्थान पर यह कहा कि मैं सत्य कह रहा हूँ कि मैं उसे जीवित नही छोड़ूंगा ॥ ११८ ॥ यह उक्ति चंडी ने स्वयं शुंभ की जिह्वा पर बैठकर कहलायी और ऐसा लगा मानो असुर ने अपनी मृत्यु को स्वयं निमन्त्रण दिया हो ॥ ११९ ॥ ॥ दोहा ॥ शुंभ एवं निशुंभ दोनो ने बैठकर तब विचार-विमर्श किया कि सारी सेना को बुलाकर उसमे से परम बलवान को (चंडी से युद्ध करने के लिए) चुन लिया जाय ॥ १२० ॥ मंत्रियो ने सलाह दी कि इस कार्य के लिए रक्तबीज को भेजिए, वह पर्वत को एक छोटे से पत्थर के समान उठाकर दे मारेगा और ललकारकर चंडी को नष्ट कर देगा ॥ १२१ ॥ ॥ सोरठा ॥ किसी दूत को भेजा जाय जो उसे बुलाकर ले आए, क्योंकि उसने

।। दोहरा ।। स्रोणतबिंद पै दैत इकु गयो करी अरदास। राज बुलावत सभा मै बेग चलो तिह पास ।। १२३ ।। रकतबीज न्रिप सुंभ को कीनो आन प्रनाम। असुर सभा मधि भाउ करि कह्यो करहु मम काम ।। १२४ ।। ।। स्वैया ।। स्रउणत बिंद को सुंभ निसुंभ बुलाइ बिठाइ कै आदर कीनो। दै सिर ताज (मू०ग्रं०८५) बडे गज राज सु बाज दए रिझवाइकै लीनो। पान लै दैत कही इह चंड को रुंड करों अब मुंड विहीनो। ऐसे कह्यो तिन मद्धि सभा न्रिप रीझकै मेघ अडंबर दीनो ।।१२५।। स्रोणतबिंद को सुंभ निसुंभ कह्यो तुम जाहु महाँ दलु लै कै। छार करो गरुए गिरराजहि चंड पचार हनो बलु कै कै। कानन मै न्रिप की सुनि बात रिसाल चल्यो चढ़ि ऊपरि गै कै। मानो प्रतच्छ हो अंतक दंत को लै कै चल्यो रन हेत जु छै कै ।। १२६ ।। ।। स्वैया ।। बीजरकत्र सु बंब बजाइ कै आगै किए गज बाज रथइआ। एक ते एक महाँ बलि दानव मेर को पाइन साथ मथइआ। देखि तिनै सुभ अंग सु दीरघ कउच सजे कट

अपने अपरिमित भुजबल से इन्द्र को जीता था ।। १२२ ।। ।। दोहा ।। एक दैत्य गया और उसने रक्तबीज के सम्मुख प्रार्थना की कि आपको राजसभा में बुलाया गया है, कृपया शीघ्र चलिए ।। १२३ ।। रक्तबीज ने आकर राजा को प्रणाम किया और राजसभा मे विनीत होकर कहा कि बताइए, मेरे योग्य क्या काम है ? ।। १२४ ।। ।। सवैया ।। रक्तबीज को शुभ-निशुंभ ने आदरपूर्वक बैठाया। सिर पर धारण करने के लिए मुकुट, हाथी एवं घोड़े उसे प्रदान किये, जिसे दैत्य ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। पान का बीड़ा लेकर रक्तबीज ने कहा कि मैं अभी चंडिका का सिर धड़ से अलग कर देता हूँ। उसकी सभा-मध्य ऐसी घोषणा से प्रसन्न होकर राजा ने उसे उपहारस्वरूप एक भयकर गर्जना करनेवाला नगाड़ा तथा छत्र दिया ।। १२५ ।। शुभ-निशुभ ने कहा कि अब एक बड़ा दल लेकर तुम जाओ तथा जहाँ दुर्गा है उस बड़े पहाड़ को ध्वस्त कर दुर्गा का नाश कर दो। राजा की बात सुनकर रक्तबीज क्रोधित होकर चढ़ाई के लिए चल दिया। वह ऐसा लग रहा है मानो हाथी के रूप मे काल स्वय प्रत्यक्ष होकर उसके (रक्तबीज के) क्षय के लिए उसे युद्धभूमि की ओर ले जा रहा हो ।। १२६ ।। ।। सवैया ।। रक्तबीज ने नगाड़े आदि की ध्वनि के साथ हाथी, अश्व एव रथियो को आगे बढाया। पर्वतो को पैरो तले रौंद देनेवाले एक से एक बली दानवो के कवच एव तरकश बँधे अग अत्यन्त

बाँधि मथइआ। लीने कमानन बान क्रिपान समान कै साथ लए जु सथइआ ॥ १२७ ॥ ॥ दोहरा ॥ रकतबीज दल साजिकै उतरे तट गिरराज। स्रवण कुलाहल सुनि शिवा कर्यो जुद्ध को साज ॥ १२८ ॥ ॥ सोरठा ॥ हुइ सिंघहि असवार गाज गाज कै चंडका। चली प्रबल अस धार रकतिबीज के बध नमित ॥ १२९ ॥ ॥ स्वैया ॥ आवत देख कै चंड प्रचंड को स्रोणतबिंद महा हरख्यो है। आगै ह्वै सत्र धसे रन मद्धि सक्रुद्ध कै जुद्धहि को सरख्यो है। लै उमड्यो दलु बादलु सो कबि लै जसु या छबि को परख्यो है। तीर चले इम बीरन के बहु मेघ मनो बलु कै बरख्यो है ॥ १३० ॥ ॥ स्वैया ॥ बीरन के कर ते छुट तीर सरीरन चीर के पार पराने। तोर सरासन फार कै कउचन मीनन के रिप जिउँ थहराने। घाउ लगे तन चंड अनेक सु स्रउण चल्यो बहि कै सरताने। मानहु फार पहार हूँ को सुत तचछक के निकसे करबाने ॥ १३१ ॥ बीरन के कर ते छुट तीर सु चंडका सिंघनि जिउँ भभकारी। लै करि बान कमान क्रिपान गदा गहि चक्र छुरी अउ कटारी।

बलिष्ठ एव दीर्घ दिखाई दे रहे थे। सब साथी सैनिक धनुष, बाण, कृपाणो से सुसज्जित थे ॥ १२७ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार रक्तबीज दल के साथ उस पर्वत के निकट आया जहाँ देवी का निवास था। दूसरी ओर असुर-दल के कोलाहल को सुन देवी ने भी युद्ध का उपक्रम किया ॥ १२८ ॥ ॥ सोरठा ॥ चडी घोर गर्जन के साथ सिंह पर सवार हुई और प्रबल कृपाण को धारण कर रक्तबीच के वध के लिए चल दी ॥ १२९ ॥ ॥ सवैया ॥ प्रचंड चडिका को आती हुई देखकर रक्तबीज बहुत प्रसन्न हुआ और आगे बढकर क्रोधवान होकर युद्ध करने के लिए उद्यत हुआ। वह सेना के रूप मे मानो बादलो को ले चला आ रहा हो और कवि के अनुसार वीरो के बाण इस तरह चलने लगे मानो घनघोर बादल बरस रहे हो ॥ १३० ॥ ॥ सवैया ॥ वीरो के हाथों से छूटे हुए तीर शरीरों को पार कर निकल जा रहे हैं। तीर धनुषो को तोड़ते कवचों को भेदते हुए शत्रुओ के शरीर मे ऐसे जा गड़ते है, मानो बगुला मछली पकड़ने के ध्यान मे जाकर पानी मे खड़ा हो। चडिका के शरीर पर अनेकों घावों के लगने से रक्त की नदियाँ इस प्रकार वह निकली हैं मानो पहाड़ को फोड़कर लाल रग मे रँगे साँप तेज़ी से गमन कर रहे हो ॥ १३१ ॥ जब चडिका सिंह के समान दहाड़ी तो वीरों के हाथों से तीर छूटकर जा

काट कै दामन छेद कै भेद कै सिंधर की करी भिन अँबारी। मानहु आग लगाइ हनू गड़ लंक अवास की डारी अटारी ॥ १३२ ॥ तोर कै मोर कै दैतन के मुख घोर कै चंड महा असि लीनो। जोर कै कोर कै ठोर कै बीर सु राछस को हति कै तिह दीनो। खोर कै तोर कै बोर कै दानव लै तिन के करे हाड चबीनो। स्रउण को पान (मू०ग्रं०८६) कर्यो जिउँ दवा हरि सागर को जल जिउँ रिखि पीनो ॥ १३३ ॥ ॥ स्वैया ॥ चंड प्रचंड कुवंड करं गहि जुद्ध कर्यो न गने भट आने। मार दई सभ दैत चमूँ तिह स्रउणत जंबुक ग्रिज्झ अघाने। भाल भयानक देखि भवानी को दानव इउ रन छाड पराने। पउन के गउन के तेज प्रताप ते पीपर के जिउँ पात उडाने ॥ १३४ ॥ ॥ स्वैया ॥ आहव मै खिझ कै बरचंड करं धर कै हरि पै अर मारे। एकन तीरन चक्र गदा हति एकन के तन केहरि फारे। है दल गै दल पै दल घाइ कै मार रथी बिरथी कर डारे। सिंधुर ऐसे परे तिह ठउर जिउँ भूम मै

गिरे। चंडिका ने बाण, कमान, कृपाण, गदा, चक्र और कटार आदि से छत्रो को छिन्न-भिन्न कर हाथियो के हौदो को इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, मानो हनुमान ने लका को तहस-नहस कर इधर-उधर फेक दिया हो ॥ १३२ ॥ चडिका ने हाथ मे कृपाण लेकर दैत्यो के मुखो को तोड़कर मरोड दिया। असुरो की पक्तियो की पक्तियो का हनन कर दिया, उनको और आगे बुला-बुलाकर उनकी हड्डियो को तोड डाला। चडिका ने इस प्रकार रक्तपान किया जैसे अगस्त्य ऋषि ने समुद्र को पी डाला था ॥ १३३ ॥ ॥ सवैया ॥ प्रचड चडिका ने धनुप हाथ मे पकड़कर इतने दैत्यो को मार डाला कि गिना नही जा सकता। दैत्यो की चतुरगिणी सेना मार दी गई और उनके रक्त को गीदड़ों और गिद्धो ने जी भर कर पिया। भवानी के भयानक मस्तक को देखकर दानव इस प्रकार युद्ध से भागे जैसे तेज पवन के प्रभाव से पीपल के पत्ते उड़ते है ॥ १३४ ॥ ॥ सवैया ॥ प्रचड दुर्गा ने युद्ध में खीझकर हाथ में कृपाण पकड़कर घोडे एवं शत्रुओ का विनाश कर दिया। किसी को तीर से, किसी को चक्र से तथा किसी को गदा से मार दिया। कई शत्रुओं के तनों को शेर ने फाड डाला। दलों के दल पैदलो को मारकर दुर्गा ने कई रथियों को रथ-विहीन कर दिया। धरती पर पड़े हाथी ऐसे लग रहे है, मानो धरती पर बड़े-बड़े पहाड़ लुढ़के पड़े हों ॥ १३५ ॥

भूमि गिरे गिर भारे ॥ १३५ ॥ ॥ दोहरा ॥ रकतबीज की चमूँ सभ भागी करि तिह त्रास । कह्यो दैत पुनि घेरि कै करो चंड को नास ॥ १३६ ॥ ॥ स्वैया ॥ कानन मै सुनिकै इह बात सु बीर फिरे कर मै असि लै कै । चंड प्रचंड सु जुद्धु कर्यो बलि कै अति ही मन क्रुद्धत ह्वै कै । घाउ लगै तिन कै तन मै इम स्रउन गिर्यो धरनो पर चवै कै । आग लगे जिमु कानन मै तन तिउ रही बानन की धुनि ह्वै कै ॥ १३७ ॥ ॥ स्वैया ॥ आइस पाइकै दानव को दल चंड के सामुहि आइ अर्यो है । ढार अउ साँग क्रिपानिनि लै कर मै बर बीरन जुद्ध कर्यो है । फेर फिरे नहि आहव ते मन महि तिह धीरज गाढो धर्यो है । रोक लई चहुँ ओर ते चंड सुभान मनो परबेख पर्यो है ॥ १३८ ॥ कोप कै चंड प्रचंड कुवंड महा बल कै बलवड सँभार्यो । दामन जिउँ घन से दल पैठकै कै पुरजे पुरजे दलु मार्यो । बाननि साथ बिदार दए अरि ता छबि को कवि भाउ बिचार्यो । सूरज की किरने सर मासहि रेन अनेक तहाँ करि डार्यो ॥ १३९ ॥ ॥ स्वैया ॥ चंड चमूँ बहु दैतन की

॥ दोहा ॥ रक्तबीज की सारी सेना भाग खडी हुई । भागती हुई सेना को रोककर दैत्य ने ललकारकर कहा कि घेरकर चडिका को मार डालो ॥ १३६ ॥ ॥ सवैया ॥ यह सुनकर दैत्य वीर हाथो मे तलवारे लिये फिर घूम पड़े और मन मे अत्यन्त क्रुद्ध होकर चडिका से घोर युद्ध करने लगे । उनके शरीरो पर लग रहे घावो से इस प्रकार रक्त बह रहा है और तीरो की आवाज़ ऐसे आ रही है जैसे जगल मे आग प्रवाह-रूप मे लगने से तिनको की चटककर जलने की आवाज आ रही हो ॥ १३७ ॥ ॥ सवैया ॥ दानव की आज्ञा पाकर उसका दलसमूह चडी के सामने आ जुटा है और ढाल, कृपाण, बर्छी लेकर घनघोर युद्ध कर रहा है । अब वे अत्यन्त धैर्य से युद्ध मे प्रवृत्त है और रण से भाग नही रहे है । उन्होने चारो ओर से चडी को ऐसे घेर लिया है, मानो सूर्य को चारो ओर से बादलो द्वारा घेर लिया गया हो ॥ १३८ ॥ चडिका ने क्रोधित होकर अपने धनुष को सँभाला और जिस प्रकार बादलो मे बिजली चमकती है, दुर्गा ने अरिदल को खड-खड कर डाला । बाणो से शत्रुओ को नष्ट करती हुई दुर्गा कवि को ऐसे लगती है कि उसके तीर तो मानो सूर्य की प्रचड किरणो की तरह चल रहे हो और दैत्यो के मांस के टुकड़े धूल की तरह इधर-उधर उड़ रहे हो ॥ १३९ ॥ ॥ सवैया ॥ चडिका ने दैत्यो

हति फेरि प्रचंड कुवंड सँभार्यो। बानन सों दल फोर दयो बल कै बर सिंघ महा भभकार्यो। मार दए सिरदार बड़े धर स्रउण बहाइ बडो रन पार्यो। एक के सीस दयो धन यौ जनु कोप के गाज के मंडप मार्यो ॥ १४० ॥ ॥ दोहरा ॥ चंड चमूँ सभ दैत की ऐसे दई सँघार। पउन पूत जिउँ लंक को डार्यो बाग उखार ॥ १४१ ॥ (मू०ग्रं०८७) ॥ स्वैया ॥ गाज कै चंड महाँबलि मेघ सी बूँदन जिउँ अर पै सर डारे। दामन सो खग लै करि मै बहु बीर अधंधर कै धरमारे। घाइल घूम परे तिह इउ उपमा मन मै कवि यौ अनुसारे। स्रउन प्रवाह मनो सरता तिह मद्धि धसी करि लोथ करारे ॥ १४२ ॥ ऐसे परे धरनी पर बीर सु कै कै दुखंड जु चंडहि डारे। लोथन ऊपर लोथ गिरी बहि स्रउन चल्यो जनु कोट पनारे। लै करि ब्याल सो ब्याल बजावत सो उपमा कवि यौ मन धारे। मानो महाँ प्रलए बहे पउन सो आपसि मै भिरहैं गिर भारे ॥ १४३ ॥ ॥ स्वैया ॥ लै कर मै असि दारुन काम करे रन मै अर सो अरनी

की काफी सेना का हनन कर पुनः प्रचड धनुप को सँभाला। तीरो से शत्रुदल को फाड़ दिया तथा इधर शेर भी प्रचड रूप से दहाड़ा। बड़े-बड़े सेनापतियो को मार डाला और रक्त वहाकर घनघोर युद्ध मचा दिया। एक दैत्य के सिर पर धनुष मारकर उसे इस प्रकार गिरा दिया मानो बिजली ने कडककर एक स्तम्भ को धरती पर गिराकर ध्वस्त कर दिया हो ॥ १४० ॥ ॥ दोहा ॥ चडिका ने दैत्यो की चतुरगिणी सेना को ऐसे नष्ट कर दिया जैसे पवनपुत्र (हनुमान) ने लंका की (अशोक) वाटिका को उखाड़ फेका था ॥ १४१ ॥ ॥ सवैया ॥ जिस प्रकार वादल जल की बूंदे वरसाता है इसी प्रकार चडिका ने शत्रुओ पर वाण-वर्षा की। अपने बिजली के समान चमकते खड़ग को हाथ मे लेकर कई वीरो को आधा-आधा करके काट डाला। घायल शूरवीर ऐसे पड़े हैं, मानो कवि ने रक्त की नदी वहती हुई देखी है और इन शूरवीरो की लाशें इस रक्त-प्रवाह मे धँसकर नदी का किनारा वना रही है ॥ १४२ ॥ चंडिका ने वीरो के शरीरो के दो-दो टुकडे कर उन्हे गिरा दिया है। लाशों पर लाशें पटी पड़ी है और करोडो नालियो मे रक्त वह निकला है। भूत एव गण आदि अपने हाथों मे हाथियो को पकड़कर एक-दूसरे से ऐसे टकरा रहे हैं, मानो प्रलयकाल मे वड़े-वड़े पर्वत आपस मे भिड़ रहे हों ॥ १४३ ॥ ॥ सवैया ॥ भीषण कृपाण हाथ मे लेकर (चंडी ने)

है। सूर हनै बलिकै बलुवान सु स्रउन चल्यो बहि बैतरनी है। बाँह कटी अध बीच ते सुंड सी सो उपमा कवि ने बरनी है। आपसि मै लर कै सु मनो गिर ते गिरी सरप की दुइ घरनी है॥ १४४॥ ॥ दोहरा॥ सकल प्रबल दल दैत को चंडी दयो भजाइ। पाप ताप हरि जाप ते जैसे जात पराइ॥१४५॥ ॥ स्वैया॥ भान ते जिउँ तम पउन ते जिउँ घन मोर ते जिउँ फन तिउँ सुकचाने। सूर ते कातुर कूर ते चातुर सिंघ ते सातुर एणि डराने। सूम ते जिउँ जस बिओग ते जिउँ रस पूत कपूत ते जिउँ बंसु हाने। धरम जिउँ क्रुद्ध ते भरम सुबुद्ध ते चंड के जुद्ध ते दैत पराने॥ १४६॥ फेर फिरे सभ जुद्ध के कारन लै करवारन क्रुद्ध हुइ धाए। एक लै बान कमानन तान कै तूरन तेज तुरंग तुराए। धूर उडी खुर पूरन ते पथ ऊरध हुइ रवि मंडल छाए। मानहु फेर रचे बिधि-लोक धरा खट आठ अकाश बनाए॥ १४७॥ चंड प्रचंड कुवंड लै बाननि दैतन के तन तूलि जिउँ तूँबे। मार गईंद दए करवार लै दानव मान गयो उड पूँबे। बीरन के सिर की सित पाग चली बहि स्रोनत ऊपर

रणस्थल मे प्रचड वेग से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। शूरमाओं को काट डालने के फलस्वरूप रक्तधारा वैतरणी के समान बह निकली है। हाथो को कटी हुई हाथी की सूँड़ के समान कटकर गिरते देखकर कवि को ऐसे लगा है, मानो नागिनें आपस मे लड़-लड़कर छिटक-छिटककर दूर जा गिर पड़ रही है॥ १४४॥ ॥ दोहा॥ दैत्यो के प्रबल दल को चडी ने वैसे ही भगा दिया जैसे हरि-जाप से पाप एवं सब प्रकार के संताप भाग जाते है॥ १४५॥ ॥ सवैया॥ जिस प्रकार सूर्य से अन्धकार, वायु से बादल एवं मोर से सर्प भयभीत होता है; जैसे शूरवीर से कायर एवं झूठ से चतुराई, सिह से पीड़ा-सहित हिरण डरते हैं; जैसे कृपण से यश, वियोग से आनन्द एव कुपुत्र से कुल का नाश होता है तथा क्रोध से धर्म एवं सदेह से बुद्धि विनष्ट होती है, उसी प्रकार दुर्गा से युद्ध करते हुए दैत्य भाग गए एवं विनष्ट हो गए॥ १४६॥ पुनः क्रोधित होकर युद्ध करने के लिए दैत्य चले। धनुष-बाणों को तानकर तेज अश्वों पर सवार वे भागे चले आ रहे है, उनके अश्वों के खुरो से उड़ी धूल ने रविमंडल को ढँक लिया है और ऐसा लगता है कि ब्रह्मा ने फिर से धरती का सृजन कर चौदह भुवनों का निर्माण-कार्य प्रारम्भ किया है॥ १४७॥ प्रताप-शालिनी दुर्गा ने धनुष-बाण उठाकर दैत्यो के शरीरों को रुई के समान

खूँबे। मानहु सारसुती के प्रवाह मै सूरन के जस के उठे बूँबे ॥ १४८ ॥ ॥ स्वैया ॥ दैतन साथ गदा गहि हाथ सु क्रुद्ध ह्वै जुद्धु निशंग कर्यो है। पान क्रिपान लए बलवान सु मार तबै दल छार कर्यो है। पाग समेत गिर्यो सिर एक को भाउ इहै कबि ताको धर्यो है। पूरन पुंन (मू०ग्रं०८८) भए नभ ते सु मनो भुअ टूट नछत्र पर्यो है ॥ १४९ ॥ बारद बारन जिउँ निरवार महाँ बल धार तबै इह कीआ। पान लै बान कमान को तान सँघार सनेह ते स्रउनत पीआ। एक गए कुमलाइ पराइ कै एकन को धरक्यो तन हीआ। चंड के बान किधो कर भानहि देखिकै दैत गई दुत दीआ ॥ १५० ॥ लै कर मै असि कोप भई अति धार महाँबल को रन पार्यो। दउर कै ठउर हते बहु दानव एक गइंद्र बडो रन मार्यो। कउतकि ता छबि को रन पेख तबै कबि इउ मन मद्धि बिचार्यो। सागर बाँधन के समए नल मानो पहार उखार कै डार्यो ॥१५१॥

धुनकर उड़ा दिया। कृपाण से हाथियो को मारकर चडिका ने राक्षसो के अहकार को आक की रुई की धज्जियो के समान उड़ाकर छिन्न-भिन्न कर दिया। वीरो के शिर की पगड़ियाँ रक्त-धार मे इस प्रकार बह रही है जैसे (पानी मे) कुकुरमुत्ते बह रहे हो। यह दृश्य ऐसा भी लगता है, मानो सरस्वती के प्रवाह से शूरवीरो के यश रूपी बुलबुले वहते चले जा रहे है ॥ १४८ ॥ ॥ सवैया ॥ दुर्गा ने हाथ मे गदा लेकर दैत्यो के साथ घनघोर युद्ध किया। कृपाण धारणकर बलवानो के दलों को धूल में मिला दिया। पगडी-सहित एक सिर को गिरता हुआ देखकर कवि को ऐसा लगा, मानो पुण्य पूर्ण हो जाने पर नभ-मडल से नक्षत्र टूटकर भूमडल पर आ पडा हो ॥ १४९ ॥ बादलो के आकार वाले वड़े-वड़े हाथी दूर फेके जा रहे है। हाथ मे धनुष-वाण लेकर एवं सहार करके वडे स्नेह से दुर्गा ने रक्तपात किया है। दुर्गा को देख कर एक ओर तो दैत्यो के चेहरे निस्तेज हो गए है तथा दूसरी ओर कुछ दैत्यो का हृदय धडकने लगा है। दुर्गा के वाण सूर्य की किरणो के समान हैं, जिन्हे देखते ही दैत्य रूपी छोटे-छोटे दीपक बुझते चले जा रहे है ॥ १५० ॥ अत्यन्त क्रोधित होकर, हाथ मे तलवार लेकर चडिका ने घनघोर युद्ध किया। दौड़कर दुर्गा ने वहुत से दानवो का नाश किया और एक वहुत वड़े हाथी को युद्धस्थल में विनष्ट किया। रणस्थल की उस छविमय घटना को देखकर कवि को ऐसा लग रहा है, मानो समुद्र पर

॥ दोहरा ॥ मार जबै सैना लई तबै दैत इह कीन । शस्त्र धार कर चंड के बधिबे को मन दीन ॥१५२॥ ॥ स्वैया ॥ बाहनि सिंघ भयानक रूप लख्यो सभ दैत महाँ डरपायो । संख लिए कर चक्र अउ बक्र सरासन पत्र बचित्र बनायो । धाइ भुजा बल आपन ह्वै हम सो तिन यौ अति जुद्धु मचायो । क्रुद्ध कै स्रउणत बिंद कहै रन याही ते चंडका नाम कहायो ॥ १५३ ॥ मारि लयो दलि अउर भज्यो तब कोप कै आपन ही सु भिर्यो है । चंडि प्रचंडि सो जुद्धु कर्यो अस हाथि छुट्यो मन नाहि गिर्यो है । लै कै कुवंड करं बल धारकै स्रोन समूह मै ऐसे तर्यो है । देव अदेव समुंद्र मथ्यो मानो मेर को मद्धि धर्यो सु फिर्यो है ॥ १५४ ॥ क्रुद्ध कै जुद्ध को दैत बली नद स्रोन को पैर के पार पधार्यो । लै करवार अउ ढार सँभार के सिंघ को दउर कै जाइ हकार्यो । आवत पेखिकै चंड कुवंड ते बान लग्यो तन मूरछ पार्यो । राम के भ्रातन जिउँ हनुमान को सैल समेत धरा पर डार्यो ॥ १५५ ॥

पुल बाँधने के लिए नल-नील ने पहाड़ को उखाड़कर फेका हो ॥ १५१ ॥ ॥ दोहा ॥ जव सेना समाप्त हो गई तब दैत्य ने स्वय शस्त्र धारण कर चडिका के वध का सकल्प मन मे किया ॥ १५२ ॥ ॥ सवैया ॥ सिंह पर सवार दुर्गा के भयानक रूप को देखकर दैत्य बहुत भयभीत हो गए । देवी ने हाथ मे शंख, चक्र एवं धनुष धारण कर विचित्र रूप बना लिया है । रक्तबीज ने आगे बढकर अपने भुजबल को जानते हुए दुर्गा को युद्ध करने की चुनौती दी और कहा कि तुमने अपना नाम चडिका रखा है, मुझसे आकर युद्ध कर ॥ १५३ ॥ जब रक्तबीज का दल नष्ट हो गया और भाग गया तो अत्यन्त क्रोधित होकर वह स्वय ही युद्ध मे आ भिड़ा । उसने चंडिका से प्रचंड युद्ध किया और इस युद्ध मे बेशक उसके हाथ से तलवार छूट गई है । फिर भी वह हतोत्साहित नही हुआ । हाथ मे धनुप लेकर वह रक्त-सागर मे ऐसे तैर रहा है, मानो वह देव-दानवो द्वारा समुद्र-मंथन के समय प्रयुक्त किया हुआ सुमेरु पर्वत हो ॥ १५४ ॥ बलवान दैत्य ने क्रोधित होकर युद्ध किया और रक्त-सागर को तैरकर पार करता हुआ हाथ मे ढाल-तलवार सँभाल कर उसने दौड़कर सिंह को जा ललकारा । उसे आता हुआ देखकर दुर्गा ने अपने धनुष से बाण मारा जिससे दैत्य मूर्च्छित होकर गिर पड़ा । यह दृश्य ऐसा लग रहा था जैसे सजीवनी बूटी लाते हुए पर्वत-समेत हनुमान को राम के

॥ स्वैया ॥ फेरि उठ्यो कर लै करवार को चंड प्रचंड सिउ जुद्धु कर्यो है। घाइल कै तन केहर ते बहि स्रउन समूह धरान पर्यो है। सो उपमा कबि ने बरनी मन की हरनी तिह नाउ धर्यो है। गेरू नगं पर कै बरखा धरनी परि मानहु रंग ढर्यो है॥ १५६ ॥ स्रोणत बिंदु सो चंड प्रचंड सु जुद्धु कर्यो रन मद्धि रुहेली। पै दल मै दल मीज दयो तिल ते जिमु तेल निकारत तेली। (मू०ग्रं०८६) स्रउन पर्यो धरनी पर च्वै रंगरेज़ की रेनी जिउँ फूट कै फैली। घाउ लसै तन दैत के यौ जन दीपक मद्धि फनूस की थैली॥ १५७ ॥ स्रउनत बिंद को स्रउन पर्यो धरि स्रउनत बिंद अनेक भए है। चंडि प्रचंडि कुवंडि सँभारि कै बाननि साथ सँघार दए है। स्रउन समूह समाइ गए बहुरो सु भए हति फेरि लए है। बारद धार परै धरनी मानो बिबर ह्वै मिट कै जु गए है॥ १५८ ॥ ॥ स्वैया ॥ जेतक स्रउन की बूँद गिरै रन तेतक स्रउनत बिंद ह्वै आई। मार ही मार पुकार हकार कै चंडि प्रचंडि कै

भाई भरत ने मारकर नीचे गिरा दिया हो ॥१५५॥ ॥ सवैया ॥ (दैत्य) पुनः हाथ मे तलवार लेकर प्रचड चडिका से युद्ध कर रहा है और उसने सिह को घायल कर दिया है। सिह का रक्त धरती पर टपक रहा है। इस दृश्य की उपमा कवि ने अत्यन्त मनोहारी रूप से वर्णित किया है और कहा है कि यह ऐसा लग रहा है, मानो गेरू के पहाड़ से, वर्षा ऋतु मे, लाल रंग की धाराएँ धरती पर ढल रही हो ॥ १५६ ॥ दैत्य के साथ प्रचंड चंडिका ने अत्यत क्रुद्ध होकर घनघोर युद्ध किया। पैदल एवं घुडसवारों को इस प्रकार मसल दिया, जैसे तिल से तेल निकलते समय तेली तिलों को पेर देता है। धरती पर रक्तधारा इस प्रकार बह निकली है, जैसे रंगरेज़ की थैली से फूटकर रग बह निकला हो। दैत्यो के शरीर पर घाव इस प्रकार शोभायमान हो रहे है, जैसे दीपको के बीच मे फानूस की थैली शोभायमान प्रतीत हो रही हो ॥ १५७ ॥ रक्तबीज का रक्त धरती पर गिरते ही अनेकों रक्तबीज पैदा हो गए। चंडिका ने धनुष धारण कर बाणो से उन सबका सहार कर दिया। पैदा होनेवाले दैत्य मारे गए, परन्तु उनके रक्त से फिर और दैत्य पैदा हो गए। बादलों की धार के समान उनका रक्त धरती पर प्रवाहित हो रहा था और बुलबुलों के समान वे नष्ट होते चले जा रहे थे ॥ १५८ ॥ ॥ सवैया ॥ जितनी रक्त की बूंदे धरती पर गिरती है, उतने ही रक्तबीज और पैदा हो जाते

सामुहि धाई। पेखिकै कौतकि ता छिन मै कवि ने मन मै उपमा ठहराई। मानहु शीश महल्ल कै बीच सु मूरति एक अनेक की झाई ॥ १५९ ॥ स्रउनत बिंद अनेक उठे रन क्रुद्ध कै जुद्ध को फेर जुटे है। चंडि प्रचंडि कमान ते बान सु भान की अंस समानं छुटे है। मार बिदार दए सु भए फिर लै मुंगरा जिमु धान कुटे है। चंड दए सिर खंड जुदो करि बिल्लन ते जन बिल्ल तुटे है ॥ १६० ॥ स्रउनत बिंद अनेक भए असि लै करि चंडि सु ऐसे उठे है। बूंदन ते उठिकै बहु दानव बानन बारद जान वुठे है। फेरि कुवंडि प्रचंडि सँभारकै बान प्रहार सँघार सुटे है। ऐसे उठे फिर स्रउन ते दैत सु मानहु सीत ते रोम उठे है ॥ १६१ ॥ ॥ स्वैया ॥ स्रउनत बिंद भए इकठे बरचंड प्रचंड को घेरि लयो है। चंड अउ सिंघ दुहू मिलिकै सभ दैतन को दल मार दयो है। फेरि उठे धुन को करिकै सुनि कै मुनि के छुटि ध्यानु गयो है। भूल गए सुर के अवसान गुमानन स्रउनत बिंद गयो है ॥ १६२ ॥ ॥ दोहरा ॥ रकतबीज सो

हैं जो 'मारो, मारो' की आवाज़ के साथ चडिका के सामने दौडे चले आते है। यह दृश्य देखकर कवि के मन को यह उपमा सूझती है कि यह दृश्य ऐसा है, मानो शीशमहल मे एक ही व्यक्ति की अनेको मूर्तियाँ दिखाई दे रही हो ॥ १५९ ॥ अनेको रक्तबीज उठकर क्रोधित होकर युद्ध में आ जुटे है। इधर चडिका के धनुष से बाण सूर्य की किरणो के समान छूट रहे है। दैत्यों के सिर ऐसे कूटे जा रहे है, मानो मुँगरी से धान कूटा जा रहा हो। चडिका ने इस प्रकार सिर धड से अलग किए है, मानो बेल के पेड़ से बेल टूटकर अलग हो रहे है ॥ १६० ॥ अनेको रक्तबीज उठकर चडिका के समक्ष खडे है। दैत्य रक्तबूंदो से बनते चले जा रहे है, परन्तु चडिका के बाण तो मानो साक्षात् बादलो के समान बरस रहे है। दुर्गा ने धनुष सँभालकर बाणो से दैत्यो को मार डाला है, परन्तु वे दैत्य पुनः ऐसे पैदा हो गए है जैसे सर्दी मे पानी से घनघोर कुहरा पैदा होता चला जाता है ॥ १६१ ॥ ॥ सवैया ॥ रक्तबीजो ने एकत्र होकर चडिका को घेर लिया है। चडी और सिह दोनो ने मिलकर दैत्यसमूह का सफाया कर दिया है। दैत्य पुनः ध्वनि करते हुए उठते है और भीषण कोलाहल से ऋषियो का ध्यान भग हो गया है। दैत्य रक्तबीज को मारने के देवताओ के सारे प्रयत्न विफल हो गए, परन्तु रक्तबीज का गर्व चूर नही हो सका ॥ १६२ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार

चंडका इउ कीनो बर जुद्धु। अगनत भए दानव तबै कछु न बसायो क्रुद्धु ॥ १६३ ॥ ॥ स्वैया ॥ पेखि दसोदिस ते बहु दानव चंड प्रचंड तची अखियाँ। तब लैके क्रिपान जु काट दए अर फूल गुलाब की जिउँ पखियाँ। स्रउन की छीट परी तन चंड के सो उपमा कवि ने लखियाँ। जनु कंचन मंदर मै जरिआ जरि लाल मनी जु बना रखियाँ ॥ १६४ ॥ क्रुद्ध कै जुद्ध कर्यो बहु चंडन एतो कर्यो मधु सो अबिनासी। दैतन के बध कारन को निज भाल ते ज्वाल की लाट निकासी। काली प्रतच्छ भई तिह ते (मू०ग्रं०९०) रन फैल रही भय भीर प्रभासी। मानहु स्त्रिंग सुमेर को फोरिकै धार परी धर पै जमुनासी ॥१६५॥ ॥ स्वैया ॥ मेरु हल्यो दहल्यो सुरलोकु दसो दिस भूधर भाजत भारी। चालि पर्यो तिह चउदहि लोक मै ब्रहम भयो मन मै भ्रम भारी। ध्यान रह्यो न जटी सु फटीधर यो बलि कै रन मै किलकारी। दैतन के बधि कारन को करि कालसी काली क्रिपान सँभारी ॥ १६६ ॥ ॥ दोहरा ॥ चंडी काली दुहूँ मिलि

रक्तबीज से चडिका ने श्रेष्ठ युद्ध किया, परन्तु अनेको दानव बनते ही गए और क्रोध करने का कोई फल-विशेष नही हुआ ॥ १६३ ॥ ॥ सवैया ॥ दसों दिशाओ मे दानवो को देखकर चडिका की आँखे क्रोध से फैल गयी और उसने कृपाण से राक्षसो को ऐसे काट डाला, जैसे गुलाब की पखुड़ियो को काटकर फेक दिया जाता है। देवी के शरीर पर पड़ी रक्त की बूंदो को देखकर कवि को ऐसे लगता है, मानो सोने के मदिर मे जडाऊ लाल मणियाँ सुशोभित हो रही हो ॥ १६४ ॥ दुर्गा ने इतना भयकर युद्ध किया, जैसे विष्णु ने मधु दैत्य के साथ युद्ध किया था। देवी ने दैत्यों के वध के लिए अपने मस्तक से एक ज्वाला निकाली, जिसके फलस्वरूप कालीदेवी प्रकट हुई और सारा रणस्थल भयभीत हो उठा। काली इस प्रकार प्रकट हुई, मानो सुमेरु पर्वत को फोड़कर यमुना की धारा प्रकट हुई हो ॥ १६५ ॥ ॥ सवैया ॥ सुमेरु पर्वत हिल गया, सुरलोक भयाक्रात हो उठा और दसो दिशाओ मे पर्वत उड़ने लगे। चौदह लोको मे हलचल मच गई और ब्रह्मा के मन मे भी तरह-तरह के संदेह पैदा होने लगे। दुर्गा की किलकारी को सुनकर शिव का ध्यान भी लगा न रह सका और धरती फटने लगी। अब कालीदेवी ने दैत्यो को मारने के लिए काल के समान कृपाण को अपने हाथ मे सँभाल लिया ॥ १६६ ॥ ॥ दोहा ॥ चंडीदेवी और कालीदेवी दोनो ने मिलकर यह विचार किया

कीनो इहै बिचार। हउ हनिहो तूँ स्रउन पी अरि दलि डारहि मारि ॥ १६७ ॥ ॥ स्वैया ॥ काली अउ केहरि संगि लै चंडि सु घेरे सभै बन जैसे दवा पै। चंड के बानन तेज प्रभाव ते दैत जरैं जैसे ईट अवा पै। कालका स्रउन पिओ तिन को कवि ने मन मै लियो भाउ भवा पै। मानहु सिंध को नीर सभै मिलि धाइकै जाइ परे है तवा पैं ॥ १६८ ॥ चंड हने अरु कालका कोप कै स्रउनत बिदन सो इह कीनो। खग्ग सँभार हकार तबै किलकार बिदार सभै दलु दीनो। आमिख स्रोन अच्यो बहु कालका ता छबि मै कवि इउ मन चीनो। मानो छुधातरु हुइकै मनुच्छ सु सालन लासहि सो बहु पीनो ॥ १६९ ॥ ॥ स्वैया ॥ जुद्ध रकत्रबीज कर्‌यो धरनी पर यौ सुर देखत सारे। जेतक स्रौन की बूँद गिरै उठि तेतक रूप अनेकहि धारे। जुगनि आन फिरी चहूँ ओर ते सीस जटा कर खप्पर भारे। स्रोनत बूँद परैं अचवै सभ खग्ग लै चंड प्रचंड सँघारे ॥ १७० ॥ काली अउ चंड कुवंड सँभार कै दैत सो जुद्ध निशंग सच्यो है।

कि मैं तो दैत्यों को मारूँगी और तुम (काली) उनका रक्त पान करती जाना ॥ १६७ ॥ ॥ सवैया ॥ काली को और सिंह को साथ लेकर चंडी ने दैत्यो को ऐसे घेर लिया, जैसे अग्नि की लपटें वन को घेर लेती हैं। चंडी के बाणो से दैत्य ऐसे जलने लगे, जैसे ईट के भट्ठे मे ईंटे जलती है। काली ने ऐसे रक्तपान प्रारम्भ कर दिया और रक्त को समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया, जैसे बादलो का जल बड़े गर्म तवे पर पड़ते ही नष्ट होता चला जाता है ॥ १६८ ॥ चडी ने दैत्यों का हनन किया और काली ने रक्त के साथ उपर्युक्त व्यवहार किया। खड़ग को सँभालकर और ललकारकर चडी ने दैत्यदल को नष्ट कर दिया तथा काली को मांसयुक्त रक्त पीते देखकर कवि के हृदय को ऐसे लगा, मानो कोई अत्यन्त भूखा मनुष्य पके मास के रस को पीकर अपनी भूख मिटाकर तृप्त हो रहा हो ॥ १६९ ॥ ॥ सवैया ॥ रक्तबीज के युद्ध को धरती पर सारे देवता (भय-विस्मय से युक्त होकर) देख रहे है कि किस प्रकार रक्तबीज के रक्त की बूंदे गिर रही है और कैसे पुनः अनेकों रक्तबीज बनते चले जा रहे है। सिर पर जटाओ और भारी खप्परों वाली योगिनियाँ चारो ओर से आकर वहाँ जुट गई है। प्रचड खड़ग के द्वारा देवी ने दैत्यो का संहार किया, परन्तु रक्त की बूंदे गिरते ही ये योगिनियाँ (धरती पर गिरने से पूर्व ही) उसका आचमन कर जाती है ॥ १७० ॥

मार महाँ रन मद्ध भई पहरेक लउ सार सों सार बज्यो है। स्रउनत बिंद गिर्यो धरनी पर इउ असि सो अर सीस भज्यो है। मानो अतीत कर्यो चित को धनवंत सभै निज माल तज्यो है ॥ १७१ ॥ ॥ सोरठा ॥ चंडी दयो बिदार स्रउन पान काली कर्यो। छिन मै डार्यो मार स्रउनत बिंद दानव महाँ ॥ १७२ ॥

॥ इति स्री मारकडे पुराने स्री चडी चरित्र उकति बिलास रकतबीज बधहि नाम पचमो धिआइ ॥ ५ ॥

॥ स्वैया ॥ तुच्छ बचे भज कै रन त्याग कै सुंभ निसुंभ पै जाइ पुकारे। स्रउनतबीज हन्यो दुह ने मिलि अउर महाँ भट मार बिदारे। इउ (मू०ग्रं०८१) सुनिकै उनि के मुख ते तब बोलि उठ्यो करि खग्ग सँभारे। इउ हनि हो बरचंडि प्रचंडि अजा बन मै जिम सिंघ पछारे ॥१७३॥ ॥ दोहरा ॥ सकल कटक के भटन को दयो जुद्ध को साज। शस्त्र पहर कै इउ कह्यो हनिहो चंडहि आजु ॥ १७४ ॥ ॥ स्वैया ॥ कोप कै

काली और चडी ने धनुष सँभालकर दैत्यो से सदेह-मुक्त होकर भीषण युद्ध किया। रणस्थल मे भीषण मारकाट हुई और लगभग एक प्रहर तक लोहे पर लोहा बजता रहा। रक्तबीज धरती पर गिर पड़ा और शत्रु का सिर तलवार से छिटककर ऐसे दूर जा पड़ा, मानो धनवान ने सन्यासी बनकर सारे धन-माल का त्याग कर दिया हो ॥ १७१ ॥ ॥ सोरठा ॥ चडी ने (रक्तबीज को) समाप्त कर दिया और उसके रक्त का पान काली ने कर लिया। इस प्रकार क्षण-भर मे रक्तबीज को मार डाला गया ॥ १७२ ॥

॥ इति श्री मार्कण्डेय पुराण के चडीचरित्र-उक्ति-विलास मे रक्तबीज-वध नामक पाँचवे अध्याय की समाप्ति ॥ ५ ॥

॥ सवैया ॥ जो छोटे-छोटे दैत्य बचे वे रण त्यागकर भागे और शुभ-निशुभ के समक्ष जाकर कहने लगे कि चडी और काली ने मिलकर रक्तबीज तथा अन्य महाबलियो को मार डाला है। यह सुनकर हाथ मे खड्ग सँभालकर वे (दोनो) चले कि हम चडी को ऐसे मार देगे जैसे सिंह बकरी को मार देता है ॥ १७३ ॥ ॥ दोहा ॥ सारी सेना के बलवानो को युद्ध के लिए सुसज्जित किया और शस्त्रो को पकडकर वे कहने लगे कि हम आज चडी का वध कर देगे ॥ १७४ ॥ ॥ सवैया ॥ क्रोधित होकर

सुंभ निसुंभ चढे धुनि दुंदभ की दस हूँ दिस धाई। पाइक अग्र भए मधि बाज रथी रथ साज कै पाँति बनाई। माते मतंग के पुंजन ऊपरि सुंदर तुंग धुजा फहराई। सक्र सो जुद्ध के हेत मनो धरि छाडि सपच्छ उडे गिर राई ॥१७५॥ ॥ दोहरा ॥ सुंभ निसुंभ बनाइ दलु घेरि लयो गिर राज। कवच अंग कसि कोप करि उठे सिंघ जिउ गाज ॥ १७६ ॥ ॥ स्वैया ॥ सुंभ निसुंभ सु बीर बली मन कोप भरे रन भूमहि आए। देखन मै सुभ अंग उतंग तुरा करि तेज धरा पर धाए। धूर उडी तब ता छिन मै तिह के कनका पग सों लपटाए। ठउर अडीठ के जै करबे कह तेज मनो मन सीखन आए ॥१७७॥ ॥ दोहरा ॥ चंड कालका स्रवन मै तनक भनक सुनि लीन। उतर स्रिग गिर राज ते महाँ कुलाहलि कीन ॥ १७८ ॥ ॥ स्वैया ॥ आवत देखि कै चंड प्रचंडि को कोप कर्‌यो मन मै अति दानो। नास करो इह को छिन मै करि बान सँभार बडो धनु तानो। काली के बक्र बिलोकन ते सु उठ्यो मन मै भ्रम जिउ जम जानो।

शुभ और निशुभ ने चढाई कर दी। नगाड़ो की ध्वनि दसो दिशाओ में फैल गई। सेना मे पैदल आगे, बीच मे अश्वारोही तथा (पीछे) रथियों ने पक्तियाँ बना ली। हाथियो पर सुन्दर ध्वजाएँ फहरा रही है और यह दृश्य ऐसा लगता है मानो इन्द्र से युद्ध करने के लिए पखो की सहायता से पर्वत उड़कर चले जा रहे हो ॥ १७५ ॥ ॥ दोहा ॥ शुभ-निशुभ ने पर्वत को घेर लिया और शरीरो पर कवचों को कसकर वे सिंहो के समान दहाड़ उठे ॥ १७६ ॥ ॥ सवैया ॥ शुभ एव निशुभ नामक बलशाली वीर कुपित होकर रणस्थल मे प्रविष्ट हुए। देखने मे सुदर अगो वाले बलिष्ठ अश्व शीघ्र ही धरती पर दौडने लगे। उस समय घनी धूल उड़ने लगी और धूल के कण अश्वो के अगो पर जमने लगे। वे ऐसे लग रहे थे मानो वे घोड़ो से तेज़ दौड़ने और विजय प्राप्त करने की शिक्षा लेने के इच्छुक (विद्यार्थी) हो ॥ १७७ ॥ ॥ दोहा ॥ चडी और कालिका के कानो मे भी इस आक्रमण की भनक पड़ी और वे गिरिराज (हिमालय) से नीचे उतरकर भीषण रूप से गर्जने लगी ॥१७८॥ ॥ सवैया ॥ चंडिका को आती हुई देखकर दानवो ने अत्यंत क्रोध किया और कहा कि इसको धनुष-बाण तानकर क्षण भर मे नष्ट कर दो। काली की टेढ़ी आँखों को देखकर यम का भ्रम हो रहा था। चडी एवं काली ने एक ही बार मे अनेकों बाण चला दिए और इस प्रकार चिंघाड़ने लगी मानो प्रलयकाल

बान समूह चलाइ दए किलकार उठ्यो जु प्रलै घन मानो ॥१७९॥ बैरन के घन से दल पैठि लयो करि मै धनु साइकु ऐसे। स्याम पहार से दैत हने तम जैसे हरे रबि की किरनै से। भाज गई धुजनी डरिकै कबि कोऊ कहै तिह की छबि कैसे। भीम को स्रउन भर्यो मुख देखि कै छाडि चले रन कौरउ जैसे ॥ १८० ॥ ॥ कबितु ॥ आग्या पाइ सुंभ की सु महाँ बीर धीर जोधे आए चंड ऊपर सु क्रोध कै बनी ठनी। चंडका लै बान अउ कमान काली किरपान छिन मधि कै कै बल सुंभ की हनी अनी। डरत जि खेत महाँ प्रेत कीने बानन सो बिचल बिथर ऐसे भाजगी अनी कनी। जैसे बारूथल मै सबूह बहे पउन हूँ के धूर उडि चले हुइकै कोटिक कनी कनी। (मू०ग्रं०९२) ॥ १८१ ॥ ॥ स्वैया ॥ खग्ग लै काली अउ चंडी कुवंडि बिलोकि कै दानव इउ दबटे है। केतक चाब गई मुखि कालका केतिन के सिर चंडि कटे है। स्रउनत सिंध भयो धर मै रन छाड गए इक दैत फटे है। सुंभ पै जाइ कही तिन इउ बहु बीर महाँ तिह ठउर लटे है ॥ १८२ ॥ ॥ दोहरा ॥ देखि भयानक जुद्ध को कीनो बिशन बिचार। शकति सहाइत के

मे बादल गरज रहे हो ॥ १७९ ॥ हाथ में धनुष-बाण लेकर वे शत्रुओ के दल मे धँस गई तथा काले पहाड़ो के समान दैत्यो को ऐसे मारने लगी, जैसे सूर्य की किरणे अधकार का नाश करती है। दैत्यो की सेना भाग खडी हुई और इस दृश्य को कवि क्या कहे। सेना भागती हुई ऐसी लग रही है मानो भीम के रक्तपान करते मुख को देखकर कौरव-सेना भाग रही हो ॥ १८० ॥ ॥ कवित्त ॥ शुभ की आज्ञा पाकर महाबली दैत्य चंडी पर चढ आए। चडिका ने धनुष-बाण और काली ने कृपाण हाथ मे लेकर क्षण भर मे शुभ की सेना का हनन कर दिया। वे महाप्रेत बने दानव चंडी के तीरो की नोको के आगे भाग खड़े हुए और इस प्रकार छिटक गए जैसे मरुस्थल मे हवा के झोको के साथ करोड़ो रेत के कण इधर-उधर उड़ जाते है ॥ १८१ ॥ ॥ सवैया ॥ काली के खड़ग और चंडी के धनुष को देखकर दानव भयभीत हो उठे है। अनेको को कालिका अपने मुँह से चबा गई और अनेको के सिर चडी ने काट दिए हैं। रक्त का समुद्र भर गया और एक दैत्य वहाँ से भागकर शुभ के पास आकर बोला कि युद्धस्थल मे हमारे भारी-भारी वीर धराशायी हो गए है ॥ १८२ ॥ ॥ दोहा ॥ युद्ध की भीषणता को देखकर मन मे विचार

नमित भेजी रनहि मँझार ।। १८३ ।। ।। स्वैया ।। आइस पाइ सभै शकती चलि कै तहाँ चंड प्रचंड पै आई । देवी कह्यो तिन को कर आदरु आई भले जनु बोल पठाई । ता छबि की उपमा अति ही कवि ने अपने मन मै लखि पाई । मानहु सावन मास नदी चलिकै जल रास मै आन समाई ।। १८४ ।। ।। स्वैया ।। देखि महाँ दलु देवन को बर बीर सु सामुहि जुद्ध को धाए । बानंनि साथि हने बलु कै रन मै बहु आवत बीर गिराए । दाड़न साथि चबाइ गई कलि अउर गहे चहुँ ओर बगाए । रावन सो रिसकै रन मै पति भालक जिउँ गिरराज चलाए ।। १८५ ।। फेर लै पान क्रिपान सँभार कै दैतन सो बहु जुद्ध कर्यो है । मार बिदार सँघार दए बहु भूम परे भट स्रउन झर्यो है । गूद बह्यो अर सीसन ते कवि ने तिह को इह भाउ धर्यो है । मानो पहार को सिंगहु ते धरनी पर आन तुसार पर्यो है ।। १८६ ।। ।। दोहरा ।। भाज गई धुजनी सभै रह्यो न कछू उपाउ । सुंभ निसुंभहि सो कह्यो दलु लै तुमहूँ जाउ ।। १८७ ।। ।। स्वैया ।। मान कै सुंभु को बोल

करके विष्णु जी ने (भी) अपनी शक्ति को युद्ध मे सहायता के लिए भेज दिया ।। १८३ ।। ।। सवैया ।। आज्ञा पाकर सभी शक्तियाँ प्रचंड चंडिका के पास आयी । देवी ने उनका स्वागत किया और कहा कि आप अच्छे अवसर पर आ गई है । शक्तियो के आने के दृश्य को कवि ने अपने मन मे इस प्रकार देखा और कहा कि वे आती हुई ऐसी लग रही है मानो सावन महीने मे नदियाँ आ-आकर बड़ी जलराशि मे मिलती जा रही हो ।। १८४ ।। ।। सवैया ।।-देवताओ के दल को देखकर महाबली वीर युद्ध के लिए दौड़े और बाणो से युद्धस्थल मे अनेको वीरो को गिरा दिया । काली दाँतों से अनेको को चबा गई और अनेको को उसने इधर-उधर फेंक दिया । फेंके जा रहे वे ऐसे लगते है मानो रावण से युद्ध में क्रुद्ध होकर भालूराज (जाम्बवत) युद्ध मे पर्वत उठा-उठाकर फेंककर मार रहा हो ।। १८५ ।। पुनः कृपाण हाथ मे लेकर (चडी ने) दैत्यो से घनघोर युद्ध किया और बहुत से दैत्यो को खड-खंड करके मार गिराया । रक्त एव मेधा को बहते देखकर कवि के मन मे ऐसा लग रहा है मानो पर्वत की चोटी से नीचे की ओर तुषारापात हो रहा हो ।। १८६ ।। ।। दोहा ।। सारी सेना भाग खडी हुई और शुभ ने अब निशुभ को कहा कि अब तुम सेना का नेतृत्व करो ।। १८७ ।। ।। सवैया ।। शुभ की आज्ञा

निसुंभु चल्यो दल साज महाँ बल ऐसे। भारथ जिउँ रन मै रिस पारथ क्रुद्ध कै जुद्धु कर्‌यो रन नैसे। चंडि के बान लगे बहु दैत कउ फोरि कै पार भए तन कैसे। सावन मास क्रिसान के खेत उगे मनो धान के अंकुर जैसे॥ १८८॥ ॥ स्वैया॥ बानन साथ गिराइ दए बहुरो असि लै करि इउ रन कीनो। मारि बिदारि दई धुजनी सभ दानव को बलु हुइ गयो छीनो। स्रउन समूहि पर्‌यो तिह ठउर तहाँ कवि ने जसु इउ मन चीनो। सातहुँ सागर को रचिकै बिधि आठवो सिंध कर्‌यो है नवीनो॥ १८९॥ लै कर मै असि चंड प्रचंड सु (मू०ग्रं०९३) क्रुद्ध भई रन मद्धि लरी है। फोर दई चतुरंग चमूँ बलु कै बहु कालका मार धरी है। रूप दिखाइ भयानक इउ असुरंपति भ्रात की क्रांत हरी है। स्रउन सो लाल भई धरनी सु मनो अंग सूही की सारी करी है॥ १९०॥ दैत सँभार सभै अपनो बलि चंडि सो जुद्धु को फेरि अरे है। आयुध धारि लरे रन इउ जनु दीपक मद्धि पतंग परे है। चंड प्रचंड कुवंड सँभार सभै रन मद्धि दुटूक करे है। मानो महाँ बन मै बर ब्रिच्छन काटि कै बाढी जुदे कै धरे है॥ १९१॥ ॥ स्वैया॥ मार

मानकर निशुभ दल लेकर ऐसे चला और युद्ध करने लगा जैसे महाभारत में क्रोधित होकर अर्जुन ने युद्ध किया था। चंडी के बाण दैत्यो के शरीरो को फोड़कर ऐसे पार जा निकले जैसे सावन मास मे किसान के खेतो में बीजो के अकुर फूटकर बाहर आ निकलते है॥ १८८॥ ॥ सवैया॥ बाणों से बहुतो को गिराया और कृपाण पकड़कर ऐसा युद्ध किया कि सारी सेना को मार दिया और दैत्यो के बल को क्षीण कर दिया। रक्त-समूह को पड़ा देखकर कवि कहता है कि सातो समुद्रो को रचकर मानो ब्रह्मा ने अब यह नया आठवाँ (रक्त का) समुद्र बनाया है॥१८९॥ हाथ मे कृपाण ले अत्यन्त क्रोधित होकर चडिका रण मे जूझ उठी है। काली ने अपने बल से चतुरगिणी सेना को फाड दिया है और अपना विकराल रूप को दिखाकर असुरपति के भाई निशुभ को निस्तेज कर दिया है। सारी धरती रक्त से लाल हो गई है और धरती ऐसी लग रही है, मानो धरती ने लाल साडी पहन रखी हो॥ १९०॥ दैत्य पुन: पूरे बल से चडिका से युद्ध करने के लिए आ अडे तथा शस्त्र धारण कर युद्ध मे ऐसे अनुरक्त हुए जैसे पतगे दीपक की लौ की ओर दौड़ते है। चडिका ने धनुष सँभालकर सबको ऐसे दो टूक कर दिया है मानो बढ़ई

लयो दलु अउर भज्यो मन मै तव कोप निसुंभ कर्यो है । चंड के सामुहि आनि अर्यो अति जुद्धु कर्यो पगु नाहि टर्यो है । चंड के बान लग्यो मुख दैत के स्रउन समूह धरान पर्यो है । मानहु राहु ग्रस्यो नभ भानसु स्रउनत को अत बउन कर्यो है ।। १९२ ।। साँग सँभार करं बलु धार कै चंड दई रिप भाल मै ऐसे । जोर कै फोर गई सिर त्रान को पार भई पट फार अनैसे । स्रउन की धार चली पथ ऊरध सो उपमा सु भई कहु कैसे । मानो महेश के तीसरे नैन की जोत उदोत भई खुल तैसे ।। १९३ ।। दैत निकास कै साँग वहै बलि कै तब चंड प्रचंड के दीनी । जाइ लगे तिह के मुख मै बहि स्रउन पर्यो अति ही छबि कीनी । इउ उपमा उपजी मन मै कबि ने इह भाँत सोई कहि दीनी । मानहु सिंगल दीप की नार गरे मै तंबोर की पीक नवीनी ।। १९४ ।। ।। स्वैया ।। जुद्धु निसुंभ कर्यो अति ही जसु या छबि को कबि को बरनै । नहि भीखम द्रोणि क्रिपा अरु द्रोणज भीम न अरजन अउ करनै । बहु दानव के तन स्रउन की धार छुटी सु लगे सर के फरनै । जनु

ने जंगल में वृक्षों को काटकर खड-खड कर दिया हो ।। १९१ ।। ।। सवैया ।। जब दल मार दिया गया तथा कुछ भाग खड़ा हुआ तो निशुंभ मन मे क्रोधित हो उठा । वह चडी के समक्ष आकर अड़ गया और घनघोर युद्ध करने लगा । चंडी के बाण दैत्य के मुख पर लगे और रक्त-समूह ऐसे गिरने लगा, मानो आकाश मे सूर्य को राहु ने पकड लिया हो और सूर्य ने रक्त का वमन किया हो ।। १९२ ।। बरछी को हाथ मे पकड़कर पूरे बल के साथ चडिका ने शत्रु के माथे पर मारी । बरछी शिरस्त्राण को फाडकर ऐसे पार निकल गई जैसे कपड़े को फाड़कर निकल गई हो । रक्त की धारा धरती पर बह निकली और इसकी उपमा किससे दी जाय । यह तो ऐसे लगता है, मानो शिव के तीसरे नेत्र की ज्वाला बह निकली हो ।। १९३ ।। दैत्य ने वही बरछी निकालकर चंडी के शरीर में घोप दी । उसके मुँह में लगते ही दृश्य अत्यन्त छवि-युक्त हो गया । कवि के हृदय मे उपजी उपमा को उसने इस प्रकार कहा है कि रक्त बहती हुई चडी ऐसी लग रही है, मानो सिंहलद्वीप की रूपवती स्त्री पान खाकर पीक को थूक रही हो ।।१९४।। ।। सवैया ।। निशुभ द्वारा किये गए युद्ध का वर्णन किसी कवि द्वारा किया नही जा सकता । ऐसा युद्ध भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, भीम और अर्जुन ने भी नही

रात के दूरि बिभाल दसो दिस फैलि चली रवि की किरनै ॥ १९५ ॥ चड लै चक्र धसे रन मै रिस क्रुद्ध किओ बहु दानव मारे । फेरि गदा गहिकै लहिकै चहिकै रिप सैन हती ललकारे । लै कर खग्ग अदग्ग महाँ सिर दैतन के बहु भू पर झारे । राम के जुद्ध समै हनुमान जु आन मनो गरुए गिर डारे ॥ १९६ ॥ ॥ स्वैया ॥ दानव एक बडो बलि वान क्रिपान लै पान हकार कै धायो । काढुकै खग्गु सुचंडका म्यान (मू०ग्रं०८४) ते ता तन बीच भले बर लायो । टूट पर्यो सिर वा धर ते जसु या छबि को कवि के मन आयो । ऊच धराधर ऊपरि ते गिर्यो काक कराल भुजंगम खायो ॥ १९७ ॥ ॥ स्वैया ॥ बीर निसुंभ को दैंत बली इक प्रेर तुरंग गयो रन सामुहि । देखत धीरज नाहि रहे अबि को समरत्थ है बिक्रम जा महि । चंड लै पान क्रिपान हने अरि फेरि दई सिर दानव ता महि । मुंडहि तुंडहि रुंडहि चीर पलान कि कान धसी बसुधा महि ॥ १९८ ॥ इउ जब दैत हत्यो बरचंड सु अउर

किया । बहुत से दैत्यो के शरीरो मे वाण लगने से रक्त की धाराएँ ऐसे फूट निकली, जैसे रात्रि के समाप्त होने पर सूर्य की किरणे चारो ओर फैल रही हो ॥ १९५ ॥ चडी ने क्रोधित होकर चक्र से अनेकों दानवो को मारा । पुन: गदा को लेकर वह किलकारियाँ मारने लगी और उसने शत्रु-सेना को मार गिराया । हाथ मे अजेय खडग लेकर चडी ने दैत्यो के सिरो को इस प्रकार भूमि पर झाड गिराया, मानो राम-रावण-युद्ध के समय हनुमान ने वड़े-वडे पर्वतो को उठा फेका हो ॥ १९६ ॥ ॥ सवैया ॥ एक बहुत ही वलवान दैत्य हाथ मे खडग लेकर दौड़कर आगे बढा । इधर चडी ने भी अपना खडग निकालकर उस दैत्य के शरीर पर चला दिया, जिससे उसका सिर धड से कटकर ऐसे अलग जा लुढका, मानो ऊँचे पर्वत से विषधर का चबाया हुआ विकराल कौआ लुढ़ककर नीचे आ गिरा हो ॥१९७॥ ॥ सवैया ॥ वीर निशुभ का एक वली दैत्य घोड़े को दौड़ाकर रणस्थल मे आ उपस्थित हुआ । उसको देखकर किसी मे भी युद्ध करने का धैर्य नही रहा । भला कौन उस शक्तिशाली दैत्य के सामने जा सकता था । चडिका ने कृपाण हाथ मे लेकर अनेको दैत्यो का वध किया तथा उस दानव के सिर पर भी अपने खड़ग से वार किया । चडी की कृपाण दैत्य के सिर-मुँहे को चीरती हुई घोड़े की काठी को पार करती हुई तथा घोड़े का भेदन करती हुई धरती मे जा धँसी ॥ १९८ ॥ उस प्रकार जब यह

चल्यो रन मद्धि पचारे । केहरि के सनुहाइ रिसाइ कै धाइ कै घाइ दु तीनक झारे । चंडि लई करवार सँभार हकार कै सीस दई बलु धारे । जाइ पर्यो सिर दूर पराइ जिउँ टूटत अंब बयार के मारे ॥ १९९ ॥ जान निदान को जुद्ध बन्यो रन दैत सबूह सभै उठि धाए । सार सों सार की मार मची तब काइर छाड कै खेत पराए । चंड के खग्ग गदा लग दानव रंचक रंचक हुइ तन आए । मूँगर लाइ हुलाइ मनो तरु काछी ने पेड ते तूत गिराए ॥ २०० ॥ ॥ स्वैया ॥ पेखि चमूँ बहु दैतन की पुनि चंडका आपने शस्त्र सँभारे । बीरन ते तन चीर पचीर से दैत हकार पछार सँघारे । घाउ लगे तिन को रन भूम मै टूट परे धर ते सिर न्यारे । जुद्ध समै सुत भान मनो सस के सभ टूक जुदे कर डारे ॥ २०१ ॥ ॥ स्वैया ॥ चंड प्रचंड तबै बल धार सँभार लई करवार करी कर । कोप दईअ निसुंभ के सीस बही इह भाँत रही तरवातर । कउन सराह

दैत्य मारा गया तो एक अन्य दैत्य ललकारता हुआ रणमध्य आ पहुँचा और उसने सिंह के सामने वाले भाग पर क्रोधित होकर दो-तीन घाव कर दिए। चडिका ने कृपाण सँभालकर भीषण गर्जना के साथ बलपूर्वक उसके सिर पर वार किया और उसका सिर कटकर ऐसे दूर जा छिटका, जैसे वायु के थपेड़ो से वृक्ष का आम टूटकर छिटक जाता है ॥ १९९ ॥ दैत्यो ने अंतिम काल का युद्ध समझकर सारे दैत्य इकट्ठा होकर चडिका की ओर दौड़ पड़े । युद्ध मे लोहे पर लोहा बजने लगा और कायर युद्ध छोड़कर भाग गये । चडी के खड्ग और गदा के वारो से दैत्यो के तन खण्ड-खण्ड होने लगे और यह दृश्य ऐसा लगता था, मानो माली पेड़ को हिलाकर और दण्डे की मार से सहतूत नीचे गिरा रहा हो ॥ २०० ॥ ॥ सवैया ॥ दैत्यो की चतुरंगिणी सेना को देखकर चंडिका ने पुनः अपने शस्त्रो को सँभाला और वीरो के तनो को चीरते-फाड़ते हुए दैत्यो को ललकार एवं पछाड़कर मार डाला । उनके शरीरो पर घाव लगे और उनके सिर-धड़ इस प्रकार अलग हो गए, मानो सूर्यपुत्र शनि ने चंद्रमा के टुकड़े-टुकड़े करके उन्हे इधर-उधर फेक दिया हो ॥ २०१ ॥ ॥ सवैया ॥ उसी समय क्रोधित होकर चंडी ने मजबूती से तलवार को अपने हाथ मे पकड़ लिया तथा कुपित होकर उसे निशुभ के सिर पर आर-पार चला दिया । उस क्षण की प्रशंसा कौन कर सकता है । उसका

करैं कहि ता छिन सो बिब होइ परे धरनी पर। मानहु सार की तार लै हाथ चलाई है साबन को सबुनीगर ॥ २०२ ॥

॥ इति स्री मारकडे पुराने चडी चरित्र उकति विलास निसुभ
बधहि खशटमो धिआइ ॥ ६ ॥

॥ दोहरा ॥ जब निसुंभ रन मारिओ देवी इह परकार। भाज दैत इक सुंभ पै गयो तुरंगम डारि ॥ २०३ ॥ आन सुंभ पै तिन कही सकल जुद्ध की बात। तब भाजे दानव सभै मारि लयो तुअ भ्रात ॥ २०४ ॥ ॥ स्वैया ॥ सुंभ निसुंभ हन्यो सुनि कै बर बीरन के चित छोभ (मू०ग्रं०८५) समायो। साज चड्यो गज बाज समाज कै दानव पुंज लिए रन आयो। भूम भयानक लोथ परी लखि स्रउन समूह महाँ बिसमायो। मानहु सारसुती उमडी जल सागर के मिलिबे कह धायो ॥ २०५ ॥ ॥ स्वैया ॥ चंडि प्रचंडि सु केहरि कालका अउ शकती मिलि जुद्ध कर्यो है। दानव सैन हती इनहूँ सभ इउ कहिकै मन कोप भर्यो है। बंध कबंध पर्यो अवलोक कै शोक कै पाइ न

सिर धरती पर ऐसे आ पडा है, जैसे साबुन बनानेवाला लोहे की पत्ती से साबुन के टुकड़े काटकर फेकता चला जाता है ॥ २०२ ॥

॥ इति श्री मार्कण्डेय पुराण के चडीचरित्र-उक्ति-विलास मे निशुभ-वध
नामक छठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

॥ दोहा ॥ इस प्रकार जब देवी ने रणस्थल मे निशुभ को मार दिया तो एक दैत्य घोड़े पर सवार हो भागकर शुंभ के सामने जा खड़ा हुआ ॥ २०३ ॥ उसने शुभ से सारी युद्धवार्त्ता कही और उसे बताया कि सभी दानव भाग गए हैं और चंडी ने तुम्हारे भाई को मार डाला है ॥ २०४ ॥ ॥ सवैया ॥ शुभ ने जब निशुभ के मारे जाने की बात सुनी तो सभी महाबलियो के चित्त मे अत्यन्त क्षोभ हुआ। वह हाथी, घोड़ो एव दानवो के झुंड के साथ युद्धस्थल पर आ पहुँचा। उसे भूमिपर डरावनी लाशे तथा रक्तसमूह को देखकर महान आश्चर्य हुआ और ऐसा लगा, मानो सरस्वती नदी उमड़कर सागर के जल से मिलने के लिए दौड़ रही हो ॥ २०५ ॥ ॥ सवैया ॥ चडी, सिंह एवं कालीदेवी तथा शक्तियों ने मिलकर युद्ध किया तथा दानव-सेना का विनाश किया है, यह सोचकर उसका मन कुपित हो उठा। बंधो और कबधो को पड़े हुए देखकर

आगै धर्यो है। धाइ सक्यो न भयो भयभीतह चीतह मानहु लंग पर्यो है ॥ २०६ ॥ ॥ स्वैया ॥ फेर कह्यो दल को जब सुंभ सु मानि चले तब दैत घने। गजराज सु बाजन के असवार रथी रथु पाइक कउन गने। तहा घेर लई चहूँ ओर ते चंड महाँ तिन के तन दीह बने। मनो भान को छाइ लयो उमडे घनघोर घमंड घटा निस ने ॥ २०७ ॥ ॥ दोहरा ॥ चहूँ ओर घेरो पर्यो तबै चंड इह कीन। काली सो हसि तिन कही नैन सैन करि दीन ॥ २०८ ॥ ॥ कबितु ॥ केते मार डारे अउर केतक चबाइ डारे केतक बगाइ डारे काली कोप तबही। बाज गज भारे तेतो नखन सों फार डारे ऐसो रन भैकर न भयो आगे कबही। भागे बहु बीर काहू सुद्ध न रही सरीर हाल चाल परी मारे आपस में दबही। पेख सुरराइ मन हरख बढाइ सुर पुंजन बुलाइ करै जै जैकार सबही ॥ २०९ ॥ ॥ कबितु ॥ क्रोधमान भयो कह्यो राजा सुम्भ दैतन को ऐसो जुद्ध कीनो काली डार्यो बीर मार कै। बल को सँभार कर

उसका शोकाकुल मन आगे न बढ सका और वह इतना भयभीत हो उठा और धीरे-धीरे चलने लगा, मानो चीते की टॉग टूट गई हो और वह लँगड़ाकर चल रहा हो ॥२०६॥ ॥ सवैया ॥ शुभ ने जब फिर आज्ञा दी तो सभी दैत्य चल पड़े। इस सैन्यदल मे अगणित गजराज, घोड़े, अश्वारोही, रथी एवं पैदल थे। इन सबने चारों ओर से अपने दीर्घ शरीरो के साथ चडिका को घेर लिया और यह ऐसा लग रहा था, मानो सूर्य को चारों ओर से घनघोर काली घटाओ ने घेर लिया हो ॥ २०७ ॥ ॥ दोहा ॥ चारो ओर घेरा पडा देखकर चडी ने हँसकर नयनो के सकेतो से काली को समझा दिया कि अब इन्हे मारा जाय ॥ २०८ ॥ ॥ कवित्त ॥ अनेकों को मार डाला, बहुतो को चबा डाला और कितनों को ही क्रोधित होकर दूर फेक दिया। हाथियो और घोड़ों को अपने नाखूनो से फाड़ डाला तथा ऐसा लगता है कि इस प्रकार का युद्ध पहले कभी नही हुआ। शरीर की सुधि भूलते हुए महाबली भाग खड़े हुए और आपस मे ही एक-दूसरे को दबाकर मारने लगे। इस दृश्य को देखकर सुरराज के मन मे अत्यन्त हर्ष हुआ और उसने अन्य देवताओं को बुलाकर जय-जयकार करना शुरू कर दिया ॥२०९॥ ॥ कवित्त ॥ दैत्य-राज ने क्रोधित होकर कहा कि काली ने इतना भयंकर युद्ध किया है कि बहुत से वीरो को मार गिराया है। हृदय को मजबूत कर तथा हाथ मे

लीनो करवार ढार पैठो रन मद्धि मारि मारि इउ उचार कै। साथ भए सुंभ के सु महाँ बीर धीर जोधे लीने हथिआर आप आपने सँभार कै। ऐसे चले दानो रवि मंडल छपानो मानो सलभ उडानो पुंज पंखन सु धार कै ॥२१०॥ ॥ स्वैया ॥ दानव सैन लखै बलिवान सु बाहनि चंडि प्रचंडि भ्रमानो। चक्र अलात की बात बघूरन छत्रन ही सम अउ परसानो। तारन माहि सु ऐसो फिर्यो जल भउरन ही सर ताहि बखानो। अउर नही उपमा उपजै सु दुहूँ रुखु केहरि के मुखि मानो ॥ २११ ॥ जुद्धु महाँ असुरंगनि साथ भयो (मू०ग्रं०८६) तब चंड प्रचंडहि भारी। सैन अपार हकार सुधार बिदार सँघार दई रन कारी। खेत भयो तह चार सउ कोस लउ सो उपमा कवि देखि बिचारी। पूरन एक घरी न परी जि गिरे धर पै बर जिउँ पति झारी ॥ २१२ ॥ नार चमूँ चतुरंग लई तब लीनो है सुंभ चमुंड को आगा। चाल गयो अवनी सिगरी हरिजू हरि आसनि ते उठि भागा। सूख पर्यो ब्रस कै हरि हारि सु संकति अंक महाँ भयो जागा। लाग रह्यो लपटाइ गरे मधि मानहु मुंड की माल को तागा ॥ २१३ ॥

ढाल-तलवार लेकर वह मारो-मारो की ध्वनि के साथ रणस्थल में डट गया। उसके साथ बलिष्ठ योद्धाओ ने भी अपने शस्त्र सँभाले और ये सभी दैत्य इस प्रकार चल पड़े मानो आकाश-मडल को ढँकते हुए टिड्डी-दल एव अन्य कीड़े-पतगे चल रहे हो ॥ २१० ॥ ॥ सवैया ॥ दैत्यो की बलवती सेना को देखकर अत्यंत वेग से चडी ने अपने वाहन सिह का मुँह इस प्रकार घुमाया कि चक्र, चरखी, वायु, छत्र, जल के भँवर आदि भी उतनी शीघ्रता से नही घूम सकते। सिह का शीघ्रतापूर्वक घूमना ऐसा लग रहा था मानो उसके दोनो तरफ मुँह हो ॥ २११ ॥ दैत्यो के साथ चंडी का महायुद्ध हुआ और उसने ललकारकर अपार सैन्यसमूह का युद्धस्थल मे संहार कर दिया। चार सौ कोस तक बने युद्धस्थल को देखकर कवि को ऐसा लगा है कि अभी एक घड़ी भी नही व्यतीत हुई है और दैत्य इस प्रकार धरती पर आ गिरे है, जैसे पतझड मे पत्ते झडकर गिर जाते हैं ॥ २१२ ॥ जब चतुरंगिणी सेना का विनाश हो गया, तब शुभ स्वयं चंडिका के समक्ष आ खड़ा हुआ। सारी धरती हिल गई एव शिव जी ध्यान से उठकर भाग खडे हो गए। उनके गले मे पडा साँपो का हार डर के मारे सूख गया और मुडो की माला गले मे धागे के समान सूखकर चिपक

॥ स्वैया ॥ चंडि के सामुहि आइकै सुंभ कह्यो मुखि सों इह मै सभ जानी । काली समेत सभै शकती मिलि हीनो खपाइ सभै दलु बानी । चंड कह्यो मुख ते उनको तेऊ ता छिन गउर के मद्धि समानी । जिउँ सरता के प्रवाह के बीच मिलै बरखा बहु बूँदन पानी ॥ २१४ ॥ ॥ स्वैया ॥ कै बलि चंडि महाँ रन मद्धि सु लै जमदाड़ को ता परि लाई । बैठ गई अरि के उर मै तिह स्रउनत जुग्गनि पूर अघाई । दीरघ जुद्धु बिलोक कै बुद्ध कवीश्वर के मन मै इह आई । लोथ पै लोथ गई पर इउ सु मनो सुरलोग की सीढी बनाई ॥ २१५ ॥ सुंभ चमूँ सँग चंडका क्रुद्ध कै जुद्ध अनेकनि वार मच्यो है । जंबक जुग्गन ग्रिज्झ मजूर रकत्र की कीच मै ईस नच्यो है । लुत्थ पै लुत्थ सुभीतै भई सित गूद अउ मेद लै ताहि मच्यो है । भउन रँगीन बनाइ मनो करिमाविश चित्र बचित्र रच्यो है ॥ २१६ ॥ ॥ स्वैया ॥ दुंद सु जुद्धु भयो रन मै उत सुंभ इतै बरचंड सँभारी । घाइ अनेक भए दुहुँ के तन पउरख ग्यो सभ दैत को हारी । हीन भई बल ते भुज काँपत सो उपमा कवि ऐसे

गई ॥ २१३ ॥ ॥ सवैया ॥ चंडी के सम्मुख आकर शुभ ने कहा कि मैं जानता हूँ कि तुमने काली तथा अन्य शक्तियो को साथ लेकर मेरे दल को नष्ट कर दिया है । यह सुनकर चडी के कहने पर सभी शक्तियाँ उसमे (चडी मे) इस प्रकार अन्तर्लीन हो गयी जैसे सरिता के प्रवाह मे वर्षा की बूंदे मिल जाती है ॥ २१४ ॥ ॥ सवैया ॥ प्रबल चडिका ने यम-दाढ-स्वरूप कृपाण उस दैत्य के शरीर में भोक दी जो कि शत्रु के हृदय मे जा बैठी और दैत्य के शरीर से निकले रक्त से रक्तपान करनेवाली योगिनियों ने जी भरकर रक्त पिया । भीषण युद्ध को देखकर कवि को ऐसे लगा कि लाश पर लाश ऐसे पड़ी है, मानो सुरलोक मे चढने के लिए सीढी लगाई गई हो ॥२१५॥ शुभ की सेना के साथ क्रुद्ध होकर चडिका ने अनेक प्रकार से युद्ध किया । गीदड, योगिनियाँ एव गिद्ध मानो मजदूर हो और रक्त-मांस के कीचड़ मे खड़े होकर काम करनेवाला नटराज शिव है । लाश पर चढी लाश दीवार है, जिसे सफेद चर्वी और मेधा (रूपी सीमेट) लगाकर तैयार किया गया है । इस प्रकार का भवन बना है, मानो विश्वकर्मा ने विचित्त शीशमहल तैयार किया हो ॥ २१६ ॥ ॥ सवैया ॥ रणक्षेत्र मे द्वन्द्वयुद्ध चल रहा है, एक ओर शुभ है तथा दूसरी ओर चंडिका है । दैत्य और चडी के तन पर अनेको घाव हो गए है और

बिचारी। मानहु गारुड़ के बल ते लटी पंचमुखी जुग सापन कारी ।। २१७ ।। कोप भई बरचंड महाँ बहु जुद्ध कर्‌यो रन मै बलधारी। लै कै क्रिपान महाँ बलवान पचार कै सुंभ के ऊपरि झारी। सार सो सार की धार बजी झनकार उठी तिह ते चिनगारी। मानहु भादव मास की रैन लसै पटबीजन की चमकारी ।। २१८ ।। घाइन ते बहु स्रउन पर्‌यो बल छीन भयो न्रिप (मू०ग्रं०६७) सुंभ को कैसे। जोत घटी मुख की तन की मनो पूरन ते परिवा ससि जैसे। चंड लयो करि सुंभ उठाइ कह्‌यो कवि ने मुखि ते जसु ऐसे। रच्छक गोधिन के हित कान्ह उठाइ लयो गिर गोधनु जैसे ।। २१९ ।। ।। दोहरा ।। कर ते गिर धरनी पर्‌यो धर ते गयो अकास। सुंभ सँघारन के नमित गई चंड तिह पास ।।२२०।। ।। स्वैया ।। बीच तबै नभ मंडल चंडका जुद्धु कर्‌यो जिम आगे न होऊ। सूरज चंदु निछत्र सचीपति अउर सभै सुर पेखत सोऊ। खैंच कै मूँड दई करवार की एक को मार किए तब दोऊ। सुंभ दुटूक ह्वै भूमि पर्‌यो तन जिउँ कलवत्र सों चीरत कोऊ ।। २२१ ।।

दैत्य अपना पौरुष हार चुका है। बलहीन भुजा इस प्रकार कांप रही है, मानो गरुड़ के भय से पाँच मुँह वाली नागिन डरकर काँप रही हो ।।२१७।। श्रेष्ठ चडी ने क्रुद्ध होकर श्रेष्ठ युद्ध किया और कृपाण हाथ मे लेकर शुभ के सिर पर वार किया। लोहे से लोहा बजा और एक झनझनाहट के साथ ऐसी चिंगारियाँ फूट निकली, मानो भादो के महीने मे जुगनू चमक उठे हो ।। २१८ ।। घावो से बहुत रक्त बह जाने के कारण राजा शुभ निर्बल पड़ने लगा। उसके मुखमडल की ज्योति वैसे ही क्षीण हो गई, जैसे पूर्णिमा के बाद चद्रमा की ज्योति क्षीण हो जाती है। चंडिका ने शुभ को हाथ से पकड़कर वैसे ही ऊपर उठा लिया, जैसे गोधन की रक्षा करने के लिए कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को ऊपर उठा लिया था ।। २१९ ।। ।। दोहा ।। हाथ से छूटकर दैत्य धरती पर गिरा और धरती से आकाश की ओर चला। शुभ का वध करने के लिए चडिका उसके पास गई ।। २२० ।। ।। सवैया ।। तव नभमडल के बीचोबीच चडिका ने अपूर्व युद्ध किया, जिसे सूर्य, चद्र, नक्षत्र एव इद्रादि देवताओ ने देखा। खीचकर कृपाण चडी ने दैत्य के मुँह पर मारी और उसे एक से दो खंडो मे बाँट दिया। शुभ दो टुकड़े होकर धरती पर ऐसे गिरा मानो किसी ने उसके तन को आरे से चीरकर दो टुकड़े कर दिया हो ।। २२१ ।।

॥ दोहरा ॥ सुंभ मार कै चंडका उठी सु संख बजाइ । तब धुनि घंटा की करी महाँ मोद मन पाइ ॥ २२२ ॥ दैतराज छिन मै हन्यो देवी इह परिकार । अशट करन महि शस्त्र गहि सैना दई सँघार ॥ २२३ ॥ ॥ स्वैया ॥ चंड के कोप न ओप रही रन मै असिधार भई समुहाई । मारि बिदारि सँघारि दए तब भूप बिना करै कउन लराई । काँप उठे अरि त्रास हिए धरि छाडि दई सभ पउरखताई । दैत चले तजि खेत इउ जैसे बडे गुन लोभ ते जात पराई ॥ २२४ ॥

॥ इति स्री मारकंडे चंडी चरित्रे सुभ बधहि नाम सपतमो धिआय संपूरन ॥ ७ ॥

॥ स्वैया ॥ भाजि गयो मघवा जिनके डर ब्रहम ते आदि सभै भै भीते । तेई वै दैत पराइ गए रन हार निहार भए बलु रीते । जंबुक ग्रिज्झ निरास भए बन बास गए जुग जामन बीते । संत सहाइ सदा जग माइ सु सुंभ निसुंभ बडे अरि जीते ॥ २२५ ॥ देव सभै मिलिकै इक ठउर सु अचछत कुंकम

॥ दोहा ॥ शुंभ को मारकर शंख बजाती हुई चंडिका उठी और अत्यन्त प्रसन्न होकर उसने घटो-घड़ियालो की ध्वनि की ॥ २२२ ॥ इस प्रकार क्षण भर देवी ने दैत्यराज का सहार किया और अपने आठो हाथो मे शस्त्र पकडकर उसने सेना को नष्ट कर दिया ॥ २२३ ॥ ॥ सवैया ॥ चडिका के क्रोध के समक्ष एव कृपाण की धार के समक्ष दैत्य निस्तेज हो गए । उन्हे मारकर तहस-नहस कर दिया, क्योकि अब राजा के विना वे युद्ध करने मे बिलकुल सक्षम नही रह गए थे । उनके हृदय भय के मारे काँप उठे और उनका पौरुष धरा का धरा रह गया । दैत्य युद्धस्थल को छोडकर ऐसे भागे जैसे बड़े-बड़े अच्छे गुण लोभ से दूर भाग जाते है ॥२२४॥

॥ इति श्री मार्कण्डेय पुराण के चडीचरित्र मे शुभ-वध नामक सातवें अध्याय की समाप्ति ॥ ७ ॥

॥ सवैया ॥ जिन दैत्यों के भय से इंद्र भाग गया और ब्रह्मा भयभीत हो उठे थे, वे ही दैत्य अपने-आपको निर्बल मानकर भाग खडे हुए हैं । रणस्थल मे गीदड, गिद्ध आदि निराश होकर पुनः वनो में चले गए है और उन्हे वहाँ पहुँचे हुए दो प्रहर बीत चुके है । हे जगत्माया ! तूने संतों की सहायता की है और शुभ-निशुभ जैसे भीषण शत्रुओ को जीत लिया है ॥ २२५ ॥ एक स्थान पर सभी देवताओं ने एकत्र होकर हाथो मे

चंदन लीनो । लचछन लचछन देकै प्रदचछन टीका सु चंड के भाल मै दीनो । ता छबि को उपज्यो तह भाव इहै कबि ने मन मै लखि लीनो । मानहु चंद के मंडल मै सुभ मंगल आन प्रवेशहि कीनो ॥ २२६ ॥ ॥ कवितु ॥ मिलि कै सु देवन बडाई करी कालका की एहो जग मात तै तो कट्यो बडो पापु है । दैतन को मार (मू०ग्रं०९८) राज दीनो तै सुरेश हूँ को बडो जसु लीनो जग तेरो ई प्रतापु है । देत है असीस दिज राज रिख बारि बारि तहा ही पढ्यो है ब्रहम कउच हूँ को जापु है । ऐसे जसु पूर रह्यो चंडका को तीन लोक जैसे धार सागर मै गंगा जी को आपु है ॥ २२७ ॥ ॥ स्वैया ॥ देहि असीस सभै सुर नारि सु धारि कै आरती दीप जगायो । फूल सुगंध सु अचछत दचछन जचछन जीत को गीत सु गायो । धूप जगाइ कै संख बजाइकै सीस निवाइ कै बैन सुनायो । हे जगमाइ सदा सुखदाइ तै सुंभ को घाइ बडो जसु पायो ॥ २२८ ॥ सक्रहि साजि समाजि दै चंड सु मोद महा मन माहि रई है । सूर ससी नभ थापिकै तेजु दै आप तहा ते सु लोप भई है । बीच

अक्षत, कुकुम एव चदन किया और चडिका की परिक्रमा कर उसके माथे पर तत्क्षण तिलक लगाया । उस छवि को देखकर कवि के हृदय मे यह भाव जाग्रत् हुआ है कि ऐसा लग रहा है, मानो चंद्रमा के मडल मे शुभ मगल ने आकर प्रवेश किया हो ॥ २२६ ॥ ॥ कवित्त ॥ देवताओ ने मिलकर कालीदेवी का गुणानुवाद किया कि हे माता ! तुमने हमारे दारुण पाप का खडन किया है । यह तेरा ही प्रताप है कि तूने दैत्यो को मारकर इंद्र को राज्य देकर महान् यश का अर्जन किया है । द्विजराज, ऋषि, मुनि बार-बार आशीर्वाद दे रहे है और ब्रह्मा भी कवच का जाप कर रहे हैं । इस प्रकार तीनो लोको मे चण्डिका का यश वैसे ही व्याप्त हो गया, जैसे समुद्र मे गगा की धारा आकर व्याप्त हो जाती है ॥ २२७ ॥ ॥ सवैया ॥ देव-स्त्रियाँ भी शुभकामनाएँ दे रही हैं और उन्होने आरती के लिए दीपक जला लिये है । फूल, सुगन्ध एव अक्षतो को हाथ मे लेकर दक्ष यक्षों ने विजय-गान गाए और अगरवत्ती जला, शखध्वनि करके शीश झुकाकर विनम्रतापूर्वक कहने लगे कि हे जगत्माता ! तुम सदा सुखदायी हो; शुभ को मारकर आपने अपूर्व यश पाया है ॥२२८॥ इंद्र को राज्य-समाज देकर चडिका मन मे अतीव प्रसन्न हुई तथा सूर्य-चंद्र को उनके स्थानो पर बैठा उन्हे पुनः तेजवान बनाकर स्वयं लोप हो गई । बीच आकाश में

अकाश प्रकाश बढ्यो तह की उपमा मन ते न गई है। धूर के पूर मलीन हुतो रवि मानहु चंडका ओप दई है ॥ २२९ ॥ ॥ कवितु ॥ प्रथम मधुकैंट मद मथन महिखासुरै मान मरदन करन तरन बर बंड का। धूम्र द्रिग धरन धर धूर पानी करन चंड अरु मुंड के मुंड खंड खंड का। रकतबीरज हरन रकत भच्छन करन दरन अन सुंभ रन रार रिस मंडका। सुंभ बलु धार सँघार करवार करि सकल खलु असुर दलु जैत जै चंडका ॥ २३० ॥ ॥ स्वैया ॥ देहि शिवा बर मोहि इहै शुभ करमन ते कबहूँ न टरों। न डरों अरि सों जब जाइ लरों निसचै कर आपनी जीत करों। अरु सिक्ख हों आपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरों। जब आव की अउध निदान बनै अति ही रन मै तब जूझ मरों ॥ २३१ ॥ चंड चरित्र कवित्तन मै बरन्यो सभही रस रुद्र मई है। एक ते एक रसाल भयो नख ते सिख लउ उपमा सु नई है। कउतक हेत करी कवि ने सतिसय की कथा इह पूरी भई है। जाहि नमित्त

बढे प्रकाश की उपमा कवि ने ऐसे दी है कि धूल से आकाश मलीन हो चुका था, चडिका ने मानो अपना तेज देकर पुन. उसे देदीप्यमान कर दिया है ॥२२९॥ ॥ कवित्त ॥ हे देवी ! पहले तुमने मधु-कैटभ का मान-मर्दन किया तथा महिषासुर का गर्व चूर किया। तुम सब कारणों की कारण अपूर्व वरदात्री हो। तुम धूम्रलोचन को धरती पर पछाडकर फेंकनेवाली एव अपने खड़ग से चड और मुड नामक दैत्यो को टुकड़े-टुकड़े कर देनेवाली हो। रक्तबीज का रक्त पीकर उसे मारनेवाली और शुभ के साथ रणभेरी बजानेवाली तुम ही हो। तुम ही शुभ को मारकर सकल दैत्यो का नाश करनेवाली, जय-जयकार करवानेवाली चडिका हो ॥ २३० ॥ ॥ सवैया ॥ हे परमपुरुष की कल्याणकारी शक्ति ! मुझे यह वरदान दो कि मैं कभी भी शुभ कर्म करने से न हिचकिचाऊँ। रण-क्षेत्र में शत्रु से कभी न डरूँ और निश्चयपूर्वक युद्ध को अवश्य जीतूँ। अपने मन को शिक्षा देने के बहाने मै हमेशा तुम्हारा ही गुणानुवाद करता रहूँ तथा जब मेरा अतिम समय आ जाय तो मैं युद्धस्थल मे (धर्म की रक्षा करते हुए) प्राणो का त्याग करूँ ॥ २३१ ॥ चडी-चरित्र को मैंने काव्य में रौद्र-रस के अंतर्गत वर्णित किया है। मैने एक-से-एक रसयुक्त उपमाएँ नख से लेकर शिख तक भरी हैं, परन्तु इस सारे सप्तशती काव्य को मात्र लीला (वर्णन) के निमित्त पूरा किया है। जो इसको पढेगा

पड़ै सुनि है नर सो निसचै करि ताहि दई है ।। २३२ ।। ।। दोहरा ।। ग्रंथ सतिसय को कर्यो जा सम अवरु न कोइ । जिह नमित्त कवि ने कह्यो सु देहु चंडका सोइ ।। २३३ ।। (मू०ग्रं०६६)

और सुनेगा, उसको उसकी इच्छा अनुरूप फल प्राप्त होगा ।। २३२ ।। ।। दोहा ।। सप्तशती ग्रंथ को रचा है । इस ग्रथ के समान अन्य ग्रंथ कोई नही है । हे चडिका ! कवि ने जिस भावना के निमित्त इसे रचा है, उसकी भावना पूर्ण करो ।। २३३ ।।

१ ओं स्री वाहिगुरू जी की फतह ।।

।। नराज छंद ।। महिख दईत सूरयं । बढ्यो सु लोह पूरयं । सु देवराज जीतयं । त्रिलोक राज कीतयं ।। १ ।। भजे सु देवता तबै । इकत्र होइ कै सभै । महेशुरा चलं बसे । बिसेख चित्त भो त्रसे ।। २ ।। जुगेश भेस धार कै । भजे हथिआर डार कै । पुकार आरत चले । बिसूर सूरमा भले ।। ३ ।। बरख किते तहा रहे । सु दुक्ख देह सो सहे । जगत्रमाति ध्याइयं । सु जैत पत्र पाइयं ।। ४ ।। प्रसंन देवता भए । चरंन पूजबे धए । सनंमुखान ठड्ढियं । प्रणाम पान पड्ढियं ।। ५ ।। ।। रसावल छंद ।। तबै देव धाए । सभो सीस न्याये । सुमन धार बरखे । सभै साध हरखे ।। ६ ।।

।। नराज छद ।। शूरवीर महिषासुर ने लौह (कवच) से पूर्ण सुरक्षित होकर देवराज इन्द्र को जीत लिया और त्रिलोक मे अपना राज्य स्थापित कर लिया ।। १ ।। सभी देवता एकत्र होकर भागे और चित्त मे विशेष रूप से डरकर शिवजी के कैलास पर्वत पर जा बसे ।। २ ।। हथियार डालकर योगियों का वेष धारण करके अत्यन्त व्याकुल होकर पश्चात्ताप करते हुए ये शूरवीर मारे-मारे घूमने लगे ।। ३ ।। देह पर दु:खो को सहन करते हुए कितने ही वर्षों तक वहाँ रहे और जगत्माता का ध्यान करते रहे ताकि विजय प्राप्त कर सके ।। ४ ।। (चंडिका को देखकर) देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसके चरणो की पूजा करने के लिए दौडे । सम्मुख आकर गिर पड़े तथा प्रणाम कर स्तुति करने लगे ।। ५ ।। ।। रसावल छद ।। तब देवता और आगे बढ़े । सबने शीश को झुका लिया; पुष्पो की वर्षा होने लगी तथा साधु-सत प्रसन्न होने

करी देबि अरचा । ब्रहम बेद चरचा । जबै पाइ लागे । तबै सोग भागे ।। ७ ।। बिनंती सुनाई । भवानी रिझाई । सभै शस्त्र धारी । करी सिंघ सुआरी ।। ८ ।। करे घंट नादं । धुनं निरबिखादं । सुणो दईत राजं । सज्यो जुद्ध साजं ।। ९ ।। चड्यो राछसेसं । रचे चार अनेसं । बली चामरेवं । हठी चिच्छुरेवं ।। १० ।। बिड़ालच्छ बीरं । चड़े बीर धीरं । बडे इक्खु धारी । घटा जान कारी ।।११।। ।। दोहरा ।। बाणि जिते राछसनि मिलि छाडत भए अपार । फूलमाल ह्वै मात उर सोभे सभै सु धार ।। १२ ।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। जिते दानवौ बान पानी चलाए । तिते देवता आप काटे बचाए । किते ढाल ढाहे किते पास पेले । भरे बस्त्र लोहू जनो फाग खेले ।। १३ ।। द्रुगाहूँ कियं खेत धुंके नगारे । करं पटि संपरघ पासी सँभारे । तहाँ गोफनं गुरज गोले सँभारं । हठी मारही मार कै कै पुकारै ।। १४ ।। तबै अष्ट अशटा हथ्यारं सँभारे । सिरं दान वेंद्रान के ताकि झारे । बबक्क्यो बली

लगे ।। ६ ।। सबने देवी की अर्चना-पूजा वेदादि के अनुसार देवी को ब्रह्म मानकर की । जैसे ही देवगणो ने देवी के चरण स्पर्श किए उनके सभी दुःख भाग खड़े हुए ।। ७ ।। प्रार्थना करने से दुर्गा प्रसन्न हुई । उसने सब शस्त्र धारण किए और सिह पर सवार हो गई ।। ८ ।। उसके घटो का नाद लगातार चलने लगा । उधर दैत्यराज ने भी यह ध्वनि सुनी और युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी ।। ९ ।। राक्षसराज ने चढ़ाई कर दी और चार राजाओ को सेनापति बनाया । चामर और चिच्छुर बड़े बली एवं हठी दैत्य थे ।। १० ।। बिडालाक्ष वीर जैसे बड़े-बड़े धैर्यवान वीरो ने बड़े-वड़े धनुष धारण कर ऐसे चढ़ाई की, मानो काली घटा घिर आयी हो ।। ११ ।। ।। दोहा ।। राक्षसो ने मिलकर जितने भी बाण छोड़े वे चडिका के गले मे फूलमाला बनकर आ गिरे ।। १२ ।। ।। भुजंग प्रयात छद ।। दानवो ने जितने बाण चलाए उन सबको देवताओ ने काट कर अपने-आपको बचा लिया । कही ढाल से वार रोका जा रहा है और फाँस लगाकर मारा जा रहा है । वस्त्र रक्त से इस प्रकार भर गए हैं, मानो सब होली खेल रहे हो ।। १३ ।। दुर्गा ने रणमंडन किया और हाथो मे कुल्हाड़ा, फाँस आदि को सँभाल लिया । गदा, गोला आदि शस्त्रो को पकड़ा और युद्धस्थल मे शूरवीरो ने 'मारो, मारो' की पुकार लगा दी ।। १४ ।। तभी अष्टभुजाओ वाली देवी ने आठों शस्त्र हाथ मे

सिंघ जुद्धं मझारं। करे खंड खंडं सु जोधा अपारं॥ १५॥ ॥ तोटक छंद॥ तब दानव रोस भरे सभ ही। जगमाति के बान लगे जब ही। बिबिधायुधु लै सु बली हरखे। घन बूँदन ज्यों बिसखं बरखे॥ १६॥ जनु घोर कै स्याम घटा घुमडी। असुरेस अनीकनि (मू०ग्रं०१००) त्यों उमडी। जग मात बिरूथनि मों धसिकै। धनु साइक हाथ गह्यो हसिकै॥ १७॥ रण कुंजर पुंज गिराइ दिए। इक खंड अखंड दुखंड किए। सिर एकनि चोट निफोट बही। तरवा तर ह्वै तरवार रही॥ १८॥ तन झज्झर ह्वै रण भूम गिरे। इक भाज चले फिरकै न फिरे। इकि हाथ हथिआर लै आन बहे। लरि कै मरि कै गिरि खेत रहे॥ १६॥ ॥ नराज छंद॥ तहाँ सु दैत राजयं। सजे सु सरब साजयं। तुरंग आप बाहियं। बधं सु मात चाहियं॥ २०॥ तबै द्रुगा बकारिकै। कमाण बाण धारिकै। सु घाव चामरं कियो। उतार हसत ते दियो॥ २१॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद॥ तबै

पकड़कर दानवेंद्रो के सिरो पर चला दिए। इधर से बलवान सिंह भी दहाड़ने लगा और उसने अनेक बलशाली योद्धाओ को खंड-खंड कर दिया॥ १५॥ ॥ तोटक छंद॥ जगत्माता दुर्गा के बाण लगते ही दानव क्रोध से भर उठे। विविध प्रकार के अस्त्रो को लेकर बलवान शूरवीर प्रसन्न होकर उन्हे इस प्रकार चलाने लगे मानो बादलो से विष की बूंदें बरस रही हो॥ १६॥ जिस प्रकार घनघोर काली घटाएँ उमड़ती है, वैसे असुरो की सेना उमड़ी पड़ रही है। जगत्माता ने (दैत्य-) सेना मे घुसकर हँसते हुए धनुष-बाण हाथ मे ले लिया॥ १७॥ रण मे हाथियो के समूहो को धराशायी कर दिया और एक को दो-दो टुकडों मे बाँट दिया। अनेको के सिरो पर चोट लगने से रक्त बह रहा है और तलवारे लहू से तर हो गई हैं॥ १८॥ शरीर घडो के समान रणभूमि मे आ गिर रहे हैं और लड़ाई में कुछ ऐसे भाग निकले है कि उन्होने फिर मुड़कर नही देखा है। कई शस्त्र पकड़कर सम्मुख आ उपस्थित हुए है और लड-मरकर समाप्त हो गए है॥ १९॥ ॥ नराज छद॥ वहाँ दैत्यराज ने सभी प्रकार से अपने-आपको सुसज्जित किया और स्वयं घोड़े को दौड़ाकर सामने आकर देवी को मारने का प्रयत्न करने लगा॥ २०॥ तब दुर्गा ने ललकारकर कमान-बाण को धारण कर चामरासुर को घायल कर हाथी से उतार फेका॥ २१॥ ॥ भुजग प्रयात छद॥ तब बिडालाक्ष

बीर कोपं बिड़ालाछ नामं । सजे शस्त्र देहं चले जुद्ध धामं । सिरं सिंघ के आन धायं प्रहारं । बली सिंघ सो हाथ सों मारि डारं ॥ २२ ॥ बिड़ालाछ मारे सु पिंगाछ धाए । द्रुगा सामुहे बोल बाँके सुनाए । करी अभ्रि ज्यों गरज कै बाण बरखं । महाँ सूरबीरं भरे जुद्ध हरखं ॥ २३ ॥ तबै देविअं पाण बाणं सँभार । हन्यो दुष्ट के घाइ सीसं मझारं । गिर्यो झूम भूमं गए प्राण छुट्टं । मनो मेर को सातवो स्रिग टुट्टं ॥ २४ ॥ गिरे बीर पिंगाछ देबी सँघारे । चले अउरु बीरं हथ्यारं उघारे । तबै रोस देबियं सरोघं चलाए । बिना प्रान कै जुद्ध मद्धं गिराए ॥ २५ ॥ ॥ चौपई ॥ जे जे सत्रु सामुहे आए । सभै देवता मारि गिराए । सैना सकल जबै हनि डारी । आसुरेस कोपा हंकारी ॥ २६ ॥ आप जुद्ध तब किआ भवानी । चुन चुन हने पखरिआ बानी । क्रोध ज्वाल मसतक ते बिगसी । ता ते आप कालका निकसी ॥२७॥ ॥ मधुभार छंद ॥ मुख बमत ज्वाल । निकसी कपाल । मारे गजेस । छुट्टे हएस ॥२८॥

नामक वीर क्रोधित एवं शस्त्रो से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए चला और उसने सिह के सिर पर प्रहार किया । बलवान सिह ने उसे अपने पजों से ही मार डाला ॥ २२ ॥ बिडालाक्ष के मारे जाने पर पिंगाक्ष नामक राक्षस दौडा और दुर्गा के सामने पहुँचकर खरी-खोटी सुनाने लगा । उसने घोर गर्जना के साथ बाणो की वर्षा की, जिसे देख-सुनकर शूरवीर हर्षित हो उठे ॥ २३ ॥ तभी देवी ने हाथ मे बाण सँभालते हुए उस दुष्ट के सिर मे बाण मारा, जिससे वह झूमता हुआ पृथ्वी पर आ गिरा और उसके प्राण-पखेरू इस प्रकार उड़ गए मानो सुमेरु की सातवी चोटी टूटकर गिर पड़ी ॥ २४ ॥ देवी द्वारा पिंगाक्ष राक्षस की तरह मारे गए अनेकों वीरो का अत हुआ । अन्य कई वीर शस्त्रो को निकालकर युद्ध के लिए चले । देवी ने अत्यन्त क्रोध से बाण चलाया और वीरों को मार गिराया ॥ २५ ॥ ॥ चौपाई ॥ जो-जो शत्रु सामने आये उन्हे देवताओ ने मार गिराया । इस प्रकार जब सारी सेना नष्ट हो गई तब अहकारी दैत्यराज क्रोधित हो उठा ॥ २६ ॥ तब भवानी ने स्वय युद्ध किया और चुन-चुनकर कई लौह-कवचधारियो को मार डाला । क्रोध की ज्वाला उसके मस्तक से निकल पड़ी जिससे कालका प्रगट हुई ॥ २७ ॥ ॥ मधुभार छंद ॥ उसके मुख से ज्वाला निकल रही थी और वह चडी के मस्तक से प्रगट हुई है । उसने बड़े-बड़े हाथियो एवं घुड़सवारो को

छुट्टंत बाण। झमकत क्रिपाण। सांगं प्रहार। खेलत धमार ॥ २९ ॥ बाहैं निशंग। उट्ठै झड़ंग। तुप्पक्क तड़ाक। उट्ठत कड़ाक ॥ ३० ॥ बबकंत माइ। भभकंत घाइ। जुज्झे जुआण। नच्चे किकाण ॥३१॥ ॥ रूआमल छंद ॥ धायो असुरेंद्र तह निज कोप ओप बढाइ। संग लै चतुरंग सैना सुद्ध शस्त्र (मू०ग्रं०१०१) नचाइ। देबि शस्त्र लगै गिरे रण रुज्झि जुज्झि जुआण। पील राज फिरे कहूँ रण सुच्छ छुच्छ किकाण ॥ ३२ ॥ चीर चामर पुंज कुंजर बज राज अनेक। शस्त्र अस्त्र सुभे कहूँ सरदार सुआर अनेक। तेग तीर तुफंग तबर कुहुक वान अनत। बेधि बेधि गिरे वरच्छिन सूर सोभावंत ॥ ३३ ॥ ग्रिद्ध ब्रिद्ध उडे तहा फिक्करंत स्वान सिग्राल। मत्त दंत सपच्छ पब्बै कंक बंक रसाल। छुद्र मीन छुरुद्धका अरु चरम कछप अनंत। नक्र बक्र सुबरम सोभित स्रोण नीर दुरंत ॥ ३४ ॥ नव सूर नवका से रथी अतिरथी

मार डाला ॥ २८ ॥ युद्ध मे वाण छूट रहे है, कृपाणे चमक रही हैं, बरछियो के वार हो रहे है और ऐसा लग रहा है जैसे होली खेली जा रही हो ॥ २९ ॥ अभय होकर शस्त्र चलाये जा रहे है। भीषण नाद हो रहा है, तोपो की तड़-तड़ और गर्जना सुनाई पड रही है ॥ ३० ॥ देवी दहाड़ रही है और घाव फूट रहे है। शूरवीर युद्ध मे जूझ रहे हैं और अश्व नाच रहे है ॥ ३१ ॥ ॥ रूआमल छद ॥ दैत्यराज क्रोधित होकर एव अपने वल मे वृद्धि करता हुआ चतुरगिणी सेना साथ लेकर, शस्त्रो को नचाता हुआ आगे वढा। देवी के शस्त्र लगते ही शूरवीर धरती पर गिर पड़े और युद्ध में कही हाथी और सवार-विहीन घोड़े दौड़ रहे है ॥ ३२ ॥ कही कपड़े, कही पगड़ियाँ, चमर, बहुत से हाथी-घोड़े तथा राजा मरे पड़े है। कही अस्त्र-शस्त्रधारी अनेको सेनापति पड़े है, कही तीर, तलवार, वदूक, तवर आदि शस्त्रो की ध्वनि सुनाई दे रही है और कही पर बरछियो से बिंधे हुए गिरे पड़े शूरवीर शोभायमान हो रहे हैं ॥ ३३ ॥ मैदान मे वड़े-वड़े गिद्ध उड़ रहे है तथा गीदड़ बोल रहे हैं। मस्त हाथी पखो वाले पहाड़ो की तरह लग रहे है और कौवे भी झुक-झुककर मास भक्षण कर रहे है। दैत्यो के शरीरो पर तलवारे छोटी-छोटी मछलियो के समान और ढाले कच्छपो के समान प्रतीत हो रही हैं। उनके शरीर पर लौह-कवच सुशोभित हो रहे है और बाढ की तरह रक्त प्रवाहित हो रहा है ॥ ३४ ॥ नये-नये शूरवीर नावो के समान और रथी-महारथी जहाज़ो के समान प्रतीत हो रहे है। ये सभी ऐसा लग रहा है

जान जहाज । लादि लादि मनो चले धन धीर बीर सलाज । मोलु बीच फिरै चुकात दलाल खेत खतंग । गाहि गाहि फिरे फवज्जनि झारि दिरब निखंग ।। ३५ ।। अंग भंग गिरे कहूँ बहु रंग रंगित बस्त्र । चरम बरम सुभे कहूँ रण भूम शस्त्र रुअस्त्र । मुंड तुंड धुजा पताका टूक टाक अरेक । जूझ जूझ परे सभै अरि बाचियो नहि एक ।। ३६ ।। कोप कै महिखेस दानो धाइयो तिह काल । अस्त्र शस्त्र सँभार सूरो रूप कै बिकराल । काल पाण क्रिपाण लै तिह मारियो ततकाल । जोति जोति बिखै मिली तज ब्रहम रंध्रि उताल ।। ३७ ।। ।। दोहरा ।। महिखासुर कह मारकर प्रफुलत भी जग माइ । ता दिन ते महिखे बलै देत जगत सुख पाइ ।। ३८ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके चंडी चरित्रे महिखासुर बधह प्रथम धिआय सपूरनम सतु सुभम सतु ।। १ ।। अफजू ।।

अथ धूम्रनैन जुद्ध कथनं ।।

।। कुलक छंद ।। देविस तब गाजिय । अनहद बाजिय ।

मानो व्यापारियो की तरह युद्धस्थल से माल लाद-लादकर लज्जापूर्वक भागे जा रहे है । युद्धस्थल के वाण मानो दलाल है, जो इस सौदे का मोल चुका रहे है । सेनाएँ भाग-दौड़कर युद्धस्थल का मथन कर रही हैं और अपने तरकश रूपी खज़ाने को खाली कर रही है ।। ३५ ।। कही से बहुरगी वस्त्र और शरीरो के कटे हुए अग पड़े है । कही पर ढाल और कवच तथा कही अकेले शस्त्र पड़े हैं । कही पर सिर, झण्डे और झण्डियाँ टूटकर पडी है और युद्धस्थल मे सभी शत्रु खेत रहे तथा कोई एक भी शेष नही बचा ।। ३६ ।। तभी क्रोधित होकर महिषासुर आगे बढ़ा और उसने विकराल स्वरूप बनाकर अस्त्र-शस्त्रों को सँभाला । कालका देवी ने हाथ मे कृपाण लेकर उसे तत्काल मार गिराया और उस दैत्य की ज्योति ब्रह्मरन्ध्र से निकलकर उस परमज्योति मे जा मिली ।। ३७ ।। ।। दोहा ।। महिषासुर को मारकर जगत्माता अत्यन्त प्रसन्न हुई और उसी दिन से सारा संसार सुख-प्राप्ति के लिए पशुओ की बलि देता है ।। ३८ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक के चडी-चरित्र मे महिषासुर-वध नामक प्रथम अध्याय की शुभ समाप्ति ।। १ ।। अफजू ।।

धूम्रनयन-युद्ध-कथन

।। कुलक छद ।। दुर्गा गरज उठी और लगातार ध्वनि होने लगी ।

भई बधाई। सभ सुखदाई ॥ १ ॥ ३९ ॥ दुंदभ बाजे। सभ सुर गाजे। करत बडाई। सुमन ब्रखाई ॥ २ ॥ ४० ॥ कीनी बहु अरचा। जस धुन चरचा। पाइन लागे। सभ दुख भागे ॥ ३ ॥ ४१ ॥ गाए जै करखा। पुहपनि बरखा। सीस निवाए। सभ सुख पाए ॥ ४ ॥ ४२ ॥ ॥ दोहरा ॥ लोप चंडका जू भए दै देवन को राजु। बहुर सुंभ नैसुंभ द्वै दैत बडे सिरताज ॥ ५ ॥ ४३ ॥ ॥ चउपई ॥ सुंभ निसुंभ चड़े लैकै दल। अरि अनेक जीते जिन जल थल। देव राज (मू०ग्रं०१०२) को राज छिनावा। शेश मुकुट मन भेट पठावा ॥ ६ ॥ ४४ ॥ छीन लयो अलकेस भंडारा। देस देस के जीति न्रिपारा। जहाँ तहाँ कह दैत पठाए। देस बिदेस जीत फिर आए ॥ ७ ॥ ४५ ॥ ॥ दोहरा ॥ देव सभै त्रासित भए मन मों कियो बिचार। शरन भवानी की सभै भाजि परे निरधार ॥ ८ ॥ ४६ ॥ ॥ नराज छंद ॥ सु त्रास देव भाजिअं। बसेख लाज लाजिअं। विसिख कारमं

सबको सुख प्राप्त हुआ और सभी बधाई देने लगे ॥ १ ॥ ३९ ॥ नगाड़े बजने लगे और देवता गरजने लगे। वे पुष्पवर्षा करके देवी का गुणानुवाद करने लगे ॥ २ ॥ ४० ॥ उन्होने बहुत अर्चना और यशोगान किया। देवी के चरण छूते ही उनके सव दु.ख दूर हो गए ॥ ३ ॥ ४१ ॥ जय-जयकार के छद गाने लगे तथा फूलो की वर्षा करने लगे। उन्होने शीश झुकाया और सब सुखों को प्राप्त कर लिया ॥ ४ ॥ ४२ ॥ ॥ दोहा ॥ देवताओ को राज देकर चडिका लोप हो गई, परन्तु पुनः शुम्भ-निशुम्भ नामक दो दैत्य पैदा हो गए ॥ ५ ॥ ४३ ॥ ॥ चौपाई ॥ शुभ-निशुभ ने सेना लेकर चढाई की तथा जल-स्थल पर अनेक शत्रुओ को जीत लिया। देवराज इन्द्र का राज्य छीन लिया और शेषनाग ने उन्हे मणि भेटस्वरूप भेजवा दी ॥ ६ ॥ ४४ ॥ कुबेर के भण्डार को छीनकर उन्होंने देश-देशान्तरो के राजाओ को जीत लिया। अनेक स्थानो को उन्होने दैत्यो को भेजा जो देश-विदेशो को जीतकर पुनः वापस लौट आये ॥ ७ ॥ ४५ ॥ ॥ दोहा ॥ देवताओ ने भयभीत होकर मन मे विचार किया कि भवानी की शरण ग्रहण की जाय तथा सभी निरालब होकर देवी की ओर भाग चले ॥ ८ ॥ ४६ ॥ ॥ नराज छद ॥ डर के मारे देवता भाग रहे है और विशेष रूप से लज्जित हो रहे है। विष-बुझे बाण, धनुष धारण किए हुए देवी के लोक मे सब देवता जा बसे ॥ ९ ॥ ४७ ॥

कसे। सु देवलोक मो बसे ॥ ९ ॥ ४७ ॥ तवै प्रकोप देब ह्वै। चली सु शस्त्र अस्त्र लै। सु मुद पान पान कै। गजी क्रिपान पान लै ॥ १० ॥ ४८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ सुणी देव बानी। चढ़ी सिंघ रानी। सुभं शस्त्र धारे। सभै पाप टारे ॥ ११ ॥ ४९ ॥ करे नद्द नादं। महाँ मद्द मादं। भयो संख शोरं। सुन्यो चार ओरं ॥ १२ ॥ ५० ॥ उते दैत धाए। बडी सैन ल्याए। मुखं रक्त नैणं। बकै बंक बैणं ॥ १३ ॥ ५१ ॥ चवं चार ढूके। मुखं मार कूके। लए बाण पाणं। सु काती क्रिपाणं ॥ १४ ॥ ५२ ॥ मँडे मद्ध जंगं। प्रहारं खतंगं। करउती कटारं। उठी शस्त्र झारं ॥ १५ ॥ ५३ ॥ महाँबीर ढाए। सरोघं चलाए। करैं बार बैरी। फिरे ज्यों गँगैरी ॥ १६ ॥ ५४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ क्रोधतसटायं उतै सिंघ धायो। इतै संख लै हाथ देवी बजायो। पुरी चउदहूयं रहयो नाद पूरं। चमक्क्यो मुखं जुद्ध के मद्धि नूरं ॥ १७ ॥ ५५ ॥ तबै धूम्र

जब देवी ने यह देखा तो वह अत्यन्त कुपित हुई और अस्त्र-शस्त्र धारण कर चल पड़ी। अत्यन्त प्रसन्न होकर हाथ मे कृपाण लेकर वह गरज उठी ॥ १० ॥ ४८ ॥ ॥ रसावल छद ॥ देवताओ की बाते सुनकर देवी सिंह पर सवार हुई। उसने पापो को काटनेवाले शुभ शस्त्र धारण कर लिये ॥ ११ ॥ ४९ ॥ महा मदमस्त करनेवाले नगाडो का नाद होने लगा तथा शंखो की ध्वनि भी चारो ओर सुनाई देने लगी ॥१२॥५०॥ उधर से दैत्य विशाल सेना के साथ आगे बढे और अपनी लाल आँखो और मुखो से विभिन्न बकवाद करने लगे ॥ १३ ॥ ५१ ॥ चारो ओर से शूरवीर पास आकर 'मार-मार' पुकार रहे है। उनके हाथो में बाण, कटारी और कृपाणे पकडी हुई है ॥ १४ ॥ ५२ ॥ उन्होने घनघोर युद्ध का मंडन कर बाणो से प्रहार शुरू कर दिए है। कटार, कृपाण एवं शस्त्रों की वर्षा प्रारम्भ हो उठी है ॥ १५ ॥ ५३ ॥ महाबली आगे बढ़े है और उन्होने बाण-प्रहार प्रारम्भ कर दिए है। शत्रुओ के वार ऐसे चल रहे हैं, मानो पक्षी जल पर मछली पकड़ने के लिए झपट रहे हो ॥ १६ ॥ ५४ ॥ ॥ भुजग प्रयात छद ॥ उधर क्रोधित होकर सिंह आगे की ओर दौड़ा, इधर देवी ने हाथ मे शख लेकर शखनाद किया जो चौदह भुवनो मे गुजायमान हो उठा। युद्धस्थल में वीरो के मुख से तेज टपकने लगा ॥ १७ ॥ ५५ ॥ तभी शस्त्रधारी धूम्रनयन क्रोधित हो युद्ध करने

नैणं मच्यो शस्त्रधारी। लए संग जोधा बडे बीर भारी। लयो बेढ़ि पब्बं कियो नाद उच्चं। सुणे गरभणीआनि के गरभ मुच्चं ॥ १८ ॥ ५६ ॥ सुण्यो नाद स्रवणं कियो देव कोपं। सजे चरम बरमं धरे सीस टोपं। भई सिंघ स्वारं कियो नाद उच्चं। सुणे दीह दानवान के मान मुच्चं ॥ १९ ॥ ५७ ॥ महा कोप देवी धसी सैन मद्धं। करे बीर बंके तहाँ अद्ध अद्धं। जिसै धाइ कै सूल सैहथी प्रहार्‌यो। तिने फेरि पाणं न बाणं सँभार्‌यो ॥ २० ॥ ५८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जिसै बाण मार्‌यो। तिसै मार डार्‌यो। जितै सिंघ धायो। तितै सैन घायो ॥ २१ ॥ ५९ ॥ जिते घाइ डाले। (मू०ग्रं०१०३) तिते घारि घाले। समुह शत्रु आयो। सु जाने न पायो ॥ २२ ॥ ६० ॥ जिते जुज्झ रुज्झे। तिते अंत जुज्झे। जिनै शस्त्र घाले। तिते मार डाले ॥ २३ ॥ ६१ ॥ तबै मात काली। तपी तेज ज्वाली। जिसै घाव डार्‌यो। सु सुरगं सिधार्‌यो ॥ २४ ॥ ६२ ॥ घरी अद्ध मद्धं।

लगा। उसने बड़े-बडे योद्धाओ को साथ लेकर देवी के पर्वत को घेरकर घनघोर नाद किया, जिसे सुनकर गर्भिणी स्त्रियो का गर्भपात् हो गया ॥ १८ ॥ ५६ ॥ देवी ने इस गर्जना को सुनकर क्रोधित होकर लौह-कवच एव शिरस्त्राण आदि से अपने को सुसज्जित किया। उसने सिंह पर सवार होकर भयानक आवाज की, जिसे सुनकर दानवो का गर्व चूर हो गया ॥ १९ ॥ ५७ ॥ महा क्रोधित होकर देवी ने सेना मे प्रविष्ट होकर वीरो को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। देवी ने आगे बढ़कर जिस पर भी शूल एव कृपाण से वार किया, वह फिर बाण हाथ मे न पकड़ सका अर्थात् निर्जीव हो गया ॥ २० ॥ ५८ ॥ ॥ रसावल छद ॥ जिसे भी बाण मारा उसे मार ही डाला। जिस ओर भी सिह घूम गया, उधर सैन्यदल विनष्ट हो गया ॥ २१ ॥ ५९ ॥ जितने भी दैत्यो को घाव लगे वे ऐसे दिखते है, मानो पर्वतो मे दरारे पड़ गयी हो। जितने भी शत्रु सामने आए वे वापस न जा पाए अर्थात् मार डाले गए ॥ २२ ॥ ६० ॥ जितने वीर युद्ध मे सलग्न हुए सभी अत मे खेत रहे। जो भी शस्त्र-युक्त था, मार डाला गया ॥ २३ ॥ ६१ ॥ तभी काली माता अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठी और उसने जिसको भी घायल किया वह सीधा स्वर्ग सिधार गया ॥ २४ ॥ ६२ ॥ आधी घड़ी मे देवी ने सारी सेना को नष्ट कर दिया। धूम्रनयन को मार दिया गया और इस तथ्य को

हन्यो सैन सुद्धं। हन्यो धूम्रनैणं। सुन्यो देव गणं ॥ २५ ॥ ॥ ६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ भजी बिरूथन दानवी गई भूप के पास। धूम्रनैण काली हन्यो भजियो सैन निरास ॥ २६ ॥ ६४ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक चंडी चरित्र धूम्रनैण बधह दुतीआ धिआइ सपूरनम सतु सुभम सतु ॥ २ ॥ अफजू ॥

अथ चंड मुंड जुद्ध कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ इह बिध दैत सँघार कर धवला चली अवास। जो यह कथा पड़ै सुनै रिद्धि सिद्धि ग्रिह तास ॥ १ ॥ ६५ ॥ ॥ चउपई ॥ धूम्रनैण जब सुणे सँघारे। चंड मुंड तब भूप हकारे। बहु विधि कर पठए सनमाना। है गै पति दीए रथ नाना ॥ २ ॥ ६६ ॥ प्रिथम निरखि देवी जे आए। ते धवलागिर ओर पठाए। तिनकी सनक भनक सुनि पाई। निसिरी शस्त्र अस्त्र लै माई ॥ ३ ॥ ६७ ॥ ॥ रूआल छंद ॥ साजि साजि चले तहाँ रण राछसेंद्र अनेक।

देवताओ ने आकाश मे सुन लिया ॥ २५ ॥ ६३ ॥ ॥ दोहा ॥ दैत्य-सेना भाग खड़ी हुई और अपने राजा के पास पहुँची। वहाँ जाकर बताया कि धूम्रनयन को काली ने मार दिया है और सेना निराश होकर भाग खड़ी हुई है ॥ २६ ॥ ६४ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के चडीचरित्र मे धूम्रनयन-वध नामक द्वितीय अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ २ ॥ अफजू ॥

चंड-मुंड-युद्ध-कथन

॥ दोहा ॥ इस प्रकार दैत्यो का संहार करके दुर्गादेवी अपने आवास-स्थान को चली गई। जो भी इस कथा को पढ़ेगा अथवा सुनेगा, ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ उसके घर मे निवास करेगी ॥१॥६५॥ ॥ चौपाई ॥ जब राजा ने सुना कि धूम्रनयन मारा जा चुका है, तो उसने चड-मुड को ललकारा। उनका अनेक विधियो से सम्मान कर, उन्हें अश्व, हाथी एवं रथ आदि देकर (युद्ध के लिए) भेज दिया ॥ २ ॥ ६६ ॥ ये पहले ही देवी को देख आए थे, अतः इन्हे कैलास पर्वत (देवी का निवास-स्थान) की ओर भेजा गया। इनके आने की बात सुनते ही देवी शस्त्र धारण कर चल पड़ी ॥ ३ ॥ ६७ ॥ ॥ रूआल छद ॥ अनेक प्रकार के शस्त्रो से

अरध मुंडित मुंडितेक जटा धरे सु अनेक। कोपि ओपं दै सभै कर शस्त्र अस्त्र नचाइ। धाइ धाइ करैं प्रहारनि तिच्छ तेग कँपाइ ॥ ४ ॥ ६८ ॥ शस्त्र अस्त्र लगे जिते सभ फूल माल ह्वै गए। कोप ओप बिलोकि अतिभुत दानवं बिसमै भए। दउर दउर अनेक आयुध फेर फेर प्रहारहीं। जूझ जूझ गिरे अनेक सु मार मार पुकारहीं ॥ ५ ॥ ६९ ॥ रेल रेल चले हएंद्रन पेल पेल गजेंद्र। झेल झेल अनंत आयुध हेल हेल रिपेंद्र। गाहि गाहि फिरे फवज्जन बाहि बाहि खतंग। अंग भंग गिरे कहूँ रण रंग सूर उतंग ॥ ६ ॥ ७० ॥ झार झार फिरे सरोतम डारि झारि क्रिपान। सैल से रण पुंज कुंजर सूर सीस बखान। बक्र नक्र भुजा सु सोभत चक्र से रथ चक्र। केस पास सिबाल सोहत असथ चूर सरक्र ॥७॥७१॥ (मू०ग्रं०१०४) सज्जि सज्जि चले हथिआरन गज्जि गज्जि गजेंद्र। बज्जि

सुसज्जित होकर राक्षसराज चल पड़े है। अनेकों सिर आधे मुंड़े, कई के पूरे तथा कितने ही राक्षसो ने जटाएँ धारण कर रखी है। वे सभी अत्यन्त क्रोधित होकर शस्त्रो को नचा रहे है और दौड़-दौड़कर कृपाणों को चमकाकर तीव्र प्रहार कर रहे हैं ॥ ४ ॥ ६८ ॥ जितने भी अस्त्र-शस्त्र दुर्गा को लगे वे सब फूलमाला बन गए। यह सब देखकर सभी दानव क्रोध एव आश्चर्य मे भर उठे। वे दौड़-दौड़कर विभिन्न शस्त्रो से पुनःपुनः प्रहार कर रहे है और 'मारो, मारो' की पुकार के साथ जूझ-जूझकर गिरते चले जा रहे है ॥ ५ ॥ ६९ ॥ घुडसवार अश्वो को धक्का दे-देकर आगे ठेल रहे है और गजराज को पीलवान मोड़-मोड़कर आगे बढा रहे है। अनत शस्त्रो की मार को झेलकर शत्रुओ के राजागण आक्रमण कर रहे हैं। सेनाएँ सैनिको को पैरो-तले कुचल-कुचलकर आगे बढकर बाण-वर्षा कर रही हैं। रणस्थल मे कई शूरवीर अगहीन होकर गिर पड़े हैं ॥ ६ ॥ ७० ॥ कही उत्तम तीरो की वर्षा हो रही है और कही झुड की झुड कृपाणे चलती दिखाई दे रही है। शिलाओ के समान हाथी दिखाई पड़ रहे है और शूरवीरो के सिर बडे-बड़े पत्थरो के समान दिखाई दे रहे है। टेढी नाक और भुजाएँ तथा रथचक्रो के समान चक्र पड़े दिखाई दे रहे है। केशराशियो के छितरने से मानो पाश बन गए हो और हड्डियाँ चूर-चूर होकर ऐसे पडी है, मानो रेत पड़ी हो ॥ ७ ॥ ७१ ॥ वीर हथियारो को सजाकर चले है और हाथी चिघाड़ते हुए चले है। विभिन्न प्रकार के बाजो की ध्वनि करते अश्वारोही भाग-भागकर चले आ

बज्जि सबज्ज बाजन भज्जि भज्जि हएंद्र। मार मार पुकार कै हथिआर हाथ सँभार। धाइ धाइ परे निसाचर बाइ संख अपार ॥ ८ ॥ ७२ ॥ संख गोमुख गज्जियं अर सज्जियं रिपराज। भाजि भाजि चले किते तज लाज बीर निलाज। भीम भेरी भुंकिअं अरु धुंकिअं सु निसाण। गाहि गाहि फिरे फवज्जन बाहि बाहि गदाण ॥ ९ ॥ ७३ ॥ बीर कंगने बंधहीं अरु अचछरै सिर तेलु। बीनि बीनि बरे बरंगन डारि डारि फुलेल। घालि घालि बिवान लेगी फेर फेर सु बीर। कूदि कूदि परे तहाँ ते झागि झागि सु तीर ॥ १० ॥ ७४ ॥ हाँकि हाँकि लरे तहाँ रण रीझि रीझि भटेंद्र। जीति जीति लयो जिन्है कई बार इंद्र उपेंद्र। काटि काटि दए कपाली बाँटि बाँटि दिसान। डाटि डाटि करद्दलं सुर पग्ग पब्ब पिसान ॥ ११ ॥ ७५ ॥ धाइ धाइ सँघारिअं रिपु राज बाज अनंत। स्रोन की सरता उठी रण मद्धि रूप दुरंत। बाण अउर कमाण सैहथी सूल तिचछु कुठार। चंड मुंड हने दोऊ कर

रहे है। हाथो में शस्त्र सँभालकर वीर 'मार, मार' चिल्ला रहे है तथा राक्षस शखध्वनियाँ करते हुए दौड-दौड़कर टूट पड़ रहे है ॥ ८ ॥ ७२ ॥ शख एवं रणसिघे गरज रहे है और शत्रुराज युद्ध के लिए सुसज्जित है। कही-कही कायर लज्जा को त्यागकर भागे भी चले जा रहे है। वृहद्काय भेरियों की ध्वनि सुनाई पड़ रही है और ध्वजाएँ फहरा रही है। शूरवीर सेनाओ का अपनी गदाओ से मथन कर रहे है ॥ ९ ॥ ७३ ॥ अप्सराएँ श्रृगार कर वीरो को कगन भेट कर रही है अर्थात् चुनौती दे रही है और योगिनियों ने चुन-चुनकर वीरो का वरण किया है। वे अपने विमानों पर चढ़ाकर वीरो को अपने साथ ले गई है। युद्ध के लिए मदमस्त वीर कूद-कूदकर फिर तीरो की मार खाकर नीचे गिर पड़ रहे हैं ॥ १० ॥ ७४ ॥ युद्धस्थल मे आवाज दे-देकर प्रसन्नतापूर्वक उन वीर राजाओ ने युद्ध किया है, जिन्होने कई वार इंद्र और उपेन्द्रो को जीत लिया था। कपाली, दुर्गा ने इन सबको काट-काटकर विभिन्न दिशाओ मे फेंक दिया है और उन राक्षसो का उपर्युक्त हाल किया है, जिन्होने अपने हाथो-पैरो के वल से पर्वतो को भी पीस दिया था ॥ ११ ॥ ७५ ॥ शत्रु दौड़-दौड़कर अनत घोड़ो को मारे डाल रहे है और युद्धस्थल में भीषण रक्त की नदी वह चली है। तीर-कमान, वरछी, कुल्हाड़ा आदि शस्त्र चल रहे है और चडिका ने अपनी कराल कृपाण से चड-मुड का वध कर

कोप काल क्रवार ॥ १२ ॥ ७६ ॥ ॥ दोहरा ॥ चंड मुंड मारे दोऊ काली कोप क्रवार । अउर जिती सैना हुती छिन मो दई सँघार ॥ १३ ॥ ७७ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके चडी चरित्रे चड मुड बधह त्रितीयो धिआइ संपूरणम सतु सुभम सतु ॥ ३ ॥ अफजू ॥

अथ रकतबीरज जुद्ध कथनं ॥

॥ सोरठा ॥ सुनी भूप इम गाथ चंड मुंड काली हने । बैठ भ्रात सों भ्रात मंत्र करत इह बिध भए ॥ १ ॥ ७८ ॥ ॥ चउपई ॥ रक्तबीज तब भूप बुलायो । अमित दरबु दै तहाँ पठायो । बहु बिध दई बिरूथन संगा । है गै रथ पैदल चतुरंगा ॥ २ ॥ ७९ ॥ रक्तबीज दै चल्यो नगारा । देव लोग लउ सुनी पुकारा । कंपी भूम गगन थहराना । देवन जुति दिवराज डराना ॥ ३ ॥ ८० ॥ धवलागिर के जब तट आए । दुंदभ ढोल म्रिदंग बजाए । जब ही सुना कुलाहल

दिया है ॥ १२ ॥ ७६ ॥ ॥ दोहा ॥ काली ने अपनी कृपाण से कुपित होकर चड-मुड दोनो को मार दिया तथा बाकी जितनी सेना थी उसका भी क्षण भर मे सहार कर दिया ॥ १३ ॥ ७७ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के चडीचरित्र मे चड-मुड-वध नामक तीसरे अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ ३ ॥ अफजू ॥

रक्तबीज-युद्ध-कथन

॥ सोरठा ॥ जब राजा शुभ ने यह सुना कि काली ने चंड एवं मुड का वध कर दिया है, तब दोनो भाई (शुंभ एवं निशुभ) बैठकर विचार-विमर्श करने लगे ॥ १ ॥ ७८ ॥ ॥ चौपई ॥ राजा ने तब रक्तबीज को बुलाकर उसे अपरिमित द्रव्य, विशाल सेना तथा गज, अश्व एवं पैदल सिपाही देकर विदा किया ॥ २ ॥ ७९ ॥ रक्तबीज नगाड़े बजाता हुआ चला और नगाडो की यह ध्वनि देवलोक तक सुनाई पडने लगी । भूमि काँपने लगी, व्योममण्डल भयभीत हो उठा तथा देवताओ समेत देवराज इन्द्र भी आतंकित हो उठा ॥ ३ ॥ ८० ॥ जब वे धवलागिरि (कैलास) के पास आए तो दुदुभियाँ और नगाडे ज़ोर-ज़ोर से बजाने लगे । देवी ने जब दैत्यो का कोलाहल सुना तो नाना प्रकार के शस्त्र लेकर वह

काना। उतरी शस्त्र अस्त्र लै नाना ॥ ४ ॥ ८१ ॥ छहबर लाइ (मू०ग्रं०१०५) बरखियं बाणं। बाज राज अरु गिरे किकाणं। ढहि ढहि परे सुभट सिरदारा। जनु कर कटे बिरछ सँग आरा ॥ ५ ॥ ८२ ॥ जे जे शत्रु सामुहे भए। बहुर जिअत ग्रिह को नही गए। जिह पर परत भई तरवारा। इकि इकि ते भए दो दो चारा ॥ ६ ॥ ८३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छद ॥ झिमी तेज तेगं सु रोसं प्रहारं। खिमी दामनी जाण भादो मझारं। उठे नद्द नादं कड़क्के कमाणं। मच्यो लोह क्रोहं अभूतं भयाणं ॥ ७ ॥ ८४ ॥ बजे भेर भेरी जुझारे झणंके। परी कुट्ट कुट्टं लगे धीर धक्के। चवी चावडीय नफीरं रणंकं। मनो बिचरं बाघ बंके बबक्कं ॥ ८ ॥ ८५ ॥ उते कोपियंग स्रोण बिदं सु बीरं। प्रहारे भली भाँत सों आन तीरं। उते दउर देवी कर्यो खग्ग पातं। गिर्यो मूरछा ह्वै भयो जानु घातं ॥ ९ ॥ ८६ ॥ छुटी मूरछनायं महाँ बीर गज्ज्यो। घरी चार लउ सार सों सार बज्ज्यो। लगे बाण

नीचे उतरी ॥ ४ ॥ ८१ ॥ उसने मूसलाधार वाण-वर्षा शुरू कर दी। जिससे घुड़सवार एव घोड़े धराशायी हो गए। अनेकों बड़े-बड़े वीर ऐसे गिरने लगे जैसे आरा से कटे हुए वृक्ष गिरते जाते हैं ॥ ५ ॥ ८२ ॥ जो-जो शत्रु (देवी के) सामने आया वह जीवित वापस नही जा सका। जिस पर भी तलवार पड़ी, वह एक से दो तथा दो से चार टुकडो मे कट गया ॥ ६ ॥ ८३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छद ॥ क्रोध से युक्त होकर जब कृपाण द्वारा 'झम' की ध्वनि करता हुआ प्रहार किया गया है, तो वह ऐसा लगता है मानो भादो मास की घटा की बिजली हो। धनुषो के कड़कने से तेजी से बहते पानी की ध्वनि पैदा हो रही है और युद्धस्थल मे अभूतपूर्व लौह-सघर्ष मचा हुआ है ॥ ७ ॥ ८४ ॥ भेरियो के स्वर के साथ जुझारू वीर शस्त्र चमका रहे है और कट-कुट की ध्वनियो के बीच बड़े-बड़े धैर्यवान वीर भी धक्के खा रहे है। मैदान मे चीलें घूम रही हैं और भेरियो की घनघोर ध्वनि ऐसी लग रही है, मानो वन में विचरण करता हुआ शेर दहाड रहा हो ॥ ८ ॥ ८५ ॥ उधर रक्तबीज ने कुपित होकर भली प्रकार बाण-वर्षा की; इधर दौड़कर देवी ने उस पर खड्ग से आघात किया, जिससे वह ऐसे मूर्च्छित होकर गिर पड़ा जैसे मर ही गया हो ॥ ९ ॥ ८६ ॥ मूर्च्छा छूटने पर वह वीर फिर गर्जने लगा तथा चार घड़ी तक युद्धस्थल मे लोहे से लोहा बजता रहा। रक्तबीज बाणो की मार

स्रोणं गिर्यो भूमि जुद्धं। उठे बीर तेते किए नाद क्रुद्धं ॥ १० ॥ ८७ ॥ उठे बीर जेते तिते काल कूटे। परे चरम बरमं कहूँ गात टूटे। जिती भूम मद्धं परी स्रोण धारं। जगे सूर तेते किए मार मारं ॥ ११ ॥ ८८ ॥ परी कुट्ट कुट्टं रुले तच्छ मुच्छं। कहूँ मुंड तुंडं कहूँ मासु मुच्छं। भयो चार सै कोस लउ बीर खेतं। बिदारे परे बीर ब्रिंदं बिचेतं ॥ १२ ॥ ८९ ॥
॥ रसावल छंद ॥ चहूँ ओर ढूके। मुखं मार कूके। झंडा गड्ड गाढे। मचे रोस बाढे ॥ १३ ॥ ९० ॥ भरे बीर हरखं। करो बाण बरखं। चवं चार ढुक्के। पछे आहु रुक्के ॥ १४ ॥ ९१ ॥ परी शस्त्र झारं। चली स्रोण धारं। उठे बीर मानी। धरे बान पानी ॥ १५ ॥ ९२ ॥ महा रोस गज्जे। तुरी नाद वज्जे। भरे रोस भारी। मचे छत्र धारी ॥ १६ ॥ ९३ ॥ हकं हाक बज्जी। फिरै सैण भज्जी।

से युद्धभूमि मे गिर पडा, परन्तु (उसके गिरते ही) कई वीर (रक्तवीज) वही उठ खड़े हुए और क्रोधित होकर गर्जने लगे ॥ १० ॥ ८७ ॥ जितने वीर उठे, दुर्गा ने उन सबको नष्ट कर किया। युद्धभूमि मे कही शरीर कटे पड़े है तो कही शरीर के लौहकवच विखरे पड़े है। युद्धभूमि मे (रक्तबीज की) जितनी रक्तधाराएँ बही, उतने ही अन्य शूरवीर 'मारो, मारो' चिल्लाते हुए उठ खडे हुए ॥ ११ ॥ ८८ ॥ भयकर मारकाट मची और शूरवीर खड-खड होकर धूल-धूसरित हो रहे हैं। कही धड़ और सिर पड़े है तो कही मास के शहतीर पड़े हैं। यह युद्धस्थल चार सौ कोस तक फैल गया, जिसमे अचेत एव मृतावस्था मे वीर पड़े हुए है ॥ १२ ॥ ८९ ॥ ॥ रसावल छद ॥ शूरवीर चारो ओर से पास-पास आ खड़े हुए है और मुख से 'मारो, मारो' की पुकारे निकाल रहे हैं। अपने-अपने झडो को गहरे धरती मे गाड़ रखा है, जिसे देखकर अन्यों का भी क्रोध वढ रहा है ॥ १३ ॥ ९० ॥ शूरवीर खुशी से भरकर वाणो की वर्पा कर रहे है। चारो प्रकार की सेना पास आ गई है और अपने-अपने पक्ष की ओर होकर रुक गई है ॥ १४ ॥ ९१ ॥ शस्त्रो की वारिश हो रही है और रक्त की धाराएँ वह निकली हैं। अभी भी हाथों मे वाण पकड़े अभिमानी वीर उठ रहे हैं ॥ १५ ॥ ९२ ॥ ये वीर क्रोध मे गरज रहे है और दूसरी ओर भयकर नाद बज रहा है। अत्यन्त क्रोधित होकर छत्रधारी राजा भीषण युद्ध मे सलग्न हैं ॥ १६ ॥ ९३ ॥ पुकार पर पुकार सुनाई दे रही है और सेना के वीर चारो ओर भाग-दौड मचाये हुए हैं। क्रोध मे लोहे पर लोहा पड़ रहा है और शूरवीर उस

पर्‍यो लोह क्रोहं। छके सूर सोहं ॥ १७ ॥ ९४ ॥ गिरे अंग भंगं। दवं जानु दंगं। कड़ंकार छुट्टे। झणंकार उट्ठे ॥ १८ ॥ ९५ ॥ कटा कट्ट बाहैं। उभै जीत चाहैं। महाँ मद्द माते। तपे तेज ताते ॥ १९ ॥ ९६ ॥ रसं रुद्र राचे। उभे जुद्ध माचे। करैं बाण अरचा। धनुर बेद (मू०ग्रं०१०६) चरचा ॥ २० ॥ ९७ ॥ मचे बीर बीरं। उठी झार तीरं। गलो गड्ड फोरैं। नहीं नैन मोरैं ॥२१॥९८॥ समुह शस्त्र बरखे। महिखुआसु करखे। करैं तीर मारं। बहैं लोह धारं ॥ २२ ॥ ९९ ॥ नदी स्रोण पूरं। फिरी गैण हूर। गजै गैण काली। हसी खप्पराली ॥ २३ ॥ १०० ॥ कहूँ बाज मारे। कहूँ सूर भारे। कहूँ बरम टूटे। फिरैं गज्ज फूटे ॥ २४ ॥ १०१ ॥ कहूँ बरम बेधे। कहूँ चरम छेदे। कहूँ पीर परमं। कटे बाज बरमं ॥ २५ ॥ १०२ ॥ बली बैर रुज्झे। समुह सार जुज्झे। लखे बीर खेतं। नचे

लोहे का भक्षण करते हुए शोभायमान हो रहे है ॥ १७ ॥ ९४ ॥ वीर अंग-भंग होकर गिरे हुए है और ऐसा लग रहा है कि युद्ध मे दावानल प्रज्वलित हो रहा है। शस्त्रो की कडकड़ और छनछनाहट सुनाई पड रही है ॥ १८ ॥ ९५ ॥ शस्त्र कटाकट की आवाज़ के साथ चल रहे है तथा दोनो ओर के वीर अपनी जीत चाह रहे है। ये सभी वीर मदमस्त है और अपने-अपने तेज प्रताप के कारण भयकर दिखाई पड़ रहे हैं ॥ १९ ॥ ९६ ॥ दोनो ओर के वीर रौद्र-रस मे लिप्त होकर भयंकर युद्ध कर रहे है। ये सव बाणो से अर्चना-पूजा कर रहे हैं और ऐसा लगता है कि धनुर्वेद (ज्ञान) की चर्चा को वढावा मिल रहा है ॥ २० ॥ ९७ ॥ वीर वीरो के साथ भिड़े हुए है और वाणो की वर्षा हो रही है। चक्रव्यूह वनाये हुए सैनिको को फोड़ रहे है, परन्तु सामने की ओर से मुख नही मोड़ते ॥ २१ ॥ ९८ ॥ सब शस्त्रो की वर्षा हो रही है एव धनुषो की टकार सुनाई पड़ रही है। युद्ध मे तीरो की मार और लोहे की धार वह निकली है ॥ २२ ॥ ९९ ॥ नदियाँ रक्त से भर गई हैं और व्योममण्डल मे अप्सराएँ उडने लगी है। खप्पर पकड़े हुए काली व्योममण्डल मे हँस एव गरज रही है ॥ २३ ॥ १०० ॥ कही घोड़े, कही भारी शूरवीर मरे पड़े है तथा कही ढाले टूटी हुई तथा घायल हाथी घूम रहे हैं ॥ २४ ॥ १०१ ॥ कही लौह-कवचो मे अनेको छिद्र होने के वाद मास मे छेद पड़े हुए दिखाई दे रहे है तथा कही हाथियो तथा घोड़ो की काठियाँ कटी हुई पड़ी दिखाई दे रही है ॥ २५ ॥ १०२ ॥ वलवान

भूत प्रेतं ।। २६ ।। १०३ ।। नचे मासहारी । हसे ब्योमचारी । किलक्कार कंकं । मचे बीर बंकं ।। २७ ।। १०४ ।। छुभे छत्रधारी । महिखुआस चारी । उठ छिच्छ इच्छं । चले तीर तिच्छं ।। २८ ।। १०५ ।। गणं गांध्रवेयं । चरं चारणेयं । हसे सिध सिद्धं । मचे बीर क्रुद्धं ।। २९ ।। १०६ ।। डका डक्क डाकै । हका हक्क हाकै । भका भुंक भेरी । डमक डाम डेरी ।। ३० ।। १०७ ।। महाँ बीर गाजे । नवं नाद बाजे । धरा गोम गज्जे । द्रगा दैत बज्जे ।। ३१ ।। १०८ ।। ।। बिजे छंद ।। जेतक बाण चले अरि ओर ते फूल की माल ह्वै कंठ बिराजे । दानव कुंगव पेख अचंभव छोड भजे रण एक न गाजे । कुंजर पुंज गिरे तिह ठउर भरे सभ स्रोनत पै गन ताजे । जानुक नीरध मद्धि छपे भ्रमि भूधर के भय ते नग भाजे ।। ३२ ।। १०९ ।। ।। मनोहर छंद ।। स्री जगनाथ कमान लै हाथ प्रमाथिन संख स्रज्यो जब जुद्धं । गाहत सैन सँघारत

शूरवीर शत्रुता मे लिप्त होकर एक-दूसरे से हथियारो समेत भिडे हुए हैं और युद्धस्थल मे इन वीरो को देखकर भूत-प्रेतादि नृत्य कर रहे हैं ।। २६ ।। १०३ ।। मांसाहारी जीव प्रसन्नता से नाच रहे है और गिद्ध आदि पक्षी मुस्कुरा रहे हैं । इधर बाँके वीर किलकारियाँ मारते हुए युद्ध मे लगे हुए हैं ।। २७ ।। १०४ ।। अनेको छत्रधारी बड़े-बड़े धनुषो को हाथ मे लेकर अत्यन्त क्रोधित हो रहे है । उनके अन्दर से जीत की तीव्र इच्छा उठ रही है और वे तेज़ बाणो को चला रहे है ।। २८ ।। १०५ ।। गण, गन्धर्व एवं स्तुति करनेवाले चारण प्रसन्न हैं तथा इन वीरो के क्रुद्ध युद्ध को देखकर ज्ञानी सिद्ध भी मुस्करा रहे है ।। २९ ।। १०६ ।। डाकिनियाँ डकार ले रही है और चारो तरफ चीख-पुकार मची हुई है । भकभक एवं डमडम की ध्वनि सुनाई पड़ रही है ।। ३० ।। १०७ ।। शूरवीरो के गर्जन के साथ ऐसा लगता है, मानो भयंकर नाद करनेवाले बाजे बज रहे हैं । धरती पर भेरियो के स्वर गरज रहे है और दुर्गा तथा दैत्य एक-दूसरे की ओर भाग रहे हैं ।। ३१ ।। १०८ ।। ।। बिजे छद ।। जितने भी बाण शत्रुओ की ओर से चलते है, वे दुर्गा के गले मे फूलो की माला बनकर आ विराजमान होते है । दानवो की सेना इस आश्चर्य को देखकर अपनी गर्जनाओ को त्यागकर रणस्थल से भाग खड़ी हुई है । उस स्थल पर हाथियो के झुण्ड गिरकर लोहू से सने हुए है और घोड़े ऐसे रक्त-रंजित हो रहे है, जैसे पर्वत इन्द्र से डरकर समुद्र मे आ छिपे हों ।। ३२ ।। १०९ ।। ।। मनोहर छद ।। जगत्माता दुर्गा ने हाथ मे धनुप लेकर और शख

सूर बबक्कति सिंघ भ्रम्यो रण क्रुद्धं। कउचह भेद अभेदित अंग सु रंग उतंग सो सोभित सुद्धं। मानो बिसाल बड़वानल ज्वाल समुंद्र के मद्धि बिराजत उद्धं॥ ३३॥ ११०॥ ॥ बिजे छंद॥ पूर रही भव भूर धनुर धुनि धूर उडी नभमंडल छायो। नूर भरे मुख मार गिरे रण हूरन हेर हियो हुलसायो। पूरण रोस भरे अर तूरण पूरि परे रण भूमि सुहायो। चूर भए अरि रूरे गिरे भट चूरण जानुक बैद बनायो॥ ३४॥ १११॥ ॥ संगीत भुजंग प्रयात छंद॥ कागड़दंग काती कटारी कड़ाकं। तागड़ (मू०ग्रं०१०७) दंग तीरं तुपक्कं तड़ाकं। झागड़दंग नागड़दंग बागड़दंग बाजे। गागड़दंग गाजी महाँ गज्ज गाजे॥ ३५॥ ११२॥ सागड़दंग सूरं कागड़दंग कोपं। पागड़दंग परमं रणं पाव रोपं। सागड़दंग शस्त्रं झागड़दंग झारै। बागड़दंग बीरं डागड़दँग डकारै॥ ३६॥ ११३॥ चागड़दंग चउपे बागड़दंग बीरं। मागड़दंग मारे तनी तिच्छ

बजाकर जब युद्ध किया है तो उनका सिंह भी शत्रुदल का मथन कर उसका संहार करता हुआ रण मे क्रोधित होकर चल पड़ा है। जो कवच शरीर पर शोभायमान है, उनको सिंह अपने नखो से फाडता चला जा रहा है और वे फटे हुए अग इस प्रकार लग रहे है, मानो समुद्र मे बड़वानल की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी हो॥ ३३॥ ११०॥ ॥ बिजे छद॥ धनुष की ध्वनि सारे विश्व मे व्याप्त हो गई है और रणस्थल की धूल उडकर सम्पूर्ण नभमण्डल पर छा गई है। तेजस्वी चेहरे मार खाकर गिर पड़े है और उन्हे देखकर योगिनियो का हृदय उल्लसित हो उठा है। अत्यन्त क्रोधित होनेवाले शत्रुओ के दल सम्पूर्ण रणभूमि पर शोभायमान है तथा सुन्दर नवयुवक शूरवीर खण्ड-खण्ड होकर इस प्रकार गिर रहे है, मानो वैद्य ने मिट्टी को पीसकर चूर्ण तैयार किया हो॥३४॥१११॥ ॥ संगीत भुजंग प्रयात छद॥ कटारियो के कडकड़ की ध्वनि और तीरों-तोपो की तड़तड की ध्वनि सुनाई दे रही है। अन्य बाजो की दगड़-दगड़ ध्वनि के साथ शूरवीर गर्जना कर रहे है॥ ३५॥ ११२॥ सनसनाते हुए शूरवीर गुस्से से कड़क रहे है तथा शस्त्रो की सायँ-सायँ के वीच रणस्थल मे पैर जमाये हुए है। शस्त्रो की वर्षा हो रही है और ललकारकर शूरवीर दूसरो को मार रहे है और डकार रहे है॥ ३६॥ ११३॥ प्रसन्न मन से शूरवीर एक-दूसरे को ललकारते हुए एक-दूसरे के तन पर तीखे वाण मार रहे है। गड़गडाहट की गहरी ध्वनि के साथ वीर गरज रहे है और

तीरं। गागड़दंग गज्जे सु बज्जे गहीरैं। कागड़दंग कवियान कत्थे कथीरैं ॥ ३७ ॥ ११४ ॥ दागड़दंग दानो भागड़दंग भाजे। गागड़दंग गाज़ी जागड़दंग गाजे। छागड़दंग छउही छुरे प्रेछड़ाके। तागड़दंग तीरं तुपकं तड़ाके ॥ ३८ ॥ ११५ ॥ गागड़दंग गोमाय गज्जे गहीरं। सागड़दंग संखं नागड़दंग नफीरं। बागड़दंग बाजे बजे वीर खेतं। नागड़दंग नाचे सु भूतं परेतं ॥ ३९ ॥ ११६ ॥ तागड़दंग तीरं बागड़दंग बाणं। कागड़दंग काती कटारी क्रिपाणं। नागड़दंग नादं बागड़दंग बाजे। सागड़दंग सूरं रागड़दंग राजे ॥ ४० ॥ ११७ ॥ सागड़दंग संखं नागड़दंग नफीरं। गागड़दंग गोमाय गज्जे गहीरं। नागड़दंग नगारे बागड़दंग बाजे। जागड़दंग जोधा गागड़दंग गाजे ॥ ४१ ॥ ११८ ॥ ॥ नराज छंद ॥ जितेक रूप धारियं। तितेक देवि मारियं। जितेक रूप धारहीं। तितयो द्रुगा सँघारहीं ॥ ४२ ॥ ११९ ॥ जितेक शस्त्र वा झरे। प्रवाह स्रोन के परे। जिती कि बिंदुका गिरैं। सु पान कालका करैं ॥ ४३ ॥ १२० ॥ ॥ रसावल छंद ॥ हुओ स्रोण हीनं।

कवियो ने कडकडानेवाले छदो मे इनका वर्णन किया है ॥ ३७ ॥ ११४ ॥ दनदनाते हुए दानव भगदड़ मचाकर भाग खड़े हुए है। गड़गडाहट करने वाले योद्धा गरज रहे है तथा छुरी-छुरे आदि शस्त्रो की छनछनाहट की वर्षा हो रही है। युद्धस्थल मे तीरों और तोपो की तड़तड़ाहट भी सुनाई पड़ रही है ॥३८॥११५॥ रणभेरियो की गम्भीर गर्जना, शखो एव नौवत की ध्वनि चल रही है। वीरो के वाजे युद्धस्थल मे वज रहे हैं और भूत-प्रेतादि धड़धडाते हुए नगे नृत्य कर रहे है ॥ ३९ ॥ ११६ ॥ तीरों और वाणो के तड़तड़ के बोल तथा कृपाणो और कटारो के कड़कड के वोल सुनाई दे रहे है। वाजो की और नगाड़ो की नगड़-नगड़ और दगड़-दगड़ सुनाई दे रही है तथा शूरवीर इन ध्वनियो के बीच शोभायमान हो रहे है ॥ ४० ॥ ११७ ॥ शखो की सायँ-सायँ की आवाज़ हुई, तूतियो की ध्वनि हुई तथा भेरियाँ गूँज उठी। नगाड़े और वाजे वज उठे तथा घनघोर गर्जन के साथ योद्धागण ललकारने लगे ॥ ४१ ॥ ११८ ॥ ॥ नराज छद ॥ असुर जितने भी रूप धारण करते है, देवी उन सबो को मार देती हैं। वे जितने भी और रूप धारण करेगे, दुर्गा उनका भी संहार करेगी ॥ ४२ ॥ ११९ ॥ शस्त्र की वर्षा होकर जितने रक्त के प्रवाह वने और रक्त की बूंदे गिरी, कालिका वह सब पीती जाती

भयो अंग छीनं । गिर्यो अंत झूमं । मनो मेघ भूमं ॥४४॥१२१॥ सभै देव हरखे । सुमन धार बरखे । रकतबिंद मारे । सभै संत उबारे ॥ ४५ ॥ १२२ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके चडी चरित्रे रकतबीरज बधह चतुरथ धिआइ सपूरणम सतु सुभम सतु ॥ ४ ॥ अफजू ॥

अथ निसुंभ जुद्ध कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ सुंभ निसुंभ सुण्यो जबै रकतबीज को नास । आप चड़त भे जोर दल सजे परस अर (मू०ग्रं०१०८) पांसि ॥ १ ॥ १२३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ चड़े सुंभ नैसुंभ सूरा अपार । उठे नद्द नादं सु धउसा धुकारं । भई अष्ट सै कोस लउ छत्र छायं । भजे चंद सूरं डर्यो देवरायं ॥२॥१२४॥ भका भुंक भेरी ढका ढुंक ढोलं । फटी नख सिंघं मुखं डड्ढ कोलं । डमा डंमि डउरू डका डुंक डंकं । रड़े ग्रिद्ध ब्रिद्धं किलक्कार

है ॥ ४३ ॥ १२० ॥ ॥ रसावल छद ॥ (रक्तबीज) रक्तहीन हो गया और उसके अग क्षीण हो गए । वह झूमकर इस प्रकार धरती पर आ गिरा, मानो बादल भूमि पर आ ठहरा हो ॥ ४४ ॥ १२१ ॥ (उसे गिरते देखकर) देवता प्रसन्न हुए और उन्होने फूलो की वर्षा की । देवी ने रक्तबीज को मारकर इस प्रकार सभी सन्तो का उद्धार किया ॥४५॥१२२॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के चण्डी-चरित्र मे रक्तबीज-वध नामक चौथे अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ ४ ॥ अफजू ॥

निशुम्भ-युद्ध-कथन

॥ दोहा ॥ शुम्भ-निशुम्भ ने जब रक्तबीज के नष्ट होने की बात सुनी तो पूर्ण दलबल-सहित कुल्हाड़े एव फांसो आदि को लेकर वे स्वय युद्ध करने के लिए चल पडे ॥ १ ॥ १२३ ॥ ॥ भुजग प्रयात छद ॥ महान शूरवीर शुम्भ-निशुम्भ ने चढाई की और नगाड़ो तथा अन्य बाजो की ध्वनि गूँज उठी । आठ सौ कोस तक छत्रो की छाया हो गई और इसे देखकर चाँद-सूरज भाग खड़े हुए तथा देवराज इन्द्र आतकित हो उठे ॥ २ ॥ १२४ ॥ भेरियाँ भायँ-भायँ और ढोल ढायँ-ढायँ बोलने लगे । शेर की दहाड और नाखूनो के प्रहार से धरती फट गई । नगाड़े और डमरुओ की डमडम आवाज सुनाई पड़ रही है और बड़े-बड़े गिद्ध एव

दले कंकं ॥ ३ ॥ १२५ ॥ खुरं खेह उट्ठी रह्यो गैन पूरं। सिध बिद्धं भए पब्ब चूरं। सुणे शोर काली गहै शस्त्र पाणं। किलंकार जेसी हने जँग जुआणं ॥ ४ ॥ १२६ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ गजे बीर गाजी। तुरे तुंद ताजी। महिखुआस करखे। सरंधार बरखे ॥ ५ ॥ १२७ ॥ इतै सिंघ गज्ज्यो। महा संख बज्ज्यो। रह्यो नाद पूरं। छुही गैणि धूरं ॥६॥१२८॥ चले तेज तैकै। अनंत सभै शस्त्र साजे। घणं जेम गाजे। चहूँ ओर ढूके। मुखं मार शस्त्र लैकै ॥ ७ ॥ १२९ ॥ कूके। अनंत शस्त्र बज्जे। महाँ बीर गज्जे ॥ ८ ॥ १३० ॥ किए क्रोध उट्ठे। सरं मुखं नैण रकतं। धरे पाण शकतं। किते दुष्ट कूटे। अनंतास्त्र ब्रिशटि बुट्ठे ॥ ९ ॥ १३१ ॥ छूटे। करी बाण बरखं। भरी देबि हरखं ॥ १० ॥ १३२ ॥ ॥ बेली बिंद्रम छंद ॥ कह कह सु कूकत कंकियं। बहि बहत बीर सु बंकियं। लह लहत बाणि क्रिपाणयं। गह गहत प्रेत

पशुओ के खुरो से जो धूल उठी है, उससे आकाश भर गया है और इन पशुओ ने विन्ध्याचल पर्वत एव समुद्र को भी चूर-चूर कर दिया है। कोलाहल को सुनकर काली ने हाथो मे शस्त्र धारण किए जिन्हे देखकर युद्ध मे मांस-भक्षी चील, गिद्ध आदि प्रसन्न हो उठे है और कई शूरवीर धराशायी हो गए है ॥ ४ ॥ १२६ ॥ ॥ रसावल छद ॥ शूरवीर गरज रहे है और घोड़े दौड़ रहे है। धनुष ताने जा रहे हैं और बाण-वर्षा हो रही है ॥ ५ ॥ १२७ ॥ इधर से सिंह गरजा है, शंख बजा है, जिसकी ध्वनि सब तरफ व्याप्त हो गई है। युद्धस्थल से उड़ी धूल से आकाश भर गया है ॥ ६ ॥ १२८ ॥ वीर शस्त्रो को सजाकर, घन गर्जन करते हुए तेजस्वरी स्वरूपों मे अनंत शस्त्र लेकर चल पडे है ॥ ७ ॥ १२९ ॥ चारो ओर से वीर पास-पास आकर 'मारो, मारो' की कूक-पुकार लगा रहे है। युद्धस्थल मे वीर गरज रहे है और शस्त्रो की टकराहट की ध्वनि सुनाई पड़ रही है ॥ ८ ॥ १३० ॥ हाथो मे शक्तियों को पकड़े उनके मुख एवं आँखे लाल हो उठी है। वे क्रोधित होकर चल पड़े है और बाण-वर्षा हो उठी है ॥ ९ ॥ १३१ ॥ बहुत से दुष्ट मारे जा चुकने के फलस्वरूप अनन्त अस्त्र इधर-उधर बिखरे छूटे पडे है। देवी ने हर्षित हो भीषण बाण-वर्षा की ॥ १० ॥ १३२ ॥ ॥ बेली बिंद्रम छद ॥ कौवे काँव-काँव कर रहे है और बाँके वीरो का रक्त बह रहा है। बाण-कृपाण लहलहा कर चल रहे हैं और भूत-प्रेत आगे वढ़कर मृतको को (खाने के लिए)

मसाणयं ॥ ११ ॥ १३३ ॥ डह डहत डवर डमंकयं । लह लहत तेग व्रमंकयं । ध्रम ध्रमत सांग धमंकयं । बबकंत बीर सुबंकयं ॥ १२ ॥ १३४ ॥ छुटकंत बाण कमाणयं । हहरंत खेत खवाणयं । डहकंत डामर डंकणी । कह कहक कूकत जुग्गणी ॥ १३ ॥ १३५ ॥ उफटंत स्रोणत छिच्छयं । बरखंत साइक तिच्छयं । बबकंत बीर अनेकयं । फिकरंत स्यार बसेखयं ॥ १४ ॥ १३६ ॥ हरखंत स्रोणत रंगणो । बिहरंत देबि अभंगणी । बबकंत केहर डोलहीं । रण रंग अभग कलोलहीं ॥ १५ ॥ १३७ ॥ ढम ढमत ढोल ढमक्कयं । धम धमत सांग ध्रमक्कयं । बह बहत क्रुद्ध क्रिपाणयं । जुज्झंत जोध जुआणयं ॥ १६ ॥ १३८ ॥ ॥ दोहरा ॥ भजी चमूं सभ (मू०ग्रं०१०६) दानवी सुंभ निरख निज नैण । निकट बिकट भट जे हुते तिन प्रति बोल्यो बैण ॥ १७ ॥ १३९ ॥ ॥ निराज छंद ॥ निसुंभ सुंभ कोप कै । पठ्यो सु पाव रोप कै । कह्यो कि शीघ्र जाइयो । द्रुगाहि बाँध ल्याइयो ॥ १८ ॥ १४० ॥ चड़्यो सु सैण सज्जिकै । सरोप सूर गज्जिकै । उठे बजंत्र बाजिकै । चल्यो सुरेश भाजिकै ॥ १९ ॥ १४१ ॥ अनंत

पकड़ रहे है ॥ ११ ॥ १३३ ॥ डमरू डमडमा रहे हैं और कृपाणे चमचमा रही है । बरछियो की धम-धम आवाज़ और वीरो की घनघोर दहाड़े सुनाई पड़ रही है ॥ १२ ॥ १३४ ॥ कमानो से छूटते हुए बाण युद्ध-स्थल मे वीरों को हैरानी मे डाल जाते है । डमरू की ध्वनि से डाकिनियाँ डर रही है और योगिनियाँ घूमती हुई कहकहे लगा रही है ॥१३॥१३५॥ तीव्र बाणो की वर्षा से रक्त के छीटे उड़ रहे है । अनेको वीर गरज रहे हैं और गीदड़ विशेष रूप से प्रसन्न होकर चिल्ला रहे है ॥ १४ ॥ १३६ ॥ रक्तरंजित अविनाशी दुर्गा प्रसन्न होकर विचरण कर रही है । दहाड़ता हुआ सिंह दौड़ रहा है, रणस्थल में यही खेल चल रहा है ॥ १५ ॥ १३७ ॥ ढोल ढमढमा रहे है और बरछियो की धमाधम आवाज़ आ रही है । जूझते हुए योद्धा क्रुद्ध होकर कृपाणे चला रहे है ॥ १६ ॥ १३८ ॥ ॥ दोहा ॥ शुभ ने भाग चुकी दानव-सेना को स्वयं देखकर अपने पास वाले शक्तिशाली सैनिकों से कहा ॥१७॥१३९॥ ॥ निराज छंद ॥ धरती पर पैर पटक के शुभ ने निशुभ को भेजा और कहा कि शीघ्र जाओ और दुर्गा को बाँधकर ले आओ ॥ १८ ॥ १४० ॥ वह क्रोधित हो गर्जना करता हुआ सेना से सुसज्जित हो चल पड़ा । नगाड़े बज उठे और

सूर संग लै। चल्यो सु दुंदभीन दै। हकार सूरमा भरे। बिलोक देवता डरे ॥ २० ॥ १४२ ॥ ॥ मधुभार छंद ॥ कंप्यो सुरेश। बुल्ल्यो महेश। किन्नो बिचार। पुच्छे जुझार ॥ २१ ॥ १४३ ॥ कीजै सु मित्र। कउने चरित्र। जाते सु माइ। जीतै बनाइ ॥ २२ ॥ १४४ ॥ शकतै निकार। भेजो अपार। शत्रून जाइ। हनिहैं रिसाइ ॥ २३ ॥ १४५ ॥ सोइ काम कीन। देवन प्रबीन। शकतै निकार। भेजी अपार ॥ २४ ॥ १४६ ॥

बिरध निराज छंद ॥

चली शकत्त शीघ्र सी क्रिपाणि पाणि धारकै। उठे सु ग्रिद्ध ब्रिद्ध डउर डाकणी डकार कै। हसे सु कंक बंकयं कबंध अध उट्ठही। बिसेख देवतारु बीर बाण धार बुट्ठही ॥२५॥१४७॥ ॥ रसावल छंद ॥ सभै शकत ऐकै। चली सीस न्यैकै। महाँ अस्त्र धारे। महाँ बीर मारे ॥ २६ ॥ १४८ ॥ मुखं रकत

ध्वनि सुन इद्र भाग खड़ा हुआ ॥ १९ ॥ १४१ ॥ अनत शूरमाओ को साथ ले दुदुभि बजाता हुआ वह चला। उसने (इतने) शूरबीरो को पुकार कर इकट्ठा कर लिया कि उन्हे देखकर देवता भयभीत हो उठे ॥ २० ॥ १४२ ॥ ॥ मधुभार छद ॥ इद्र काँप उठा और शिव के पास जा अपनी व्यथा सुनाई। वहाँ विचार-विमर्श किया तो महेश ने उन्हे पूछा कि तुम्हारे पास कितने शूरवीर है ? ॥ २१ ॥ १४३ ॥ किसी भी प्रकार से अपने (राग-द्वेष समाप्त कर) सबको मित्र बना लो ताकि जगत्माता की जीत सुनिश्चित हो जाय ॥ २२ ॥ १४४ ॥ अपनी अपार शक्तियो को निकाल लो और युद्ध मे भेज दो ताकि वे शत्रुओं के समक्ष जाकर क्रुद्ध होकर उनका हनन करे ॥ २३ ॥ १४५ ॥ चतुर देवताओं ने वैसा ही किया तथा अपनी अगणित शक्तियों को निकालकर (युद्ध-स्थल की ओर) भेज दिया ॥ २४ ॥ १४६ ॥

॥ विरध निराज छद ॥ शीघ्र ही शक्तियो के कृपाणे धारण कर युद्ध की ओर प्रस्थान किया तथा उनके चलते ही बड़े-बड़े गिद्ध एवं डाकिनियाँ डकारती हुई दौड़ पड़ी। कौवे मुस्कुरा उठे तथा अधे कबध भी चल दिए। इधर देवता एव अन्य वीर बाण-वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥ १४७ ॥ ॥ रसावल छद ॥ सभी शक्तियाँ आयी और शीश नवाकर चली गयी। उन्होने विकराल अस्त्रों को धारण

नैणं। बकै बंक बैणं। धरे अस्त्र पाणं। कटारी क्रिपाणं ॥ २७ ॥ १४९ ॥ उतै दैत गाजे। तुरी नाद बाजे। धरे चार चरमं। स्रजे क्रूर बरमं ॥ २८ ॥ १५० ॥ चहूँ ओर गरजे। सभै देव लरजे। छुटे तिच्छ तीरं। कटे चउर चीरं ॥ २९ ॥ १५१ ॥ रस रुद्र रत्ते। महाँ तेज तत्ते। करी बाण बरखं। भरी देबि हरखं ॥ ३० ॥ १५२ ॥ इते देबि मारै। उतै सिंधु फारै। गणं गूड़ गरजै। सभै दैत लरजै ॥ ३१ ॥ १५३ ॥ भई बाण बरखा। गए जीति करखा। सभै दुष्ट मारे। मइया संत उबारे ॥ ३२ ॥ १५४ ॥ निसुंभ सँघार्यो। दलं दैत मार्यो। सभै दुष्ट भाजे। इतै सिंघ गाजे ॥ ३३ ॥ १५५ ॥ भई पुहप बरखा। (मू०ग्रं०११०) गए जीत करखा। जयं सत जपै। त्रसे दैत कंपै ॥३४॥१५६॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके चडी चरित्रे निसुभ बधह पंचमो धिआइ संपूरनम सतु सुभम सतु ॥ ५ ॥ अफजू ॥

कर कई महाबलियो को मार दिया ॥ २६ ॥ १४८ ॥ उनके मुख और आँखो से खून उतर रहा है और वे ललकार वाले वचनो का उच्चारण कर रही हैं। उनके हाथो मे अस्त्र, कटार, कृपाण आदि शोभायमान हो रहे हैं ॥ २७ ॥ १४९ ॥ उधर से बीहड़ नाद करते हुए दैत्य गरज रहे है और हाथो से सुदर ढाले पकड़कर विकराल लौहकवच धारण कर लिये है ॥ २८ ॥ १५० ॥ वे चारो ओर गरजने लगे और उनकी आवाज़ सुनकर देवगण आतंकित होने लगे। तीखे तीर छूटने लगे तथा युद्धस्थल मे चँवर एवं वस्त्र काटे जाने लगे ॥ २९ ॥ १५१ ॥ रौद्र-रस मे मदमस्त वीर अत्यन्त तेजस्वी दिखाई दे रहे है। देवी दुर्गा ने हर्षित होकर बाणों की वर्षा शुरू कर दी है ॥ ३० ॥ १५२ ॥ इधर देवी मारती जा रही है, उधर सिंह सबको फाड़ता चला जा रहा है। शिव के गणो की गर्जना को सुनकर दैत्य भयभीत हो उठे है ॥ ३१ ॥ १५३ ॥ बाणो की वर्षा हुई और उसमे देवी की जीत हुई। देवी द्वारा सभी दुष्ट मारे गए तथा माता ने सतो का उद्धार कर दिया ॥ ३२ ॥ १५४ ॥ देवी ने निशुभ का सहार कर दिया और दैत्यो के दल को नष्ट कर दिया। इधर शेर गरजा और उधर सभी दुष्ट भाग खड़े हुए ॥ ३३ ॥ १५५ ॥ देव-सेना की जीत पर पुष्प-वर्षा होने लगी। संत जय-जयकार करने लगे और दैत्य भय से आतकित हो उठे ॥ ३४ ॥ १५६ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक मे चडीचरित्र के निशुभ-वध नामक पाँचवे अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ ५ ॥ अफजू ॥

अथ सुंभ जुद्ध कथनं ।। भुजंग प्रयात छंद ।।

लघू भ्रात जूझ्यो सुन्यो सुंभरायं । सजे शस्त्र अस्त्रं चड्यो चउप चायं । भयो नाद उच्चं रह्यो पूर गैणं । त्रसे देवता दैत कंप्यो त्रिनैणं ।। १ ।। १५७ ।। डर्यो चार वक्त्रं टर्यो देवराजं । डिगे पब्ब सरबं सजे सुभ्र साजं । परे हूह दं कै भरे लोह क्रोहं । मनो मेर को सातवौ स्त्रिग सोहं ।।२।।१५८।। सज्यो सैण सुंभं कियो नाद उच्चं । सुणे गरभणीआन के गरभ मुच्चं । पर्यो लोह क्रोहं उठी शस्त्र झारं । चवी चावडी डाकणीयं डकारं ।। ३ ।। १५९ ।। बहे शस्त्र अस्त्रं कटे चरम बरमं । भले कै निबाह्यो भटं स्वामि धरमं । उठी कूह जूहं गिरे चउर चीरं । रुले तच्छ मुच्छं परी गच्छ तीरं ।।४।।१६०।। गिरे अंकुसं बारुणं बीर खेतं । नचे कंप हीणं कबंधं अचेतं । उडै ग्रिद्ध ब्रिद्धं रड़ै कंक बंकं । भका भुंक भेरी डहा डूह

शुंभ-युद्ध-कथन

।। भुजग प्रयात छद ।। शुभ ने जब छोटे भाई के मृतक होने का समाचार सुना तो वह क्रोधमिश्रित उत्साह के साथ शस्त्र-अस्त्रो से सुसज्जित होकर चढाई के लिए चल पडा । भयकर नाद हुआ और आकाश मे व्याप्त हो गया । यह ध्वनि सुनकर देवता, दैत्य एव शिव सभी काँप उठे ।। १ ।। १५७ ।। ब्रह्मा डर गया और देवराज इद्र (का सिहासन) डोल उठा । दैत्य के सुसज्जित स्वरूप को देखकर पर्वत भी चकनाचूर हो उठे । चीखते-पुकारते क्रोधित दैत्य ऐसे लगते है, मानो सुमेरु पर्वत का सातवाँ शिखर हो ।। २ ।। १५८ ।। सुसज्जित होकर शुंभ ने भीषण नाद किया जिसे सुनकर गर्भिणी स्त्रियो के गर्भपात हो गए । क्रोधित वीरो का लोहा बरसने लगा और शस्त्रों की वर्षा होने लगी । रणस्थल में चीलो और डाकिनियो की आवाजे सुनाई पडने लगी ।। ३ ।। १५९ ।। अस्त्र-शस्त्रो के चलने से सुदर लौह-कवच कटने लगे और वीरो ने सुदर तरीके से अपने धर्म का निर्वाह किया । पूरे रणस्थल में कोलाहल हो उठा और छत्र-वस्त्र गिरने लगे । तत्क्षण शरीरों के टुकड़े होकर गिरने लगे तथा तीरो के वार के कारण वीरो को मूर्च्छाएँ आने लगी ।। ४ ।। १६० ।। अकुश एव हाथियो-समेत वीर युद्धस्थल मे गिर पड़े तथा सिर-विहीन कबंध अचेत अवस्था मे ही नाचने लगे । वृहद् गिद्ध उडने लगे और टेड़ी चोच वाले कौवे चिल्लाने लगे । भेरियो की

डंकं ॥ ५ ॥ १६१ ॥ टका टुक्क टोपं ढका ढुक्क ढालं। तछा मुच्छ तेगं बके बिक्करालं। हला चाल बीरं धमा धंमि साँगं। परी हाल हूलं सुण्यो लोग नागं ॥ ६ ॥ १६२ ॥ डकी डाकणी जोगणीयं बितालं। नचे कंध हीणं कबंधं कपालं। हसे देव सरबं रिस्यो दानवेसं। किधो अगन ज्वालं भयो आप भेसं ॥ ७ ॥ १६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ सुंभासुर जेतिक असुर पठए कोपु बढाइ। ते देबी सोखत करे बूँद तवा की न्याइ ॥ ८ ॥ १६४ ॥ ॥ नराज छंद ॥ सु बीर सैण सज्जिकै। चड़्यो सु कोप गज्जिकै। चल्यो सु शस्त्र धारकै। पुकार मार मारकै ॥९॥१६५॥ ॥ संगीत मधुभार छंद ॥ कागड़दं कड़ाक। तागड़दं तड़ाक। सागड़दं सु बीर। गागड़दं गहीर ॥१०॥१६६॥ नागड़दं निशाण। जागड़दं जुआण। नागड़दी निहंग। पागड़दी पलंग ॥ ११ ॥ १६७ ॥ तागड़दी तमक्कि। लागड़दी लहक्कि। (मू०ग्रं०१११) कागड़दं क्रिपाण। बाहैं जुआण ॥ १२ ॥ १६८ ॥ खागड़दी खतंग। नागड़दी निहंग।

भयानक आवाज़ तथा डमरुओ की डमडम बजने लगी ॥ ५ ॥ १६१ ॥ लौह-टोपो पर टकटक और ढालों पर ढकढक की आवाज होने लगी। तलवारे विकराल ध्वनियो के साथ शरीरो के टुकड़े कर रही है। वीरों के हल्ले पर हल्ले हो रहे है और वरछियो की धमाधम सुनाई पड़ रही है। इतना कोलाहल हुआ कि नागलोक अर्थात् पाताल में भी सुनाई पड़ने लगा ॥ ६ ॥ १६२ ॥ युद्धस्थल मे डाकिनियाँ, योगिनियाँ, वैताल, कबंध एवं कापालिक नृत्य कर रहे हैं। सभी देवता प्रसन्न हो रहे है और दैत्यराज क्रोधित हो रहा है। वह ऐसा लग रहा है, मानो अग्नि की ज्वाला धधक रही हो ॥ ७ ॥ १६३ ॥ ॥ दोहा ॥ शुंभ ने क्रोधित होकर जितने भी असुर भेजे वे देवी ने उसी प्रकार नष्ट कर दिए जैसे गर्म तवे पर पड़ते ही पानी की बूंद नष्ट हो जाती है ॥ ८ ॥ १६४ ॥ ॥ नराज छंद ॥ शूरवीरो की सेना सजाकर वह कुपित हो चढ़ उठा। शस्त्रो को धारण कर वह 'मार, मार' की पुकार के साथ चल पड़ा ॥ ९ ॥ १६५ ॥ ॥ सगीत मधुभार छद ॥ कड़कड़ाहट और तड़-तड़ाहट की ध्वनि हुई। शूरवीर गड़गड़ाहट के साथ गम्भीर गर्जन कर रहे हैं ॥ १० ॥ १६६ ॥ नगाड़ो की ध्वनि जवानों को उत्तेजित कर रही है। वे शूरवीर छलांगे लगा रहे हैं ॥ ११ ॥ १६७ ॥ गुस्से से शूरवीरो के मस्तक तमतमा रहे है। कटाकट कृपाणे शूरवीरों द्वारा

छागड़दी छुटंत। आगड़दी उडंत ॥ १३ ॥ १६९ ॥ पागड़दी पवंग। सागड़दी सुभंग। जागड़दी जुआण। झागड़दी झुझाण ॥ १४ ॥ १७० ॥ झागड़दी झड़ंग। कागड़दी कड़ंग। तागड़दी तड़ाक। चागड़दी चटाक ॥ १५ ॥ १७१ ॥ घागड़दी घबाक। भागड़दी भभाक। कागड़दं कपालि। नचबी बिकाल ॥१६॥१७२॥ ॥ नराज छंद ॥ अनंत दुष्ट मारियं। बिअंत शोक टारियं। कमंध अंध उट्ठियं। बिसेख बाण बुट्ठियं ॥ १७ ॥ १७३ ॥ कड़ाक कर मुकं उधं। सड़ाक सैहथी जुधं। बिअंत बाणि बरखयं। विसेख बीर परखयं ॥ १८ ॥ १७४ ॥ ॥ संगीत नराज छंद ॥ कड़ा कड़ी क्रिपाणयं। जटा जुटी जुआणयं। सु वीर जागड़दं जगे। लड़ाक लागड़दं पगे ॥ १९ ॥ १७५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ झमी तेग झट्टं। छुरी छिप्र छुट्टं। गुरं गुरज गट्टं। पलगं पिसट्टं ॥ २० ॥ १७६ ॥ किते स्रोण चट्टं। किते सीस फुट्टं। कहूँ हूह छुट्टं। कहूँ बीर उट्ठं ॥ २१ ॥ १७७ ॥

चलाई जा रही हैं ॥ १२ ॥ १६८ ॥ वीरो के तीर छूटकर आगे आने वालो को उडाकर फेक रहे है ॥ १३ ॥ १६९ ॥ अश्वारोही सुन्दर शूरवीर हड़हड़ाकर जूझ रहे है ॥ १४ ॥ १७० ॥ झड़झड़, कड़कड़, तड़तड़ तडाक एव चड़चड़ चटाक की ध्वनि युद्धस्थल मे फैल रही है ॥१५॥ ॥१७१॥ घड़घड़ अस्त्र नाच रहे है और भड़भड रक्त-धारा वह रही है। युद्ध मे विकराल रूप धारण करके कापाली दुर्गा नृत्य कर उठी है ॥ १६ ॥ १७२ ॥ ॥ नराज छद ॥ अनत दुष्टो को मारकर दुर्गा ने अनेकों कष्टों को दूर कर दिया। अधे कबध उठ-उठकर चल रहे है और उन्हे बाण-वर्षा से गिराया जा रहा है ॥ १७ ॥ १७३ ॥ धनुषो की कड़ाक की ध्वनि और बरछियो की सडाक की ध्वनि युद्ध मे सुन पड़ रही है। इस अनत बाण-वर्षा मे विशेष माने जानेवाले वीरो की परख हो गई ॥ १८ ॥ १७४ ॥ ॥ सगीत नराज छद ॥ कड़ाकड़ी कृपाणो की ध्वनि के बीच जवान एक-दूसरे से गुत्थमगुत्था हो रहे हैं। शूरवीर उत्तेजित हो उठे है और लड़ाकुओ से आ भिड़े है ॥ १९ ॥ १७५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ कृपाणो की झपटे चमक रही है और छुरियाँ तेजी से चल रही है। गदाओ को गड़गड़ाहट के साथ वीर शेर की पीठ पर मार रहे है ॥ २० ॥ १७६ ॥ कही रक्तपान हो रहा है, कही सिर फूटा पड़ा है, कही चीत्कार हो रहा है और कही पुनः वीर उठ रहे है ॥ २१॥ १७७ ॥

कहूँ धूरि लट्टं। किते मार रट्टं। भणै जस्स भट्टं। किते पेट फट्टं॥ २२॥ १७८॥ भजे छत्रि थट्टं। किते खून खट्टं। किते दुष्ट दट्टं। फिरे ज्यों हरट्टं॥२३॥१७९॥ सजे सूर सारे। महिखुआस धारे। लए खग्गआरे। महा रोह वारे॥ २४॥ १८०॥ सही रूप कारे। मनो सिंधु खारे। कई वार गारे। सु मारं उचारे॥ २५॥ १८१॥ भवानी पछारे। जवा जेम्ि जारे। बडेई लुझारे। हुते जि हिए वारे॥ २६॥ १८२॥ इक बार टारे। ठमं ठोक ठारे। बली मार डारे। ढमक्के ढढारे॥ २७॥ १८३॥ बहे बाणिआरे। किते तीर तारे। लखे हाथ बारे। दिवाने दिदारे॥ २८॥ १८४॥ हणे भूमि पारे। किते सिंघ फारे। किते आपु बारे। जिते दैत भारे॥ २९॥ १८५॥ तिते अंत हारे। बडेई अड़िआरे। खरेई बरिआरे। करूरं

कही वीर धूल मे लेटे हुए है, कही मारो, मारो की रट लगी है, कही भाट लोग यशोगान कर रहे हैं और कही पेट-फटे योद्धा पड़े है॥ २२॥ १७८॥ छत्रो को थामनेवाले भाग खड़े हुए है और कही पर रक्त बहाया जा रहा है। कही दुष्टो का नाश किया जा रहा है और वीर ऐसे दौड़ रहे है मानो कुएं पर रहट चल रहा हो॥ २३॥ १७९॥ सभी शूरवीर धनुषो से सुसज्जित है और सबने विकराल आरे के समान खडग पकड़े हुए हैं॥ २४॥ १८०॥ काले स्वरूप वाले दानव मृतक सागर की तरह भयंकर दिखाई दे रहे हैं। उनको कई बान मारा गया है, परन्तु वे फिर भी मार-मार का उच्चारण कर रहे है॥ २५॥ १८१॥ भवानी ने सबको पछाड दिया है और जौ के पौधे की तरह सबको जला दिया है। अन्य कई साहसी दैत्यो को पैरो-तले कुचल दिया गया है॥ २६॥ १८२॥ शत्रुओ को एक बार मे पछाडकर फेंक दिया और शस्त्रो को उनके शरीर मे ठोककर उनके शरीर को ठडा कर दिया गया है। बहुत से बलवानों को मार दिया गया है और डमडम की ध्वनि लगातार चल रही है॥ २७॥ १८३॥ विचित्र प्रकार के तीर चले हैं और उन तीरो के कारण कितने ही लोग पार हो गए है। अनेक भुजबलियो ने जब दुर्गा को प्रत्यक्ष देखा तो वे अपने होश खो बैठे॥ २८॥ १८४॥ कितने ही शूरवीरो को सिंह ने फाडकर भूमि पर मार गिराया और कितने भारी-भारी असुरो को दुर्गा ने स्वयं मारकर नष्ट कर दिया॥ २९॥ १८५॥ बहुत ही अड़नेवाले, खरे शूरवीर जो कि अत्यन्त क्रूर एव कड़े माने जाते थे

करारे ॥ ३० ॥ १८६ ॥ (मू०ग्रं०११२) लपक्के ललारे । अरीले अरिआरे । हणे काल कारे । भजे रोह वारे ॥ ३१ ॥ १८७ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह बिधि दुशट प्रजारकै शस्त्र अस्त्र कर लीन । बाण बूँद प्रिथमै बरख सिंघ नाद पुन कीन ॥ ३२ ॥ १८८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ सुण्यो सुंभ रायं । चढ़्यो चडप चायं । सजे शस्त्र पाणं । चड़े जंग ज्वाणं ॥ ३३ ॥ १८९ ॥ लगे ढोल ढंके । कमाणं कड़के । भए नद्द नादं । धुणं निरबिखादं ॥ ३४ ॥ १९० ॥ चमक्की क्रिपाणं । हठे तेज माणं । महाबीर हुंके । सु नीसाण ढ्रुंके ॥ ३५ ॥ १९१ ॥ चहूँ ओर गरजे । सभै देव लरजे । सरं धार बरखे । मइया पाण परखे ॥ ३६ ॥ १९२ ॥ ॥ चौपई ॥ जे लए शस्त्र सामुहे धए । तिते निधन कहूँ प्रापत भए । झमकत भई असन की धारा । भभके रुंड मुंड बिकरारा ॥ ३७ ॥ १९३ ॥ ॥ दोहरा ॥ है गै रथ पैदल कटे बच्यो न जीवत कोइ । तब

अन्ततः भाग खड़े हुए ॥३०॥१८६॥ चमकते ललाटोवाले अकड़नेवाले वीर भागकर आगे की ओर बढ़े और उन महान् आक्रोश वाले वीरो को कराल काल ने मार गिराया ॥ ३१ ॥ १८७ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार दुष्टो का नाश करके दुर्गा ने शस्त्र-अस्त्र पुनः धारण कर लिये । पहले दुर्गा ने वाणो की वर्षा की तथा फिर उसके सिह ने घनघोर गर्जन किया ॥ ३२ ॥ १८८ ॥ ॥ रसावल छद ॥ जब राजा शुभ ने यह हाल सुना तो वह उत्तेजित होकर आगे बढा । उसके सैनिक शस्त्रो से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए चढ आए ॥ ३३ ॥ १८९ ॥ ढोलों की ढमक, धनुषो की कड़कड़ाहट और नगाड़ो की गडगड़ाहट निरतर रूप से सुनाई पड़ने लगी ॥ ३४ ॥ १९० ॥ हठीले मानियो की कृपाणे चमक उठी । महावीरो ने हुकार करना शुरू कर दिया और नगाड़ों ने बजना प्रारम्भ कर दिया ॥ ३५ ॥ १९१ ॥ चारो ओर दैत्य गरज उठे तथा देवगण आतकित हो उठे । वाण-वर्षा कर दुर्गा स्वय अपने हाथो से सबके बल को परख रही है ॥ ३६ ॥ १९२ ॥ ॥ चौपाई ॥ जितने भी दैत्य शस्त्र लेकर सम्मुख आए, वे सब मृत्यु को प्राप्त हो गए । कृपाणों की धारें चमक रही है और मुड-विहीन कवध विकराल रूप से भभक रहे हैं ॥ ३७ ॥ १९३ ॥ ॥ दोहा ॥ हाथी, घोडे और पैदल सभी काट डाले गए और कोई भी जीवित नही बचा । तब राजा शुभ स्वयं युद्ध के लिए आगे बढ़ा और उसको देखने से ऐसा लगता है कि जो यह चाहेगा

आपे निकस्यो न्रिपति सुंभ करै सो होइ ॥ ३८ ॥ १९४ ॥
॥ चउपई ॥ शिव दूती इत द्रुगा बुलाई । कान लाग नीकै समुझाई । शिव को भेज दीजिऐ तहाँ । दैत राज इसथित है जहाँ ॥ ३९ ॥ १९५ ॥ शिव दूती जब इम सुन पावा । शिवहि दूत करि उतै पठावा । शिव दूती ता ते भ्यो नामा । जानत सकल पुरख अरु बामा ॥ ४० ॥ १९६ ॥ शिव कही दैतराज सुनि बाता । इह बिधि कह्यो तुमहु जगमाता । देवन को दै कै ठकुराई । कै माँडहु हम संग लराई ॥ ४१ ॥
॥ १९७ ॥ दैतराज इह बात न मानी । आप चले जूझन अभिमानी । गरजत कालि काल ज्यों जहाँ । प्रापति भयो असुरपति तहाँ ॥ ४२ ॥ १९८ ॥ चमकी तहाँ असन की धारा । नाचे भूत प्रेत बैतारा । फरकै अंध कबंध अचेता । भिमरे भइरव भीम अनेका ॥ ४३ ॥ १९९ ॥ तुरही ढोल नगारे बाजे । भाँत भाँत जोधा रण गाजे । ढडि डफ डमरु डुगडुगी घनी । नाइ नफीरी जात न गनी ॥४४॥२००॥ ॥ मधुमार छंद ॥ हुंके किकाण । धुंके निशाण । सज्जे सु बीर । गज्जे

वही कर लेगा ॥ ३८ ॥ १९४ ॥ ॥ चौपाई ॥ इधर दुर्गा ने (विचार करके) एक शिव-दूती (डाकिनी) को बुलाकर उसके कान में उसे समझाकर कहा कि शिवजी को वहाँ भेज दीजिए जहाँ दैत्यराज (शुभ) खड़ा है ॥ ३९ ॥ १९५ ॥ शिवदूती ने जब ऐसे सुना तो शिवजी को दूत बनाकर वहाँ भेज दिया । तब से ही दुर्गा का नाम 'शिवदूती' हो गया, इसे सभी स्त्री-पुरुष जानते है ॥ ४० ॥ १९६ ॥ शिव ने दैत्यराज से कहा कि तुम मेरी बात को सुनो (और समझो) । जगत्माता ने यह कहा है कि या तो तुम देवताओं को राज दे दो अन्यथा हमसे युद्ध करो ॥४१॥१९७॥ दैत्यराज शुभ ने यह बात नही मानी और अभिमान-पूर्वक लड़ने के लिए चल दिया । जहाँ काली काल के समान गर्जन कर रही थी, वह असुरपति वहाँ आ उपस्थित हुआ ॥ ४२ ॥ १९८ ॥ वहाँ कृपाणों की धारे चमक उठी और भूत, प्रेत, बैताल आदि नाच उठे । वहाँ अंधे कबंध अचेतावस्था मे ही हलचल में आ गए और भीमकाय भैरव घूमने लगे ॥ ४३ ॥ १९९ ॥ तुरहियाँ, ढोल और नगाड़े बज उठे तथा भाँति-भाँति के योद्धा युद्धस्थल मे गरज उठे । डफलियाँ, डमरू और डुगडुगियाँ घनघोर रूप से बज उठी और शहनाई आदि बाजे इतने बज रहे हैं कि उनको गिना नही जा सकता ॥४४॥२००॥ ॥ मधुभार छद ॥ घोड़े

गहीर ॥ ४५ ॥ २०१ ॥ (मू०ग्रं०११३) झुक्के निझक्क। बज्जे उब्बक्क। सज्जे सुबाह। अच्छं उछाह ॥ ४६ ॥ २०२ ॥ कट्टे किकाण। फुट्टे च्चवाण। सूलं सड़ाक। उट्ठे कड़ाक ॥ ४७ ॥ २०३ ॥ गज्जे जुआण। बज्जे निशाण। सज्जे रजेंद्र। गज्जे गजेंद्र ॥ ४८ ॥ २०४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ फिरे बाजियं ताजियं इत्त उत्तं। गजे बारणं दारुणं राज पुत्नं। बजे संख भेरी उठे संख नादं। रणं के नफीरी धुणं निरबिखादं ॥ ४९ ॥ २०५ ॥ कड़क्के क्रिपाणं सड़क्कार सेलं। उठो कूह जूहं भई रेलपेलं। रुले तत्त मुच्छं गिरे चउर चीरं। कहूँ हत्थ मत्थं कहूँ बरम बीरं ॥ ५० ॥ २०६ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ बली बैर रुज्झे। समुह सार जुज्झे। सँभारे हथियारं। बकै मार मारं ॥ ५१ ॥ २०७ ॥ सभै शस्त्र सज्जे। महाँ बीर गज्जे। सरं ओघ छुट्टे। कड़क्कार उट्ठे ॥ ५२ ॥ २०८ ॥ बजै बाद्रितेअं। हसैं गांध्रभेअं।

हिनहिना रहे हैं और नगाड़े वज रहे है। सुसज्जित वीर गम्भीर गर्जन कर रहे है ॥ ४५ ॥ २०१ ॥ निडर होकर वीर पास आकर वार करके उछल रहे है। सुसज्जित परियो को देखकर अप्सराएँ भी (उनके वरण के लिए) उत्साहित हो रही हैं ॥ ४६ ॥ २०२ ॥ घोड़े कट रहे हैं, मुँह फट रहे है। शूलो की सरं ध्वनि तथा कड़कड़ाहट सुनाई पड़ रही है ॥ ४७ ॥ २०३ ॥ नगाड़े बज रहे हैं और जवान गरज रहे हैं। राजा सुसज्जित है और हाथी चिघाड़ रहे हैं ॥ ४८ ॥ २०४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छद ॥ अच्छे-अच्छे घोड़े इधर-उधर घूम रहे है। राजपुत्रो के हाथी भयकर रूप से गरज रहे हे। शख, भेरियो की आवाजें उठ रही है तथा तूतियो की निरंतर आवाज़े चल रही है ॥ ४९ ॥ २०५ ॥ तलवारें कड़कडा रही हैं और वरछियाँ सडसड़ा रही हैं। सारे युद्ध-स्थल मे भीषण भगदड़ मच गई है। शरीर खंड-खंड होकर, चँवर-वस्त्र टूट-फट कर गिरे पड़े है। कही वीरो के हाथ, कही मस्तक और कही लौह-कवच पड़े हे ॥ ५० ॥ २०६ ॥ ॥ रसावल छद ॥ महाबली शत्रु लगे हुए हैं और समस्त शस्त्रो को लेकर आपस मे जूझ रहे हैं। हथियारो को सँभालकर मार-मार चिल्ला रहे हैं ॥ ५१ ॥ २०७ ॥ शस्त्रो से पूर्ण सुसज्जित होकर महावीर गरज रहे है। बाणो के झुड छूटे है और कड़कड़ाने की आवाजें आ रही है ॥ ५२ ॥ २०८ ॥ विभिन्न प्रकार के वाद्य वज रहे हैं और गधर्वगण मुस्कुरा रहे है। वीर अपने-अपने झडो को गाड़कर जुटे हुए हैं तथा उनके लौहकवच वाणो से फूट रहे

झंडा गड्ड जुट्टे। सरं संज फुट्टे ॥ ५३ ॥ २०९ ॥ चहूँ ओर उट्ठे। सरं ब्रिशट बुट्ठे। करोधी करालं। बकँ बिक्करालं ॥ ५४ ॥ २१० ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ किते कुट्ठिअं बुट्ठिअं ब्रिष्ट बाणं। रणं डुल्लियं बाज खाली पलाणं। जुझे जोधयं बीर देवं अदेवं। सुभे शस्त्र साजा मनो शांतनेवं ॥ ५५ ॥ २११ ॥ गजे गज्जियं सरब सज्जे पवंगं। जुधं जुटीयं जोध छुट्टे खतगं। तड़क्के तबल्लं झड़ंके क्रिपाणं। सड़क्कार सेलं रणंके निशाणं ॥ ५६ ॥ २१२ ॥ ढमा ढम्म ढोलं ढला ढुक्क ढालं। गहा जूह गज्जे हयं हल्ल चालं। सटा सट्ट सेलं खहा खूनि खग्गं। तुटे चरम बरमं उठे नाल अग्गं ॥ ५७ ॥ २१३ ॥ उठे अग्गि नालं खहे खोल खग्गं। निसा मावसी जाणु मसाण जग्गं। डकी डाकणी डामरू डउर डक्कं। नचे बीर बैताल भूतं भभक्कं ॥ ५८ ॥ २१४ ॥ ॥ बेली बिंद्रम छंद ॥ स्रब शस्त्रु आवत भे जिते। सभ काटि

हैं ॥ ५३ ॥ २०९ ॥ चारो ओर से (घटाओ की तरह) उठकर बाणो की वर्षा हो रही है। क्रोधी एव विकराल वीर विभिन्न प्रकार से बकवाद कर रहे हैं ॥ ५४ ॥ २१० ॥ ॥ भुजग प्रयात छद ॥ कही वीर कट रहे है और कही तीरो की वर्षा हो रही है। युद्धस्थल मे घोडे बिना काठियो के पडे हुए धूल-धूसरित हो रहे हैं। देवो एव दानवो के वीर परस्पर जूझ रहे हैं और ऐसे लग रहे है, मानो भीषण योद्धा भीष्म पितामह हो ॥ ५५ ॥ २११ ॥ सुसज्जित घोड़े एव हाथी गरज रहे है और युद्धशील शूरमाओ के बाण छूट रहे हैं। कृपाणो की झड़झड़ाहट और मृदगो की तड़तड़ाहट तथा बरछो एव नगाडो की धमाधम सुनाई पड रही है ॥५६॥२१२॥ ढोलो एव ढालो की ढमाढम चल रही है और घोड़ो ने इधर-उधर भागदौड़ करके हलचल मचा दी है। बरछियाँ सटासट चल रही है और खडग रक्तरजित हो रहे है। वीरो के शरीरो के लौह-कवच टूट रहे है और साथ ही अंग भी निकलकर बाहर आ रहे है ॥ ५७ ॥ २१३ ॥ लौह-शिरस्त्राणो पर खड्ग पडते ही आग की लपटे निकलती है और इतना घनघोर अंधकार (बाण-वर्षा के कारण) छाया हुआ है कि भूत-प्रेतादि (दिवस को) रात्रि मानकर जग गए हैं। डाकिनियाँ डकार रही हैं और डमरू वज रहे है तथा इनकी ध्वनि पर बैताल-भूत आदि नृत्य कर रहे है ॥ ५८ ॥ २१४ ॥ ॥ बेली बिंद्रम छद ॥ जितने भी शस्त्रो के वार हो रहे हैं, दुर्गादेवी ने उन सबको काट दिया है। इसके अतिरिक्त और भी

हीन द्रुगा तिते। अरि अउर जेतिक डारिअं। तेऊ काटि भूमि उतारिअं ॥ ५६ ॥ २१५ ॥ सर आप काली छंडिअं। सरबास्त्र शस्त्र बिहंडिअं। शस्त्र हीन जबै·निहारियो। जै शबद देबन उचारियो (मू०ग्रं०११४) **॥६०॥२१६॥ नभि मद्धि बाजन बाजहीं। अविलोकि देवा गाजहीं। लखि देव बारंबारहीं। जै शब्द सरब पुकारहीं ॥६१॥२१७॥ रण कोप काल करालियं। खट अग पाण उछालियं। सिर सुंभ हत्थ दुछंडियं। इक चोट दुष्ट बिहंडियं ॥ ६२ ॥ २१८ ॥ ॥ दोहरा ॥ जिम सुंभासुर को हना अधिक कोप कै काल। त्यों साधन के शत्र सभ चाबत जाँहि कराल ॥ ६३ ॥ २१९ ॥**

॥ इति स्री वचित्र नाटके चडी चरित्रे सुभ बधह खसटमो धिआइ सपूरनम सतु सुभम सतु ॥ ६ ॥ अफजू ॥

अथ जैकार शवद कथनं ॥

॥ बेली बिद्रम छंद ॥ जै शबद देब पुकारहीं। सभ फूल फूलन डारहीं। घनसार कुंकम ल्याइकै। टीका दियो

जितने वार हो रहे है, उन सबको काटकर दुर्गा ने भूमि पर गिरा दिया है ॥ ५९ ॥ २१५ ॥ काली ने स्वयं शस्त्र चलाए और असुरो के सभी अस्त्रो को काट डाला। जव देवताओ ने शुंभ को शस्त्र-विहीन देखा तो जय-जयकार करने लगे ॥ ६० ॥ २१६ ॥ नभमडल में बाजे वजने लगे और अब (युद्ध का दृश्य देखकर) देवता भी गर्जन करने लगे। देवता वार-बार देखने लगे और जय-जयकार की ध्वनि का उच्चारण करने लगे ॥ ६१ ॥ २१७ ॥ अब युद्ध मे क्रोधित होकर विकराल काली ने छः भुजाओ के हाथो को ज़ोर से उठाकर शुभ के सिर पर दे मारा और एक ही चोट से दुष्ट का नाश कर दिया ॥६२॥२१८॥ ॥ दोहा ॥ जिस प्रकार काली ने अधिक क्रोधित होकर शुंभ असुर को नष्ट किया, संतो के सभी शत्रुओ का इसी प्रकार नाश होता है ॥ ६३ ॥ २१९ ॥

॥ इति श्री वचित्र नाटक मे चडी-चरित्र के शुभ-वध नामक छठे अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ ६ ॥ अफजू ॥

जयकार-शब्द-कथन

॥ वेली विद्रम छद ॥ सभी देवता जयकार कर रहे है और फूलो की वर्षा कर रहे है। कुमकुम आदि लाकर तथा परम प्रसन्न होकर उन्होने

हरखाइकै ।। १ ।। २२० ।। ।। चौपई ।। उसतत सभहूँ करी अपारा । ब्रहम कवच को जाप उचारा । संत सँबूह प्रफुल्लत भए । दुष्ट अरिष्ट नास ह्वै गए ।। २ ।। २२१ ।। साधन को सुख बढे अनेका । दानव दुष्ट न बाचा एका । संत सहाइ सदा जग माई । जह तह साधन होइ सहाई ।। ३ ।। ।।२२२।। ।। देवी जू की उसतत ।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। नमो जोग ज्वालं धरीयं जुआलं । नमो सुंभ हंती नमो क्रूर कालं । नमो स्रोण बीरजारद्दनी धूम्रहंती । नमो कालका रूप ज्वाला जयंती ।। ४ ।। २२३ ।। नमो अंबका जंभहा जोति रूपा । नमो चंड मुंडारद्दनी भूपि भूपा । नमो चामरं चीरणी चित्र रूपं । नमो परम प्रज्ञा बिराजै अनूपं ।। ५ ।। २२४ ।। नमो परम रूपा नमो क्रूर करमा । नमो राजसा सातका परम बरमा । नमो महिख दईत कौ अंत करणी । नमो तोखणी सोखणी सरब इरणी ।। ६ ।। २२५ ।। बिड़ालाछ हंती करूराछ छाया । दिजगि द्यार दनिअं नमो जोग माया । नमो भइरवी

टीका लगाया ।।१।।२२०।। ।। चौपाई ।। सबो ने अत्यधिक स्तुति की एवं ब्रह्मकवच का जाप किया । समस्त सत प्रसन्न हो गए क्योकि दुष्टों का नाश हो गया है ।। २ ।। २२१ ।। साधुओ का सुख अनेक प्रकार से बढ़ने लगा और एक भी दुष्ट दानव नही बचा । जगत्माता सदैव सन्तों की सहायता करती है एव सर्वत्र उनकी सहायक सिद्ध होती है ।। ३ ।। २२२ ।। ।। देवी जी की स्तुति ।। ।। भुजंग प्रयात छद ।। हे योगज्वाला और धरती को दीप्तिमान करनेवाली ! तुम्हे मेरा नमस्कार है । शुभ का नाश करनेवाली, क्रूर कालरूपिणी, धूम्रनयन को नष्ट करनेवाली एव रक्तवीज का दलन करनेवाली तथा ज्वाला-सी जलनेवाली कालिका ! तुम्हे मेरा नमस्कार है ।।४।।२२३।। हे अबिका ! तुम जम्म दैत्य को मारनेवाली ज्योतिस्वरूपा हो, चंड-मुण्ड नामक राजाओ को मारनेवाली हो । चामरासुर को चीरने वाली परम प्रज्ञा के अनुपम रूप मे विराजमान हो, तुम्हे मेरा नमस्कार है ।। ५ ।। २२४ ।। हे क्रूर कर्म करनेवाली परमरूप ! तुम्हे मेरा नमस्कार है । हे रज, सत्त्व आदि गुणो को धारण करनेवाली, परम लौह-कवच-स्वरूपा, महिषासुर का अंत करनेवाली, सबको नष्ट करनेवाली, सबका संहार करनेवाली ! तुम्हे मेरा नमस्कार है ।।६।।२२५।। विडालाक्ष का हनन करनेवाली एवं क्रूर राक्षसों को मारनेवाली तथा ब्रह्मा का रूप धारण कर वेद पढनेवाली ! तुम्हे नमस्कार है । हे योगमाया भैरवी, भृगु-सी

भारगवीअं भवानी। नमो जोग ज्वालं धरी सरब मानी ॥ ७ ॥ २२६ ॥ अधी उरधवी आप रूपा अपारी। रमा रसटरी काम रूपा कुमारी। भवी भावनी भइरवी भीम रूपा। नमो हिंगुला पिंगुलायं अनूपा ॥ ८ ॥ २२७ ॥ नमो जुद्धनी क्रुद्धनी क्रूर (मू०ग्रं०११५) करमा। महा बुद्धनी सिद्धनी सुद्ध करमा। परी पद्मनी पारबती परम रूपा। सिवी बासवी ब्राहमी रिद्ध कूपा ॥ ९ ॥ २२८ ॥ मिड़ा मारजनी सूरतवी मोह करता। परा पच्छणी पारबती दुष्ट हरता। नमो हिंगुला पिंगुला तोतलायं। नमो करतिक्यानी शिवा सीतलायं ॥ १० ॥ २२९ ॥ भवी भारगवीयं नमो शस्त्र पाणं। नमो अस्त्र धरता नमो तेज माणं। जया आजया चरमणी चावडायं। क्रिपा कालकायं नयं नीति न्यायं ॥ ११ ॥ ॥ २३० ॥ नमो चापणी चरमणी खड़्ग पाणं। गदा पाणिणी चक्रणी चित्र माणं। नमो सूलणी सैहथी पाणि माता। नमो ज्ञान विज्ञान की ज्ञान ज्ञाता ॥ १२ ॥ २३१ ॥ नमो

भवानी, जालधरी एवं सबके द्वारा मान्य शक्ति! तुम्हे मेरा नमस्कार है ॥ ७ ॥ २२६ ॥ तुम नीचे-ऊपर सर्वत्र विराजमान होनेवाली लक्ष्मी, कामाख्या एव कुमारकन्या हो। तुम ही भवानी एव वृहद् रूप में भैरवी हो। तुम ही हिंगलाज, पिंगलाज आदि स्थानों पर अनुपम रूप से विराजमान हो, तुम्हे प्रणाम है ॥ ८ ॥ २२७ ॥ युद्ध मे क्रोधित होकर क्रूर कर्म करनेवाली, महाप्रज्ञा, सिद्धि एव युद्धकर्मा तुम्ही हो। तुम्ही अप्सरा, पद्मिनी पार्वती का परमरूप हो और तुम्ही शिव, इन्द्र, ब्रह्मा की शक्ति का स्रोत हो। तुम्हे नमस्कार है ॥ ९ ॥ २२८ ॥ मुर्दों को वाहन बनानेवाली, भूतों-प्रेतो को मोहित करनेवाली, तुम बड़ी से बड़ी अप्सरा, पार्वती एव दुष्टो का हनन करनेवाली हिंगलाज, पिंगलाज स्थानों पर बच्चो के समान सरल व्यवहार करनेवाली, कार्तिकेय, शिव आदि की शक्ति, तुम्हें नमस्कार है ॥१०॥२२९॥ यम की शक्ति, भृगु की शक्ति और हाथो मे शस्त्र धारण करनेवाली (दुर्गा) तुम्हे नमस्कार है। अस्त्रो को धारण करनेवाली, तेजस्विनी, सदैव अजेय रहनेवाली एव सर्व को विजय करनेवाली, सुन्दर ढालवाली तथा नित्य न्याय करनेवाली, कृपास्वरूपिणी कालिका, तुम्हे नमस्कार है ॥ ११ ॥ २३० ॥ हे धनुष, खड़ग एवं ढाल एवं गदा धारण करनेवाली चक्रवाहिनी तथा विश्व को चित्रित करनेवाली, तुम्हे नमस्कार है। तुम त्रिशूल-बरछी को धारण करनेवाली जगत्माता

पोखड़ी सोखणी अंम्रिड़ाली । नमो दुष्ट दोखारदनी रूप काली । नमो जोग ज्वाला नमो कारतिक्यानी । नमो अंबका तोतला स्री भवानी ॥ १३ ॥ २३२ ॥ नमो दोख दाही नमो दुक्ख्य हरता । नमो शस्त्रणी अस्त्रणी करम करता । नमो रिष्टणी पुष्टणी परम ज्वाला । नमो तारुणीअं नमो ब्रिद्ध बाला ॥१४॥ ॥ २३३ ॥ नमो सिघबाही नमो दाढ़ गाढ़ं । नमो खग्ग दग्गं झमा झम्म बाड़ं । नमो रूढ़ गूढ़ं नमो सरब ब्यापी । नमो नित्त नाराइणी दुष्ट खापी ॥ १५ ॥ २३४ ॥ नमो रिद्ध रूपं नमो सिद्ध करणी । नमो पोखणी सोखणी सरब भरणी । नमो आरजनी मारजनी कालरात्री । नमो जोग ज्वालंधरी सरब दात्री ॥ १६ ॥ २३५ ॥ नमो परम परमेश्वरी धरम करणी । नई नित्त नाराइणी दुष्ट दरणी । छला आछला ईशुरी जोग ज्वाली । नमो बरमणी चरमणी क्रूर काली ॥ १७ ॥ २३६ ॥ नमो रेचका पूरका प्रात संध्या । जिनै मोहु कै चउदहूँ लोक बंध्या । नमो अंजनी गंजनी सरब अस्त्रा । नमो धारणी

हो एवं सब ज्ञान-विज्ञानों की ज्ञाता हो, तुम्हे नमस्कार है ॥ १२ ॥ २३१ ॥ तुम सबकी पोषक, सहारक एव मुर्दों की सवारी करनेवाली हो । काली का स्वरूप धारण कर दुष्टों की नाशक हो, तुम्हे नमस्कार है । हे योग-ज्वाला, कार्तिकेय की शक्ति, अम्बिका, श्री भवानी, तुम्हे मेरा नमस्कार है ॥ १३ ॥ २३२ ॥ हे दु खो का दहन कर उन्हें हरण करनेवाली, शस्त्र-अस्त्रो के माध्यम से युद्धकर्म करनेवाली, हृष्ट, पुष्ट परमज्वाला तरुण एवं वृद्ध स्त्रियों की परमस्वरूप, तुम्हे नमस्कार है ॥ १४ ॥ ३३३ ॥ हे भीषण दाँतोवाली, सिह की सवारी करनेवाली, तुम्हे नमस्कार है । तुम खड़गो को खंडित करनेवाली, चमचमाती हुई कृपाण हो । तुम अत्यंत गूढ सर्वव्यापी, नित्य एव दुष्टो का विनाश करनेवाली हो । तुम्हें नमस्कार है ॥ १५ ॥ २३४ ॥ हे सिद्धियो को देनेवाली, सर्वपालक तथा सर्व-संहारक, चाँदी के समान स्वच्छ स्वरूप वाली एव कालरात्रि के समान भयानक, जालंधरी एवं सर्वदात्री स्वरूपा ! तुम्हे नमस्कार है ॥१६॥२३५॥ परम परमेश्वर की धर्मकारक शक्ति, नित्य नव्य नारायणी, दुष्टों का दलन करनेवाली, सवको छलनेवाली, शिव की योगज्वाला, सतो के लिए लोहकवच-स्वरूपा एव दैत्यो के लिए क्रूर काली, तुम्हे नमस्कार है ॥ १७ ॥ २३६ ॥ श्वास, निःश्वास एव प्रातः-संध्या का पूजन, अर्चन तुम्ही हो । तुम्ही ने अपनी माया से चौदह भुवनों को बाँध रखा है ।

बारणी सरब शस्त्रा ।। १८ ।। २३७ ।। नमो अंजनी गंजनी दुष्ट गरबा । नमो तोखणी पोखणी संत सरबा । नमो शकतणी सूलणी खड़्ग पाणी । नमो तारणी कारणीअं क्रिपाणी ।। १९ ।। २३८ ।। नमो रूप काली कपाली अनंदी । नमो चंद्रणी भानवी (मू०ग्रं०११९) अंगु बिंदी । नमो छैल रूपा नमो दुष्ट दरणी । नमो कारणी तारणी स्त्रिष्ट भरणी ।। २० ।। ।। २३९ ।। नमो हरखणी बरखणी शस्त्र धारा । नमो तारणी कारणीयं अपारा । नमो जोगणी भोगणी परम प्रज्ञा । नमो देव दइत्याइणी देवि-दुरग्या ।। २१ ।। २४० ।। नमो घोर रूपा नमो चार नैणा । नमो सूलणी सैथणी बक्र बैणा । नमो ब्रिद्ध बुद्धं करी जोग ज्वाला । नमो चंड मुंडी म्रिड़ा क्रूर काला ।। २२ ।। २४१ ।। नमो दुष्ट पुष्टारदनी छेम करणी । नमो दाढ़ गाढ़ा धरी दुख्य हरणी । नमो शास्त्र बेता नमो शस्त्र गामी । नमो जच्छ बिद्या धरी पूर्ण कामी ।।२३।।२४२।।

तुम्ही अजनी (हनुमान की माँ) सबके गर्व को चूर करनेवाली तथा सर्व अस्त्रों को धारण कर चलानेवाली हो, तुम्हे नमस्कार है ।। १८ ।। २३७ ।। हे अजनी, दुष्टो के गर्व को चूर करनेवाली, सर्व सतो का पोषण कर उन्हें प्रसन्न करनेवाली, तुम्हे नमस्कार है । हे त्रिशूलस्वरूपिणी, हाथ में खड़्ग धारण करनेवाली, सबको पार करनेवाली एव कारणो की कारण, कृपाण-स्वरूपा, तुम्हे नमस्कार है ।। १९ ।। २३८ ।। हे स्वरूप की काली, कपाली, आनन्ददात्री, चन्द्र एवं सूर्य की किरणो के समान सुन्दर स्वरूप वाली, दुष्टों का दलन करनेवाली सृष्टि का पोषण करनेवाली एवं सर्वकारणों की कारण ! तुम्हें नमस्कार है ।। २० ।। २३९ ।। हर्षित होकर शस्त्रों की वर्षा करनेवाली ! तुम सबका बेड़ा पार करनेवाली हो, तुम्हे नमस्कार है । हे देवी दुर्गा ! तुम परमप्रज्ञा, योगिनी देवी एव दैत्याणी हो, तुम्हे नमस्कार है ।। २१ ।। २४० ।। हे भीषण रूप वाली, सुन्दर नेत्रो वाली, तुम त्रिशूल एवं बरछी के समान बक्र दृष्टि वाली हो, तुम्हे नमस्कार है । हे योगज्वाला को प्रज्वलित करनेवाली परमबुद्धिस्वरूपा, चंड-मुंड का नाश कर उनके मृतक शरीर को रौंदने का क्रूर कर्म करनेवाली, तुम्हें नमस्कार है ।। २२ ।। २४१ ।। तुम बड़े-बड़े पापियों को नष्ट करनेवाली, कल्याणकारिणी हो । तुम अपने कराल दाँतो से दुष्टो को नष्ट कर संतो के दुःख का हरण करनेवाली हो । तुम शास्त्रवेत्ता, शस्त्रवेत्ता, यक्षविद्या मे निपुण और कामनाओ को पूर्ण करनेवाली हो, तुम्हे नमस्कार

रिपं तापणी जापणी सरब लोगा। थपे खापणी थापणी सरब सोगा। नमो लंकुड़ेसी नमो शक्ति पाणी। नमो कालका खड़ग पाणी क्रिपाणी ॥ २४ ॥ २४३ ॥ नमो लंकुड़ेसा नमो नाग्र कोटी। नमो काम रूपा कमिच्छ्या करोटी। नमो कालरात्रो कपरदी कल्याणी। महाँ रिद्धणी सिद्धदाती क्रिपाणी ॥ २५ ॥ २४४ ॥ नमो चतुरबाही नमो अष्टबाहा। नमो पोखणी सरब आलम पनाहा। नमो अंबका जंम्हा कारत्यानी। म्रिड़ाली कपरदी नमो स्री भवानी ॥२६॥२४५॥ नमो देव अरद्यारदनी दुष्टहंती। सिता असिता राज क्रांती अनंती। जुआला जयंती अलासी अनंदी। नमो पारब्रहमी हरी सी मुकदी ॥ २७ ॥ २४६ ॥ जयंती नमो मंगला कालकायं। कपाली नमो भद्रकाली सिवायं। द्रुगायं छिमायं नमो धात्रिएयं। सुआहा सुधायं नमो सीतलेयं ॥ २८ ॥ २४७ ॥ नमो चरबणी सरब धरमं धुजायं। नमो हिंगुला पिंगुला अंबकायं। नमो दीर्घ दाड़ा नमो स्याम बरणी। नमो अंजनी

है ॥ २३ ॥ २४२ ॥ शत्रुओ को दुःख देनेवाली, सभी लोग तुम्हारा जाप करते हैं। तुम सभी शोको को पैदा कर उनका नाश करनेवाली भी हो। तुम हनुमान की शक्ति हो और शक्ति को सर्वदा अपने हाथो मे धारण करनेवाली कालिका एव कृपाणस्वरूपा हो, तुम्हे नमस्कार है ॥२४॥२४३॥ हे हनुमंत की स्वामिनी शक्ति! नाग्रकोटि (काँगड़ा) की देवी, कामस्वरूपा, कामाख्या देवी एव कालरात्रि के समान सबका कल्याण करनेवाली हो। हे महाऋद्धियों, सिद्धियो की दात्री, कृपाण-धारिणी, तुम्हे नमस्कार है ॥ २५ ॥ २४४ ॥ हे देवी! तुम चतुर्भुजी एवं अष्टभुजी हो तथा अखिल विश्व की पोषक हो। हे अबिका, जभ राक्षस को मारनेवाली, कार्तिकेय की शक्ति, मृतको को रौदनेवाली श्रीभवानी, तुम्हें नमस्कार है ॥ २६ ॥ २४५ ॥ देवताओ के शत्रुओ का हनन करनेवाली, श्वेत श्याम-रक्तस्वरूपा, प्रमाद को जीतकर आनन्द को बढ़ानेवाली ज्वाला! तुम परब्रह्म की माया एव शिव की शक्ति हो, तुम्हे नमस्कार है ॥२७॥२४६॥ तुम सबका मगल करनेवाली, सबको जीतनेवाली, काल का स्वरूप हो। हे कपाली, शिवशक्ति एवं भद्रकाली, तुम दुर्गों को छेदन कर तृप्त होने वाली, शुद्ध अग्निस्वरूप भी हो एवं शीतलता भी हो, तुम्हे नमस्कार है ॥ २८ ॥ २४७ ॥ हे असुरों को चबानेवाली, सर्वधर्मो की ध्वजा-स्वरूपा, हिंगलाज, पिंगलाज की अधिष्ठात्री शक्ति माँ, तुम्हे नमस्कार है।

गंजनी दैंत दरणी ॥ २६ ॥ २४८ ॥ नमो अरध चंद्राइणी चंद्रचूड़ं । नमो इंद्र ऊरधा नमो दाढ़ गूड़ं । ससं सेखरी चंद्र माला भवानी । भवी भैहरी भूतराटी क्रिपानी ॥ ३० ॥ २४६ ॥ कली कारणी करम करता कमचछ्या । परी पद्मनी पूरणी सरब इचछ्या । जया जोगनी जग्ग करता जयंती । सुभा (मू०ग्रं०११७) स्वामणो सिष्टजा शत्रुहंती ॥ ३१ ॥ २५० ॥ पवित्री पुनीता पुराणी परेय । प्रभी पूरणी पारब्रहमी अजेयं । अरूपं अनूपं अनामं अठामं । अभीतं अजीतं महाँ धरम धामं ॥ ३२ ॥ २५१ ॥ अछेदं अभेदं अकरमं सु धरमं । नमो बाण पाणी धरे चरम बरमं । अजेयं अभेयं निरंकार नित्यं । निरूपं न्रिबाणं नमित्यं अकित्यं ॥ ३३ ॥ २५२ ॥ गुरी गउरजा कामगामी गुपाली । बली बीरणी बावना जग्य ज्वाली । नमो सत्र चरबाइणी गरब हरणी । नमो तोखणी सोखणी सरब भरणी ॥ ३४ ॥ २५३ ॥ पिलंगी पवंगी नमो चर चितंगी ।

हे कराल दाँतो वाली, काले वर्णवाली अजनी एव दैत्यो का दलन करनेवाली, तुम्हें नमस्कार है ॥ २९ ॥ २४८ ॥ हे अर्द्धचन्द्र को धारण करनेवाली एवं चन्द्र को ही आभूषण वनानेवाली, तुम वादलो की शक्ति रखनेवाली तथा विकराल जबडोवाली हो । चन्द्रमा के समान तुम्हारा मस्तक है । हे भवानी, तुम ही भैरवी, भूतनी एवं कृपाणधारिणी हो, तुम्हे नमस्कार है ॥ ३० ॥ २४९ ॥ हे कामाख्या दुर्गा ! तुम कलियुग की कारण एवं कर्म हो तथा परियो एव पद्मिनी स्त्री के समान सर्व इच्छाओ को पूर्ण करनेवाली हो । तुम सबको विजय करनेवाली योगिनी एव यज्ञ करनेवाली हो । तुम सर्व पदार्थों का स्वभाव हो । सृष्टि की रचयिता हो एव शत्रुओ का नाश करनेवाली हो ॥३१॥२५०॥ तुम पवित्र, पुनीत, प्राचीन, प्रभुता, पूर्णता, माया एव अजेय हो । तुम निराकार, अनुपम, अनाम एव स्थानातीत हो । तुम अभय, अजेय एव महाधर्म का पुज हो ॥३२॥२५१॥ तुम अक्षय, अभेद, निष्कर्म, धर्म हो । हे वाण को हाथमें तथा कवच को धारण करनेवाली, तुम्हे नमस्कार है । तुम अजेय, रहस्यो से परे, निराकार, नित्य, अरूप, निर्वाण एवं सर्वकार्यो का निमित्त कारण हो ॥३३॥२५२॥ तुम गौरी, कामनाओ को पूर्ण करनेवाली, कृष्ण की शक्ति, बलशालिनी, वामन की शक्ति, यज्ञ की अग्नि के समान हो । हे शत्रुओं को चबाकर उनका गर्व चूर करनेवाली, प्रसन्नतापूर्वक पोषण एवं सहार करनेवाली, तुम्हे नमस्कार है ॥ ३४ ॥ २५३ ॥ हे सिह रूपी अश्व पर सवारी करने

नमो भावनी भूत हंता भड़िगी । नमो भीमि रूपा नमो लोक माता । भवी भावनी भविक्ख्याता बिधाता ।। ३५ ।। २५४ ।। प्रभा पूरणी परम रूपं पवित्री । परी पोखणी पारब्रह्मी गइत्री । जटी ज्वाल परचंड मुंडी चमुंडी । बरंदाइणी दुष्ट खंडी अखंडी ।। ३६ ।। २५५ ।। सभै संत उबारी बरं ब्यूह दाता । नमो तारणी कारणी लोक माता । नमसत्यं नमसत्यं नमसत्यं भवानी । सदा राख लै मुहि क्रिपा कै क्रिपानी ।। ३७ ।। २५६ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके चंडी चरित्रे देवी जू की उसतत बरनन नाम सपतमो धिआइ संपूरणम सतु सुभम सतु ।। ७ ।। अफजू ।।

अथ चंडी चरित्र उसतत बरननं ।।

।। भुजंग प्रयात छंद ।। भरे जोगणी पत्र चउसठ चारं । चली ठाम ठामं डकारं डकारं । भरे नेह गेहं गए कक बंकं ।

वाली तथा सुन्दर अंगो वाली भवानी ! तुम युद्ध मे लगे हुए सबो का नाश करनेवाली हो । हे वृहद् कायावाली जगत्माता, तुम यम की शक्ति, संसार मे कर्मों का फल देनेवाली तथा ब्रह्मा की शक्ति भी हो, तुम्हे नमस्कार है ।। ३५ ।। २५४ ।। हे परमात्मा की पवित्रतम शक्ति, तुम्ही सबका पोषण करनेवाली माया एव गायत्री हो । मुडमाल धारण करनेवाली चामुडा एवं शिवजटाओं की ज्वाला भी तुम्ही हो । तुम्ही वरदात्री एव दुष्टों का खंडन करनेवाली, परन्तु स्वय अखडस्वरूप मे बनी रहनेवाली हो ।। ३६ ।। २५५ ।। सर्व सतो का उद्धार करनेवाली, सबको वरदान देनेवाली, सबको भवसागर से पार करनेवाले कारणो की मूल कारण जगत्-माता भवानी ! तुम्हे मेरा बार-बार नमस्कार है । हे कृपाणस्वरूपिणी ! कृपा करके मेरी सदा रक्षा करती रहना ।। ३७ ।। २५६ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक मे चंडी-चरित्र के देवी जी की स्तुति-वर्णन नामक सातवें अध्याय की शुभ समाप्ति ।। ७ ।। अफजू ।।

चंडीचरित्र-स्तुति-वर्णन

।। भुजग प्रयात छद ।। योगिनियो ने सुन्दर बर्तन [illegible]
भर लिये है [illegible] र-उधर स्थानो को डकारती हुई [illegible]
उस स्थान [illegible] करनेवाले सुन्दर कौवे भी [illegible]
गए है और [illegible] शूरवीर विना किसी देख [illegible] ।

रुले सूरवीरं अहाड़ं न्रिसंकं ॥ १ ॥ २५७ ॥ चले नारदउ हाथ बीना सुहाए। बने बारदी डंक डउरू बजाए। गिरे बाण गाजी गजी बीर खेतं। रुले तच्छ मुच्छं नचे भूत प्रेतं ॥ २ ॥ ॥ २५८ ॥ नचे बीर बैताल अद्धं कमद्धं। वधे बद्ध गोपा गुलित्राण बद्धं। भए साधु संबूह भीत अभीते। नमो लोक-माता भवे शत्र जीते ॥ ३ ॥ २५९ ॥ पढ़े मूड़ याको धनं धाम बाढे। सुनै सूम सोफी लरै जुद्ध गाढे। जगै रैणि जोगी जपै जाप याको। धरै परम जोग लहै सिद्धता को ॥ ४ ॥ २६० ॥ पड़े याहि बिद्यारथी (मू०ग्रं०११८) बिद्य हेतं। लहै सरब शासत्रान को मद्द चेतं। जपै जोग संन्यास बैराग कोई। तिसै सरब पुंन्यान को पुंन होई ॥ ५ ॥ २६१ ॥ ॥ दोहरा ॥ जे जे तुमरे ध्यान को नित उठि ध्यैहैं संत। अंत लहैंगे मुक्ति फलु पावहिंगे भगवंत ॥ ६ ॥ २६२ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके चडी चरित्रे चंडी चरित्र उसतत बरननं नाम अशटमो धिआइ सपूरनम सतु सुभम सतु ॥ ८ ॥ अफजू ॥

हो गए ॥ १ ॥ २५७ ॥ नारद भी हाथ में वीणा लिये हुए चल पड़े है और बैल की सवारी करनेवाले शिव अपना डमरू बजाते हुए शोभायमान हो रहे हैं। युद्धस्थल मे गरजनेवाले वीर एव हाथी-घोड़े गिर पड़े है और टुकड़ो-टुकड़ो मे धूल-धूसरित पड़े हुए वीरो को देख कर भूत-प्रेत नृत्य कर रहे हैं ॥ २ ॥ २५८ ॥ अधे कवध एव वीर बैताल नृत्य कर रहे है तथा कमर मे घुँघरू बाँधकर नाचनेवाले तथा युद्ध करनेवाले भी मारे गए है। समस्त डटे हुए साधुगण निर्भय हो गए है। हे लोकमाता ! तुमने शत्रुओ को जीतकर बहुत भला कार्य किया है, तुम्हे नमस्कार है ॥ ३ ॥ २५९ ॥ कोई मूर्ख भी यदि इसका पाठ करेगा तो उसके यहाँ धन-धान्य की वृद्धि होगी। युद्ध मे भाग न लेनेवाला यदि इसे सुनेगा तो उसमे युद्ध करने की शक्ति आ जायेगी तथा जो योगी रात भर जागकर इसका जाप करेगा, वह परमयोग एव सिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ४ ॥ २६० ॥ जो विद्यार्थी विद्या-प्राप्ति के लिए इसको पढ़ेगा, वह सारे शास्त्रो की चेतना प्राप्त कर लेगा। इसको योगी, संन्यासी, वैरागी जो भी पढेगा, उसे सर्व पुण्यो की प्राप्ति होगी ॥ ५ ॥ २६१ ॥ ॥ दोहा ॥ जो-जो सन्त नित्य तुम्हारा ध्यान करेगे, वे अत को मुक्ति प्राप्त करेगे और परमात्मा मे विलीन हो जायेगे ॥ ६ ॥ २६२ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के चडीचरित्र मे चंडीचरित्र-स्तुति-वर्णन नामक आठवें अध्याय की शुभ समाप्ति ॥ ८ ॥ अफजू ॥

१ ओं वाहिगुरू जी की फतह ।। स्री भगउती जी सहाइ ।।

वार स्री भगउती जी की ।। पातिशाही १० ।।

प्रिथम भगउती सिमर कै गुर नानक लईं धिआइ । फिर अंगद गुर ते अमरदास रामदासै होइ सहाइ । अरजन हरिगोबिंद नूं सिमरौ स्री हरिराइ । स्री हरिक्रिशन धिआइऐ जिसु डिट्ठे सभ दुख जाइ । तेगबहादर सिमरिऐ घर नउनिधि आवै धाइ । सभ थाईं होइ सहाइ ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। खंडा प्रिथमै साजिकै जिन सभ संसारु उपाइआ । ब्रहमा बिशन महेश साजि कुदरति दा खेलु रचाइ बणाइआ । सिंध परबत मेदनी बिनु थंम्हा गगनि रहाइआ । सिरजे दानो देवते तिन अंदरि बादु रचाइआ । तैं ही दुरगा साजि कै दैंता दा नासु कराइआ । तैथो ही बलु राम लै नाल बाणा दहसिरु घाइआ । तैथों ही बलु क्रिशन लै कंसु केसी पकड़ि गिराइआ । बडे बडे मुनि देवते कई जुगतिनी तनु ताइआ । किनी तेरा अंतु न पाइआ ।। २ ।। साधू सतिजुगु बीतिआ अधसीलो त्रेता

पहले खड़ग का स्मरण कर फिर गुरु नानक को याद करता हूँ । पुनः अंगद, अमरदास एवं गुरु रामदास का स्मरण करता हूँ, जो मेरे सहायक होगे । गुरु अर्जुन, हरगोविन्द को स्मरण कर श्री हरिराय को याद करता हूँ । श्री हरिकृष्ण, जिनको देखने से सर्वदु:खो की निवृत्ति हो जाती है, का ध्यान करता हूँ । (गुरु) तेगवहादुर का स्मरण करने से नवनिधियाँ घर की ओर दौड़ी चली आती है और ये (गुरु) सर्व स्थानों पर मेरे सहायक होते हैं ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। परमात्मा ने सर्व-प्रथम खड़ग रूपी शक्ति का सृजन कर फिर ससार उत्पन्न किया तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश को उत्पन्न कर सारी प्रकृति का खेल रचा (बना डाला) । समुद्र, पर्वत, धरती एवं बिना स्तभो के रुका रहनेवाला आकाश वनाया गया । दानव एक देवता पैदा किए और उनमें परस्पर शत्रुता पैदा की । हे प्रभु ! तुमने ही दुर्गा का सृजन कर उसके हाथों से दैत्यो का नाश करवाया । तुमसे ही बल प्राप्त कर राम ने अपने वाणों से रावण का वध किया और तुम्ही से बल लेकर कृष्ण ने कस के केशो को पकड़कर उसे नीचे गिरा दिया । हे परमतत्त्व ! बड़े-बड़े मुनिगण एवं देवता कई युगों तक घोर तप करने के बाद भी तेरा अन्त न पा सके ।। २ ।। तत्त्व-गुणवाला सतयुग वीता और आधे शील का पालन करनेवाला त्रेतायुग

आइआ। नच्चा कलल सरोसरी कल नारद डउरू वाइआ। अभिमानु उतारन देवतिआं महिखासुर सुंभ उपाइआ। जीति लए तिन देवते तिहु लोकी राजु कमाइआ। वड्डा बीर अखाइ कै सिर उप्पर छत्रु फिराइआ। दित्ता इंद्रु निकाल कै तिन गिर कैलाश तकाइआ। डरि कै हत्थो दानवी दिल अंदरि त्रासु वधाइआ। पास दुरगा दे इंद्रु आइआ ॥३॥ ॥ पउड़ी ॥ इक्क दिहाड़े न्हावण आई दुरगशाह। इंदर ब्रिथा सुणाई अपणे (मू०ग्रं०११६) हाल दी। छीन लई ठकुराई साते दानवी। लोकी तिही फिराई दोही आपणी। बैठे वाइ वधाई ते अमरावती। दित्ते देव भजाई सभना राकशाँ। किनै न जित्ता जाई महखे दैत नूं। तेरी साम तकाई देवी दुरगशाह ॥ ४ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुरगा बैण सुणंदी हस्सी हड़हड़ाइ। ओही सीहु मंगाइआ राखश भक्खणा। चिंता करहु न काई देवाँ नूं आखिआ। रोह होई महा माई राकशि मारणे ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ राकशि आए रोहले खेत भिड़न

आया। अब सबके सर पर कलह नाचने लगा, क्योकि नारद का प्रभाव बहुत बढ़ गया। देवताओ का अहकार नष्ट करने के लिए परमात्मा ने महिषासुर एव शुभ आदि असुरो को पैदा किया, जिन्होने देवताओ को जीतकर त्रिलोक मे अपना राज्य स्थापित किया। ये अपने को महाबली कहलाने लगे और इन्होने छत्र को अपने सर पर धारण किया। इन्होने इन्द्र को सुरपुरी से निकाल फेका और उसने कैलास पर्वत की ओर याचक दृष्टि से देखना प्रारभ कर दिया। दानवो से डरा हुआ इन्द्र बहुत भयभीत होकर दुर्गा के पास आया ॥ ३ ॥ ॥ पउड़ी ॥ एक दिन जब दुर्गा स्नान करने आई तो इन्द्र ने अपनी व्यथा सुनाते हुए कहा कि दानवो ने मेरा राज्य छीन लिया है और अब त्रिलोक मे उनकी घोषणाओ को सुना जाता है। उन्होने वाद्य बजाकर स्वर्गपुरी से सब देवताओ को भगा दिया है। कोई भी महिषासुर को जीत नही पाया है, इसलिए हे देवी दुर्गा ! मैं तेरी शरणागत हुआ हूँ ।।४।। ॥ पउड़ी ॥ बातें सुनती हुई दुर्गा हड़हड़ाकर हँस उठी और उसने राक्षसो का भक्षण करनेवाला अपना सिह मँगवाया। उसने देवताओं से कहा कि तुम चिंता त्याग दो। यह कहते हुए दुर्गा असुरो का वध करने के लिए क्रोधित हो उठी ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ बलशाली राक्षस युद्ध के उत्साह से आगे चले और युद्धस्थल मे कृपाण एव बरछियाँ इस प्रकार चमकने लगी कि सूर्य

के चाइ। लशकन तेगां बरछिआँ सूरजु नदरि न पाइ ॥ ६ ॥
॥ पउड़ी ॥ दुहाँ कँधाराँ मुहि जुड़े ढोल संख नगारे बज्जे।
राकशि आए रोहले तरवारी बखतर सज्जे। जुट्टे सउहे जुद्ध
नूं इक जात न जाणन भज्जे। खेत अंदरि जोधे गज्जे ॥ ७ ॥
॥ पउड़ी ॥ जंग मुसाफा बज्जिआ रण घुरे नगारे चावले।
झूलन नेजे बैरका नीसाण लसनि लसावले। ढोल नगारे पउण
दे ऊँघण जाण जटावले। दुरगा दानो डहे रण नाद वज्जन खेत
मोहावले। बीर परोते बरछीएँ जण डाल चमुट्टे आवले।
इक वड्ढे तेगी तड़फीअन मद पीते लोटनि बावले। इक चुण
चुण झाड़उ कढीअन रेत विच्चों सुइना डावले। गदा त्रिसूलां
बरछीआँ तीर वग्गन खरे उतावले। जण डसे भुजंगम सावले।
मर जावन बीर रुहावले ॥ ८ ॥ ॥ पउड़ी ॥ देखन चंड प्रचंड
नूं रण घुरे नगारे। धाए राकशि रोहले चउगिरदे भारे।
हत्थी तेगां पकड़ि कै रण भिड़े करारे। कदे न नट्ठे जुद्ध ते
जोधे जुज्झारे। दिल विच रोह बढाइ कै मारि मारि पुकारे।

भी दिखाई नही पड़ रहा था ॥ ६ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दोनो दल आमने-सामने खड़े हो गए और शंख तथा नगाड़े बजने लगे। लौह-कवचो एवं कृपाणों से सुसज्जित बलशाली राक्षस आगे बढ़े। सम्मुख युद्ध के लिए ऐसे योद्धा खड़े हैं, जो युद्धस्थल से भागना जानते ही नही। ये योद्धा युद्धक्षेत्र मे गरज रहे है ॥७॥ ॥ पउड़ी ॥ रणभेरी बज उठी और नगाड़े गड़गड़ाने लगे। बरछियाँ झूल उठी और सुन्दर ध्वज फहरा उठे। ढोल-नगाड़ो की ध्वनि से शूरवीर इस प्रकार मस्त हो रहे है, जैसे कोई शराबी झूम रहा हो। दुर्गा एवं दानव इस भयानक नाद मे एक-दूसरे के सामने होकर लड़ रहे हैं। युद्ध मे वीर बरछियो मे इस प्रकार पिरोये जा रहे है, मानो डाली मे आँवले लगे हुए हो। एक ओर कृपाणो से कटे वीर तड़प रहे हैं और दूसरी ओर वीर धरती पर ऐसे लोट रहे हैं, मानो उन्होंने मद्य-पान किया हो। कायरो को झाड़ियो मे से खीचकर इस प्रकार मारा जा रहा है, जैसे रेत मे से सोने को खीचकर अलग कर लिया जाता हो। गदा, त्रिशूल, बरछियाँ और तीर भीषण रूप से चल रहे है और ये काले नागो की तरह डँसते चले जा रहे हैं, जिसके फलस्वरूप बड़े-बड़े शूरवीर मरते जा रहे है ॥ ८ ॥ ॥ पउडी ॥ प्रचंड चडिका का सामना करने के लिए दैत्यो के नगाड़े और तेज़ ध्वनि करने लगे और महाबली राक्षसो ने दौड़कर चंडी को चारो ओर से घेर लिया। वे हाथो से कृपाणे पकड़कर

मारे चंड प्रचंड नै बीर खेत उतारे। मारे जापन बिज्जुली सिर भार मुनारे ॥ ९ ॥ ॥ पउड़ी ॥ चोट पई दमामे दलां मुकाबला। देवी दसत नचाई सीहणि सार दी। पेट मलंदे लाई महखे दैत नूं। गुरदे आँदाँ खाई नाले रुक्कड़े। जेही दिल विच आई कही सुणाइकै। चोटी जाण दिखाई तारे धूम केत ॥ १० ॥ ॥ पउड़ी ॥ चोटां पवन नगारे अणीआं जुट्टीआँ। धूह लईआँ तरवारी देवाँ दानवी। वाहन वारो वारी सूरे संघरे। (मू०ग्रं०१२०) वगै रत्तु झुलारी जिउँ गेरू बसतरा। देखन बैठ अटारी नारी राकशाँ। पाई धूम सवारी दुरगा दानवी ॥ ११ ॥ ॥ पउड़ी ॥ लक्ख नगारे वज्जण आमो साम्हणे। राकश रणो न भज्जण रोहे रोहले। शीहाँ वाँगू गज्जण सभे सूरमे। तणि तणि कैबर छड्डण दुरगा साम्हणे ॥१२॥ ॥ पउड़ी ॥ घुरे नगारे दोहरे रण संगली आले।

भिड़ गए है। ये ऐसे वीर है, जो कभी भी रणस्थल से पीछे नही हटे है। अत्यन्त क्रोधित होकर ये मार, मार की ध्वनि कर रहे है। प्रचड चडी ने अनेको वीरो को रणस्थल मे ऐसे मार गिराया है, मानो बिजली पड़ने के कारण बड़ी-बड़ी मीनारे नीचे आ गिरी हो ॥९॥ ॥ पउड़ी ॥ नगाडों पर चोटे पड़ रही है और दलो मे मुकाबला चल रहा है। देवी ने सिंहनी-जैसी कृपाण को हाथ मे नचाया है और पेट को मल रहे महिषासुर पर वार किया। देवी की कृपाण दैत्य के पेट को खड-खड करती हुई उसकी अँतडियों एवं गुर्दो को बाहर खीच लायी है। तलवार की नोक दूसरी ओर ऐसे निकली है, मानो धूमकेतु की चोटी दिखाई दे रही हो। कवि कहता है कि यह उपमा जैसी मुझे अच्छी लगी है, मैंने कह सुनाई है ॥ १० ॥ ॥ पउड़ी ॥ नगाड़े पर चोटे पड़ रही है और सेनाएँ एक-दूसरे से भिड़ गई है। देव और दानव तलवारे खीचकर अपने-अपने दाँव लगाकर चलाना शुरू कर दिया है। जैसे कपड़े से कच्चा रग उतर कर वह उठता है, वैसे रक्त शरीर रूपी कच्चे वस्त्र से बह निकला है, जिसे राक्षसो की स्त्रियाँ अट्टालिकाओ पर बैठकर देख रही है। दानवो मे दुर्गा की सवारी की धूम मच गई है ॥११॥ ॥ पउड़ी ॥ बेशक भयंकर नगाड़े लाखो बार बज रहे हैं, परन्तु महाबली राक्षस युद्ध से भाग नही रहे हैं। शेरो की तरह शूरवीर गरज रहे है और दुर्गा के सामने तन-तनकर तीर छोड रहे है ॥ १२ ॥ ॥ पउड़ी ॥ ज़जीरो से बाँधे हुए नगाड़े बज रहे है और धूल से लिपटे जटाओ वाले असुर दिखाई पड़ रहे है। इन राक्षसो

धूड़ि लपेटे धूहरे सिरदार जटाले । उखलिआँ नासाँ जिना मुहि जापन आले । धाए देवी साहमणे बीर मुचछलीआले । सुरपत जेहे लड़ हटे बीर टले न टाले । गज्जे दुरगा घेरि कै जणु घणीअर काले ॥ १३ ॥ ॥ पउड़ी ॥ चोट पई खरचामी दलाँ मुकाबला । घेर लई वरिआमी दुरगा आइ कै । राकश वडे अलामी भज्ज न जाणदे । अंत होए सुरगामी मारे देवता ॥ १४ ॥ ॥ पउड़ी ॥ अगणत घुरे नगारे दलाँ भिड़ंदिआँ । पाए महखल भारे देवाँ दानवाँ । वाहन फट्ट करारे राकशि रोहले । जापन तेगीआरे मिआनो धूहीआँ । जोधे वडे मुनारे जापन खेत विचि । देवी आप सवारे पब्ब जवेहणे । कदे न आखण हारे धावन साम्हणे । दुरगा सभ संघारे राकशि खड़ग लै ॥ १५ ॥ ॥ पउड़ी ॥ उम्मल लत्थे जोधे मारू बज्जिआ । बद्दल जिउँ महिखासुर रण विचि गज्जिआ । इंदर जेहा जोधा मैथउ भज्जिआ । कउणु विचारी दुरगा जिन

के नाक के छिद्र ओखलियो के समान है और मुँह दीवारो मे अलमारियों के समान बड़े-बडे है । ये मूँछो वाले वीर दौडकर दुर्गा के सामने आए ये सुरपति से लड़कर भी अटल बने रहनेवाले वीर है, इन्होने दुर्गा को घेरकर इस प्रकार गर्जन प्रारम्भ कर दिया मानो बादल गरज रहे हो ॥ १३ ॥ ॥ पउडी ॥ खर के चमड़े से बने नगाड़ो पर चोट पड गई और दलो का मुकाबला चल रहा है । राक्षसो ने बलशालिनी दुर्गा को घेर लिया है और ये बलशाली ऐसे राक्षस है जो युद्धस्थल से भाग जाना तो जानते ही नही । ये कई देवताओ को नष्ट करके अन्त मे स्वय भी स्वर्ग सिधार गए ॥ १४ ॥ ॥ पउडी ॥ दलो के भिड़ते ही नगाड़े घरघराने लगे । देवताओ, दानवो दोनो ने भारी कवच धारण कर रखे थे । राक्षस भीषण प्रहार कर रहे हैं । उनकी म्यानो से निकाली हुई तलवारे आरे के समान लग रही है । योद्धा, युद्धस्थल मे बड़े-बड़े स्तम्भों की तरह लग रहे है । देवी ने इन पर्वतों के समान आकार वाले राक्षसों को स्वयं मार दिया, परन्तु फिर भी ये राक्षस अपनी पराजय स्वीकार नही करते हैं और दुर्गा के सामने दौड-दौड़कर जा रहे हैं । दुर्गा ने अपने हाथ मे खड़ग लेकर सभी राक्षसो का संहार कर दिया ॥ १५ ॥ ॥ पउड़ी ॥ उमड-घुमड़कर योद्धागण भिड़ गए और मारो, मारो की ध्वनि गूँज उठी । इसी समय बादलों के समान महिषासुर युद्धस्थल मे गरजा और बोला कि इन्द्र-जैसा वीर भी युद्धस्थल मे मेरे सामने से

रणु सज्जिआ ।। १६ ।। ।। पउड़ी ।। वज्जे ढोल नगारे दलाँ मुकाबला । तीर फिरै रैबारे आम्हो साम्हणे । अगणत बीर सँघारे लगदी कैबरी । डिग्गे जाणि मुनारे मारे बिज्जु दे । खुल्ली वाली दैत अहाड़े सभ्भे सूरमे । सुत्ते जान जटाले भंगाँ खाइकै ।। १७ ।। ।। पउड़ी ।। दुहाँ कँधाराँ मुहि जुणे नालि धउसा भारी । कड़क उठिआ फउज ते वडा अहंकारी । लै कै चलिआ सूरमे नालि वडे हजारी । मिआनो खंडा धूहिआ महखासुर भारी । उम्मल लत्थे सूरमे मार मची करारी । जापे छल्ले रत दे सलले जटधारी ।। १८ ।। ।। पउड़ी ।। सट्ट पई जमधाणी दलाँ मुकाबला । धूहि लई क्रिपाणी दुरगा म्यान ते । चंडी राकशि खाणी वाही दैत नूं । कोपर चूर (मू०ग्रं०१२१) चवाणी लत्थी करग लै । पाखर तुरा पलाणी रड़की धौल जाइ । लैदी अघा सिधाणी सिंगाँ धउलदिआँ । कूरम सिर

भाग खडा हुआ था । यह कौन बेचारी दुर्गा है, जिसने युद्ध करने की हिम्मत की है ।। १६ ।। ।। पउडी ।। ढोल-नगाडो की ध्वनि के बीच दलो का मुकाबला शुरू हो गया और दोनो दलों के बीच मे वाण वरसने लगे । तीरो के लगते ही अगणित वीरो का सहार हुआ और वे ऐसे गिरने लगे, जैसे विजली पडने से स्तम्भ ढहकर गिर जाते हैं । खुले केशो वाले राक्षस वीर युद्धस्थल मे ऐसे पड़े हैं, मानो भग पीकर जटाओं वाले मुनि लेटे हो ।। १७ ।। ।। पउडी ।। नगाड़ो की घनघोर ध्वनि के साथ दोनो दल आमने-सामने भिड गए । अपनी सेना से भी वड़ा अहंकारी (महिषासुर) कडक उठा और हजारो वीरो को मारनेवाले वीरो को साथ लेकर आगे वढा । महिषासुर ने अपने म्यान से भारी खडग को खीच लिया और उसके ऐसा करते ही शूरवीर इकट्ठा होकर मारकाट मचाते हुए टूट पड़े । रक्त इस प्रकार बह निकला, मानो शिव की जटाओ से जलधारा बह निकली हो ।। १८ ।। ।। पउड़ी ।। यम के वाहन भैंसे की खाल से वने नगाड़े पर चोट पड़ी और सघर्ष शुरू हो गया । दुर्गा ने राक्षसो को मारकर खानेवाली कृपाण से महिषासुर पर वार किया । दुर्गा की तलवार राक्षस महिषासुर की खोपड़ी को काटती, मुख एव शरीर को चीरती, वाहन की काठी को खंड-खंड करती हुई, धरती को छेदती हुई, धरती को उठानेवाले बैल के सीगो से जा टकरायी । तलवार और आगे वढकर कच्छप की पीठ पर जा टकरायी । दुश्मनो को ऐसे काटकर डाल दिया गया, जैसे वढई ने जंगल में लकड़ी के टुकड़े काटकर फेंके हो ।

लहिलाणी दुशमन मारकै। वड्ढे गन्न तिखाणी मूए खेत विच। रण विच घत्ती घाणी लोहू मिज्झ दी। चारे जुग कहाणी चल्लग तेग दी। बिद्धण खेत विहाणी महखे दैत नूं ॥ १९ ॥ ॥ पउड़ी ॥ इती महखासर दैत मारे दुरगा आइआ। चउदह लोका राणी सिंघु नचाइआ। मारे वीर जटाणी दल विच अग्गले। मंगण नाही पाणी दली हँघारकै। जण करी समाइ पठाणी सुणि कै राग नूं। रत्तू दे हड़वाणी चले बीर खेत। पीता फुल्लु इआणी घूमन सूरमे ॥ २० ॥ ॥ पउड़ी ॥ होई अलोपु भवानी देवाँ नूं राजु दे। ईशर दी बरदानी होई जित्त दिन। सुंभ निसुंभ गुमानी जनमे सूरमे। इंदर दी रजधानी तक्की जित्तणी ॥ २१ ॥ ॥ पउड़ी ॥ इंद्रपुरी ते धावणा वडजोधी मता पकाइआ। संज पटेला पाखरा भेड़ सदा साज बणाइआ। जुंमे कटक अछूहणी असमानु गरदी छाइआ। रोह सुंभ निसुंभ सिधाइआ ॥ २२ ॥ ॥ पउड़ी ॥ सुंभ निसुंभ अलाइआ वडजोधी संघरवाए। रोह दिखाली दित्तीआ

रक्त और मेधा (चर्बी) का कीचड़ युद्धस्थल मे भर गया। देवी की कृपाण की यशगाथा चारो युगो तक रहेगी। वह अवसर महिषासुर दैत्य के लिए एक कठिन समय था ॥ १९ ॥ ॥ पउडी ॥ महिषासुर दैत्य को मारकर दुर्गा इधर आई और उसने चौदह भुवनो मे अपना सिंह नचाया। दल के अगले भीषण वीरो को मार दिया गया। वीर पानी माँगे विना मर रहे है और ऐसे मस्त हो रहे है, जैसे पठान राग को सुनकर मस्ती से झूमते है। रक्त की बाढ रणस्थल मे चल निकली है और शूरमा युद्धस्थल मे ऐसे मस्त घूम रहे है, मानो उन्होने मद्यपान कर रखा हो ॥ २० ॥ ॥ पउड़ी ॥ देवताओ को राज देकर भवानी लोप हो गई। इधर शिव के वरदान से शुभ और निशुभ दो अभिमानी शूरवीर राक्षस पैदा हो गए, जिन्होने इद्र की राजधानी जीतने की योजना बनाई ॥ २१ ॥ ॥ पउड़ी ॥ योद्धाओ ने इंद्रपुरी पर धावा करने का कार्यक्रम बनाया और पेटियोवाले लौहकवच एव काठियाँ लेकर लडने के लिए अपने-आपको ससुज्जित किया। अगणित (अक्षौहिणी) दल पैदा हुआ और इस दल के चलने से उडी धूल आकाश मे छा गई। शुभ-निशुभ यह सब देखकर और अधिक उत्तेजित हो उठे ॥ २२ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दोनो दैत्यो—शुभ एव निशुभ ने वड़े-बड़े शूरवीरो को ललकारा है और रणस्थल मे धकेल दिया है। भीषण रोष व्याप्त हो गया है और शूरवीरों

वरिआमी तुरे नचाए। घुरे दमामे दोहरे जम बाहन जिउँ अरड़ाए। देउ दानो लुज्झण आए ॥२३॥ ॥ पउड़ी ॥ दानो देउ अनागी संघरु रच्चिआ। फुल्ल खिड़े जण वागी बाणे जोधिआ। भूताँ इल्लाँ कागी गोशत भखिआ। हुम्मड़ धुम्मड़ जागी घत्ती सूरिआ ॥ २४ ॥ ॥ पउड़ी ॥ सट्ट पई नगारे दलाँ मुकाबला। दित्ते देउ भजाई मिलि कै राकशी। लोकी तिही फिराई दोही आपणी। दुरगा दी शाम तकाई देवाँ डरदिआँ। आँदी चंडि चढ़ाई उते राकशाँ ॥ २५ ॥ ॥ पउड़ी ॥ आई फेरि भवानी खबरी पाइआँ। दैत वडे अभिमानी होए एकठे। लोचन धूम गुमानी राइ बुलाइआ। जग विच वड्डा दानो आप कहाइआ। सट्ट पई खरचामी दुरगा लिआवणी ॥ २६ ॥ ॥ पउड़ी ॥ कड़क उठी रण चंडी फउजाँ देखिकै। धूहि मिआनो खंडा होई साहमणे। सभे बीर सँघारे धूमरनैण दे। जणि लै कट्टे आरे दरखत बाढीआँ ॥ २७ ॥ (मू०ग्रं०१२२) ॥ पउड़ी ॥ चोबी धउस बजाई

ने घोडो को नचाना शुरू कर दिया है। नगाड़े घड़घड़ाने लगे हैं और शत्रु भैसो की तरह चिल्लाना शुरू कर दिए है। युद्धस्थल मे देव और दानव भिडने के लिए एकत्र हो गए हैं ॥ २३ ॥ ॥ पउडी ॥ दानवो और देवो ने भीषण युद्ध प्रारम्भ कर दिया। योद्धाओं के वस्त्र ऐसे शोभायमान है, मानो बागों मे फूल खिले हो। भूत, चील और कौवो ने मास खाना प्रारम्भ कर दिया तथा शूरवीरो ने भागदौड़ शुरू कर दी है ॥२४॥ ॥ पउडी ॥ नगाडो पर चोटे लगी और मुकाबला शुरू हो गया। राक्षसो ने मिलकर देवताओ को भगा दिया और त्रिलोकी मे अपनी विजय-घोषणा करवा दी। देवताओं ने असहाय एव भयभीत होकर दुर्गा की शरण ली और उसे राक्षसो पर चढाई करने के लिए ले आए ॥ २५ ॥ ॥ पउड़ी ॥ समाचार पाकर भवानी आई और बड़े-बड़े अभिमानी दैत्य इकट्ठे हो गए। शुभ राजा ने धूम्रलोचन नामक दैत्य को बुलाया जो कि ससार मे बहुत बड़ा दैत्य माना जाता था। दुर्गा के आने की खबर सुनकर दैत्यो की ओर भी नगाड़े पर चोट पड गई ॥ २६ ॥ ॥ पउड़ी ॥ सेना को देखकर रणचडी कड़क उठी और म्यान से खड्ग खींचकर सामने आ गई। उसने धूम्रलोचन के सभी वीरो को ऐसे मार गिराया, जैसे बढ़इयों ने आरो से पेड़ो को काटकर फेक दिया हो ॥ २७ ॥ ॥ पउड़ी ॥ नगाड़ो की चोट के साथ दलों मे मुकाबला शुरू हो गया

दलाँ मुकाबला। रोह भवानी आई उत्तै राकशाँ। खब्बै दसत नचाई शीहण सार दी। बहुतिआँ दे तन लाई कीती रंगुली। भाईआँ मारन भाई दुरगा जाणिकै। रोह होइ चलाई राकशि राइ नूं। जमपुर दिआ पठाई लोचन धूम नूं। जापे दित्ती साई मारन सुंभ दी॥ २८॥ ॥ पउड़ी॥ भन्ने दैत पुकारे राजे सुंभ थै। लोचन धूम सँघारे सणै सिपाहिआँ। चुणि चुणि जोधे मारे अंदर खेत दै। जापन अंबरि तारे डिग्गनि सूरमे। गिरे परब्बत भारे मारे बिज्जु दे। दैताँ दे दल हारे दहशत खाइकै। बचे सु मारे मारे रहदे राइ थै॥ २६॥ ॥ पउड़ी॥ रोह होइ बुलाए राकशि राइ ने। बैठे मता पकाए दुरगा लिआवणी। चंड अर मुंड पठाए बहुता कटकु दै। जापे छप्पर छाए बणीआ के जमा। जेते राइ बुलाए चल्ले जुद्ध नो। जण जमपुर पकड़ चलाए सभे मारने॥ ३०॥ ॥ पउड़ी॥ ढोल नगारे वाए दलाँ मुकाबला। रोह रुहेले

और क्रोधित होकर भवानी राक्षसो पर टूट पड़ी। देवी ने लौह-देवी को अपने हाथो पर नचाया, उसे बहुतो के शरीरो मे घुसेड़ा और रक्त-रंजित कर दिया। युद्ध की भगदड मे राक्षस, राक्षसो को ही दुर्गा समझकर मार डाल रहे है। दुर्गा ने क्रोधित होकर राक्षसराज धूम्रलोचन पर कृपाण चलाई और उसे यमपुरी पहुँचा दिया। धूम्रलोचन को मारना ऐसा लगा मानो उसे मारकर दुर्गा ने शुभ को मारने का अग्रिम दिया हो॥ २८॥ ॥ पउड़ी॥ प्रताड़ित दैत्य राजा शुभ के पास जाकर पुकारने लगे कि धूम्रलोचन को सिपाहियो समेत मार डाला गया है और चुन-चुनकर योद्धाओ को रणस्थल मे मार डाला गया है। शूरवीर ऐसे गिरते थे जैसे आकाश से तारे टूटकर गिर रहे हो या फिर ऐसा लगता था कि बिजली पड़ने से पर्वत गिर पड़े हो। दैत्यो के दल भयभीत होकर हार गये और जो बचे-खुचे थे, उनको भी (देवी द्वारा) मार डाला गया॥ २९॥ ॥ पउड़ी॥ राक्षसराज ने क्रोधित होकर अपने वीरो को बुलाया और यह निर्णय किया कि दुर्गा को पकडकर लाना है। चड और मुड को वहाँ से बहुत सी सेना देकर भेजा और उसकी चतुरगिणी सेना से ऐसा लगता था मानो आकाश ढक गया हो। जितने भी राजाओं को शुभ ने बुलाया था, वे सभी युद्ध के लिए चल दिये और ऐसे लग रहे थे मानो इन्हे स्वय मरने के लिए भेजा जा रहा है॥३०॥ ॥ पउड़ी॥ ढोल-नगाड़ों की गूंज के साथ मुकाबला शुरू हो गया। राक्षसो पर भी क्रोधित

आए उते राकशाँ। सभनी तुरे नचाए बरछे पकड़ि कै। बहुते मार गिराए अंदर खेत दै। तीरी छहबर लाए बुट्ठी देवता ॥ ३१ ॥ ॥ पउडी ॥ भेरी संख वजाए संघरि रचिआ। तणि तणि तीर चलाए दुरगा धनख लै। जिनी दसत उठाए रहे न जीवदे। चंड अरु मुंड खपाए दोनो देवता ॥ ३२ ॥ ॥ पउड़ी ॥ सुंभ निसुंभ रिसाए मारे दैत सुण। जोधे सभ बुलाए अपणे मजलसी। जिनी देउ भजाए इंदर जेहवे। तेई मार गिराए पल विच देवता। ओनी दसती दसति वजाए तिना चित करि। फिर स्रणवतबीज चलाए बीड़े राइ दे। संज पटेला पाए चिलकत टोपिआँ। लुज्झण नो अरड़ाए राकश रोहले। कदे न किनै हटाए जुद्ध मचाइकै। मिल तेई दानो आए हुण संघरि देखणा ॥ ३३ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दैती डंड उभारी नेड़ै आइकै। सिंघ करी असवारी दुरगा शोर सुण। खब्बै दसत उभारी गदा फिराइकै। सैना सभ संघारी स्रणवत-बीज दी। जण मद खाइ मदारी घूमन सूरमे। अगणत पाउ

वीर चढ उठे। सबने बरछियाँ पकडकर घोड़ो को नचाना शुरू कर दिया। बहुतो को, देवताओ की वाण-वर्षा मे मार गिराया गया ॥ ३१ ॥ ॥ पउडी ॥ भेरी और शख बजाकर दुर्गा ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया और तन-तनकर अपने धनुष से बाण चलाना शुरू कर दिया। जिसने भी दुर्गा के सामने हाथ उठाया, वह जीवित नही बचा। इस प्रकार चड और मुड दोनो को देवताओ की ओर से (दुर्गा ने) मार डाला ॥ ३२ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दैत्यो का मारा जाना सुनकर शुभ और निशुंभ अत्यत क्रोधित हो उठे और उन्होने अपने साथ उठने-बैठनेवाले उन दरवारी योद्धाओ को बुलाया, जिन्होने इन्द्र-जैसे देवो को कई बार युद्ध मे दौड़ा दिया; ऐसे दैत्यों को पल भर मे देवताओ ने मार गिराया यह जानकर उन राक्षसो ने अपने हाथ मले। अब राक्षस-राज शुभ का भेजा हुआ रक्तवीज चला। उसके वीरो ने लौहकवच और चमकीली टोपियाँ पहन रखी थी। वे सब युद्ध करने के लिए अधीर हो उठे। वे युद्ध से कभी पीछे नही हटनेवाले वीर थे। ये सभी दानव आगे बढे हैं, अब देखना है कैसा भीषण युद्ध होता है ॥ ३३ ॥ ॥ पउडी ॥ दैत्यो ने पास आकर शोर और तेज़ कर दिया तथा इधर देवी ने ध्वनि सुनकर सिह पर सवारी की। देवी ने बायें हाथ मे गदा उभारी और रक्तबीज की सब सेना का सहार कर दिया। शूर-वीर मैदान मे ऐसे वावले होकर घूम रहे हैं, मानो वे मद्यपान करके घूम

पसारी रुले अहाड़ विचि। जापै खेड खिडारी सुत्ते फागनूं ॥ ३४ ॥ ॥ पउड़ी ॥ स्रणवतबीज हकारे रहदे (मू०ग्रं०१२३) सूरमे। जोधे जेडु मुनारे दिस्सण खेत विचि। सभनी दसत उभारे तेगाँ धूहि कै। मारो मार पुकारे आए साम्हणे। संजाते ठणिकारे तेगी उब्भरे। घाट घड़नि ठठिआरे जाणि वणाइकै ॥ ३५ ॥ ॥ पउड़ी ॥ सट्ट पई जमधाणी दलाँ मुकाबला। घूमर बरगसताणी दल विचि घत्तिओ। सणे तुरा पलाणी डिग्गण सूरमे। उठि उठि मंगणि पाणी घाइल घूमदे। एवडु मार विहाणी उप्पर राकशाँ। बिज्जल जिउँ झरलाणी उट्ठी देवता ॥३६॥ ॥ पउड़ी ॥ चोबी धउस उभारी दलाँ मुकाबला। सभो सैना भारी पल विचि दानवी। दुरगा दानो मारे रोह बढाइकै। सिर विचि तेग वगाई स्रणवतबीज दे ॥ ३७ ॥ ॥ पउड़ी ॥ अगणत दानो भारे होए लोहुआ। जोधे जेडु मुनारे अंदरि खेत दै। दुरगा नो ललकारे आवण सामणे। दुरगा सभ संघारे राकश आँवदे। रतू दे परनाले तिन ते भुइ पए। उठि कारणिआरे

रहे हों। युद्ध मे कई पाँव पसारे पड़े हुए ऐसे लग रहे है जैसे खिलाडी होली खेलकर थककर सो गए हो ॥ ३४ ॥ ॥ पउडी ॥ बचे हुए शूरवीरों को रक्तबीज ने ललकारा। वे योद्धा युद्धस्थल मे ऐसे लग रहे थे मानो मीनारे खडी हो। उन सबने तलवारे खीचकर हाथ ऊपर उठाए और 'मार-मार' की पुकार के साथ (देवी के) सामने आ गए। लौह-कवचो पर तलवारो की झनकार उभर पड़ी और ऐसे लग रहा था मानो ठठेरा ठोंक-ठोककर बर्तन वना रहा हो ॥ ३५ ॥ ॥ पउड़ी ॥ नगाडो पर चोट पड़ी और युद्ध शुरू हो गया तथा सेना मे भगदड़ मच गई। घोडो और काठियों समेत शूरवीर गिर रहे है और घायल कराह-कराहकर पानी माँग रहे है। राक्षसों पर ऐसी मार पडी मानो देवताओ की ओर से उठकर विजली उन पर जा गिरी हो ॥ ३६ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दलो के सघर्ष ने नगाड़ो की ध्वनि को और तेज़ कर दिया तथा दानवो की सेना पल भर में नष्ट हो गई। दुर्गा ने एक ओर क्रोधित होकर दानवो को मारा तथा दूसरी ओर कुपित होकर रक्तबीज के सिर पर तलवार से वार किया ॥ ३७ ॥ ॥ पउड़ी ॥ अगणित भारी दानव लहूलुहान हो उठे और मीनारो-जितने बड़े-वडे असुर युद्धस्थल मे आकर दुर्गा को ललकारने लगे। दुर्गा ने आने वाले सभी राक्षसो का सहार कर दिया और उनके रक्त की धाराएँ धरती

राकश हड़हड़ाइ ॥ ३८ ॥ ॥ पउड़ी ॥ धगा संगली आली संघर वाइआ। बरछी बंबली आली सूरे संघरे। भेड़ि मचिआ वीराली दुरगा दानवीं। मार मची मुहराली अंदरि खेत दै। जण नट लत्थे छाली ढोलि बजाइकै। लोहू फाथी जाली लोथी जमधड़ी। घण विचि जिउँ छंछाली तेगाँ हसीआँ। घुंमर-आरि सिआली बणिआँ के जमाँ ॥ ३९ ॥ ॥ पउड़ी ॥ धग्गा सूलि बजाइआँ दलाँ मुकाबला। धूहि मिआनो लाइआँ जुआनी सूरमी। स्रणवतबीज बधाइआँ अगणत सूरताँ। दुरगा सउहे आइआँ रोह बढाइकै। सभनी आन वगाइआँ तेगाँ धूहि कै। दुरगा सभ बचाइआँ ढाल सँभाल कै। देवी आप चलाइआँ तकि तकि दानवी। लोहू नालि डुबाइआँ तेगाँ नंगिआँ। सारसुती जण न्हाइआँ मिलकै देविआँ। सभे मार गिराइआँ अंदरि खेत दै। तिदूँ फेरि सवाइआँ होइआँ सूरताँ ॥ ४० ॥ ॥ पउड़ी ॥ सूरी संघरि रचिआ ढोल संख

पर वहने लगी। (उसी रक्त-धारा मे से) पुनः राक्षस अट्टहास करके युद्ध के लिए उठ खड़े हुए ॥ ३८ ॥ ॥ पउड़ी ॥ जंजीरों से बाँधी हुई भेरियो की आवाज़ ने युद्ध को भीषण बना दिया और पताकाएँ लगी हुई बरछियाँ चलने लगी। दुर्गा और दानवों की सेना का भीषण युद्ध हुआ और रणस्थल मे मार-काट मच गई। वीर ऐसे उछल रहे हैं मानो नट उछलकर छलाँगे लगा रहे हो और कृपाणें ऐसे शरीरों और लोह-कवचों में फँसी पड़ी है मानो मछलियाँ जाल मे फँसी पड़ी हों। कृपाणो की चमचमाती मुस्कुराहट ऐसे लग रही है मानो बादल मे बिजली चमक रही हो। शोर ऐसा हो रहा है मानो सर्दी मे गीदड चिल्ला रहे हो, अथवा वणिक् की दुकान पर सौदा लेने-देनेवालो का शोर हो ॥ ३९ ॥ ॥ पउडी ॥ बडे नगाड़े की घड़घड़ाहट के साथ मुकाबला चल रहा है और म्यानो से खींच-खींचकर तलवारे शूरवीरो के शरीरो में मारी जा रही है। रक्तबीज ने अपनी शक्ल के अनेक दानव पैदा कर लिये और वे सभी क्रोधित होकर दुर्गा के सामने आ पहुँचे। वे तलवारो से वार करने लगे, जिन्हे दुर्गा ने अपनी ढाल सँभालते हुए बचाया। दुर्गा ने रक्त मे तलवारो को डुबाते हुए चुन-चुनकर दानवो पर वार किये। तलवारे ऐसी लग रही हैं मानो देवियाँ सरस्वती नदी मे स्नान करने आई हो। देवी ने रक्तबीज के सभी रूपो को मार गिराया, परन्तु पुनः उससे सवा गुना अधिक सूरते (रक्तबीज की) बन गईं ॥ ४० ॥ ॥ पउड़ी ॥ शूरमाओं ने ढोल,

नगारे वाइकै । चंड चितारी कालका मन बहुला रोसु बढाइकै । निकली मत्था फोड़िकै जण फते नीशाण बजाइकै । जाग सु जंमी जुद्ध नूं जरवाणा जंण मरड़ाइकै । दल विचि घेरा घत्तिआ (मू०ग्रं०१२४) जन शीह तुरिआ गणिणाइकै । आप विसूला होइआ तिहु लोकाँ ते खुनसाइकै । रोह सिधाइआँ चक्रपाण कर निंदा खड़ग उठाइकै । अगै राकश बैठे रोहले तीरी तेगी छहबर लाइकै । पकड़ पछाड़े राकशाँ दल दैता अंदरि जाइकै । बहु केसी पकड़ि पछाड़िअनि तिन अंदरि धूम रचाइकै । बडे बडे चुण सूरमे गहि कोटी दए चलाइकै । रण काली गुस्सा खाइकै ॥ ४१ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुहा कँधाराँ मुहि जुड़े अणिआरा चोइआँ । धूहि क्रिपानाँ तिक्खीआँ नाल लोहू धोइआँ । हूराँ स्रणवतबीज नूं घति घेरि खलोइआँ । लाड़ा देखन लाड़ीआँ चउगिरदै होइआँ ॥ ४२ ॥ ॥ पउड़ी ॥ चोबी धउसा पाइआँ दलाँ मुकाबला । दसती धूह नचाइआँ तेगाँ नंगिआँ । सूरिआँ दे तन लाइआँ गोशत गिद्धिआँ । बिद्धणराती

शंख और नगाड़े बजाकर युद्ध चालू रखा । चडी ने क्रोधित हो इधर कालिका का स्मरण किया जो कि सुनिश्चित जीत के प्रतीक के रूप में चडी का मस्तक फाड़कर प्रकट हुई । उसके पैदा होते ही युद्ध मे और तेजी आ गई और दैत्य और भी कोलाहल करने लगे । (दुर्गा और कालिका ने) दल को ऐसे घेर लिया है जैसे शेर ने पशुओं को घेर लिया हो । परमात्मा स्वयं त्रिलोकी पर क्रुद्ध हो क्षुब्धचित्त हो उठा । विष्णु की सभी शक्तियाँ राक्षसो को बुरा-भला कहते देवताओं की ओर से क्रोधित होकर चल निकली और आगे बढ़कर उन्होने देखा कि भयंकर राक्षस बाणों एवं कृपाणो की वर्षा बैठकर कर रहे हैं । शक्तियों ने राक्षसो के दलो मे घुसकर दैत्य को पकड़ पछाड़ा । काली ने क्रोधित होकर अनेको को केशों से पकड़कर पछाड़ दिया तथा कई शूरमाओ को चुन-चुनकर पकड़-पकड़कर उठाकर दूर फेंका है ॥ ४१ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दोनो सेनाएँ आमने-सामने हैं और तीरो की नोको से रक्त चू रहा है । तेज़ कृपाणो को निकालकर दुर्गा रक्त से धो रही है । ये कृपाणे ऐसे लग रही हैं, मानों रक्तबीज को अप्सराएँ घेरकर खड़ी हो या फिर दूल्हे को देखने के लिए स्त्रियाँ उसे घेरे खडी हो ॥ ४२ ॥ ॥ पउडी ॥ नगाड़ों पर चोटें पड़ रही है और मुकाबला जारी है । हाथो मे नंगी कृपाणे नृत्य कर रही है और इन मासप्रियाओं को शूरवीरो के तन मे घुसेड़ा जा रहा है । घोड़ो और मर्दों

आइआँ मरदाँ घोड़िआँ। जोगड़ीआँ मिलि धाइआँ लोहू मक्खणा। फउजाँ मार हटाइआँ देवाँ दानवाँ। भजदी कथा सुणाईआँ राजे सुंभ थै। भुई न पउणै पाइआँ बूँदाँ रकत दिआँ। काली खेत खपाइआँ सभे सूरताँ। बहुती सिरी बिहाइआँ घड़िआँ काल किआँ। जाणि न जाए माइआँ जूझे सूरमे ॥४३॥ ॥ पउड़ी ॥ सुंभ सुणी करहाली स्रणवतबीज दी। रण विचि किनै न झाली दुरगा आँवदी। बहुते बीर जटाली उट्ठे आख कै। चोटाँ पान तबाली जासन जुद्ध नूं। थरि थरि प्रिथमी चाली दलाँ चड़दिआँ। नाउ जिवे है हाली शहुदरी आउ विचि। धूड़ि उताहाँ घाली छड़ी तुरंगमाँ। जाणि पुकारू चाली धरती इंद्र थै ॥ ४४ ॥ ॥ पउड़ी ॥ आहरि मिलिआ आहरीआँ सैण सूरिआँ साजी। चल्ले सउहे दुरगशाह जण काबै हाजी। तीरी तेगी जमधड़ी रण वंडी भाजी। इक घाइल घूमन सूरमे जण मकतब काजी। इक बीर परोते बरछिए जिउँ झुक पउन

पर ये कालरात्रि बनकर आई है। रक्त पीनेवाली योगिनियाँ दौड़ रही है। देवो द्वारा दानवो की भगाई सेना ने राजा शुंभ को जाकर सुनाया कि रक्तबीज के रक्त की बूँदें धरती पर नही गिरने दी गयी और काली ने रक्तबीज के सभी रूपो को नष्ट कर डाला है। बहुत से लोगो पर यह समय कालरात्रि के समान बीता है और शूरवीर इतने बेहाल हो गए है कि माताएँ अपने पुत्रो को भी नही पहचान पा रही हैं ॥ ४३ ॥ ॥ पउड़ी ॥ शुभ ने रक्तबीज के अत का हाल सुना और जाना कि युद्ध मे दुर्गा के सम्मुख कोई नही टिक सका। उसी समय बहुत से जटाधारी वीर उठे और कहने लगे कि नगाड़ची नगाड़ो पर चोटे दे; हम युद्ध को जायँगे। अब इस दल की चढाई देखकर पृथ्वी भय से ऐसे थरथरा उठी जैसे विस्तृत नदी मे छोटी सी नाव कांप उठी हो। घोडो की चाल से धूल इस प्रकार ऊपर उडी है, मानो धरती स्वय इद्र के दरबार मे पुकार करने चल दी हो ॥ ४४ ॥ ॥ पउड़ी ॥ लड़ाई का अवसर देख रहे शूरमाओ को एक अच्छा उद्यम का अवसर मिल गया और उन्होने सेना को सुसज्जित किया। वे दुर्गा के सामने इस प्रकार झुड के झुड बनाकर चले मानो हाजी हज के लिए काबा को जा रहे हो। तीरो और तलवारो के माध्यम से रण में वीरो को निमन्त्रण दिया जा रहा है। शूरवीर घायल होकर ऐसे घूम रहे है, मानो अपने स्थान पर लोकचिन्ता से ग्रस्त काज़ी परेशान घूम रहे हों। वीर बरछियो मे पिरोये जाकर बरछियो को ऐसे झुका रहे है, जैसे पवन पेड़ की टहनियो को झुका देती हैं। कुछ दुर्गा के सामने क्रोधित

निवाजी। इक दुरगा सउहे खुनसकै खुनसाइन ताजी। इक धावन दुरगा सामणे जिउँ भुखिआए पाजी। कदे न रज्जे जुज्झ ते रज्ज होए राजी॥ ४५॥ ॥ पउड़ी॥ बज्जे संगलीआले संघर डोहरे। डहे जु खेत जटाले हाठाँ जोड़िकै। नेजे बंबली आले दिस्सन ओरड़े। (मू०ग्रं०१२५) चल्ले जाण जटाले नावण गंग नूं॥ ४६॥ ॥ पउड़ी॥ दुरगा अतै दानवी सूल होइआँ कंगाँ। वाछड़ घत्ती सूरिआँ विच खेत खतंगाँ। धूहि क्रिपाणा तिक्खीआँ बड लाहनि अंगाँ। पहिला दलाँ मिलंदिआँ भेड़ पइआ निहंगाँ॥ ४७॥ ॥ पउड़ी॥ ओरड़ फउजाँ आइआँ बीर चड़े कंधारी। सड़क मिआनो कढीआँ तिखीआँ तरवारी। कड़क उठे रण मच्चिआ वड्डे हंकारी। सिर धड़ बाहाँ गनले फुल जे है बाड़ी। जापे कटे बाढिआँ रुख चंदनि आरी॥४८॥ ॥ पउड़ी॥ दुहाँ कँधाराँ मुहि जुड़े जा सट्ट पई खरवार कउ। तक तक कैबरि दुरगशाह तक मारे भले जुझार कउ। पैदल मारे हाथीआँ सँग रथ गिरे असवार कउ। सोहन संजा बागड़ा

होकर घोड़ो को दौड़ाकर भूखे भेडियो के समान दौड़ रहे है। ये ऐसे वीर थे जो कभी भी रण से तृप्त नही हुए थे, परन्तु आज ये सब तृप्त हो रहे है॥ ४५॥ ॥ पउड़ी॥ युद्ध मे जजीरो से बँधे नगाड़े बज उठे है और पीठ से पीठ जोडकर जटाधारी दैत्य भिड़ रहे है। उनके हाथो मे पताकाओवाली बरछियाँ दिखाई दे रही है और वे ऐसे लग रहे है, मानो ऋषि गगास्नान को जा रहे हो॥ ४६॥ ॥ पउडी॥ दुर्गा और दानवों की सेनाएँ एक-दूसरे के सामने तीखे काँटो की तरह एक-दूसरे को चुभ रही है। शूरवीरो ने युद्धस्थल मे बाण-वर्षा की है और कृपाणे म्यान से निकालकर शत्रुओ के अगों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए है। दलो के आपस मे मिलते ही तलवारो से मारकाट प्रारम्भ हो गई॥ ४७॥ ॥ पउडी॥ इधर सेनाएं आयी और वृहद् एव बलशाली वीरो ने चढाई कर दी तथा खीचकर तलवारो को म्यानो से निकाल लिया। सभी क्रोधित हो उठे और इन अहंकारियो ने भीषण युद्ध प्रारम्भ कर दिया है। सिर, धड़ और भुजाएँ बगीचे मे टूटे हुए फूलो के समान पड़ी है और शरीर ऐसे कटे पड़े है, मानो बढई ने चदन के वृक्षो को टुकड़े-टुकड़े कर काट फेका हो॥ ४८॥ ॥ पउड़ी॥ जब नगाड़े पर चोट पड़ी तो दोनो दल भीषण रूप से भिड़ पड़े और दुर्गा ने लक्ष्य बाँधकर बड़े-बड़े जुझारू वीरो को बाण मारे। उसने पैदल, हाथी एव रथियो को मार गिराया। लौह-कवचो

जणु लग्गे फुल्ल अनार कउ। गुस्से आई कालका हथि सज्जे लै तरवार कउ। एदूं पारउ ओत पार हरिनाकशि कई हज़ार कउ। जिण इक्का रही कँधार कउ। सद रहमत तेरे वार कउ ॥ ४९ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुहाँ कँधाराँ मुहि जुड़े सट्ट पई जमधाण कउ। तद खिग नसुंभ नचाइआ डाल उपरि बरगसताण कउ। फड़ी बिलंद मँगाइओस फुरमाइस करि मुलतान कउ। गुस्से आई साम्हणे रण अंदरि घत्तण घाण कउ। अगै तेग वगाई दुरगशाह बढ्ढ सुंभन बही पलाण कउ। रड़की जाइ कै धरत कउ बढ्ढ पाखर बढ्ढ किकाण कउ। बीर पलाणो डिग्गिआ करि सिजदा सुंभ सुजाण कउ। शाबाश सलोणे खाणकउ। सदा शाबाश तेरे ताण कउ। तारीफाँ पान चबाण कउ। सद रहमत कैफाँ खाण कउ। सद रहमत तुरे नचाण कउ ॥५०॥ ॥ पउड़ी ॥ दुरगा अतै दानवी गहसंघरि कत्थे। ओरड़ उट्ठे सूरमे आ

मे तीरो की नोके ऐसी शोभायमान हो रही हैं, जैसे अनारों के पौधों मे लाल-लाल फूल लगे हो। दाये हाथ मे तलवार पकड़कर क्रोधित होकर कालिका आगे बढी है और उसके ऐसे स्वरूप ने हिरण्यकशिपु के समान बडे-बड़े कई हज़ार दैत्यो को मौत के घाट उतार दिया। अकेली दुर्गा ही सारी सेना को जीतती चली जा रही है। उसके भीषण प्रहारों को साधुवाद है ॥ ४९ ॥ ॥ पउडी ॥ फिर नगाड़े पर चोट पडी और दोनो सेनाएँ एक-दूसरे से जूझ उठी। तव निशुभ ने घोड़े पर भी कवच पहनाकर उसे नचा दिया। मुल्तान नरेश को कहकर उसने एक बडा धनुष मँगाया। इधर युद्धस्थल को लहू और चरबी के कीचड़ से भर देने के लिए दुर्गा आगे बढी। और उसने कृपाण खीचकर मारी जो निशुभ-समेत घोड़े की काठी को काटती हुई एव घोड़े के कवच-समेत घोडे को चीरती हुई धरती पर जा लगी (यहाँ "नसुभ" के स्थान पर कवि ने छद की लय के प्रवाह को बनाए रखने के लिए "सुभन" लिखा है)। वीर निशुंभ शुभ को प्रणाम करता हुआ धरती पर गिर पड़ा। निशुभ की निर्भयता एवं वीरता को देखता हुआ कवि कहता है कि हे वीर! तुम्हे भी शाबाश है, तेरे बल को भी शाबाश है। तुम्हारा अभय होकर पान चबाना भी तारीफ के लायक है। तुम्हारे वाण खाने को भी साधुवाद है और तुम्हारा घोड़े को अभय होकर नचाना भी तारीफ़ के काबिल है ॥ ५० ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुर्गा और दानवों ने घनघोर युद्ध किया और शूरवीर एक-दूसरे से आ भिड़े।

डाहे मत्थे। कट्ट तुफंगी कैबरी दल गाहि निकत्थे। देखनि जंग फरेशते असमानो लत्थे ॥ ५१ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुहाँ कँधाराँ मुह जुड़े दल घुरे नगारे। ओरड़ आए सूरमे सिरदार रणिआरे। लै कै तेगाँ बरछिआँ हथिआर उभारे। टोप पटेला पाखराँ गलि संज सवारे। लै के बरछी दुरगशाह बहु दानव मारे। चड़े रथी गज घोड़िईं मार भुइ तेडारे। जण हलवाई सीख नाल विन्ह वड़े उतारे (मू०ग्रं०१२६) ॥ ५२ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुहाँ कँधाराँ मुहि जुड़े नाल धउसा भारी। लई भगउती दुरगशाह बर जागन भारी। लाई राजे सुंभ नो रतु पीऐ पिआरी। सुंभ पलाणो डिग्गिआ उपमा बीचारी। डुब रतू नालहु निकली बरछी दुद्धारी। जाण रजादी उतरी पैन्ह सूही सारी ॥ ५३ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुरगा अते दानवी भेड़ पइआ सबाही। शस्त्र पजूते दुरगशाह गह सभनी बाही। सुंभ निसुंभ सँघारिआ वथ जेहे साही। फउजाँ राकशिआरीआँ

तलवारो और तीरों से दलों का मंथन किया गया और इस युद्ध को देखने के लिए व्योममंडल के फिरिश्ते भी चलकर पहुँचे ॥ ५१ ॥ ॥ पउड़ी ॥ नगाड़ो के बजने से दोनो ओर की सेनाएँ और उत्तेजित होकर लड़ने लगी और बड़-वड़े शूरवीर युद्ध मे शामिल हो गए। उन्होने तलवारो, बरछियो को पकड़कर उछाला और शरीरों पर शिरस्त्राण, कवच आदि भलीभाँति लगा लिये। दुर्गा ने बरछी से बहुत से दानवो को मारा और हाथी, घोड़ो पर चढनेवालो और पैदलो को नष्ट कर धराशायी कर दिया। बरछी से दुर्गा ने वीरो को ऐसे बीध दिया, जैसे लौह-शलाका को लेकर हलवाई पकौड़ो को बीधकर कड़ाही से बाहर निकालता है ॥ ५२ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दोनो सेनाओ का आमने-सामने नगाड़ो की चोट पर युद्ध चल रहा है और दुर्गा ने वज्र के समान अग्नि फेकनेवाली कृपाण को हाथ मे पकड़कर उसे शुभ का रक्त पिलाने के लिए शुभ पर चला दिया है। वह प्रेमिका के समान शुभ का रक्त पीने लगी और शुभ घोड़े की काठी से गिरकर नीचे आ पड़ा। रक्तरंजित बरछी जब शुंभ के शरीर से बाहर निकली है, तो कवि ने यह उपमा दी है कि वह ऐसी लग रही है, मानो राजकन्या लाल साडी पहनकर महल से बाहर निकली हो ॥५३॥ ॥ पउड़ी ॥ दुर्गा और दानवो का भीषण सग्राम हुआ और दुर्गा ने अपनी सभी भुजाओ मे बड़े-बड़े शस्त्र पकड़े हुए है। देवी ने शुभ-निशुंभ जैसे बलियो को मार गिराया है और असुरों की सेना यह दृश्य देखकर भीषण चीत्कार एवं विलाप कर रही है। शस्त्रो को फेर मुँह मे घास के

देखि रोवनि धाही । मोहि कुड़ूचे घाह दे छड्ड घोड़े राही । भजदे होए मारीअन मुड़ झाकन नाही ॥५४॥ ॥ पउड़ी ॥ सुंभ निसुंभ पठाइआ जम दे धाम नो । इंदर सद्द बुलाइआ राज अभखेखनो । सिर पर छत्र फिराइआ राजे इंद्र दै । चउदह लोकाँ छाइआ जसु जगमात दा । दुरगा पाठ बणाइआ सभे पउड़ीआँ । फेर न जूनी आइआ जिन इह गाइआ ॥ ५५ ॥

तिनके पकड़कर अपनी हार मानकर घोड़ो को छोड़कर दैत्य भाग खड़े हुए हैं । उन भागे जाते हुओ को भी मार पड़ रही है और वे फिर पलटकर पीछे नही देखते ॥ ५४ ॥ ॥ पउड़ी ॥ देवी ने शुभ और निशुभ को यमपुरी भेजकर इद्र को अभिषेक कर उसे राज देने के लिए बुलाया और उसके सिर पर छत्र धारण करवाया । इस प्रकार चौदह भुवनो मे जगत्माता का यश व्याप्त हो गया । यह दुर्गा-पाठ सभी 'पउडी' छदो मे रचा गया है, जिसने भी इसका गायन किया है वह आवागमन से मुक्त हो गया है ॥ ५५ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥

अथ गिआन प्रबोध ग्रंथ लिख्यते ॥

पातिशाही १० ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ त्व प्रसादि ॥

नमो नाथ पूरे सदा सिद्ध करमं । अछेदी अभेदी सदा एक धरमं । कलकं बिना निहकलंकी सरूपे । अछेदं अभेदं अखेदं अनूपे ॥ १ ॥ नमो लोक लोकेश्वरं लोक नाथे । सदैवं सदा सरब साथं अनाथे । नमो एक रूपं अनेकं सरूपे । सदा

ज्ञानप्रबोध ग्रंथ का लेखन

॥ भुजग प्रयात छद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ हे नाथ एव सम्पूर्ण सिद्धि कर्मों के स्वामी ! तुम्हें नमस्कार है । तुम अक्षय, अभेद तथा समरूप रहनेवाले निष्कलक हो । तुम अक्षय, अभेद, शोक-रहित एवं अनुपम हो ॥ १ ॥ हे लोकेश्वर एवं सर्वलोको के नाथ ! तुम्हे नमस्कार है । तुम

सरब शाहं सदा सरब भूपे ॥ २ ॥ अछेदं अभेदं अनामं अठामं । सदा सरबदा सिद्धदा बुद्धि धामं । अजंत्रं अमंत्रं अकंत्रं अभरमं । अखेदं अभेदं अछेदं अकरमं ॥ ३ ॥ अगाधे अबाधे अगंतं अनंतं । अलेखं अभेखं अभूतं अगंतं । न रंगं न रूपं न जातं न पातं । न सत्रो न मित्रो न पुत्रो न मातं ॥ ४ ॥ अभूतं अभंगं अभिखं भवानं । परेयं पुनीतं पवित्रं प्रधानं । अगंजे अभेजं अकामं अकरमं । अनंते बिअंते अभूमे (मू०ग्रं०१२७) अभरमं ॥ ५ ॥ नही जान जाई कछू रूप रेखं । कहा बासु ताको फिरै कउन भेखं । कहा नाम ताको कहा कै कहावै । कहा मै बखानो कहै मै न आवै ॥ ६ ॥ अजोनी अजै परम रूपी प्रधानै । अछेदी अभेदी अरूपी महानै । असाधे अगाधे अगंजुल गनीमे । अरंजुल अराधे रहाकुल रहीमे ॥ ७ ॥ सदा सरबदा सिद्ध दा बुद्धि दाता । नमो लोक लोकेश्वरं लोक ज्ञाता । अभेदी अभै आदि रूपं अनंत । अछेदी अछै आदि

नित्य, सबके साथी एवं सबके नाथ हो । हे एक स्वरूप मे तथा अनेकों स्वरूपों मे दिखाई देनेवाले, सबके स्वामी तथा सबके सम्राट् ! तुम्हें नमस्कार है ॥ २ ॥ तुम अक्षय, अभेद, अनाम, स्थानातीत, सर्वसिद्धियों के स्वामी, बुद्धि के सागर, यन्त्रो, मंत्रो, क्रियाओ एवं भ्रमो से परे, शोकातीत, भेदातीत, अक्षय तथा निष्कर्म हो ॥ ३ ॥ तुम अगाध, अबाध, गतियों से परे, अनन्त, अगोचर, निर्वेश, अभूत एवं निराकार हो । तुम्हारा न रग है, न रूप, न जाति, न शत्रु, न मित्र, न पुत्र तथा न ही माता है ॥ ४ ॥ तुम अभूत, अभंजनशील एवं किसी से भी कुछ न माँगनेवाले, सर्वातीत, पुनीत, पवित्र तथा सबसे प्रधान हो । तुम अनश्वर, अभंजनशील, कामनातीत निष्कर्म, अनंत, व्यापक तथा भ्रम-रहित हो ॥ ५ ॥ तुम्हारे आकार-प्रकार के बारे में नही जाना जा सकता । तुम्हारा कौन सा वेष तथा आवास है और तुम कहाँ किस नाम से जाने जाते हो, इसका मैं क्या वर्णन करूँ ? मुझसे यह वर्णन नही हो सकता ॥ ६ ॥ हे प्रभु ! तुम अयोनि, अजेय तथा सारे संसार का परम रूप हो । तुम अक्षय, अभेद, अरूप, महान, असाध्य, अगाध एव शत्रुओं द्वारा नष्ट न होनेवाले हो । तुम सब आराधनाओ से परे तथा दु खों की फाँस को काटनेवाले कृपालु हो ॥ ७ ॥ तुम सर्वदा सिद्धि एवं बुद्धिप्रदाता हो तथा हे लोक-लोकेश्वर तथा संसार के सभी रहस्यो के वेत्ता ! तुम्हे नमस्कार है । तुम भेदातीत, अभय एवं आदिस्वरूप हो तथा अक्षय एवं घोर कठिनाई से भी प्राप्त न हो सकने

अद्वै दुरंतं ॥ ८ ॥ ॥ नराज छंद ॥ अनंत आदि देव हैं। बिअंत भरम भेव हैं। अगाधि ब्याधि नास हैं। सदेव सरब पास हैं ॥ १ ॥ ९ ॥ बचित्र चित्र चाप हैं। अखंड दुष्ट खाप हैं। अभेद आदि काल हैं। सदेव सरब पाल हैं ॥ २ ॥ १० ॥ अखंड चंड रूप हैं। प्रचंड सरब सूप हैं। कि काल हूँ के काल हैं। सदैव रच्छपाल हैं ॥ ३ ॥ ११ ॥ क्रिपाल द्याल रूप हैं। सदेव सरब भूप हैं। अनंत सरब आस हैं। परेव परम पास हैं ॥ ४ ॥ १२ ॥ अद्रिष्ट अंत्र ध्यान हैं। सदेव सरब मान हैं। क्रिपाल कालहीन हैं। सदेव साध अधीन हैं ॥ ५ ॥ १३ ॥ भजस तुयं। भजस तुयं ॥ रहाउ ॥ अगाधि ब्याधि नासनं। परेय परम उपाशनं। त्रिकाल लोक मान हैं। सदेव पुरख प्रधान हैं ॥ ६ ॥ १४ ॥ तथस तुयं। तथस तुयं ॥ रहाउ ॥ क्रिपाल द्याल करम हैं। अगंज भंज भरम हैं। त्रिकाल लोकपाल हैं। सदेव सरब

वाले अद्वैतस्वरूप हो ॥ ८ ॥ ॥ नराज छंद ॥ आदिदेव परमात्मा अनंत हैं तथा ससार मे उससे सबधित भ्रम भी अनत है। वह परमात्मा गम्भीर व्याधियों का नाशक है तथा सर्वदा सबके पास बना रहनेवाला भी है ॥ १ ॥ ९ ॥ उसका स्वरूप विभिन्न प्रकार की चित्रकला का स्वरूप है और वह भयकर शत्रुओ का नाश करनेवाला है। वह आदिकाल से ही अभेद है तथा सर्वदा सबका पोषण करनेवाला है ॥ २ ॥ १० ॥ वह प्रचड रूप से अखड ज्योतिस्वरूप है और सबको अपने प्रचंड तेज से प्रकाशित करनेवाला है। वह काल का भी काल है और सर्वदा सबका रक्षक है ॥ ३ ॥ ११ ॥ वह कृपालु दयालुता का रूप है तथा सबका सम्राट् है। वह अनन्त जीवो की आशा है तथा दूर से दूर होता हुआ भी सबके परम समीप है ॥ ४ ॥ १२ ॥ वह प्रभु अदृष्ट एवं सबके ध्यान मे सदैव बना रहनेवाला, सबका स्वाभिमान है। वह कृपालु कालातीत है, परन्तु सर्वदा सन्तों के अधीन है ॥ ५ ॥ १३ ॥ सदैव उसी का भजन करो ॥ रहाउ ॥ वह प्रभु भीषण व्याधियो का नाशक एव दूर-से-दूर होने के बावजूद सबकी उपासना का परम लक्ष्य है। वह तीनों कालों मे लोगो द्वारा मान्य है तथा सर्वदा प्रधान (तत्त्व) है ॥ ६ ॥ १४ ॥ वह तू ही है, वह तू ही है ॥ रहाउ ॥ वह कृपालु दयालुता के कर्म करता है, अभंजनशील तथा भ्रमो का नाशक है। तीनो कालों में वह लोकपाल परमात्मा सर्वदा दयालु बना रहता है ॥ ७ ॥ १५ ॥ उसी का जाप

द्याल हैं ॥ ७ ॥ १५ ॥ जपस तुयं । जपस तुयं ॥ रहाउ ॥ महान मोन मान हैं । परेव परम प्रधान हैं । पुरान प्रेत नासनं । सदेव सरब पासनं ॥ ८ ॥ १६ ॥ प्रचंड अखंड मंडली । उदंड राज सु थली । जगंत जोति ज्वाल का । जलंत दीपमाल का ॥ ९ ॥ १७ ॥ क्रिपाल द्याल लोचनं । मचंक बाण मोचनं । सिरं किरीट धारियं । दिनेश क्रित हारियं ॥ १० ॥ १८ ॥ बिसाल लाल लोचनं । मनोज मान मोचनं । सुभंत सीस सु प्रभा । चक्रंत चारु चंद्रका ॥ ११ ॥ ॥ १९ ॥ जगंत जोत ज्वालका । छकंत राज सु प्रभा । जगंत जोति जैतसी । बदत (मू०ग्रं०१२८) क्रित ईसुरी ॥ १२ ॥ ॥ २० ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ अनकाद सरूपं अमित बिभूतं अचल सरूपं बिसु करणं । जग जोति प्रकासं आदि अनासं अमित अगासं सब भरणं । अनगंज अकालं बिसु प्रतिपालं दीन दिआलं सुभ करणं । आनंद सरूपं अनहदि रूपं

करो ॥ रहाउ ॥ वह शान्त रहनेवाला महान है तथा परे-से-परे अवस्थित परमप्रधान है । वह भयंकर प्रेतो का नाशक है तथा सर्वदा सबके समीप बसनेवाला है ॥ ८ ॥ १६ ॥ अखड मंडलो मे निवास करने वाला, वह प्रचण्ड रूप से प्रकाशित होनेवाला, भव्य स्थल पर विराजमान तथा निडर है । उसकी ज्योति की ज्वाला दीपमालिका की तरह जलती रहती है ॥९॥१७॥ उसके कृपालु लोचन सदैव दयालु हैं और वह कामदेव के बाणो को नष्ट करनेवाला है । उसने सिर पर सुन्दर मुकुट धारण कर रखा है तथा उसके कृत्यो को देखकर सूर्य भी लज्जित होता है ॥१०॥१८॥ उसके विशाल लाल नेत्र कामदेव का भी दर्प चूर करनेवाले है तथा उसके शीश की सुप्रभा को देखकर चन्द्रमा की सुन्दर किरणे भी चकित हो जाती है ॥ ११ ॥ १९ ॥ उसकी जलती हुई ज्योति को देखकर उसकी राज्य-सभा (विश्व) परम आनन्द को प्राप्त करती है । उसी की परम ज्योति की पार्वती भी वंदना करती है ॥ १२ ॥ २० ॥ ॥ त्रिभगी छद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ दुःखो से रहित, अपरिमित विभूतियो के स्वामी, नित्यस्वरूप वाले हे प्रभु ! तुम विश्व के मूल कारण हो । तुम आदिकाल से अनश्वर हो और तुम्हारी ज्योति जगत को प्रकाशित करती चली आ रही है तथा संपूर्ण आकाश को भरे हुए है। तुम अभजनशील, कालातीत, विश्व-पालक, दीनदयालु एव शुभकर्मो के कर्ता हो। हे आनन्द एव अनहद-स्वरूप अपरिमित विभूतियो के प्रतीक परमात्मा ! मैं तुम्हारा शरणागत

अमित बिभूतं तव सरणं ॥ १ ॥ २१ ॥ बिस्वंभर भरणं जगत प्रकरणं अधरण धरणं सिष्ट करं। आनंद सरूपी अनहृद रूपी अमित बिभूती तेज बरं। अनखंड प्रतापं सभ जग थापं अलख अतापं बिस्सु करं। अद्वै अबिनासी तेज प्रकासी सरब उदासी एक हरं ॥ २ ॥ २२ ॥ अनखंड अमंडं तेज प्रचंडं जोति उदंडं अमित मतं। अनभै अनगाधं अलख अबाधं बिस्पु प्रसाधं अमित गतं। आनंद सरूपी अनहृद रूपी अचल बिभूती भव तरणं। अनगाधि अबाधं जगत प्रसाध सरब अराधं तव शरणं ॥ ३ ॥ २३ ॥ अकलंक अबाधं बिस्सु प्रसाधं जगत अराधं भव नासं। बिसिअंभर भरणं किलविख हरणं पतत उधरणं सभ साथं। अनाथन नाथे अक्रित अगाथे अमित अनाथे दुख हरणं। अगज अबिनासी जोति प्रकासी जगत प्रणासी तुय सरणं ॥ ४ ॥ २४ ॥ ॥ कलस ॥ अमित तेज जग जोति प्रकासी। आदि अछेद अछै अबिनासी। परम तत्त परमार्थ

हूँ ॥ १ ॥ २१ ॥ हे प्रभु ! तुम विश्व के भरण-पोषण करनेवाले, जगत के कारण, निरालम्बो के आश्रय एव सृष्टि के कर्ता हो। हे आनद एव अनहद के स्वरूप ! तुम अनत विभूतियो के स्वामी परम तेजवान हो। सारे विश्व की स्थापना करनेवाले अखड प्रतापी हे ईश्वर ! तुम विश्व के कर्ता, अद्वैत, अविनाशी, प्रकाशमान, निर्लिप्त, एक ही परमात्मा हो ॥ २ ॥ २२ ॥ तुम अखड, अमडनशील, प्रचड ज्योति एवं तेज वाले अपरिमित बुद्धि के स्वामी हो। तुम अभय, अवाध, विश्व के लिए साध्य एवं अनत गतिशील हो। हे प्रभु ! तुम आनद एव अनहृदस्वरूप हो, अचल विभूतियो के स्वामी तथा विश्व के तारणहार हो। हे परमात्मा ! तुम अगाध, अबाध, विश्व की चेतना का लक्ष्य एव सबके आराध्य हो। मैं तुम्हारा शरणागत हूँ ॥ ३ ॥ २३ ॥ हे विश्व के लिए साधना योग्य निष्कलंक, अबाध, जगत् के आराध्यदेव तथा कष्टो का नाश करनेवाले, विश्व का पोषण करने वाले, क्लेशो का नाश करनेवाले, पतितो का उद्धार करनेवाले परमात्मा तुम सबके साथ बने रहनेवाले हो। हे अनाथो के नाथ, सभी क्रियाओ से परे सभी कथाओ से परे तुम अमित दु:खो को दूर करनेवाले हो। अभजनशील, अविनाशी, प्रकाशमान ज्योति तथा जगत् के संहारक प्रभु ! मैं तुम्हारी शरण मे हूँ ॥ ४ ॥ २४ ॥ ॥ कलस (छद) ॥ हे अपरिमित तेज वाले तथा अपने ज्योति से जगत को प्रकाशित करनेवाले प्रभु आदि, अक्षय एव अविनाशी हो। तुम परमतत्त्व एव परमार्थ का मार्ग प्रकाशित

प्रकासी। आदि सरूप अखंड उदासी ॥५॥२५॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ अखंड उदासी परम प्रकासी आदि अनासी बिस्व करं। जगतावल करता जगत प्रहरता सभ जग भरता सिद्ध भरं। अच्छै अबिनासी तेज प्रकासी रूप सुरासी सरब छितं। आनंद सरूपी अनहद रूपी अलख बिभूती अमित गतं ॥ ६ ॥ २६ ॥ ॥ कलस ॥ आदि अभै अनगाधि सरूपं। राग रंगि जिह रेख न रूपं। रंक भयो रावत कहुँ भूपं। कहुँ समुंद सरता कहुँ कूपं ॥ ७ ॥ २७ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ सरता कहुँ कूपं समुद सरूपं अलख बिभूतं अमित गतं। अद्वै अबिनासी परम प्रकासी तेज सुरासी अक्रित क्रितं। जिह रूप न रेखं अलख अभेखं अमित अद्वैखं सरब मई। सभ किलविख हरणं पतित उधरणं असरणि सरणं एक दई ॥ ८ ॥ २८ ॥ ॥ कलस ॥ (मू०ग्रं०१२९) आजानुबाहु सारं कर धरणं। अमित जोति जग जोत प्रकरणं। खड़ग पाण खल दल बल हरणं। महाबाहु बिश्वंभर

करनेवाले हो तथा तुम सबका परमस्वरूप होते हुए भी सबसे निर्लिप्त हो ॥ ५ ॥ २५ ॥ ॥ त्रिभगी छद ॥ हे प्रभु! तुम निरन्तर तटस्थ, परम-प्रकाश, आदि-अनश्वर एवं विश्वकर्ता हो। जगत के कारण, सहारक एवं पोषणकर्ता तथा सभी सिद्धियो के भडार हो। तुम अक्षय, अविनाशी, तेजस्वी एव सारी पृथ्वी की रूपराशि हो। हे प्रभु! तुम ही आनन्द, अनहद-स्वरूप, अदृश्य विभूतिस्वरूप एव अपरिमित गतियो के स्वामी हो ॥ ६ ॥ २६ ॥ ॥ कलस ॥ हे प्रभु! तुम आदिकारण, अभय एवं गम्भीर स्वरूप वाले हो। तुम्हे राग-रग, आकार-प्रकार से कोई सरोकार नही। कही तुम भिखारी हो तथा कही तुम ही राजा के स्वरूप मे शोभायमान हो। कही तुम विशाल समुद्र हो, कही तुम नदी हो तथा कही तुम ही एक छोटे से कुएँ के समान हो ॥७॥२७॥ ॥ त्रिभगी छद ॥ कही तुम कूप, समुद्र, सरिता एव अदृश्य विभूतिस्वरूप अनत रूप से गतिशील हो। तुम अद्वैत, अविनाशी, परम प्रकाशमान, तेज-राशि एव निष्कर्म हो। जिसका रूप, आकार, वेश, शत्रु, कोई नही है और जो अनन्त रूप से सर्वमय है, वह सर्वदु:खहर्ता, पतितो के उद्धार करनेवाले निरालम्बो को शरण देनेवाले एक परमात्मा हो है ॥ ८ ॥ २८ ॥ ॥ कलस ॥ वह लम्बी भुजाओ वाला शस्त्रधारी, अपरिमित ज्योति वाला सारे विश्व के कारणो का कारण है। वह खडग को धारण कर दुष्टो को बलहीन करनेवाला महाबाहु एव विश्व का भरण-पोषण करनेवाला है ॥ ९ ॥ २९ ॥

भरणं ॥९॥२९॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ खल दल बल हरणं दुष्ट बिडरणं असरण सरणं अमित गतं। चंचल चख चारण मच्छ बिडारण पाप प्रहारण अमित मतं। आजान सु बाहं शाहन शाहं महिमा माहं सरब मई। जल थल बन रहिता बन त्रिनि कहिता खल दलि दहिता सु नरि सही॥१०॥३०॥ ॥ कलस ॥ अति बलिष्ट दल दुष्ट निकंदन। अमित प्रताप सगल जग बंदन। सोहत चार चित्र कर चंदन। पाप प्रहरन दुष्ट दल दंडन॥११॥३१॥ ॥ छपै छंद॥ बेद भेद नहि लखैं ब्रहमु ब्रहमा नही बुज्झै। ब्यास परासुर सुक सनादि शिव अंतु न सुज्झै। सनतिकुअर सनकादि सरब जउ समा न पावहि। लख लखमी लख बिशन किशन कई नेत बतावहि। असंभ रूप अनभै प्रभा अति बलिष्ट जलि थलि करण। अचुत अनंत अद्वै अमित नाथ निरंजन तव शरण॥१॥३२॥ अचुत अभै अभेद अमित आखंड अतुल बल। अटल अनंत अनादि अखै

॥ त्रिभगी छद ॥ दुष्टो के बल को हरनेवाले, शत्रुओ को नष्ट करनेवाले अनन्त रूपो से गतिशील प्रभु! तुम ही हो। तुम्हारे चंचल नेत्र मछलियों की चचलता को भी मात देनेवाले है। तुम अपने अपरिमित बुद्धि-कौशल से पापो का नाश करनेवाले हो। हे प्रभु! तुम लम्बी भुजाओ वाले शहशाह हो, तुम्हारी महिमा सर्वत्र व्याप्त है। तुम जल, स्थल आदि मे सर्वत्र व्याप्त हो और वन, तृण सब तेरा यही गुणानुवाद कर रहे है कि तुम ही शत्रुओ के दलो का नाश करनेवाले परमपुरुष हो॥१०॥३०॥ ॥ कलस ॥ हे परमात्मा! तुम अत्यन्त बलवान और दुष्टो के दलों का खडन करनेवाले हो। तुम अनन्त प्रतापशाली और सपूर्ण जगत के लिए वदनीय हो। प्रभु की चन्द्रमा के समान सुन्दर चित्रकारी शोभायमान लगती है तथा हे प्रभु! तुम ही पापो का हरण करनेवाले तथा दुष्टो को दडित करने वाले हो॥११॥३१॥ ॥ छप्पय छद ॥ ब्रह्म का रहस्य वेद, ब्रह्मा, व्यास, पराशर, शुक, सनकादि तथा शिव भी नही जान सके। सनत्कुमार आदि भी उसकी प्राप्ति के समय का वर्णन नही कर सकते। लक्ष्मी, लाखों विष्णु तथा कृष्ण उसे नेति, नेति कहते है। वह स्वय से उद्भूत, अभय, प्रभायुक्त, अतिबलशाली एवं जल-स्थल का निमित्त एव उपादान कारण है। हे प्रभु! तुम अच्युत, अनन्त, अद्वैत, अपरिमित, नाथो के नाथ, निरजन हो, मैं तुम्हारा शरणागत हूँ॥१॥३२॥ हे प्रभु! तुम अटल, अभय, अद्वैत, अखंड एव अतुल बलशाली हो। तुम अनन्त, अनादि, अक्षय, अखण्ड एव प्रबल शक्तियो के स्वामी हो। तुम अपरिमित तौल वाले,

आखंड प्रबल दल। अमित अमित अनतोल अभू अनभेव अभंजन। अनबिकार आतम सरूप सुर नर मुन रंजन। अबिकार रूप अन भै सदा मुन जन गन बंदत चरन। भव भरन करन दुख दोख हरन अति प्रताप भ्रम भै हरन ॥२॥३३॥
॥ छपै छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ मुख मंडल परिलसत जोति उदोत अमित गत। जटित जोत जगमगत लजत लख कोटि निखतिपति। चक्रवरति चक्रवै चक्रत चउचक्र करि धरि। पदमनाथ पदमाछ नवल नाराइण नरहरि। कालख बिहंत किलबिख हरण सुर नर मुन बंदत चरण। खंडण अखंत मंडण अभै नमो नाथ भव भै हरण॥ ३ ॥ ३४ ॥
॥ छपै छंद ॥ नमो नाथ न्रिद्दाइ नमो निम रूप निरंजन। अगंजाण अगजण अभंज अनभेद अभंजन। अछै अखै अबिकार अभै अनभिज्ज अभेदन। अखै दान खेदन अखिज्ज अनछिद्र अछेदन। आजानबाहु सारंगधर (मू०ग्रं०१३०) खड़ग पाण दुरजन दलण। नर वर नरेश नाइक न्रिपणि नमो नवल जल

अजन्मा, अभेद एव अभजनशील हो। हे प्रभु! तुम निर्विकार आत्मस्वरूप एव सुर, नर तथा मुनियो की प्रसन्नता मे वृद्धि करनेवाले हो। हे विकारों से परे प्रभु पिता! मुनिगण सदैव तुम्हारी चरण-वंदना करते है और तुम ससार के पोषक, दु:ख-दोषो के हर्ता अतिप्रतापी तथा भ्रम और भय को दूर करनेवाले हो॥ २ ॥ ३३ ॥ ॥ छप्पय छंद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ अपरिमित गतियुक्त ज्योति तुम्हारे मुखमडल पर शोभित है और यह ज्योति करोड़ो चन्द्रमाओं की ज्योति के समान लग रही है। कालचक्र को धारण किए हुए तुम्हे देखकर बडे चक्रवर्ती सम्राट् चकित हो उठते है। तुम ही पद्मनाथ विष्णु एव पद्म-नेत्रो वाली लक्ष्मी हो। तुम ही नारायण एवं हरिस्वरूप नर हो। तुम समस्त कालिमाओ को नष्ट करनेवाले, विकारो के हर्ता हो और सुर, नर, मुनि आदि तुम्हारी ही चरण-वंदना करते हैं। तुम ही अखड माने जानेवालो का खण्डन कर उन्हे पुन: मडित कर देनेवाले अभय हो। हे भयहरण नाथ! तुम्हे मेरा नमस्कार है॥ ३ ॥ ३४ ॥
॥ छप्पय छद ॥ हे दयालु! विनम्रता के स्वरूप निरंजननाथ! तुम्हे नमस्कार है। हे अभजनशील एवं अभेद प्रभु! तुम्हे नमस्कार है। हे अक्षय दानी, अविकार, नष्ट न होनेवाले, छिद्रातीत प्रभु! तुम्हे नमस्कार है। हे आजानबाहु, धनुष एव खड़ग को धारण कर दुर्जनो को नष्ट करनेवाले, नरेश, नायक, जल-स्थल सर्वत्र रमण करनेवाले प्रभु! तुम्हे नमस्कार

थल रवण ॥ ४ ॥ ३५ ॥ दीन द्याल दुख हरण दुरत हंता दुख खंडण। महाँ मोन मन हरन मदन मूरत मह मंडन। अमित तेज अबिकार अखै आभंज अमित बल। निरभंज निरभउ निरवैर निरजुर न्रिप जल थल। अच्छै सरूप अच्छू अछित अछै अछान अच्छै अछर। अद्वै सरूप अदिय अमर अभिबंदत सुर नर असुर ॥ ५ ॥ ३६ ॥ कुल कलंक करि हीन क्रिपा सागर करुणाकर। करण कारण समरत्थ क्रिपा की सूरत क्रित धर। काल करम कर हीन क्रिआ जिह कोइ न बुज्झै। कहा कहै कह करै कहा कालन कै सुज्झै। कंजलक नैन कंबू ग्रीवहि कटि केहर कुंजर गवन। कदली कुरंक करपूर गत बिन अकाल दुज्जो कवन ॥ ६ ॥ ३७ ॥ ॥ छपै छंद ॥ अलख अरूप अलेख अभै अनभूत अभंजन। आदि पुरख अबिकार अजै अनगाध अगंजन। निरबिकार निरजुर सरूप निरद्वैख निरंजन। अभजान भंजन अनभेद अनभूत अभंजन। शाहान शाह सुंदर सुमत बड सरूप वडवै बखत। कोटिक

है ॥ ४ ॥ ३५ ॥ तुम दीनदयालु, दुःखहर्ता, दुःख एवं दुर्बुद्धि के नाशक, परम शान्त, मनोहर कामदेव धरती के कर्ता हो। तुम अपरिमित तेजस्वी, अविकारी एव अक्षय बलशाली हो। तुम कभी भी न टूट सकनेवाले, अभय, शत्रुता-रहित जल-स्थल के अधिपति हो। हे प्रभु! तुम अक्षयस्वरूप, कभी भी स्पर्श न किए जा सकनेवाले अक्षर (ब्रह्म) हो; तुम ही अद्वैत, दिव्य अमर हो और सुर, नर, असुर सब तेरी ही वदना करते हैं॥ ५ ॥ ३६ ॥ समस्त लोगो को कलको से दूर करनेवाले कृपासागर! तुम करुणा करनेवाले हो। तुम ही करण, कारण समर्थ कृपा की मूर्ति हो। तुम काल, कर्म एव करो से रहित हो, परन्तु फिर भी तुम्हारी क्रियाओ का रहस्य कोई नही जान सकता। किसे पता है कि कब तुम क्या कहोगे और क्या करोगे। तुम कमलनयन, शख-ग्रीवा (गर्दन), सिंह के समान कमर वाले और मस्त हाथी की चालवाले हो। तुम्हारी जँघाएँ केले के समान, गति हिरण के समान, सुगन्ध कपूर के समान है। हे अकाल (पुरुष)! इन गुणो वाला तुम्हारे सिवा अन्य कौन हो सकता है ॥ ६ ॥ ३७ ॥ ॥ छप्पय छद ॥ हे प्रभु! तुम अदृश्य, अरूप, अलेख, अभय, अभूत, अभंजन, आदिपुरुष, निर्विकार, अजय, अगाध एव अविनाशी हो। तुम अविकारी, सुन्दर स्वरूप वाले, द्वेषरहित, निरजन (कालिमाओ से रहित) हो। न नष्ट हो सकनेवालो के नाशक, अभेद, भूतातीत एवं अनश्वर हो। तुम सम्राटो के सम्राट्, सुन्दर

प्रताप भूअ मान जिम तपत तेज इसथित तखत ॥ ७ ॥ ३८ ॥
॥ छपै छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ चक्रत चार चक्रवै चक्रत
चउकुंट चवरगन । कोट सूर सम तेज तेज नही दून चवरगन ।
कोट चंद चक परै तुल्ल नही तेज बिचारत । ब्यास परासर
ब्रहम भेद नहि बेद उचारत । शाहान शाह साहिब सुघरि
अति प्रताप सुंदर सबल । राजान राज साहिब सबल अमित
तेज अच्छै अछल ॥८॥३९॥ ॥ कबितु ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ गह्यो
जो न जाइ सो अगाह कै कै गाइअतु छेद्यो जो न जाइ सो
अछेद कै पछानिऐ । गंज्यो जो न जाइ सो अगंज कै कै
जानिअतु भंज्यो जो न जाइ सो अभंज कै कै मानिऐ । साध्यो
जो न जाइ सो असाधि कै कै साध कर छल्यो जो न जाइ सो
अछल कै प्रमानिऐ । मंत्र मै न आवै सो अमंत्र कै कै मानु
मन जंत्र मै न आवै सो अजंत्र कै कै जानिऐ ॥ १ ॥ ४० ॥
॥ कबितु ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ जाल मै न आवै सो अजात कै कै
जानु जीअ (मू०ग्रं०१३१) पात मै न आवै सो अपात कै बुलाइऐ ।

सुमति एवं विराट् स्वरूप वाले दानी हो । करोड़ो सूर्यों का तेज लेकर
तुम अपने सिंहासन पर विराजमान हो ॥ ७ ॥ ३८ ॥ ॥ छप्पय छद ॥
॥ तेरी कृपा से ॥ चारो दिशाएँ, सुन्दर चक्रवर्ती राजा तुम्हारे सौन्दर्य को
देखकर आश्चर्यचकित हैं । करोड़ो सूर्यो से भी दूना, चौगुना तेज तुम्हारे
पास है । तुम्हारे तेज का विचार करोड़ो चन्द्रमा भी नही कर सकते हैं ।
व्यास, पराशर ऋषि, वेद आदि भी ब्रह्म के रहस्य का उच्चारण नही कर
सकते । तुम सम्राटो के सम्राट् अति सुन्दर एव बलशाली हो । तुम अमित
तेज वाले, अक्षय एवं किसी के द्वारा भी न छले जानेवाले हो ॥ ८ ॥ ३९ ॥
॥ कवित्त ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ जिसको पकड़ा न जा सके उसे अगम्य
एवं जिसका भेदन न किया जा सके उसे अभेद के नाम से जाना जाता है ।
जिसका नाश न हो सके उसे अनश्वर तथा जिसको तोड़कर विभक्त न
किया जा सके उसे अभजन के नाम से जाना जाता है । जिसकी साधना
न हो सके उसे असाध्य तथा जिसे छला न जा सके उसे अछल के नाम से
जाना जाता है । जो मन्त्रो से वश मे नही आता उसे मन्त्रातीत तथा जो
किसी यन्त्र से वश मे नही आता उसे सब यन्त्रों से परे जाना जाता
है ॥ १ ॥ ४० ॥ ॥ कवित्त ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ हे मन ! जो किसी
जाति मे नही आता उसे अजाति समझ और जो किसी भी पंक्ति मे नही
बांधा जा सकता उसे अपांति के नाम से पुकारा जाता है । जो सब भेदों

भेद मै न आवै सो अभेद कै कै भाखिअतु छेद्यो जो न जाइ सो अछेद कै सुनाइऐ। खंड्यो जो न जाइ सो अखंड जू को ख्यालु कीजै ख्याल मै न आवै गम्मु ताको सदा खाइऐ। जंत्र मै न आवै सो अजत्र कै कै जापिअतु ध्यान मै न आवै ताको ध्यानु कीजै ध्याइऐ॥ २॥ ४१॥ ॥ कबितु॥ ॥ त्व प्रसादि॥ छत्र-धारी छत्रीपति छैलरूप छितनाथ छौणी कर छाइआ बर छत्रीपत गाइऐ। बिस्वनाथ बिस्वंभर बेदनाथ बाला कर बाजीगरि बान धारी बंधन बताइऐ। निउली करम दूधाधारी बिद्याधर ब्रहमचारी ध्यान को लगावै नैक ध्यान हूँ न पाइऐ। राजन के राजा महाराजन के महाराजा ऐसो राज छोडि अउर दूजा कउन ध्याइऐ॥ ३॥ ४२॥ ॥ कबितु॥ ॥ त्व प्रसादि॥ जुद्ध के जितइआ रंगभूम के भवइआ भारभूम के मिटइआ नाथ तीन लोक गाइऐ। काहू के तनइआ है न मइआ जा के भइआ कोऊ छउनी हू के छइआ छोड का सिउ प्रीत

से परे है उसे अभेद के नाम से और जो छेदा न जा सके उसे अछेद के नाम से जाना जाता है। जिसका खडन नही हो सकता, जो एक रस है, उस अखंड के नाम से उसका ध्यान करो और जो विचारातीत है सदैव उसी का स्मरण करो। जो यन्त्रो मे नही बँधता, उस अयन्त्र का जाप करना चाहिए और जो सब मानसिक चेष्टाओ (ध्यानो) से परे है उसका सदैव ध्यान कीजिए॥ २॥ ४१॥ ॥ कवित्त॥ ॥ तेरी कृपा से॥ उस परमात्मा को छत्नधारी, सुन्दर स्वरूप वाला, पृथ्वीपति छत्रनाथ के नाम से जाना जाता है। वही विश्वनाथ, विश्वपोषक, वेदो का स्वामी, बालाजी, बाजीगर अर्थात् विभिन्न कौतुक दिखानेवाला तथा जीवो को बंधनो मे भी डालनेवाला है। कितने ही न्यौली कर्म करनेवाले, मात्र दूध का आहार करनेवाले, विद्वान एवं ब्रह्मचारी उसका ध्यान लगाते है, परन्तु उसका ध्यान नही कर पाते। हे प्रभु! तुम राजन के राजा और महाराजाओ के भी सम्राट् हो। तुम्हारे जैसे को छोड़कर अन्य किसे पर ध्यान लगाया जा सकता है (अर्थात् किसी पर नही।)॥ ३॥ ४२॥ ॥ कवित्त॥ ॥ तेरी कृपा से॥ युद्ध को जितानेवाले, रगभूमियो मे भ्रमण करनेवाले तथा पृथ्वी के भार के हलका करनेवाले नाम का तीनो लोको मे गुणानुवाद किया जाता है। वह न किसी का पुत्र, माता या भाई है, वह धरती का आश्रय है, उसे छोड़कर अन्य किसके साथ प्रीति, प्रेम किया जाय। समस्त साधनाओ का साध्य, आकाश का स्तभ, सपूर्ण पृथ्वी को धारण

लाइऐ। साधना सधइआ धूल धानी के धुजइआ धोमधार के धरइआ ध्यान ताको सदा लाइऐ। आउ के बढइआ एक नाम के जपइआ अउर काम के करइआ छाड अउर कउन ध्याइऐ ॥ ४ ॥ ४३ ॥ ॥ कवितु ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ काम को कुनिंदा खैर खूबी को दहिंदा गज गाजी को गजिंदा सो कुनिंदा कै बताइऐ। चाम के चलिंदा घाउ घाम ते बचिंदा छत्र छैनी के छलिंदा सो दहिंदा कै मनाइऐ। जर को दहिंदा जानमान को जनिंदा जोत जेब को गजिंदा जान मान जान गाइऐ। दोख के दलिंदा दीन दानश दहिंदा दोख द्रुजन दलिंदा ध्याइ दूजो कउन ध्याइऐ ॥ ५ ॥ ४४ ॥ ॥ कबितु ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ सालिस सहिंदा सिद्धताई को सधिंदा अंग अंग मै अबिंदा एकु एको नाथ जानिऐ। कालख कटिंदा खुरासान को खुनिंदा ग्रब गाफल गलिंदा गोल गंजख बखानिऐ। गालब गरिंदा जीत तेज के दहिंदा चित्र चाप के चलिंदा छोड अउर

करनेवाले उस प्रभु पर ही सर्वदा ध्यान लगाया जाना चाहिए। आयु को बढ़ानेवाला उसका नाम ही जाप करने योग्य है। वह सर्व कामनाओ को पूर्ण करनेवाला है, उसे छोडकर अन्य किसका ध्यान किया जाय ॥ ४ ॥ ४३ ॥ ॥ कवित्त ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ वह सर्वकामनाओ की पूर्ति करनेवाला, सभी सुख एव समृद्धि-दाता, महान गजो के समान शूरवीरो को नष्ट करनेवाला है। वह धनुषधारी, सव प्रकार के आघातो से रक्षा करनेवाला, छत्रधारियो को छलनेवाला और विना माँगे सव कुछ देनेवाला है। प्रयत्नपूर्वक उसी को मनाना चाहिए। वह धन-दौलत देनेवाला जीव एव सम्मान को जाननेवाला, ज्योतिस्वरूप, मान-प्रतिष्ठा योग्य है। उसी का गुणानुवाद किया जाना चाहिए। वह दोषो को मिटानेवाला, बुद्धिप्रदाता तथा दुर्जनो का दलन करनेवाला है। उसकी आराधना कर लेने के बाद अन्य दूसरा कौन है जिसकी आराधना की जाय ॥ ५ ॥ ४४ ॥ ॥ कवित्त ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ वह शीतलतापूर्वक सव कुछ सहन करनेवाला, साधक-सिद्ध-पुरुष एव अंग-अग मे विराजमान, जानने योग्य नाथ है। वह समस्त कालिमाओ को नष्ट करनेवाला, बड़े-बड़े अहकारी, खुराशानी पठानो को पद-दलित करनेवाला एवं सैन्यसमूह को (क्षण भर मे) नष्ट कर देनेवाला कहा जाता है। वह शक्तिशालियो को धराशायी करनेवाला, सवको तेज प्रदान करनेवाला और चित्त रूपी धनुष को चलानेवाला है। उसे छोड़

कउन आनिऐ। सततता दहिंदा सतताई को सुखिदा करम काम को कुनिंदा (मू०ग्रं०१३२) छोड दूजा कउन मानिऐ॥ ६॥ ४५॥
॥ कबित॥ ॥ त्व प्रसादि॥ जोत को जगिंदा जंग जाफरी दहिंदा मित्र मारी के मलिंदा पै कुनिंदा कै बखानिऐ। पालक पुनिंदा परम पारसी प्रगिंदा रंग राग के सुनिंदा पै अनंदा तेअ मानिऐ। जाप के जपिंदा खैर खूबी के दहिंदा खून माफ के कुनिंदा है अभिज्ज रूप ठानिऐ। आरजा दहिंदा रंग राग के बढिंदा दुष्ट द्रोह के दलिंदा छोड दूजो कौन मानिऐ॥ ७॥ ४६॥
॥ कबित॥ ॥ त्व प्रसादि॥ आतमा प्रधान जाहि सिद्धता सरूप ताहि बुद्धता बिभूत जाहि सिद्धता सुभाउ है। राग भी न रंग ताहि रूप भी न रेख जाहि अंग भी सुरंग ताहि रंग के सुभाउ है। चित्र सो बिचित्र है परमता पवित्र है सु मित्र हूँ के मित्र है बिभूत को उपाउ है। देवन के देव है कि शाहन को शाह है कि राजन को राज है कि रावन को राउ है॥ ८॥ ४७॥

अन्य किसका स्मरण किया जाय। वह सत्य प्रदान करनेवाला एव झूठ का नाश करनेवाला तथा सर्व काम्य कर्मों को करनेवाला है। उसे छोड़कर किसी अन्य को कैसे माना जाय॥ ६॥ ४५॥ ॥ कवित्त॥
॥ तेरी कृपा से॥ वह जगमगाती हुई ज्योति, युद्ध मे विजय प्रदान करने वाले, मित्र-घातियो को नष्ट करनेवाले रूप में जाना जाता है। पुण्य-पालक एव पारस के समान लोहे को सोना बनानेवाला तथा विभिन्न रंग-रागो मे आनंदित होनेवाला भी उसी को माना जाता है। भिन्न प्रकार के जाप करनेवाला एव सब प्रकार की सुख-समृद्धि को देनेवाला, सबके दोषो को क्षमा करनेवाला, परन्तु फिर भी सबसे अलिप्त माना जाता है। वह आयु-प्रदाता, आनन्द को बढानेवाला एव दुष्टो तथा द्रोहियो का दलन करनेवाला है। इसे छोड़कर दूसरे किसको माने॥ ७॥ ४६॥
॥ कवित्त॥ ॥ तेरी कृपा से॥ वह प्रधान रूप मे आतमा है, सिद्धि जिसका स्वरूप है, वुद्धि जिसकी विभूति है और सिद्धता जिसका स्वभाव है। जिसका राग, रग, आकार, प्रकार कुछ भी नही है, फिर भी उसके सुन्दर अग हैं तथा आनन्द उसका स्वभाव है। विश्व रूपी उसकी चित्रकारी विचित्र एव परमपवित्र है तथा मित्रों का भी मित्र, सर्वविभूति प्रदाता है। वह देवताओ का देव, साहूकारो का साहूकार तथा राजाओ का भी राजा

॥ बहिर तवील छंद पसचमी* ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ कि अगंजस । कि अभंजस । कि अरूपस । कि अरंजस ॥ १ ॥ ४८ ॥ कि अछेदस । कि अभेदस । कि अनामस । कि अकामस ॥ २ ॥ ४९ ॥ कि अभेखस । कि अलेखस । कि अनादस । कि अगाधस ॥ ३ ॥ ५० ॥ कि अरूपस । कि अभूतस । कि अछादस । कि अरागस ॥ ४ ॥ ५१ ॥ कि अभेदस । कि अछेदस । कि अछादस । कि अगाधस ॥५॥ ॥ ५२ ॥ कि अगंजस । कि अभंजस । कि अभेदस । कि अछेदस ॥ ६ ॥ ५३ ॥ कि असेअस । कि अधेअस । कि अगंजस । कि इकंजस ॥ ७ ॥ ५४ ॥ कि उकारस । कि निकारस । कि अखंजस । कि अभंजस ॥ ८ ॥ ५५ ॥ कि अघातस । कि अकिआतस । कि अचलस । कि अछलस ॥ ९ ॥ ५६ ॥ कि अजातस । कि अझातस । कि अछलस । कि अटलस ॥१०॥५७॥ ॥ बहिर तवील पसचमी ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ अटाटसच । अडाटसच । अडंगसच । अणंगसच ॥११॥५८॥ अतानसच । अथानसच । अदंगसच

है ॥८॥४७॥ ॥ बहिर तवील छद पश्चिमी* ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ वह परमात्मा अगण्य, अभजन, अरूप एवं शोक-रहित है ॥ १ ॥ ४८ ॥ वह अछेद, अभेद, अनाम एव सर्व कामनाओ से परे है ॥ २ ॥ ४९ ॥ वह निर्वेश, अदृश्य, अनादि एव अगाध रूप से वृहद् है ॥ ३ ॥ ५० ॥ वह अरूप, अभूत, निर्दोष एव रागातीत है ॥ ४ ॥ ५१ ॥ वह अभेद, अछेद, विराट् एव गहन गम्भीर है ॥ ५ ॥ ५२ ॥ वह अगण्य, अभजनशील, अभेद एव अछेद है ॥ ६ ॥ ५३ ॥ ऐसा प्रभु जो उपर्युक्त गुणो वाला है, वह निरालम्ब है, सर्व गणनाओ से परे है तथा माया से रहित एक ही परमतत्त्व है ॥ ७ ॥ ५४ ॥ परमात्मा कभी ओंकार-स्वरूप मे प्रतिष्ठित होता है और कभी रूप-रंग से भिन्न प्रतीत होकर विराजमान होता है । वह न तो कभी क्लेषयुक्त होता है और न तो कभी टूटता है ॥ ८ ॥ ५५ ॥ वह आघातो से परे है एव अग्नि से दूर है । वह अचल एवं अछल है ॥ ९ ॥ ५६ ॥ वह अजन्मा एवं अदृश्य है । वह अछल एव अटल है ॥ १० ॥ ५७ ॥ ॥ बहिर तवील पश्चिमी ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ वह टेढ़ा-मेढ़ा नही है, ताडनाओ से परे है, उसे डसा नही जा सकता और वह

---

* यह फ़ारसी और पश्तो भाषा का छन्द है, जिसका प्रयोग सीमा-प्रान्त की भाषाओ में किया जाता है ।

कउन आनिऐ। सततता दहिंदा सतताई को सुखिदा करम काम को कुनिंदा (मू०ग्रं०१३२) छोड दूजा कउन मानिऐ॥ ६॥ ४५॥

॥ कबित॥ ॥ त्व प्रसादि॥ जोत को जगिंदा जंग जाफरी दहिंदा मित्र मारी के मलिंदा पै कुनिंदा कै बखानिऐ। पालक पुनिंदा परम पारसी प्रगिंदा रंग राग के सुनिंदा पै अनदा तेऊ मानिऐ। जाप के जपिंदा खैर खूबी के दहिंदा खून माफ के कुनिंदा है अभिज्ज रूप ठानिऐ। आरजा दहिंदा रंग राग के बढिंदा दुष्ट द्रोह के दलिंदा छोड दूजो कौन मानिऐ॥ ७॥ ४६॥

॥ कबित॥ ॥ त्व प्रसादि॥ आतमा प्रधान जाहि सिद्धता सरूप ताहि बुद्धता बिभूत जाहि सिद्धता सुभाउ है। राग भी न रंग ताहि रूप भी न रेख जाहि अंग भी सुरंग ताहि रंग के सुभाउ है। चित्र सो बिचित्र है परमता पवित्र है सु मित्र हूँ के मित्र है बिभूत को उपाउ है। देवन के देव है कि शाहन को शाह है कि राजन को राज है कि रावन को राउ है॥ ८॥ ४७॥

अन्य किसका स्मरण किया जाय। वह सत्य प्रदान करनेवाला एव झूठ का नाश करनेवाला तथा सर्व काम्य कर्मों को करनेवाला है। उसे छोड़कर किसी अन्य को कैसे माना जाय॥ ६॥ ४५॥ ॥ कवित्त॥ ॥ तेरी कृपा से॥ वह जगमगाती हुई ज्योति, युद्ध मे विजय प्रदान करने वाले, मित्र-घातियो को नष्ट करनेवाले रूप मे जाना जाता है। पुण्य-पालक एवं पारस के समान लोहे को सोना बनानेवाला तथा विभिन्न रग-रागो मे आनदित होनेवाला भी उसी को माना जाता है। भिन्न प्रकार के जाप करनेवाला एव सब प्रकार की सुख-समृद्धि को देनेवाला, सबके दोषो को क्षमा करनेवाला, परन्तु फिर भी सबसे अलिप्त माना जाता है। वह आयु-प्रदाता, आनन्द को बढानेवाला एव दुष्टो तथा द्रोहियो का दलन करनेवाला है। इसे छोडकर दूसरे किसको माने॥ ७॥ ४६॥ ॥ कवित्त॥ ॥ तेरी कृपा से॥ वह प्रधान रूप मे आत्मा है, सिद्धि जिसका स्वरूप है, बुद्धि जिसकी विभूति है और सिद्धता जिसका स्वभाव है। जिसका राग, रग, आकार, प्रकार कुछ भी नही है, फिर भी उसके सुन्दर अंग हैं तथा आनन्द उसका स्वभाव है। विश्व रूपी उसकी चित्रकारी विचित्र एवं परमपवित्र है तथा मित्रों का भी मित्र, सर्वविभूति प्रदाता है। वह देवताओ का देव, साहूकारो का साहूकार तथा राजाओं का भी राजा

॥ बहिर तवील छंद पसचमी* ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ कि अगंजस । कि अभंजस । कि अरूपस । कि अरंजस ॥ १ ॥ ४८ ॥ कि अछेदस । कि अभेदस । कि अनामस । कि अकामस ॥ २ ॥ ४९ ॥ कि अभेखस । कि अलेखस । कि अनादस । कि अगाधस ॥ ३ ॥ ५० ॥ कि अरूपस । कि अभूतस । कि अछादस । कि अरागस ॥ ४ ॥ ५१ ॥ कि अभेदस । कि अछेदस । कि अछादस । कि अगाधस ॥५॥ ॥ ५२ ॥ कि अगंजस । कि अभंजस । कि अभेदस । कि अछेदस ॥ ६ ॥ ५३ ॥ कि असेअस । कि अधेअस । कि अगंजस । कि इकंजस ॥ ७ ॥ ५४ ॥ कि उकारस । कि निकारस । कि अखंजस । कि अभंजस ॥ ८ ॥ ५५ ॥ कि अघातस । कि अकिआतस । कि अचलस । कि अछलस ॥ ९ ॥ ५६ ॥ कि अजातस । कि अझातस । कि अछलस । कि अटलस ॥१०॥५७॥ ॥ बहिर तवील पसचमी ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ अटाटसच । अडाटसच । अडंगसच । अणंगसच ॥११॥५८॥ अतानसच । अथानसच । अदंगसच

है ॥८॥४७॥ ॥ बहिर तवील छद पश्चिमी* ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ वह परमात्मा अगण्य, अभजन, अरूप एवं शोक-रहित है ॥ १ ॥ ४८ ॥ वह अछेद, अभेद, अनाम एव सर्व कामनाओ से परे है ॥ २ ॥ ४९ ॥ वह निर्वेश, अदृश्य, अनादि एवं अगाध रूप से वृहद् है ॥ ३ ॥ ५० ॥ वह अरूप, अभूत, निर्दोष एव रागातीत है ॥ ४ ॥ ५१ ॥ वह अभेद, अछेद, विराट् एव गहन गम्भीर है ॥ ५ ॥ ५२ ॥ वह अगण्य, अभजनशील, अभेद एवं अछेद है ॥ ६ ॥ ५३ ॥ ऐसा प्रभु जो उपर्युक्त गुणो वाला है, वह निरालम्ब है, सर्व गणनाओ से परे है तथा माया से रहित एक ही परमतत्त्व है ॥ ७ ॥ ५४ ॥ परमात्मा कभी ओंकार-स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है और कभी रूप-रग से भिन्न प्रतीत होकर विराजमान होता है । वह न तो कभी क्लेषयुक्त होता है और न तो कभी टूटता है ॥ ८ ॥ ५५ ॥ वह आघातो से परे है एवं अग्नि से दूर है । वह अचल एव अछल है ॥ ९ ॥ ५६ ॥ वह अजन्मा एवं अदृश्य है । वह अछल एव अटल है ॥ १० ॥ ५७ ॥ ॥ बहिर तवील पश्चिमी ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ वह टेढ़ा-मेढ़ा नही है, ताड़नाओ से परे है, उसे डसा नही जा सकता और वह

* यह फारसी और पश्तो भाषा का छन्द है, जिसका प्रयोग सीमा-प्रान्त की भाषाओ में किया जाता है ।

अनंगसच ॥ १२ ॥ ५६ ॥ अपारसच । अफारसच । अबेअसतु । अभेअसतु ॥ १३ ॥ ६० ॥ अमानसच । अहानसच । अड़गसच । (मू०ग्रं०१३३) अन्नंगसच ॥१४॥६१॥ अरामसच । अलामसच । अजोधसच । अवोजसच ॥ १५ ॥ ॥ ६२ ॥ ॥ पसच्चमी ॥ असेअसतु । अभेअसतु । अअंगसतु । इअंगसतु ॥ १६ ॥ ६३ ॥ उकारसतु । अकारसतु । अखंडसतु । अडंगसतु ॥ १७ ॥ ६४ ॥ कि अतापहि । कि अथापहि । कि अदंगहि । कि अनंगहि ॥ १८ ॥ ६५ ॥ कि अतापहि । कि अथापहि । कि अनीलहि । कि सुनीलहि ॥ १६ ॥ ६६ ॥ ॥ अरध नराज छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ सजस तुयं । धजस तुयं । अलस तुयं । इकस तुयं ॥ १ ॥ ६७ ॥ जलस तुयं । थलस तुयं । पुरस तुयं । बनस तुयं ॥२॥६८॥ गुरस तुयं । गुफस तुयं । निरस तुयं । निदस तुयं ॥ ३ ॥ ६९ ॥ रवस तुयं । ससस तुयं । रजस

अगो की पहुँच के परे है ॥ ११ ॥ ५८ ॥ बल अथवा राग की तान से दूर वह प्रभु स्थान, कलह एव इन्द्रियो की पहुँच से दूर है ॥ १२ ॥ ५९ ॥ वह महान सत्य है । जो अकाट्य है, वह अभय है ॥ १३ ॥ ६० ॥ वह अहकार तथा हानि से दूर है । वह इन्द्रियो मे समा नही सकता तथा समुद्र की लहरो से भी परे है ॥ १४ ॥ ६१ ॥ यह सत्य है कि वह परम शान्ति को प्राप्त है, परम विद्वान है, अपने आप को स्थापित करने के लिए उसे योद्धाओ की आवश्यकता नही पड़ती तथा फिर भी वह अविजित रहता है ॥ १५ ॥ ६२ ॥ ॥ पश्चिमी ॥ वह उपर्युक्त अभय परमात्मा 'अकार' तथा 'इकार' अर्थात् पुरुष और नारी दोनो है ॥ १६ ॥ ६३ ॥ ओकारस्वरूप शब्द ब्रह्म भी वही है तथा विभिन्न आकारो मे माना जाने वाला भी वही परमात्मा अखड एव सर्वयुक्तियों से परे है ॥ १७ ॥ ६४ ॥ वह तीनो तापो (दैविक, भौतिक एव आध्यात्मिक) से परे सर्व स्थापनाओं से परे, सर्व दोषो से परे निराकार है ॥ १८ ॥ ६५ ॥ वह तापातीत, स्थापनाओ से परे एव सर्व प्रकार की गणनाओं से दूर है ॥ १९ ॥ ६६ ॥ ॥ अर्ध नराज छद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ हे एक ही परमात्मा ! तुम ही शोभायुक्त हो, ध्वजा अर्थात् मान-सम्मान भी तुम ही हो और तुम ही परिपूर्ण हो ॥ १ ॥ ६७ ॥ जल, स्थल, पर्वत, वन सब जगह तू ही है ॥ २ ॥ ६८ ॥ उद्यानो मे, कन्दराओ, नदियो मे रसस्वरूप, परन्तु फिर भी रसातीत तुम ही हो ॥ ३ ॥ ६९ ॥ रवि, चन्द्र, रजस्, तमस्

तुयं। तमस तुयं ॥ ४ ॥ ७० ॥ धनस तुयं। मनस तुयं। ब्रिछस तुयं। बनस तुयं ॥ ५ ॥ ७१ ॥ मतस तुयं। गतस तुयं। ब्रतस तुयं। चितस तुयं ॥ ६ ॥ ७२ ॥ पितस तुयं। सुतस तुयं। मतस तुयं। गतस तुयं ॥ ७ ॥ ७३ ॥ नरस तुयं। त्रियस तुयं। पितस तुयं। ब्रिदस तुयं ॥ ८ ॥ ७४ ॥ हरस तुयं। करस तुयं। छलस तुयं। बलस तुयं ॥ ९ ॥ ॥ ७५ ॥ उडस तुयं। पुडस तुयं। गडस तुयं। दधस तुयं ॥ १० ॥ ७६ ॥ रवस तुयं। छपस तुयं। गरबस तुयं। दिरबस तुयं ॥ ११ ॥ ७७ ॥ जैअस तुयं। खैअस तुयं। पैअस तुयं। त्रैअस तुयं ॥ १२ ॥ ७८ ॥ ॥ नराज छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ चकंत चार चंद्रका। सुभंत राज सु प्रभा। दवंत दुष्ट मंडली। सुभंत राज सु थली ॥ १ ॥ ॥ ७९ ॥ चलंत चंड मंडका। अखंड खंड दुपला। खिवंत बिजु ज्वालका। अनंत गद्दि बिद्दसा ॥ २ ॥ ८० ॥ लसंत भाव उज्जलं। दलंत दुक्ख दुद्दलं। पवंग पात सोहियं।

आदि गुण भी तुम ही हो ॥ ४ ॥ ७० ॥ धन, मन, वृक्ष एव वनस्पति तुम स्वय ही हो ॥ ५ ॥ ७१ ॥ मति, गति, व्रत तथा चित्त आदि भी तुम स्वय ही हो ॥ ६ ॥ ७२ ॥ हे प्रभु ! पिता, पुत्र एवं माता आदि ससार को गतिशील बनाए रखनेवाले स्रोत भी तुम ही हो ॥ ७ ॥ ७३ ॥ पुरुष, स्त्री, पिता एव धर्म तुम ही हो ॥ ८ ॥ ७४ ॥ (दु ख-सुख के) हर्ता, कर्ता भी तुम ही हो तथा बल-छल भी तुम ही हो ॥ ९ ॥ ७५ ॥ नक्षत्र, चन्द्र, समुद्र आदि के स्वरूप मे स्थापित तुम ही हो ॥ १० ॥ ७६ ॥ गति एव गतियो मे प्रच्छन्न शक्ति, अहम् तथा द्रव्य तुम ही हो ॥ ११ ॥ ७७ ॥ जीतनेवाला, नष्ट करनेवाला, दुग्ध एव त्रिगुण (सत्त्व, रजस्, तमस्) तुम ही हो ॥ १२ ॥ ७८ ॥ ॥ नराज छद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ हे राजन् ! तुम्हारी सुप्रभा देखकर चन्द्रमा की सुन्दर चाँदनी भी चकित है। तुम्हारे तेज से दुष्ट मडलियो का नाश होता है तथा तुम्हारी राजधानी (विश्व) शोभायमान होता है ॥ १ ॥ ७९ ॥ चडिका के समान तेज़ी से युद्ध का मण्डन करते हुए तुम दो ही पलो मे अखण्ड समझे जानेवाले महाबलियो का खण्डन कर देते हो। बिजली की ज्वाला जैसे तुम शोभायमान होते हो और अनन्त परमात्मा सारी दिशाओ मे तुम्हारा सिंहासन विराजमान है ॥ २ ॥ ८० ॥ तुम उज्ज्वल स्वरूप में शोभायमान हो तथा दु.खो के दलों को नष्ट करनेवाले हो। तुम्हारे (कर्म रूपी) अश्वो की पंक्ति

समुंद्र बाज लोहियं ॥ ३ ॥ ८१ ॥ निनंद गेद ब्रिद्दयं । अखेद नाद दुद्धरं । अठट्ट बट्ट बट्टकं । अघट्ट नट्ट सुवखलं ॥ ४ ॥ ८२ ॥ अखुट्ट तुट्ट दिब्बकं । अजुट्ट छुट्ट सुच्छकं । अघुट्ट तुट्ट आसनं । अलेख अभेख खनासनं ॥ ५ ॥ ८३ ॥ सुभंत दंत पदुकं । (मू०ग्रं०१३४) जलंत साम सु घटं । सुभंत छुद्र घंटका । जलंत भार कच्छटा ॥६॥ ॥ ८४ ॥ सिरी सु सीस सुब्भियं । घटाक वान उब्भियं । सुभंत सीस सिधरं । जलंत सिद्धरी नरं ॥ ७ ॥ ८५ ॥ चलंत दंत पत्तकं । भजंत देखि दुद्दल । तजंत शस्त्र अस्त्रकं । चलंत चक्र चउदिसं ॥ ८ ॥ ८६ ॥ अगंम तेज सोभियं । रिखीश ईस लोभियं । अनेक बार ध्यावही । न तत्र पार पावही ॥ ९ ॥ ८७ ॥ अधो सु धूम धूम ही ।

शोभायमान और तुम ही महाक्रोधित स्वरूप वाले भी हो ॥ ३ ॥ ८१ ॥ वह सासारिक आनन्दो से परे वृहद् सूर्य के गोले के समान तेजस्वी है तथा शोक-रहित अनहद नाद की तरह धरती आकाश का आश्रय है। वह अक्षयवट के समान चिरजीवी है तथा वह सब सांसारिक प्रपचो से परे होता हुआ भी सर्व सुखो से परिपूर्ण है ॥ ४ ॥ ८२ ॥ उसका द्रव्य-भण्डार कभी भी नष्ट नही होनेवाला है। वह पवित्र परमात्मा किसी से भी जुडा हुआ नही है अर्थात् माया के बन्धन से परे है। उसका आसन सदा स्थिर रहनेवाला है तथा वह अदृश्य, निर्वेश परमात्मा अविनाशी है ॥ ५ ॥ ८३ ॥ उसकी सुन्दर दन्तपक्ति एवं चरण शोभायमान है और उनका दर्शन करके दु:ख रूपी काली घटाएँ नष्ट हो जाती है। कमर मे सुन्दर छोटी-छोटी घंटियाँ शोभा पाती हैं और उसको देखकर विद्युत्-प्रकाश भी फीका पड़ जाता है ॥ ६ ॥ ८४ ॥ सिर पर "श्री"-स्वरूपी ऐश्वर्य शोभायमान है तथा सिर पर मौलि ऐसी लग रही है, मानो बादलो मे इन्द्रधनुष बना हो। सिर पर मुकुट ऐसा शोभायमान है, जिसे देखकर सागर भी ईर्ष्यालु हो रहा है ॥ ७ ॥ ८५ ॥ तुम्हे देखकर असुरों की सेनाएँ भाग खड़ी होती है और दुर्जनो के दल खण्डित हो जाते है। हे प्रभु! जब तुम अस्त्र-शस्त्र को चलाते हो तो तुम्हारे विधान का चक्र चारो दिशाओ में चलने लगता है ॥ ८ ॥ ८६ ॥ तुम्हारे तेज तक किसी की पहुँच नही और तुम्हारे तेज प्रताप के ऐश्वर्य के लिए ऋषि एव शिव भी ललचा जाते है। तुम्हे प्राप्त करने के लिए अनेक विधियो से तुम्हारा ध्यान करते हैं, फिर भी तुम्हारा अन्त नही जान पाते ॥ ९ ॥ ८७ ॥ अनेको तपस्वी उलटे लटककर धूनी रमाते हैं तथा निद्रा का परित्याग कर नेत्रो को लाल कर, यत्र-यत्र भ्रमण

अघूर नेत्र घूम ही। सु पंच अगन साधियं। न ताम पार लाधियं ॥ १० ॥ ८८ ॥ निवल आदि करमणं। अनंत दान धरमणं। अनंत तीर्थ बासनं। न एक नाम के समं ॥ ११ ॥ ॥ ८९ ॥ अनंत जग्य करमणं। गजादि आदि धरमणं। अनेक देस भरमणं। न एक नाम के समं ॥ १२ ॥ ९० ॥ इकंत कुटं बासनं। भ्रमंत कोटकं बनं। उचाट नाद करमणं। अनेक उदास भरमणं ॥ १३ ॥ ९१ ॥ अनेक भेख आसनं। करोर कोटकं ब्रतं। दिसा दिसा भ्रमेसनं। अनेक भेख पेखनं ॥ १४ ॥ ९२ ॥ करोर कोट दानकं। अनेक जग्य क्रतब्यं। सन्यास आदि धरमणं। उदास नाम करमणं ॥१५॥ ॥ ९३ ॥ अनेक पाठ पाठनं। अनंत ठाट ठाटनं। न एक नाम के समं। समस्त स्रिष्ट के भ्रमं ॥ १६ ॥ ९४ ॥ जगादि आदि धरमणं। बैराग आदि करमणं। दयादि आदि कामणं। अनाद संजमं ब्रिदं ॥ १७ ॥ ९५ ॥ अनेक देस भरमणं।

करते रहते है। कई लोग पंचाग्नि जलाकर साधना करते है, परन्तु फिर भी तुम्हारा रहस्य नही जान पाते ॥ १० ॥ ८८ ॥ अनेकों व्यक्ति न्यौली आदि क्रिया करके दान-धर्म आदि के कार्य करते हुए अनेकों तीर्थों पर निवास करते हैं, परन्तु ये सब क्रियाएँ तुम्हारे एक नाम के समकक्ष नहीं हैं ॥ ११ ॥ ८९ ॥ अनन्त यज्ञकर्म, गज आदि का दान-धर्म, देश-विदेशों का भ्रमण आदि ये सब भी तुम्हारे एक नाम के तुल्य नही है ॥१२॥९०॥ कई लोग एकान्तवास करते हैं तथा कई अनेको वनो में भ्रमण करते है। कई उदासीन होकर मन्त्र गायन करते है तथा अनेकों विरक्त-भाव से भ्रमण करते हैं ॥ १३ ॥ ९१ ॥ हे प्रभु ! तुम्हे पाने के लिए कई लोग अनेको वेश एव आसन, व्रत आदि का पालन करते हैं तथा कई लोग भिन्न प्रकार के वेशो को देखते धारण करते हुए दसों दिशाओ मे भ्रमण करते रहते है ॥ १४ ॥ ९२ ॥ करोड़ो जीव, करोडो प्रकार के दान देकर यज्ञ-कर्तव्य को पूरा करते है, संन्यास-कर्म का पालन करते हैं तथा उदासीन व्यक्तियो की तरह कर्म करते हैं ॥ १५ ॥ ९३ ॥ अनेकों व्यक्ति पाठ करते हैं तथा अनेको विभिन्न प्रकार के आडम्बर करते है, परन्तु ये सत्र उस एक परमात्मा के नाम के समकक्ष नही हैं और ये सब क्रियाएँ सृष्टि के भ्रम के समान हैं ॥ १६ ॥ ९४ ॥ यज्ञ आदि धर्म, वैराग्य आदि कर्म तथा दयालुता की कामना --ये सब वृहद् संयम है, जो अनादि काल से चले आ रहे है ॥ १७ ॥ ९५ ॥ अनेक देशों का भ्रमण और करोड़ो दान, संयम आदि क्रियाएँ, हे प्रभु ! तुम्हारी प्राप्ति के लिए की जाती है।

करोर दान संजमं। अनेक गीत ज्ञाननं। अनंत ज्ञान ध्याननं ॥ १८ ॥ ९६ ॥ अनंत ज्ञान सुत्तमं। अनेक क्रित सु ब्रितं। ब्यास नारद आदकं। सु ब्रहमु मरम नहि लहं ॥ १९ ॥ ९७ ॥ करोर जंत्र मंत्रणं। अनंत तंत्रणं बणं। बसेख ब्यास नासनं। अनंत न्यास प्रासनं ॥ २० ॥ ९८ ॥ जपंत देव दैतनं। थपंत जच्छ गंध्रबं। बदंत बिद्‌वणो धरं। गणंस शेश उरगणं ॥ २१ ॥ ९९ ॥ जपंत पारवारयं। समुंद्र सप्त धारयं। जणंत चार चक्रणं। ध्रमंत चक्र बक्रणं ॥२२॥ ॥ १०० ॥ जपंत पंनगंनकं। बरंनरं बनसपतं। अकास उरबिअं (मू०ग्रं०१३५) जलं। जपत जीव जल थलं ॥२३॥१०१॥ सु कोट चक्र बकत्रणं। बदंत बेद चत्रकं। असंभ असंभ मानिऐ। करोर बिशन ठानिऐ ॥ २४ ॥ १०२ ॥ अनंत सुरसुती सती बदंत क्रित ईसुरी। अनंत अनंत भाखिऐ। अनंत अनंत लाखिऐ ॥ २५ ॥ १०३ ॥ ॥ ब्रिध नराज

अनेक ज्ञान-गीतो का गायन किया जाता है तथा अनेकों प्रकार से ज्ञान, ध्यान किया जाता है ॥ १८ ॥ ९६ ॥ जीव अनेक प्रकार से ज्ञान अर्जित करता है और अनेक प्रकार के कृत्यो द्वारा व्यास, नारद आदि की तरह अपनी वृत्तियो को एकाग्र करता है, परन्तु इन सबके वावजूद ब्रह्म के रहस्य को नही जान पाता ॥ १९ ॥ ९७ ॥ करोड़ो यन्त्रो, मन्त्रो एव तन्त्रो तथा ऋषियो द्वारा प्रचलित आसनो का अभ्यास करते हुए -तथा चित्त को आशाओ, चिंताओ से मुक्त करते हुए जीव तुम्हे पाने का प्रयत्न करता है ॥ २० ॥ ९८ ॥ हे प्रभु ! देव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व सभी तुम्हारा जाप करते हैं और तुम्हे अपने हृदय मे स्थापित करते हैं। विद्याधर एव शेषनाग जैसे भी तुम्हारी वदना करते है ॥ २१ ॥ ९९ ॥ यह सारा विश्व, समुद्र आदि तुम्हारा जाप करते है और यह भली प्रकार चारो दिशाओ मे जाना जाता है कि तुम्हारे विधान का वक्र-चक्र सर्वदा चलता ही रहता है ॥ २२ ॥ १०० ॥ सर्प एवं अन्य जीव तथा वनस्पति सभी तुम्हारा ध्यान करते है। आकाश, धरती, जल तथा इनमे बसनेवाले जीव सभी तुम्हारा जाप करते है ॥ २३ ॥ १०१ ॥ चार मुखो वाला ब्रह्मा तथा करोडो जीव उस प्रभु की वन्दना करते है तथा शिव भी उस परमात्मा तक पहुँचने को असंभव मानते है और करोड़ो विष्णुओ का भी ऐसा ही विश्वास है ॥ २४ ॥ १०२ ॥ सरस्वती, लक्ष्मी एवं सती पार्वती भी उसको अनन्त-अनन्त कहकर स्मरण करती हैं ॥ २५ ॥ १०३ ॥ ॥ वृध नराज छद ॥ वह परमात्मा उत्पत्ति के कष्टो से परे है, गहन

छंद ।। अनादि अगाधि ब्याधि आदि अनादि को मनाइऐ । अगंज अभंज अरंज अगंज गंज कउ धिआइऐ । अलेख अभेख अद्वैख अरेख असेख को पछानिऐ । न भूल जंत्र तंत्र मंत्र भरम भेख ठानिऐ ।। १ ।। १०४ ।। क्रिपाल लाल अकाल अपाल दयाल को उचारिऐ । अधरम करम धरम भरम करम मै बिचारिऐ । अनंत दान ध्यान ज्ञान ध्यानवान पेखिऐ । अधरम करम के बिना सु धरम करम लेखिऐ ।। २ ।। १०५ ।। ब्रतादि दान संजमादि तीर्थ देव करमणं । हयादि कुंजमेद राजसू बिनान भरमणं । निवल आदि करम भेख अनेक भेख मानिऐ । अदेख भेख के बिना सु करम भरम जानिऐ ।। ३ ।। १०६ ।। अजात पात अमात तात अजाति सिद्ध है सदा । असत्र मित्र पुत्र पउत्र जत्र तत्र सरबदा । अखंड मंड चंड उदंड अखंड खंडु भाखिऐ । न रूप रंग रेख अलेख भेख मै न राखिऐ ।।४।।१०७।। अनंत तीर्थ आदि आसनादि नारद आसनं । बराग अउ संन्यास

गम्भीर है, सबका स्रोत है, अत: सर्वप्रथम उसी का मनन करो। वह रोग, क्रोध-रहित, अभजनशील एव शोक-रहित है। अत: उसी का ध्यान करो। वह निर्वेश, अदृश्य, द्वेषातीत, निराकार एवं अशेष है। अत: उसी की पहचान करो तथा उसकी प्राप्ति के लिए भी भूलकर भी यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, भ्रम एवं किसी वेश का आश्रय न लो ।। १ ।। १०४ ।। वह प्रभु कृपालु, कालातीत एव सर्व प्रकार के पोषणो से परे दयालु है। उसी का नाम उच्चारण करना चाहिए। अधर्मो मे, भ्रमो में एव धर्म के कर्मों मे अर्थात् सदैव उसी प्रभु का विचार करना चाहिए। वह प्रभु अनन्त दानी, ध्यानी, ज्ञानी है उसको केवल उसके ध्यान मे मग्न ही जान सकते हैं। वह सदैव अधर्म से दूर तथा धर्म-कर्म मे विराजमान रहता है ।। २ ।। १०५ ।। व्रत, दान, संयम आदि तथा तीर्थस्नान आदि के तथाकथित देवकर्म एवं पशु-पक्षियो को एकत्र कर उनकी बलि देते हुए राजसूय यज्ञ आदि और न्योली कर्म तथा वेश आदि को धारण करना कोरा पाखण्ड माना जाना चाहिए। उस अदृश्य प्रभु के बिना सभी प्रकार के तथाकथित सुकर्मो को मात्र भ्रम ही माना जाना चाहिए ।। ३ ।। १०६ ।। वह प्रभु अजन्मा, तात-मात से परे सर्वदा स्वय सिद्ध है। उसका शत्रु, मित्र, पुत्र कोई नही तथा वह यत्र, तत्र, सर्वत्र व्याप्त है। वह महाबलशालियो को खण्डित करनेवाला, प्रचण्ड तेज-स्वरूप है, जिसे किसी भी रूप, रंग एव वेश की कोटि मे नही रखा जा

अउ अनादि जोग प्रासनं । अनादि तीर्थ संजमादि बरत नेम पेखिऐ । अनादि अगाधि के बिना समस्त भरम लेखिऐ ॥ ५ ॥ ॥ १०८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ दयादि आदि धरमं । संन्यास आदि करमं । गजादि आदि दानं । हयादि आदि थानं ॥१॥ ॥ १०९ ॥ सुवरन आदि दानं । समुंद्र आदि शनानं । विसुवादि आदि भरमं । बिकतादि आदि करमं ॥ २ ॥ ११० ॥ निवल आदि करणं । सुनील आदि बरण । अनील आदि ध्यानं । जपत तत प्रधानं ॥ ३ ॥ १११ ॥ अमितकादि भगतं । अविकतादि ब्रकतं । प्रछसतुवा प्रजापं । प्रभगतबा अथापं ॥ ४ ॥ ११२ ॥ सु भगतु आदि करणं । अजगतुआ प्रहरणं । बिरकतुआ प्रकासं । अविगतुआ प्रणासं (मू०ग्रं०१३६) ॥ ५ ॥ ११३ ॥ समसतुआ प्रधानं । धुजसतुआ धरानं । अविकतुआ अभंगं । इकसतुआ अनंगं ॥६॥११४॥ उअसतुआ अकारं । क्रिपसतुआ क्रिधारं । खितसतुआ अखडं ।

सकता ॥ ४ ॥ १०७ ॥ अनन्त तीर्थों पर स्नान एवं आसनादि, वैराग्य, सन्यास एव योग के प्रयत्न, सयम, व्रत, यम, नियम उस अनादि परमात्मा के बिना समस्त क्रियाएँ भ्रम मात्र है ॥ ५ ॥ १०८ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ दया, सन्यास आदि धर्म-कर्म, अच्छे स्थानो पर जाकर हाथी एवं घोड़ो का दान परमात्मा-प्राप्ति के लिए किया जाता है ॥ १ ॥ १०९ ॥ स्वर्ण का दान, (गगा-) सागर का स्नान, विश्व मे भ्रमण करने का कार्य तथा विरक्त व्यक्तियो के समान कर्म उस प्रभु-प्राप्ति के लिए किये जाते है ॥२॥११०॥ न्योली कर्म, नीले वेश धारण करना तथा ध्यान लगाना आदि कर्मो मे सबसे प्रधान कर्म उस परमतत्त्व (परमात्मा) पर ध्यान लगाना है ॥ ३ ॥ १११ ॥ उस प्रच्छन्न एवं सर्वभक्तियो की स्थापनाओं से परे परमात्मा की अपरिमित विधियो से भक्ति की जाती है तथा अनेक अव्यक्त तरीको से सांसारिक विरक्ति को अपनाया जाता है ॥ ४ ॥ ११२ ॥ वह भक्तो के कार्यों को करनेवाला एवं अनुपयुक्त अर्थात् पापियो का नाश करने वाला है। वास्तविक रूप से अनासक्त व्यक्तियो को अपने तेज से प्रकाशित करता है और दुष्टो का नाश करता है ॥ ५ ॥ ११३ ॥ वह सबमे प्रधान है और धर्म की ध्वजा है। वह निरन्तर अभजनशील है तथा निराकार है ॥ ६ ॥ ११४ ॥ वह स्वय ही आकार ग्रहण करता है और कृपापात्रो पर कृपा करता है। वह धरती की शक्ति के रूप मे धरती के साथ अखण्ड रूप से विराजमान है, परन्तु उसको किसी के साथ

गतसतुआ अगंडं ॥७॥११५॥ घरसतुआ घरानं। ङिअसतुआ ङिहालं। चितसतुआ अतापं। छितसतुआ अछापं॥ ८ ॥ ॥ ११६ ॥ जितसतुआ अजापं। झिकसतुआ अझापं। ञिकसतुआ अनेकं। टुटसतुआ अटेटं ॥९॥११७॥ ठटसतुआ अठाटं। डटसतुआ अडाटं। ढटसतुआ अढापं। णकसतुआ अणापं॥ १० ॥ ११८ ॥ तपसतुआ अतापं। थपसतुआ अथापं। दलसतुआ दिदोखं। नहिसतुआ अनोखं ॥११॥११९॥ अपकतुआ अपानं। फलकतुआ फलानं। बदकतुआ बिसेखं। भजसतुआ अभेखं ॥ १२ ॥ १२० ॥ मतसतुआ फलानं। हरिकतुआ हिरदानं। अड़कतुआ अड़ंग। व्रिकसतुआ व्रिभंगं ॥१३॥१२१॥ रँगसतुआ अरंगं। लवसतुआ अलंगं। यकसतुआ यकापं। इकसतुआ इकापं ॥१४॥१२२॥ वदिसतुआ वरदानं। यकसतुआ इकानं। लवसतुआ अलेखं। ररिसतुआ अरेखं॥ १५ ॥ १२३ ॥ व्रिअसतुआ व्रिभंगे। हरिसतुआ

बाँधा नही जा सकता ॥ ७ ॥ ११५ ॥ घरों मे वह श्रेष्ठ घर है तथा गृहस्थियो मे वह महान् गृहस्थी है। वह चित्तस्वरूप होकर तापो से परे है तथा प्रच्छन्न रूप से धरती पर विराजमान है॥ ८ ॥ ११६ ॥ वह जापो से परे है तथा युद्धस्थल मे जितानेवाला अभय एव अदृश्य है। अनेकता मे एकता का सूत्र वह स्वय आप है तथा वह कभी खण्डित नही होता ॥ ९ ॥ ११७ ॥ वह परमात्मा सर्वप्रपचो से परे एव सर्व दबाओं से दूर है। वह किसी के द्वारा गिराया नही जा सकता तथा किसी से भी उसकी सीमा नापी नही जा सकती ॥ १० ॥ ११८ ॥ वह ताप-क्लेश से परे है, उसकी स्थापना नही की जा सकती। वह बिना दल (समूह) के रहता है और मगलमय तथा अनोखा है ॥११॥११९॥ वह परम पवित्र तथा सृष्टि को फलने-फूलने मे सहायक है। वह विशेष रूप से सहारक भी है और सभी उसी निर्वेश का भजन करते हैं॥ १२ ॥ १२० ॥ फलों-फूलो मे मादकता भरनेवाला तथा हृदय को उत्साहित करनेवाला भी वही है। अड़नेवालो के समक्ष स्थिर रूप मे अड़ जानेवाला वही है तथा तीनो लोको एव तीनो गुणो का नाश करनेवाला भी वही है॥ १३ ॥ १२१ ॥ रगों का रंग एव रगो से दूर भी वही है, सौन्दर्य और सौन्दर्य को चाहने वाला भी वही है। वह अद्वितीय है और आज भी मात्र एक ही है॥ १४॥ १२२ ॥ सबसे श्रेष्ठ दानी वह स्वय आप एक ही है। वह अदृश्य रूप से लावण्ययुक्त है, परन्तु फिर भी निराकार है॥ १५ ॥ १२३ ॥

हरंगे। महिसतुआ महेसं। भजसतुआ अभेसं ॥१६॥१२४॥ बरसतुआ बरानं। पलसतुआ पलान। नरसतुआ नरेसं। दलसतुआ दलेसं ॥ १७ ॥ १२५ ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ दिन अजब एक आतमाराम। अनभउ सरूप अनहद अकाम। अनछिज्ज तेज आजानबाहु। राजान राज शाहान शाहु ॥ १ ॥ १२६ ॥ उचर्‌यो आतमा परातमा संग। उतभुज सरूप अबिगत अभंग। इह कउण आहि आतमा सरूप। जिह अमित तेजि अतिभुति बिभूति ॥२॥ ॥ १२७ ॥ ॥ परातमा बाच ॥ यहि ब्रहम आहि आतमा राम। जिह अमित तेजि अबिगत अकाम। जिह भेद भरम नही करम काल। जिह सत्र मित्र सरबा दिआल ॥३॥१२८॥ डोब्यो न डुबै सोख्यो न जाइ। काट्‌यो न कटै बार्‌यो न (मू०ग्रं०१३७) बराइ। छिज्जै न नैक सत शस्त्र पात। जिह शत्र मित्र नही जात पात ॥ ४ ॥ १२९ ॥ शत्रू सहंस सति सति प्रघाइ। छिज्जै न नैक खंड्यो न जाइ। नही

वह त्रिलोकी मे बैठ तीनो गुणो (रज, सत्त्व, तमस्) का नाश करनेवाला सभी रगो मे विराजमान है। वह धरती और धरती का स्वामी स्वय है और सभी उसी निर्वेश का जाप करते हैं ॥ १६ ॥ १२४ ॥ वह श्रेष्ठो से भी श्रेष्ठ है और पलक झपकते ही फल प्रदान करनेवाला है। वह नरों मे नरेश है और दुर्जनो के दलो को नष्ट करनेवाला है ॥ १७ ॥ १२५ ॥ ॥ पाधड़ी छद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ एक दिन जीवात्मा (माया से बद्ध अपने मूल रूप से अनभिज्ञ आत्मा) ने परमात्मा से, जो अनुभूति से ही जाना जानेवाला, अनहद अकाल, अक्षय, लम्बी भुजाओ वाला एव सम्राटो का भी सम्राट् है, पूछा ॥ १ ॥ १२६ ॥ जीवात्मा ने सम्पूर्ण वनस्पति स्वरूप अव्यक्त, अभजनशील परमात्मा से कहा कि यह अपरिमित तेजवान माना जानेवाला विभूतियुक्त आत्मा क्या है ? ॥२॥१२७॥ ॥ परमात्मा उवाच ॥ परमात्मा ने कहा कि हे जीवात्मा ! यह आत्मा ही ब्रह्म है जो अपरिमित तेजवान एव अव्यक्त है। आत्मा को कोई भेद, भ्रम एव कालचक्र प्रभावित नही करता और न तो इसका कोई शत्रु अथवा मित्र है। यह पूर्ण रूप से सबके साथ दयालु है ॥ ३ ॥ १२८ ॥ यह न डूबती है, न सूखती है, न कटती है, न जलती है, न शस्त्रो के प्रहार से आहत होती है तथा इसका न शत्रु, मित्र अथवा जाति-पाँति है ॥ ४ ॥ १२९ । हजारो शस्त्रो से इस पर प्रघात करने पर भी न तो यह कम होती है और न खण्डित

जरै नैक पावक मँझार। बोरै न सिंध सोखै न ब्यार ॥ ५ ॥ ॥ १३० ॥ इक कर्यो प्रश्न आतमा देव। अनभंग रूप अनभउ अभेव। यहि चतुर वरग संसार दान। किह चतुर वरग किज्जै वखिआन ॥ ६ ॥ १३१ ॥ इक राजु धरम इक दान धरम। इक भोग धरम इक मोछ करम। इक चतुर वरग सभ जग भणंत। से आतमाह प्रातमा पुछंत ॥७॥१३२॥ इक राज धरम इक धरम दान। इक भोग धरम इक मोछ वान। तुम कहो चत्र चत्ते बिचार। जे जे त्रिकाल भए जुग अपार ॥ ८ ॥ १३३ ॥ बरनंन करो तुम प्रिथम दान। जिम दान धरम किनै न्रिपान। सतिजुग करम सुर दान वंत। भूमादि दान कीने अकंथ ॥ ९ ॥ १३४ ॥ त्रै जुग महीप बरने न जात। गाथा अनंत उपमा अगात। जो किए जगत मैं जग्ग धरम। बरने न जाहि ते अमित करम ॥१०॥१३५॥ कलजुग ते आदि जो भए महीप। इहि भरथ खंडि महि जंबु दीप। त्व बल प्रताप बरणौ सु त्रेण। राजा युधिष्ट्र भू भरथ एण ॥ ११ ॥ १३६ ॥ खंडे अखंड जिह चतुर खंड।

होती है। अग्नि द्वारा यह जलती भी नही है, समुद्र द्वारा डूबती भी नहीं है और वायु द्वारा सूखती भी नही है ॥ ५ ॥ १३० ॥ तब जीवात्मा ने उस अनुभूति-रूप परम रहस्यमय परमात्मा से एक प्रश्न किया। संसार मे दान के चार वर्ग है, कृपया इसकी व्याख्या कीजिए ॥ ६ ॥ १३१ ॥ एक राजधर्म, एक दानधर्म, एक योगधर्म और एक मोक्षधर्म ससार में माना जाता है, ये सब क्या हैं, इसके बारे मे जीवात्मा ने परमात्मा से पूछा ॥ ७ ॥ १३२ ॥ राजधर्म, दानधर्म, योगधर्म एवं मोक्षधर्म —ये जो चारो धर्म हुए है, इनका तुम विचार मुझे कहो और इन धर्मो को पालन करनेवाले जो लोग हुए है, उनके बारे मे भी बताओ ॥ ८ ॥ १३३ ॥ सर्वप्रथम दानधर्म का वर्णन करते हुए उन राजाओ का वर्णन करे, जिन्होने दानधर्म का पालन किया है। सतयुग में देवताओ के तुल्य नरेशों ने भूमि आदि अनेको दान किए हैं, उन सबका वर्णन नही किया जा सकता ॥ ९ ॥ १३४ ॥ तीनो युगो के राजाओ का और उनकी महान महिमा का वर्णन नही किया जा सकता। उन्होने जितने यज्ञकर्म किए है वे गणनातीत हैं ॥ १० ॥ १३५ ॥ कलियुग मे जो इस भरतखण्ड के जम्बुद्वीप में राजा हुए, उनके बल-प्रताप का वर्णन करता हुआ मैं तुम्हे बतलाता हूँ कि भारतवर्ष मे एक राजा युधिष्ठिर हुआ ॥ ११ ॥ १३६ ॥

कैरौ कुरखेत्र मारे प्रचड। जिह चतुर कुंड जीत्यो दुबार। अरजन भीमादि भ्राता जुझार ॥ १२ ॥ १३७ ॥ अरजन पठ्यो उत्तर दिसान। भीमहि कराइ पूरब पयान। सहिदेव पठ्यो दच्छण सु देस। नुकलहि पठाइ पचछम प्रवेस ॥१३॥१३८॥ मंडे महीप खंड्यो खत्राण। जित्ते अजीत मंडे महान। खंड्यो सु उत्र खुरासान देस। दच्छन पूरब जीते नरेश ॥ १४ ॥ १३९ ॥ खग खंड खंड जीते महीप। बज्यो निशान इह जंबुदीप। इक ठउर किए सभ देस राउ। मख राजसूअ को किओ चाउ ॥ १५ ॥ १४० ॥ सभ देस देस पठे सु पत्र। जित जित गुनाढ कीए इकत्र। मख राजसूअ को कियो अरंभ। (मू०ग्रं०१३८) न्रिप बहु बुलाइ जित्ते असंभ ॥ १६ ॥ १४१ ॥ ॥ रूआल छंद ॥ कोटि कोटि बुलाइ रित्तज कोटि ब्रहम बुलाइ। कोटि कोटि बनाइ बिंजन भोगिअहि बहु भाइ। जत्र तत्र समग्रका कहुँ लाग है न्रिपराइ। राजसूइ करहि लगे सभ धरम को चित चाइ ॥ १ ॥ १४२ ॥ एक एक

उसने चारों दिशाओं के अजेय राजाओं का मान-मर्दन कर प्रचण्ड कौरवों आदि को कुरुक्षेत्र मे मारा और चारो दिशाओ को पुनः जीता। अर्जुन, भीम आदि महाबलशाली उसके भाई थे ॥ १२ ॥ १३७ ॥ अर्जुन को उसने उत्तर दिशा मे, भीम को पूर्व दिशा मे, सहदेव को दक्षिण एव नकुल को पश्चिम दिशा में भेजा ॥ १३ ॥ १३८ ॥ इन सबने क्षत्रियो को जीता, अनेक महान राजाओ को परास्त कर उनके स्थान पर अन्य लोगों को राजा बनाया। उत्तर मे खुरासान देश तक सबका बल खण्डित किया तथा दक्षिण, पूर्व मे भी नरेशो को जीत लिया ॥ १४ ॥ १३९ ॥ अपने खड्ग-बल से नरेशो को विजित कर सम्पूर्ण जम्बुद्वीप मे अपना नगाड़ा बजवाया। तत्पश्चात् सभी नरेशो को एक स्थान पर एकत्र कर राजसूय यज्ञ का आयोजन किया ॥ १५ ॥ १४० ॥ सब देश-देशान्तरो को पत्र भेज दिए गए और सब गुणी जनों को एकत्र कर लिया गया। राजसूय यज्ञ आरम्भ करने से पहले बहुत से राजाओ को बुलाया गया और जो नही आये उनको जीत लिया गया ॥ १६ ॥ १४१ ॥ ॥ रूआल छंद ॥ करोड़ो ब्राह्मणो एव कर्मकांडियो को बुलाया गया तथा विभिन्न प्रकार के अनेको व्यजन तैयार करवाये गए। इधर-उधर सामग्री फैली पड़ी थी और स्वय सम्राट् उस सारे कार्य में लगे हुए थे। सभी राजाओ के हृदय मे इस धार्मिक कार्य के प्रति भारी उत्साह

सुबरन को दिज एक दीजै भार। एक सउ गज एक सउ रथि दुइ सहंस्त्र तुखार। सहंस चतुर सुबरन सिंगी महिख दान अपार। एक एकहि दीजिऐ सुन राज राज अउ तार ॥ २ ॥ ॥ १४३ ॥ सुबरन दान सु रुकन दान सु तांम्रदान अनंत। अंन दान अनंत दीजत देख दीन दुरंत। बस्त्र दान पटंब्र दान सु शस्त्र दान बिहंत। भूप भिचछक हुइ गए सभ देस देस दुरंत ॥३॥ ॥ १४४ ॥ चत्र कोस बनाइ कुंडक सहंस्त्र लाइ परनार। सहंस्त्र होम करै लगै दिज बेद ब्यास अउतार। हसत सुंड प्रमान घ्रित की परत धार अपार। होत भसम अनेक बिंजन लपट झपट कराल ॥ ४ ॥ १४५ ॥ म्रितका सभ तीर्थ की सभ तीर्थ को लै बार। कास्टका सभ देस की सभ देस की जिउँ नार। भाँत भाँतन के महाँ रस होमिऐ तिह माहि। देख चक्रत रहै दिजबर रीझ ही नर नाह ॥ ५ ॥ १४६ ॥ भाँत भाँत अनेक बिंजन होमिऐ तिह आन। चतुर बेद पढ़ै चत्र सभ बिप्प ब्यास समान। भाँत भाँत अनेक भूपत देत दान अनंत। भूम भूर उठी जयत धुन जत्र तत्र दुरंत ॥ ६ ॥ १४७ ॥ जीत

था ॥ १ ॥ १४२ ॥ राजा ने मुखय पुरोहित से कहा कि प्रत्येक ब्राह्मण को एक भार (ढाई मन के बराबर) स्वर्ण दिया जाय। एक सौ हाथी, एक सौ रथ, दो हज़ार घोड़े, चार हजार स्वर्ण-सींगो वाली भैंसे प्रत्येक ब्राह्मण को दान-स्वरूप दी जायँ ॥ २ ॥ १४३ ॥ इस प्रकार स्वर्णदान, रजतदान एवं ताम्रदान, अन्नदान इतना दिया गया कि अब लेनेवाले छिपने लगे, अर्थात् किसी को लेने की इच्छा न रही। वस्त्रदान एवं शस्त्रदान इतना किया गया कि भिक्षुक भी राजा बन गए और दूर-दूर देशों को चले गए ॥ ३ ॥ १४४ ॥ चार कोस का यज्ञकुण्ड बनाया गया, जिसमे एक हज़ार पनाले बनाये गए और वेदव्यास आदि एक हज़ार ब्राह्मण उसमे होम करने लगे। हाथी के सूंड की तरह मोटी घृतधारा उसमे पड़ने लगी और अनेक प्रकार के व्यजन अग्निज्वाला में भस्म होने लगे ॥ ४ ॥ १४५ ॥ सब तीर्थो की मिट्टी एव जल, सब देशों की लकड़ी एवं विशेष भोज्य-सामग्री तथा भाँति-भाँति के रसों का उस कुण्ड मे हवन किया गया। यह सब देखकर श्रेष्ठ ब्राह्मण एव अन्य सम्राट् चकित एव प्रसन्न हुए ॥ ५ ॥ १४६ ॥ उस होमकुण्ड मे विभिन्न प्रकार के व्यजन डाले जा रहे है और व्यास के समान महान विप्र चारो वेदो का पाठ कर रहे है। अनेकों राजा, अनेक प्रकार के दान कर रहे हैं और दूर-दूर तक

जीत मवास आसन अरब खरब छिनाइ। आनि आनि दिए दिजानन जग्ग मै कुरराइ। भाँत भाँत अनेक धूप सु धूपिऐ तिह आन। भाँत भाँत उठी जयं धुनि जत्र तत्र दिसान ॥ ७ ॥ ॥ १४८ ॥ जरासिंधह मार कै पुनि कैरवा हथि पाइ। राजसूइ कियो बडो मखि किशन के मति भाइ। राजसूइ सु कै किते दिन जीत शत्र अनंत। बाजमेध अरंभ कीनो बेद ब्यास मतंत ॥ ८ ॥ १४९ ॥

॥ प्रिथम जग्ग समापतहि ॥

॥ स्रीबरण* बधह ॥

चंद्र बरणी सुकरनि स्याम सुवरन पूछ समान। रतन तुंग उतंग (मू०ग्रं०१३६) बाजत उचस्रवाह समान। निरत रवत चलै धरा परि काम रूप प्रभाइ। देखि देखि छकै सभै

भूमण्डल पर जय-जयकार की ध्वनि उठ रही है ॥ ६ ॥ १४७ ॥ सिर उठानेवाले राजाओं को जीतकर उनके अरबों, खरबों के कोषों को छीन लिया गया और सम्राट् युधिष्ठिर ने वह सब ब्राह्मणों में बाँट दिया। यज्ञमण्डप में अनेक प्रकार की धूपबत्ती जलाई गई है और यत्र-तत्र, सर्वत्र दिशाओं में जय-जयकार की ध्वनि उठ रही है ॥ ७ ॥ १४८ ॥ जरासन्ध को मारकर पाडवों ने कौरवों को भी अपने वश में कर लिया और कृष्ण के मतानुसार राजसूय यज्ञ का आयोजन किया। राजसूय यज्ञ के अन्तर्गत अनन्त शत्रुओं को जीतकर युधिष्ठिर ने वेदव्यास की सलाह के अनुसार फिर अश्वमेध यज्ञ किया ॥ ८ ॥ १४९ ॥

॥ प्रथम यज्ञ समाप्त ॥

श्रीबरण*-वध

चन्द्रमा की तरह (श्वेत) रग, सुन्दर काले कान हैं और पूंछ सोने के रगवाली है। उसके नेत्र भी रत्न के समान सुन्दर है और ऊँचाई भी ऐसी है, मानो वह सूर्य का घोड़ा हो। धरती पर उसे नृत्य करता हुआ देखकर कामदेव भी लजा जाता है। उसे देखकर सभी राजा एवं

* 'स्रीबरण'— अश्वमेध यज्ञ के लिए बलि हेतु, श्वेत रंग, श्याम कर्ण और पीले रंग की पूंछ वाला अश्व।

न्रिप रीझि इउ न्रिपराइ ॥ ९ ॥ १५० ॥ बीण बेण म्रिदंग बाजत बासुरी सुर नाइ । मुरज तूर मुचंग मंदल चंग बंगस नाइ । ढोल ढोलक खंजका डढ झाँझ कोट बजंत । जंग घुँघरू टल्लका उपजंत राग अनंद ॥ १० ॥ १५१ ॥ अमित शब्द बजंत्र भेर हरंत बाज अपार । जात जउन दिसान को पछ लाग ही सिरदार । जउन बाध तुरंग जूझत जीतिऐ करि जुद्ध । आन जौन मिलै बचै नहि मारिऐ करि क्रुद्ध ॥ ११ ॥ १५२ ॥ हय फेर चार दिसान मै सभ जीत के छितपाल । बाजमेध कर्यो सपूरन अमित जग्ग रिसाल । भाँत भाँत अनेक दान सु दीजिअहि दिजराज । भाँत भाँत पटंबरादिक बाजियो गज-राज ॥ १२ ॥ १५३ ॥ अनिक दान दिए दिजानन अमित दरब अपार । हीर चीर पटंबरादि सुवरन के बहु भार । द्रुष्ट पुष्ट त्रसे सभै थरहर्यो सुनि गिरराइ । काटि काटिन दै द्विजै न्रिप बाँट बाँट लुटाइ ॥ १३ ॥ १५४ ॥ फेर कै सभ देस मै हय मारिओ मख जाइ । काटि के तिह को तबै पल कै करै चतु भाइ । एक बिप्रन एक छत्रन एक इसत्रिन दीन । चत्र अंस

सम्राट् युधिष्ठर भी प्रसन्न होते है ॥ ९ ॥ १५० ॥ वीणा, मृदग, बाँसुरियाँ, मुरज, तुरहियाँ, चग आदि तथा ढोल, ढोलक, खँजड़ी, डफली, झाँझ, घुँघरू आदि अनेक वाद्य-यन्त्र बज रहे है और उनमे से अनत राग-स्वर उत्पन्न हो रहे है ॥ १० ॥ १५१ ॥ इस प्रकार के अनंत शब्दो के बीच मे अनेको लोग अश्व के साथ घूम रहे है और वे जिस दिशा मे जाते है, शूरवीर उनके पीछे जाते है । जो भी घोड़े को बाँध लेता है ये शूरवीर उसके साथ युद्ध करके उसको जीत लेते है और जो इनसे आकर मिल नही जाता उसे क्रोधित हो ये शूरवीर मार देते है ॥ ११ ॥ १५२ ॥ चारो दिशाओ मे घोडे को घुमाकर एव सब राजाओ को जीतकर राजा ने सुदर अश्वमेध यज्ञ किया । उसने ब्राह्मणो को भाँतिभाँति के दान, गज, अश्व, वस्त्रादि दिए ॥ १२ ॥ १५३ ॥ विप्रो को अपरिमित द्रव्य हीरे, वस्त्र एवं कई मन सोना दान मे दिया गया । उस दान को देखकर सभी भयभीत हो गए एव सुवर्ण पर्वत की आतकित हो उठा कि सम्राट् कही मुझे भी काट-काटकर सबको बाँट न दे ॥ १३ ॥ १५४ ॥ अश्व को सब देशो में भ्रमण कराकर यज्ञ मे लाकर मार डाला गया और उसको काटकर चार भागो मे बाँट दिया गया । एक भाग ब्राह्मणों को, एक क्षत्रियो को तथा एक स्त्रियो को प्रदान किया गया । चौथा भाग जो बचा था उसे कुंडयज्ञ

बच्यो जु ता ते होम मै वहि कौन ।। १४ ।। १५५ ।। पंच मै बरख प्रमान सु राज कै इह दीप । अंत जाइ गिरे रसातल पंड पुत्र महीप । भूप भरथ भए परीछत परम रूप महान । अमित रूप उदार दान अछिज्ज तेज निधान ।। १५ ।। १५६ ।।

स्री गिआन प्रबोध पोथी दुतीआ जग्ग समापत ।। २ ।।

अथ राजा प्रीछत को राज कथनं ।।

।। रूआल छंद ।। एक दिवस परीछतहि मिलि कियो मंत्र महान । गजामेध सु जग्ग को किउ कीजिऐ सवधान । बोलि बोलि सुमित्र मंत्रन मंत्र किओ बिचार । सेत दंत मँगाइकै बहु जगत सौ अबिचार ।। १ ।। १५७ ।। जग्ग मंडल को रच्यो तहि कोस अष्ट प्रमान । अष्ट सहंस्र बुलाइ रित्तुजु अष्ट लच्छ दिजान । भाँत भाँत बनाइकै तहाँ अष्ट सहंस्र (मू०ग्रं०१४०) प्रनार । हसत सुंड प्रमान ता महि होमिऐ ध्रित धार ।। २ ।। ।। १५८ ।। देस देस बुलाइकै बहु भाँत भाँत न्रिपाल । भाँत भाँतन के दिए बहुदान मान रसाल । हीर चीर पटंबरादिक

मे होम कर दिया गया ।। १४ ।। १५५ ।। इस द्वीप में पाँच सौ वर्ष तक राज करने के बाद पाडु-पुत्र अन्ततः पतन को प्राप्त हुए । उनके बाद परम सौदर्ययुक्त परीक्षित भरतखड का राजा हुआ जो परम उदार एव तेजस्वी था ।। १५ ।। १५६ ।।

।। स्री गिआन प्रबोध पोथी द्वितीय यज्ञ समाप्त ।। २ ।।

राजा परीक्षित का राज-वर्णन

।। रूआल छद ।। एक दिन राजा परीक्षित ने अपने मंत्रियों से विचार-विमर्श किया कि किस प्रकार विधिपूर्वक गजमेध यज्ञ किया जाय । मित्रो एव मत्रियो ने विचार दिया कि अब सब प्रकार के विचारो को त्याग शीघ्र ही श्वेत-दत हाथी (श्वेत हाथी) को मँगाया जाय ।। १ ।। १५७ ।। आठ कोसो मे यज्ञमडप बनाया गया और आठ हजार कर्मकाडी तथा आठ लाख ब्राह्मणो को बुलाया गया । यज्ञकुड मे आठ हजार पनाले बनाकर उसमे हाथी के सूँड के समान मोटी धार से घृतधारा पड़ने लगी और यज्ञ होने लगा ।। २ ।। १५८ ।। देशो-विदेशों के भाँति-भाँति के नृपो को बुलाकर बहुत प्रकार के दान दिए गए । हीरे,

बाज अउ गजराज। साज साज सभै दिए बहु राज कौ न्रिपराज ॥ ३ ॥ १५९ ॥ ऐसि भात किओ तहाँ बहु बरख लउ तिह राज। करन देव प्रमान लउ अर जीत कै बहु साज। एक दिवस चड्यो न्रिप बर सैल काज अखेट। देख म्रिग भइओ तहाँ मुनिराज सिउ भइ भेट ॥ ४ ॥ १६० ॥ पैड याहि गयो नही म्रिग के रखीसर बोल। उत्र भूपहि ना दियो मुनि आँखि भी इक खोल। म्रितक सरप निहारकै जिह अग्र ताह उठाइ। तउन के गर डारकै न्रिप जात भ्यो न्रिपराइ ॥ ५ ॥ १६१ ॥ आँख उघार लखै कहा मुनि सरप देख डरान। क्रोध करत भयो तहाँ दिज रकत नेत्र चुचान। जउन मो गरि डारि ग्यो तिह काटि है अहिराइ। सप्त दिवसन मै मरै यहि सति स्राप सदाइ ॥ ६ ॥ १६२ ॥ स्राप को सुनिकै डर्यो न्रिप मंद्र एक उसार। मद्धि गंग रच्यो धउलहरि छुइ सकै न बिआर। सरप की कह गंमता को काटि है तिह जाइ। काल पाइ कट्यो तबै तहि आन कै अहिराइ ॥ ७ ॥ १६३ ॥ साठ बरख

वस्त्र, घोडे और हाथी आदि बहुत से राजाओ को राजा परीक्षित ने दिए ॥ ३ ॥ १५९ ॥ इस भाँति सबको जीतकर राजा ने बहुत वर्षो तक राज किया। एक दिन राजा शिकार खेलने चला और उसने एक मृग को भागते देखा। आगे आकर उसकी भेट एक मुनि से हो गई ॥ ४ ॥ १६० ॥ राजा ने ऋषि से पूछा कि हे ऋषि ! बताओ, क्या मृग इसी रास्ते से गया है ? मुनि ने न तो आँख खोली और न ही राजा को कोई उत्तर दिया। राजा ने (क्रोधित हो) एक मरा हुआ साँप वहाँ से उठाया और मुनि के गले मे डालकर वहाँ से चल दिया ॥ ५ ॥ १६१ ॥ मुनि ने जब आँख खोलकर देखा तो वह सर्प को गले मे पडा देखकर डर गया तथा साथ ही मारे क्रोध के उसकी आँखो मे रक्त उतर आया। मुनि ने कहा कि जिसने इसे मेरे गले मे डाला है, यह तक्षक नाग बनकर उसी को काटेगा और मेरा यह श्राप है कि सात दिन के अदर वह मृत्यु को प्राप्त होगा ॥ ६ ॥ १६२ ॥ श्राप को सुन राजा डरा और उसने गगा के बीचोबीच एक घर (बड़ी नाव पर) बनवाया और उसमे ऐसे स्थान पर छुप गया जहाँ हवा भी नही जा सकती थी। सर्प की वहाँ पहुँच नही हो सकती, इस बात से राजा आश्वस्त होकर वहाँ रहने लगा, परन्तु समय के अदर ही तक्षक ने (वहाँ प्रवेश कर) राजा को डस लिया ॥ ७ ॥ १६३ ॥ साठ वर्ष, दो माह एव चार दिन की अवधि भोगकर राजा की ज्योति उस

प्रमान लउ दुइ मास यौ दिन चार। जोति जोति बिखै रली न्रिप राज की करतार। भूम भरथ भए तबै जनमेज राज महान। सूरबीर हठी तपी दस चार चार निधान ॥८॥१६४॥

॥ इति राजा प्रीछत समापतं भए ॥

राजा जनमेजा राज पावत भए ॥

॥ रूआल छंद ॥ राज को ग्रिह पाइकै जनमेज राज महान। सूरबीर हठी तपी दस चार चार निधान। पितर के बध कोप ते सभ बिप्र लीन बुलाइ। सरप मेध कर्यो लगे मख धरम के चित चाइ ॥ १ ॥ १६५ ॥ एक कोस प्रमान लउ मख कुंड कीन बनाइ। मंत्र शकत करनै लगे तहि होम बिप्र बनाइ। आन आन गिरै लगे तहि सरप कोट अपार। जत्र तत्र उठी जैत धुन भूम भूर उदार ॥ २ ॥ १६६ ॥ हसत एक (मू०ग्रं०१४१) दु हसत तीन चउ हसत पंच प्रमान। बीस हाथ इकीस हाथ पचीस हाथ समान। तीस हाथ बतीस हाथ छतीस हाथ गिराहि। आन आन गिरै तहा सभ भसम भूत होइ जाहि ॥ ३ ॥ १६७ ॥

परमकर्ता में विलीन हो गई। तब भारत भूमि में जनमेजय नामक महान् राजा हुए जो शूरवीर, हठ, तपस्वी एवं अठारह पुराणो तथा विद्याओ में पारगत थे ॥ ८ ॥ १६४ ॥

॥ इति राजा परीक्षित समाप्त हुए ॥

राजा जनमेजय को राज्य-प्राप्त

॥ रूआल छंद ॥ राजा के घर जन्म लेकर महान् जनमेजय शूरवीर, हठी, तपस्वी और सर्व विद्याओ एवं पुराण-शास्त्रों मे पारगत हुआ। पिता की अकाल मृत्यु से कुपित होकर उसने सभी विप्रों को बुलाया और धर्म का विचार कर उसने सर्पमेध यज्ञ का आयोजन किया ॥ १ ॥ १६५ ॥ एक कोस मे उसने यज्ञकुड बनवाया, जिसमे मंत्रशक्ति से सारे विप्र होम करने लगे। उस कुड मे चारो ओर से सर्प आकर गिरने लगे और संपूर्ण धरती पर राजा की जय-जयकार की ध्वनि उठने लगी ॥ २ ॥ १६६ ॥ एक हाथ, दो हाथ, तीन-चार-पाँच हाथ, बीस-इक्कीस-पच्चीस हाथ, तीस-बत्तीस-छत्तीस हाथ लंबे सर्प आकर कुंड में गिरकर भस्म होने लगे ॥ ३ ॥ १६७ ॥ एक

एक सौ हसत प्रमान दो सौ हसत प्रमान। तीन सौ हसत प्रमान चत्र सै सु समान। पाँच सै खट सै लगे तहि बीच आन गिरंत। सहंस हसत प्रमान लउ सभ होम होत अनंत ॥ ४ ॥ ॥ १६८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ रच्यो सरप मेधं बडो जग्ग राजं। करै बिप्प होमै सरै सरब काजं। दहे सरब सरपं अनंतं प्रकारं। भुजै भोग अनंतं जुगै राज द्वारं ॥ १ ॥ १६९ ॥ किते अष्ट हसतं सतं प्राइ नारं। किते द्वादिसे हस्त लौ परम भारं। किते द्वै सहंसर किते जोजनेकं। गिरे होमकुंडं अपारं अचेतं ॥ २ ॥ १७० ॥ किते जोजने दुइ किते तीन जोजन। किते चार जोजन दहे भूम भोगन। किते मुष्ट अंगुष्ट ग्रिष्टं प्रमानं। किते डेढु गिष्टे अंगुष्टं अरधानं ॥ ३ ॥ १७१ ॥ किते चार जोजन लउ चार कोसं। छुऐ घ्रित जैसे करै अगन होमं। फणं फटकै फेणका फंत कारं। छुटै लपट ज्वाला बसै बिख धारं ॥ ४ ॥ १७२ ॥ किते सपत जोजन लौ कोस अष्टं। किते अष्ट जोजन महा परम पुष्टं। भयो घोर बधं जरे कोट नागं। भज्यो तचछकं भचछकं जेम कागं ॥ ५ ॥ १७३ ॥

सौ हाथ, दो सौ, तीन सौ, चार सौ, पाँच सौ, छः सौ तथा हज़ार हाथ लम्बे सर्प उस कुड मे आकर गिरने लगे और भस्म होने लगे ॥ ४ ॥ १६८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ इस प्रकार राजा ने महान् सर्पमेध यज्ञ का आयोजन किया, जिसमे सर्व कामनाओ की पूर्ति के लिए विप्र-होम करने लगे। अनेको प्रकार के सर्पो का दहन हुआ और राजद्वार तक पहुँचनेवाले सभी सर्प नष्ट हो गये ॥ १ ॥ १६९ ॥ कही सात-आठ हाथ मोटी गर्दनवाले, बारह हाथो जितने मोटे, कही दो हजार हाथ लबे और कही एक योजन लबे सर्प अचेत होकर होमकुड मे गिरने लगे ॥ २ ॥ १७० ॥ कही एक योजन, कही दो-तीन एवं चार योजन लबे सर्पो का दहन हुआ और कही मुट्ठी भर, अँगूठे भर लबे सर्पो का होम हुआ। कही डेढ़ हाथ (अँगूठे से छोटी अँगुली तक की लम्बाई अथवा बित्ता भर), कही आधे अँगूठे जितने लबे सर्प जल उठे ॥ ३ ॥ १७१ ॥ कही चार योजन एवं चार कोस लबे सर्प जैसे ही घी को छूते थे, उनका होम कर दिया जाता था। सर्प फनों को फेक-फेककर फुफकार रहे थे और लपटो के साथ विष की धाराएँ फेक रहे थे ॥ ४ ॥ १७२ ॥ कही सात योजन (लम्बाई की प्राचीन नाप) से लेकर आठ कोस तक और कही आठ योजन तक लबे परम पुष्ट सर्पो का घोर वध इस नागयज्ञ मे हुआ। तक्षक डर के मारे इस प्रकार

कुलं कोट होमै बिखै रवण कुंडं। बचे बाध डारे घने कुंड झुंडं। भज्यो नाग राग तक्यो इद्रलोकं। जर्यो बेद मंत्रं भर्यो सक्र सोकं ॥ ६ ॥ १७४ ॥ बध्यो मंत्र जंत्र गिर्यो भूम मद्धं। अड़्यो आसतीकं महा बिप्र सिद्धं। भिड़्यो भेड़ भूपं झिण्यो झेड़ झाड़ं। महा क्रोध उठयो तणी तोड़ ताड़ं ॥ ७ ॥ १७५ ॥ तज्यो सरप मेधं भज्यो एक नाथं। क्रिपा मंत्र सूझै सभै स्त्रिष्ट साजं। सुनहु राज सरदूल बिद्या निधानं। तपै तेज सावंत ज्वाला समानं ॥ ८ ॥ १७६ ॥ मही माह रूपं तपै तेज भानं। दसं चार चउदाह विद्या निधानं। सुनहु राज शास्त्रग्ग सारंग पानं। तजहु सरप मेधं दिजै मोहि दानं ॥ ९ ॥ १७७ ॥ तजहु जो न सरपं जरौ अगन आपं। करौ (मू०ग्रं०१४२) दगध तोकौ दिवौ ऐस स्त्रापं। हण्यो पेट मद्धं छुरी जम दाड़ं। लगे पाप तोको सुनहु राजगाड़ं ॥ १० ॥ १७८ ॥ सुने बिप्प बोलं उठ्यो आप राजं। तज्यो सरपमेधं पिता बैर काजं। बुल्यो

भागा जैसे कौवे के डर के मारे कीडा भागता है ॥ ५ ॥ १७३ ॥ उसके कुल के करोडो सर्प यज्ञकुड मे होम कर दिए गए और जो बचे थे उनको वैसे मार डाला गया। नागराज तक्षक भागकर इद्रलोक पहुंचा। इद्रलोक भी वेदमत्रो के तेज से जलने लगा जिसे देखकर इद्र चितातुर हो उठा ॥६॥१७४॥ मत्रयत्रो से बँधा हुआ तक्षक भूमि पर आ गिरा और उसे देखकर आस्तीक नामक एक सिद्ध विप्र (ब्राह्मण) राजा के समक्ष आ खड़ा हुआ। वह महाक्रोधित होकर राजा से भिड़ गया और उसने अपने वस्त्रो की रस्सियो को तोडकर अपना क्रोध प्रकट किया ॥ ७ ॥ १७५ ॥ वह कहने लगा, हे राजन् ! सर्पमेध यज्ञ को बद करो और केवल एक परमात्मा का भजन-ध्यान करो, जिससे सृष्टि-रचयिता की तुम पर कृपा हो। हे सिह के समान बलशाली राजा ! तुम विद्या के सागर हो और तुम्हारा तपःतेज ज्वाला के समान धधक रहा है ॥ ८ ॥ १७६ ॥ सारी सृष्टि मे तुम्हारा तेज प्रताप सूर्य के समान चमक रहा है और चौदह विद्याओ मे तुम निपुण हो। हे महाधनुषधारी राजन् ! तुम शास्त्रो के ज्ञाता हो, तुम सर्पमेध का त्याग करो और मुझे दान-दक्षिणा प्रदान करो ॥९॥१७७॥ यदि तुम तक्षक को और सर्पमेध को नही छोडोगे तो मैं स्वय अग्नि मे जल मरूँगा और तुम्हे ऐसा श्राप दूँगा कि तुम भी जल मरोगे। मैं पेट मे कटार भोककर जान दे दूँगा, जिससे हे राजन ! तुम्हे गम्भीर पाप लगेगा ॥ १० ॥ १७८ ॥ ब्राह्मण की बात सुनकर राजा स्वय उठा और उसने पिता के वध का बदला लेने के निमित्त किए जा रहे सर्पमेध यज्ञ

ब्यास पासं कर्यो मंत्र चारं। महा बेद ब्याकरण बिद्या बिचारं ॥ ११ ॥ १७९ ॥ सुनी पुत्रका दुइ ग्रिहं कासि राजं। महा सुंदरी रूप सोभा समाजं। जिणउ जाइ ताको हणो दुष्ट पुष्ट। कर्यो ध्यान ताने लदे श्रार उष्टं ॥ १२ ॥ १८० ॥ चली सैन सूकर पराची दिसानं। चड़े बीर धीरं हठे शस्त्र पानं। दुर्यो जाइ दुरगं सु बाराणसीसं। घेर्यो जाइ फउजं भज्यो एक ईसं ॥ १३ ॥ १८१ ॥ मच्यो जुद्ध सुद्धं बहै शस्त्र घातं। गिरे अद्ध बद्धं सनद्धं बिपातं। गिरे हीर चीरं सु बीरं रजाणं। कटे अद्धु अद्धं छुटं रुद्र ध्यानं ॥ १४ ॥ १८२ ॥ गिरे खेत्र खत्राण खत्री खत्राणं। बजी भेर भुंकार द्रुकिआ निशाणं। करे पैज वारं प्रजारै सु बीरं। फिरे रुंड मुंडं तणं तच्छ तीरं ॥ १५ ॥ १८३ ॥ बिभे दंत बरमं प्रछे दैत नानं। करै मरदन अरदनं मरद मानं। कटे चरम बरमं छुटे चउर चारं। गिरे बीर धीरं छुटे शस्त्र धारं ॥ १६ ॥ १८४ ॥ जिण्यो

का त्याग कर दिया। राजा ने वेद-व्याकरण एव विद्याओ के ज्ञाता वेदव्यास को अपने पास बुलाया और उससे विचार-विमर्श किया ॥ ११ ॥ ॥१७९॥ (क्रोध को शान्त करने के लिए) राजा ने कहा कि मैंने सुना है कि काशीराज के घर मे दो सुन्दर कन्याएँ है जो महान रूपवती है। व्यास ने सलाह दी कि जाओ, जाकर उनको जीतो और शत्रुओ का नाश करो। ऊँटो पर शस्त्रास्त्र लादकर राजा ने सेना-समेत चढाई कर दी ॥ १२ ॥ १८० ॥ वायुवेग से सेना पूर्व दिशा की ओर चलने लगी और महान शूरवीर हाथों मे शस्त्र लेकर चढ उठे। वाराणसी-नरेश किले मे जा छिपा और इधर सेना ने परमात्मा का ध्यान धर दुर्ग को घेर लिया ॥ १३ ॥ १८१ ॥ शस्त्रो के आघात होने लगे और वीर टुकड़े-टुकडे होकर गिरने लगे। वीर लाल वस्त्रो को धारण किए अर्थात् रक्त से लथपथ होकर गिरने लगे और इतनी भीषण मारकाट हुई कि ध्यानावस्थित रुद्र का भी ध्यान खण्डित हो गया ॥ १४ ॥ १८२ ॥ रणक्षेत्र मे क्षत्रिय गिरने लगे और भेरियो, नगाडो की भीषण ध्वनि होने लगी। शूरवीर ललकार कर प्रतिज्ञाएँ कर रहे है और वार कर रहे है तथा रणस्थल मे कटे-फटे छिले हुए घूम रहे है ॥ १५ ॥ १८३ ॥ तीर लौह-कवचो को भेदते हुए शरीरो मे घुस रहे है और बलशाली वीर अन्यो का मान-मर्दन कर रहे है। शरीर एवं कवच कट रहे है और छत्र टूट रहे है और शस्त्रो के वारों के साथ धीर वीर गिर रहे है ॥ १६ ॥ १८४ ॥

काशकीशं हण्यो सरब सैनं। बरी पुत्रका ताह कंप्यो त्रिनैनं। भयो मेल गेलं मिले राज राजं। भई मित्रचारं सरे सरब काजं॥ १७॥ १८५॥ मिली राज दाजं सु दासी अनूपं। महा बिद्यवती अपारं सरूपं। मिले हीर चीरं किते सिआउ करनं। मिले मत्तदती किते सेत बरनं॥ १८॥ १८६॥ कर्‌यो ब्याह राजा भयो सु प्रसंन। भली भात पोखे दिजंसरब अंनं। करे भाँत भाँतं महा गज्ज दानं। भए दोइ पुत्रं महाँ रूप मानं॥ १९॥ १८७॥ लखी रूपवंती महाराज दासी। मनो चीरकै चार चंद्रा निकासी। लहैं चंचला चार बिद्या लतासी। किधौ कंजकी माँझ सोभा प्रकासी॥ २०॥ १८८॥ किधौ फूल माला लखै चंद्रमासी। किधौ पदमनी मै बनी मालतीसी। किधौ पुहप धंन्या फुली राइ बेलं। तजे अंग ते बासु चंपा फुलेलं॥ २१॥ (मू०ग्रं०१४३) १८९॥ किधौ देव

काशीराज को जीत लिया गया और उसकी सेना को नष्ट कर दिया गया और राजा ने उन कन्याओ से विवाह कर लिया। राजा का रौद्र रूप देखकर शिव भी काँप उठे। राजाओ मे सधि हो गई और सभी कार्यो मे मित्राचार का पालन किया गया॥ १७॥ १८५॥ दहेज में राजा को अनुपम सुन्दरी दासियाँ प्राप्त हुई जो महान् विद्यावती थी। राजा को हीरे, वस्त्र एवं काले-श्वेत हाथी-घोड़े भी प्राप्त हुए॥ १८॥ १८६॥ विवाह करके राजा सुप्रसन्न हुआ और उसने भलीभाँति सभी विप्रो को सर्व प्रकार के अन्नो का दान दिया। राजा ने भाँति-भाँति के हाथी दान किये आर उन कन्याओ से दो रूपवान पुत्रो ने जन्म लिया॥ १९॥ १८७॥ दहेज मे आई रूपवान दासी को एक दिन महाराज ने देखा और उसे लगा कि मानो चन्द्रमा की चाँदनी मे से किरणो को खींचकर परमात्मा ने उस रूपवती का निर्माण किया हो। वह ऐसी लगी मानो सर्वविद्याओ की लता के समान हो अथवा कमल के फूलो की गध साक्षात् प्रकट हुई हो॥ २०॥ ॥ १८८॥ वह ऐसी लगी मानो सुगधित फूलमाला हो अथवा स्वय चद्रमा ही हो। वह मानो मालती का फूल हो अथवा पद्मिनी हो। वह ऐसी लगी मानो रति हो अथवा फूलो की श्रेष्ठ बेल हो। उसके अगो से चंपा के फूलो की गध आ रही थी॥ २१॥ १८९॥ ऐसी लग रही थी मानो देवकन्या पृथ्वी पर घूम रही हो अथवा कोई यक्षिणी या किन्नर-कन्या के समान विचरण कर रही हो। वह इस प्रकार असह्य प्रतीत हो रही थी, जैसे शिव का अपरिमित बलशाली वीर्य एक सामान्य बालिका

कन्या प्रिथीलोक डोलै। किधौ जच्छनी किन्नरी सिउ कलोलै। किधौ रुद्र बीजं फिरै मद्धि बालं। किधौ पत्र पानं नचै कउल नालं ॥ २२ ॥ १९० ॥ किधौ रागमाला रची रंग रूपं। किधौ इसत्रि राजा रची भूप भूपं। किधौ नाग कन्या किधौ बासवी है। किधौ संखनी चित्रनी पदमनी है ॥ २३ ॥ १९१ ॥ लसै चित्र रूपं बचित्रं अपारं। महा रूपवंती महाँ जोबनारं। महा ग्यानवंती सु बिज्ञान करमं। पड़े कंठि बिद्या सु बिद्यादि धरमं ॥ २४ ॥ १९२ ॥ लखी राज कँनिआन ते रूपवंती। लसै जोत ज्वाला अपारं अनंती। लख्यो ताहि जनमेजए आप राजं। करे परम भोगं दिए सरब साजं ॥ २५ ॥ १९३ ॥ बढ्यो नेहु तासो तजी राजकन्या। हुती शिस्ट की दिष्ट महि पुष्ट धन्या। भयो एक पुत्र महाँ शस्त्रधारी। दसं चार चउदाह बिद्या बिचारी ॥ २६ ॥ १९४ ॥ धर्यो अस्वमेधं प्रिथम पुत्र नामं। भयो असमेधान दूजो प्रधानं। अजैसिंघ राख्यो रजो पुत्र सूरं। महाँ जंग जोधा महाँ जस पूरं ॥ २७ ॥

के लिए असह्य हो। ऐसी चंचल एवं सुन्दर लग रही थी मानो कमल-पत्र पर पानी की बूंदे नाच रही हो ॥ २२ ॥ १९० ॥ वह दासी ऐसी लग रही थी मानो स्वरों की रागमाला हो और रूप की प्रतिमूर्ति हो। ऐसी लग रही थी मानो स्त्रियो मे श्रेष्ठ मोहिनी स्त्री हो। वह ऐसी लग रही थी मानो कोई नागकन्या हो अथवा शेषनाग की पत्नी हो। पता नही लग पा रहा था कि वह चित्रणी, शंखिनी है अथवा पद्मिनी स्त्री है ॥ २३ ॥ १९१ ॥ वह नारी चित्रवत् स्वरूप वाली महान रूपवती नवयौवना थी जो महान ज्ञानवान एव विज्ञान क्रीडाओ मे रुचि लेने वाली थी। वह विद्या-धर्म को भी समझनेवाली विदुषी थी ॥ २४ ॥ ॥१९२॥ राजा ने उसको राजकन्या से भी अधिक रूपवान पाया और वह ज्वाला के समान राजा के हृदय मे देदीप्यमान होने लगी। राजा जनमेजय ने स्वयं उसे देखा और उससे विवाह करने के लिए सर्व प्रकार से साज-सज्जा की और परम भोग में लिप्त हो गया ॥ २५ ॥ १९३ ॥ राजा का प्रेम उससे इतना बढ गया कि उसने उस राजकन्या का त्याग कर दिया, जो कभी ससार की दृष्टि में धन्य मानी जाती थी। उस दासी से एक महान् शस्त्रधारी पुत्र पैदा हुआ, जो चौदह विद्याओ में निपुण था ॥२६॥१९४॥ राजा ने पहले पुत्र का नाम अश्वमेध रखा और दूसरे पुत्र का नाम अश्वमेधान रखा। इस दासी के शूरवीर पुत्र का नाम अजयसिंह रखा।

॥ १९५ ॥ भयो तनदुरुसतं बलिष्टं महानं । महाँ जंग जोधा सु शस्त्रं प्रधानं । हणै दुष्ट पुष्टं महाँ शस्त्र धार । बडे शत्र जीते जिवे रावणारं ॥ २८ ॥ १९६ ॥ चड्यो एक दिवसं अखेटं नरेशं । लखे म्रिग धायो गयो अउर देसं । स्रम्यो परम बाटं तक्यो एक तालं । तहा दउरकै पीठ पानं उतालं ॥ २९ ॥ ॥ १९७ ॥ कर्यो राज सैनं कढ्यो वार बाजं । तकी बाजनी रूप राज समाजं । लग्यो आन ताको रह्यो ताहि गरभं । भयो स्याम करणं सु बाजी अदरबं ॥ ३० ॥ १९८ ॥ कर्यो बाजमेधं बडो जग्ग राजा । जिणे सरव भूपं सरे सरब काजा । गड्यो जग्ग थंभं कर्यो होम कुंडं । भलीभाँत पोखे बली बिप्र झुंडं ॥ ३१ ॥ १९९ ॥ दए कोट दानं पके परमपाकं । कलू मद्धि कीनो बडो धरमसाकं । लगी देखने आप जिउँ राज बाला । महा रूपवंती महा ज्वाल आला ॥ ३२ ॥ २०० ॥ उड्यो पउन के बेग सिउँ अग्र पत्र । हसे देख नगनं त्रियं (मू०ग्रं०१४४) बिप्र छत्रं । भयो कोप राजा गहे बिप्र सरबं । दहे खीर खंडं बडे

यह महाबली एव यशस्वी था ॥ २७ ॥ १९५ ॥ यह लडका बहुत ही स्वस्थ एवं बलिष्ठ तथा महान शस्त्रधारी योद्धा बना जिसने अनेको दुष्टो एव शस्त्रधारियों को ऐसे मार गिराया, जैसे रावण को राम ने मार गिराया था ॥ २८ ॥ १९६ ॥ एक दिन राजा शिकार खेलने गया और उसने एक मृग को देखा जो उसे एक सुदूर देश मे ले गया । राजा थक गया और उसने एक तालाब देखा । उस सरोवर से राजा ने पानी पिया और स्नान किया ॥ २९ ॥ १९७ ॥ राजा तो वहाँ सो गया, परन्तु सरोवर से एक घोडा निकला जिसने राजा की सुन्दर घोडी को देखा । उस अश्व ने इस घोडी के साथ सभोग किया । जिससे यह गर्भवती हो गई और समय पाकर उसने एक काले कानो वाले अमूल्य घोड़े को जन्म दिया ॥३०॥१९८॥ राजा ने बाद मे अश्वमेध यज्ञ किया और सारे राजाओ को जीतकर अपने साम्राज्य को बढाया । राजा ने यज्ञ-स्तम्भ बनवाकर कुड मे भलीभाँति होम किया और ब्राह्मणों के झुडो को पूरी तरह प्रसन्न किया ॥३१॥१९९॥ करोड़ो दान उसने दिए और अनेको व्यजन तैयार करवाए । इस कलियुग मे उसने बहुत बड़ा धर्म-कार्य किया । इस सारे दृश्य को देखने के लिए महारूपवती पटरानी वहाँ स्वय आ गयी ॥ ३२ ॥ २०० ॥ (दैवयोग से) वायु के झोके से उसके अग के वस्त्र उड गए और उसे नग्न देखकर विप्र हँसने लगे । राजा यह देखकर क्रोधित हो उठा । उसने

परम गरभं ॥ ३३ ॥ २०१ ॥ प्रिथम बाधिकै सरब मूँडे मुँडाए। पुनर एडुआ सीस ताके टिकाए। पुनर तपत कै खीर के मद्धि डार्यो। इमं सरब ब्रिप्रान कउ जारि मार्यो ॥ ३४ ॥ ॥ २०२ ॥ किते बाँधि कै बिप्र बाजे दिवारं। किते बाँध फासी दिए बिप्र मारं। किते बारि बोरे किते अगनि जारे। किते अद्धि चीरे किते बाँध फारे ॥ ३५ ॥ २०३ ॥ लग्यो दोख भूपं बढ्यो कुष्ट देही। सभै बिप्र बोले कर्यो राज नेही। कहो कउन सो बैठि कीजै बिचारं। दहै देह दोखं मिटै पाप भारं ॥ ३६ ॥ २०४ ॥ बोले राज द्वारं सभै बिप्र आए। बडे ब्यास ते आदि लै कै बुलाए। दिखै लाग शास्त्रं बोले बिप्र सरबं। कर्यो बिप्रमेधं बढ्यो भूप गरब ॥ ३७ ॥ २०५ ॥ सुनहु राज सरदूल बिद्या निधानं। कर्यो बिप्रमेधं सु जग्गं प्रमानं। भयो अकस्मातं कह्यो नाहि कउनै। करी जउ न होती भई बात तउनै ॥ ३८ ॥ २०६ ॥ सुनहु ब्यास ते परब

सभी विप्रो को पकड़ा तथा दूध और खाँड के कुडो मे उनको गर्वपूर्वक फेककर मार डाला ॥ ३३ ॥ २०१ ॥ पहले तो उनको बाँधकर उनके सिर मुँडवा दिए गए और उनके सिरो पर सनई की बनी गोल एव चौड़ी गेदे बाँधी गयी। फिर उन्हे गर्म दूध के कुडो मे डालकर जलाकर मार दिया गया ॥ ३४ ॥ २०२ ॥ कही विप्रो को दीवारो मे जिंदा दफन कर दिया तथा वहुतो को फाँसी दे दी। कइयो को पानी मे डुबाया तथा कइयो को अग्नि मे जला दिया। कइयो को आधा चीरकर फाड़ दिया गया ॥३५॥२०३॥ ब्राह्मणो को इस प्रकार मार डालने के कारण राजा के शरीर मे कुष्ट हो गया, तब राजा ने अन्य विप्रो को बुलाया और उनसे बड़ा स्नेह किया तथा कहा कि अब मुझे वह तरीका बताइए, जिससे मेरा यह पापकर्म नष्ट हो और मेरी देह का कोढ समाप्त हो ॥ ३६ ॥ २०४ ॥ राजद्वार पर आकर सभी विप्र बोले तथा व्यास आदि ऋषियो को भी बुलाया गया। ब्राह्मणो ने अपने शास्त्रादि देखे और कहा कि अधिक अभिमान हो जाने के कारण राजा ने विप्रमेध कर दिया है ॥३७॥२०५॥ हे सिंह के समान वलशाली राजा! तुम विद्याओ के समुद्र हो, परन्तु अब यह सारा संसार जानता है कि तुमने विप्रमेध कर दिया है। वैसे यह घटना किसी के कहने से नही हुई है अकस्मात हुई है। जो नही किया जाना चाहिए था, वही सब कुछ हो गया ॥ ३८ ॥ २०६ ॥ आप व्यास से महाभारत के अठारह पर्वो को श्रवण करे, आपके शरीर का सारा कुष्ट समाप्त हो जायगा। व्यास और विप्रो ने कहा कि हे राजन्!

अष्टं दसानं । दहै देह ते कुष्ट सरबं न्रिपानं । बोलं बिप्र ब्यासं सुनै लाग परबं । पर्यो भूप पाइन तजे सरब गरबं ॥ ३९ ॥ २०७ ॥ सुनहु राज सरदूल बिद्या निधानं । हुओ भरथ के बंस मै रग्घुरानं । भयो तउन के बंस मै राम राजा । दीजै छत्र दान निधानं बिराजा ॥ ४० ॥ २०८ ॥ भयो तउन की जद्द मै जद्दुराजं । दसं चार चौदह सु बिद्या समाजं । भयो तउन के बंस मै संतनेअं । भए ताहि के कउरओ पांडवेअं ॥ ४१ ॥ २०९ ॥ भए तउन के बंस मै ध्रितराष्ट्रं । महा जुद्ध जोधा प्रबोधा महास्त्रं । भए तउन के कउरवं कूर करमं । कियो छत्रणं जैन कुल छैण करमं ॥४२॥ ॥ २१० ॥ कियो भीखमे अग्र सैना समाजं । भयो क्रुद्ध जुद्धं समुह पंड राजं । तहाँ गरजिओ अरजनं परम बीरं । धनुर-बेद ज्ञाता तजे परम तीरं ॥ ४३ ॥ २११ ॥ तजी बीर बाना वरी बीर खेतं । हण्यो भीखमं सभै सैना समेतं । दई बाण सिहजा गरे भीखमैणं । जयं पत्र पायो सुखं पांडवैणं ॥ ४४ ॥ ॥ २१२ ॥ भए द्रोण (मू०ग्रं०१४५) सैनापती सैनपालं । भयो घोर जुद्धं तहाँ तउन कालं । हण्यो ध्रिष्टदोनं तजे द्रोण प्राणं ।

मन लगाकर आप सारे पर्वों को सुने । तब राजा अहंकार त्यागकर विप्रो के पैरो को छूने लगा ॥ ३९ ॥ २०७ ॥ हे विद्यानिधान एव सिंह के समान राजा! सुनो, भरत के वश मे रघु नामक एक राजा हुआ, जिसके वंश में आगे चलकर राम नामक राजा हुआ, जिसने अपना राज्य (अपने भाई भरत को) दान करके स्वय शोभा-प्रशंसा प्राप्त की ॥ ४० ॥ २०८ ॥ उन्ही के वश मे आगे चलकर राजा यदु हुए, जो सर्वविद्याओ से सुसज्जित थे । उनके वश मे राजा शान्तनु हुए, जिनसे कौरव और पांडव पैदा हुए ॥४१॥२०९॥ उनके वश मे आगे चलकर धृतराष्ट्र नामक महाबली एवं पराक्रमी राजा पैदा हुए । उन्ही धृतराष्ट्र से क्रूरकर्म करनेवाले कौरव पैदा हुए, जिन्होंने अपने कर्मो से अपने कुल का क्षय किया ॥ ४२ ॥ ॥२१०॥ (कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल मे) उन्होने भीष्म को सेनापति बनाया और पांडवों ने भीषण युद्ध किया । वही अर्जुन, जो धनुर्वेद का परम ज्ञाता था, गरजा और उसने बाण-वर्षा की ॥ ४३ ॥ २११ ॥ युद्धस्थल मे वीरों ने बाणो को घनघोर वर्षा कर भीष्म को सेना-समेत मार डाला । भीष्म को शर-शय्या पाडवो ने प्रदान की और उस दिन का युद्ध जीत लिया ॥४४॥ ॥ २१२ ॥ तब द्रोणाचार्य सेनापति हुए और वहाँ घमासान युद्ध

कर्‍यो जुद्ध ते देवलोकं पियाणं ॥ ४५ ॥ २१३ ॥ भए करण सैनापती छत्रपालं । मच्यो जुद्ध क्रुद्धं महाँ बिकरालं । हण्यो ताहि पंथं सदं सीसु कप्प्यो । गिर्‍यो तउण जुद्धिष्टरं राजु थप्प्यो ॥ ४६ ॥ २१४ ॥ भए सैण पालं बली सूल सल्ल्यं । भलीभाँति कुप्यो बली पंड दल्ल्यं । पुनर हसत जुद्धिष्टरं शकत बेधं । गिर्‍यो जुद्ध भूपं बली भूप बेदं ॥ ४७ ॥ २१५ ॥
॥ चौपई ॥ सल राजा जउनै दिन जूझा । कउरउ हार तवन ते सूझा । जूझत सल्ल भयो असतामा । कूट्यो कोट कटकु इक जामा ॥ १ ॥ २१६ ॥ ध्रिष्टदोनु मार्‍यो अति रथी । पांडव सैन भले करि मथी । पांडव के पाँचो सुत मारे । द्वापर मै बड कीन अखारे ॥२॥२१७॥ कउरउ राज कियो तब जुद्धा । भीम संगि हुइकै अति क्रुद्धा । जुद्ध करत कबहू नही हारा । कालबली तिह आन सँघारा ॥ ३ ॥ २१८ ॥
॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तहा भीम कुरराज सिउ जुद्ध मच्च्यो ।

होने लगा । धृष्टद्युम्न ने द्रोण पर आक्रमण कर उसे मार डाला और द्रोणाचार्य युद्धक्षेत्र से देवलोक प्रयाण कर गए ॥ ४५ ॥ २१३ ॥ तब कर्ण सेनापति हुए और महाप्रलयकारी विकराल युद्ध प्रारम्भ हो गया । उस रथ से नीचे उतरे हुए को अर्थात् रास्ते मे खड़े हुए को मार डाला गया, जिसे देखकर सत्य (सत्याचरण) का शीश भी (नियम-प्रतिकूल युद्ध को देखकर) काँप उठा । कर्ण के गिरते ही पांडवो की जीत सुनिश्चित हो गयी और युधिष्ठिर राजा के तौर पर (मानो) स्थापित हो गए ॥ ४६ ॥ ॥ २१४ ॥ अब शत्रुओ के लिए शूल के समान चुभनेवाला राजा शल्य (कौरव) सेना का सरक्षक नियुक्त हुआ । इसने कुपित होकर पाडवो का दलन किया, परन्तु युधिष्ठिर ने इसे अपनी शक्ति से वेध डाला और राजा शल्य भी युद्धभूमि मे गिर पड़ा ॥ ४७ ॥ २१५ ॥ ॥ चौपाई ॥ जिस दिन राजा शल्य रणक्षेत्र मे वीरगति पा गया, उसी दिन कौरवों को भान हो गया कि उनकी हार निश्चित है । शल्य के मरते ही अश्वत्थामा सेनापति बना और उसने एक ही रात मे असख्य सेना को मार डाला ॥ १ ॥ २१६ ॥ उसने अतिरथी धृष्टद्युम्न को मार डाला और पांडव सेना का भलीभाँति मथन किया । उसने पांडवो के पाँचो पुत्र मार डाले और इस प्रकार द्वापर मे भीषण युद्ध किया ॥२॥२१७॥ तब कौरवराज (दुर्योधन) ने अत्यन्त क्रोधित होकर भीम के साथ युद्ध किया । जो युद्ध में कभी नही हारा था, युद्धस्थल मे उसका भी महाकाल ने संहार कर दिया ॥ ३ ॥ २१८ ॥

छुटी ब्रह्म तारी महॉ रुद्र नच्चयो। उठै शब्द निरघात आघात बीरं। भए रुंड मुंडं तण तच्छ तीरं ॥ १ ॥ २१९ ॥ गिरे बीर एकं अनेकं प्रकारं। गिरे अद्ध अद्ध छुधं शस्त्रधारं। कटे कउरवं दूर सिदूर खेतं। नचे गिद्ध आवद्ध सावंत खेतं ॥ २ ॥ २२० ॥ बली मंडलाकार जुज्झै बिराजै। हसै गरज ठोकै भुजा हर दु गाजै। दिखावै बली मंडलाकार थानै। उभारै भुजा अउ फटाकं गजानै ॥ ३ ॥ २२१ ॥ सुभै स्वरन के पत्र बॉधे गजा मै। भई अगनि सोभा लखी कै धुजा मै। भिड़ामै भ्रमै मंडलाकार बाहै। जपो आप मै नेक घाइं सराहै ॥ ४ ॥ २२२ ॥ तहॉ भीम भारी भुजा शस्त्र बाहै। भली भॉति कै कै भलै सैन गाहै। जतै कउर पालं धरै छत्र धरमं। करै चित्र पावित्र बाचित्र करमं ॥ ५ ॥ २२३ ॥ सुभै बाजुबंदं छकै भूखनाणं। लसै मुकत का हार दुमलिअं हाणं। दोऊ

॥ भुजग प्रयात छद ॥ वहाँ जब दुर्योधन और भीमसेन मे युद्ध हुआ तो ब्रह्मा का भी ध्यान भग हो गया और रुद्र भी नृत्य करने लगा। वीरो के आघातो-प्रत्याघातो का भीषण शब्द होने लगा तथा वीरो के तन सिर-विहीन होकर लकडी के तनो के समान गिरने लगे। तीरो से शरीर छिलने लगे ॥ १ ॥ २१९ ॥ वीर अनेको प्रकार से गिरने लगे और शस्त्रो की धार छूने के फलस्वरूप उनके आधे शरीर धराशायी होने लगे। कौरव कटने लगे और रणक्षेत्र लाल हो उठा तथा बलशाली शूरवीरो के शरीरो पर गिद्ध नाचने लगे ॥२॥२२०॥ मडलाकार व्यूह बनाकर वीर जूझने लगे और भुजाओ को ठोककर अट्टहास करने लगे। उस मडलाकार व्यूह को सभी देख और एक-दूसरे को दिखा रहे है तथा भुजाओ को उभारकर गदाओ से प्रहार कर भीषण ध्वनि निकाल रहे हैं ॥ ३ ॥ ॥ २२१ ॥ गदाओ पर चढ़े हुए स्वर्णपत्र शोभायमान प्रतीत हो रहे हैं। ध्वजाएँ युद्धस्थल मे अग्नि की शिखाओ के समान ऊपर को उड रही है। आपस मे भिड़ रहे वीर गोल-गोल चक्कर लगाकर आपस मे भिड रहे है और भारी घाव लगानेवालो की सराहना कर रहे है ॥ ४ ॥ २२२ ॥ वहाँ महाबली भीम अपनी भारी भुजाओ से शस्त्र चला रहा है और भली-भाँति सेना का मथन कर रहा है। उधर कौरवो की ओर के राजा विचित्र प्रकार से युद्ध करते हुए युद्धधर्म का पालन कर अपने चित्त को पवित्र कर रहे है अर्थात् मरने की तैयारी कर रहे है ॥५॥२२३॥ वीरो के बाजूबद, आभूषण, मोतियो के हार एव पगड़ियाँ शोभित हो रही है; दोनो ही सेनाओ

मीर धीरं दोऊ धरम ओजं । दोऊ मानधाता महीपं कि भोजं ॥६॥
॥ २२४ ॥ दोऊ बीरबाना बधै अद्ध (मू०ग्रं०१४६) अद्धं ।
दोऊ शस्त्रधारी महाँ जुद्ध क्रुद्धं । दोऊ क्रूर करमं दोऊ जान बाहं ।
दोऊ हद्दि हिंदून शाहान शाहं ॥ ७ ॥ २२५ ॥ दोऊ शस्त्र
धारं दोऊ परम दानं । दोऊ ढाल ढीबाल हिंदू हिंदानं ।
दोऊ शस्त्र बरती दोऊ छत्रधारी । दोऊ परम जोधा महाँ
जुद्ध कारी ॥ ८ ॥ २२६ ॥ दोऊ खंड खंडी दोऊ मंड मंडं ।
दोऊ जोध जैतवारु जोधा प्रचंडं । दोऊ बीर बानी दोऊ बाहु
साहं । दोऊ सूर सैनं दोऊ सूरमाहं ॥ ९ ॥ २२७ ॥ दोऊ
चक्रवरती दोऊ शस्त्रबेता । दोऊ जग जोधी दोऊ जगजेता ।
दोऊ चित्र जोती दोऊ चित्र चापं । दोऊ चित्र बरमा दोऊ
दुष्ट तापं ॥ १० ॥ २२८ ॥ दोऊ खंड खंडी दोऊ मंड मंडं ।
दोऊ चित्र जोती सु जोधा प्रचंडं । दोऊ मत्त बारुंन बिक्रम
समानं । दोऊ शस्त्रबेता दोऊ शस्त्रपानं ॥ ११ ॥ २२९ ॥

में परम वीर एवं ओजस्वी व्यक्ति है । दोनो ही वीर (दुर्योधन और भीम) मांधाता अथवा परमवीर भोज के समान है ॥ ६ ॥ २२४ ॥ दोनों ने खड-खड कर देनेवाले तीरो को कसा हुआ है और दोनो शस्त्रधारी महा-क्रोधित होकर युद्ध करने लगे । दोनो ही क्रूरता से युद्ध करनेवाले आजानबाहु है और दोनों ही हिन्दूधर्म की चरम सीमा तक शान रखनेवाले सम्राट् है ॥ ७ ॥ २२५ ॥ दोनो ही शस्त्रधारी परमदानी और ढाल से अपनी सुरक्षा करनेवाले भारतवर्ष के भारतीय है । दोनो ही शस्त्रो के व्यवहार, परमचतुर और दोनो ही छत्रधारी राजा हैं । दोनो ही परम योद्धा एवं युद्ध के कारण हैं अर्थात् दोनो की एक-दूसरे से गहरी शत्रुता है ॥ ८ ॥ २२६ ॥ दोनो ही शत्रुओ को खडित करनेवाले तथा इच्छानुसार उन्हें पुन राज्य से मडित कर देनेवाले प्रचंड रूप से विजेता योद्धा है । दोनो ही वीर वाण चलाने मे निपुण, भुजाओ के बली, बलशाली सेना वाले शूरवीर है ॥ ९ ॥ २२७ ॥ दोनो ही चक्रवर्ती एव शस्त्रो के रहस्य एवं व्यवहार को भलीभाँति जाननेवाले है । दोनो ही युद्ध के योद्धा एव विजेता हैं । दोनो ही सौंदर्ययुक्त है, सुन्दर धनुषो वाले, लौह-कवचों वाले तथा दुष्टो का नाश करनेवाले हैं ॥ १० ॥ २२८ ॥ दोनो ही खड्गो से शत्रुओ का नाश कर युद्ध का मंडन करनेवाले, सुदर स्वरूप वाले प्रचंड योद्धा हैं । मस्त हाथियो जैसे दोनो ही विक्रम के समान दिखाई देने वाले शस्त्रो के व्यवहार मे निपुण हाथो मे शस्त्र पकड़े हुए है ॥ ११ ॥ ॥ २२९ ॥ दोनो परम क्रुद्ध योद्धा, शस्त्रवेत्ता एव सौंदर्य की खान हैं ।

दोऊ परम जोधी दोऊ क्रुद्धवानं । दोऊ शस्त्रनेता दोऊ रूप-खानं । दोऊ छत्रपालं दोऊ छत्र धरमं । दोऊ जुद्ध जोधा दोऊ क्रूर करमं ॥ १२ ॥ २३० ॥ दोऊ मंडलाकार जूझं बिराजै । हथै हर दु ठाकै भुजा पाइ गाजै । दोऊ खत्रहाणं दोऊ खत्र खंडं । दोऊ खग्ग पाणं दोऊ छेत्र मंडं ॥१३॥२३१॥ दोऊ चित्र जोती दोऊ चार बिचारं । दोऊ मंडलाकार खंडा अवारं । दोऊ खग्ग खूनी दोऊ खत्रहाणं । दोऊ खत्र खेता दोऊ छत्र पाणं ॥ १४ ॥ २३२ ॥ दोऊ बीर बिथ आस्त धारे निहारे । रहे ब्योम मै भूप गउनै हकारे । हका हक्क लागी धनं धंन जंप्यो । चक्यो जच्छराजं प्रिथी लोक कंप्यो ॥ १५ ॥ ॥ २३३ ॥ हन्यो राज दुरजोधनं जुद्धभूमं । भजे सभै जोधा चली धाम धूमं । क्र्यो राज निहकंटकं कउरपालं । पुनर जाइकै मंझि सिज्झे हिवालं ॥ १६ ॥ २३४ ॥ तहा एक गंध्रब सिउ जुद्ध मचच्यो । तहा भूरपालं धुरारंगु रचच्यो । तहा शत्र

ये दोनों ही छत्रपाल, क्षत्रिय धर्म को पूरा करनेवाले तथा युद्ध मे क्रूर कर्म करनेवाले बलशाली है ॥ १२ ॥ २३० ॥ दोनो गोल-गोल घूमकर एक-दूसरे से जूझ रहे है और शोभायमान हो रहे हैं और दोनो ही भुजाओं और पैरो को पटककर ध्वनि कर रहे हैं । दोनो ही क्षत्रिय हैं और दोनो ही क्षत्रियो का खडन करनेवाले भी है । दोनो ने ही हाथ मे खड्ग धारण कर रखे है तथा दोनो ही रणक्षेत्र का मंडन करनेवाले है ॥ १३ ॥ ॥२३१॥ दोनो ही परम सुन्दर एवं विचारवान हैं और गोल-गोल घूमकर खड्ग से वार कर रहे है । क्षत्रियो को मारनेवाले इन दोनो क्षत्रियो के खड्ग बहुत सा रक्त बहा देने में सक्षम है । दोनो ही युद्धस्थल मे प्राण तक की बाजी लगा देनेवाले है ॥ १४ ॥ २३२ ॥ दोनो वीरो ने अस्त्रों को हाथ मे पकड रखा है और ऐसा दिखाई दे रहा है कि व्योममडल में पहुँचे हुए वीर नरेश इन दोनो को बुला रहे है । इनके घमासान युद्ध को देखकर वे 'धन्य, धन्य' कह रहे है और इस युद्ध के प्रभाव से यक्षराज भी चकित हो उठा है तथा सपूर्ण पृथ्वी काँप रही है ॥ १५ ॥ २३३ ॥ युद्धस्थल मे राजा दुर्योधन मार डाला गया है और इस तथ्य की धूम मचते ही सारी सेना भाग खड़ी हुई । पाडवो ने कौरववशियो पर निष्कटक राज किया और अन्त मे हिमालय पर्वत पर चले गए ॥ १६ ॥ २३४ ॥ वही एक गधर्व से युद्ध हुआ और उस गधर्व ने विचित्र वेश धारण कर लिया । वही भीम ने शत्रु के हाथियो को उठा-उठाकर ऊपर की ओर

के भीम हस्ती चलाए। फिरै मद्धि गैणं अजउ लउ न आए ॥ १७ ॥ २३५ ॥ सुनै बैन कउ भूप इउ ऐंठ नाकं। कर्यो हास मंदं बुल्यो इम बाकं। रह्यो नाक मै कुष्ट छत्रो सबानं। भई तउन ही रोग ते भूप हानं ॥ १८ ॥ २३६ ॥ ॥ चउपई ॥ इम चउरासी बरख प्रमानं। सपत (मू०ग्रं०१४७) माह चउबीस दिनानं। राजु कियो जनमेजा राजा। काल निशानु बहुरि सिरि गाजा ॥ १९ ॥ २३७ ॥

॥ इति जनमेजा समापत भइआ ॥

॥ चउपई ॥ असुमेध अरु असमेद हारा। महासूर सतबान अपारा। महाँबीर बरिआर धनखधर। गावत कीर्ति देस सभ घर घर ॥१॥२३८ ॥ महाँबीर अरु महाँ धनख-धर। काँपत तीन लोक जा के डर। बड महीप अरु अखंड प्रतापा। अमित तेज जापत जग जापा ॥२॥२३९॥ अजैसिंघ उत सूर महाना। बड महीप दस चार मिधाना। अनबिकार

फेंका और वे हाथी आज तक आकाश में घूम रहे है तथा वापस धरती पर नही आए ॥ १७ ॥ २३५ ॥ इस वचन को सुनकर राजा (जनमेजय) इस प्रकार नाक सिकोड़कर मुस्कुराया, मानो ये वाक्य (हाथियो को ऊपर फेकनेवाले) ऐसे ही (अर्धसत्य) हो। राजा के इस प्रकार अविश्वास करने के कारण उसकी नाक पर कुष्ट बच ही गया और अन्ततः इसी रोग से राजा की मृत्यु हुई ॥ १८ ॥ २३६ ॥ ॥ चोपाई ॥ इस प्रकार चौरासी वर्ष, सात महीने, चौबीस दिन राज्य करने के पश्चात जनमेजय के सिर पर भी काल का नगाड़ा आ बजा अर्थात् वह मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥१९॥२३७॥

॥ इति जनमेजय कालगत हुआ ॥

॥ चोपाई ॥ अश्वमेघ और असमेद दोनों ही परम शूरवीर एवं सत्यव्रती थे। ये महाबलशाली और धनुषधारी थे। इनकी कीर्ति घर-घर मे गाई जाती थी ॥ १ ॥ २३८ ॥ इन महावीर एव धनुषधारियो के डर से तीनो लोक काँपते थे। ये बड़े महान् अखड प्रतापशाली राजा थे और इनका अपरिमित तेज सारे ससार मे जाना जाता था ॥ २ ॥ २३९ ॥ दूसरी ओर अजयसिंह महान् शूरवीर एवं चौदह विद्याओ का समुद्र था। यह अतुल बलशाली शूरवीर निर्विकार था और इसने अपने भुजबल से

अनतोल अतुल बल । अर अनेक जीते जिन दल मल ॥ ३ ॥ ॥ २४० ॥ जिन जीते संग्राम अनेका । शस्त्र अस्त्र धरि छाडन एका । महा सूर गुनवान महाना । मानत लोक सगल जिह माना ॥ ४ ॥ २४१ ॥ मरन काल जनमेजे राजा । मंत्र कियो मत्रीन समाजा । राज तिलक भूपत अमखेखा । निरखत भए न्रिपत की रेखा ॥ ५ ॥ २४२ ॥ इन महि राज कवन कउ दीजै । कउन न्रिपत सुत कउ न्रिप कीजै । रजिआ पूत न राज की जोगा । याहि के जोग न राज के भोगा ॥ ६ ॥ २४३ ॥ असुमेद कहु दीनो राजा । जै पति भाख्यो सकल समाजा । जनमेजा की सुगति कराई । असुमेद कै बजी बधाई ॥ ७ ॥ २४४ ॥ दूसर भाइ हुतो जो एका । रतन दिए तिह दरब अनेका । मंत्री कै अपना ठहरायो । दूसर ठउर तिसहि बैठायो ॥ ८ ॥ २४५ ॥ तीसर जो रजिआ सुत रहा । सैनपाल ताको पुन कहा । बखशी करि ताको ठहरायो । सभ दल को तिह कामु चलायो ॥ ९ ॥ २४६ ॥

अनेको दलो को जीतकर उनकी कांति को मलिन कर दिया था ॥ ३ ॥ ॥ २४० ॥ इसने अनेक सग्रामों को जीता था और किसी भी शत्रु को हाथ में अस्त्र-शस्त्र पकड जीवित नही छोडा था । यह महान् गुणवान एवं शूरवीर था, इसे सारा ससार मानता था ॥ ४ ॥ २४१ ॥ मृत्यु के समय राजा जनमेजय ने अपने मत्री-समाज से विचार-विमर्श किया कि राज्यतिलक किसको दिया जाय । इसी तात्पर्य को ध्यान मे रखकर सभी राजपुत्रो के हाथ की राज्य पाने की रेखाओ को देखने-समझने लगे ॥ ५ ॥ २४२ ॥ इनमे से राज्य किसको दिया जाय, यह विचार होने लगा । सभी सोचने लगे कि राजा के किस पुत्र को राजा बनाया जाय । दासीपुत्र तो राज्य के योग्य नही है और न ही यह राज्य के भोगों के लिए उपयुक्त है ॥ ६ ॥ २४३ ॥ असमेद को राज्य दे दिया गया और सारे समाज ने जय-जयकार की ध्वनि की । इसके बाद जनमेजय का क्रिया-कर्म किया गया और असमेद के घर खुशी के गीत गाए जाने लगे ॥ ७ ॥ २४४ ॥ उसका जो दूसरा एक भाई था, उसे रत्न तथा अपार द्रव्य दिया तथा उसे अपना मत्री बनाकर अपने साथ ही दूसरे स्थान पर बैठाया ॥ ८ ॥ २४५ ॥ तीसरा जो दासी का पुत्र था, उसे सेनापति बना दिया और उसे कर आदि इकट्ठा करने का काम दे दिया । उसने सब सैन्यदल का काम देखना शुरू कर दिया ॥ ९ ॥

राजु पाइ सभहू सुख पायो । भूपत कउ नाचब सुख आयो । तेरह सै चौसठ मरदंगा । बाजत है कई कोट उपंगा ।।१०।।२४७।। दूसर भाइ भए मद अंधा । देखत नाचत लाइ सुगंधा । राज साज दुहहूँ ते भूला । वाहि कै जाइ छत्र सिर झूला ।। ११ ।। ।। २४८ ।। करत करत बहु दिन अस राजा । उन दुहूँ भूल्यो राज समाजा । मद करि अंध भए दोउ भ्राता । राज करम की बिसरी बाता ।। १२ ।। २४९ ।। ।। दोहरा ।। (मू०ग्रं०१४८) जिह चाहे ताको हने जो बाछै सो लेइ । जिह राखै सोई रहै जिह जानै तिह देइ ।। १३ ।। २५० ।। ।। चउपई ।। ऐसी भाँत कीनो इह जब ही । प्रजालोक सभ बस भए तब ही । अउ बसि होइ गए नेबख वासा । जो राखत थे न्रिप की आसा ।। १ ।। २५१ ।। एक दिवस तिहूँ भ्रात सुजाना । मंडस चौपर खेल खिलाना । दाउ समै कछु रशक बिचार्यो । अजै सुनत इह भाँत उचार्यो ।।२।।२५२।। ।। दोहरा ।। कहा

।। २४६ ।। राज्य प्राप्त कर सभी प्रसन्न हो गए और अब राजा को नृत्य देखने मे सुख मिलने लगा। तेरह सौ चौसठ प्रकार के मृदग तथा अन्य कई वाद्ययंत्र उसके सामने बजने लगे ।। १० ।। २४७ ।। दूसरे भाई शराब पीकर मस्त रहने लगा और इत्रादि सुगध लगाकर नृत्य देखने मे सुख पाने लगा। राजकाज दोनो को भूल गया और अब उसी (अजय सिह) के सिर पर छत्र झूलने लगा ।। ११ ।। २४८ ।। उन दोनो भाइयो ने इसी प्रकार बहुत से दिन व्यतीत किए और धीरे-धीरे उनको राज-समाज और उसके व्यवहार भूलने लगे। नृत्य और शराब की मस्ती में दोनो भाई बुरी तरह लिप्त हो गए और राज करने की बात उन्हे भूल ही गई ।। १२ ।। २४९ ।। ।। दोहा ।। (दासीपुत्र अजयसिह) जिसको चाहता है, पकडकर मार देता है और जो कोई जो कुछ चाहता है, उसी से प्राप्त भी कर लेता है। जिसको वह चाहे सुरक्षा प्रदान करता है और जिसे जो चाहे वह दे देता है ।। १३ ।। २५० ।। ।। चौपाई ।। उसने जब इस प्रकार का व्यवहार करना शुरू किया तो प्रजा उसके वश मे हो गई। सब चौकीदार, चोवदार उसके वश मे हो गए। ये सब पहले अपनी कामनाओ की पूर्ति के लिए राजा की ओर ताका करते थे ।। १ ।। २५१ ।। एक दिन तीनो बुद्धिमान भाइयो ने चौपड़ का खेल खेलने का आयोजन किया। दाँव लगाते समय कुछ परस्पर रोष को देखकर अजयसिह को सुनाकर इस प्रकार कहा ।। २ ।। २५२ ।। ।। दोहा ।। यह दाँव कैसे खेले, कैसे इससे दूसरे को बाँधे और जो दासीपुत्र के रूप में शत्रु है

करै दा कह परै कह यह बाधै सूत। कहा शत्रु याते मरै जो रजिआ का पूत ॥ ३ ॥ २५३ ॥ ॥ चउपई ॥ यहै आज हम खेल बिचारी। सो भाखत है प्रगट पुकारी। एकहि रतन राज धनु लीना। दुतिऐ अस्व उष्ट गज लीना ॥ १ ॥ २५४ ॥ कुअरै बाट सैन सभ लीआ। तीनहु बाट लीन कर कीआ। पासा ढार धरै कस दावा। कहा खेल धौ करै करावा ॥ २ ॥ ॥ २५५ ॥ चउपर खेल परी तिह माहा। देखत ऊच नीच नर नाहा। ज्वाला रूप सुपरधा बाढी। भूपन फिरत सँघारत काढी ॥ ३ ॥ २५६ ॥ तिनकै बीच परी अस खेला। कटन सुहित भयो मिटन दुहेला। प्रिथमै रतन दरब बहु लायो। बस्त्र बाज गज बहुत हरायो ॥ ४ ॥ २५७ ॥ दुहूँअन बीच सपरधा बाढा। दुह दिस उठे सुभट असि काढा। चमकहि कहूँ असन की धारा। बिछ गई लोथ अनेक अपारा ॥ ५ ॥ ॥ २५८ ॥ जुग्गन दैत फिरहि हरिखाने। गीध सिवा बोलहि अभिमाने। भूत प्रेत नाचहि अरु गावहि। कहूँ कहूँ शबद बैताल सुनावहि ॥ ६ ॥ २५९ ॥ चमकत कहूँ खगन की

उसको कैसे मारा जाय ? ॥३॥२५३॥ ॥ चौपाई ॥ पुनः वे प्रकट रूप से कहते है, आज हम लोगों ने खेल का विचार किया है। यह कहते हुए एक ने राज्य-रत्नादि ले लिये तथा दूसरे ने अश्व-हाथी व ऊँट ले लिये ॥ १ ॥ ॥२५४॥ उन कुँअरो ने सारी सेना बांट ली और तीन हिस्से करके बांट लिये। अब वे सोचने लगे कि पाँसा फेककर कैसे दाँव लगाया जाय और कैसे समझा जाय कि कौन क्या दाँव लगाएगा ? ॥२॥२५५॥ चौपड़ का खेल वहाँ शुरू हो गया और नर-नारी, ऊँच-नीच सभी खेल देखने लगे। आपसी स्पर्धा ज्वाला रूप से बढ़ने लगी और यह ईर्ष्या उनको (राजकुमारों को) जलाने लगी ॥३॥२५६॥ उनके बीच मे ऐसा पेचीदा खेल आरम्भ हो गया कि अब दूसरे को हर हाल मे काटना हित बन गया और स्वय हारना कठिन प्रतीत होने लगा। पहले रत्न-द्रव्य आदि लाए गए और बहुत से हाथी-घोड़ों को हारा गया ॥ ४ ॥ २५७ ॥ दोनों पक्षों मे (अजयसिंह तथा उसके भाइयो में) स्पर्धा इतनी बढ़ गई कि दोनों पक्षो के शूरवीरो ने तलवारे खीच ली। तलवारों की धारे चमकने लगी और धरती पर अनेको लाशे बिछ गयी ॥ ५ ॥ २५८ ॥ योगिनियाँ एव दैत्य प्रसन्न हो घूमने लगे तथा गिद्ध एव शिव के गण अभिमानपूर्वक बोलने लगे। भूत-प्रेतादि नाचने-गाने लगे और बैताल भी अनेक प्रकार की आवाजें निकालने

धारा। बिथ गए रुंड भसुंड अपारा। चिंसत कहूँ गिरे गज माते। सोवत कहूँ सुभट रण ताते ॥ ७ ॥ २६० ॥ हिंसत कहूँ गिरे है घाए। सोवत क्रूर सलोक पठाए। कटि गए कहूँ कउर अरु चरमा। कटि गए गज बाजन के बरमा ॥८॥२६१॥ जुग्गन देत कहूँ किलकारी। नाचत भूत बजावत तारी। बावन बीर फिरै चहुँ ओरा। बाजत मारू राग सिधउरा ॥६॥ ॥ २६२ ॥ रण असकाल जलध जिम गाजा। भूत पिसाच भीर भै भाजा। रण मारू इह दिस ते बाज्यो (मू०ग्रं०१४६)। काइरु हुतो सो भी नहि भाज्यो ॥ १० ॥ २६३ ॥ रहि गई सूरन खग की टेका। कटि गए सुंड भसुंड अनेका। नाचत जोगन कहूँ बितारा। धावत भूत प्रेत बिकरारा ॥ ११ ॥ ॥ २६४ ॥ धावत अद्ध कमद्ध अनेका। मंडि रहे रावत गडि टेका। अनहद राग अनाहद बाजा। काइरु हुता वहै नही भाजा ॥ १२ ॥ २६५ ॥ मंदर तूर करूर करोरा। गाज

लगे ॥ ६ ॥ २५९ ॥ खडग की धारे चमकने लगी और सिरो के बिना धड़ मुंडित होकर धराशायी होने लगे। कही चिंघाड़ते हुए मदमस्त हाथी गिरने लगे तथा कही बड़े-बड़े शूरवीर धरती पर लोटने लगे ॥ ७ ॥ ॥ २६० ॥ कही घोड़े हिनहिनाते हुए घाव खाकर गिर पड़े और क्रूर शूरवीर स्वर्गलोक जाने लगे। कही कवच और तन कट गए तथा कही गज-अश्वो के कवच भी छिन्न-भिन्न हो गए ॥ ८ ॥ २६१ ॥ कही योगिनियाँ किलकारियाँ मार रही हैं और भूत नाचकर तालियाँ बजा रहे हैं। बावन (बैताल) वीर चारो ओर घूम रहे है और मारू राग (युद्ध का राग) बजाकर ध्वनि कर रहे है ॥ ९ ॥ २६२ ॥ युद्ध ऐसे हुआ मानो समुद्र गरज रहा हो और गर्जन सुनकर भूत-पिशाच भागने लगे। युद्ध की ओर आकर्षित करनेवाला युद्ध का नगाडा इस प्रकार बजने लगा कि कायरों का भी मन लड़ने के लिए उद्यत हो उठा और वे भी युद्धस्थल से नही भागे ॥ १० ॥ २६३ ॥ शूरवीरो को अब मात्र खडग का ही आश्रय था और खड़गो द्वारा अनेक हाथियो की सूंड़ें कट गयी। योगिनियाँ और बैताल नाचने लगे और विकराल भूत-प्रेत दौड़ने लगे ॥ ११ ॥ २६४ ॥ कबंध आधे धड़ो के साथ इधर-उधर दौड़ने लगे और राजागण युद्ध में स्थिर होकर युद्ध करने लगे। इस प्रकार के वाजे बजने लगे कि कायर भी युद्ध से नही भागे ॥ १२ ॥ २६५ ॥ करोड़ो ढोल तथा बाजे आदि बजने लगे और गरजकर हाथी भी राग अलापने लगे। तलवारे

सरावत राग सिधौरा। झमकसि दामन जिम करवारा। बरसत बानन मेघ अपारा ।। १३ ।। २६६ ।। घूमहि घाइल लोह चुचाते। खेल बसंत मनो मद माते। गिर गए कहूँ जिरह अरु ज्वाना। गरजत गिद्ध पुकारत स्वाना ।। १४ ।। ।। २६७ ।। उन दल दुहूँ भाइन को भाजा। ठाँढ न सक्यो रंकु अरु राजा। तक्यो ओडछा देस बिचच्छन। राजा न्रिपत तिलक सुभ लच्छन ।। १५ ।। २६८ ।। मद करि मत्त भए जे राजा। तिनके गए ऐस ही काजा। छीन छान छित छत्र फिरायो। महाराज आप ही कहायो ।। १६ ।। २६९ ।। आगे चले असमेध हारा। धावहि पाछे फउज अपारा। गेजहि न्रिपत तिलक महाराजा। राज पाट बाहू कउ छाजा ।। १७ ।। २७० ।। तहा इक आहि सनउढी ब्रहमन। पंडत बडो महा बड गुन जन। भूपहि को गुर सभहुँ की पूजा। तिह बिनु अवरु न मानहि दूजा ।। १८ ।। २७१ ।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। कहूँ ब्रहम बानी करहि बेद चरचा। कहूँ बिप्र बैठे करहि ब्रहम अरचा। तहा बिप्र सन्नौढ ते एक लच्छन।

विजलियो की तरह चमकने लगी और बाण बादलो की तरह बरसने लगे ।। १३ ।। २६६ ।। घायल वीर रक्त निचोडते हुए ऐसे घूम रहे थे, मानो बसत ऋतु मे होली खेल रहे हो। कही जवान तथा कही उनके कवच पड़े हुए है तथा गिद्ध और कुत्ते चिल्ला रहे थे ।। १४ ।। २६७ ।। उन दोनो भाइयो की सेना भाग खड़ी हुई और कोई राजा-रंक युद्धस्थल मे टिक न सका। राजा दौड़कर उड़ीसा देश के राजा तिलक की ओर भाग गया ।। १५ ।। २६८ ।। जो भी राजा अपने मद मे मस्त हो जाते हैं, उनके सभी कार्य ऐसे ही विनष्ट हो जाते हैं। अजयसिह ने इस प्रकार राज्य छीनकर अपने सिर पर छत्र धारण किया तथा स्वय को महाराजा कहलाया ।। १६ ।। २६९ ।। असमेद हारकर आगे-आगे भागा और पीछे-पीछे अपार सेना उसे दौड़ाए चली। वह जिस सम्राट्-तिलक के पास गया, उसका भी राजपाट भव्य था ।। १७ ।। २७० ।। वहाँ एक सनौढ्य कुल का ब्राह्मण रह रहा था जो महान् पंडित और गुणी था। वह राजा का गुरु था और सभी उसकी पूजा करते थे और उसके बिना अन्य किसी को मान्यता नही देते थे ।। १८ ।। २७१ ।। ।। भुजग प्रयात छद ।। कही विप्र अपने मुख से वेद-चर्चा कर रहे थे और वहाँ पर बैठे विप्र कही ब्रह्म का पूजन कर रहे थे। उस सनौढ्य ब्राह्मण की एक

करै बकल बस्त्रं फिरै बाइ भच्छन ॥ १ ॥ २७२ ॥ कहूँ बेद स्यामं सुरं साथ गावै । कहूँ जुजरबेदं पड़े मान पावै । कहूँ रिगं बाचै महा अथरबेदं । कहूँ ब्रहम सिच्छा कहूँ बिशन भेदं ॥ २ ॥ २७३ ॥ कहूँ अष्ट द्वै अवतार कत्थै कथानं । दसं चार चउदाह बिद्या निधानं । तहा पंडतं बिप्र परमं प्रबीनं । रहे एक आसं निरासं बिहीनं ॥ ३ ॥ २७४ ॥ कहूँ कोकसारं पड़े नीत धरमं । कहूँ न्याइ शास्त्रं पड़े छत्र करमं । कहूँ ब्रहम बिद्या पड़ै ब्योमबानी । कहूँ प्रेम सिउ पाठि पठिऐ पिड़ानी ॥ ४ ॥ २७५ ॥ (मू०ग्रं०१५०) कहूँ प्राक्रितं नाग भाखा उचारहि । कहूँ सहसक्रित ब्योमबानी बिचारहि । कहूँ शास्त्र संगीत मै गीत गावै । कहूँ जच्छ गंध्रब बिद्या बतावै ॥५॥ ॥ २७६ ॥ कहूँ न्याइ मीमासका तरक शास्त्रं । कहूँ अगनिबाणी पड़ै ब्रहम अस्त्रं । कहूँ बेद पातंजलै शेख कानं । पड़ै चक्र चवदाह बिद्या निधानं ॥ ६ ॥ २७७ ॥ कहूँ भाख बाचै कहूँ कोमदीअं । कहूँ सिद्धका चंद्रका सरसुतीयं । कहूँ

विशेषता थी कि वह वल्कल वस्त्र धारण करता था और आहार के नाम पर वायु का आहार करता था अर्थात् कुछ नही खाता था ॥ १ ॥ २७२ ॥ (उस राज्य मे) कही सामवेद का गायन हो रहा था और यजुर्वेद पढकर सम्मान प्राप्त किया जा रहा था। कही ऋगवेद तथा कही अथर्ववेद का पठन हो रहा था; कही ब्रह्मशिक्षा और कही विष्णु-भेदो की चर्चा चल रही थी ॥ २ ॥ २७३ ॥ कही दशावतार की कथा चल रही थी और लोग चौदह विद्याओ के समुद्र थे। वहाँ वह पडित रहता था, जो परम प्रवीण और सब आशाओ-निराशाओं से विहीन था ॥ ३ ॥ २७४ ॥ कही कोकशास्त्र, नित्यधर्म, न्यायशास्त्र, क्षत्रिय-कर्म का पठन-पाठन हो रहा था और कही ब्रह्मविद्या तथा व्योमविद्या का अध्ययन चल रहा था। कही प्रेमपूर्वक युद्धदेवी के स्तोत्र का पाठ चल रहा था ॥४॥२७५॥ कही प्राकृत भाषा, नागलोक भाषा का उच्चारण हो रहा है तथा कही सहसकृत तथा व्योमवाणी (सस्कृत) का विचार चल रहा है। कही शास्त्र-संगीत में गायन चलता है, तो कही यक्ष-गधर्व विद्या का विचार चल रहा है ॥ ५ ॥ २७६ ॥ कही न्याय, मीमांसा, तर्कशास्त्र तथा कही अग्नि-बाणो और कही ब्रह्मास्त्रों को पढने की विद्या का विचार चल रहा है। कही पातंजल योग और साख्य का चौदह विद्याओ के समुद्र पठन कर रहे है ॥ ६ ॥ २७७ ॥ कही कौमुदी का वाचन एवं व्याख्या हो रहा है

ब्याकरण बैसिकालाप कत्थै। कहूँ प्राक्रिआकास का सरब मत्थै ।। ७ ।। २७८ ।। कहूँ बैठ मानोरमा ग्रंथ बाचै। कहूँ गाइ संगीत मै गीत नाचै। कहूँ शस्त्र की सरब बिद्या बिचारै। कहूँ अस्त्र बिद्या बाचै शोक टारै ।। ८ ।। २७९ ।। कहूँ गदा को जुद्ध कै कै दिखावै। कहूँ खड़ग बिद्या जुझै मानु पावै। कहूँ बाक बिदिआहि छोरं प्रबानं। कहूँ जलतुरं बाक बिद्या बखानं ।। ९ ।। २८० ।। कहूँ बैठके गारड़ी ग्रंथ बाचै। कहूँ साँभवी रास भाखा सु राचै। कहूँ जामनी तोरकी बीर बिद्या। कहूँ पारसी कोच बिदिआ अभिद्‌या ।। १० ।। २८१ ।। कहूँ शस्त्र की घाउ बिदिआ बतैगो। कहूँ अस्त्र को पातका पै चलैगो। कहूँ चरम की चार बिद्या बतावै। कहूँ ब्रहम बिद्या करै दरब पावै ।। ११ ।। २८२ ।। कहूँ न्रित्त बिद्या कहूँ नाद भेवं। कहूँ परम पौराम कत्थै कतेबं। सभै अच्छ्र बिद्या सभै देस बानी। सभै देस पूजा समसतो प्रधानी ।। १२ ।। २८३ ।। कहूँ सिघनी दूध बच्छे चुँघावै। कहूँ सिंघ लै संग गउआँ चरावै।

और कही सिद्धियो से सबधित चंद्रिकाओं की विद्या पढ़ी जा रही है। कही व्याकरण से सबधित कथन कहे जा रहे है। कही काशी की क्रियाओ-विद्याओ का मंथन चल रहा है ।। ७ ।। २७८ ।। कही मनोरम ग्रथो का पाठ चल रहा है, कही गीत-सगीत और नृत्य चल रहा है। कही शस्त्र-विद्या का विचार और कही भय को दूर करनेवाली अस्त्र-विद्या का अध्ययन चल रहा है ।। ८ ।। २७९ ।। कही गदायुद्ध का प्रदर्शन चल रहा है, तो कही खड्ग-विद्या मे जूझकर लोग मान प्राप्त कर रहे हैं। कही प्रवीण गुणीजन वाक्य-विद्या और कही जलक्रीडा-विद्या का व्याख्यान कर रहे हैं ।। ९ ।। २८० ।। कही गरुड पुराण का वाचन चल रहा है, कही शिवस्तोत्रो की रचना हो रही है। कही यवन तथा कही तुर्की वीर विद्या और पारसी कवच-विद्या का अध्ययन चल रहा है ।। १० ।। ।। २८१ ।। कही शस्त्रो के घावों से सबधित विद्या का व्याख्यान और कही अस्त्र को गिराने पर वार्त्ता चल रही है। कही चर्म की चार विद्याओ के बारे में बताया जा रहा है और ब्रह्मविद्या को व्याख्यायित कर द्रव्य अर्जन किया जा रहा है ।। ११ ।। २८२ ।। कही नृत्य-विद्या, कही नाद-विवेचन, कही पुराणो का कातिब लोग अर्थात् विद्वान लोग व्याख्यान कर रहे हैं। सभी अक्षरो अर्थात् सब प्रकार की विद्या और वाणियो तथा सभी देशों की पूजा-पद्धतियो को प्रधानता दी जा रही है ।। १२ ।। २८३ ।।

फिरै सरप न्रिक्रुद्ध तौ निसथलानं । कहूँ शास्त्री सत्र कत्थै कथानं ॥ १३ ॥ २८४ ॥ तथा सत्र मित्रं तथा मित्र सत्रं । जथा एक छत्री तथा परम छत्रं । महाँ ग्यो अजैसिंघ सूरा सु क्रुद्धं । हन्यो अस्समेधं कर्यो धरम जुद्धं ॥ १४ ॥ २८५ ॥ रजीआ पुत्र दिक्ख्यो डरे दोइ भ्रातं । गहो शरण बिप्पं बुल्यो एव बातं । गुवा हेम सरबं मिले प्रान दानं । सरन्नं सरन्नं सरन्नं गुरानं ॥ १५ ॥ २८६ ॥ ॥ चउपई ॥ तब भूपति तह दूत पठाए । त्रिपत सकल दिज किए रिझाए । अस्समेध अरु असुमेध हारा । भाज परे घर ताक (मू०ग्रं०१५१) तिहारा ॥१॥ ॥ २८७ ॥ कै दिज बाँध देहु द्वै मोहू । ना तर धरो दुजनवा तोहू । करउ न पूजा देउ न दाना । तो को दुख देवौ दिज नाना ॥ २ ॥ २८८ ॥ कहा म्रितक दुइ कठ लगाए । देहु

कही सिंहनी गाय के बछड़ो को दूध पिला रही थी तथा अभयता इतनी थी कि सिंह और गाये साथ-साथ चरती थी । सभी क्रोध-विहीन होकर शिथिल अवस्था में विचरण कर रहे थे और उस देश मे ऐसा अच्छा वातावरण था कि कही वैर-भाव त्यागकर शत्रु शास्त्री बनकर शत्रु को उपदेश दे रहे थे ॥ १३ ॥ २८४ ॥ वहाँ जैसे शत्रु थे वैसे ही मित्र थे तथा जैसे मित्र थे वैसे ही शत्रु थें अर्थात् शत्रु-मित्र कोई नही था । जैसे एक क्षत्री था, वैसे ही सभी अन्य क्षत्री थे । वहाँ शूरवीर अजयसिंह क्रोधित अवस्था मे जा पहुंचा । यह वही अजयसिंह था, जिसने युद्ध में नियमानुसार अश्वमेध का गर्व चूर किया था ॥ १४ ॥ २८५ ॥ दोनो भाइयो ने जब दासीपुत्र को देखा तो भयभीत होकर उस ब्राह्मण की शरण मे गए और बोले कि यदि हमें प्राणदान मिल जाय तो आपको सोने की गाय दान करने के तुल्य पुण्य की प्राप्ति होगी । हे गुरुदेव ! हम आपके शरणागत है, हमारी रक्षा कीजिए ॥ १५ ॥ २८६ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब राजा (अजयसिंह) ने अपने दूत उस प्रदेश के राजा (तिलक) के पास भेजे, जिन्हे उस महान ब्राह्मण ने भलीभाँति प्रसन्न किया । इन दूतों ने कहा कि अश्वमेध और असमेद दोनों भाई हारकर इस ओर भागे है और आपके घर में आकर छिपे है ॥ १ ॥ २८७ ॥ हे ब्राह्मण ! या तो मुझे उन दोनों को बाँधकर पकडवा दे, नही तो आपको भी उन दोनो के साथ मार डाला जायेगा । न तो आपको दान दिया जायेगा और न तो आपकी पूजा की जायेगी । प्रत्युत् तुम्हें विभिन्न प्रकार के कष्ट दिए जायेगे ॥ २ ॥ २८८ ॥ आपने क्यो मृतको अर्थात् निराश्रितों को गले लगा रखा है और आप हमे उन लोगो को वापस दे देने मे क्यों

हमै तुम कहा लजाए। जउ द्वै ए तुम देहु न मोहू। तउ हम सिक्ख न होइहै तोहू ॥ ३ ॥ २८९ ॥ तब दिज प्रात कियो इशनाना। देव पित्र तोखे बिध नाना। चंदन कुंकम खोर लगाए। चलकर राजसभा मै आए ॥४॥२९०॥ ॥ दिजो बाच ॥ हमरी वै न परै द्वै डीठा। हमरी आइ परै नही पीठा। झूठ कह्यो जिन तोहि सुनाई। महाराज राजन के राई ॥ १ ॥ २९१ ॥ महाराज राजन के राजा। नाइक अखल धरण सिरताजा। हम बैठे तुम देह असीसा। तुम राजा राजन के ईसा ॥ २ ॥ २९२ ॥ ॥ राजा बाच ॥ भला चहो आपन जो सभही। वै दुइ बाँध देहु मुहि अबही। सभ ही करों अगन का भूजा। तुमरी करउ पिता जिउँ पूजा ॥ ३ ॥ ॥ २९३ ॥ जौ न परै वै भाज तिहारे। कहे लगो तुम आजु हमारे। हम तुमको बिजनादि बनावै। हम तुम वै तीनो मिल खावै ॥ ४ ॥ २९४ ॥ दिज सुन बात चले सभ धामा। पूछै भ्रात सुपूत पितामा। बाँध देहु तउ छूटे धरमा। भोज

संकोच कर रहे हैं। यदि आप इन दोनो भाइयो को हमें नही देंगे, तो हम कदापि आपके शिष्य नही बनेंगे ॥ ३ ॥ २८९ ॥ तब उस ब्राह्मण ने दूसरे दिन प्रातः स्नान कर अपने देवो तथा पितरो की विभिन्न प्रकार पूजा-अर्चना की तथा माथे पर चदन और कुमकुम आदि लगाकर राजसभा में आ पहुँचा ॥ ४ ॥ २९० ॥ ॥ द्विज उवाच ॥ मैंने न तो उन दोनो को देखा है और न तो वे मेरी शरण मे आये है। हे राजाओं के महाराज! आपको किसी ने इस सबध मे झूठ कहा है ॥ १ ॥ २९१ ॥ हे महा-राजाधिराज! आप अखिल विश्व के नायक एव छत्र धारण करनेवाले है, मैं यहाँ बैठकर आपको आशिर्वाद देता हूँ कि आप महाराजाधिराज बने रहें ॥ २ ॥ २९२ ॥ ॥ राजा उवाच ॥ यदि आप सब अपना भला चाहते हो तो तत्काल उन दोनो को बाँधकर मेरे हवाले कर दीजिए अन्यथा मैं सबको अग्नि मे जलाकर भून दूँगा और आपको भी पितरो की तरह स्वाहा कर दूँगा ॥ ३ ॥ २९३ ॥ यदि वे लोग भागकर यहाँ नही आये हैं, तो आप हमारा एक कहना मानिए। हम आपके लिए स्वादिष्ट व्यजन बनवाते हैं और हम तीनो मिलकर भोजन करे ॥ ४ ॥ २९४ ॥ राजा की बात सुनकर सभी ब्राह्मण घरो को चले गए और अपने बडे भाइयों और पितामहो से पूछने लगे कि यदि इन दोनो को बाँधकर उनके हवाले कर देते हैं तो धर्म नही रहता और यदि इनके साथ बैठकर भोजन करते है, तो

भुजे तउ छूटे करमा ।। ५ ।। २६५ ।। यहि रजिआ का पूत महा बल । जिन जीते छत्री गन दल मल । छत्रापन आपन बल लीना । इनको काढि धरन ते दीना ।। ६ ।। २६६ ।। ।। तोटक छंद ।। इम बात जबै न्रिप ते सुनियं । ग्रहि बैठ सभै दिज मंत्र कियं । अज सन अजै भट दाससुतं । अति दुहकर कुतसित क्रूर मतं ।। ७ ।। २६७ ।। मिल खाइ तउ खोवै जनम जगं । नहि खात तु जात है काल मगं । मिल मित्र सु कीजै कउन मतं । जिह भाँत रहे जग आज पतं ।। ८ ।। २६८ ।। सुन राजन राज महान मतं । अनभीत अजीत समस्त छितं । अनगाह अथाह अनंत दलं । अनभंज अगंज महाँ प्रबलं ।। ९ ।। ।। २६९ ।। इह ठउर न छत्री एक नरं । सुर साचु महा न्रिपराज बरं । कहिकै दिज यउ उठि जात (मू०ग्रं०१५२) भए । वेह आनि जसूस बताइ दए ।। १० ।। ३०० ।। तहाँ सिंघ अजै मनि रोस बढी । करि कोप चमूँ चतुरंग चढी । तह जाइ परी

ब्राह्मणोचित धर्म नष्ट होते है ।। ५ ।। २९५ ।। यह दासीपुत्र महाबली है, जिसने अपने बल से क्षत्रियो को दलन कर उन्हे जीत लिया है । अपने बाहुबल से इसने क्षत्रियत्व प्राप्त किया है और इन सबको राज्य से निकाल दिया है ।। ६ ।। २९६ ।। ।। तोटक छद ।। जब अपने राजा से लोगो ने यह बात सुनी तब सब ब्राह्मणो ने बैठकर यह सलाह की कि यह अजयसिह परम बली है और दासीपुत्र होने के नाते यह बहुत ही कुत्सित, क्रूर एव दुर्मति वाला है ।। ७ ।। २९७ ।। यदि इसके साथ मिलकर खाते है, तो यह जन्म भ्रष्ट हो जाता है और यदि नही खाते हैं तो इसके हाथो मरना पड़ता है । अपने सभी मित्रो से मिलकर, क्या उपाय किया जाय, जिससे इस ससार मे हम लोगो का सम्मान बचा रहे ।। ८ ।। २९८ ।। सबो ने सोच-समझकर यह कहा कि हे बुद्धिमान राजन् ! आप अभय एवं सारे ससार मे अजेय है । आप इतने शूरवीर हैं कि अनन्त शत्रुओ द्वारा भी नही मारे जा सकते और आपके पास महाप्रबल, कभी भी नष्ट न होने वाली सेना है ।। ९ ।। २९९ ।। इस स्थान पर, हे सम्राट् ! सत्य जानिए कि एक भी क्षत्रिय नही है । इतना कहकर सभी ब्राह्मण उठकर चले गए, परन्तु वास्तविक तथ्य (कि दोनो भाई वही है) जासूसों ने आकर अजयसिह को बता दिया ।। १० ।। ३०० ।। उस समय अजयसिह के मन मे क्रोध बढा और वह कुपित होकर अपनी चतुरंगिणी सेना को लेकर चढ उठा और जहाँ उन दोनो क्षत्रियो ने ब्राह्मणो के घरो मे शरण ली थी, आ

जह खत्र बरं। वहु कूदि परे दिज साम घरं ॥ ११ ॥ ३०१ ॥ दिज मंडल बैठि बिचारु कियो। सभ ही दिजमंडल गोद लियो। कहु कउन सु बैठि बिचार करैं। न्रिप साथ रहैं नही एउ मरैं ॥ १२ ॥ ३०२ ॥ इह भाँत कही तिह ताहि सभै। तुम तोर जनेवन देहु अबै। जोउ मानि कह्यो सोई लेत भए। तेउ बैस हुइ बाणज करत भए ॥ १३ ॥ ३०३ ॥ जिह तोर जनेउ न कीन हठं। तिन सिउ उन भोजु कियो इकठं। फिर जाइ जसूसहि ऐस कह्यो। इन मै उन मै इक भेदु रह्यो ॥ १४ ॥ ३०४ ॥ पुनि बोलि उठ्यो न्रिप सरब दिजं। निहछत्र तु देह सु ताहि तुअं। मरि गे सुनि बात मनो सभ ही। उठि कै ग्रिहि जात भए तब ही ॥ १५ ॥ ३०५ ॥ सभ बैठि बिचारन मंत्र लगे। सभ शोक के सागर बीच डुबे। वहि बाध बहिठ अति तेउ हठं। हम ए दोऊ भ्रात चलै इकठं ॥ १६ ॥ ३०६ ॥ हठ कीन दिजै तिन लीन सुता। अति रूप महाँ छबि परम प्रभा। त्रियो पेट सनोढ ते पूत भए। वहि जाति सनोढ कहात भए ॥ १७ ॥ ३०७ ॥ सुत अउरन

पहुँचा ॥ ११ ॥ ३०१ ॥ द्विजमडली ने बैठकर पुन. विचार किया कि सभी ब्राह्मणो ने इन क्षत्रियो को गोद लिया है, अब क्या उपाय किया जाय जिससे राजा भी हम लोगो से नाराज़ न हो और ये दोनो भी न मारे जायँ ॥ १२ ॥ ३०२ ॥ इसके बाद उन्होने सभी ब्राह्मणो को कहा कि सभी अपने जनेऊ को तत्काल तोड़ दें। जिन्होने उनकी बात को मानकर जनेऊ तोड़ दिए वे वैश्य बन गए और व्यापार आदि करने लगे ॥ १३ ॥ ॥ ३०३ ॥ जिन्होने जनेऊ न तोड़ने का हठ किया, उन्होने अजयसिह के साथ एक साथ बैठकर भोजन किया। परन्तु फिर जासूसो ने आकर पुनः इस सारे रहस्य को अजयसिह से बता दिया ॥ १४ ॥ ३०४ ॥ राजा पुनः सारे ब्राह्मणो से कहने लगा कि या तो मुझे दोनो क्षत्रियो को दे दो अन्यथा अपनी पुत्रियो को मुझे दे दो। इस बात को सुनकर सभी मुर्दों के समान हो गए और तत्काल उठकर घरो को चल दिए ॥ १५ ॥ ॥ ३०५ ॥ सभी ब्राह्मण बैठकर शोक-सागर मे डूबते हुए पुनः विचार करने लगे। इन ब्राह्मणो ने यह हठ बाँध लिया है कि हम इन दोनो भाइयों को अकेले न जाने देकर इनके साथ इकट्ठा राजा के सम्मुख चलेगे ॥ १६ ॥ ३०६ ॥ ब्राह्मण ने हठ किया और राजा ने उनकी परम सुन्दरी कन्याओ को ले लिया। उन स्त्रियो से जो पुत्र पैदा हुए वह

के उह ठाँ जु अहे। उत छत्रिय जाति अनेक भए। न्रिप के संगि जो मिलि जातु भए। नर सो रजपूत कहात भए ॥१८॥ ॥ ३०८ ॥ तिन जीत द्विजै कह राउ चड्यो। अति तेजु प्रचंडु प्रतापु बढ्यो। जोउ आनि मिले अरु साक दए। नर ते रजपूत कहात भए ॥ १९ ॥ ३०९ ॥ जिन साक दए नहि रारि बढी। तिन को इन लै जड़ मूल कढी। दल ते बल ते धन टूटि गए। वहि लागत बानज करम भए ॥ २० ॥ ३१० ॥ जोउ आनि मिले नहि जोरि लरे। वहि बाध महाँगनि होम करे। अनगंध जरे महाँ कुंड अनलं। भयो छत्रियमेध महाँ प्रबलं ॥ २१ ॥ ३११ ॥

॥ इति अजैसिंघ का राज सपूरन भइआ ॥ ६ ॥ ४ ॥

जगराज ॥

॥ तोमर छंद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ बिआसी बरख परमान। दिन (मू०ग्रं०१५३) दोइ मास अशटान। बहु

सनाढ्य जाति के लोग कहलाने लगे ॥ १७ ॥ ३०७ ॥ उस स्थान पर अन्य ब्राह्मण स्त्रियो से जो पुत्र पैदा हुए वे अनेक क्षत्रिय जातियो वाले हो गए और जो राजा के साथ मिल गए वे राजपूत कहलाने लगे ॥ १८ ॥ ॥ ३०८ ॥ राजा सभी ब्राह्मणो को जीतकर चढाई के लिए आगे बढा और उसका प्रताप और बढने लगा। जो-जो उसके साथ मिलकर, लड़कियाँ देकर उससे सबध बनाते गए, वे सब राजपूत कहलाते गए ॥१९॥३०९॥ जिन्होने रिस्ता नही दिया और युद्ध किया, उन्हे अजयसिह ने समूल नष्ट कर दिया। उन राजाओ का दल, बल और धन समाप्त हो गया और उन्होने वाणिज्य कर्म करना शुरू कर दिया ॥ २० ॥ ३१० ॥ जो आकर इसके साथ नही मिले और लड़ने लगे, उन्हे बाँधकर अग्नि में जला दिया गया। वे अग्निकुडो में अंजान स्थिति मे हो जला डाले गए और इस प्रकार अजयसिह ने महा प्रबल क्षत्रियमेध किया ॥ २१ ॥ ३११ ॥

॥ इति अजयसिंह का राज्य सम्पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥ ४ ॥

जगराज

॥ तोमर छद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ बयासी वर्ष, दो माह, आठ दिन तक राज्य को भोगकर राजाधिराज अजयसिह की मृत्यु हो गई ॥१॥३१२॥

राजु भागु कमाइ। पुनि न्रिप को न्रिपराइ ॥ १ ॥ ३१२ ॥ सुन राज राज महान। दस चारि चारि निधान। दस दोइ द्वादस मंत। धरनी धरान महंत ॥ २ ॥ ३१३ ॥ पुनि भ्यो उदोत न्रिपाल। रस रीति रूप रसाल। अतिमान तेज प्रचंड। अनखंड तेज प्रचंड ॥ ३ ॥ ३१४ ॥ तिनि बोलि बिप्र महान। पसुमेध जग्ग रचान। विज प्राग जोत बुलाइ। अपि काम रूप कहाइ ॥ ४ ॥ ३१५ ॥ दिज काम रूप अनेक। न्रिप बोलि लीन बिसेख। सभ जीअ जग्ग अपार। मख होम कीन अबिचार ॥ ५ ॥ ३१६ ॥ पसु एक पै दस बार। पड़ि बेल मत्र अबिचार। अबि मद्धि होम कराइ। धनु भूप ते बहु पाइ ॥ ६ ॥ ३१७ ॥ पसुमेध जग्ग कराइ। बहु भाँत राजु सुहाइ। बरख असीह अष्ट प्रमान। दुइ मास राजु कमान ॥ ७ ॥ ३१८ ॥ पुन कठन काल करवाल। जग जारिआ जिह ज्वाल। वहि खंडिआ अनखंड। अनखंड राज प्रचंड ॥ ८ ॥ ३१९ ॥

॥ इति पचमो राज समापतम सतु सुभम सतु ॥

इसके बाद मंत्रियो ने राजा के राजपुत्रो से कहा कि आप चौदह विद्याओं के समुद्र है और द्वादस अक्षरों का "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" मंत्र का जाप करनेवाला धरती को धारण करनेवाला महान राजा (आपका पिता) हुआ है ॥ २ ॥ ३१३ ॥ अब आप पुनः उसी राजा का प्रतिरूप हैं और अनुपम सुन्दर सूर्य के समान तेजस्वी और प्रचड रूप से अखण्ड बने रहनेवाले है ॥ ३ ॥ ३१४ ॥ महान विप्रो ने इस प्रकार कहकर पशु-मेध यज्ञ का आयोजन किया और महान् प्रज्ञाशील अर्थात् विद्वान ब्राह्मणो को बुलाया जो कामदेव के समान रूपवान भी थे ॥ ४ ॥ ३१५ ॥ अनेको सुन्दर ब्राह्मणो को राजा ने विशेष तौर से बुलाया और संसार के अनेको जीव-जन्तुओ को पकड़कर इस यज्ञ मे होम किया गया ॥ ५ ॥ ॥ ३१६ ॥ एक पशु पर दस बार मंत्र का पाठ कर ब्राह्मणो ने यज्ञ मे उसका होम किया और इस प्रकार राजा से पर्याप्त धन-धान्य प्राप्त किया ॥ ६ ॥ ३१७ ॥ इस प्रकार पशुमेध यज्ञ करके और अनेक प्रकार से राज्य को शोभायमान कर अट्ठासी वर्ष, दो माह तक राजा ने राज्य किया ॥ ७ ॥ ३१८ ॥ कठिन काल ने, जिसने अपनी ज्वाला से सारे जगत को भस्म कर डाला है, उस बलशाली अखण्ड एव प्रचड राजा को भी समाप्त कर दिया ॥ ८ ॥ ३१९ ॥

॥ इति पाँचवे राजा की शुभ समाप्ति ॥

।। तोमर छंद ।। ।। त्व प्रसादि ।। पुन भए मुनी छितराइ । इह लोक के हरि राइ । अरि जीति जीति अखंड । महि कीन राजु प्रचड ।। १ ।। ३२० ।। अरि घाइ घाइ अनेक । रिपु छाडियो नही एक । अनखंड राजु कमाइ । छित छीन छत्र फिराइ ।। २ ।। ३२१ ।। अनखंड रूप अपार । अनमंड राजु जुझार । अबिकार रूप प्रचंड । अनखंड राज अमंड ।। ३ ।। ।। ३२२ ।। बहु जीति जीति न्रिपाल । बहु छाडि कै सर जाल । अरि मारि मारि अनंत । छित कीन राज दुरंत ।।४।। ।। ३२३ ।। बहु राज भाग कमाइ । इम बोलिओ न्रिपराइ । इक कीजिऐ मखसाल । दिज बोलि लेहु उताल ।। ५ ।। ३२४ ।। दिज बोलि लीन अनेक । ग्रिह छाडिओ नही एक । मिलि मंत्र कीन विचार । मति मित्र मंत्र उचार ।। ६ ।। ३२५ ।। तब बोलिओ न्रिपराइ । करि जग्ग को चित चाइ । किव कीजिऐ मखसाल । कहु मंत्र मित्र उताल ।। ७ ।। ३२६ ।।

।। तोमर छद ।। ।। तेरी कृपा से ।। पुनः इस धरती पर मुनि राजा हुआ, जो इस ससार मे सिह के समान जाना जाता था । उसने शत्रुओं को परास्त कर अपने प्रचंड तेज से पृथ्वी पर राज्य किया ।। १ ।। ३२० ।। उसने अनेको शत्रुओं को मारा और अपने एक भी शत्रु को जीवित नही छोडा । उसने अखड राज्य किया और सपूर्ण पृथ्वी के छत्रधारियो के छत्रों को छोड़कर स्वय धारण किया ।। २ ।। ३२१ ।। वह खडित न होनेवाला और बिना किसी की सहायता से राज्य स्थापित करनेवाला शूरवीर राजा था । वह बल मे प्रचड था तथा उसका राज्य अखंडित था, परन्तु स्वभाव से वह निर्विकार था ।। ३ ।। ३२२ ।। बहुत से राजाओं को परास्त कर और अनेको अवसरो पर बाण-वर्षा कर उसने अनन्त शत्रुओं को धराशायी बना दिया और धरती पर दूर-दूर तक राज्य किया ।। ४ ।। ३२३ ।। बहुत दिन राज्य कर लेने पर एक दिन राजा ने कहा कि एक यज्ञशाला बनवाई जाय और ब्राह्मणों को बुलाया जाय ।। ५ ।। ३२४ ।। अनेक ब्राह्मणो को बुलाया गया और कोई भी घर ऐसा नही बचा जहां से ब्राह्मणो को आमंत्रित न किया गया हो । मंत्रियो ने विचार-विमर्श किया और मित्रो आदि के साथ मन्त्रो का उच्चारण होने लगा ।। ६ ।। ३२५ ।। तब राजा, जिसको यज्ञ के लिए अत्यत उत्साह था, बोला कि आप लोग मुझे सलाह दीजिए कि यज्ञ किस प्रकार किया जाय ? ।। ७ ।। ३२६ ।। तब मंत्रियो और मित्रो ने विचार-

तब मंत्र मित्रन कीन। न्रिप संग (मू०ग्रं०१५४) यउ कहि दीन। सुनि राज राज उदार। दस चारि चारि अपार ॥८॥ ॥ ३२७ ॥ सतिजुग्ग मै सुनि राइ। मख कीन चंड बनाइ। अरि मार कै महिखेश। बहु तोख कीन पसेश ॥ ९ ॥ ३२८ ॥ महिखेश कउ रण घाइ। सिरि इंद्र छत्र फिराइ। करि तोख जोगनि सरब। करि दूर दानव गरब ॥ १० ॥ ३२९ ॥ महिखेश कउ रणि जीति। दिज देव कीन अभीत। त्रिदशेश लीन बुलाइ। छित छीन छत्र फिराइ ॥ ११ ॥ ३३० ॥ मुखचार लीन बुलाइ। चित चउप सिउ जग माइ। करि जग्ग को आरंभ। अनखंड तेज प्रचंड ॥ १२ ॥ ३३१ ॥ तब बोलियो मुखचार। सुनि चंडि चडि जुहार। जिम होइ आइस मोहि। तिम भाखऊ मत तोहि ॥ १३ ॥ ३३२ ॥ जग जीअ जंत अपार। निज लीन देव हकार। अरि काटि कै पल खंड। पड़ि बेद मंत्र उदंड ॥ १४ ॥ ३३३ ॥ ॥ रूआल छद ॥ ॥ त्व प्रसादि ॥ बोलि बिप्पन मंत्र मित्रन जग्ग कीन अपार। इंद्र अउर उपिंद्र लैकै बोलिकै मुखचार। कउन भाँतन कीजिऐ अब जग्ग को आरंभ। आजि मोहि उचारिऐ सुनि मित्र मंत्र

विमर्श कर राजा से ऐसा कहा कि हे चौदह विद्याओ के ज्ञाता, उदार राजा, आप सुनिए ॥ ८ ॥ ३२७ ॥ सतयुग मे चंडिका ने महिषासुर को मार कर तथा शिव को प्रसन्न कर यज्ञ किया था ॥ ९ ॥ ३२८ ॥ चडी ने महिषासुर को युद्ध मे मारकर इन्द्र के सिर पर छत्र धारण करा कर और रक्तपान करनेवाली योगिनियो का प्रसन्न कर दानवो के गर्व को चूर किया था ॥ १० ॥ ३२९ ॥ महिषासुर को जीतकर ब्राह्मणों और देवों को अभय किया था तथा इद्र को बुलाकर उसे धरती का छत्र धारण करवाया था ॥ ११ ॥ ३३० ॥ जगत-माता ने प्रसन्न होकर ब्रह्मा को बुलाया था और अखड प्रचड तेजवाला यज्ञ प्रारभ किया था ॥ १२ ॥ ३३१ ॥ तब ब्रह्मा ने कहा, हे चडिका ! मेरा तुम्हे नमस्कार है और जो मुझे आज्ञा हो उसे मैं पूरा करूँ ॥ १३ ॥ ३३२ ॥ ससार के सभी जीव-जन्तु देवी ने पुकारकर बुला लिये और शत्रुओ मे क्षण भर में काटकर वेद-मन्त्रो का उच्चारण शुरू कर दिया ॥१४॥३३३॥ ॥ रूआल छद ॥ ॥ तेरी कृपा से ॥ विप्रो ने मन्त्रो का उच्चारण कर यज्ञ आरभ किया। यज्ञ मे इन्द्र, उपेन्द्र और ब्रह्मा आदि को भी बुलाया गया। राजा ने पुन: कहा कि अब किस प्रकार यज्ञ आरभ किया जाय ? हे मित्रो ! इस असभव कार्य मे सलाह

असंभ ॥ १ ॥ ३३४ ॥ मास के पल काटिकै पड़ि बेदमंत्र अपार। अगनि भीतर होमिऐ सुनि राज राज अबिचार। छेदि चिच्छुर बिड़ारासुर धूलि करणि खपाइ। मार दानव कउ कर्यो मख दैतमेध बनाइ ॥ २ ॥ ३३५ ॥ तैस ही मख कीजिऐ सुनि राज राज प्रचंड। जीति दानव देस के बलवान पुरख अखड। तैस ही मख मार कै सिरि इंद्र छत्र फिराइ। जैस सुर सुखु पाइओ तिव संत होहि सहाइ ॥ ३ ॥ ३३६ ॥

१ ओं स्री वाहिगुरू जी की फतह ॥ पातिशाही १० ॥

अथ चउबीस अउतार ॥

॥ चउपई ॥ अब चउबीस उचरों अवतारा। जिह बिध तिन का लखा अखारा। सुनिअहु संत सभै चित लाई। बरनत स्याम जथा मत भाई ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ जब जब होत अरिष्ट अपारा। तब तब देह धरत अवतारा। काल

दीजिए ॥ १ ॥ ३३४ ॥ मित्रो ने सलाह दी कि मांस के टुकडे काटकर वेदमंत्रो को पढकर उन्हे अग्नि मे तत्काल होम कीजिए। देवी ने तो चक्षरासुर, बिड़ालासुर आदि दानवो को मारकर दैत्यमेध यज्ञ किया था ॥२॥३३५॥ हे बलशाली राजन् ! आप भी वैसा यज्ञ कीजिए और देश-देशान्तरो के बलवान राजाओ को जीतकर अखंड राज्य कीजिए। जैसे दैत्यो का वध कर दुर्गा ने इन्द्र के सिर पर छत्र झुलाया था और देवताओ को सुख प्रदान किया था, उसी प्रकार आप अत्याचारी शत्रुओं को मारकर संतो की सहायता कीजिए ॥ ३ ॥ ३३६ ॥

चौबीस अवतार

॥ चौपाई ॥ अब जिस प्रकार चौबीस अवतारों की लीला को देखा, उनका वर्णन करता हूँ। हे सतो ! इसे ध्यानपूर्वक सुनो; श्याम कवि इसका अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन कर रहा है ॥१॥ ॥ चौपाई ॥ जब-जब अनेक शत्रु उत्पन्न होते हैं (और धर्म की हानि होती है), तब-तब (परमात्मा) देह धारण कर अवतरित होता है। काल सबका तमाशा

सभन को पेख तमासा। अंतह (मू०ग्रं०१५५) काल करत है नासा ॥ २ ॥ ॥ चौपई ॥ काल सभन का करत पसारा। अंत काल सोई खापनहारा। आपन रूप अनंतन धरही। आपहि मध लीन पुन करही ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ इन महि स्रिशटि सु दस अवतारा। जिन महि रमिया राम हमारा। अनत चतुरदस गन अवतारू। कहो जु तिन तिन किए अखारू ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ काल आपनो नामु छपाई। अवरन के सिरि दे बुरिआई। आपन रहत निरालम जग ते। जान लए जा नामै तब ते ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ आप रचै आपे कल घाए। अवरन कै दै मूँड हताए। आप निरालमु रहा न पाया। ताँते नामु बिअत कहाया ॥ ६ ॥ ॥ चौपई ॥ जो चउबीस अवतार कहाए। तिन भी तुम प्रभ तनक न पाए। सभ ही जग भरमे भव रायं। ता ते नामु बिअंत कहायं ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ सभ ही छलत न आप छलाया। ता ते छलिआ

देखता है और अन्त में सबको नष्ट कर देता है ॥२॥ ॥ चौपाई ॥ काल ही सबको जन्म देता है और काल ही सबको नष्ट कर देनेवाला है। काल ही अपने अनत रूप धारण करता है और पुनः सबको अपने अंदर समाहित कर लेता है ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ इसी काल मे ही सृष्टि और दशावतारो की रचना हुई और इन सबमे ही हमारा राम (परब्रह्म) रमण करता है। दस के अतिरिक्त चौदह अन्य अवतार भी गिने गए हैं और उन्होने क्या-क्या लीलाएँ की उनका वर्णन किया जाता है ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ काल (अनत परब्रह्म) अपने नाम को प्रच्छन्न रखकर अपने सिर पर कोई दोप न लेकर अन्य सबको ही उनकी बुराई के लिए उत्तरदायी ठहराता है। इस तथ्य को मैं पहले से ही जानता हूँ कि वह स्वय इस जगत-प्रपच मे विलग बना रहता है ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ काल स्वय रचता है और स्वय सहार करता है, परन्तु इन सबका निमित्त अन्यो को बनाकर बुराई भलाई उनके मत्थे मढ़ देता है। वह स्वयं सब कलुषों से दूर रहता है और उसकी सीमा को कोई नही जान सका, इसीलिए उसका नाम 'अनत' भी कहा जाता है ॥६॥ ॥ चौपाई ॥ जो तथाकथित चौबीस अवतार है, हे प्रभु ! वे तनिक भर भी तुम्हे प्राप्त नही कर सके। ये सब ससारी राजा बनकर जगत-प्रपच मे ही भ्रमित होते रहे और अनेको नामों से जाने जाते रहे ॥७॥ ॥ चौपाई ॥ हे प्रभु ! तुम सबको तो छलते रहे हो, परन्तु स्वय किसी से भी छले नही गए। इसीलिए तुमको 'छलिया' भी कहा

आप कहाया । संतन दुखी निरख अकुलावै । दीनबंध ता ते कहलावै ॥ ८ ॥ ॥ चौपई ॥ अंत करत सभ जग को काला । नामु काल ता ते जग डाला । सभै संत पर होत सहाई । ता ते संख्या संत सुनाई ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ निरख दीन पर होत दिआरा । दीनबंध हम तबै बिचारा । संतन पर करुणा रस ढरई । करुणानिधि जग तबै उचरई ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ संकट हरत साधवन सदा । संकटहरन नामु भयो तदा । दुख दाहत संतन के आयो । दुखदाहन प्रभ तदिन कहायो ॥ ११ ॥ ॥ चौपई ॥ रहा अनंत अंत नही पायो । याते नामु बिअंत कहायो । जग मो रूप सभन के धरता । याते नामु बखमियत करता ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ किनहूँ कहूँ न ताहि लखायो । इह कर नामु अलख कहायो । जोन जगत मै कबहुँ न आया । याते सभो अजोन बताया ॥ १३ ॥ ॥ चौपई ॥ ब्रहमादिक सभ ही पचहारे । बिशन महेश्वर

जाता है । तुम सतों को दु.खी देखकर आकुल हो उठते हो, इसीलिए तुमको 'दीनबधु' भी कहा जाता है ॥ ८ ॥ ॥ चौपाई ॥ समय-समय पर तुम विश्व का अत कर देते हो, इसलिए ससार ने तुम्हारा एक नाम 'काल' भी रखा है । भिन्न-भिन्न अवसरो और युगो मे तुम सतो की सहायता करते रहे हो, अत: सतो ने तदनुसार तुम्हारे अवतारो की गणना की है ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम दीनो को देखकर दयालुता दिखाते हो, यही देखकर हम आपको 'दीनबधु' कहते है । आपका करुणा-रस सतों पर बरसता रहता है, इसलिए जगत् आपको करुणानिधि' कहता है ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम साधुओ के सकट को सदैव दूर करते हो, इसलिए आपका नाम 'सकटहरण' भी पड गया है । तुम सतो के कष्टो का नाश करते आये हो, अतः तुम्हे 'कष्टनाशक' कहा जाता है ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम सदैव अनादि हो और तुम्हारा रहस्य नही जाना जा सका, इसी से तुम्हारा नाम 'अनंत' भी जाना जाता है । जगत मे तुम सबका स्वरूप धारण करते हो, अत तुम्हारा नाम 'कर्ता' भी कहा जाता है ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ कोई भी तुम्हे आज तक देख नही सका, अत: तुम्हारा नाम 'अलख' भी जाना जाता है । तुम कभी भी जगत में जन्म धारण नही करते हो, अतः तुम्हे 'अयोनि' कहा जाता है ॥ १३ ॥ ॥ चौपाई ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी बेचारे तुम्हारा रहस्य जानने की प्रक्रिया मे थक चुके है । चाँद और सूर्य भी तुम्हारा ही विचार करते

कउन बिचारे। चंद सूर जिन करे बिचारा। ता ते जनियत है करतारा ॥१४॥ ॥ चौपई ॥ सदा अभेख अभेखी रहई। ता ते जगत अभेखी कहई। अलख रूप किनहूँ नहि जाना। तिह कर जात अलेख बखाना ॥१५॥ (मू०ग्रं०१५६) ॥ चौपई ॥ रूप अनूप सरूप अपारा। भेख अभेख सभन ते न्यारा। दाइक सभो अजाची सभ ते। जान लयो करता हम तब ते ॥ १६ ॥ ॥ चौपई ॥ लगन सगन ते रहत निरालम। है यह कथा जगत मै मालम। जंत्र मंत्र तंत्र न रिझाया। भेख करत किनहूँ नहि पाया ॥ १७ ॥ ॥ चौपई ॥ जग आपन आपन उरझाना। पारब्रहम काहू न पछाना। इक मड़िअन कबरन वे जाँही। दुहूँअन मै परमेश्वर नाही ॥ १८ ॥ ॥ चौपई ॥ ए दोऊ मोह बाद मो पचे। इन ते नाथ निराले बचे। जा ते छूटि गयो भ्रम उर का। तिह आगै हिंदू क्या तुरका ॥ १९ ॥ ॥ चौपई ॥ इक तसबी इक माला धरही। एक कुरान पुरान उचरही। करत बिरुद्ध गए

है और इसीलिए तुमको इन सबका कर्ता जाना जाता है ॥ १४ ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम सदा निर्वेश हो, रहोगे। इसीलिए ससार तुम्हे 'सर्ववेशो से परे' कहता है। तुम्हारा अदृश्य रूप किसी ने नही जाना है, इसलिए तुमको 'अलक्ष्य' कहकर तुम्हारा वर्णन किया जाता है ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम्हारा रूप अनुपम है और स्वरूप अनन्त है। तुम वेश-अवेश सबसे भिन्न हो, तुम सबको देनेवाले हो और स्वयं अयाचक हो। इसलिए हम तुम्हे कर्ता के रूप मे जानते है ॥ १६ ॥ ॥ चौपाई ॥ तुम शकुन, लग्न आदि से प्रभावित नही होते, इस तथ्य को सारा जगत जानता है। कोई भी यत्न, मत्न, तत्न तुम्हे प्रसन्न नही कर सकता और भिन्न प्रकार के वेशो को बनाकर भी तुम्हे कोई नही पा सका है ॥ १७ ॥ ॥ चौपाई ॥ जगत के जीव सब अपने-अपने स्वार्थो मे ही उलझे हुए है और परब्रह्म की पहचान किसी ने नही की है। तुम्हे पाने के लिए कई श्मशान मे और कई कब्रगाहो मे जाते है, परन्तु इन दोनो मे परमेश्वर नही है ॥ १८ ॥ ॥ चौपाई ॥ ये दोनो ही प्रकार के लोग मोह और वाद-विवाद मे नष्ट हो रहे है, परन्तु, हे नाथ! तुम इन दोनो से निराले हो। जिसको पाने से हृदय का भ्रम दूर हो जाता है, उस परमात्मा के समक्ष न कोई हिन्दू है, न मुसलमान ॥ १९ ॥ ॥ चौपाई ॥ एक तस्वीर और दूसरा माला धारण करता है। एक कुरान का पाठ करता है और दूसरा पुराणो का उच्चारण करता है। ये दोनो ही मतो वाले

मर मूड़ा । प्रभ को रंगु न लागा गूड़ा ।।२०।। ।।चौपई।। जो जो रंग एक के राचे । ते ते लोक लाज तजि नाचे । आदिपुरख जिन एकु पछाना । दुतीआ भाव न मन महि आना ।। २१ ।। ।। चौपई ।। जो जो भाव दुतिय महि राचे । ते ते मीत मिलन ते वाचे । एक पुरख जिन नैक पछाना । तिन ही परम ततत कह जाना ।। २२ ।। ।। चौपई ।। जोगी संनिआसी है जेते । मुँडिआ मुसलमान गन केते । भेख धरे लूटत संसारा । छपत साध जिह नामु अधारा ।। २३ ।। ।। चौपई ।। पेट हेत नर डिंभु दिखाहीं । डिंभ करे बिनु पइयत नाहीं । जिन नर एक पुरख कह ध्यायो । तिन कर डिंभ न किसी दिखायो ।। २४ ।। ।। चौपई ।। डिंभ करे बिनु हाथि न आवै । कोऊ न काहू सीस निवावै । जो इहु पेट न काहू होता । राव रंक काहू को कहता ।।२५।। ।।चौपई।। जिन प्रभ एक वहै ठहरायो । तिन कर डिंभ न किसू दिखायो ।

परस्पर एक-दूसरे का विरोध करते हुए मर रहे है और इनमें से किसी को भी प्रभु-प्रेम का पक्का रग नही लगा है ।।२०।। ।। चौपाई ।। जो उस एक प्रभु के रंग मे रँग गये है, वे लोक-लाज को त्यागकर प्रसन्न भाव से नाच उठते है । जिन्होंने उस एक आदिपुरुष को पहचान लिया है, उनके हृदय मे से द्वैतभाव विनष्ट हो चुका है ।। २१ ।। ।। चौपाई ।। जो-जो द्वैतभाव मे लीन है अर्थात् परमात्मा को आपे से अलग समझते है, वे ही उस परममित्र परमात्मा के मिलन से दूर है । जिसको परमपुरुष की थोडी सी भी पहचान आ गई है, उन्होने उसे परमतत्त्व के रूप मे जान लिया है ।। २२ ।। ।। चौपाई ।। जितने भी योगी, सन्यासी, मुँड़िया एवं मुसलमान, फकीर आदि है, ये सब विभिन्न वेश धारण करके ससार को लूट रहे हैं । जिन परम सतो का आधार केवल प्रभु का ही नाम है, वे तो प्रकट रूप से लोगो के सामने आते ही नही और गुप्त ही रहते है ।। २३ ।। ।। चौपाई ।। सांसारिक प्राणी पेट भरने के लिए पाखण्ड दिखाते हैं, क्योकि पाखंड के बिना उन्हे अर्थ-लाभ नही होता । जिस व्यक्ति ने केवल एक परमपुरुष का ध्यान किया है, उसने कभी भी किसी को पाखण्ड नही दिखलाया ।। २४ ।। ।। चौपाई ।। पाखड के बिना स्वार्थ पूरा नही होता और कोई भी किसी के आगे सिर नही झुकाता । यदि यह पेट किसी के साथ भी न लगा होता तो इस ससार मे न तो कोई राजा और न कोई रक कहा जाता है ।। २५ ।। ।। चौपाई ।। जिन्होने एक परमात्मा को ही केवल सबों का स्वामी माना है, उन्होने कभी

सीस दियो उन सिरर न दीना। रंच समान देह करि चीना ॥ २६ ॥ ॥ चौपई ॥ कान छेद जोगी कहवायो। अति प्रपंच कर बनहि सिधायो। एक नामु को तत्तु न लयो। बन को भयो न ग्रिह को भयो ॥ २७ ॥ ॥ चौपई ॥ कहा लगै कब कथै बिचारा। रसना एक न पइयत पारा। जिहबा कोटि कोटि कोऊ धरै। गुण समुंद्र त्वै पार न परै ॥ २८ ॥ ॥ चौपई ॥ प्रथम काल (मू०ग्र०१५७) सभ जग को ताता। ता ते भयो तेज बिख्याता। सोई भवानी नामु कहाई। जिन सिगरी यह स्त्रिशटि उपाई ॥ २९ ॥ ॥ चौपई ॥ प्रिथमै ओअंकार तिन कहा। सो धुन पूर जगत मो रहा। ता ते जगत भयो बिसथारा। पुरख प्रक्रित जब दुहू बिचारा ॥ ३० ॥ ॥ चौपई ॥ जगत भयो ता ते सभज नियत। चार खान कर प्रगट बखन्यित। शकत इती नही बरन सुनाऊँ। भिन भिन कर नाम बताऊँ ॥ ३१ ॥ ॥ चौपई ॥ बली अबली दोऊ उपजाए।

भी कोई पाखड करके किसी को नही दिखाया है। ऐसा व्यक्ति अपना सिर कटा देता है परन्तु सत्य का परित्याग नही करता, और ऐसा ही व्यक्ति इस देह को भी धूल के कण के समान मानता है ॥ २६ ॥ ॥ चौपाई ॥ कानो को छेदकर व्यक्ति योगी कहलाता है और कई प्रपंच करके वन मे चला जाता है। परन्तु जिसने एक प्रभु-नाम के तत्त्व को हृदयगम नही किया, वह न तो घर का ही रहा और न वन रूपी घाट का ही हो पाया ॥ २७ ॥ ॥ चौपाई ॥ ये कवि विचारा कहाँ तक वर्णन करे, क्योकि एक जीव से उस अनन्त का रहस्य नही जाना जा सकता। बेशक किसी की करोडो जिह्वाएँ भी हो जायँ तब भी तुम्हारे गुण रूपी समुद्र का पार नही पाया जा सकता ॥ २८ ॥ ॥ चौपाई ॥ सर्वप्रथम काल रूपी परमात्मा ही सारी सृष्टि का आदि पिता है और उसी से प्रचड तेज का प्रादुर्भाव हुआ। वही तेज भवानी के नाम से माना गया, जिसने इस सारी सृष्टि को उत्पन्न किया ॥ २९ ॥ ॥ चौपाई ॥ सर्वप्रथम उसने ओकार का उच्चारण किया और ओकार की ध्वनि इस सारे जगत मे व्याप्त हो उठी। इसी से एव प्रकृति-पुरुष के सयोग से सारे जगत का विस्तार हुआ ॥ ३० ॥ ॥ चौपाई ॥ जगत उत्पन्न हुआ और तभी से सब लोग इसे जगत के रूप मे जानते है और ससार को स्थूल रूप से उत्पन्न करनेवाले चार स्रोतो का वर्णन किया जाता है। (ये चार स्रोत है— अडज, पिडज, स्वेदज, उद्भिज)। मेरे मे इतनी शक्ति नही हैं कि मैं भिन्न-भिन्न नामों का वर्णन कर सकूँ ॥ ३१ ॥ ॥ चौपाई ॥ उस

ऊच नीच कर भिन दिखाए । बपु धर काल बली बलवाना । आपन रूप धरत भयो नाना ॥ ३२ ॥ ॥ चौपई ॥ भिन भिन जिमु देह धराए । तिमु तिमु कर अवतार कहाए । परम रूप जो एक कहायो । अंत सभो तिह मद्धि मिलायो ॥ ३३ ॥ ॥ चौपई ॥ जितिक जगति के जीव बखानो । एक जोत सभ ही महि जानो । काल रूप भगवान भनैबो । ता महि लीन जगति सभ ह्वैबो ॥ ३४ ॥ ॥ चौपई ॥ जो किछु दिष्ट अगोचर आवत । ता कहु मन माया ठहरावत । एकहि आप सभन सो ब्यापा । सभ कोई भिन भिन कर थापा ॥ ३५ ॥ ॥ चौपई ॥ सभ ही महि रम रह्यो अलेखा । मागत भिन भिन ते लेखा । जिन नर एक वहै ठहरायो । तिनही परम तत्तु कह पायो ॥ ३६ ॥ ॥ चौपई ॥ एकहि रूप अनूप सरूपा । रंक भयो राव कहूँ भूपा । भिन भिन सभहन उरझायो । सभ ते जुदो न किनहूँ पायो ॥३७॥ ॥ चौपई ॥ भिन भिन सभहूँ उपजायो । भिन भिन कर तिनो खपायो ।

परमात्मा ने बली एव निर्बल दोनो को पैदा किया और ऊँचे और नीचे की भिन्नता भी स्पष्ट की । काल-रूप महाबली ने शरीर धारण कर अपने स्वरूपो को विभिन्न रूप से प्रकट किया ॥ ३२ ॥ ॥ चौपाई ॥ (परमात्मा ने) जैसे-जैसे भिन्न-भिन्न देह धारण की, वैसे ही वैसे वह भिन्न-भिन्न अवतारों के रूप मे प्रसिद्ध हुआ । परन्तु जो परमात्मा का परम रूप है, अन्त मे सब उसी मे विलीन हो गए ॥ ३३ ॥ ॥ चौपाई ॥ जगत में जितने भी जीव है, सबमे एक ही ज्योति का प्रकाश समझो । भगवान, जिसे काल-रूप मे जाना जाता है, उसी मे ही सारा जगत विलीन होगा ॥ ३४ ॥ ॥ चौपाई ॥ जो कुछ हमे अगोचर लगता है, मन उसे माया का नाम देता है । वह एक परमात्मा ही सबमे व्याप्त है और उसे ही लोग भिन्न-भिन्न रूप से अपनी मान्यताओ के अनुसार स्थापित किए हुए है ॥ ३५ ॥ ॥ चौपाई ॥ वह अदृष्ट (प्रभु) सबमे रम रहा है और सभी जीव अपने-अपने लेखो के अनुसार उससे माँगते रहते हैं । जिसने उस प्रभु को एक करके ही जाना है, उसी ने परमतत्त्व को प्राप्त किया है ॥ ३६ ॥ ॥ चौपाई ॥ उस एक का ही अनुपम रूप स्वरूप है और वह ही कही राजा है कही रंक है । उसने भिन्न-भिन्न तरीको से सबको उलझा रखा है, परन्तु स्वय वह सबसे अलग है और कोई भी उसके रहस्य को नही जान सका है ॥ ३७ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने भिन्न-भिन्न

आप किसू को दोश न लीना। अउरन सिर बुरिआई दीना ॥ ३८ ॥ ॥ चौपई ॥ संखासुर दानव पुन भयो। बहु बिधि कै जग को दुख दयो। मच्छ अवतार आप पुन धरा। आपन जाप आप मो करा ॥ ३९ ॥ ॥ चौपई ॥ प्रिथमै तुच्छ मीन बपु धरा। पैठ समुंद झकझोरन करा। पुनि पुनि करत भयो बिसथारा। संखासुर तब कोप बिचारा ॥ ४० ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तबै कोप गरज्यो बली संख बीरं। धरे शस्त्र अस्त्रं सजे लोह चीरं। चतुरबेद पातं कियो सिंध मद्धं। त्रस्यो अष्टनैणं कर्यो जापु सुद्धं ॥ ४१ ॥ (मू०ग्रं०१५८) ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तबै संभरे दीन हेतं दिआलं। धरे लोह क्रोहं क्रिपा कै क्रिपालं। महा अस्त्र पातं करे शस्त्र घातं। टरे देव सरबं गिरे लोक सातं ॥ ४२ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ भए अत्रघातं गिरे चउर चीरं। रुले तच्छ मुच्छं उठे तिच्छ तीरं। गिरे सुंड मुंडं रणं भीम रूपं। मनो खेल पउढे

स्वरूपों मे सबको उत्पन्न किया है और वही सबको खड-खंड कर उनका क्षय करता है। वह स्वय अपने सिर पर कोई दोष नही लेता, अपितु जीवों को ही उनकी अपनी बुराई के लिए उत्तरदायी ठहराता है ॥ ३८ ॥ ॥ चोपाई ॥ एक वार शखासुर नामक दानव हुआ जिसने कई प्रकार से जग को दुःख दिया। तव (परमात्मा ने) मत्स्य-अवतार धारण किया और स्वय अपना जाप करके अपने स्वरूप को पहचाना ॥ ३९ ॥ ॥ चौपाई ॥ पहले तो (प्रभु ने) छोटी सी मछली का रूप धारण किया और समुद्र को झकझोरा। फिर धीरे-धीरे अपने शरीर का विस्तार किया, जिसे देखकर शखासुर क्रोधित हो उठा ॥४०॥ ॥ भुजंग प्रयात छद ॥ तब कुपित होकर महाबली शखासुर गरजा और उसने अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर लौह-कवच धारण किया। उसने चारों वेदों को समुद्र मे गिरा दिया, जिससे आठ नयनों वाला ब्रह्मा भयभीत होकर (परमात्मा का) स्मरण करने लगा ॥ ४१ ॥ ॥ भुजग प्रयात छद ॥ तव दोनों के हितैषी (प्रभु) दयालुता से भर उठे और (शखासुर के वध के लिए) अत्यन्त क्रोधित हो उस कृपालु परमात्मा ने लौह-शस्त्र धारण कर लिये। शस्त्रो के वार चलने लगे और अस्त्र वरसने लगे। सभी देवगण अपने स्थानों से हिल गए और सातो लोक इस भीषण युद्ध के कारण थरथरा उठे ॥ ४२ ॥ ॥ भुजग प्रयात छद ॥ अस्त्रो के आघात से चँवर और वस्त्र गिरने लगे और तीरो की वर्षा के कारण शरीर खंड-खंड होकर

हठी फाग जूपं ।।४३।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। बहे खग्गयं खेत खिगं सु धीरं । सुभै शस्त्र संजान सो सूरबीरं । गिरे गउर गाजी खुले हत्थि बत्थं । नच्यो रुद्र रुद्र नचे मच्छ मत्थं ।।४४।। ।। रसावल छंद ।। महा बीर गज्जे । सुभं शस्त्र सज्जे । बधे गज्ज गाहं । सु हूरं उछाहं ।। ४५ ।। ।। रसावल छंद ।। ढला ढुक ढालं । झमी तेग कालं । कटा काट बाहैं । उभै जीत चाहैं ।। ४६ ।। ।। रसावल छंद ।। मुखं मुच्छ बंकी । तमं तेग अतंकी । फिरैं गउर गाजी । नचै तुंद ताजी ।। ४७ ।। ।। भुजंग छंद ।। भर्‍यो रोस संखासुरं देख सैणं । तपे बीर बकत्रं किए रकत नैणं । भुजा ठोक भूपं कर्‍यो नाद उच्चं । सुणे गरभणीआन के गरभ मुच्चं ।। ४८ ।। ।। भुजंग ।। लगे ठाम ठामं दमामं दमंके । खुले खेत मो खग्ग खूनी खिमके ।

धराशायी होने लगे । भीमकाय हाथियों के सूंड और सिर कटकर गिरने लगे और ऐसा दृश्य बन गया, मानो हठी युवको का झुड होली खेल रहा हो ।। ४३ ।। ।। भुजग प्रयात छंद ।। धैर्यवान शूरवीरो के खड्ग और कृपाणे चलने लगी और महाबली वीर शस्त्रो और कवचो से सुसज्जित हो रहे हैं । बड़े-बड़े वीर खाली हाथ गिरे पड़े है और इस सारे दृश्य को देखकर रुद्रदेव एक ओर नृत्य कर रहे है और दूसरी ओर मत्स्य भी प्रसन्न होकर (सागर का) मथन कर रहा है ।। ४४ ।। ।। रसावल छद ।। शुभ शस्त्रों से सुसज्जित वीर गरज रहे है और हाथियो के समान बलशाली वीरो का वध होता देखकर स्वर्ग मे अप्सराएँ उनका वरण करने के लिए प्रसन्न हो रही हैं ।। ४५ ।। ।। रसावल छद ।। ढालों की ढकढक और तलवारो की झमझम सुनाई पड़ रही है । कृपाणे कटाकट की आवाज़ से चल रही हैं आर दोनों ही पक्ष अपनी जीत की कामना कर रहे हैं ।। ४६ ।। ।। रसावल छद ।। वीरो के मुख पर मूँछे और हाथों में कराल कृपाणे शोभायमान हो रही है । युद्धस्थल मे महावीर लोग विचरण कर रहे है और अत्यन्त वेगवान घोड़े नृत्य कर रहे है ।। ४७ ।। ।। भुजंग छंद ।। शखासुर सेना को देखकर रोष से भर उठा । अन्य वीर भी क्रोध से जलकर चिल्लाने लगे और उन सबके नयनो मे रक्त भर उठा । राजा (शंखासुर) ने भुजाओ को ठोककर भीषण गर्जन किया और उसकी भयंकर आवाज़ को सुनकर गर्भवती स्त्रियो के गर्भपात हो गए ।। ४८ ।। ।। भुजग ।। सभी अपने-अपने स्थानो पर अड़ गए और इधर नगाड़े ज़ोर-ज़ोर से बजने लगे । रणस्थल मे खूनी खड़ग निकलकर चमकने लगे । क्रूर धनुषों के कड़कने की आवाजे आने लगी और भूत-बैताल आदि

भए क्रूर भांतं कमाणं कड़क्के । नचे बीर बैताल भूतं भड़क्के ॥ ४६ ॥ ॥ भुजंग ॥ गिर्‍यो आयुधं सायुधं बीर खेतं । नचे कंध हीणं कमद्धं अचेतं । खुले खग्ग खूनी खियालं खतंगं । भजे कातरं सूर बज्जे निहंगं ॥ ५० ॥ ॥ भुजंग ॥ कटे चरम बरमं गिर्‍यो शत्रु शस्त्र । भके भै भरे भूत भूमं न्रिशत्रं । रणं रंग रते सभी रंग भूमं । गिरे जुध मद्धं बली झूम झूमं ॥५१॥ ॥ भुजंग ॥ भयो दुंद जुद्धं रणं संख मच्छं । मनो दो गिरं जुद्ध जुट्टे सपच्छ । कटे मास टुक्कं भखे गिद्धि ब्रिद्धं । हसी जोगणी चउसठा सूर सुद्धं ॥ ५२ ॥ ॥ भुजग ॥ कियो उधार बेदं हते संख बीरं । तज्यो मच्छ रूपं । सज्यो सुंद्र चीरं । सभै देव थापे कियो दुष्ट नासं । टरे सरब दानो भरे जीब त्रासं ॥ ५३ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ संखासुर मारे बेद उधारे शत्रु सँघारे जसु लीनो । देवे सु बुलायो राज बिठायो छत्र फिरायो सुख दीनो । कोटं बज बाजे सुर सभ गाजे सुंभ घरि

भडककर नाचने लगे ॥ ४९ ॥ ॥ भुजग ॥ शूरवीर शस्त्रों-समेत रणस्थल मे गिरने लगे और कवध, अचेतावस्था मे युद्ध में नृत्य करने लगे। खूनी खडग एव तीखे तीर चलने लगे; नगाडे (घनघोर रूप से) बजने लगे तथा शूरवीर इधर-उधर भागने लगे ॥ ५० ॥ ॥ भुजंग ॥ शत्रुओ के कवच और शरीर कटने लगे तथा शस्त्र गिरने लगे। भयभीत होकर भूमि पर भूत विचरण करने लगे। युद्धभूमि मे सभी युद्ध के रंग मे रँगे गए अर्थात् युद्ध मे लीन हो गए और युद्धस्थल में महाबली वीर झूमझूम कर गिरने लगे ॥ ५१ ॥ ॥ भुजग ॥ शखासुर और मत्स्य मे इतना भीषण द्वन्द्व युद्ध हुआ, मानो स्पष्ट रूप से दो पर्वत आपस में युद्ध कर रहे हो। मास के टुकड़े गिरने लगे जिन्हे वड़े-बड़े गिद्ध खाने लगे और चौसठ योगिनियाँ शूरवीरो के इस भीषण युद्ध को देखकर हँसने लगी ॥ ५२ ॥ ॥ भुजंग ॥ शंखासुर को मारकर मत्स्य ने वेदो का उद्धार किया और (परमात्मा) मत्स्य-रूप त्यागकर सुदर वस्त्रो में सुसज्जित हुआ। दुष्टो का नाश कर परमात्मा ने सभी देवताओ की पुन. स्थापना की और जीवो को भयभीत करनेवाले सभी दानव नष्ट हो गए ॥ ५३ ॥ ॥ त्रिभगी छंद ॥ (परमात्मा ने) शखासुर को मारकर वेदो का उद्धार करके तथा शत्रुओ का महार करके यश प्राप्त किया। देवेश इन्द्र को बुलाया, उसे राज-छत्र प्रदान कर सुखी किया। करोड़ो वाद्य-यन्त्र बजने लगे, देवता आनन्द-ध्वनि करने लगे और सबके घरो से शोक का नाश हो गया।

साजे शोक हरे। दै कोटक दछना क्रोर प्रदछना (मू०ग्रं०१५६) आनि सु मच्छ के पाइ परे॥ ५४॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके ग्रथे प्रथम मच्छ अउतार सखासुर संघह कथन॥

अथ कच्छ अउतार कथनं॥

॥ भुजंग प्रयात छंद॥ किते काल बीत्यो कर्‍यो देव राजं। भरे राज धामं सुभं सरब साजं। गजं बाज बीणं बिना रतन भूपं। कर्‍यो बिशन बीचार चित्तं अनूपं॥ १॥ ॥ भुजंग छंद॥ सभै देव एकत्र कीने पुरिंद्रं। ससं सूरजं आदि लै कै उपिंद्रं। हुते दइत जे लोक मद्ध्यं हँकारी। भए एकठे भ्राति भावं बिचारी॥ २॥ ॥ भुजग छद॥ बद्यो अरध अरधं दुहू बाटि लीबो। सभो बात मानी यहै काम कीबो। करो मत्थनी कूट मंद्राचलेयं। तक्यो छीर सामुंद्र देवं अदेयं॥ ३॥ ॥ भुजग छंद॥ करी मत्थका बासकं सिंध मद्धं।

सभी देवता अनेक प्रकार से दक्षिणा और करोड़ो परिक्रमा कर मत्स्यावतार के चरणो मे आ पड़े॥ ५४॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रथ के प्रथम मत्स्यावतार मे शखासुर-वध-कथन की समाप्ति॥

कच्छप-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ भुजग प्रयात छद॥ काफी समय तक देवराज इन्द्र ने राज किया और उसके महल सर्व प्रकार के सुखो को देनेवाले थे। परन्तु एक बार विष्णु ने अपने चित्त मे अनुपम विचार किया कि यह राजा हाथी, घोड़े एव रत्नो से विहीन राजा है (इसके लिए कुछ प्रबध किया जाना चाहिए)॥ १॥ ॥ भुजग छद॥ इन्द्र ने चन्द्र, सूर्य, उपेन्द्र आदि सभी देवताओ को एकत्र किया। अहकारी दैत्य भी जो उस समय थे, देवताओ के इस जमाव को कोई षड्यत्र समझकर इकट्ठा हो गए॥ २॥ ॥ भूजग छद॥ अब दोनों झुडो मे यह तय हुआ कि जो भी प्राप्ति होगी, उसे आधा-आधा बॉट लिया जायगा। सबने यह बात मानकर कार्य शुरू कर दिया। मदराचल पर्वत को मथन के लिए मथानी बनाकर देवो-अदेवो दोनो ने क्षीरसागर के मथन का कार्यक्रम बनाया॥ ३॥ ॥ भुजंग छद॥ वासुकि नाग को मथानी की रस्सी बनाया गया और दल को आधा-

मथै लाग दोऊ भए अद्ध अद्धं। सिरं दैंत लागे गही पूछ देवं। मथ्यो छीर सिद्धै मनो माटकेवं ॥ ४ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ इसो कउण बीयो परे भारु पब्बं। उठे काँप बीरं दित्यादित्य सब्बं। तबै आप ही बिशन मंत्रं बिचार्यो। तरे परबतं कच्छपं रूप धार्यो ॥ ५ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथे दुतीआ कछ अवतार संपूरनम सत ॥

अथ छीर समुंद्र मथन चउदह रतन कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ मिलि देव अदेवन सिंध मथ्यो। कब स्याम कवित्तन मद्ध कथ्यो। तब रतन चतुरदस यों निकसे। असता निस मो सस से बिगसे ॥१॥ ॥ तोटक छंद ॥ असुरांतक सीस की ओर हुअं। मिलि पूछ गही दिस देव दुअं। रतनं निकसे बिगसे ससि से। जनु घूटन लेत अमी रस के ॥ २ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ निकस्यो धनु साइक

आधा बाँटकर उस रस्सी के दोनो किनारो को पकड़ लिया गया। सिर की ओर दैत्यों ने पकड़ा और पूंछ देवताओ ने पकडकर क्षीरसमुद्र को ऐसे मथना शुरू किया मानो मटकी मे (दही) मथा जाता हो ॥ ४ ॥ ॥ भुजग छद ॥ अब यह विचार होने लगा कि ऐसा अन्य कौन वीर है, जो पर्वत के भार को अपने पर सहन कर सकता है (क्योकि पर्वत को नीचे आधार की आवश्यकता है)। यह सुनकर दित्य, आदित्य आदि सभी वीर असमंजस मे पडकर काँप उठे। तब देवो-अदेवो की इस कठिनाई को देखकर विष्णू ने स्वय ही विचार किया और कच्छप-रूप धारण कर पर्वत के तल मे विराजमान हो गए ॥ ५ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के द्वितीय कच्छप-अवतार-वर्णन की समाप्ति ॥

क्षीरसमुद्र-मंथन और चौदह रत्न-कथन का प्रारम्भ ॥

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ तोटक छंद ॥ देव और दैत्यो ने मिलकर समुद्र का मथन किया, जिसका श्याम कवि ने कवित्तो मे वर्णन किया है। तब चौदह रत्न ऐसे निकलकर शोभायमान हुए, मानो रात्रि में चद्रमा निकलकर शोभायमान हुआ हो ॥ १ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ सिर की ओर दैत्य हुए और देवो ने पूंछ की दिशा अर्थात् तरफ़ से वासुकि को पकड़ा। रत्नो को निकलते देखकर सभी ऐसे प्रसन्न होते दिखाई देने लगे, मानो अमृत के घूंट पीकर प्रसन्न हो रहे हों ॥ २ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ शुद्ध

सुद्ध सितं । मदु पान कढ्यो घट मद्य मतं । गज बाज सुधा लछमी निकसी । घन मो मनो बिद्दुलता बिगसी ॥ ३ ॥
॥ तोटक छंद ॥ कलपाद्रम माहुर अउ रंभा । जिह मोहि रहै लख इंद्र सभा । मणि कौसतकं ससि रूप सुभं । जिह मज्जत दैत बिलोक जुधं ॥ ४ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ निकसी गवराज सु धेन भली । जिह छीन लयो सहसास्त्र बली । गन रतन गनउ उपरतन अबै । तुम संत सुनो चित लाइ (मू०ग्रं०१६०) सभै ॥ ५ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ गन जोक हरीतकी ओर मधं । जन पंच सु नामय संख सुभं । सस बेल बिजिया अर चक्र गदा । जुवराज बिराजत पान सदा ॥ ६ ॥ ॥ तोटक ॥ धनु सारंग नंदग खग्ग भणं । जिन्न खंडि करै गन दइत रणं । शिव सूल बड़वानल कपल मुनं । त धनंतर चउदसवो रतनं ॥ ७ ॥
गन रतन उपरतन औ धात गनो । कहि धात सभै उपधात भनो । सभ नाम जथामत स्याम धरो । घट जान कवी जिन निंद करो ॥ ८ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ प्रिथमो गन लोह सिका

श्वेत वर्ण का धनुष-बाण निकला और उन मदमस्तो ने एक घड़े मे मद्य भी (सागर से) निकाला । (ऐरावत) हाथी, अश्व, अमृत और लक्ष्मी इस प्रकार निकलकर शोभायमान होने लगे, मानो बादलो मे विद्युत् चमक उठी हो ॥ ३ ॥ ॥ तोटक छद ॥ कल्पद्रुम (वृक्ष), विष और रम्भा नामक अप्सरा भी निकली जिसे देखकर इन्द्र-सभा के लोगो का मन ललचा उठा । कौस्तुभमणि और चद्रमा भी निकले जिनकी आराधना (कामना) युद्धस्थल मे दैत्यगण किया करते है ॥ ४ ॥ ॥ तोटक छद ॥ कामधेनु गाय भी निकली, जिसे बली सहस्रार्जुन ने छीन लिया था । रत्नो की गणना कर अब मै उपरत्नो की गणना करता हूँ, अतः हे सतो ! तुम ध्यानपूर्वक सुनो ॥ ५ ॥ ॥ तोटक छद ॥ ये उपरत्न है, जोक, हारिड़, हकीक, मधु, शुभ पाञ्चजन्य शंख, सोमलता, भाँग और चक्र-गदा जो कि युवराजो के हाथो मे सदा शोभायमान होते है ॥ ६ ॥ ॥ तोटक ॥ धनुष-बाण, नंदी एव खड्ग जिसने दैत्यों का नाश किया था, भी सागर से निकले । शिव का त्रिशूल, बड़वानल और कपिल मुनि तथा धनवतरि चौदहवे रत्न के रूप मे निकले ॥ ७ ॥ रत्नो, उपरत्नो की गणना कर अब धातुओ की गणना करता हूँ तथा फिर उपधातुओ की गणना करूँगा । ये सब नाम श्याम कवि ने अपनी बुद्धि के अनुसार गिनाए है, इन्हे कम समझकर कविगण कृपया मेरी निन्दा न करे ॥ ८ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ पहले

स्वरनं । चतुरथ भन धात सितं रुकमं । बहुरो कथ तांबर कली पितरं । कथि अष्टम जिसतु है धात धरं ॥ ६ ॥ ॥तोटक छंद॥ ॥ उपधात कथनं ॥ सुरमं शिगरफ हरताल गणं । चतुरथ तह सिबल खार भणं । म्रितसंख मनासिल अभ्रकयं । भन अष्टम लोण रसं लवणं ॥ १० ॥ ॥ दोहरा ॥ धात उपधात जथाशकति सो हौ कही बनाइ । खानन महि भी होत है कोई कहूँ कमाइ ॥ ११ ॥ ॥ चौपई ॥ रतन उपरतन निकासे तब ही । धात उपधात दिरब भो सभ ही । तिह तब ही बिशनहि हिर लयो । अवरनि बाट अवर नहि दयो ॥१२॥ ॥ चौपई ॥ सारंग सर अस चक्र गदा लिअ । पांचामर लै नाद अधिक किअ । सूल पिनाक बिखह कर लीना । सो लै महाँदेव कउ दीना ॥ १३ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ दियो इद्र ऐरावतं बाज सूरं । उठे दीह दानो जुधं लोह पूरं । अनी दानवी देख उट्ठी अपारं । तबै बिशन जू चित्त कीनो बिचारं ॥ १४ ॥

लोहा, सीसा, और सोने की गणना करता हूँ और चौथी धातु श्वेत चाँदी कहता हूँ । फिर ताँबे, कलई और पत्र का वर्णन करता हुआ आठवी धातु जिस्त मानता हूँ जो धरती के गर्भ मे है ॥९॥ ॥ तोटक छद ॥ ॥ उपधातु कथन ॥ शूरमा, सिंहरफ, हरताल, सिबल, खार, मृतुशख, अभ्रक, लवण, रस आदि उपधातुएँ है ॥ १० ॥ ॥ दोहा ॥ ये धातुएँ, उपधातुएँ मैने यथाशक्ति वर्णित की है और ये सब धरती की खानो मे भी होती है । जो इनका इच्छुक हो इन्हे अर्जित कर सकता है ॥ ११ ॥ ॥ चौपाई ॥ रत्न, उपरत्न, धातु, उपधातु आदि जैसे निकले, उन्हे विष्णु ने अपहृत कर लिया और अन्य वस्तुएँ सबमे बाँट दिया ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ धनुष-बाण, कृपाण, चक्र, गदा, पांचजन्य शख आदि स्वय ले लिया और त्रिशूल, पिनाक नामक धनुष, विष अपने हाथ मे लेकर महादेव शिव को दे दिया ॥ १३ ॥ ॥ भुजग छद ॥ इन्द्र को ऐरावत और सूर्य को अश्व दे दिया गया, जिसे देखकर दानव क्रोधित होकर युद्ध करने के लिए तैयार हो गये । दानवो की अपार सेना को चढकर आता देखकर विष्णु ने अपने मन मे विचार किया ॥ १४ ॥

अथ नर नाराइण अवतार कथनं ॥

॥ भुजंग छंद ॥ नरं अउर नाराइणं रूपधारी । भयो सामुहे शस्त्र अस्त्र सँभारी । भटं ऐंठ फैटे भुजं ठोक भूपं । बजे सूल सेलं भए आप रूपं ॥ १५ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ पर्यो आप मो लोहि क्रोहं अपारं । धर्यो ऐस कै बिशन त्रितीआवतारं । नरं एक नाराइणं द्वै सरूपं । दिपै जोति सउदरजु धारे अनूपं ॥ १६ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ उठे टूप टोपं गुरजं प्रहारे । जुटे जंग को जंग जोधा जुझारे । उडी धूरि पूरं छुही ऐन गैनं । डिगे देवता दैत कंप्यो त्रिनैनं ॥ १७ ॥ ॥ भुजंग ॥ गिरे बीर (मू०ग्रं०१६१) एकं अनेकं प्रकारं । सुभे जंग मो जंग जोधा जुझारं । परी लच्छ मुच्छं सुभे अंग भंगं । मनो पान कै भंग पौढे मलंगं ॥ १८ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ दिसामउन आई अनी दैतराजं । भजे सरब देवं तजे सरब साजं । गिरे संज पुंजं सिर बाहु बीरं । सुभे बान जिउँ

नर-नारायण-अवतार-कथन प्रारंभ

॥ भुजग छंद ॥ विष्णु नर और नारायण के रूप मे अस्त्र-शस्त्र सँभालकर उस दैत्य-सेना के सामने आ डटे । शूरवीरो ने वस्त्र कसकर बाँध लिये और राजा लोग भुजाओ को ठोकने लगे । त्रिशूल और भाले उस युद्ध में टकराने लगे ॥ १५ ॥ ॥ भुजग छद ॥ परस्पर क्रोध एवं लोहा बरसने लगा और ऐसे क्षण मे विष्णु ने तीसरा अवतार धारण किया । नर और नारायण दोनो एक ही स्वरूप वाले हैं और एक-दूसरे से सौ गुना अधिक देदीप्यमान हो रहे है ॥ १६ ॥ ॥ भुजग छद ॥ लौह-टोप पहने हुए वीर गदाओं के प्रहार कर रहे है और महाबली योद्धा युद्ध मे लीन हो गये है । धूल इतनी अधिक उडकर आकाश मे छा गई कि देवता और दैत्य उसी मे भटककर गिरने लगे तथा शिव भी भयभीत हो उठे ॥ १७ ॥ ॥ भुजग ॥ अनेको प्रकार से वीर धराशायी होने लगे और बडे-बड़े जूझारू वीर- युद्ध मे शोभायमान होने लगे । खण्ड-खण्ड होकर वीर गिरने लगे और ऐसा लग रहा है, मानो पहलवान भाँग पीकर मस्त पडे हो ॥ १८ ॥ ॥ भुजग प्रयात छद ॥ एक अन्य दिशा से दैत्यों की और सेना आ गई, जिसे सब साज-सामान छोड़कर दे ता लोग भाग खड़े हुए । अंगो के झुंड गिरने लगे और बाण इस प्रकार शोभायमान होने लगे जैसे चैत्र के महीने में करील के पेड़ मे फूल शोभायमान हो रहे हो ॥ १९ ॥

चेत पुहपं करीरं ॥१९॥ ॥ भुजंग छंद ॥ सुरे जंग हार्‌यो कियो बिशन मंत्रं । भयो अंत्रध्यानं कर्‌यो जान तंत्रं । महाँ मोहनी रूप धार्‌यो अनूपं । छके देखि दोऊ दित्यादित्ति भूपं ॥ २० ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे नर त्रितीय अते नाराइण
चतुरथ अवतार सपूरनं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ महा मोहनी अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ महा मोहनी रूप धार्‌यो अपारं । रहे मोहिकै दिति आदिति कुमारं । छके प्रेम जोगं रहे रीझ सरबं । तजे शस्त्र अस्त्रं दियो छोर गरबं ॥ १ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ फँदे प्रेमफाँधं भयो कोप हीणं । लगे नैन बैनं धयो पान पीणं । गिरे झूमि भूमं छुटे जान प्राणं । सभै चेत हीणं लगे जान बाणं ॥२॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ लखे

॥ भुजग छद ॥ देवता युद्ध मे हार गए और तब विष्णु विचार-विमर्श करके अपनी तंत्र-विद्या की सहायता से अन्तर्ध्यान हो गए। तब विष्णु ने महामोहनी-रूप धारण किया, जिसे देखकर दैत्य और देवता दोनों ही अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २० ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रथ के नर तृतीय और नारायण चतुर्थ अवतार-
कथन की समाप्ति ॥ ३ ॥ ४ ॥

महामोहिनी-अवतार-कथन प्रारंभ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ (विष्णु ने) महामोहिनी रूप धारण किया, जिसे देखकर देवता और दैत्य दोनो मोहित हो गए। सभी उसको प्रसन्न कर उसके प्रेमभाजन बनने का संकल्प करने लगे तथा सभी ने अस्त्र-शस्त्र एव गर्व का त्याग कर दिया ॥ १ ॥ ॥ भुजग छंद ॥ सभी उसके प्रेम-पाश मे बँधकर क्रोध-विहीन हो गए और उसके नेत्रो की चचलता और बातो की मधुरता का रसपान करने के लिए उसकी ओर उमड़ पड़े। सभी झूम-झूमकर उसके सामने इस प्रकार धरती पर गिरने लगे, मानो उन सबके प्राण निकलने ही वाले हो। उस महामोहिनी के सामने सभी इस प्रकार चेतना-विहीन हो गए जैसे युद्धस्थल में बाण लगने पर शूरवीर अचेत हो जाते हैं ॥ २ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ उन सबको चेतना-विहीन देखकर देवताओ के अनन्त अस्त्र-शस्त्र

1

चेत हीणं भए सूर सरबं । छुटे शस्त्र अस्त्रं सभै अरब खरबं । भयो प्रेम जोगं लगे नैन ऐसे । मनो फाध फाँधे म्रिगीराज जैसे ॥ ३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ जिने रतन बाँटे तुमूं ताहि जानो । कथा ब्रिद्ध ते बात थोरी बखानो । सभै पाँत पातं बहिट्ठे सु बीरं । कटं पेच छोरे तजे तेग तीरं ॥४॥ ॥ चौपई ॥ सभ जग को जु धनंतरि दीआ । कलप ब्रिछ लछमी कर लीआ । शिव माहुर रंभा सभ लोकन । सुख करता हरता सभ सोकन ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ ससि क्रिस दे करवे नमित मनि लछमी कर लीन । उर राखी तिह ते चमक प्रगट दिखाई दीन ॥ ६ ॥ ॥ दोहरा ॥ गाइ रखीशन कउ दई कह लउँ करों बिचार । शास्त्र सोध कबियन मुखन लीजहु पूछ सुधार ॥ ७ ॥ ॥ भुजंग ॥ रहे रीझ ऐसे सभै देव दानं । म्रिगीराज जैसे सुने नाद कान । बटे रतन सरबं गई छूट रारं । धर्‍यो ऐस स्त्री बिशन पंचमवतारं ॥ ८ ॥

॥ इति स्त्री बचित्र नाटके ग्रथे महा मोहनी पचम अवतार सपूरनं ॥५॥ (मू०ग्रं०१६२)

चल निकले । दैत्य मरने लगे और अनुभव करने लगे, जैसे वे मोहिनी के प्रेम के योग्य मान लिये गए हो । वे सब ऐसे लग रहे थे जैसे सिंह को फंदे मे कैद कर लिया गया हो ॥ ३ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ जितने रत्न बाँटे गए उसे आप जानते ही है, इसलिए कथावृद्धि के भय के कारण मैं संक्षेप में वर्णन करता हूँ । सभी वीर अपने कमर के वस्त्रों को ढीला कर और तलवार का परित्याग कर एक पंक्ति मे बैठ गए ॥४॥ ॥ चौपाई ॥ ससार के लिए धन्वन्तरि को दे दिया और कल्पवृक्ष तथा लक्ष्मी देवताओ को दे दिया । शंकर को विष और अन्य सब लोगो को (नृत्य आदि देखने के लिए) रम्भा नामक अप्सरा दे दी जो सब सुखो को देनेवाली और शोक का नाश करनेवाली थी ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ चन्द्रमा को किसी को देने के लिए और मणि तथा लक्ष्मी को (स्वय रखने के लिए) महामोहिनी ने अपने हाथ मे लिया । मणि को उसने अपने हृदय मे छिपा लिया, परन्तु उसकी चमक स्पष्ट दिखाई देती रही ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ कामधेनु गाय ऋषियों को दे दी और मैं इन सब बातो का कहाँ तक विचार करूँ । आप स्वय शास्त्रो को विचार कर और कवियो से पूछकर सुधार कर लीजिए ॥ ७ ॥ ॥ भुजग ॥ देव और दानव सब इस प्रकार झूम रहे थे, मानो मृगो का राजा नाद की आवाज़ सुनकर मस्त हो रहा हो । सभी रत्न बँट गए और झगडा समाप्त हो गया । इस प्रकार श्री विष्णु का पाँचवाँ अवतार हुआ ॥ ८ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के महामोहिनी पञ्चम अवतार की समाप्ति ॥ ५ ॥

अथ बैराह अवतार कथनं ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ दयो बाँट मदियं अमबियं भगवानं। गए ठाम ठामं सभै देव दानं। पुनर द्रोह बढ्यो सु आपं मझार। भजे देवता दइत जित्ते जुझारं ॥ १ ॥ ॥ भुजंग ॥ हिरिन्यो हिरंनाछसं दोइ बीरं। सभै लोग कै जीत लीने गहीरं। जलं बा थलेयं कियो राज सरबं। भुजा देख भारी बढ्यो ताहि गरबं ॥ २ ॥ ॥ भुजंग ॥ चहै जुद्ध मो सो करे आन कोऊ। बली होइ वा सो भिरे आन सोऊ। चढ्यो मेर स्त्रिंगं परी गुष्ट सगं। हरे बेद भूमं किए सरब भंगं ॥ ३ ॥ धसी भूम बेधं रही ह्वै पतारं। धर्‍यो बिशन तउ दाड़ गाड़ावतारं। धस्यो नीर मद्धं कियो ऊच नादं। रही धूरि पूरं धुनं निरबिखादं ॥ ४ ॥ ॥ भुजंग ॥ बजे डाक डउरू दोऊ बीर जागे। सुणे नादि बंके महाँ भीर भागे। झिमी तेग तेजं सरोसं प्रहारं। खिवी दामनी जाण भादों मझारं ॥ ५ ॥

वाराह-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ भुजग प्रयात छद ॥ इस प्रकार भगवान ने मद्य एव अमृत बाँट दिया तथा सभी देव-दानव अपने-अपने स्थानों को चले गए। पुनः इन दोनो मे परस्पर शत्रुता बढी और युद्ध हुआ, जिसमे शूरवीर दैत्यो के समक्ष देवता भाग खडे हुए ॥१॥ ॥ भुजग ॥ हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दोनो दैत्य वीरो ने सभी लोको के खज़ानो को जीत लिया। जल, स्थल सर्वत्र स्थानो पर उन्होने राज किया और अपने भारी भुजबल को देखकर उनका अभिमान बहुत बढ़ गया ॥ २ ॥ ॥ भुजग ॥ ये चाहने लगे कि कोई बलवान हमसे आकर युद्ध करे, परन्तु इनसे वही भिडता जो महाबलशाली होता। उसने सुमेरु पर्वत के शिखर पर चढ़ गदा-प्रहार किया और वेद और भूमि का हरण कर सभी प्राकृतिक नियमों को तहस-नहस कर दिया ॥ ३ ॥ धरती धँसकर पाताललोक मे चली गई। तब विष्णु ने भयकर एव कठोर दाँतों वाले वाराह-रूप में अवतार लिया। इसने जल मे धँसकर घनघोर ध्वनि की, जो सारे विश्व मे समरूप होकर व्याप्त हो गई ॥ ४ ॥ ॥ भुजंग ॥ इस भयकर ध्वनि और नगाडों की आवाज को सुनकर दोनो वीर जाग उठे। इनकी गर्जना को सुनकर कायर लोग भाग खड़े हुए। युद्ध हुआ और कृपाणों की झमझम ध्वनि और सरोष प्रहारो की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। कृपाणो का चमकना

॥ भुजंग ॥ मुखं मुच्छ बंकी बकै सूरबीरं। तड़ंकार तेगं सड़ंकार तीरं। धमक्कार सागं खड़क्कार खग्गं। टुटे टूक टोपं उठे नाल अग्गं ॥ ६ ॥ ॥ भुजंग ॥ उठे नद्द नादं ढमक्कार ढोलं। ढलंकार ढालं मुखं मार बोलं। खहे खग्ग खूनी खुले बीर खेतं। नचे कंधि हीणं कमद्धं न्रिचेतं ॥७॥ ॥भुजंग॥ भरे जोगणी पात्र चउसठ चारी। नची खोल सीसं बकी बिकरारी। हसै भूत प्रेत महा बिकरालं। बजे डाक डउरू करूरं करालं ॥ ८ ॥ ॥ भुजंग ॥ प्रहारत मुष्टं करै पाव घातं। मनो सिंघ सिंघं डहे गज मातं। छुटी ईस ताड़ी डग्यो ब्रहम धिआनं। भज्यो चंद्रमा काँप भानं मध्यानं ॥९॥ ॥भुजंग॥ जले बा थलेयं थलं तथ नीरं। किधो संधियं बाण रघु इंद्र बीणं। करै दैत आघात मुष्टं प्रहारं। मनो चोट बाहै घरियारी घरियारं ॥ १० ॥ बजे डंक बंके सु क्रूरं करारे। मनो गज

ऐसा लग रहा था, मानो भादों मास मे बिजली चमक रही हो ॥ ५ ॥ ॥ भुजग ॥ बाँकी मूंछो वाले शूरवीर चिल्ला रहे है तथा तलवारो की तड़तड़ाहट और तीरो की सड़सडाहट सुनाई पड़ रही है। बर्छियो की धमक और खड्गो की खड़खड़ाहट से शिरस्त्राण टूटकर गिर रहे है और उनमे से चिनगारियाँ निकल रही है ॥ ६ ॥ ॥ भुजग ॥ नगाड़ो-ढोलो की गड़गड़ाहट और ढालो की ढमाढम के साथ मुँह से मारो-मारो की आवाज सुनाई पड़ रही है। युद्धस्थल मे वीरो के खूनी खड्ग निकले हुए है और अचेतावस्था मे कबन्ध नृत्य कर रहे है ॥७॥ ॥ भुजग ॥ चौसठ योगिनियो ने रक्त से अपने खप्परो को भर लिया हैं और जटाएँ खोलकर विकराल रूप से किलकारियाँ मार रही है। महा विकराल भूत-प्रेत अट्टहास कर रहे हैं और कराल डाकिनियो की डमाडम ध्वनि सुनाई पड रही है ॥ ८ ॥ ॥ भुजग ॥ वीर एक-दूसरे पर मुष्टिका प्रहार एवं पदाघात इस प्रकार कर रहे है, मानो सिह एक-दूसरे पर गरज कर टूट पड़े हो। युद्ध की भीषण ध्वनि सुनकर शिव एव ब्रह्मा का ध्यान डगमगा उठा। चन्द्रमा भी कांप उठा और दोपहर का सूर्य भी भयभीत होकर भाग उठा ॥ ९ ॥ ॥ भुजग ॥ ऊपर-नीचे सब ओर जल ही जल था और इसी मे विष्णु ने बाणो से निशाना साधा। दैत्यगण भी इस प्रकार भीषण मुष्टिका प्रहार कर रहे थे, मानो एक घड़ियाल दूसरे घड़ियाल पर चोट कर रहा हो ॥ १० ॥ नगाडे बज उठे और महाबली क्रूर वीर इस प्रकार आपस मे भिड़ उठे, मानो लम्बे दाँतो वाले हाथी आपस

जुट्टे दंतारे दंतारे। ढमंकार ढोलं रणंके नफीरं। सड़ंकार साँगं तड़ंक्कार तीरं॥ ११॥ ॥ भुजंग॥ दिनं अष्ट जुद्धं भयो अष्ट रैणं। डगी भूम सरबं उठ्यो काँप गैणं। रणं रंग रत्ते सभै रंग भूमं। हण्यो बिशन सत्रं गिर्यो अंत झूमं॥ १२॥ ॥ भुजंग॥ धरे दाड़ अग्रं चतुर (मू०ग्रं०१६३) बेद तबं। हठी दुष्ट जित्ते भजे दैत सब। दई ब्रहम आज्ञा धनुरबेद कीयं। सभै संतनंतान को सुख दीयं॥ १३॥ ॥ भुजंग॥ धर्यो खष्टमं बिशन अंसावतार। सभै दुष्ट जिते कियो बेद उधारं। थट्यो धरमराजं जिते देव सरबं। उतार्यो भली भाँत सों ताहि गरबं॥ १४॥

इति स्री बचित्र नाटके छेवा अवतार बैराह॥ ६॥

॥ अथ नरसिंघ अवतार कथनं॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ॥ ॥ पाधरी छंद॥ इह भाँत कियो दिव राज राज। भंडार भरे सुभ सरब साज। जब

मे भिड़ रहे हो। ढोलो और तूतियो की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी और बर्छियो की सनसनाहट तथा वाणों की तड़तडाहट सुनाई पड़ रही थी॥ ११॥ ॥ भुजग॥ आठ दिन और आठ रात युद्ध हुआ, जिसमे धरती डगमगा उठी और आकाश काँप उठा। युद्धभूमि मे सभी रणमत्त दिखाई दे रहे थे और युद्धस्थल मे ही विष्णु ने शत्रु को मार गिराया॥ १२॥ ॥ भुजग॥ तभी दाँत के अग्र भाग पर चारो वेदो को टिकाया और हठी शत्रु दैत्यो को मार भगा दिया। ब्रह्मा को (विष्णु ने) आज्ञा दी और उन्होने धनुर्वेद का सृजन किया तथा सभी सन्तो को सुख दिया॥ १३॥ ॥ भुजग॥ इस प्रकार यह विष्णु का छठवाँ अशावतार हुआ, जिसने शत्रुओ का नाश किया और वेदो का उद्धार किया। धर्म की विजय हुई और देवतागण जीत गए तथा उन्होने भली-भाँति सबके गर्व का निवारण किया॥ १४॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के छठवे अवतार वाराह की समाप्ति॥ ६॥

नरसिह-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय॥ ॥ पाधरी छद॥ इस प्रकार देवराज मे राज किया और सर्व प्रकार से अपने भण्डारो को भरा। जब देवताओ का गर्व अधिक बढ़

देवतान बढियो गरूर। बलवंत दैत उट्ठे करूर ॥ १ ॥ ॥ पाधरी छंद ॥ लिन्नो छिनाइ दिव राज राज। बाजित्र नेक उठे सु बाज। इह भाँति जगत दोही फिराइ। जल बा थलेअं हिरनाछराइ ॥ २ ॥ ॥ पाधरी छंद ॥ इक द्योस गयो निज नारि तीर। सजि सुद्ध साज निज अंग बीर। किह भाँत सु त्रिय सो भ्यो निरुक्त। तब भयो दुष्ट को बीर्य मुक्त ॥ ३ ॥ ॥ पाधरी छंद ॥ प्रह्लाद भगत लीनो वतार। सभ करनि काज संतन उधार। चटसार पड़न सउप्यो न्रिपाल। पटियहि कहियो लिखदै गुपाल ॥ ४ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ इकि द्योस गयो चटसार न्रिपं। चित चौक रह्यो सुभ देख सुतं। जु पड़्यो दिज ते सुनि ताहि रड़ो। निरभै सिस नामु गुपाल पड़ो ॥ ५ ॥ ॥ तोटक ॥ सुनि नामु गुपाल रिस्यं असुरं। बिनु मोहि सु कउणु भजो दुसरं। जिय माहि धरो सिस याहि हनो। जड़ किउँ भगवान को नाम भनो ॥६॥ ॥ तोटक ॥ जल

गया तो उनका गर्व चूर करने के लिए क्रूर बलशाली दैत्य पुनः उठ खड़े हुए ॥ १ ॥ ॥ पाधरी छंद ॥ देवराज का राज्य छीन लिया गया और सब ओर अनेक वाद्य बजा-बजाकर सारे जगत मे यह घोषणा करवा दी गई कि जल-स्थल सब स्थानो पर हिरण्यकशिपु ही सम्राट् है ॥ २ ॥ ॥ पाधरी छद ॥ एक दिन यह महाबली सुसज्जित होकर अपनी स्त्री के पास गया और उसमे इतना लिप्त हो गया कि उससे सभोग करते समय इसका वीर्यपात हो गया ॥ ३ ॥ ॥ पाधरी छद ॥ उससे प्रह्लाद भक्त ने सब सन्तो के कार्य करने एवं उनका उद्धार करने के लिए अवतार लिया। राजा ने उसे पाठशाला मे जब पढ़ने के लिए भेजा तो उसने शिक्षक से आग्रह किया कि उसकी पट्टिका पर वह परमात्मा का नाम लिख दे अर्थात् भक्त प्रह्लाद परमात्मा-चिन्तन मे लीन हो गया ॥ ४ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ एक दिन राजा पाठशाला गया और अपने पुत्र को देखकर चौक पडा। राजा ने जब पूछा तो बालक ने जो पढना सीखा था, वह बताया और निर्भय होकर प्रह्लाद ने परमात्मा के नाम को पढना शुरू कर दिया ॥ ५ ॥ ॥ तोटक ॥ परमात्मा का नाम सुनकर असुर क्रोधित हो उठा और कहने लगा कि मेरे बिना अन्य कौन है जिसका तुम ध्यान कर रहे हो। इस शिष्य को मार डालना है, यह उसने निश्चय कर लिया और कहा कि हे जड़! तुम भगवान का नाम क्यो पुकार रहे हो? ॥ ६ ॥ ॥ तोटक ॥ जल और स्थल मे तो एक ही वीर

अउर थलं इक बीर मनं। इह काहि गुपाल को नामु भणं। तब ही तिह बाँधत थंम भए। सुन स्रवनन दानव बैन धए ॥ ७ ॥ ॥ तोटक ॥ गहि मूड़ चले सिस मारन कों। निकस्योब गुपाल उबारन कों। चकचउध रहे जनु देख सभै। निकस्यो हरि फारि किवार जबै ॥ ८ ॥ ॥ तोटक ॥ लखि देव दिवार सभै थहरे। अविलोक चराचर हूहि हिरे। गरजे नरसिंघ नरांत करं। द्रिग रत्त किए मुख स्रोण भरं ॥ ६ ॥ ॥ तोटक ॥ लख दानव भाज चले सभ ही। गरज्यो नरसिंघ रणं जब ही। इक भूपति ठाढि रह्यो रण मैं। गहि हाथ गदा निरभै (मू०ग्रं०१६४) मन मै ॥ १० ॥ ॥ तोटक ॥ लरजे सभ सूर न्रिपं गरजे। समुहात भए भट केहर के। जु गए समुहे छित तै पटके। रण ते रणधीर बटा नट के ॥ ११ ॥ ॥ तोटक ॥ बबके रणधीर सु बीर घणे। रहिगे मनो किंसक स्रोण सणे। उमगे चहुँ ओरन ते रिप यों। बरसात बहारन अभ्रन ज्यों ॥ १२ ॥ ॥ तोटक ॥ बरखे सर सुद्धि सिला

(हिरण्यकशिपु) माना जाता है। तव तुम क्यों भगवान का नाम ले रहे हो ? तब प्रह्लाद को स्तम्भ से बाँधने की आज्ञा पाकर दैत्यों ने ऐसा ही किया ॥ ७ ॥ ॥ तोटक ॥ वे मूढ़ इस शिष्य को मारने के लिए जैसे ही आगे बढ़े, उसी समय शिष्य का उद्धार करने के लिए परमात्मा प्रकट हुए। सभी भगवान को देखकर उस समय चकित हो उठे जब भगवान सभी अवरोधो को नष्ट करते हुए प्रकट हुए ॥ ८ ॥ ॥ तोटक ॥ देव-दानव सभी उसको देखकर थरथरा उठे और चराचर सभी हृदय मे भयभीत हो उठे। नरसिंहस्वरूप परमात्मा लाल आँखें किए तथा मुँह मे रक्त भरे हुए भयानक रूप से गरज उठे ॥ ९ ॥ ॥ तोटक ॥ यह देखकर और नरसिंह की गर्जना सुनकर सभी दानव भाग खड़े हुए। केवल एक सम्राट् (हिरण्यकशिपु) युद्धस्थल मे हाथ में गदा पकड़े हुए निर्भय मन से डटा रहा ॥ १० ॥ ॥ तोटक ॥ जब सम्राट् ने घोर गर्जन किया तो सभी शूरवीर काँप उठे और सभी शूरवीर उस सिंह के सामने मुड बाँधकर आने लगे। जो नरसिंह के सामने गए उन सभी रणधीरो को नट के समान पकडकर नरसिंह ने धरती पर दे मारा ॥ ११ ॥ ॥ तोटक ॥ शूरवीर घनघोर रूप से एक-दूसरे को ललकारने लगे और रक्त से सने हुए गिरने लगे। चारो ओर से शत्रु इस प्रकार उमडने लगे, जैसे वर्षाऋतु मे वादल उमड़ते है ॥ १२ ॥ ॥ तोटक ॥ दसो दिशाओ

सितयं । उमड़े बर बीर दसो दिसयं । चमकंत क्रिपाण सु बाण जुधं । फहरंत धुजा जनु बीर क्रुधं ।। १३ ।। ।। तोटक ।। हहरंत हठी बरखंत सरं । जन सावण मेघ बुठ्यो दुसरं । फहरंत धुजा हहरंत हयं । उपज्यो जिअ दानव राइ भयं ।।१४।। ।। तोटक ।। हहनात हयं गरजंत गजं । भट बाँह कटी जनु इंद्रधुजं । तरफंत भटं गरजंत गजं । सुणि कै धुनि सावण मेघ लजं ।। १५ ।। ।। तोटक ।। बिचल्यो पग द्वैक फिर्यो पुन ज्यों । कर पुंछ लगे अहि क्रुद्धत ज्यों । रण रंग समै मुख यो चमक्यो । लख सूर सरोरह सो दमक्यो ।। १६ ।। ।। तोटक ।। रण रंग तुरंगन ऐस भयो । शिव ध्यान छुट्यो ब्रहमंड गयो । सर सैल सिला सित ऐस बहे । नभ अउर धरा दोऊ पूर रहे ।। १७ ।। ।। तोटक ।। गन गंध्रब देख दोऊ हरखे । पुहपावलि देव सभै बरखे । मिलि गे भट आप बिखै

से उमड़कर शूरवीर बाणो और शिलाओ की वर्षा करने लगे । युद्ध में कृपाण, बाण चमकने लगे और वीर क्रोधित होकर अपनी ध्वजाओ को फहराने लगे ।। १३ ।। ।। तोटक ।। हठी शूरवीर हड़हड़ाकर तीरो की वर्षा इस प्रकार कर रहे है, मानो सावन मे दूसरी मेघघटा बरस रही हो । ध्वजाएँ फहरा रही है और अश्व हिनहिना रहे है और इस सारे दृश्य को देखकर दानवराज का हृदय भी भयभीत हो उठा ।।१४।। ।। तोटक ।। घोड़े हिनहिना रहे है और हाथी गरज रहे है । शूरवीरों की लम्बी कटी हुई भुजाएँ इंद्र की ध्वजा के समान दिखाई दे रही हैं । शूरवीर तड़प रहे है और हाथी इस प्रकार गरज रहे है कि उनकी गर्जना को सुनकर सावन के बादल भी लजायमान हो रहे है ।। १५ ।। ।। तोटक ।। जैसे ही हिरण्यकशिपु थोडा सा घूमा तो वह स्वय विचलित होकर दो पग पीछे हटा, परन्तु फिर भी वह इस प्रकार क्रोधित हो रहा था जैसे सर्प की पूँछ पर पैर पड़ने से सर्प क्रोधित होता है । उसका मुख युद्धस्थल में इस प्रकार चमक रहा था, जिस प्रकार सूर्य को देखकर कमल खिल उठता है ।। १६ ।। ।। तोटक ।। घोड़े भी युद्धस्थल मे इतने मस्त होकर विचरण एवं ध्वनि करने लगे कि शिव का ध्यान भी भग हो गया और ऐसा लगने लगा, मानो ब्रह्माण्ड हिल गया हो । बाण बर्छियां और शिलाएँ उड़कर धरती और आकाश दोनो को भर रही थी ।। १७ ।। ।। तोटक ।। गण-गन्धर्व दोनो को देखकर प्रसन्न हो उठे और देवताओ ने पुष्प-वर्षा की । ये दोनों शूरवीर इस प्रकार आपस मे भिड़ रहे थे, जैसे रात मे बच्चे एक-

दोऊ यों। लिस खेलत रैण हुडू हुड ज्यों ॥ १८ ॥ ॥ बेली बिंद्रम छंद ॥ रणधीर बीर सु गज्जहीं। लखि देव अदेव सु लज्जहीं। इक सूर घाइल घूंमहीं। जन धूम अधोमुख धूमहीं ॥ १९ ॥ ॥ बेली बिंद्रम छंद ॥ भट एक अनेक प्रकार ही। जुज्झे अजुज्झ जुझार ही। फहरंत बैरक बाणयं। ठहरंत जोध किकाणयं ॥ २० ॥ ॥ तोमर छंद ॥ हिहणात कोट किकान। बरखंत सेल जुआन। छुटकंत साइक सुद्ध। मच्यो अनूपम जुद्ध ॥ २१ ॥ ॥ तोमर छंद ॥ भट एक अनिक प्रकार। जुज्झे अनंत स्वार। बाहै क्रिपाण निशंग। मच्यो अपूरब जंग ॥ २२ ॥ ॥ दोधक छंद ॥ बाह क्रिपाण सुबाण भट्टगण। अंति गिरे पुनि जूझ महॉरण। घाइ लगै इम घाइल झूलै। फागनि अंति बसत सफूलै ॥२३॥ ॥ दोधक छंद ॥ बाहि कटी (मू०ग्रं०१६५) भट एकन ऐसी। सुंड मनो गज राजन जैसी। सोहत एक अनेक प्रकारं। फूल खिरे जमु मद्धि फुलवारं ॥२४॥ ॥ दोधक ॥ स्रोण रँगे अर एक अनेकं। फूल रहे जनु किंसुक नेकं। धावत घाव क्रिपाण प्रहारं। जानक कोपु प्रतच्छ

दूसरे से होड़ लगाकर खेल रहे हो ॥ १८ ॥ ॥ वेली बिंद्रम छद ॥ युद्ध मे वीर गरज रहे है और उन्हे देखकर देव-दानव दोनो लजायमान हो रहे हैं। शूरवीर घायल घूम रहे है और ऐसा लग रहा है कि जैसे धुआँ ऊपर की ओर उड रहा हो ॥१९॥ ॥ वेली बिंद्रम छद ॥ अनेक प्रकार के वीर आपस मे वीरतापूर्वक जूझ रहे है। भाले और वाण फहरा रहे है और योद्धाओ के घोड़े रुक-रुककर आगे बढ रहे हैं ॥२०॥ ॥ तोमर छद ॥ करोडो घोड़े हिनहिना रहे हैं और वीर वाण वर्षा कर रहे हैं। धनुष छूटकर हाथो से गिर रहे हैं और इस प्रकार अनुपम भीषण युद्ध छिडा हुआ है ॥ २१ ॥ ॥ तोमर छद ॥ अनेको प्रकार के शूरवीर और अगणित सवार आपस मे जूझ रहे है। वे शका-विहीन होकर कृपाणे चला रहे है और इस प्रकार अपूर्व युद्ध चल रहा है ॥ २२ ॥ ॥ दोधक छद ॥ कृपाण और वाण चलाकर शूरवीर अन्ततः उस महायुद्ध मे गिर पड़े। घाव लगे हुए घायल इस प्रकार झूलते डोल रहे है, मानो फागुन के अन्त मे वसन्त फूली हुई हो ॥ २३ ॥ ॥ दोधक छद ॥ कही शूरवीरो की कटी हुई बाँहे ऐसी लग रही थी मानो हाथियो की सूँडे पड़ी हो। वीर इस प्रकार से सुन्दर लग रहे थे मानो फुलवाडी मे फूल खिले हो ॥ २४ ॥ ॥ दोधक ॥ खून से शत्रु इस प्रकार रँगे थे मानो अनेको फूल खिले हुए हो। कृपाणों से

दिखारं ।। २५ ।। ।। तोटक छंद ।। जूझ गिरे अर एक अनेकं । घाइ लगे बिसंभार बिसेखं । काटि गिरे भट एकह वारं । साबन जान गई बह तारं ।। २६ ।। ।। तोटक ।। पूर परे भए चूरि सिपाही । स्वामि के काज की लाज निबाही । बाहि क्रिपाणन बाण सु बीरं । अंत भजे भय मान अधीरं ।। २७ ।। ।। चौपई ।। त्याग चले रण को सभ बीरा । लाज बिसरि गई भए अधीरा । हिरनाछस तब आप रिसाना । बाँधि चल्यो रण को कर गाना ।। २८ ।। ।। चौपई ।। भर्यो रोस नरसिंघ सरूपं । आवत देख समुहि रण भूपं । निज घावन को रोस न माना । निरख सेवकहि दुखी रसाना ।। २९ ।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। कँपाई सटा सिंघ गरज्यो करूरं । उड्यो हेरि बीरान के मुख नूरं । उठ्यो नादि बंके छुही गैण रज्ज । हसे देव सरबं भए दैत लज्जं ।। ३० ।। ।। भुजंग ।। मच्यो दुंद जुद्धं मचे दुइ जुआणं । तड़क्कार तेगं कड़क्के कमाणं । भिर्यो

घाव लगने के बाद शूरवीर ऐसे घूम रहे थे मानो क्रोध स्वय प्रत्यक्ष होकर घूम रहा हो ।। २५ ।। ।। तोटक छद ।। अनेको शत्रु जूझकर गिर पडे और विष्णु रूपी नरसिह को भी कई घाव लगे । शूरवीर ऐसे कटकर रक्त मे बह रहे थे मानो झाग के बुलबुले बहते चले जा रहे हो ।। २६ ।। ।। तोटक ।। लड़नेवाले सैनिक चूरचूर होकर गिर पड़े, परन्तु फिर भी उन सबने अपने स्वामी के वैभव को लाज नही लगने दी । कृपाण और बाणो की वर्षा करते हुए अन्त में शूरवीर भयभीत होकर भाग खड़े हुए ।। २७ ।। ।। चौपाई ।। सब शूरवीर लज्जा को त्यागकर और अधीर होकर युद्धस्थल को छोड़कर भाग निकले । यह देखकर हिरण्यकशिपु स्वयं क्रोधित होकर युद्ध करने के लिए चल पड़ा ।। २८ ।। ।। चौपाई ।। सामने सम्राट् को आते देखकर नरसिंह भी क्रोध से भर उठा । उसे अपने घावो की चिन्ता न थी, अपितु वह सेवको (भक्तो) के दु:ख को देख कर अत्यन्त दु.खी था ।। २९ ।। ।। भुजग प्रयात छद ।। गर्दन को झटक कर सिह क्रूर रूप से गरज उठा और उसकी गर्जना को सुनकर वीरो के मुख निस्तेज हो गए । उस भीषण नाद के फलस्वरूप (धरती कम्पायमान हो उठी और) धरती की धूल आसमान को छूने लगी । सभी देवता मुस्कुराने लगे और दैत्यो के शिर लज्जा से झुक गए ।। ३० ।। ।। भुजग ।। दोनो शूरवीरों का भीषण द्वन्द्वयुद्ध भडक उठा और कृपाणों की तड़तड़ाहट तथा कमानो की कड़कड़ाहट सुनाई पड़ने लगी ।

कोप कै दानवं सुलताणं। हड़ं स्रोन चले मधं मुलताणं ॥३१॥ ॥ भुजंग ॥ कड़क्कार तेगं तड़क्कार तीरं। भए टूक टूकं रणं बीर धीरं। बजे संख तूरं सु ढोलं ढमंके। रड़ं कंक बंके डहे बीर बंके ॥ ३२ ॥ ॥ भुजंग ॥ भजे बाज गाजी सिपाही अनेकं। रहे ठाढ भूपाल आगे न एकं। फिर्यो सिंघ सूरं सु क्रूरं करालं। कँपाई सटा पूछ फेरी बिसालं ॥ ३३ ॥ ॥ दोहरा ॥ गरजत रण नरसिंघ के भज्जे सूर अनेक। एक टिक्यो हिरनाछ तह अवरु न जोधा एक ॥ ३४ ॥ ॥ चौपई ॥ मुष्ट जुद्ध जुट्टे भट दोऊ। तीसर ताहि न पेखिअत कोऊ। भए दुहन के राते नैणा। देखत देव तमासे गैणा ॥ ३५ ॥ ॥ चौपई ॥ अष्ट दिवस अष्टेनि सु जुद्धा। कीनो दुहूँ भटन मिलि क्रुद्धा। बहुरो असुर किछुकु मुरझाना। गिर्यो भूम जन ब्रिछ पुराना ॥ ३६ ॥ ॥ चौपई ॥ सीच बार पुन ताहि जगायो। जगे मूरछना (मू०ग्रं०१६६) पुन जिय आयो। बहुरो भिरे सूर दोई क्रुद्धा। मंड्यो बहुर आप

दैत्यराज क्रोधित होकर भिड उठा और युद्धस्थल मे रक्त की बाढ आ गई ॥३१॥ ॥ भुजग ॥ कृपाणो की कडकड़ाहट और तीरो की तड़तड़ाहट से युद्धस्थल मे महाबलशाली धैर्यवान वीर खण्ड-खण्ड हो गए। शख, तुरहियाँ एव ढोल ढमकने लगे और तीव्र घोडो पर सवार बाँके वीर युद्धस्थल मे डट गए ॥ ३२ ॥ ॥ भुजंग ॥ घोड़े और हाथियो पर सवार अनेको सैनिक भाग खड़े हुए और कोई भी राजा नरसिह के समक्ष खडा न रह सका। वह क्रूर एव विकराल सिह युद्धस्थल में विचरण करने लगा और अपनी गर्दन और पूंछ को हिलाने लगा ॥३३॥ ॥ दोहा ॥ नरसिह की गर्जना के साथ ही अनेको शूरवीर भाग खड़े हुए और युद्धस्थल मे हिरण्यकशिपु के अतिरिक्त कोई भी टिक न सका ॥ ३४ ॥ ॥ चौपाई ॥ दोनो शूरवीरो का मुष्टिका-युद्ध प्रारम्भ हुआ और उन दोनों के अतिरिक्त युद्ध-स्थल मे तीसरा कोई दिखाई न पडता था। दोनो के नेत्र लाल हो उठे थे तथा गगनमडल से सभी देवगण यह लीला देख रहे थे ॥ ३५ ॥ ॥ चौपाई ॥ आठ दिन और आठ रात इन दोनो शूरवीरो ने क्रोधित होकर भीषण युद्ध किया। इसके पश्चात् दैत्यराज कुछ निस्तेज हो गया और धरती पर इस प्रकार गिर पड़ा मानो कोई पुराना वृक्ष गिर पड़ा हो ॥ ३६ ॥ ॥ चौपाई ॥ नरसिह ने अमृत छिडककर पुन उसे अचेतावस्था से जगाया और मूर्च्छा टूटते ही वह पुनः सँभला। फिर दोनो

महि जुद्धा ।। ३७ ।। ।। भुजंग छंद ।। हला चाल कै कै पुनर बीर ढूके । मच्यो जुद्ध ज्यो करन संगं घडूके । नखं पात दोऊ करे दैत घातं । मनो गज्ज जुट्टे बनं मसत मातं ।।३८।। ।। भुजंग ।। पुनर नार्रसिघं धरा ताहि मार्‌यो । पुरानो पलासी मनो बाइ डार्‌यो । हन्यो देख दुष्टं भई पुहप बरखं । किए देवत्यो आनकै जीत करखं ।। ३९ ।। ।। पाधरी छंद ।। कीनो न्रसिघ दुष्टं सँघार । धरियो सु बिष्न सप्तम वतार । लिन्नो सु भगत अपनो छिनाइ । सभ सिष्ट धरम करमन चलाइ ।।४०।। ।। पाधरी छंद ।। प्रहलाद कर्‌यो न्रिप छत्र फेर । दीनो सँघार सभ इम अँधेर । लभ दुष्ट अरिष्ट दिन्नो खपाइ । पुन लई जोत जोतहि मिलाइ ।। ४१ ।। ।। पाधरी छंद ।। सभ दुष्ट मार कीने अभेख । पुनि मिल्यो जाइ भीतर अलेख । कबि जथा मत्त कथ्यो बिचार । इम धर्‌यो बिशन सपतमवतार ।। ४२ ।।

।। नरसिंघ सपतमो अवतार समापत ।। ७ ।।

वीर क्रोधित होकर भिड़ पड़े और पुन भयकर युद्ध प्रारम्भ हो गया ।।३७।। ।। भुजंग छद ।। एक दूसरे को ललकार कर पुनः दोनो वीर आपस मे आ भिड़े और एक दूसरे को जीतने के लिए भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया । दोनो एक दूसरे पर नखो से घातक प्रहार कर रहे थे और ऐसे लग रहे थे मानो वन मे दो मदमस्त हाथी आपस मे भिड़े हो ।।३८।। ।। भुजग ।। पुनः नरसिह ने हिरण्यकशिपु को धरती पर इस प्रकार दे मारा जैसे वायु के झोके से पुराना पलास का वृक्ष धरती पर आ गिरता है । दुष्ट को मरा हुआ देखकर पुष्पवर्षा होने लगी और देवताओ ने आकर अनेक प्रकार से विजय-गान गाये ।। ३९ ।। ।। पाधरी छद ।। नरसिह ने दुष्ट का संहार किया और इस प्रकार विष्णु ने सातवाँ अवतार धारण किया । अपने भक्त की रक्षा की और धरती पर धर्म-कर्म का प्रसार किया ।। ४० ।। ।। पाधरी छद ।। प्रह्लाद के शिर पर छत्र झुलाकर उसे राजा बनाया गया और इस प्रकार अधकार रूपी दैत्यो का नाश कर दिया गया । नरसिह ने सभी दुष्टो एव दुर्जनो को नष्ट करके पुनः अपनी ज्योति उस परम ज्योति मे विलीन कर ली ।।४१।। ।। पाधरी छद ।। सभी दुष्टो को मारकर लज्जित कर दिया तथा वह अदृष्ट परमात्मा पुनः अपने स्वरूप मे विलीन हो गया । कवि ने अपनी बुद्धि के अनुसार विचार कर उपर्युक्त कथन कहा है कि इस प्रकार विष्णु का सातवाँ अवतार हुआ ।। ४२ ।।

नरसिह का सातवाँ अवतार समाप्त ।। ७ ।।

अथ बावन अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ भए दिवस केते नरसिंघावतारं। पुनर भूँम सों पाप बाढ्यो अपारं। करे लाग जग्गं पुनर दैत दानं। बलर राज की देह बड्ढ्यो गुमानं ॥ १ ॥ ॥ भुजंग छंद ॥ न पावै बलं देवता जग बासं। भई इंद्र की राजधानी बिनासं। करी जोग आराधना सरब देवं। प्रसंनं भए काल पुरखं अभेवं ॥२॥ ॥ भुजंग ॥ दियो आइसं काल पुरखं अपारं। धरो बावना बिश्न अश्टमवतारं। लई बिशन आज्ञा चल्यो धाइ ऐसे। लह्यो दारवी भूप भंडार जैसे ॥ ३ ॥ ॥ निराज छंद ॥ सरूप छोट धारिकै। चल्यो तहाँ बिचारिकै। सभा नरेश जानियो। तही सु पाव ठानियो ॥ ४ ॥ ॥नराज छंद॥ सु बेद चार उचारकै। सुण्यो न्रिपं सुधारकै। बुलाइ बिप्प को लयो। मल्यागर मूड़का दयो ॥ ५ ॥ ॥ नराज ॥ पदर्घ दीत दान दै। प्रदच्छना

वामन-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ नरसिंह अवतार को पर्याप्त समय बीत जाने पर धरती पर पुनः पाप बहुत अधिक बढने लगा। दैत्य-दानव पुनः यज्ञ आदि करने लगे और राजा बली को अपनी महानता पर बहुत अभिमान हो गया ॥ १ ॥ ॥ भुजग छंद ॥ बली के यज्ञ मे देवताओ को कोई भी स्थान न रह गया और इन्द्र की राजधानी भी विनष्ट हो गई। दुःखी होकर सभी देवताओ ने आराधना की, जिससे परम कालपुरुष प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ ॥ भुजग ॥ अकाल पुरुष ने देवताओ मे से विष्णु को कहा कि आप अपना आठवाँ अवतार वामन-रूप मे धारण करें। विष्णु ने आज्ञा ली और ऐसे चल पड़े जैसे कोई सेवक राजा की आज्ञा पाकर चल पडता है ॥ ३ ॥ ॥ निराज छद ॥ छोटा सा रूप धारण कर तथा मन मे कुछ विचार कर वह चल पड़े तथा राजा बली की सभा मे पहुँचकर दृढतापूर्वक खड़े हो गए ॥ ४ ॥ ॥ नराज छद ॥ चारों वेदो का उच्चारण करके इस ब्राह्मण ने सुनाया, जिसे राजा ने ध्यान से सुना। राजा बली ने विप्र को बुलाया और सम्मानपूर्वक चन्दन के आसन पर बैठाया ॥५॥ ॥ नराज ॥ राजा ने ब्राह्मण का चरणामृत लेकर दान-पुण्य किया और अनेक बार ब्राह्मण के चारो ओर प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात्

अनेक कै । करोरि दच्छना दई । न हाथ बिप्प नै लई ॥६॥ ॥नराज छंद॥ कह्यो न मोर (मू०ग्रं०१६७) काज है । मिथ्या इह तोर साज है । अढाइ पाव भूँम दै । बसेख पूर कीर्ति लै॥७॥ ॥चौपई॥ जब दिज ऐस बखानी बानी । भूपत सहत न जान्यो रानी । पैर अढाइ भूँम दे कही । दिड़ करि बात दिजोतम गही ॥ ८ ॥ दिजबर शुक्र हुतो न्रिप तीरा । जान गयो सभ भेदु वजीरा । ज्यो ज्यो देन प्रिथवी न्रिप कहै । तिमु तिमु नाहि प्रोहतु गहै ॥ ९ ॥ ॥ चौपई ॥ जब न्रिप देन धरा मन कीना । तब हो उत्र शुक्र इम दीना । लघु दिज याहि न भूप पछानो । बिष्नुवतार इसो कर मानो ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ सुनत बचन दानव सभ हसे । उचरत शुक्र कहा घर बसे । ससिक समान न दिज महि मासा । कस कर है इह जग्ग बिनासा ॥ ११ ॥ ॥ दोहरा ॥ ॥ शुक्रबाच ॥ जिम चिनगारी अगन की गिरत सघन बन माहि । अधिक तनक ते होत है तिम दिजबर नर नाहि ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ हस

राजा ने करोडों दक्षिणाएँ प्रस्तुत की परन्तु उस विप्र ने किसी को भी हाथ नही लगाया ॥ ६ ॥ ॥ नराज छद ॥ ब्राह्मण ने कहा कि ये सब मेरे किसी काम का नही और तुम्हारा यह आडम्बर सब मिथ्या है । तुम मुझे केवल ढाई कदम भूमि दे दो और विशेष यश को अर्जित करो ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब विप्र ने ऐसी बात कही तो रानी-समेत राजा इसको समझ नही पाया । उस विप्र ने पुनः दृढ़ होकर यही कहा कि मैंने आपसे केवल ढाई कदम भूमि माँगी है ॥ ८ ॥ गुरुवर शुक्राचार्य उस समय राजा के पास थे और वे तथा सभी मन्त्री भूमि माँगने के रहस्य को समझ गए । राजा जितनी बार पृथ्वी देने की बात कहता है उतनी बार पुरोहित शुक्राचार्य नही देने के लिए राजा को समझाते है ॥ ९ ॥ ॥ चौपाई ॥ परन्तु जब राजा ने भूमि दान करने का दृढ सकल्प कर ही लिया, तब शुक्राचार्य ने इस प्रकार उत्तर देते हुए राजा से कहा कि हे राजन् ! इसे तुम छोटा सा ब्राह्मण मत समझो और इसे विष्णु का अवतार जानो ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ यह सुनकर सभी दानव हँस पड़े और कहने लगे कि शुक्राचार्य जी क्या व्यर्थ की बाते सोच रहे है । जिस ब्राह्मण के शरीर पर खरगोश जितना मांस नही है, वह कैसे जगत का विनाश कर सकता है ॥ ११ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ शुक्र उवाच ॥ जैसे सघन वन मे अग्नि की चिनगारी गिरकर बढ जाती है (और वन का नाश कर देती है), उसी प्रकार यह छोटा सा ब्राह्मण मनुष्य नही है ॥ १२ ॥

भूपत इह बात बखानी। सुनहु शुक्र तुम बात न जानी। फुनि इह समो सभो छल जैहै। हरि सो फेरि न भिचछक ऐहै ॥ १३ ॥ ॥ चौपई ॥ मन महि बात इहै ठहराई। मन मो धरी न किसू बताई। भ्रित ते माँग कमंडल एसा। लग्यो दान तिह देन नरेसा ॥ १४ ॥ ॥ चौपई ॥ शुक्र बात मन मो पहिचानी। भेद न लहत भूप अगिआनी। धार मकर के जार सरूपा। पैठ्यो मद्ध कमंडल भूपा ॥ १५ ॥ ॥ चौपई ॥ न्रिपबर पान सुराही लई। दान समै दिजबर की भई। दान हेत जब हाथ चलायो। निकस नीर कर ताहि न आयो ॥ १६ ॥ ॥ तोमर छंद ॥ चमक्यो तबै दिजराज। करिऐ न्रिपे सु इलाज। तिनका मिले इह बीच। इक चचछ हुए है नीच ॥ १७ ॥ ॥ तोमर ॥ तुनका न्रिपत कर लीन। भीतर कमंडल दीन। शुक्र आँख लगिआ जाइ। इक चचछ भयो दिजराइ ॥ १८ ॥ ॥ तोमर छंद ॥ नेत्र ते जु गिर्‌यो नीर। सोई लियो कर दिज बीर। करि नीर चुवन न दीन।

॥ चौपाई ॥ राजा वली ने हँसकर यह वात शुक्राचार्य से कही कि हे शुक्राचार्य ! आप समझ नही रहे है, क्योकि यह समय फिर मेरे हाथ नही आयेगा। क्योकि फिर मैं परमात्मा जैसा भिक्षुक कभी भी प्राप्त न कर सकूंगा ॥ १३ ॥ ॥ चौपाई ॥ मन मे राजा ने सकल्प कर लिया, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से किसी से कुछ नही कहा। सेवक से कमण्डल माँगकर राजा ने दान देने का उपक्रम किया ॥१४॥ ॥ चौपाई ॥ शुक्राचार्य ने उसके मन की वात को समझ लिया, परन्तु अज्ञानी राजा इस भेद को न समझ सका। शुक्राचार्य मछली का सूक्ष्म रूप धारण कर राजा के कमण्डल मे जा वैठे ॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ राजा ने हाथ मे कमण्डल लिया और ब्राह्मण को दान देने का समय आ गया। जव राजा ने दान देने के लिए हाथ में जल लेकर चलाना चाहा तो कमण्डल से जल न निकला ॥ १६ ॥ ॥ तोमर छद ॥ तभी द्विजराज भडक उठा और राजा से कहने लगा कि इस कमण्डल को ठीक कीजिए। एक तिनके से कमण्डल की नली को खोदा गया और उस खोदने से शुक्राचार्य की एक आँख जाती रही ॥ १७ ॥ ॥ तोमर ॥ राजा ने तिनका अपने हाथ मे लिया और भीतर कमण्डल मे घुमाया। वह शुक्राचार्य की आँख मे जा लगा और द्विजराज शुक्राचार्य की एक आँख फूट गई ॥ १८ ॥ ॥ तोमर छद ॥ शुक्राचार्य की आँख से जो पानी गिरा उसे राजा ने

इम स्वामिकारज कीन ।। १९ ।। ।। चौपई ।। चच्छ नीर कर भीतर परा । वहै संकल्प दिजह करि धरा । ऐस तबै निज देह बढायो । लोक छेद पर लोक सिधायो ।। २० ।। ।। चौपई ।। (मू०ग्रं०१६८) निरख लोग अदभुत बिसमए । दानव पेख मूरछन भए । पाव पतार छुयो सिर कासा । चक्रत भए लखि लोक तमासा ।। २१ ।। ।। चौपई ।। एकै पाव पतारह छूआ । दूसर पाव गगन लउ हूआ । भिद्‌यो अंड ब्रह्मंड अपारा । तिह ते गिरी गंग की धारा ।। २२ ।। ।। चौपई ।। इह बिधि भूप अचंभव लहा । मन क्रम वचन चक्रत ह्वै रहा । सु कछु भ्यो जोऊ शुक्र उचारा । सो अखियन हम आज निहारा ।। २३ ।। ।। चौपई ।। अरधि देहि अपनौ मिन दीना । इह बिधि कै भूपत जसु लीना । जब लउ गंग जमन को नीरा । तब लउ चली कथा जग धीरा ।। २४ ।। ।। चौपई ।। बिशन प्रसंनि प्रतचछ ह्वै कहा । चोवदार द्वारे

अपने हाथ मे लिया । शुक्राचार्य ने जल को चूने नही दिया और इस प्रकार अपने स्वामी के विनाश-कार्य को बचाने की कोशिश की ।। १९ ।। ।। चौपाई ।। आँख का पानी हाथ पर पड़ते ही उसी को सकल्प रूप में राजा ने ब्राह्मण के हाथ पर दानस्वरूप दे दिया । इसके बाद बामन ने अपनी देह का विस्तार किया और उसकी देह लोक-परलोक का भेदन करने लगी ।। २० ।। ।। चौपाई ।। यह देखकर सभी लोग अद्‌भुत रूप से आश्चर्य मे पड गए और विष्णु के वृहद् स्वरूप को देखकर दानव अचेत हो गए । विष्णु के पॉव पाताल तथा शिर आकाश को छूने लगे । यह दृश्य देखकर सभी लोग आश्चर्य मे पड गए ।। २१ ।। ।। चौपाई ।। एक ही कदम मे उन्होने पाताल तथा दूसरे कदम से आकाश को नाप लिया । सारे ब्रह्माण्ड का इस प्रकार विर्ष्णु ने भेदन कर दिया और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से गगा की धार नीचे की ओर गिरने लगी ।। २२ ।। ।। चौपाई ।। राजा बली भी असमजस मे पड गया और मन-वचन एव कर्म से किंकर्तव्यविमूढ होकर सोचने लगा कि जो कुछ शुक्राचार्य ने कहा था वही हुआ और इस सबको मैंने आज अपनी आँखों से स्वयं देख लिया ।। २३ ।। ।। चौपाई ।। आधे कदम मे अपने शरीर को नपवाकर इस प्रकार राजा बली ने यश अर्जित किया । जब तक गंगा-यमुना मे जल है, तब तक इस धैर्यवान की कथा संसार में चलती रहेगी ।। २४ ।। ।। चौपाई ।। विष्णु ने तव प्रसन्न हो प्रत्यक्ष होकर कहा हे राजा ! मैं स्वयं

जब लग गंग जमुन ह्वै रहा । कह्यो चले तब लगै कहानी । को पानी ॥ २५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जह साधन संकट परै तह तह भए सहाइ । द्वारपाल ह्वै दर बसे भगत हेत हरि राइ ॥२६॥ ॥ चौपई ॥ अश्टम अवतार बिशन अस धरा । साधन सभै क्रितारथ करा । अब नवमों बरनो अवतारा । सुनहु संत चित लाइ सुधारा ॥ २७ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे बावन अवतार अशटमो कथन बल छलन समापतम सत ॥ ८ ॥

अथ परसराम अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ पुन केतक दिन भए बितीता । छत्रनि सकल धरा कह जीता । अधिक जगत महि ऊच जनायो । बासव बलि कहूँ लैन न पायो ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ बिआकल सकल देवता भए । मिलि करि सभ बासव पै गए । छत्री रूप धरे सभ असुरन । आवत कहा

तुम्हारा सेवक बनकर तुम्हारे द्वार पर पहरा दूँगा और जब तक गंगा-यमुना मे पानी रहेगा तब तक तुम्हारे दान की कहानी चलती रहेगी ॥ २५ ॥ ॥ दोहा ॥ जहाँ-जहाँ साधु पुरुषों पर संकट पड़ता है, वहाँ-वहाँ अकाल पुरुष सहायता करते है । परमात्मा भक्त के वश में होकर द्वारपाल के रूप मे उस भक्त के द्वार पर बने रहे ॥ २६ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार विष्णु ने आठवाँ अवतार धारण कर सभी साधुओं को कृतार्थ किया । अब मैं नवें अवतार का वर्णन करता हूँ । इसे कृपया सभी महात्मा ध्यान-पूर्वक सुधारकर सुनें और समझें ॥ २७ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के आठवें वामन-अवतार-कथन राजा बली-छलन की समाप्ति ॥ ८ ॥

परशुराम-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ पुनः कितना ही समय बीत गया और क्षत्रियों ने सभी पृथ्वी को जीत लिया । वे अपने-आप को जगत मे सर्वोच्च मानने लगे और उनका बल अपरिमित हो उठा ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ इससे सभी देवता व्याकुल हो उठे और सभी मिलकर सब इन्द्र के पास गए और बोले कि सभी असुरो ने क्षत्रियों का रूप धारण

भूप तुमरे मन ॥ २ ॥ सभ देवन मिलि कर्‌यो बिचारा । छीरसमुंद्र कहु चले सुधारा । कालपुरख की करी बडाई । इम आज्ञा तह ते तिन आई ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ दिज जमदगन जगत मो मोहत । नित उठि करत अघन ओघन हत । तह तुम धरो बिशन अवतारा । हनहु शक्र के शत्रु सुधारा ॥ ४ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ जयो जामदगनं दिजं आवतारी । भयो रेणका ते कवाची (मू०ग्रं०१६६) कुठारी । धर्‌यो छत्रियापात को काल रूपं । हन्यो जाइ जउने सहंसास्त्र भूपं ॥ ५ ॥ ॥ भुजग ॥ कहा गम एती कथा सरब भाखउ । कथा ब्रिद्ध ते थोरिऐ बात राखउ । भरे गरब छत्री नरेशं अपारं । तिनै नास को पाण धार्‌यो कुठारं ॥ ६ ॥ ॥ भुजंग ॥ हुती नंदनी सिध जाकी सुपुत्री । तिसै मॉग हार्‌यो सहंसास्त्र छत्री । लियो छीन गायं हत्यो राम तातं । तिसी बैर कीने सभै भूप पातं ॥ ७ ॥ ॥ भुजंग ॥ गई बाल

कर लिया है । हे राजन् ! अब बताइए आपका क्या विचार है ? ॥ २ ॥ सब देवताओ ने मिलकर विचार-विमर्श किया और क्षीरसागर की ओर चल पड़े । वहाँ उन्होने कालपुरुष (परमात्मा) की स्तुति की और वहाँ से उन्हे इस प्रकार का आदेश प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ कालपुरुष ने कहा कि पृथ्वी पर यमदग्नि नामक ऋषि निवास करते है जो कि नित्य उठकर अपने पुण्य कर्मों से पापो का नाश करते है । हे विष्णु ! तुम उसके यहाँ अवतरित होवो और इन्द्र के शत्रुओ का नाश करो ॥ ४ ॥ ॥ भुजग प्रयात छद ॥ यमदग्नि ऋषि अवतारीपुरुष की जय हो, जिसकी पत्नी रेणुका से कवच और कुठार वाले (परशुराम) का जन्म हुआ । उसने क्षत्रियो के विनाश के लिए काल-रूप धारण किया और सहस्रबाहु-जैसे राजन का भी नाश किया ॥ ५ ॥ ॥ भुजग ॥ मेरी इतनी बुद्धि कहाँ कि मैं सारी कथा का वर्णन करूँ, इसलिए कथावृद्धि की भय से सक्षेप में ही मैं अपनी बात कहता हूँ । क्षत्रिय नरेश गर्व से मदमस्त हो चुके थे और उनका नाश करने के लिए परशुराम ने अपने हाथ मे फरसा (कुठार) धारण किया ॥ ६ ॥ ॥ भुजग ॥ नन्दिनी (कामधेनु गाय) यमदग्नि की पुत्री के समान थी और सहस्रबाहु क्षत्रिय राजा उस गाय को ऋषि से माँगकर थक चुके थे । अन्त मे उसने गाय छीनकर परशुराम के पिता यमदग्नि का वध कर दिया और इसी वैर का बदला चुकाने के लिए परशुराम ने सभी क्षत्रिय राजाओ का नाश कर दिया ॥ ७ ॥

ताते लियो सोध ताको। हन्यो तात मेरो कहो नामु वाको। सहंसास्त्र भूपं सुण्यो स्त्रउण नामं। गहे शस्त्र अस्त्रं चल्यो तउन ठामं ॥ ८ ॥ ॥ भुजंग ॥ कहो राज मेरो हन्यो तात कैसे। अबै जुद्ध जीतो हनो तोहि तैसे। कहा मूड़ बैठो सु अस्त्रं सँभारो। चलो भाज ना तो सभै शस्त्र डारो ॥ ९ ॥ ॥ भुजंग ॥ सुणे बोल बंके भर्यो भूप कोपं। उठ्यो राज सरदूल लै पाण धोपं। हण्यो खेत खूनी दिजं खेत्र हायो। चहे आज ही जुद्ध मो सो मचायो ॥ १० ॥ ॥ भुजंग ॥ धए सूर सरबं सुने बैन राजं। चड़्यो क्रुद्ध जुद्धं स्त्रजे सरब साजं। गदा सैहथी सूल सेलं सँभारी। चले जुद्ध काजं बडे छत्रधारी ॥ ११ ॥ ॥ नराज छंद ॥ क्रिपाण पाण धारिकै। चले बली पुकारिकै। सु मारि मारि भाखही। सरोघ स्त्रोण चाखही ॥ १२ ॥ ॥ नराज ॥ सँजोइ सैहथीन लै। चड़े सु बीर रोस कै। चटाक चाबकं उठे। सहंस्त्र साइकं

॥ भुजग ॥ बचपन से ही परशुराम ने उसको शुद्ध रूप से मन मे बनाये रखा कि मेरे पिता का वध किसी ने किया है और मुझे उसका नाम जानना है। जैसे ही परशुराम ने यह सुना कि वह व्यक्ति सहस्रबाहु राजा है, वैसे ही वह अस्त्र-शस्त्र लेकर उसके स्थान की ओर चल पड़े ॥ ८ ॥ ॥ भुजग ॥ राजा से परशुराम ने कहा कि राजा ! तुम मुझे बताओ कि तुमने मेरे पिता का वध कैसे किया। मैं अभी तुमसे युद्ध करके तुम्हारा वध करूँगा। परशुराम ने यह भी कहा कि ऐ मूर्ख ! अपने अस्त्रो को सम्हाल लो, नही तो शस्त्र डालकर यहाँ से भाग निकलो ॥ ९ ॥ ॥ भुजग ॥ इन व्यग्य-भरी बातो को सुनकर राजा क्रोध से भर उठा और अपने हाथ मे शस्त्र लेकर सिह के समान उठ खडा हुआ। वह दृढशाली युद्धक्षेत्र मे यह जानकर आ पहुँचा कि ब्राह्मण परशुराम आज ही मुझसे युद्ध करने के लिए परम उत्सुक है ॥ १० ॥ ॥ भुजग ॥ राजा की बात सुनकर सभी शूरवीर अत्यन्त क्रोधित एव सुसज्जित होकर युद्ध के लिए चढ उठे। त्रिशूल, भाला, गदा आदि शस्त्र को सँभालते हुए बड़े-बड़े छत्रधारी राजा युद्ध करने के लिए चल पड़े ॥ ११ ॥ ॥ नराज छद ॥ हाथों मे कृपाण पकड़कर महाबली चिल्लाते हुए चल पड़े। मारो-मारो की आवाज़े कर रहे है और उनके तीर रक्तपान कर रहे हैं ॥ १२ ॥ ॥ नराज ॥ कवच एव खड्गो को लेकर क्रोधित शूरवीर चढ़ पड़े। घोड़ो पर चाबुक चटाक की ध्वनि कर उठे और हजारो तीर छूट पड़े ॥ १३ ॥

बुठे ॥ १३ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ भए एक ठउरे । सभँ सूर दउरे । लयो घेर रामं । घटा सूर स्यामं ॥ १४ ॥ ॥ रसावल छद ॥ कमाणं कड़ंके । भए नाद बंके । घटा जाणि स्याहं । चड़्यो तिउ सिपाहं ॥ १५ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ भए नाद बंके । सु सेलं धमंके । गजा जूह गज्जे । सुभं संज सज्जे ॥ १६ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ च्हूँ ओर ढूके । गजं जूह झूके । सरं ब्यूह छूटे । रिपं सीस फूटे ॥ १७ ॥ ॥ रसावल ॥ उठे नाद भारी । रिसे छत्रधारी । घिर्‌यो राम सैनं । शिवं जेम मैनं ॥ १८ ॥ ॥ रसावल ॥ रणं रंग रत्ते । त्रसे तेज तत्ते । उठी सैण धूरं । रह्यो गैण पूरं ॥ १९ ॥ ॥ रसावल ॥ घणे ढोल बज्जे । महाँ बीर गज्जे । मनो सिंघ छुट्टे । (मू०ग्रं०१७०) इमं बीर जुट्टे ॥२०॥ ॥ रसावल ॥ करै मारि मारं । बकै बिकरारं । गिरे अंग भंगं । दवं जान दंगं ॥ २१ ॥ ॥ रसावल ॥ गए छूट अस्त्रं ।

॥ रसावल छंद ॥ सभी शूरवीर दौड़कर एक स्थान पर एकत्र हो गए और उन्होने परशुराम को ऐसे घेर लिया, जैसे सूर्य को बादल घेर लेते हैं ॥ १४ ॥ रसावल छद ॥ धनुषो की कडकडाहट से विचित्र प्रकार की ध्वनि पैदा होने लगी और सेना इस प्रकार से चढ उठी मानो काली घटा घिर आई हो ॥१५॥ ॥ रसावल छद ॥ वर्छियो की धमाधम की विचित्र ध्वनि होने लगी । हाथियो के झुड गरजने लगे तथा सभी लोग कवचों से सुसज्जित हो शोभायमान होने लगे ॥ १६ ॥ ॥ रसावल छद ॥ चारो ओर से इकट्ठे होकर हाथियो के झुड भिड़ उठे । तीरो के समूह छूटने लगे और राजाओ के सिर फूटने लगे ॥ १७ ॥ ॥ रसावल ॥ भयंकर ध्वनि होने लगी और सभी राजा क्रोधित हो उठे । परशुराम सेना से उसी प्रकार घिर गये, जैसे कामदेव की सेना ने शिव को घेर लिया हो ॥ १८ ॥ ॥ रसावल ॥ सब युद्ध के रग मे मस्त होकर एक दूसरे के तेज से त्रसित होने लगे । सेना के कारण इतनी धूल उठी कि सारा आसमान धूल से भर उठा ॥ १९ ॥ ॥ रसावल ॥ ढोल घनघोर रूप से बजने लगे और महाबलशाली वीर गरजने लगे । शूरवीर इस प्रकार आपस मे भिड़ रहे थे मानो सिह स्वतंत्र घूम रहे हो तथा आपस मे भिड़ रहे हो ॥ २० ॥ ॥ रसावल ॥ मार-मार की चिल्लाहट के साथ शूरवीर विकराल रूप से बोलियाँ बोल रहे है । वीरो के अग कट-कटकर गिर रहे है और ऐसा लग रहा है मानो चारो ओर आग लगी हुई हो ॥ २१ ॥ ॥ रसावल ॥ हाथो से अस्त्र छूटने लगे और निहत्थे होकर वीर भागने लगे । घोड़े हिनहिना रहे

भजे ह्वै न्रिअस्त्रं । खिले सार बाजी । तुरे तुंद ताजी ॥२२॥ ॥ रसावल छंद ॥ भुजा ठोक बीरं । करे घाइ तीरं । नेजे गड्ड गाढे । मचे बैर बाढे ॥ २३ ॥ ॥ रसावल ॥ घणं घाइ पेलें । मनो फाग खेलें । करें बाण बरखा । भए जीत करखा ॥ २४ ॥ ॥ रसावल ॥ गिरे अंत घूमं । मनो ब्रिच्छ झूमं । टुटे शस्त्र अस्त्रं । भजे हुइ न्रिअस्त्रं ॥ २५ ॥ ॥ रसावल ॥ जिते शत्रु आए । तिते राम घाए । चले भाज सरबं । भयो दूर गरबं ॥ २६ ॥ ॥ भुजंग ॥ महॉ शस्त्र धारे चल्यो आप भूपं । लए सरब सैना किए आप रूपं । अनत अस्त्र छोरे भयो जुद्ध मानं । प्रभा काल मानो सभै रसम भानं ॥ २७ ॥ ॥ भुजंग ॥ भुजा ठोक भूपं कियो जुद्ध ऐसे । मनो बीर ब्रितरासुरे इंद्र जैसे । सभै काट रामं कियो बॉहं होनं । हती सरब सैना भयो गरब छीनं ॥ २८ ॥ ॥ भुजग ॥ गह्यो राम पाणं कुठारं करालं । कटी सुंड सी राज बाहं बिसालं । भए अग भंगं करं काल होणं । गयो

है और तेजी से इधर-उधर दौड रहे है ॥ २२ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ वीर भुजाओ को ठोककर बाण-वर्षा करके शत्रु को घायल कर रहे है । अपनी-अपनी बर्छियो को गड़ाकर और मन मे वैर-भाव को और वढ़ाकर भीपण युद्ध कर रहे है ॥२३॥ ॥ रसावल ॥ अनेक घाव लग रहे है और घायल वीर ऐसे लग रहे है मानो होली खेल रहे हो । सभी वाणो की वर्षा करते हुए जीत के लिए लालायित है ॥ २४ ॥ ॥ रसावल ॥ वीर इस प्रकार से घूम-घूमकर गिर रहे हैं मानो वृक्ष झूम रहे हो । अस्त्र-शस्त्र टूट जाने के बाद शस्त्र-विहीन होकर शूरवीर भाग खडे हुए ॥२५॥ ॥ रसावल ॥ जितने भी शत्रु सामने आए, परशुराम ने उन सवको मार गिराया । अत मे सभी भाग निकले और उनका गर्व चूर हो गया ॥ २६ ॥ ॥ भुजग ॥ महान् शस्त्रों को धारण कर राजा स्वय अपने ही समान सैनिको को लेकर युद्ध के लिए चला । उसने अनन्त अस्त्रों को छोड भीपण युद्ध किया । राजा स्वय युद्ध मे प्रभात के सूर्य के समान दिखाई पड़ रहा था ॥ २७ ॥ ॥ भुजग ॥ भुजाओ को ठोककर राजा ने दृढतापूर्वक वैसा ही युद्ध किया जैसे वृत्रासुर ने इन्द्र के साथ किया था । परशुराम ने उसकी समस्त भुजाएँ काटकर भुजा-विहीन कर दिया और उसकी सभी सेना को नष्ट कर उसके गर्व को चूर कर दिया ॥ २८ ॥ ॥ भुजग ॥ परशुराम ने अपने हाथ मे विकराल फरसा पकडा और हाथी के सूँड़ के समान राजा

गरब सरबं भई सैण छीणं ।। २९ ।। ।। भुजंग ।। रह्यो अंत खेतं अचेतं नरेशं । बचे बीर जेते गए भाज देसं । लई छीन छउनी करे छत्र घातं । चिरंकाल पूजा करी लोग मातं ।। ३० ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके राजा सहस्रबाहु बधहि समापतम सतु ।।

।। स्री भगउती जी सहाइ ।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। लई छीन छउनी करे बिप्प भूपं । हरी फेर छत्रिन दिजं जीत जूपं । दिजं आरतं तीर रामं पुकारं । चल्यो रोस सी राम लीने कुठारं ।। ३१ ।। ।। भुजंग ।। सुन्यो सरब भूपं हठी राम आए । सभं जुद्ध को शस्त्र अस्त्रं बनाए । चड़ै चउप कै कै किए जुद्ध ऐसे । मनो राम सो रावणं लंक जैसे ।।३२।। ।। भुजंग ।। लगे शस्त्र अस्त्रं लखे राम अंगं । गहे बाण पाणं किए शत्रु भंगं । भुजाहीण एकं सिरं हीण केते । सभै मार डारे गए बीर

की भुजा को काट दिया । इस प्रकार अग-भग होकर राजा की सारी सेना विनष्ट हो गई और उसका अभिमान भी चूर हो गया ।। २९ ।। ।। भुजग ।। अत मे राजा अचेत होकर युद्धभूमि मे गिर पड़ा और उसके जितने भी वीर बचे थे, अपने-अपने देशो को भाग खड़े हुए । परशुराम ने उसकी राजधानी को छीनकर क्षत्रियो का नाश किया और बहुत समय तक लोगो ने उनकी पूजा-अर्चना की ।। ३० ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक के राजा सहस्रबाहु-वध की समाप्ति ।।

।। श्री भगवती जी सहाय ।। ।। भुजग प्रयात छद ।। (परशुराम ने) राजधानी को छीनकर एक ब्राह्मण को राजा बनाया, परन्तु फिर क्षत्रियो ने ब्राह्मणों के समूह को जीतकर पुनः उनके नगर को छीन लिया । ब्राह्मणो ने कष्ट मे होकर श्री परशुराम को पुकारा और परशुराम जी क्रोधित होकर हाथ मे परशु धारण कर चल दिये ।। ३१ ।। भुजग ।। सब राजाओ ने जब सुना कि क्षत्रियो को मारने का व्रत लेनेवाले हठी परशुराम आ पहुँचे हैं, तो सबो ने युद्ध के लिए अस्त्र-शस्त्र बनाकर युद्ध की तैयारी की । सभी क्रोधित होकर युद्ध मे इस प्रकार आ भिड़े, मानो राम-रावण का लका मे युद्ध हो रहा हो ।। ३२ ।। ।। भुजग ।। परशुराम ने देखा कि अस्त्र-शस्त्रो से उनपर प्रहार किया जा रहा है तो उन्होने बाणो को हाथ मे लेकर शत्रुओ का मर्दन कर दिया । कई वीर भुजा-विहीन और कई सिर-विहीन हो गए । परशुराम के सम्मुख जितने भी

जेते ।। ३३ ।। ।। भुजंग ।। करी छत्रहीणं छितं कीस बारं । (मू०ग्रं०१७१) हणे ऐस ही भूप सरब सुधारं । कथा सरब जउ छोर ते लै सुनाऊँ । ह्रिदै ग्रथ के बाढबे ते डराऊँ ।। ३४ ।। ।। चौपई ।। करि जग मो इह भाँत अखारा । नवम बतार बिशन इम धारा । अब बरनो दसमो अवतारा । संत जना का प्रान अधारा ।। ३५ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके नवमो अवतार कथन ।। परसराम
अवतार ।। ६ ।। समापतम सतु सुभम सतु ।।

अथ ब्रह्मा अवतार कथनं ।।

।। स्री भगउती जी सहाइ ।। ।। चौपई ।। अब उचरो मै कथा चिरानी । जिम उपज्यो ब्रह्मासुर ग्यानी । चतुरानन अघ ओघन हरता । उपज्यो सकल स्रिष्टि को करता ।। १ ।। ।। चौपई ।। जब जब बेद नाश होइ जाही । तब तब पुन ब्रहमा प्रगटाही । ता ते बिशन ब्रहम बपु धरा । चतुरानन

वीर गए, उन्होने उन सबको मार डाला ।। ३३ ।। भुजग ।। इक्कीस बार धरती को उन्होने क्षत्रिय-विहीन कर दिया और इस प्रकार सारे राजाओ को समूल रूप से नष्ट कर डाला । यदि मैं एक किनारे से लेकर अत तक संपूर्ण कथा कहूँ तो मुझे भय है कि ग्रथ का आकार बहुत बढ जायेगा ।।३४।। ।। चौपाई ।। इस प्रकार जगत मे लीला करने के लिए विष्णु ने नौवाँ अवतार धारण किया । अब मै दसवे अवतार का वर्णन करता हूँ, जो संतों के प्राण का आधार है ।। ३५ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक के नवे अवतार-कथन की समाप्ति ।।
परशुराम अवतार ।। ६ ।। शुभ समाप्ति ।।

ब्रह्मा-अवतार-कथन प्रारंभ

।। श्री भगवती जी सहाय ।। ।। चौपाई ।। अब मैं उस प्राचीन कथा का वर्णन करता हूँ, जिस प्रकार ज्ञानवान् ब्रह्मा उत्पन्न हुए । चार मुखों वाले ब्रह्मा पापनाशक और समस्त सृष्टि के कर्ता के रूप मे उत्पन्न हुए ।। १ ।। ।। चौपाई ।। जब-जब वेदविहित सिद्धान्तो का नाश होता है, तब-तब ब्रह्मा प्रगट होते है । इसीलिए विष्णु ने ब्रह्मा का शरीर धारण किया और जगत मे उन्हे चतुरानन के नाम से जाना ।। २ ।।

कर जगत उचरा ।। २ ।। ।। चौपई ।। जब ही बिशन ब्रहम बपु धरा । तब सभ बेद प्रचुर जग करा । शास्त्र सिम्रित सकल बनाए । जीव जगत के पंथ लगाए ।।३।। ।।चौपई।। जे जे हुते अघन के करता । ते ते भए पाप ते हरता । पाप करमु कह प्रगटि दिखाए । धरम करम सभ जीव चलाए ।।४।। ।। चौपई ।। इह बिधि भयो ब्रहम अवतारा । सभ पापन को मेटनहारा । प्रजालोकु सभ पंथ चलाए । पाप करम ते सभै हटाए ।। ५ ।। ।। दोहरा ।। इह बिधि प्रजा पवित्र कर धर्यो ब्रहम अवतार । धरम करम लागे सभै पाप करम कह डार ।। ६ ।। ।। चौपई ।। दसम अवतार बिशन को ब्रहमा । धर्यो जगति भीतरि सुभ करमा । ब्रहम बिशन महि भेदु न लहिऐ । शास्त्र सिम्रित भीतर इम कहिऐ ।। ७ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके दसमो अवतार ब्रहमा कथनं ।। १० ।।
समापतम सतु ।।

अथ रुद्र अवतार बरननं ।।

।। स्री भगउती जी सहाइ ।। ।।तोटक छंद।। सभ ही जन

।। चौपाई ।। जब विष्णु ने ब्रह्मा के रूप मे अवतार लिया तो जगत में वेदो का प्रचार किया । उन्होने शास्त्रो, स्मृतियों की रचना की और जगत के जीवों को मार्ग-दर्शन दिया ।। ३ ।। ।। चौपाई ।। (वेद-ज्ञान को जानकर) जो लोग पाप-कर्म करनेवाले थे वे सब पाप को दूर करनेवाले बन गए । पाप-कर्मों की स्पष्ट व्याख्या की गई और सभी जीव धर्म-कर्म में प्रवृत्त हो गए ।। ४ ।। ।। चौपाई ।। इस प्रकार ब्रह्मा का अवतार हुआ, जो सब पापो को मिटानेवाला है । सपूर्ण प्रजा धर्ममार्ग पर चलने लगी और पाप-कर्मों से विरत हो गई ।। ५ ।। ।। दोहा ।। इस प्रकार प्रजा को पवित्र करने के लिए ब्रह्मावतार हुआ और सभी जीव पाप-कर्मों को त्यागकर धर्म-कर्म करने लगे ।।६।। ।। चौपाई ।। विष्णु का दसवाँ अवतार ब्रह्मा है, जिसने जगत में शुभ कर्मो की स्थापना की । शास्त्रो एव स्मृतियों मे यही कहा गया है कि ब्रह्मा और विष्णु मे कोई भी भेद नही है ।। ७ ।।

।। इति श्री वचित्र नाटक के दसवें अवतार ब्रह्मा के वर्णन की समाप्ति ।। १० ।। सत् समाप्ति ।।

रुद्र-अवतार-वर्णन प्रारम्भ

।। श्री भगवती जी सहाय ।। ।। तोटक छंद ।। सभी लोग धर्म के

धरम के करम लगे । तज जोग की रीत की प्रीत भगे । जब धरम चले तब जीउ बढे । जन कोट सरूप के ब्रहमु गढे ॥ १ ॥ ॥ तोटक ॥ जगजीवन भार भरी धरणी । दुख आकल जात नही (मू०ग्रं०१७२) बरणी । धर रूप गऊ दधसिंध गई । जगनाइक पै दुखु रोल भई ॥ २ ॥ ॥ तोटक ॥ हस काल प्रसंनि भए तब ही । दुख स्रउनन भूम सुन्यो जब ही । ढिग बिशन बुलाइ लयो अपने । इह भाँत कह्यो तिहको सु पने ॥ ३ ॥ ॥ तोटक ॥ सु कह्यो तुम रुद्र सरूप धरो । जगजीवन को चलि नास करो । तब ही तिह रुद्र सरूप धर्यो । जग जंत सँघार कै जोग कर्यो ॥ ४ ॥ ॥ तोटक ॥ कहिहों शिव जैसक जुद्ध किए । सुख संतन को जिह भाँत दिए । गनि हों जिह भाँत बरी गिरजा । जगजीत सुयंबर मो सप्रभा ॥ ५ ॥ ॥ तोटक ॥ जिम अंधक सों हरि जुद्धु कर्यो । जिह भाँत मनोज को मान हर्यो । दल दैंत दले कर कोप जिमं । कहिहों सभ छोरि प्रसंग तिमं ॥६॥ ॥पाधरी छंद॥ जब

कार्य मे लग गए । परन्तु कालान्तर मे योग और भक्ति की मान्यताएँ त्याग दी गई । जब धर्म का प्रचलन होता है, तभी जीवात्माएँ प्रसन्न होती हैं और परस्पर समानता का व्यवहार करती हुई सबमे एक ब्रह्म का अनुभव करती है ॥ १ ॥ ॥ तोटक ॥ यह धरती जगत के जीवो के दु.खो के बोझ से दब उठी और इसके दु ख एव सतापो का वर्णन करना असभव था । तब पृथ्वी ने गाय का रूप धारण किया और क्षीरसमुद्र मे जगत (अकालपुरुष) के सम्मुख रोती हुई पहुँची ॥ २ ॥ ॥ तोटक ॥ जब अपने कानो से पृथ्वी के कष्ट को सुना, तब कालपुरुष प्रसन्न होकर मुस्कराने लगे । उन्होने विष्णु को अपने पास बुलाया और इस भाँति कहा ॥ ३ ॥ ॥ तोटक ॥ कालपुरुष ने विष्णु से कहा कि तुम रुद्र का रूप धारण कर जगत के जीवो का सहार करो । तब विष्णु ने रुद्र का स्वरूप धारण किया और जगत मे जीवो का सहार कर योग की स्थापना की ॥ ४ ॥ ॥ तोटक ॥ शिवजी ने जैसे युद्ध किये और जिस प्रकार संतो को सुख प्रदान किया मैं उसका वर्णन करूँगा । मैं यह भी बताऊँगा कि किस प्रकार उन्होंने पार्वती को स्वयवर मे जीतकर उसका वरण किया ॥ ५ ॥ ॥ तोटक ॥ शिव ने कैसे अधकासुर से युद्ध किया । कामदेव का गर्व चूर किया और क्रोधित होकर दैत्यो के समूह का दलन किया । मैं इन सब प्रसगों का वर्णन करूँगा ॥ ६ ॥

होत धरन भारा करांत। तब परत नाहि तिह ह्रिदे शांत। चल दध समुंद्र करई पुकार। तब धरत बिशन रुद्रावतार ॥७॥ ॥ पाधरी छंद ॥ तब करत सकल दानव सँघार। कर दनुज प्रलव संतन उधार। इह भाँति सकल करि दुष्ट नास। पुनि करति ह्रिदं भगतान बास ॥ ८ ॥ ॥ तोटक ॥ त्रिपुरं इक दैत बढ्यो त्रिपुरं। जिह तेज तपै रवि जिउँ त्रिपुरं। बरदाइ महासुर ऐस भयो। जिन लोक चतुरदस जीत लयो ॥ ९ ॥ ॥ तोटक ॥ जोऊ एक ही बाण हणै त्रिपुरं। सोऊ नास करै तिह दैत दुरं। अस को प्रगट्यो कब ताहि गनै। इक बाण ही सो पुर तीन हनै ॥ १० ॥ ॥ तोटक ॥ शिव धाइ चल्यो तिह मारन को। जग के सभ जीव उधारन को। कर कोप तज्यो सित सुद्ध सरं। इक बार ही नास कियो त्रिपुरं ॥ ११ ॥ ॥ तोटक ॥ लख कउतक साध सभै हरखे। सुमनं बरखा नभ ते बरखे। धुनि पूरि रही जय सद्द हुअं। गिर हेम हलाचल

॥ पाधरी छंद ॥ जब धरती पाप के बोझ से दब जाती है, तब उसके हृदय मे शांति नही बनी रह सकती। तब वह चलकर क्षीरसागर मे पुकार लगाती है और विष्णु का रुद्रावतार होता है ॥ ७ ॥ ॥ पाधरी छद ॥ तब रुद्र अवतार लेकर दानवों का सहार करते है— और दैत्यो का दलन कर सतो का उद्धार करते है। इस प्रकार सकल दुष्टो का नाश कर पुन: भक्तो के हृदय मे निवास करते है ॥ ८ ॥ ॥ तोटक ॥ त्रिपुरा (प्रदेश) मे तीन पंखो वाला एक दैत्य रहता था और उसका तेज सूर्य के तीनों लोको को प्रभावित करनेवाले तेज के समान था। वरदान प्राप्त करने के बाद वह असुर इतना महाबली हो गया कि उसने चौदह भुवनो को अर्थात समस्त ब्रह्माण्ड को जीत लिया ॥ ९ ॥ ॥ तोटक ॥ (उस राक्षस को यह वरदान था कि) जो कोई उसे एक ही बाण मे मारने की शक्ति रखता हो, वही उस विकराल राक्षस को मार सकता है अर्थात् एक से अधिक बाणो से नही मरेगा। कवि अब यह वर्णन करना चाहता है कि ऐसा कौन है, जो एक ही बाण से तीन पखों वाले इस असुर का नाश कर देने मे समर्थ हो ॥ १० ॥ ॥ तोटक ॥ जगत के जीवों का उद्धार करने के लिए और उस असुर का वध करने के लिए शिवजी चल पड़े। क्रोधित होकर शिवजी ने एक बाण छोडा और एक ही बार मे त्रिपुर राक्षस का नाश कर दिया ॥ ११ ॥ ॥ तोटक ॥ यह लीला देखकर सभी संतजन प्रसन्न हुए और आकाश से (देवताओं द्वारा) पुष्पवर्षा होने लगी। जय-जयकार की ध्वनि गूंज उठी, हिमालय पर्वत

कंप भुअं ।। १२ ।। ।। तोटक ।। दिन केतक बीत गए जब ही । असुरंधक बीर बियो तब ही । तब बैल चड़्यो गहि सूल शिवं । सुर चउक चले हरि कोप किवं ।। १३ ।। ।। तोटक ।। गण गंध्रब जचछ सभै उरगं । बर दान दयो शिव को दुरगं । हनिहो निरखंत मुरार सुर । त्रिपुरार हन्यो जिम कै (मू०ग्रं०१७३) त्रिपुरं ।। १४ ।। ।। तोटक ।। उह ओर चड़े दल लै दुजनं । इह ओर रिस्यो गहि सूल शिवं । रण रंग रँगे रण धीर रणं । जन शोभत पावक ज्वाल बणं ।। १५ ।। ।। तोटक ।। दनु देव दोऊ रण रंग रचे । गहि शस्त्र सभै रस रुद्र मचे । सर छाडत बीर दोऊ हरखे । जनु अंत प्रलै घन से बरखे ।। १६ ।। ।। रुआमल छंद ।। घाइ खाइ भजे सुरारदन कोपु ओप मिटाइ । अधि कंधि फिर्‌यो तबै जय दुंदभीन बजाइ । सूल सैहथ परघ पटसि बाण ओघ प्रहार । पेल पेल गिरे सु बीरन केल जान धमार ।। १७ ।। ।। रुआमल छंद ।। सेल रेल भई तहा अर

मे हलचल मच गई और भूमण्डल काँप उठा ।। १२ ।। ।। तोटक ।। काफी दिन बीत जाने के बाद अधकासुर नामक एक राक्षस हुआ । तब बैल पर सवार हो और त्रिशूल हाथ मे पकड़कर शिवजी चल पड़े ।। उनके भयकर स्वरूप को देखकर देवगण भी चौक उठे ।। १३ ।। ।। तोटक ।। गण-गधर्व, यक्ष, नाग लेकर शिवजी चले और दुर्गा ने भी शिव को (विजय के लिए) वरदान दिये । देवगण देखने लगे कि शिवजी अधकासुर को भी वैसे ही मार डालेगे जैसे उन्होने त्रिपुरासुर को मार डाला था ।। १४ ।। ।। तोटक ।। उधर से दलबल लेकर वह दुर्मति राक्षस चला । इधर से क्रोधित होकर हाथ मे त्रिशूल लेकर शिवजी चले । युद्ध की मस्ती मे मस्त सभी बलशाली योद्धा ऐसा दृश्य उपस्थित कर रहे थे मानो वन मे अग्नि की ज्वालाएँ दहक रही हो ।। १५ ।। ।। तोटक ।। दानव और देवता दोनो ही युद्ध मे प्रवृत्त हो गए और शस्त्रों को धारण कर सभी रौद्ररस का आनन्द लेने लगे । दोनो ओर के वीर तीर चलाते हुए परम प्रसन्न है तो बाण-वर्षा ऐसे हो रही है मानो प्रलय-काल मे बादल बरस रहे हो ।। १६ ।। ।। रुआमल छद ।। दैत्यगण घायल होकर और तेजहीन होकर भागने लगे और तभी अन्धकासुर दुन्दुभियाँ बजाता हुआ घूमकर युद्धस्थल की तरफ बढ आया । त्रिशूल, कृपाण, बाण एव अन्य अस्त्र-शस्त्रो के प्रहार होने लगे और शूरवीर इस प्रकार झूम-झूम गिरने लगे मानो कोई रास-रग चल रहा हो ।। १७ ।।

तेग तीर प्रहार। गाहि गाहि फिरे फवज्जन बाहि बाहि हथियार। अंग भंग परे कहूँ सरबंग स्रोनत पूर। एक एक बरी अनेकन हेरि हेरि सु हूर ॥१८॥ ॥ रुआमल छंद ॥ चउर चीर रथी रथो तम बाज राज अनंत। स्रोण की सरता उठी सु बिअंत रूप दुरंत। साज बाज कटे कहूँ गजराज ताज अनेक। उशटि पुशटि गिरे कहूँ रिप बाचियं नही एक ॥ १९ ॥ ॥ रुआमल छंद ॥ छाडि छाडि चले तहा न्रिप साज बाज अनंत। गाज गाज हने सदा शिव सूरबीर दुरंत। भाज भाज चले हठी हथिआर हाथि बिसार। बाण पाण कमाण छाडि सु चरम बरम बिसार ॥ २० ॥ ॥ नराज छद ॥ जितेक सूर धाइयं। तितेक रुद्र घाइयं। जितेक अउर धावही। तित्यो महेश घावही ॥ २१ ॥ ॥ नराज छंद ॥ कमंध अंध उठही। बसेख बाण बुठही। पिनाक पाण ते हणे। अनंत सूरमा बणे ॥ २२ ॥ ॥ रसावल छद ॥ सिलह संजि सज्जे। चहूँ ओर गज्जे। महाँ बीर बंके। मिटै नाहि डके ॥ २३ ॥

॥ रुआमल छंद ॥ कृपाणो और बाणो के प्रहारों से युद्धस्थल मे ठेलपेल मच गई और शूरवीर हथियार चलाते हुए फौजो का मथन करने लगे। कही पर अगविहीन वीर तथा कही पर पूरे शरीर रक्त मे डूबे पडे है और वीरगति-प्राप्त वीरो ने ढूंढ़-ढूँढकर अप्सराओ का वरण किया है ॥ १८ ॥ ॥ रुआमल छद ॥ वस्त्र, रथ एव रथो पर सवार तथा अनेकों घोड़े इधर-उधर पड़े हुए है तथा युद्धस्थल मे रक्त की विकराल नदी बह निकली है। कही पर सुसज्जित घोड़े और हाथी कटे पड़े है और कही पर ढेर-के-ढेर वीर पड़े हुए है और एक भी शत्रु जीवित नही बचा है ॥ १९ ॥ ॥ रुआमल छद ॥ राजागण अपने सुसज्जित हाथी-घोड़ो को छोड़कर चल दिये है और शिवजी ने गरज-गरजकर महाबली वीरो का नाश किया है। शूरवीर हथियारो को भी त्यागकर भाग चले है और उनके धनुष-बाण, लौह-कवच आदि भी पीछे छूट गए है ॥ २० ॥ ॥ नराज छद ॥ जितने भी शूरवीर सामने जाते है रुद्र उनका नाश कर देते है। जितने और आगे बढेगे शिवजी उनका भी नाश कर देगे ॥ २१ ॥ ॥ नराज छंद ॥ अन्धे कबन्ध युद्धस्थल से उठ रहे है और विशेष बाण-वर्षा कर रहे हैं। अनन्त शूरवीर धनुष द्वारा तीर चलाकर शूरवीर होने का प्रमाण दे रहे हैं ॥ २२ ॥ ॥ रसावल छद ॥ लौह-कवचो से सुसज्जित शूरवीर चारो ओर गरज रहे है। किसी भी प्रकार नष्ट

।। रसावल ।। बजे घोरि बाजं । सजे सूर साजं । घणं जेम गज्जे । महिखुआस सज्जे ।।२४।। ।। रसावल ।। महिखुआस धारी । चले ब्योमचारी । सुभं सूर हरखे । सरंधार बरखे ।। २५ ।। ।। रसावल ।। धरे बाण पाणं । चड़े तेज माणं । कटा कट्टि बाहैं । अधो अंग लाहैं ।। २६ ।। ।। रसावल ।। रिसे रोस रुद्रं । चलै भाज छुद्रं । (मू०ग्रं०१७४) महाँ बीर गज्जे । सिलहि संजि सज्जे ।।२७।। ।।रसावल।। लए शकत पाणं । चढ़े तेज माणं । गणं गाढ़ गाजे । रणं रुद्र राजे ।। २८ ।। भभंकंत घायं । लरे चउप चायं । डकी डाकणीयं । रड़े काकणीयं ।। २९ ।। भयं रोस रुद्रं । हणे दैत छुद्रं । कटे अध अद्धं । भई सैण बद्धं ।। ३० ।। रिस्यो सूल पाणं । हणे दैत माणं । सरं ओघ छुट्टे । घणं जेम टुट्टे ।। ३१ ।। रणं रुद्र गज्जे । तबै दैत भज्जे । तजे शस्त्र सरबं । मिट्यो देह गरबं ।। ३२ ।। ।। चौपई ।। धायो तबै

न होनेवाले बाँके शूरवीर शोभायमान हो रहे हैं ।। २३ ।। ।। रसावल ।। वाद्यो की घोर ध्वनि सुनाई पड़ रही है और सुसज्जित शूरवीर दिखाई पड रहे है। धनुष इस प्रकार बज रहे है मानो बादल गरज रहे हो ।। २४ ।। ।। रसावल ।। देवगण भी धनुषो को धारण कर चल पड़े हैं और सभी शूरवीर प्रसन्न होकर बाण-वर्षा कर रहे है ।। २५ ।। ।। रसावल ।। हाथो मे बाण धारण कर अत्यन्त तेजस्वी और गर्वीले वीर चढ़ उठे है और उनके शस्त्रो के कटाकट चलने से शत्रुओ के शरीर दो भागों मे कटते चले जा रहे हैं ।। २६ ।। ।। रसावल ।। रुद्र के क्रोध को देखकर क्षुद्र दानव भाग खडे हुए है। महाबलशाली वीर कवच से सुसज्जित होकर गरज रहे है ।। २७ ।। ।। रसावल ।। हाथो मे शक्ति लेकर अत्यन्त तेजस्वी और गहन गर्जन करनेवाले शिव युद्ध मे चढ उठे है और शोभायमान हो रहे है ।। २८ ।। घावो मे से भभककर रक्त बह रहा है और सभी उत्साह के साथ लड़ रहे हैं। डाकिनियाँ प्रसन्न हो रही हैं और अश्व आदि धराशायी हो रहे हैं ।। २९ ।। रुद्र ने क्रोधित होकर दैत्यों का नाश कर दिया है और उनके शरीरो को खण्ड-खण्ड करके उनकी सेना का वध कर दिया है ।। ३० ।। त्रिशूलधारी शिव अत्यन्त क्रोधित हो उठे हैं और उन्होने दैत्यों को नष्ट कर दिया है। बाणों के समूह इस प्रकार छूट रहे है मानो बादल टूटकर गिर रहे हो ।। ३१ ।। जब रुद्र ने युद्धस्थल मे गर्जना की तब सभी दैत्य भाग खडे हुए। सभी ने शस्त्र त्याग दिये और सबका गर्व चूर हो गया ।। ३२ ।।

अंध्रिक बलवाना। संग लै सैन दानवी नाना। अमित बाण नंदी कह मारे। बेध अंग कह पार पधारे ॥ ३३ ॥ जब ही बाण लगे बाहण तन। रोस जग्यो तब ही शिव के मन। अधिक रोस कर बिसख चलाए। भूम अकाश छिनक महि छाए ॥ ३४ ॥ बाणावली रुद्र जब साजी। तब ही सैण दानवी भाजी। तब अंधिक शिव सामुहि धायो। दुंद जुद्ध रण मद्धि मचायो ॥ ३५ ॥ ॥ अड़िल ॥ बीस बाण तिन शिवहि प्रहारे कोप कर। लगे रुद्र के गात गए ओह घाय कर। गहि पिनाक कह पाण पिनाकी धाइयो। हो तुमल जुद्ध दुहूँअन रण मद्धि मचाइयो ॥ ३६ ॥ ॥ अड़िल ॥ ताड़ शत्र कह बहुरि पिनाकी कोपु हुऐ। हणे दुष्ट कह बाण निखग ते काढ दुऐ। गिर्यो भूम भीतरि सिर शत्रु प्रहारियो। हो जनक गाज करि कोप बुरज कह मारियो ॥ ३७ ॥ ॥ तोटक ॥ घट एक बिखै रिप चेत भयो। धन बाण बली पुन पाण लयो। कर कोप कुवंड करं करख्यो। सर धार बली घन ज्यों

॥ चौपाई ॥ उसी समय बलवान अन्धकासुर दानवी सेना को लेकर आगे की तरफ दौडा। उसने अनेको वाण नन्दी को मारे जो कि उसके अंगो को बेधकर पार कर गये ॥ ३३ ॥ जब अपने वाहन के तन मे बाण लगे देखे तव शिव के मन मे और अधिक क्रोध जाग उठा। उन्होंने क्रोधित होकर विषमय वाण चलाए, जो क्षण भर में धरती और आकाश में छा गये ॥ ३४ ॥ जव रुद्र ने बाण-वर्षा की तव आसुरी सेना भाग खड़ी हुई। तव अधकासुर शिव के सामने आया और युद्धस्थल मे अव द्वन्द्व-युद्ध छिड़ गया ॥ ३५ ॥ ॥ अड़िल ॥ राक्षस ने क्रोधित होकर शिव पर बीस वाणो से प्रहार किया, जो कि शिव के शरीर मे लगे और घाव कर दिये। शिव भी धनुष हाथ मे लेकर आगे की ओर दौड़े और दोनो में भयंकर युद्ध छिड गया ॥ ३६ ॥ ॥ अड़िल ॥ शत्रु पर निशाना लगाकर शिव अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्होने अपने तरकश से दो वाण निकालकर दुष्ट (अधकासुर) की ओर मारा। ये वाण शत्रु के शिर मे लगा और वह भूमि पर गिर पड़ा। वह ऐसे गिरा जैसे किसी वड़े स्तम्भ पर बिजली गिरने से वह धराशायी हो जाता है ॥ ३७ ॥ ॥ तोटक ॥ एक घड़ी बाद शत्रु अंधकासुर पुनः चेतनावस्था मे आया और उस महाबली ने पुनः हाथो मे धनुष-बाण ले लिया। क्रोधित होकर उसके हाथो में धनुष खिचने लगा और मेघवर्षा के समान बाणो की वर्षा होने लगी ॥ ३८ ॥

बरख्यो ॥ ३८ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ कर कोप बली बरख्यो बिसखं । इह ओर लगे निसरे दुसरं । तब कोप करं शिव सूल लियो । अर को सिर काट दुखंड कियो ॥ ३९ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके पिनाक परबधहि अधक बधहि रुद्रोसतते धिआइ समापतम सतु ॥

अथ गउर बधह कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ सुर राज प्रसंनि भए तब ही । अर अधक नास सुन्यो जब ही । इम कै (मू०ग्रं०१७५) दिन केतक बीत गए । शिवधाम सतक्रित जात भए ॥१॥ तब रुद्र भयानक रूप धर्यो । हरि हेरि हरं हथियार हर्यो । तब ही शिव कोप अखंड कियो । इक जनम अंगार अपार लियो ॥ २ ॥ तिह तेज जरे जगजीव सबै । तिह डार दयो मधि सिंध तबै । सोऊ डार दयो सिध महि न गयो । तिह आन जलंधर रूप लयो ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ इह बिधि भयो

॥ तोटक छद ॥ क्रोधित होकर वह महाबली विशेष शक्ति वाले बाणो की वर्षा करने लगा जो कि एक ओर से लगने और दूसरी ओर से निकलने लगे । तब क्रोधित होकर शिव ने त्रिशूल हाथ में लिया और शत्रु का सिर काटकर उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३९ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के अधक-वध और रुद्र-स्तुति अध्याय की समाप्ति ॥

पार्वती-वध-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ तोटक छंद ॥ इन्द्र ने जब अंधकासुर के नाश के बारे मे सुना तो वे वहुत प्रसन्न हुए । इस प्रकार कितने ही दिन बीत गए और शिवजी भी अपने धाम को चले गए ॥ १ ॥ तभी रुद्र ने भयानक रूप धारण किया । शिव के शस्त्र को ढूँढ़ा गया और चुराया गया । तब शिव ने भी क्रोध किया और वह अंगारे के समान दहकने लगे ॥ २ ॥ उस तेज से सभी जगत के जीव जलने लगे । तब शिव ने अपना क्रोध शांत करने के लिए अपने शस्त्र एवं क्रोध को समुद्र मे फेंक दिया । परन्तु वह समुद्र मे डूब न सका और उसने जलन्धर दैत्य का रूप धारण कर लिया ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार यह असुर महाबलशाली हुआ और इसने कुबेर का खज़ाना भी लूट लिया ।

असुर बलवाना। लयो कुबेर को लूट खजाना। पकर समसते ब्रहमु रुवायो। इंद्र जीत सिर छत्र ढुरायो ॥ ४ ॥ जीत देवता पाइ लयाए। रुद्र बिशन निज पुरी बसाए। चउदह रतन आन राखे ग्रिह। जहाँ तहाँ बैठाए नवग्रिह ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जीत बसाए निज पुरी असुर सकल असुरार। पूजा करी महेश की गिर कैलाश मझार ॥६॥ ॥ चौपई ॥ ध्यान बिधान करे बहु भाँता। सेवा करी अधिक दिन राता। ऐस भाँत तिह काल बितायो। अब प्रसंगि शिव ऊपर आयो ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ भूतराट को निरख अतुल बल। काँपत भए अनिक अरि जल थल। दच्छ प्रजापत होत न्रिपत बर। दस सहंस्र दुहिता ताके घर ॥ ८ ॥ तिन इक बार सुयंबर कीया। दस सहंस्र दुहिता इस दीया। जो बरु रुचै बरहु अब सोई। ऊच नीच राजा हुइ कोई ॥ ९ ॥ जो जो जिसै रुचा तिनि बरा। सभ प्रसंग नही जात उचरा। जो बिरतांत कहि छोर सुनाऊँ। कथा ब्रिध ते अधिक

इसने ब्रह्मा को भी पकडकर रुला दिया और इन्द्र को भी जीतकर उसका छत्र अपने सिर पर धारण किया ॥ ४ ॥ देवताओ को जीतकर अपने चरणो मे गिराया और रुद्र तथा विष्णु को भी अपने ही नगर में बसने के लिए ही बाध्य कर दिया। चौदह रत्न भी उसने अपने घर में इकट्ठे कर लिये, अपनी इच्छानुसार नवग्रहो को भी यहाँ-वहाँ नियुक्त कर दिया ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ दैत्यराज ने सभी को जीतकर अपने यहाँ बसा लिया। देवताओ ने कैलास पर्वत पर जाकर महेश की वन्दना की ॥ ६ ॥ ॥ चौपाई ॥ भिन्न प्रकार से ध्यान, पूजा और दिन-रात सेवा की गई और इस प्रकार बहुत समय बीता। अब शिव के ऊपर ही सारी बात आ पडी थी ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ भूतनाथ शिव का अतुल बल देखकर शत्रु जल, स्थल सभी स्थानो पर काँप रहे थे। राजाओ मे श्रेष्ठ राजा दक्ष प्रजापति था, जिसके घर दस हज़ार पुत्रियाँ थी ॥ ८ ॥ उस राजा के यहाँ एक बार स्वयवर हुआ और उसने अपनी दस हज़ार पुत्रियो को यह आज्ञा दी कि ऊँच-नीच राजा के विचार को छोड़कर जो जिसकी रुचि हो उसके अनुसार वह अपना विवाह करे ॥ ९ ॥ जिस-जिसको जो-जो अच्छा लगा, उसने उसका वरण किया; परन्तु इन सारे प्रसगो का वर्णन नही किया जा सकता। यदि सब वृत्तातो का विस्तार-पूर्वक वर्णन करना हो तो कथा के लम्बे हो जाने का भय सदैव बना

डराऊँ ।। १० ।। ।। चौपई ।। चार सुता कश्शप कह दीनी । केतक ब्याह चंद्रमा लीनी । केतक गई अउर देसन महि । बर्‍यो गउरजा एक रुद्र कहि ।। ११ ।। जब ही ब्याह रुद्र ग्रिह आनी । चली जग की बहुरि कहानी । सभ दुहिता तिह बोल पठाई । लीने संग भतारन आई ।। १२ ।। ।। चौपई ।। जे जे हुते देस परदेसा । जात भए ससुरार नरेसा । निरख रुद्र को अउर प्रकारा । किनहू न भूपत ताहि चितारा ।। १३ ।। नहन गउरजा दच्छ बुलाई । सुनि नारद ते ह्रिदै रिसाई । बिन बोले पित के ग्रिह गई । अनिक प्रकार तेज तन तई ।। १४ ।। जग्ग कुंड (मू०ग्रं०१७६) महि परी उछर कर । सत प्रताप पावक भई सीतरि । जोगअगन कहु बहुरि प्रकाशा । ता तन कियो प्रान को नासा ।। १५ ।। आइ नारद इम शिवहि जताई । कहाँ बैठिहो भाँग चड़ाई । छुट्यो ध्यान कोपु जिय जागा । गहि त्रिसूल तिह को उठि भागा ।। १६ ।। जब ही जात भयो तिह थलै । लयो उठाइ

रहेगा ।। १० ।। ।। चौपाई ।। चार कन्याएँ तो कश्यप ऋषि को दे दी गईं और कईयों के साथ चद्रमा ने विवाह कर लिया । कई अन्य देशो को चली गईं परन्तु गौरी (पार्वती) ने कहकर शिव (रुद्र) से विवाह किया ।। ११ ।। जब पार्वती विवाह के पश्चात रुद्र के घर पहुँची तो कई प्रकार की कथा-वार्त्ताएँ प्रचलित हो उठी । राजा ने सब पुत्रियों को बुलवा भेजा और वे सब अपने पतियो के साथ पिता के घर आ गईं ।। १२ ।। ।। चौपाई ।। जो-जो नरेश देश-विदेशो मे थे वे सब ससुराल पहुँचने लगे । रुद्र की कुछ विचित्र वेश-भूषा को ध्यान मे रखकर किसी ने भी उसको स्मरण तक नही किया ।। १३ ।। दक्षपति ने गौरी को आमन्त्रित नही किया । यह जब गौरी ने नारद के मुँह से सुना तो वह मन मे अत्यन्त क्षुब्ध हो वह विना बताए ही पिता के घर चली गई और उसका तन-मन भावावेश मे जल रहा था ।। १४ ।। अत्यन्त क्रोधित् अवस्था मे वह यज्ञकुड मे कूद गई और उस सती के प्रताप से अग्नि ठडी हो गई, परन्तु सती ने योग-अग्नि प्रज्ज्वलित की और उससे उसका शरीर नष्ट हो गया ।। १५ ।। नारद ने इधर शिव से आकर कहा कि आप क्या भाँग चढ़ाकर यहाँ बैठे है (वहाँ तो गौरी जीवित जल गई है) । यह सुनकर शिव का ध्यान छूटा और हृदय क्रोध से भर उठा । उन्होने त्रिशूल पकड़ा और उस तरफ़ दौड़ चले ।। १६ ।।

सूल कर बलै। भाँत भाँत तिन करे प्रहारा। सकल बिधुंस जग्ग कर डारा ॥ १७ ॥ ॥ चौपई ॥ भाँत भाँत तन भूप संघारे। इक इक ते कर दुइ दुइ डारे ॥ जाकहु पहुच त्रिसूल प्रहारा। ता कहु मार ठउर ही डारा ॥ १८ ॥ जग्गकुंड निरखत भयो जब ही। जूट जटान उखारस तब ही। बीर-भद्र तब किआ प्रकाशा। उपजत करो नरेशन नासा ॥ १९ ॥ केतक करे दुखंड न्रिपत बर। केतक पठै दए जम के घर। केतक गिरे धरण बिकरारा। जन सरता के गिरे कनारा ॥२०॥ तब लउ शिवहु चेतना आई। गहि पिनाक कहु परो रिसाई। जा के ताण बाण तन मारा। प्रान तजे तिन पाननु-धारा ॥ २१ ॥ ॥ चौपई ॥ डमा डम्म डउरू बहु बाजे। भूत प्रेत दसउ दिस गाजे। झिम झिम करत असन की धारा। नाचे रुंड मुंड बिकरारा ॥ २२ ॥ बज्जे ढोल सनाइ नगारे। जुटे जंग को जोध जुझारे। खहि खहि मरे अपर रिस बढे।

जब शिव उस सतीस्थल पर पहुँचे तो उन्होने अपने त्रिशूल को भी दृढता से पकड लिया। विभिन्न प्रकार से प्रहार कर उन्होने सारे यज्ञ को विध्वस कर दिया ॥ १७ ॥ ॥ चौपाई ॥ अनेकों राजाओ का संहार कर उनके शरीरो के टुकडे-टुकड़े कर दिये। जिस पर भी त्रिशूल का प्रहार हुआ, वह उसी स्थल पर मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥ १८ ॥ जब शिव ने यज्ञकुंड देखा अर्थात गौरी को जली हुई देखा तो शोकाकुल होकर वे अपनी जटाओ को नोचने लगे (और अचेत होने लगे)। तभी वीरभद्र वहाँ प्रकट हुए और प्रकट होते ही उन्होने राजाओ को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया ॥ १९ ॥ कई राजाओ को दो टुकड़े कर दिया और कइयो को यमराज के पास भेज दिया अर्थात मार दिया। जैसे नदी में बाढ आने पर नदी के किनारे ढहकर गिर पड़ते है, ऐसे कई विकराल वीर धरती पर गिरने लगे ॥ २० ॥ तब तक शिवजी भी चेतनावस्था मे आ गये और धनुष हाथ मे लेकर क्रोधित होकर टूट पडे। जिसको भी खीचकर शिव ने बाण मारा उसने वही प्राण त्याग दिये ॥ २१ ॥ ॥ चौपाई ॥ डमडम डमरू बजने लगे और दसो दिशाओ में भूत-प्रेतादि गरजने लगे। कृपाणे झमाझम बरसने लगी और सिर कटे हुए धड़ चारों तरफ नाचने लगे ॥ २२ ॥ ढोल और नगाड़े बजते हुए सुनाई पडने लगे और योद्धागण युद्ध में भिड़ उठे। एक-दूसरे से टकराते है, आपस में क्रोधित होते हैं और पुनः उन्हें घोड़े पर चढ़े नही देखा जाता अर्थात वे

बहुरि न देखियत ताजिअन चढे ।। २३ ।। जा पर मुशत त्रिसूल प्रहारा । ताकहु ठउर मार ही डारा । ऐसो भयो बीर घमसाना । भकभकाइ तह जगे मसाना ।। २४ ।। ।। दोहरा ।। तीर तबर बरछी बिछुअ बरसे बिसख अनेक। सभ सूरा जूझत भए सावत बचा न एक ।।२५।। ।। चौपई ।। कटि कटि मरे नरेश दुखडा । बाइ हने गिर गे जन झंडा। सूल सँभार रुद्र जब परयो । चित्र बचित्र अयोधन करयो ।।२६।। भाज भाज तब चले नरेसा । जग्ग बिसार सँभारयो देसा । जब रण रुद्र रुद्र रूऐ धाए । भाजत भूप न बाचन पाए ।।२७।। तब सभ भरे तेज तन राजा। बाजन लगे अनंतन बाजा। मच्यो बहुरि घोरि संग्रामा । जम को (मू०ग्रं०१७७) भरा छिनक महि धामा ।। २८ ।। भूपत फिरे जुद्ध के कारन । लै लै बाण पाण हथियारन । धाइ धाइ अर करत प्रहारा । जन कर चोट परत घरियारा ।। २९ ।। खंड खंड रण गिरे अखंडा । काँप्यो खंड नवे ब्रहमंडा । छाडि छाडि अस गिरे नरेशा । मच्यो जुद्ध

धराशायी हो जाते है ।। २३ ।। जिस पर भी शिव की मुट्ठी मे पकड़े हुए त्रिशूल का वार हुआ, वह वही पर मार डाला गया। ऐसा घमासान वीरभद्र ने किया कि हडबड़ाकर श्मशानो से भूत-प्रेत भी जग उठे ।। २४ ।। ।। दोहा ।। तीर, वरछी, विछुए तथा अनेको अन्य शस्त्र-अस्त्र चले और सभी शूरवीर वीरगति को प्राप्त हो गये, कोई भी बाकी नही बचा ।। २५ ।। ।। चौपाई ।। टुकड़े हो चुके राजा ऐसे पड़े थे मानो प्रबल वायु के प्रहारो से पेडो के झुड टूटकर गिरे हों। त्रिशूल को सम्हालकर जब रुद्र ने तबाही मचाई तो वहाँ का दृश्य विचित्र ही दिखाई पडने लगा ।।२६।। तब राजागण यज्ञ को भूलकर अपने-अपने देशो की ओर भागने लगे। जब रुद्र ने रौद्ररूप धारण कर उनका पीछा किया तो भागनेवाला कोई भी राजा बच नही पाया ।। २७ ।। तब सभी राजा भी सावधान होकर रजस्‌गुण से भर उठे और सब ओर अनेको वाद्य बजने लगे। पुनः घोर सग्राम छिड गया और यम का घर मृतको से भरने लगा ।। २८ ।। राजागण युद्ध करने के लिए विभिन्न प्रकार के वाण एव शस्त्र लेकर वापस मुड़े। दौड-दौड़कर वे ऐसे वार करने लगे मानो घडियाल पर चोटे पड रही हो ।। २९ ।। खंड-खंड होकर बलशाली वीर गिरने लगे और नव खड पृथ्वी तथा सम्पूर्ण ब्रह्मांड काँप उठा। तलवारे छोड़-छोड़कर राजा गिरने लगे और वहाँ युद्ध-स्थल मे स्वयवर-जैसा दृश्य उपस्थित हो

सुयंबर जैसा ॥ ३० ॥ ॥ नराज छंद ॥ अरुज्झे किकाणी । धरे शस्त्रपाणी । परी मार बाणी । कड़क्के कमाणी ॥ ३१ ॥ झड़क्के क्रिपाणी । धरे धूर धाणी । चड़े बान साणी । रटे एक पाणी ॥ ३२ ॥ ॥ नराज छद ॥ चवी चांव डाणी । जुटे हाण हाणी । हसी देव राणी । झमक्के क्रिपाणी ॥३३॥ ॥ ब्रिध नराज छंद ॥ सु मार मार सूरमा पुकार मार कै चले । अनंत रुद्र के गणो बिअंत बीरहा दले । घमंड घोर सावणी अघोर जिउ घटा उठी । अनंत बूंद बाण धार सुद्ध क्रुद्ध कै बुठी ॥ ३४ ॥ ॥ नराज छंद ॥ बिअंत सूर धावही । सु मार मार घावही । अघाइ घाइ उट्ठहीं । अनेक बाण बुट्ठहीं ॥ ३५ ॥ ॥ नराज छंद ॥ अनंत अस्त्र सज्जकै । चले सु बीर गज्जकै । निरभै हथ्यार झारहीं । सु मार मार उचारहीं ॥ ३६ ॥ घमंड घोर जिउँ घटा । चले बनाइ तिउ थटा । सु शस्त्र सूर सोभहीं । सुता सुरान लोभहीं ॥ ३७ ॥ सु बीर बीन कै बरै । सुरेश लोग बिचरै । सु त्रास भूप जे

गया ॥ ३० ॥ ॥ नराज छंद ॥ घोडों पर बैठे वीर स्वतन्त्र होकर हाथों मे शस्त्र पकडकर घूमने लगे । बाणो की मार पडने लगी और कमान कड़कड़ाने लगे ॥ ३१ ॥ क्रुपाणे झडने लगी और धरती से धूल उड़कर ऊपर जाने लगी । एक ओर तेज किये हुए तीर चल रहे है और दूसरी ओर लोग पानी की रट लगा रहे है ॥३२॥ ॥ नराज छद ॥ चीले झपट रही है और बराबरी के शूरवीर आपस मे भिड पड़े है । दुर्गा हँस रही है और कृपाणें झमाझम बरस रही है ॥ ३३ ॥ ॥ वृहद नराज छंद ॥ शूरवीर 'मार-मार' की पुकार के साथ चल पड़े और इधर रुद्र के गणो ने अनत वीरो को नष्ट कर दिया । जैसे सावन की घनघोर घटा उठती दिखाई देती है, वैसे ही बूंदो की भाँति क्रुद्ध बाण बरस रहे है ॥ ३४ ॥ ॥ नराज छद ॥ अनेको शूरवीर दौड रहे हैं और शत्रुओ पर वार कर-करके उन्हें घायल कर रहे है । कई घायल होकर फिर उठ रहे है और बाणवर्षा कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ ॥ नराज छंद ॥ अनेको अस्त्रो से सुसज्जित होकर, गर्जना करते हुए वीर चल पडे हैं और अभय होकर शस्त्रो से प्रहार कर मार-मार की पुकार लगा रहे है ॥ ३६ ॥ घनघोर उठ रही घटाओ की तरह ठाट-बाट बनाते हुए वीर चल पडे है । वे शस्त्रो से सुसज्जित इतने सुन्दर लग रहे है कि देवकन्याएं भी उनपर मोहित हो रही है ॥ ३७ ॥ वे चुन-चुनकर वीरो का वरण कर रही है और सभी

बजे । सु देव पुत्रका तजे ।। ३८ ।। ।। ब्रिध नराज छंद ।। सु शस्त्र अस्त्र सज्जके परे हकार कै हठी । बिलोक रुद्र रुद्र को बनाइ सैण ऐकठी । अनंत घोर सावणी दुरंत ज्यो उठी घटा । सु सोभ सूरमा नचै सु छीन छत्र की छटा ।। ३९ ।। ।। ब्रिध नराज ।। कि पाइ खग्ग पाण मो त्रपाइ ताजियन तहाँ । जुआन आन कै परे सु रुद्र ठाढबो जहाँ । बिअत बाण सैहथी प्रहार आनके करै । धकेल रेल लै चलै पछेल पाव ना टरै ।। ४० ।। सड़क्क सूल सैहथी तड़क्क तेग तीरयं । बबक्क बाघ ज्यों बली भभक्क घाइ बीरयं । अघाइ घाइकै गिरे पछेल पाव ना टरे । सु बीन बीन अच्छरे प्रबीन दीन हुइ बरे ।।४१।। ।। चौपई ।। इह बिधि जूझ गिर्यो सभ साथा । रहिग्यो दच्छ अकेल अनाथा । बचे बीर ते बहुरि बुलाइस (मू०ग्रं०१७८) पहर कवच दुंदभी बजाइस ।। ४२ ।। आपन चला जुद्ध कह राजा । जोर करोर अयोधन साजा । छूटत बाण कमाण अपारा । जनु दिन ते हुइ गयो अँधारा ।। ४३ ।। भूत परेत मसाण

वीर युद्ध-स्थल मे देवराज इन्द्र के समान शोभायमान होकर विचरण कर रहे है । जो राजा भयभीत हो रहे है, उन्हे देव-पुत्रियो ने त्याग दिया है ।। ३८ ।। ।। वृहद नराज छद ।। घनघोर गर्जन करते हुए और अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित होकर शूरवीर टूट पडे और उन्होने रुद्र का रौद्ररूप देखकर सभी सेनाओ को एकत्र किया । सावन की उठती हुई घनघोर घटा-समान शूरवीर उमड़ पड़े और शूरवीर आकाश की शोभा को अपने मे समेटते हुए मदमस्त होकर नृत्य करने लगे ।। ३९ ।। ।। वृहद नराज ।। हाथो मे खड्ग धारण कर और घोड़ो को तेज़ दौडाते हुए महाबली नवयुवक वहाँ आ रुके, जहाँ रुद्र उपस्थित थे । वीरो ने अनेको बाणो और शस्त्रो से ये प्रहार प्रारम्भ कर दिये और धकधकाकर बिना पीछे हटे आगे बढने लगे ।। ४० ।। बर्छियो की सडसड़ाहट और तलवारो की तड़तड़ाहट सुनाई पड रही है । बाघो की तरह दहाड़ कर वीर एक-दूसरे पर घाव कर रहे है । घाव लगने पर वीर गिर पड़ रहे है, परन्तु पाँव पीछे नही हटा रहे है ।। ४१ ।। ।। चौपाई ।। इस प्रकार सभी साथी तो गिर पड़े तथा दक्ष अकेला रह गया । बचे हुए वीरो को उसने पुनः बुलाया और कवच पहनकर रणवाद्य फिर बजाया ।। ४२ ।। राजा दक्ष स्वयं युद्ध के लिए अनंत योद्धाओ का बल लेकर चला । उसके धनुष से अनत बाण छूटने लगे और ऐसा दृश्य उपस्थित हो गया मानो दिन में ही अधकार

हकारे। दुहूँ ओर डउरू डमकारे। महाँ घोर मच्यो संग्रामा। जैसक लंक रावण अरु रामा॥ ४४॥ ॥ भुजंग॥ भयो रुद्र कोपं धर्यो सूल पाणं। करे सूरमा सरब खाली पलाणं। उते एक दच्छं इते रुद्र एकं। कर्यो कोप कै जुद्धु भाँतं अनेकं॥ ४५॥ ॥ भुजंग॥ गिर्यो जान कूटसथली ब्रिछ मूलं। गिर्यो दच्छ तैसे कट्यो सीस सूलं। पर्यो राज राजं भयो देह घातं। हन्यो जान बज्रं भयो पब्ब पातं॥ ४६॥ गयो गरब सरबं भजो सूर बीरं। चल्यो भाज अंतहपुरं हुइ अधीरं। गरे गार अंचर परे रुद्र पायं। अहो रुद्र कीजै क्रिपा कै सहायं॥४७॥ ॥ चौपई॥ हम तुमरो हरि ओज न जाना। तुमहो महाँ तपी बलबाना। सुनत बचन भए रुद्र क्रिपाला। अजा सीस न्रिप जोर उताला॥ ४८॥ रुद्र काल को धरा धिआना। बहुरि जियाइ नरेश उठाना। राज सुता पत सकल जियाए। कउतक्क निरख संत त्रिपताए॥ ४९॥ नार

हो गया हो॥ ४३॥ भूत-प्रेत आदि चिल्लाने लगे और दोनो ओर से डमरू डमडमाने लगे। घोर संग्राम छिड़ उठा और ऐसा लग रहा था मानो लंका मे राम-रावण युद्ध हो रहा हो॥ ४४॥ ॥ भुजग॥ कुपित होकर रुद्र ने हाथ मे त्रिशूल पकड़ा और कई अश्वो की काठियो को खाली करते हुए कई शूरवीरो को मार डाला। उधर दक्ष भी अकेला और इधर रुद्र भी अकेले थे; दोनो ने क्रोधित होकर अनेक प्रकार से युद्ध किया॥४५॥ ॥भुजंग॥ दक्ष का सिर त्रिशूल से रुद्र ने काट डाला और वह ऐसे गिर पड़ा मानो वृक्ष जड़ से उखड़कर गिरा हो। राजाओ का राजा दक्ष शरीर कट जाने से ऐसे गिर पड़ा मानो इन्द्र ने वज्र से पर्वत के पंख काट दिये हों और पर्वत गिर पड़ा हो॥ ४६॥ दक्ष का सारा गर्व जाता रहा और शूरवीर रुद्र ने उसका पूर्णरूप से भजन किया। तब रुद्र दौड़कर अधीर होकर अंत.पुर मे जा घुसे, जहाँ सभी गले मे आँचल डालकर उनके चरणों मे गिरकर कहने लगे कि हे रुद्र! कृपा करके हमारी रक्षा करो, सहायता करो॥ ४७॥ ॥ चौपाई॥ हे शिव! हमने तुम्हारे तेज को पहचाना नही, तुम महाबलशाली और तपस्वी हो। यह सुनकर रुद्र दयालु हो उठे और उन्होने दक्ष को जीवित कर उठा दिया॥ ४८॥ पुनः रुद्र ने अकाल-पुरुष का ध्यान किया और अन्य राजाओ को भी जीवित कर दिया। राजकन्याओ के सभी पतियो को जीवित कर दिया और इस लीला को देखकर सभी साधु-संत अत्यन्त हर्षित हो उठे॥ ४९॥ पत्नी-विहीन

हीन शिव काम खिझायो। ता ते संभु घनो दुखु पायो। अधिक कोप कै काम जरायस। बितन नाम तिह तदिन कहायस ॥ ५० ॥

॥ इति स्री रुद्र प्रबध दच्छ बधह रुद्र महातमो गउर बधह ॥
धिआइ यारा संपूरनम सतु सुभम सतु ॥ ११ ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ बहु जो जरी रुद्र की दारा। तिन हिमगिर ग्रिह लिय अवतारा। छुटी बालता जब सुधि आई। बहुरो मिली नाथ कह जाई ॥ १ ॥ जिह बिध मिली राम सो सीता। जैसक चतुर बेद तन गीता। जैसे मिलत सिंध तन गंगा। त्यों मिलि गई रुद्र कै संगा ॥ २ ॥ जब तिह ब्याह रुद्र घर आना। निरख जलंधर ताहि लुभाना। दूत एक तह दियो पठाई। ल्याउ रुद्र ते नार छिनाई ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ ॥ जलंधर बाच ॥ कै शिव नारि सींगार कै मम ग्रिह देहु पठाइ। नातर सूल सँभारकै

शिव को कामदेव ने बहुत तग किया, जिससे शिव ने काफ़ी कष्ट भोगा। अत्यधिक तग होकर एक बार क्रुद्ध होकर शिव ने कामदेव को भस्म कर दिया और उसी दिन से कामदेव अनग कहलाने लगा ॥ ५० ॥

॥ रुद्रावतार-प्रबन्ध मे दक्ष-वध, रुद्र-महत्व एव गौरी-वध ग्यारहवाँ
अध्याय सपूर्ण ॥ ११ ॥

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ रुद्र की पत्नी ने जलने और मृत्यु को प्राप्त करने के पश्चात हिमालय के घर पर जन्म लिया। उसका बचपन समाप्त होने पर जब वह नवयुवती हुई तो पुन: वह अपने नाथ (शिव) के साथ जा मिली ॥ १ ॥ जैसे सीता राम से मिलकर एक हो गई, गीता और वैदिक विचारधारा एक रूप है, अथवा जैसे समुद्र से मिलकर गगा एकात्म हो जाती है, वैसे वह (पार्वती) शिव (रुद्र) के साथ मिलकर एक हो गयी ॥ २ ॥ जब उसको ब्याहकर रुद्र अपने घर पर लाये तो जलधर दैत्य उसे देखकर उस पर मोहित हो उठा। उसने एक दूत को भेजा और कहा कि जाओ जाकर उस स्त्री को रुद्र से छीनकर ले आओ ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ ॥ जलंधर उवाच ॥ (जलधर ने दूत से शिव को यह कहने के लिए कहा) शिव की पत्नी को श्रृंगार करके या तो मेरे घर पर भेज दो अन्यथा शिव से कह दो कि वह त्रिशूल सँभालकर मुझसे

संग लरहु (मू०ग्रं०१७६) मुर आइ ॥ ४ ॥ ॥ चौपई ॥ कथा भई इह दिस इह भाता । अब कहो बिशन त्रिया की बाता । ब्रिदारिक दिन एक पकाए । दैत सभा तै बिशन बुलाए ॥ ५ ॥ ॥ चौपई ॥ आइ गयो तह नारद रिख बर । बिशन नार के धाम छुधातर । बैंगन निरख अधिक ललचायो । माँग रह्यो पर हाथ न आयो ॥ ६ ॥ नाथ हेत मै भोग पकायो । मनुछ पठै कर बिशन बुलायो । नारद खाइ जूठ हो जैहै । पीअ कुपत हमरे पर हुइहै ॥७॥ ॥ नारद बाच ॥ माँग थक्यो मुन भोज न दीआ । अधिक रोसु मुनिबर तब कीआ । ब्रिदा नाम राछसी बपु धर । त्रिअ हुअ बसो जलंधर के घर ॥ ८ ॥ देकर स्राप जात भयो रिखबर । आवत भयो बिशन ताके घर । सुनत स्राप अति ही दुख पायो । बिहस बचन त्रिय संग सुनायो ॥ ९ ॥ ॥ दोहरा ॥ त्रिय को छाया लै तबै ब्रिदा रची बनाइ । धूम्रकेस दानव सदन जनम धरत भई जाइ ॥ १० ॥ ॥ चौपई ॥ जैसक रहत कमल जल भीतर ।

आकर युद्ध करे ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ यह कथा भी किस प्रकार हुई, इसी से सबधित अब मै विष्णु-पत्नी की भी बात कहता हूँ । एक दिन उसने अपने घर मे बैगन की सब्जी बनाई और उसी समय दैत्य-सभा मे से विष्णु का बुलावा आ गया जहाँ वे चले गए ॥ ५ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसी समय ऋषिवर नारद विष्णु के घर आ पहुँचे जो कि भूख से पीड़ित थे ! बैगन की भोज्य-सामग्री देखकर उनका मन ललचा गया, परन्तु माँगने पर भी उन्हे कुछ हाथ न लगा ॥ ६ ॥ विष्णुपत्नी ने कहा कि मैंने यह भोग अपने स्वामी के लिए पकाया है और मै देने मे असमर्थ हूँ । मैंने एक व्यक्ति को उन्हे बुलाने को भेजा है और वे आते ही होगे । विष्णुपत्नी ने सोचा कि नारद द्वारा खा लेने पर मेरा भोजन जूठा हो जायगा तथा मेरे स्वामी मुझपर क्रोधित हो जायँगे ॥ ७ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ मुनि भोजन माँगता हुआ थक गया पर तुमने मुनि को भोजन नही दिया । (मुनिवर इससे अत्यधिक क्रोधित हो उठे और कहने लगे कि) तुम वृन्दा नामक राक्षसी का शरीर धारण कर जलधर दैत्य की पत्नी होकर उसके घर में रहोगी ॥८॥ जैसे ही ऋषि श्राप देकर गया, विष्णु अपने घर पहुँच गए । श्राप की बात सुनते ही उन्हे बहुत दु:ख हुआ और मुस्कुराकर पत्नी ने भी बात की पुष्टि करते हुए वही वात कही ॥ ९ ॥ ॥ दोहा ॥ अपनी पत्नी की छाया लेकर विष्णु ने तभी वृन्दा की रचना की, जिसने धरती पर धूम्रकेश दानव के घर जन्म लिया ॥ १० ॥ ॥ चौपाई ॥ जैसे

पुनि न्रिप बसी जलंधर के घर। तिह् निमित जलंधर अवतारा। धर है रूप अनूप मुरारा ॥ ११ ॥ कथा ऐस इह् दिस मो भई। अब चल बात रुद्र पर गई। माँगी नार न दीनी रुद्रा। तां ते कोप असुर पत छुद्रा ॥ १२ ॥ ॥ चौपई ॥ बज्जे ढोल नफीरि नगारे। दुहू दिसा डमरू डमकारे। माचत भयो लोह् बिकरारा। झमकत खग्ग अदग्ग अपारा ॥ १३ ॥ गिर गिर परत सुभट रण माहीं। धुक धुक उठत मसाण तहाहीं। गजी रथी बाजी पैदल रण। जूझ गिरे रण की छित अनगण ॥ १४ ॥ ॥ तोटक ॥ बिचरे रणवीर सु धीर क्रुधं। मचियो तिह् दारुण भूम जुधं। हहरंत हय गरजंत गजं। सुणकै धुन सावण मेघ लजं ॥ १५ ॥ बरखे रण बाण कमाण खगं। तह घोर भयानक जुद्ध जगं। गिर जात भटं हहरंत हठी। उमगी रिप सैण किए इकठी ॥ १६ ॥ चहूँ ओर घिर्यो सर सोधि शिवं। करि कोप घनो असुरार इवं। दुहूँ

कमलपत्र जल मे जल की बूंदो से अप्रभावित बना रहता है, वैसे ही वृन्दा जलधर के घर मे उसकी गृहिणी होकर रहने लगी। उसी के लिए (विष्णु ने) जलधर के रूप मे अवतार लिया और इस भाँति विष्णु ने एक अनुपम स्वरूप धारण किया ॥ ११ ॥ इस प्रकार यह कथा इस दिशा मे चल पडी और अब बात आकर रुद्र पर रुक गई। रुद्र से जलधर ने स्त्री को माँगा जिसे रुद्र ने नही दिया, इस पर असुरपति जलधर शीघ्र ही क्रोधित हो उठा ॥ १२ ॥ ॥ चौपाई ॥ चारो ओर ढोल और नगाड़े बजने लगे और चारो दिशाओ मे डमरुओ की डमाडम सुनाई पडने लगी। लोहे से लोहा विकराल रूप मे बजने लगा और खड्गो की झमाझम अपार रूप से दिखाई पड़ने लगी ॥ १३ ॥ शूरवीर युद्धस्थल मे गिरने लगे और भूत-बैताल आदि चारो ओर उठ-उठकर दौड़ने लगे। गज-रथ और अश्वो पर सवार युद्धस्थल मे अगणित संख्या मे वीर जूझकर गिरने लगे ॥ १४ ॥ ॥ तोटक ॥ युद्धस्थल मे शूरवीर क्रोधित होकर विचरने लगे और भीषण युद्ध छिड गया। घोडो की हिनहिनाहट और हाथियो की गर्जना सुनकर सावन के मेघ भी लजाने लगे ॥ १५ ॥ युद्ध मे बाण और खड्ग बरसने लगे और इस प्रकार यह जगत मे भयानक एव घोर युद्ध हुआ। शूरवीर गिरते है परन्तु हठ करके फिर भी भयकर ध्वनियाँ निकालते है। इस प्रकार युद्धस्थल मे शत्रुसेना चारो ओर से उमड़कर इकट्ठी हो गई ॥ १६ ॥ चारो ओर से घिरकर शिव ने बाण सम्हाला और असुरों पर घोर रूप से क्रोधित हो उठे। दोनो ओर से इस प्रकार

ओरन ते इम बाण बहे। नभ अउर धरा दोऊ छाइ रहे ॥१७॥ गिरगे तह टोपनि टूक घने। रहगे जन किंसक स्रोण सने। रण हेर अगंम अनूप (मू०ग्रं०१८०) हरं। जिय मो इह भाँत बिचार करं ॥ १८ ॥ जिय मो शिव देख रहा चक कै। दल दैतन मद्धि परा हक कै। रण सूल सँभार प्रहार करं। सुणकै धुनि देव अदेव डरं ॥ १९ ॥ ॥ तोटक ॥ जिय मो शिव ध्यान धरा जब ही। कलकाल प्रसंनि भए तब ही। कह्यो बिशन जलंधर रूप धरो। पुनि जाइ रिपेश को नास करो ॥ २० ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ दई काल आज्ञा धर्यो बिशन रूपं। सजे साज सरबं बन्यो जान भूपं। कर्यो नाथ यों आप नारं उधारं। त्रिया राज ब्रिंदा सती सत्त टारं ॥२१॥ तज्यो देहि दैतं भई बिशन नारं। धर्यो द्वादसं बिशन दइता-वतारं। पुनर जुद्ध सज्ज्यो गहे शस्त्र पाणं। गिरे भूम मो सूर सोभे बिमाणं ॥ २२ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ मिट्यो

बाणो की वर्षा हुई कि आकाश और धरती पर छाया हो गई ॥ १७ ॥ युद्धस्थल मे शिरस्त्राण टूटकर इस प्रकार गिरे मानो रक्त से सने फूल गिरे हो। रणस्थल में अगम्य और अनुपम शिव ने इस भाँति मन में विचार किया ॥ १८ ॥ और हृदय में आश्चर्य-चकित होकर शिव दैत्यो के दल मे ललकार कर कूद गए। त्रिशूल को सम्हालकर वह प्रहार करने लगे और उनके प्रहार की ध्वनि को सुनकर देव-दानव सभी भयभीत होने लगे ॥ १९ ॥ ॥ तोटक ॥ शिव ने जैसे ही मन में अकालपुरुष का ध्यान किया तो कलिकाल उसी समय प्रसन्न हो उठे। विष्णु को आज्ञा हुई कि तुम जलधर का रूप धारण करो और इस प्रकार शत्रु-नरेश का नाश करो ॥ २० ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ कालपुरुष ने आज्ञा दी और विष्णु ने जलंधर का रूप धारण किया और सभी प्रकार सुसज्जित हो राजा का स्वरूप दिखाई देने लगा। विष्णु ने इस प्रकार का रूप अपनी स्त्री के उद्धार के लिए धारण किया और इस प्रकार महासती वृन्दा का सतीत्व भंग किया ॥ २१ ॥ राक्षसी का शरीर त्यागकर वृन्दा पुनः विष्णुपत्नी लक्ष्मी के रूप में प्रकट हुई और इस प्रकार विष्णु ने बारहवाँ अवतार दैत्यावतार के रूप में धारण किया। पुनः युद्ध चलने लगा और वीरो ने हाथो मे शस्त्र धारण कर लिये। युद्धस्थल मे वीर गिरने लगे और युद्धस्थल मे ही वायुयान वीरों को ले जाने के लिए सुशोभित होने लगे ॥ २२ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छद ॥ इधर स्त्री का सतीत्व भंग हुआ

सति नारं कट्यो सैन सरबं। मिट्यो भूप जालंधरं देह गरबं। पुनर जुद्ध सज्यो हठे तेज हीणं। भजे छाड कै संग साथी अधीणं ॥ २३ ॥ ॥ चौपई ॥ दुहूँ जुद्ध कीना रण माही। तीसर अवरु तहाँ को नाही। केतक मास मच्यो तह जुद्धा। जालंधर हुए शिव पर क्रुद्धा ॥ २४ ॥ तब शिव ध्यान शकत कौ धरा। ता ते शकत क्रिपा कह करा। ता ते भयो रुद्र बलवाना। मंड्यो जुद्ध बहुरि बिधि नाना ॥ २५ ॥ उत हरि लयो नारि रिप सत हरि। इत शिव भयो तेज देवी करि। छिनमो कियो असुर को नासा। निरख रीझ भट रहे तमासा ॥ २६ ॥ जालंधरी ता दिन ते नामा। जपहु चंडका को सभ जामा। ता ते होत पवित्र सरीरा। जिम नाए जल गंग गहीरा ॥ २७ ॥ ता ते कहो न रुद्र कहानी। ग्रंथ बढन की चिंत पछानी। ता ते कथा थोर ही भासी। निरख भूलि कबि करो न हासी ॥ २८ ॥

॥ इति जलधर अवतार बारहवाँ समापतम सत सुभम सत ॥ १२ ॥

और उधर सारी सेना कट गई, इससे जलधर का अभिमान चूर हो गया। परन्तु फिर भी तेजहीन राजा ने युद्ध जारी रखा और उसके सभी साथी और अधीनस्थ लोग युद्ध छोड़कर भाग खड़े हुए ॥२३॥ ॥ चौपाई ॥ दोनो (शिव और जलधर) ने युद्ध किया और युद्ध-स्थल मे तीसरा अन्य कोई नही था। कई महीनो तक युद्ध चलता रहा और जलधर शिव पर अत्यन्त क्रोधित हो उठा ॥ २४ ॥ तब शिव ने शक्ति का ध्यान किया और शक्ति ने उनपर कृपा की। रुद्र ने अब और अधिक बलशाली होकर युद्ध करना शुरू कर दिया ॥ २५ ॥ उधर तो विष्णु ने स्त्री के सतीत्व का हरण कर लिया इधर शिव भी देवी के तेज से और अधिक शक्तिशाली हो उठे इसलिए इन्होने क्षणभर मे जलधर दैत्य का नाश कर दिया। इस दृश्य को देखकर सभी लोग प्रसन्न हो उठे ॥ २६ ॥ चण्डिका का जाप करनेवाले यह जानते है कि उसी दिन से चण्डिका का एक नाम जालधरी भी पड गया। उसके नाम का जाप करने से शरीर उसी प्रकार पवित्र होता है, जिस प्रकार गगा-स्नान से पवित्रता आती है ॥ २७ ॥ ग्रन्थ के बढने की चिन्ता को ध्यान मे रखकर मैने रुद्र की पूरी कथा नही कही है। इस कथा को सक्षेप मे ही कहा गया है। (कृपया) यह देखकर कविगण मेरी हँसी न उड़ाएँ ॥ २८ ॥

॥ इति जलधर-अवतार बारहवे की शुभ समाप्ति ॥ १२ ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ अब मै गनो बिशन अवतारा। जैसक धर्यो सरूप मुरारा। बिआकल होतु धरन जब भारा। कालपुरख पहि करत पुकारा ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ असुर देवतन देति भजाई। छीन लेत भू की ठकुराई। करत पुकार धरण (मू०ग्रं०१८१) भर भारा। कालपुरख तब होत क्रिपारा ॥२॥ ॥ दोहरा ॥ सभ देवन को अंस लै तत आपन ठहराइ। बिशन रूप धारत तदिन ग्रिह अदित्त के आइ ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ आन हरत प्रिथवी को भारा। बहु बिधि असुरन करत संघारा। भूम भार हर सुर पुर जाई। कालपुरख मो रहत समाई ॥ ४ ॥ सकल कथा अब छोर सुनाऊँ। बिशन प्रबंध कहत स्रम पाऊँ। ता ते थोरिऐ कथा प्रकाशी। रोग सोग ते राखि अबिनाशी ॥ ५ ॥

॥ इति तेरवाँ बिशन अवतार ॥ १३ ॥ समापतम सत सुभम सत ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ दोहरा ॥ कालपुरख की देहि मो कोटिक बिशन महेश। कोटि इन्द्र ब्रहमा किते

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ अब मैं विष्णु के अवतारो की गणना करता हूँ कि विष्णु ने किस प्रकार के अवतार धारण किए। जब धरती पाप के बोझ से व्याकुल हो उठती है, तो वह कालपुरुष के समक्ष अपना दु:ख प्रकट करती है ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ जब असुर देवताओ को भगा देते है और भूमि का राज्य उनसे छीन लेते है, तब धरती पाप के बोझ से दबकर पुकार करती है तथा तब कालपुरुष कृपा करते है ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ तब सभी देवताओ का अश लेकर और मूल रूप से स्वय उसमे अवस्थित होकर विष्णु विभिन्न रूप धारण कर आदित्यकुल मे जन्म लेते हैं ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ इस प्रकार अवतरित होकर पृथ्वी का भार दूर करते हैं और विविध प्रकार से असुरो का सहार करते है। धरती का बोझ हरण कर पुन: सुरपुर चले जाते है और कालपुरुष मे लीन हो जाते है ॥४॥ यदि इन सारी कथाओ को मैं विस्तार से कहूँ तो इसे विष्णु-प्रबन्ध ही कहने का भ्रम करना होगा। इसलिए इससे संक्षेप मे ही कथा कहता हूँ और हे परमात्मा ! आप रोग और शोक से मेरी रक्षा करे ॥ ५ ॥

॥ इति तेरहवाँ विष्णु-अवतार समाप्त ॥ १३ ॥ शुभ सत समाप्त ॥

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ दोहा ॥ कालपुरुष के (सर्वातिशायी) शरीर मे करोड़ों विष्णु और महेश निवास करते हैं। करोड़ों इन्द्र,

रवि ससि श्रोर जलेश ।। १ ।। ।। चौपई ।। स्रमित बिशन तह रहत समाई । सिध विंध जह गन्यो न जाई । शेशनाग से कोटक तहाँ । सोवत सैन सरप की जहाँ ।। २ ।। सहंस्र सीस तब धरतन जंगा । सहंस्र पाव कर सहंस अभंगा । सहंसराछ सोभत हैं ताके । लछमी पाव पलोसत वाके ।। ३ ।। ।। दोहरा ।। मधु कीटभ के बध नमित जा दिन जगत मुरार । सु कबि स्यामि ताको करे चौदसवो अवतार ।। ४ ।। ।। चौपई ।। स्रवण मैल ते असुर प्रकाशत । चंद सूर जन दुतिय प्रभाशत । माया तजत बिशन कह तब ही । करत उपाध असुर मिलि जब ही ।। ५ ।। तिन सों करत बिशन घमसाना । बरख हजार पंच धरमाना । कालपुरख तब होत सहाई । दुहूँअनि हनत क्रोध उपजाई ।। ६ ।। ।। दोहरा ।। धारत है ऐसो बिशन चौदसवों अवतार । संत सबूहनि सुख नमित दानव दुहूँ सँघार ।। ७ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटक चत्रदसवो अवतार समापत ।।
चौधवाँ अवतार ।। १४ ।।

ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, वरुण उसी के (दिव्य) शरीर मे अवस्थित है ।। १ ।। ।। चौपाई ।। श्रम से थके विष्णु उसी मे लीन रहते है और उस कालपुरुष मे कितने सागर और कितनी पृथ्वियाँ है उनकी गणना नही की जा सकती । वह अकालपुरुष जिस महासर्प (काल) की शय्या पर शयन करता है, उसके आसपास करोड़ो शेषनाग सुशोभित होते हैं ।। २ ।। उसके हज़ारो सिर, धड़ एव जघाएँ है । अभंजनशील के हज़ारो हाथ और पैर है । हज़ारो उसके नेत्र है और सर्व प्रकार का ऐश्वर्य उसके चरण चूमता है ।। ३ ।। ।। दोहा ।। मधु और कैटभ के वध के निमित्त जिस दिन विष्णु ने जो अवतार धारण किया, श्याम कवि उसे चौदहवे अवतार के रूप मे जानता है ।। ४ ।। ।। चौपाई ।। कान की मैल से असुर पैदा हुए और चंद्र-सूर्य के समान तेजवान माने जाने लगे । कालपुरुष की आज्ञा से विष्णु ने माया को त्यागकर तब अवतार धारण किया, जब ये असुर लोग विभिन्न प्रकार के उत्पात मचाना प्रारम्भ कर दिए ।। ५ ।। उनसे विष्णु ने पाँच हज़ार वर्षो तक घमासान युद्ध किया । कालपुरुष ने तब विष्णु की सहायता की और दोनो असुरो का क्रोधित होकर नाश किया ।।६।। ।। दोहा ।। इस प्रकार विष्णु चौदहवाँ अवतार धारण करते है और सतों को सुख देने के लिए इन दोनो दानवों का संहार करते हैं ।। ७ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक का चौदहवाँ अवतार समाप्त ।। चौदहवाँ अवतार ।। १४ ।।

अथ अरहंत देव अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ जब जब दानव करत पसारा । तब तब बिशन करत संघारा । सकल असुर इकठे तहाँ भए । सुर अरु गुर मंदर चल गए ॥ १ ॥ समहूँ मिलि अस कर्यो बिचारा । दईतन करत घात (मू०ग्रं०१८२) असुरारा । ता ते ऐस करौ किछु घाता । जा ते बने हमारी बाता ॥२॥ दइत गुरू इम वचन बखाना । तुम दानवो न भेद पछाना । वे मिलि जग्ग करत बहु भाँता । कुशल होतु ता ते दिन राता ॥ ३ ॥ तुमहूँ करो जग्ग आरंभन । बिजै होइ तुमरी ता ते रण । जग्ग अरंभ्य दानवन करा । बचन सुनत सुर पुर थरहरा ॥४॥ बिशन बोल करि करो बिचारा । अब कछु करो मंत्र असुरारा । बिशन नवीन कह्यो बपु धरिहो । जगि बिघन असुरन को करिहो ॥ ५ ॥ बिशन अधिक कीनो इशनाना । दीने अमित दिजन कह दाना । मन मो कवला

अरिहंतदेव-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ जब-जब दानव अपने-आप को अधिक शक्तिशाली बनाकर अपना प्रसार करना आरम्भ करते हैं, तब-तब विष्णु उनका संहार करते हैं। एक बार सारे असुर एकत्र हुए और उन्हे देखकर देवता और उनके गुरु अपने-अपने आवासो मे चले गये ॥ १ ॥ सभी असुरों ने मिलकर विचार-विमर्श किया और अनुभव किया कि विष्णु (हमेशा) दैत्यो का नाश कर देते है। अब कुछ इस प्रकार से आघात किया जाना चाहिए, जिससे हम असुरों की मान-मर्यादा बनी रह सके ॥ २ ॥ दैत्यो के गुरु (शुक्राचार्य) ने कहा कि हे दानवो ! तुम लोगो ने अभी तक इस रहस्य को नही समझा है। वे देवता लोग मिलकर भिन्न-भिन्न प्रकार से यज्ञ करते है, इसी से वे हमेशा सकुशल रहते है ॥ ३ ॥ तुम लोग भी यज्ञ आरम्भ करो और देखो उसी क्षण तुम्हारी विजय होगी। दानवो ने भी यज्ञ प्रारम्भ कर दिया और इस बात को सुनकर देवलोक भयभीत हो उठा ॥ ४ ॥ सब देवता विष्णु से मिलकर बोले कि हे असुरघातक ! अब कुछ उपाय कीजिए। विष्णु ने कहा कि मैं नया शरीर धारण कर अवतरित होऊँगा और असुरो का यज्ञ नष्ट करूँगा ॥ ५ ॥ विष्णु ने अनेको (तीर्थों के) स्नान किए और ब्राह्मणों को अपरिमित दान दिया। विष्णु के हृदय मे कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने

सिरजो ज्ञाना । कालपुरख को धरियो ध्याना ॥ ६ ॥
कालपुरख तब भए दयाला । दास दान कहृ बचन रिसाला ।
धर अरहंत देव को रूपा । नास करो असुरन के भूपा ॥ ७ ॥
बिशन देव आज्ञा जब पाई । कालपुरख की करी बड़ाई ।
भू अरहंत देव बन आयो । आन अउर ही पंथ चलायो ॥ ८ ॥
जब असुरन को भ्यो गुरु आई । बहुति भाँति निज मतहि
चलाई । स्रावग मत उपराजन कीआ । संत सबूहन को सुख
दीआ ॥ ९ ॥ सभहूँ हाथ मोचना दीए । सिखा हीण दानव
बहु कीए । सिखा हीण कोई मंत्र न फुरै । जो कोई जपै
उलट तिह परै ॥ १० ॥ बहुर जग्ग को करब मिटायो ।
जिअ हिंसा ते सभहुँ हटायो । बिन हिंसा किअ जग्ग न होई ।
ता ते जग्ग करै ना कोई ॥ ११ ॥ याते भयो जगन को नासा ।
जो जीय हने होइ उपहासा । जीअ मरे बिनु जग्ग न होई ।
जग्ग करै पावै नही कोई ॥ १२ ॥ इह बिधि दियो सभन

ज्ञान का संचार किया और विष्णु ने कालपुरुष का ध्यान किया ॥ ६ ॥ कालपुरुष ने तब दया की और अपने दास (विष्णु) को मीठे वचनों से संबोधित किया । हे विष्णु ! तुम अरिहंत स्वरूप धारण करो और असुरों के राजाओ का नाश करो ॥ ७ ॥ विष्णु ने कालपुरुष की आज्ञा पाकर उसका गुणानुवाद किया । भूमि पर अरिहंतदेव बनकर अवतरित हुआ और एक नया ही पथ चला दिया ॥ ८ ॥ जब यह असुरो का गुरु बन गया तो इसने विभिन्न प्रकार के मत चला दिये । उनमें से एक श्रावक (जैन) मत को उत्पन्न किया और साधु-सतो को परमसुख प्रदान किया ॥ ९ ॥ सबके हाथ मे उसने बाल उखाडनेवाली चिमटियाँ पकडा दी और इस प्रकार बहुत से दानवो को शिखा-विहीन कर दिया । केश एव शिखा-विहीनो को कोई मत्र याद ही नही आता था और यदि कोई मत्र का जाप करता भी था तो उसी पर विपरीत प्रभाव उस मत्र का पडता था ॥ १० ॥ पुन. उसने यज्ञकर्म को समाप्त कर किया और जीव-हिंसा से सबको विरत कर दिया । बिना जीव-हिंसा के यज्ञ हो नही सकता, इसलिए अब कोई यज्ञ नही करता था ॥११॥ इस प्रकार यज्ञो का नाश हो गया और जो कोई भी जीवो को मारता था वह उपहास का पात्र बनता था । जीवहत्या बिना यज्ञ नही हो सकता था और वैसे यदि कोई यज्ञ करता था तो उसे कुछ भी प्राप्त नही होता था ॥१२॥ इस प्रकार अरिहत-अवतार ने सबको इस प्रकार का उपदेश दिया कि कोई भी राजा यज्ञ न

उपदेशा। जगग सकै को कर न नरेशा। अपंथ पंथ सभ लोगन लाया। धरम करम कोऊ करन न पाया॥ १३ ॥
॥ दोहरा ॥ अंनि अनि ते होतु ज्यो घासि घासि ते होइ। तैसे मनुछ मनुछ ते अवरु न करता कोइ॥ १४ ॥ ॥ चौपई ॥ ऐस ग्रान सभहून द्रिड़ायो। धरम करम कोऊ करन न पायो। इह ब्रित बीच सभो चित दीना। असुर बंस ताते भ्यो छीना ॥१५॥
॥ चौपई ॥ नावन दैत न पावै कोई। बिनु इशनान पवित्र न होई। बिनु पवित्र कोई (मू०ग्रं०१८३) फुरे न मंत्रा। निफल भए ता तै सभ जंत्रा॥ १६ ॥ दस सहंस्र बरख किअ राजा। सभ जग मो मत ऐसु पराजा। धरम करम सभ ही मिटि गयो। ता ते छीन असुर कुल भयो॥ १७ ॥ देवराइ जिअ मो भल माना। बडा करमु अब बिशन कराना। आनंद बढा शोकु मिट गयो। घरि घरि सभहुँ बधावा भयो॥ १८ ॥
॥ दोहरा ॥ बिशन ऐस उपदेश दै सभ हूँ धरम छुडाइ। अमरावति सुर नगर मो बहुरि बिराज्यो जाइ॥ १९ ॥

कर सके। सबको कुमार्ग पर लगा दिया गया और कोई भी धर्म-कर्म नही कर पा रहा था॥ १३ ॥ ॥ दोहा ॥ जिस प्रकार अन्न के बीजों से अन्न पैदा होता है, घास से घास पैदा होती है, उसी प्रकार मनुष्य से मनुष्य पैदा होता है (इसका कर्ता कोई ईश्वर नही है)॥ १४ ॥
॥ चौपाई ॥ इस प्रकार का ज्ञान सबको दिया गया कि कोई भी धर्म-कर्म का कार्य नही करता था। सबका मन इसी प्रकार की बातों में लग गया और इस प्रकार असुर-वंश क्षीण होने लगा॥ १५ ॥ ॥ चौपाई ॥ ऐसे नियम प्रचलित कर दिए गए थे कि अब कोई दैत्य स्नान भी नही कर पाता था और बिना स्नान किए कोई पवित्र नही हो पाता था। बिना पवित्र हुए किसी मंत्र का स्मरण नही होता था और इस प्रकार सब क्रियाएँ निष्फल हो जाती थी॥ १६ ॥ इस प्रकार अरिहतराज ने दस हजार वर्ष तक राज्य किया और सारे संसार मे अपना मत चलाया। संसार से धर्म-कर्म समाप्त हो गया और इस प्रकार असुर-वंश क्षीण हो गया॥ १७ ॥ देवराज इंद्र को मन मे यह सब बहुत अच्छा लगा कि विष्णु ने हम लोगो के लिए बहुत बडा काम किया है। सभी शोक को त्यागकर आनंदित हो गए और घर-घर मे खुशी के गीत गाए जाने लगे ॥१८॥ ॥ दोहा ॥ विष्णु ने इस प्रकार उपदेश देकर सबका धर्म-कर्म छुड़वा दिया और पुनः स्वर्गपुरी मे जा विराजमान हुए॥ १९ ॥ श्रावकों के परमगुरु का अवतार

स्रावगेश को रूप धर दैत कुपंथ सम डार। पंद्रसवों अवतार इम धारत भयो मुरार ॥ २० ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके पंद्रसवो अरहत अवतार ॥ १५ ॥

अथ मनु राजा अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ स्रावग मत सभ ही जन लागे। धरम करम सभ ही तज भागे। त्याग दई सभ हूँ हरि सेवा। कोइ न मानत भे गुरदेवा ॥ १ ॥ साधि असाधि सभै हुइ गए। धरम करम सभ हूँ तज दए। कालपुरख आज्ञा तब दीनी। बिशन चंद सोई विधि कीनी ॥ २ ॥ मनु ह्वै राजवतार अवतरा। मनु सिम्रितहि प्रचुर जग करा। सकल कुपंथी पंथ चलाए। पाप करन ते लोग हटाए ॥ ३ ॥ राज अवतार भयो मनु राजा। सभ ही सजे धरम के साजा। पाप करा ताको गहि मारा। सकल प्रजा कहु मारग डारा ॥ ४ ॥ पाप करा जाही तह मारस।

धारण कर और दैत्यों को कुमार्ग पर लगाने के लिए इस प्रकार विष्णु ने पन्द्रहवाँ अवतार धारण किया ॥ २० ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक का पन्द्रहवाँ अरिहत अवतार समाप्त ॥ १५ ॥

मनुराजा-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ सभी लोग श्रावक मत में प्रवृत्त हो गए और सबने धर्म-कर्म का त्याग कर दिया। सबने हरि-सेवा त्याग दी और कोई भी परम गुरुदेव (कालपुरुष) को नही मानता था ॥ १ ॥ साधु लोग असाधु हो गए और सबने धर्म-कर्म का त्याग कर दिया। तब कालपुरुष ने आज्ञा दी तथा विष्णुचन्द्र ने पुन. उसी की आज्ञानुसार कार्य किया ॥ २ ॥ राजा मनु का रूप धारण कर विष्णु अवतरित हुए और ससार मे मनुस्मृति का प्रचार किया। सभी कुमार्गियों को सद्मार्ग पर चलाया और लोगो को पापकर्म से विरत किया ॥ ३ ॥ विष्णु ने राजा मनु के रूप मे अवतार लिया और सभी धर्मकार्यों को पुनः शोभायमान किया। जो पाप करता था, अब उसे मार डाला जाता था और इस प्रकार राजा ने सम्पूर्ण प्रजा को सुमार्ग पर चलाने का कार्य किया ॥ ४ ॥ पापी को तत्क्षण समाप्त कर दिया जाता था और सारी

सकल प्रजा कहु धरम सिखारस। नाम दान सभहूँन सिखारा। स्रावग पंथ दूर कर डारा ॥ ५ ॥ जे जे भाज दूर कहु गए। स्रावग धरम सोऊ रहि गए। अउर प्रजा सभ मारग लई। कुपंथ पंथ ते सुपंथ चलई ॥ ६ ॥ राज अवतार भयो मनु राजा। करम धरम जग मो भल साजा। सकल कुपंथी पंथ चलाए। पाप करम ते धरम लगाए ॥ ७ ॥ ॥ दोहरा ॥ पंथ कुपंथी सभ लगे स्रावग मत भयो दूर। मनु राजा को जगत मो रह्यो सु जसु भरपूर ॥ ८ ॥ (मू०ग्रं०१८४)

॥ इति स्री बचित्र नाटके मनु राजा अवतार सोलवाँ ॥ १६ ॥ सतु सुभम सतु ॥

अथ धनंतर बैद अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ सभ धनवंत भए जग लोगा। एक न रहा तिनो तन सोगा। भाँत भाँत भच्छत पकवाना। उपजत रोग देह तिन नाना ॥ १ ॥

प्रजा को धर्म की शिक्षा दी जाती थी। (अब सबने) प्रभु-नाम और दान-पुण्य की शिक्षा प्राप्त की और इस प्रकार राजा ने श्रावक (जैनधर्म) मार्ग का परित्याग करवा दिया ॥५॥ जो-जो लोग राजा मनु के राज्य से दूर भाग गए वे ही श्रावक धर्म मे बने रह सके, बाकी सारी प्रजा धर्म के मार्ग पर चल पड़ी और कुमार्ग का त्याग कर धर्म के मार्ग को ग्रहण करने लगी ॥ ६ ॥ मनु राजा विष्णु के अवतार थे और उन्होने सारे ससार मे धर्म-कर्म का भलीभाँति प्रचलन किया। सभी कुमार्गियो को ठीक मार्ग पर चलाया और पापकर्मो मे प्रवृत्त लोगो को धर्म की ओर लगाया ॥ ७ ॥ ॥ दोहा ॥ गलत रास्तो पर चलनेवाले सभी सुमार्ग पर चलने लगे और इस प्रकार श्रावक मत लोगो से दूर हट गया। इस कार्य के लिए राजा मनु का सारे ससार मे भरपूर यशोगान हुआ ॥ ८ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक का मनुराजा सोलहवाँ अवतार समाप्त ॥ १६ ॥ शुभ सत्य ॥

धन्वन्तरि वैद्य-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ सारे संसार के लोग धनवान हो गए और उनके तन और मन पर किसी प्रकार का शोक अथवा चिन्ता न रही। लोग भाँति-भाँति के पकवान खाने लगे और फलस्वरूप नाना प्रकार के रोग उनके शरीर में पैदा होने लगे ॥ १ ॥ सब लोग

रोगाकुल सभ ही भए लोगा। उपजा अधिक प्रजा को सोगा। परमपुरख की करी बडाई। क्रिपा करी तिन पर हरि राई ॥२॥ बिशन चंद को कहा बुलाई। धर अवतार धनंतर जाई। आयुरबेद को करो प्रकाशा। रोग प्रजा को करियहु नासा ॥ ३ ॥ ॥ दोहरा ॥ ता ते देव इकत्र हुइ मथ्यो समुंद्रहि जाइ। रोग बिनासन प्रजा हित कढ्यो धनंतर राइ ॥ ४ ॥ ॥ चौ ई ॥ आयुरबेद तिन कियो प्रकाशा। जग के रोग करे सभ नासा। बइद शास्त्र कहु प्रगट दिखावा। भिन भिन अउखधी बतावा ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ रोग रहत कर अउखधी सभ ही करो जहान। काल पाइ तचछक हन्यो सुरपुर कियो पयान ॥ ६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके धनत्र अवतार सतारवाँ ॥ १७ ॥ सुभम सत ॥

अथ सूरज अवतार कथनं ॥

॥ स्री भगउती जी सहाइ ॥ ॥ चौपई ॥ बहुर बढे दिति

रोगो से व्याकुल हो गए और प्रजा अत्यन्त दुखी हो उठी। सबने परमपुरुष (परमात्मा) का गुणानुवाद किया और परमात्मा ने सब पर कृपा की ॥ २ ॥ विष्णुचन्द्र को परमपुरुष ने बुलाया और धन्वतरि के रूप मे अवतार लेने की आज्ञा दी। उससे यह भी कहा कि तुम आयुर्वेद के ज्ञान का प्रसार कर प्रजा के रोगो का नाश करो ॥ ३ ॥ ॥ दोहा ॥ तब सभी देवता एकत्र हुए, उन्होने समुद्र-मंथन किया तथा प्रजा की भलाई के लिए और उनके रोगो को नष्ट करने के लिए धन्वतरि को समुद्र मे से प्राप्त किया ॥ ४ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसने आयुर्वेद का प्रसार किया और सारे ससार से रोगो का नाश किया। वैद्यक शास्त्रो को प्रकट कर लोगों के सामने रखा और भिन्न-भिन्न ओषधियो का वर्णन किया ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ सारे ससार की दवा-दारू कर, उसने जगत को रोग-रहित कर दिया और समय पाकर तक्षक द्वारा डसे जाने पर वे पुनः स्वर्गलोक मे जा विराजमान हुए ॥ ६ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के सत्तरहवे धन्वतरि-अवतार की समाप्ति ॥ १७ ॥ शुभ सत्य ॥

सूर्य-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ श्री भगवती जी सहाय ॥ ॥ चौपाई ॥ दिति के पुत्र दैत्यों का

पुन्न अतुल बलि। अरि अनेक जीते जिन जल थल। काल पुरख की आज्ञा पाई। रवि अवतार धर्यो हरिराई ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ जे जे होत असुर बलवाना। रवि मारत तिन को बिधि नाना। अंधकार धरनी ते हरे। प्रजा काज ग्रिह के उठि परे ॥ २ ॥ ॥ नराज छंद ॥ बिसार आलसं सभै प्रभात लोग जागहीं। अनंत जाप को जपै बिअंत ध्यान पागहीं। दुरंत करम को करै अथाप थाप थापहीं। गाइत्री संधियान कै अजाप जाप जापहीं ॥ ३ ॥ सु देव करम आदि लै प्रभात जाग कै करै। सु जग्ग धूप दीप होम बेद ब्याकरनु चरै। सु पित्र करम हैं जिते सो ब्रितब्रित को करै। सु शास्त्र सिम्रिति उचरंत सु धरम ध्यान को धरै ॥४॥ ॥ अरध निराज छंद ॥ सु धूंम धूंम धूंम ही। करंत सैन भूंम ही। बिअंत ध्यान ध्यावहीं। दुरंत ठउर पावहीं ॥ ५ ॥ अनंत मंत्र उचरै। सु जोग जापना करें। न्रिबान पुरख ध्यावहीं। बिमान अंति

अतुल बल बहुत ही बढ गया और उन्होने जल-स्थल पर अनेको शत्रुओ को पददलित कर डाला। कालपुरुष की आज्ञा पाकर विष्णु ने सूर्य-अवतार धारण किया ॥१॥ ॥ चौपाई ॥ जहाँ-जहाँ असुरगण बलशाली होते थे, विभिन्न प्रकार से सूर्य उन्हे मार डालते थे। धरती पर से सूर्य अंधकार का नाश करते थे और प्रजा को सुख देने के लिए घर से निकलकर इधर-उधर घूमा करते थे ॥ २ ॥ ॥ नराज छद ॥ (सूर्य को देखकर) सब लोग आलस्य का त्याग कर प्रातःकाल जागते थे और सर्वव्यापी ईश्वर का ध्यान करते हुए अनेको प्रकार से जाप करते थे। दुष्कर कर्मो को करते हुए उस कभी भी स्थापित न हो सकनेवाले परमात्मा को मन मे स्थापित करते थे और गायत्री-सध्या आदि के जाप करते थे ॥ ३ ॥ सभी लोग प्रभात-बेला मे जाप कर देवकर्मो को करते थे और धूप-दीप तथा हवन, यज्ञ आदि के साथ वेद-व्याकरण आदि का विचार करते थे। पितृ-कर्म आदि को अपनी सामर्थ्य आदि के अनुसार करते थे और शास्त्र-स्मृति आदि का उच्चारण करते हुए धर्म-कार्य पर ध्यान लगाते थे ॥ ४ ॥ ॥ अर्ध निराज छंद ॥ चारो ओर यज्ञो का धुआँ ही धुआँ दिखाई देता था और सभी लोग भूमि पर शयन करते थे। अनेको प्रकार से लोग ध्यान-पूजा करते हुए अगम्य स्थानो (लोको) की प्रगति करते थे ॥ ५ ॥ अनेको प्रकार के मंत्रो का उच्चारण करते हुए लोग योगो की साधना एव जाप करते थे। उस निर्वाण परमपुरुष का ध्यान करते थे और अन्त मे स्वर्ग-

पावहीं ॥ ६ ॥ (मू०ग्रं०१८५) ॥ दोहरा ॥ बहुत काल इम बीत्यो करत धरमु अरु दान । बहुरि असुरि बढियो प्रबल दीर्घ काइ दुतमान ॥ ७ ॥ ॥ चौपई ॥ बाण प्रजंत बढत नित-प्रति तन । निस दिन घात करत दिज देवन । दीरघु काइऐ सो रिपु भयो । रवि रथ हटक चलन ते गयो ॥ ८ ॥ ॥ अड़िल ॥ हटक चलत रथु भयो भान कोप्यो तबै । अस्त्र शस्त्र लै चल्यो संग लै दल सभै । मंड्यो बिवध प्रकार तहाँ रण जाइकै । हो निरख देव अरु दैत रहे उरझाइकै ॥ ९ ॥ गह गह पाण क्रिपाण दुबहिया रण भिरे । टूक टूक हुए गिरे न पग पाछे फिरे । अंगनि सोभे घाइ प्रभा अत ही बढे । हो बस्त्र मनो छिटकाइ जनेती से चढे ॥ १० ॥ ॥ अनभव छंद ॥ अनहद बज्जे । धुण घण लज्जे । घण हण घोरं । जण बण मोरं ॥ ११ ॥ ॥ मधुर धुन छंद ॥ ढल हल ढालं । जिम गुल लालं । खड़ भड़ बीरं । तड़ सड़ तीरं ॥ १२ ॥ रण

आरोहण के लिए विमानो की प्राप्ति करते थे ॥ ६ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार धर्मदान करते हुए बहुत समय बीता और पुनः दीर्घकार्य नामक प्रबल तेजवान असुर पैदा हुआ ॥ ७ ॥ ॥ चौपाई ॥ उसका शरीर एक बाण की लम्बाई के बराबर अर्थात् लगभग एक गज रोज़ बढता था और वह रात-दिन देवताओ और द्विजो का नाश करता था । दीर्घराय जैसे शत्रु के पैदा हो जाने पर सूर्य का रथ भी चलने से हिचकिचाने लगा ॥ ८ ॥ ॥ अड़िल ॥ जब रथ चलना बन्द हो गया तो सूर्य अत्यन्त क्रोधित होकर अस्त्र-शस्त्र और अपने दल को साथ लेकर चल पड़े । उन्होने विविध प्रकार से युद्ध प्रारम्भ कर दिए, जिसे देख देवता और दैत्य दोनों ही उलझन मे पड़ गए ॥ ९ ॥ हाथो मे कृपाणें लेकर दोनो ओर के लोग रणस्थल मे एक-दूसरे से भिड पडे । वे खण्ड-खण्ड होकर गिरने लगे, परन्तु फिर भी पैर पीछे नही हटाते थे । उनके अंगो पर घाव लगने से उनकी शोभा और भी बढने लगी और वे ऐसे लगने लगे, मानो बराती अपने वस्त्रो का प्रदर्शन करते हुए चल रहे हो ॥ १० ॥ ॥ अनभव छद ॥ नगाडो की ध्वनि सुनकर बादल भी लजा रहे है । चारो ओर से बादलों के समान सेना उमड रही है और ऐसा लग रहा है जैसे वन में मोरो का विशाल समूह इकट्ठा हो गया हो ॥ ११ ॥ ॥ मधुर धुन छद ॥ ढालों की चमक ऐसे दिखाई पड़ रही है मानो लाल गुलाब हो । वीरो की खड़बड़ाहट और तीरों की सड़सड़, तड़तड़ ध्वनि सुनाई दे रही है ॥ १२ ॥ रण मे इस

झुण बाजे। जण घण गाजे। ढंमक ढोलं। खड़ रड़ खोलं ॥ १३ ॥ थर हर कंपै। हरि हरि जंपै। रण रंग रत्ते। जण गण मत्ते ॥ १४ ॥ थरकत सूरं। निरखत हूरं। सरबर छुट्टे। कट भट लुट्टे ॥ १५ ॥ चमकत बाणं। फरह निशाणं। चट पट जूटे। अर उर फूटे ॥ १६ ॥ नर बर गज्जे। सर बर सज्जे। सिलह सँजोयं। सुरपुर पोयं ॥ १७ ॥ सरबर छूटे। अर उर फूटे। चट पट चरमं। फट फुट बरमं ॥ १८ ॥ ॥ नराज छंद ॥ दिनेश बाण पाण लै रिपेश ताक धाइयं। अनंत जुद्ध क्रुद्ध सुद्ध भूम मै मचाइयं। कितेक भाज चालियं सुरेश लोग को गए। निसंत जीत जीत कै अनंत सूरमा लए ॥ १९ ॥ समट्ट सेल सामुहे सरक्क सूर झाड़हीं। दबक्क बाघ ज्यों बली हलक्क हाक मारहीं। अभंग अंग भंग ह्वै उतंग जंग भो गिरे। सुरंग सूरमा सभै निशंग

प्रकार की ध्वनि सुनाई दे रही है, मानो बादल गरज रहे हों। ढोलो की ढमढम और रिक्त पड़े तरकशो आदि की खडखडाहट सुनाई पड़ रही है ॥ १३ ॥ वीर थरथरा रहे है और युद्ध की भीषणता देखकर परमात्मा का ध्यान कर रहे है। सभी लोग युद्ध मे मस्त है और युद्ध के रग में डूबे हुए है ॥ १४ ॥ योद्धा इधर-उधर विचरण कर रहे है और अप्सराएँ उन्हे निहार रही हैं। वीरो ने सर्वस्व त्याग दिया है और कई सुभट कट कर अपने प्राणो को लुटा चुके हैं ॥ १५ ॥ बाण चमक रहे है और ध्वज फहरा रहे है। शीघ्रता से वीर एक-दूसरे के समक्ष जुट रहे है और उनकी छातियो से रक्त फूटकर बह रहा है ॥ १६ ॥ तीरो से सुशोभित नर वीर गरज रहे है। वे लौह-कवचों से सुसज्जित है और स्वर्गपुरी को प्रयाण कर रहे है ॥ १७ ॥ श्रेष्ठ बाणो के छूटते ही शत्रु का सीना फट उठता है। ढाले चटपटाकर कट रही है और कवच फाड़े जा रहे है ॥ १८ ॥ ॥ नराज छद ॥ सूर्य हाथ मे बाण लेकर दीर्घकाय शत्रु की ओर दौड़ा और क्रुद्ध होकर भूमि पर भीषण युद्ध छेड़ दिया। कितने ही लोग देवताओ की शरण मे भागकर आ गए। निशा का अंत करनेवाले सूर्य ने अनेकों शूरवीरो को जीत लिया ॥ १९ ॥ सामने होकर बरछी को सँभालते हुए शूरवीर बरछी चला रहे है और शेर की तरह दहाड़ कर बलवान शूरवीर एक-दूसरे को ललकार रहे है। दृढ अग, युद्ध में उछल-उछलकर गिर रहे हैं और सुदर शूरवीर अभय होकर एक-दूसरे के सम्मुख

जान कै अरे ॥ २० ॥ ॥ अरध नराज छंद ॥ नवं निशाण बाजियं। घटा घमंड लाजियं। तबल्ल तुंबरं बजे। सुणंत सूरमा गजे ॥ २१ ॥ सु जूझि जूझि कै परैं। सुरेश लोग बिचरैं। चड़े बिवान सोभही। अदेव देव लोभही ॥ २२ ॥ ॥ बेली बिंद्रम छंद ॥ (मू०ग्रं०१८६) डह डह सु डामर डंकणी। कह कह सु कूकत जोगणी। झम झमक सांग झमक्कियं। रण गाज बाज उथक्कियं ॥ २३ ॥ ढम ढमक ढोल ढमक्कियं। झल झलक तेग झलक्कियं। जट छोर रुद्र तह नच्चियं। बिक्रार मार जह मच्चियं ॥ २४ ॥ ॥ तोटक छंद ॥ उथके रण बीरण बाज बरं। झमको घण बिज्जु क्रिपाण करं। लहके रण धीरण बाण उरं। रंग स्त्रोणत रत्त कढे दुसरं ॥ २५ ॥ फहरंत धुजा थहरंत भटं। निरखंत लजी छबि स्याम घटं। चमकंत सु बाण क्रिपाण रणं। जिम कउंधित सावण बिज्जु घणं ॥ २६ ॥ ॥ दोहरा ॥ कथा बिध

अड़ रहे हैं ॥ २० ॥ ॥ अर्ध नराज छंद ॥ नगाड़ो के वजने की आवाज से घटाएँ भी लजायमान हो रही है। बँधे हुए नगाड़े वज उठे है और उनकी ध्वनि सुनकर शूरवीर गरज रहे है ॥ २१ ॥ जूझ-जूझकर लड़ाई करते हुए देवगण और देवो के राजा विचरण कर रहे है। वे विमानो पर चढकर घूम रहे है और देव-अदेव सबका हृदय उन्हे देखकर ललचा रहा है ॥ २२ ॥ ॥ बेली विंद्रम छंद ॥ डाकिनियो के डमरू की ध्वनि, योगिनियो का चीत्कार सुनाई पड़ रहा है। वरछे झम-झमाझम चमक रहे हैं और रणस्थल में हाथी-घोड़े उछल रहे है ॥ २३ ॥ ढोल की ढमा-ढम सुनाई पड रही है और कृपाणो की चमक झलक रही है। रुद्र भी वहाँ जटाओं को खुला छोडकर नृत्य कर रहे है और विकराल युद्ध वहाँ छिड़ा हुआ है ॥ २४ ॥ ॥ तोटक छद ॥ युद्ध मे वीरो के सुन्दर अश्व उछल पड़े है और जिस प्रकार बादल मे बिजली चमकती है, वीरो के हाथों में कृपाणे चमक उठी है। रणधीरो के वक्षो मे बाण घुसे हुए दिखाई दे रहे हैं और एक-दूसरे का रक्त निकाल रहे है ॥ २५ ॥ ध्वजाएँ फहरा रही है और शूरवीर भयभीत हो उठे है। वाणो और कृपाणो की चमक को देखकर काली घटाओ मे विजली भी लजायमान हो उठी है। अथवा यह दृश्य ऐसा लग रहा है, मानो सावन की घनघोर घटा में विजली कौंध रही हो ॥ २६ ॥ ॥ दोहा ॥ कथा के लबा हो जाने के भय के कारण मैं

ते मै डरो कहाँ करो बख्यान । निसाहंत असुरेश सो सर ते भयो निदान ।। २७ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके सूरज अवतार अशटदसमो अवतार समापत ।। १८ ।।

अथ चंद्र अवतार कथनं ।।

।। स्री भगउती जी सहाइ ।। ।। दोधक छंद ।। फेरि गनो निसराज बिचारा । जैस धर्यो अवतार मुरारा । बात पुरातन भाख सुनाऊँ । जा ते कबकुल सरब रिझाऊँ ।। १ ।। ।। दोधक ।। नैक क्रिसां कहु ठउर न होई । भूखन लोग मर सभ कोई । अंधि निसा दिन भानु जरावै । ताते क्रिस कहूँ होम न पावै ।। २ ।। लोग सभै इह ते अकुलाने । भाजि चले जिम पात पुराने । भाँत ही भाँत करे हरि सेवा । ताॅ ते प्रसंन भए गुरदेवा ।। ३ ।। नारि न सेव करैं निज नाथं । लीने ही रोसु फिरैं तिय साथं । कामनि कामु कहूँ न संतावै । काम बिना कोऊ कामु न भावै ।। ४ ।। ।। तोमर छंद ।। पूजे

कहाँ तक वर्णन करूँ कि अन्त मे सूर्य का बाण ही उस दैत्य के अन्त का कारण बना ।। २७ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक मे सूर्य-अवतार अठारहवे की समाप्ति ।। १८ ।।

चन्द्र-अवतार-कथन प्रारम्भ ।।

।। श्री भगवती जी सहाय ।। ।। दोधक छद ।। अब मै चन्द्रमा का विचार करता हूँ कि किस प्रकार विष्णु ने (चन्द्र) अवतार धारण किया । मैं बहुत ही प्राचीन कथा कह रहा हूँ, जिसे सुनकर सभी कविगण प्रसन्न हो उठेगे ।। १ ।। ।। दोधक ।। कही पर भी तनिक सी भी कृषि नही होती थी और लोग भूखे मर रहे थे । राते अधकारपूर्ण थी और दिन में सूर्य जलाता था, इसी कारण से कही पर भी कुछ भी उत्पन्न नही हो पाता था ।। २ ।। इस कारण सब जीव आकुल थे और इसी प्रकार नष्ट हो रहे थे जैसे पुराने पत्ते नष्ट हो जाते है । सबने विभिन्न प्रकार से पूजा, अर्चना, सेवा की जिससे परम गुरुदेव (अकालपुरुष) प्रसन्न हो उठे ।। ३ ।। (उस समय स्थिति यह थी कि) स्त्री अपने पति की सेवा नही करती थी और सदैव उससे अप्रसन्न ही विचरण करती थी । स्त्रियो को कभी काम नही सताता था और काम-वासना के अभाव में सृष्टि की प्रगति के सारे

न को त्रिया नाथ। ऐंठी फिरै जिय साथ। दुखु वै न तिन कहु काम। ता ते न बिनवत बाम॥ ५॥ करहै न पति की सेव। पूजै न गुर गुरदेव। धरहैं न हरि को ध्यान। करिहैं न नित इशनान॥ ६॥ तब कालपुरख बुलाइ। बिशनै कह्यो समझाइ। ससि को धरहु अवतार। नही आन बात बिचार॥ ७॥ तब बिशन सीस निवाइ। करि जोरि कही बनाइ। धरिहों दिनांतवतार। जित होइ जगत कुमार॥८॥ तब महाँ तेज मुरार। धरियो सु चंद्र अवतार। तन कै मदन को बान। मार्‍यो त्रियन कह तान॥ ९॥ ता ते भई त्रिय (मू०ग्रं०१८७) दीन। सभ गरब हुइ गयो छीन। लागी करन पति सेव। याते प्रसंनि भए देव॥१०॥ बहु क्रिसा लागी होन। लख चंद्रमा की जोन। सभ भए सिध बिचार। इम भयो चंद्र अवतार॥ ११॥ ॥ चौपई॥ इम हरि धरा चंद्र अवतारा। बढ्यो गरब लहि रूप अपारा। आन किसू

कार्य ठप्प पड़ गए थे॥ ४॥ ॥ तोमर छद॥ कोई स्त्री पति की पूजा नही करती थी अपितु अपनी ही अकड मे रहती थी। न कोई उनको दु ख था और न ही वे काम-वासना से पीड़ित थी, इसलिए उनमे विनय की भावना का भी अभाव हो गया था॥ ५॥ न तो वे पति की सेवा करती थी और न ही गुरुजनो की पूजा-अर्चना करती थी। न तो वे परमात्मा का ध्यान करती थी और न ही नित्यप्रति स्नान आदि करती थी॥ ६॥ तब कालपुरुष ने विष्णु को बुलाकर उसे समझाकर कहा कि तुम विना किसी अन्य वात का विचार किये हुए चन्द्रमा का अवतार धारण करो॥ ७॥ तब विष्णु ने सिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर कहा कि मैं चन्द्रावतार धारण करता हूँ, ताकि जगत् मे सौंदर्य की वृद्धि हो सके॥ ८॥ तव महातेजस्वी विष्णु ने चद्रावतार धारण किया और कामदेव के बाणो को खीच-खीचकर उसने स्त्रियों की ओर चलाया॥ ९॥ इससे स्त्रियाँ विनम्र हो गयी और उनका सारा गर्व क्षीण हो गया। वे पुनः पति-सेवा करने लगी जिससे सभी देवगण भी प्रसन्न हो उठे॥ १०॥ चन्द्र को देखकर कृषि-कार्य प्रभूत मात्रा मे होने लगा। इस प्रकार सभी विचाराधीन कार्य सिद्ध होने लगे और इस प्रकार चन्द्रावतार का प्रादुर्भाव हुआ॥ ११॥ ॥ चौपाई॥ इस प्रकार विष्णु ने चन्द्रावतार धारण किया, परन्तु चन्द्रमा भी अपने स्वरूप की सुन्दरता पर गर्व करने लग गया। उसने भी अन्य किसी का ध्यान करना बद कर दिया, इसी कारण

कहु चित न लिआयो। ता ते ताहि कलंक लगायो ॥ १२ ॥ भजत भयो अंबर की दारा। ता ते किय मुन रोस अपारा। किसनारजुन म्रिग चरम चलायो। तिह करि ताहि कलंक लगायो ॥ १३ ॥ स्राप लग्यो ताँको मुन सदा। घटत बढत ता दिन ते चंदा। लजित अधिक हिरदे मो भयो। गरब अखर्ब दूर हुइ गयो ॥ १४ ॥ तपसा करी बहुरु तिह काला। कालपुरख पुन भयो दिआला। छई रोग तिह सकल बिनासा। भयो सूर ते ऊच निवासा ॥ १५ ॥

॥ इति चंद्र अवतार उनीसवो ॥ १९ ॥ सुभम सतु ॥

१ ओं अथ बीसवाँ राम अवतार कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अथ मैं कहो राम अवतारा। जैस जगत मो करा पसारा। बहुतु काल बीतत भ्यो जबै। असुरन बंस प्रगट भ्यो तबै ॥ १ ॥ असुर लगे बहु करै बिखाधा। किनहूँ

उस पर भी कलक लग गया ॥ १२ ॥ वह गौतम ऋषि की स्त्री में अनुरक्त हो गया जिससे ऋषि मन मे अत्यन्त क्रोधित हुआ। ऋषि ने मृगचर्म से इस पर प्रहार किया जिससे इसके शरीर पर दाग पड गया और इसको कलक लग गया ॥ १३ ॥ मुनि का श्राप इसे लगा जिससे यह नित्य घटता-बढता रहता है। इस सारे घटनाक्रम से यह अत्यन्त लज्जित हुआ और इसका अत्यधिक गर्व चूर हो गया ॥ १४ ॥ पुनः इसने लम्बी अवधि तक तपस्या की, जिससे कालपुरुष पुनः इस पर दयालु हो उठे। चन्द्रमा के क्षयरोग का नाश हो गया और (परमपुरुष) काल-पुरुष की कृपा से इसे सूर्य से भी ऊँचा स्थान प्राप्त हो गया। (योगी लोग मानते है कि शरीर मे अवस्थित गगनमडल मे चन्द्र का स्थान सूर्य से ऊपर है और चन्द्र से हमेशा अमृत झरता रहता है जो सूर्य पर पड़ते ही सूख जाता है। अतः योगी खेचरी मुद्रा के माध्यम से इस अमृत पान का प्रयत्न करते है।) ॥ १५ ॥

॥ इति चन्द्र-अवतार उन्नीसवाँ समाप्त ॥ १९ ॥ शुभ सत्य ॥

बीसवाँ राम-अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ चौपाई ॥ अब मैं रामावतार कहता हूँ और वर्णन करता हूँ कि जगत मे (इस अवतार ने) कैसी लीला दिखाई। बहुत समय बीतने पर असुरो के वश मे पुनः वृद्धि होने लगी ॥ १ ॥ असुर बहुत उत्पात

न तिनै तनक मै साधा। सकल देव इकठे तब भए। छीर समुंद्र महि थो तिह गए॥ २॥ बहु चिर बसत भए तिह ठामा। बिशन सहित ब्रहमा जिह नामा। बार बार ही दुखत पुकारत। कान परी कल के धुनि आरत॥ ३॥ ॥ तोटक छद॥ बिशनादक देव लगे बिमनं। म्रिद हास करी कर काल धुनं। अवतार धरो रघुनाथ हरं। चिर राज करो सुख सो अवध॥ ४॥ बिशनेश धुण सुण ब्रहम मुखं। अब सुद्ध चली रघुबंस कथं। जु पै छोर कथा कवि याह रढै। इन बातन को इक ग्रंथ बढै॥ ५॥ तिह ते कही थोरिऐ बीन कथा। बलि त्वै उपजी बुध मद्धि जथा। जह भूलि भई हम ते लहियो। सु कबो तह अच्छ्र बना (मू०ग्रं०१८८) कहियो॥ ६॥ रघुराज भयो रघुबंस मणं। जिह राज कर्यो पुर अउध घणं। सोऊ काल जिण्यो न्रिपराज जबं। भुअ राज कर्यो अज राज तबं॥ ७॥ अज राज हण्यो जब काल बली। सु न्रिपत कथा दसरथ चली। चिर राज करो

करने लगे और कोई भी उन्हे सीधा न कर सका। तब सभी देवता एकत्र हुए और क्षीरसागर मे गए॥ २॥ वहाँ विष्णु और ब्रह्मा-समेत वे बहुत समय तक रहे। बार-बार वे दुःखी होकर पुकारने लगे और उनकी यह आकुलता पूर्ण कालपुरुष के कानो मे जा पड़ी॥ ३॥ ॥ तोटक छद॥ विष्णु आदि देवताओ को जब विमानो मे वहाँ देखा तो कालपुरुष ध्वनि करते हुए मुस्कुराने लगे। (कालपुरुष ने विष्णु को कहा कि) हे विष्णु! तुम रघुनाथ (राम) का अवतार धारण करो और अवध मे एक लबी अवधि तक राज करो॥ ४॥ परब्रह्म के मुख से विष्णु ने आज्ञा सुनी (और शिरोधार्य की)। अब रघुवश की कथा प्रारम्भ होती है। यदि कवि पूरी कथा कहने लगे तो इस कथा की सम्पूर्ण बातो से एक अन्य ग्रथ भर जाएगा॥ ५॥ इसलिए मैं महत्त्वपूर्ण कथा को, हे परमात्मा! तुम्हारी दी हुई बुद्धि के बल से सक्षेप मे कहता हूँ। जो भूल हमसे हो जाय, उसके लिए मैं उत्तरदायी हूँ, इसलिए, हे प्रभु! अच्छी भाषा के माध्यम से वह काव्य कहने की कृपा करना॥ ६॥ राजा रघु रघुवश की माला मे मणि के समान शोभायमान थे। उन्होने अवध नगरी में बहुत समय तक राज किया। जब काल के प्रभाव से राजा रघु का अन्त हुआ तो राजा अज ने भूमडल पर राज किया॥ ७॥ जब राजा अज भी बलशाली कालपुरुष के चक्र के कारण नष्ट हुए तो रघुवश की

सुख सो अवधं । म्रिग मार बिहार बणं सु प्रभं ।। ८ ।। जग धरम कथा प्रचुरी तब ते । सु मित्रेश महीप भयो जब ते । दिन रैण बनेसन बीच फिरै । म्रिगराज करी म्रिग नेत हरै ।। ९ ।। इह भाँति कथा उह ठौर भई । अब राम जया पर बात गई । कुहड़ाम महाँ सुनिऐ शहरं । तह कौसलराज न्रिपेश बरं ।। १० ।। उपजी तह धाम सुता कुशलं । जिह जीत लई सस अंग कलं । जब ही सुध पाइ सुयब्र कर्यो । अवधेश नरेशह चीन्ह बर्यो ।। ११ ।। पुनि सैन समित्र नरेश बरं । ज़िह जुध लयो मद्र देस हरं । सुमित्रा तिह धाम भई दुहिता । जिह जीत लई सस सूर प्रभा ।। १२ ।। सोऊ बारि सबुद्ध भई जब ही । अवधेशह चीन बर्यो तब ही । गन याह भयो कशटुआर न्रिपं । जिह केकई धाम सु तासु प्रभं ।। १३ ।। इन ते ग्रह मो सुत जउन थिओ । तब बैठ नरेश बिचार किओ । तब केकई नार बिचार करी । बिह

कथा राजा दशरथ के कधो पर आगे बढी । उसने भी सुखपूर्वक अवध मे राज किया और मृगया करते हुए वनो मे सुखपूर्वक विचरण किया ।।८।। जब से सुमित्रा के पति दशरथ राजा बने, तब से यज्ञधर्म आदि का और अधिक प्रसार-प्रचार हो गया । राजा रात-दिन वनो मे भ्रमण करता था और शेर, हाथी तथा मृगो का शिकार किया करता था ।। ९ ।। इस प्रकार यह कथा वहाँ (अवध मे) चलती रही और अब राम की जननी की बात हमारे समक्ष आती है । कुहड़ाम नामक नगर मे एक वीर राजा था जिसे कौशलराज कहते थे ।। १० ।। उसके घर मे चन्द्रमा की कलाओं की सुन्दरता को भी जीत लेनेवाली अत्यन्त रूपवती कन्या कौशल्या पैदा हुई । जब वह बडी हुई तो उसने स्वयवर के माध्यम से स्वयं चुनकर अवधनरेश (दशरथ) का वरण कर लिया ।। ११ ।। मद्र देश को जीतने वाला बलवान और प्रतापी राजा सौमित्र था और उसके घर पर सुमित्रा नामक कन्या थी । वह कन्या इतनी रूपवती और तेजवान थी मानो उसने सूर्य और चन्द्रमा की कलाओ को जीत लिया हो ।। १२ ।। जब उसका बचपन बीता और उसने यौवनकाल मे प्रवेश किया तब उसने भी अवधनरेश (दशरथ) से विवाह कर लिया । इसी प्रकार केकय प्रदेश के राजा के साथ हुआ, जिसके घर मे कैकेयी नामक प्रभायुक्त कन्या थी; अर्थात् राजा दशरथ का विवाह कैकेयी के साथ हो गया ।। १३ ।। (कैकेयी के पिता ने यह जानते हुए कि पहले ही राजा की दो रानियाँ हैं) कैकेयी के साथ विचार-विमर्श किया कि जो पुत्र कैकेयी से पैदा होगा,

ते सस सूरज सोभ धरी ॥ १४ ॥ तिह ब्याहत माँग लए दुवरं । जिह ते अवधेश के प्राण हरं । समझी न नरेशर बात हिए । तब ही तह को बर दोइ दिए ॥ १५ ॥ पुन देव अदेवन जुद्ध परो । जह जुद्ध घणो न्रिप आप करो । हत सारथी स्यंदन नार हक्यो । यह कौतक देख नरेश चक्यो ॥१६॥ पुन रीझ दए दोऊ तीअ बरं । चित मो सु बिचार कछू न करं । कही नाटक मद्ध चरित्र कथा । जय दीन सुरेश नरेश जथा ॥ १७ ॥ अरि जीति अनेक अनेक बिधं । सभ काज नरेश्वर कीन सिधं । दिन रैण बिहारत मद्धि बणं । जल नैन दिजाइ तहां स्रवणं ॥ १८ ॥ पित मात तजे दोऊ अंध भुयं । गहि पात्र चल्यो जलु लैन सुयं । मुनि नो दित काल सिधार तहाँ । न्रिप बैठ पतउवन बाँध तहाँ ॥ १९ ॥ भभकंत घटं (मू०ग्रं०१८६) अति नादि हुअं । धुनि कान परी अज राजसुअं । गहि पाण सु बाणहि तान धनं । म्रिग जाण दिजं सर सुद्ध

उसका भविष्य क्या होगा । कैकेयी सूर्य-चन्द्र के समान अत्यन्त रूपवती थी ॥ १४ ॥ विवाह करते ही उसने राजा से दो वर माँग लिये और (बाद मे) इन्ही वरदानों के कारण राजा का प्राणान्त हुआ । उस समय राजा इस बात के रहस्य को न समझ सका और उसने दोनो वरदान रानी को दे दिए ॥ १५ ॥ फिर एक बार देव-दानवो का युद्ध हुआ और उसमें राजा ने (देवो की ओर से) भीषण युद्ध किया । उस युद्ध मे राजा का सारथी मारा गया तो कैकेयी ने रथ का सचालन किया । यह देखकर राजा आश्चर्यचकित रह गया ॥ १६ ॥ राजा ने फिर प्रसन्न होकर रानी को दो वरदान दिए । राजा ने किसी भी आशका का चित्त मे विचार नही किया । राजा ने किस प्रकार देवराज इन्द्र की जीत होने मे सहयोग दिया, इस कथा को नाटक मे बतला दिया गया है ॥ १७ ॥ अनेकों प्रकार से शत्रुओ को जीतकर राजा ने अपनी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण की । दिन-रात राजा वनो मे (क्रीडाएँ करते हुए) विचरण करता था । वही एक बार श्रवणकुमार नामक द्विज पानी लेने के लिए घूम रहा था ॥ १८ ॥ अधे माता-पिता को धरती पर बैठा छोड़कर वह पुत्र घड़ा हाथ मे लेकर पानी के लिए निकला था । उस ब्राह्मण मुनि को कालचक्र ने उस ओर भेज दिया, जहाँ राजा अपना खेमा लगाकर (विश्राम करने) रुका था ॥ १९ ॥ घडे को पानी से भरने पर घड़घड़ की आवाज़ हुई और यह ध्वनि राजा ने सुनी । राजा ने बाण को धनुष पर चढ़ाकर

हनं ॥ २० ॥ गिर ग्यो सु लगे सर सुद्ध मुनं । निसरी मुख ते हहकार धुनं । म्रिगनांत कहा न्रिप जाइ लहै । दिज देख दोऊ कर दाँत गहै ॥ २१ ॥ ॥ सरवण बाचि ॥ कछु प्रान रहे तिह मद्ध तनं । निकरंत कहा जिय बिप्प न्रिपं । मुर तातरुमात न्रिचच्छ परे । तिह पान पिआइ न्रिपाध मरे ॥ २२ ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ बिन चच्छ भूप दोऊ तात मात । तिन देह पान तुह कहौ बात । मम कथा न तिन कहियो प्रबीन । सुनि मर्‌यो पुत्र तेउ होहि छीन ॥ २३ ॥ इह भाँत जबै दिज कहै बैन । जल सुनत भूप चुइ चले नैन । ध्रिग मोह जिनसु कीनो कुकरम । हति भयो राज अरु गयो धरम ॥ २४ ॥ जब लयो भूप तिह सर निकार । तब तजे प्राण मुन बर उदार । पुन भयो राव मन मै उदास । ग्रिह पलट जान की तजी आस ॥ २५ ॥ जिय ठटी की धारो जोग भेस । कहूँ बसौ जाइ बनि त्यागि देस । किह काज मोर यह राज साज ।

खींचा और उस ब्राह्मण को मृग समझकर उस पर बाण चला दिया और उसे मार दिया ॥ २० ॥ बाण लगते ही वह तपस्वी गिर पड़ा और उसके मुँह से हाहाकार की ध्वनि निकली । मृग कहाँ मरा है, यह देखने के लिए राजा उस ओर चला परन्तु ब्राह्मण को देखकर दाँतो-तले उँगली दबा बैठा ॥ २१ ॥ ॥ श्रवण उवाच ॥ श्रवण के शरीर मे अभी कुछ प्राण बाकी थे । निकलते हुए प्राणो के साथ द्विज ने राजा से कहा कि मेरे माता-पिता अधे हैं और उस ओर पड़े हुए हैं । तुम उन्हे पानी पिला दो, ताकि मैं सशय-रहित होकर मर सकूँ ॥ २२ ॥ ॥ पाधड़ी छद ॥ हे राजा ! मेरे माता-पिता दोनो चक्षुविहीन हैं । तुम मेरी बात सुनो और उन्हे पानी दे दो । मेरी कहानी उनसे मत कहना, अन्यथा वे तड़प-तड़प कर क्षीण होकर मर जायँगे ॥ २३ ॥ जब इस प्रकार ब्राह्मण श्रवणकुमार ने ये बाते कही और राजा ने पानी की बात सुनी तो उसकी आँखों से आँसू बहने लगे । राजा कहने लगा कि मुझे धिक्कार है, जिसने यह कुकर्म किया है । इससे मेरा राजधर्म नष्ट हो गया है और मैं धर्महीन हो गया हूँ ॥ २४ ॥ जब राजा ने श्रवण को सरोवर मे से निकाल लिया, तब उस तपस्वी श्रवण ने प्राण त्याग दिए । पुन राजा उदास हो गया और उसने वापस अपने घर पहुँचने की आशा त्याग दी ॥ २५ ॥ उसके मन मे आया कि अब मैं योगी का वेश धारण कर लूँ और राजपाट त्याग कर वन मे जा बसूँ । मेरे इस राजसाज का क्या अर्थ है, जिसने ब्राह्मण

दिज मारि कियो जिन अस कुकाज ।।२६।। इह भाँत कही पुनि न्रिप प्रबीन । सभ जगति काल कर मै अधीन । अब करो कछू ऐसो उपाइ । जा ते सु बचै तिह तात माइ ।। २७ ।। डरि लयो कुंभ सिर पै उठाइ । तह गयो जहाँ दिज तात माइ । जब गयो निकट तिन के सु धार । तब लखी दुहूँ तिह पाव चार ।। २८ ।। ।। दिज बाच राजा सों ।। कह कहो पुत्र लागी अवार । सुनि रह्यो मोन भूपत उदार । फिरि कह्यो काहि बोलत न पूत । चुप रहे राज लहिकै कसूत ।। २९ ।। न्रिप दियो पान तिह पान जाइ । चकि रहे अंध तिह कर छुहाइ । कर कोप कह्यो तू आहि कोइ । इम सुनत शब्द न्रिप दयो रोइ ।। ३० ।। ।। राजा बाच दिज सों ।। हउ पुत्र घात तव ब्रहमणेश । जिह हन्यो स्रबण तव सुत सुदेश । मै पर्‌यो सरण दसरथ राइ । चाहो सु करो मोहि बिप्प आइ ।। ३१ ।। राखै तु राख मारै तु मार । मै परो शरण तुमरै दुआर । तब कही किनो दसरथ राइ । बहु काष्ट अगन (मू०ग्रं०१६०) द्वै देइ

को मारकर आज यह कुकर्म किया है ।। २६ ।। इस प्रकार राजा ने पुनः कहा कि मैंने सारे ससार के घटना-चक्र को अपने वश मे कर लिया है (परन्तु यह मुझसे क्या हो गया) । अब मुझे कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे इसके माता-पिता जीवित बचे रह सकें ।। २७ ।। राजा ने पानी का घडा भरकर सिर पर उठा लिया और वहाँ पहुँचा जहाँ श्रवण के माता-पिता थे । जब राजा दबे पाँव उनके निकट पहुँचा तो उन दोनों ने (किसी के आने की) पदचाप सुनी ।। २८ ।। ।। द्विज उवाच राजा के प्रति ।। हे पुत्र ! कहो इतनी देर क्यो लग गई ? यह सुनकर विशाल हृदय राजा चुप ही रहा । फिर उन्होने कहा, पुत्र ! तुम बोलते क्यो नही हो । राजा फिर भी अनिष्ट की आशका से चुप ही रहा ।। २९ ।। राजा ने पास जाकर उनके हाथ मे पानी दिया तो राजा के हाथ को छूते ही वे नेत्रहीन चकित हो उठे और क्रोधित होकर पूछने लगे कि बता तू कौन है ? यह शब्द सुनते ही राजा रो उठा ।। ३० ।। ।। राजा उवाच द्विज के प्रति ।। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मै तुम्हारे पुत्र का घातक हूँ । मैंने ही तुम्हारे पुत्र को मार डाला है । मैं दशरथ आपकी शरण मे हूँ । हे ब्राह्मण ! आप जैसा चाहे मुझसे व्यवहार करे ।। ३१ ।। आप चाहे तो मेरी रक्षा करे अन्यथा मुझे मार दे; मैं आपकी शरण मे हूँ, आपके समक्ष पड़ा हूँ । तब राजा दशरथ ने उनके कहने पर अपने किसी अनुचर से

मँगाइ ।। ३२ ।। तब लियो अधिक काशट मँगाइ । चढ़ बैठे तहाँ सलह कँउ बनाइ । चहूँ ओर दई ज्वाला जगाइ । दिज जान गई पावक सिराइ ।।३३।। तब जोग अगनि तन ते उप्राज । दुहूँ मरन जरन को सज्यो साज । ते भसम भए तिह बीच आप । तिह कोप दुहूँ न्रिप दियो स्राप ।। ३४ ।। ।। दिज बाच राजा सों ।। जिम तजे प्राण हम सुति बिछोह । तिम लगो स्राप सुन भूप तोह । इम भाख जर्यो दिज सहित नारि । तज देह कियो सुरपुर बिहार ।। ३५ ।। ।। राजा बाच ।। तब चही भूप हउँ जरों आज । कै अतिथ होउँ तज राज साज । कै ग्रहि जै कै करहों उचार । मै दिज आयो निज कर सँघार ।। ३६ ।। ।। देवबानी बाच ।। जब भई देवबानी बनाइ । जिम करो दुक्ख दसरथ राइ । तब धाम होहिगे पुत्र बिशन । सभ काज आज सिध भए जिसन ।। ३७ ।। ह्वैहै सु नाम रामावतार । कर है सु सकल जग को उधार । कर है सु तनक मै दुष्ट नास । इह भाँत कीर्ति करहै प्रकास ।। ३८ ।। ।। नराज छंद ।। नचिंत भूप चित धाम राम

कहा कि बहुत सी लकड़ी जलाने के लिए मँगाई जाय ।। ३२ ।। बहुत सी लकडी मँगाई गई, तब वे चिता बनवाकर उस पर जा बैठे और चारो ओर अग्नि प्रज्वलित कर दी गई तथा इस प्रकार अग्नि के कारण द्विजो का प्राणान्त हुआ ।। ३३ ।। तब उन्होने अपने शरीर से योगाग्नि पैदा की और भस्मीभूत होने को उद्यत हुए । वे दोनो स्वय भस्म हो गए और (अन्तिम समय) क्रोधित होकर उन्होने राजा को श्राप दिया ।। ३४ ।। ।। द्विज उवाच राजा के प्रति ।। जिस प्रकार पुत्र-वियोग में हम प्राण त्याग रहे हैं, हे राजा ! यही अवस्था तुम्हारी भी होगी । यह कहकर द्विज अपनी पत्नी-सहित जल गया और स्वर्ग सिधार गया ।। ३५ ।। ।। राजा उवाच ।। तब राजा ने इच्छा व्यक्त की कि वह भी या तो आज जल मरेगा अन्यथा राजकाज त्यागकर वन मे चला जायगा । मैं घर जाकर क्या कहूँगा कि मैं आज अपने हाथो से ब्राह्मण की हत्या करके आ रहा हूँ ।। ३६ ।। ।। देववाणी उवाच ।। तब आकाशवाणी हुई कि हे दशरथ ! शोक मत करो, तुम्हारे घर मे पुत्र के रूप मे विष्णु जन्म लेगा और उससे तुम्हारे आज के पापकर्म का नाश होगा ।। ३७ ।। वह रामावतार के नाम से प्रसिद्ध होगा और वह सारे संसार का उद्धार करेगा । वह क्षण भर मे दुष्टों का नाश कर देगा और इस प्रकार उसकी कीर्ति चारों ओर

राइ आइहैं। दुरंत दुष्ट जीत कै सु जैत पत्र पाइहैं। अखरब गरब जे भरे सु सरब गरब घाल हैं। फिराइ छत्र सीस पै छतीस छोण पाल हैं॥ ३९॥ अखंड खंड खंड कै अडंड डंड दंड हैं। अजीत जीत जीत कै बिसेख राज मंड हैं। कलंक दूर कै सभै निशंक लंक घाइ हैं। सु जीत बाह बीस गरब ईस को मिटाइ हैं॥ ४०॥ सिधार भूर धाम को इतो न शोक को धरो। बुलाइ बिप्प छोड़ के अरंभ जग्ग को करो। सुणंत बैण राव राजधानिऐ सिधारिअं। बुलाइकै बशिष्ट राजसूइ को सु धारिअं॥ ४१॥ अनेक देस देस के नरेश बोलकै लए। दिजेश बेस बेस के छितेश धाम आ गए। अनेक भाँत मान कै दिवान बोलकै लए। सु जग्ग राजसूइ को अरंभ ता दिना भए॥ ४२॥ सु पादि अरघ आसनं अनेक धूप दीप कै। पखार पाइ ब्रहमणं प्रदच्छणा बिसेख दै। करोर कोर दच्छना दिजेक एक कउ दई। सु जग्ग राजसूइ को अरंभ ता दिना (मू०ग्रं०१६१) भई॥ ४३॥ नटेश देस देस के अनेक

प्रकाशित होगी॥ ३८॥ ॥ नराज छंद॥ हे राजा! तुम चिन्ता को छोड़कर अपने घर जाओ। तुम्हारे घर पर राजा राम आयेगे। दुष्टो को जीतकर वे सबसे विजयपत्र प्राप्त करेगे। जो लोग गर्व से भरे हैं, उनका गर्व चूर करेगे। वे सिर पर छत्र फिराकर सबका पालन करेगे॥३९॥ वह महाबलशालियो का खंडन कर ऐसे लोगो को दडित करेगे, जिन्हे आज तक कोई दण्डित नही कर सका है। वे अजेय लोगो को जीतकर अपने राज्य को बढायेगे और सभी कलंको को दूर करते हुए निश्चित रूप से लंका को विजय करेगे तथा रावण को जीतकर उसका गर्व चूर करेगे॥ ४०॥ हे राजन्! तुम शोक को त्यागकर अपने घर जाओ और विप्रो को बुलाकर यज्ञ आरभ करो। यह बात सुनकर राजा राजधानी मे आ गया और वशिष्ठ मुनि को बुलाकर उसने राजसूय यज्ञ करने का निश्चित किया॥ ४१॥ अनेक देशो के राजाओ को बुलाया गया और विभिन्न वेशधारी ब्राह्मण भी राजा के पास आ गए। राजा ने अनेक प्रकार से सबका सम्मान किया और राजसूय यज्ञ आरभ हो गया॥ ४२॥ ब्राह्मणो के चरण धोकर उन्हे समुचित आसन देकर एव धूप-दीप जलाकर राजा ने विशेष रूप से ब्राह्मणो की प्रदक्षिणा की। करोड़ो मुद्राओ की दक्षिणा प्रत्येक ब्राह्मण को दी गई और इस प्रकार राजसूय यज्ञ का आरंभ हुआ॥ ४३॥ विभिन्न देशो के नट एव गायक

गीत गावही। अनंत दान मान लै बिसेख सोभ पावही। प्रसंनि लोग जे भए सु जात कउन ते कहे। बिमान आसमान के पछान मो न हुइ रहे॥ ४४॥ हुती जिती अपचछरा चली सुवर्ग छोर कै। बिसेख हाइ भाइ कै नचत अंग मोर कै। बिअंत भूप रीझही अनंत दान पावहीं। बिलोक अचछरान को अपचछरा लजावहीं॥ ४५॥ अनंत दान मान दै बुलाइ सूरमा लए। दुरंत सैन संग दै दसो दिसा पठै दए। नरेश देस देस के न्रिपेश पाइ पारिअं। महेश जीत कै सभै सु छत्रपत्र ढारिअं॥ ४६॥ ॥ रूआमल छंद॥ जीत जीत न्रिपं नरेशुर शत्र मित्र बुलाइ। बिप्र आदि बिशिष्ट ते लै कै सभै रिखराइ। क्रुद्ध जुद्ध करे घने अवगाहि गाहि सुदेश। आन आन अवधेश के पग लागिअं अवनेश॥ ४७॥ भाँति भाँतिन दै लए सनमान आन न्रिपाल। अरब खरबन दरब दै गजराज बाज बिसाल। हीर चीर न को सकै गन जटत जीन जराइ। भाउ भूखन को

गीत गाने लगे और विभिन्न प्रकार के मान-सम्मान प्राप्त कर विशिष्ट प्रकार से शोभायमान होने लगे। लोगो की प्रसन्नता का वर्णन नही किया जा सकता और आकाश में देवताओ के विमान भी इतने थे कि पहचाने नही जा रहे थे॥ ४४॥ स्वर्ग की अप्सराएँ स्वर्ग छोड़कर विशेष हाव-भाव से अपने अगो को मोड़कर नृत्य कर रही थी। अनेकों राजा प्रसन्न होकर दान दे रहे थे तथा सुन्दर रानियो को देखकर अप्सराएँ भी लज्जित हो रही थी॥ ४५॥ राजा ने अनेक शूरवीरों को अनेक प्रकार के दान और सम्मान देकर बुलाया और दुर्जेय सेना देकर उन्हे दसो दिशाओ मे भेज दिया। उन्होने देश-देशान्तरो के राजाओ को विजय कर राजा दशरथ के चरणो मे गिरा दिया और इस प्रकार सारी पृथ्वी के राजाओ को जीतकर क्षत्रपति सम्राट् दशरथ के सम्मुख ला उपस्थित किया॥४६॥ ॥ रूआमल छद॥ राजा ने अन्य नरेशो को जीतकर शत्रुओ एव मित्रो तथा वशिष्ठ आदि ऋषियों से लेकर सामान्य ब्राह्मणो तक सबको अपनी ओर मिला लिया। (जो राजा की ओर नही मिले उनसे) राजा ने क्रुद्ध होकर युद्ध मे उनका विनाश कर दिया और इस प्रकार सारी धरती के राजा अवध-नरेश के चरणो मे आ पड़े॥ ४७॥ सभी राजाओ को विभिन्न प्रकार से सम्मानित किया गया और उन्हे अरबो-खरबो मुद्राओं के बराबर द्रव्य एव हाथी-घोडे दिए गए। हीरे-वस्त्र आदि क्या मणि-जटित घोड़ो की काठियो की तो गणना ही नही की जा सकती और आभूषणो

कहै बिध ते न जात बताइ ।। ४८ ।। पशम बस्त्र पटंबरादिक दिए भूखन भूप । रूप अरूप सरूप सोभित कउन इंद्र करूपु । दुष्ट पुष्ट त्रसै सबै थरहर्यो सुनि गिरराइ । काटि काटिन दै मुझै न्रिप बॉटि बॉटि लुटाइ ।। ४९ ।। बेदधुन करि कै सभै दिज किअस जग्ग अरंभ । भॉति भाँति बुलाइ होमत रित्तजान असंभ । अधिक मुनिबर जउ कियो बिध पूरब होम बनाइ । जग कुंडहु ते उठे तब जगपुरख अकुलाइ ।। ५० ।। खीर पात्र कढाइ लै करि दीन न्रिप के आन । भूप पाइ प्रसंनि भ्यो जिमु दारदी लै दान । चत्र भाग कर्यो तिसै निज पान लै न्रिपराइ । एक एक दयो दुहू त्रिय एक को दुइ भाइ ।। ५१ ।। गरभवंत भई त्रियो त्रिय छीर को करि पान । ताहि राखत भी भलो बस दोइ मास प्रमान । मास त्रिउदसमो चढ्यो तब संतन हेत उधार । रावणारि प्रगट भए जग आन राम अवतार ।। ५२ ।। भरथ लछमन शत्रघन पुन भए तीन कुमार । भॉति भॉतिन बाजियं न्रिपराज बाजन द्वार । पाइ लाग बुलाइ बिप्पन

की महिमा का वर्णन तो ब्रह्मा भी नही कर सकते ।। ४८ ।। रेशमी वस्त्र एव पटम्बरादिक राजा ने दिए और सभी लोगो की सुन्दरता को देखकर ऐसा लगता था, मानो इन्द्र भी उनके सामने कुरूप है । सभी दुष्ट भयभीत हो गए और सुमेरु पर्वत भी भय से थरथरा उठा कि कही राजा मुझे भी काट-काटकर सबको बाँट न दे ।। ४९ ।। वेद-मत्रो का उच्चारण करते हुए सभी ब्राह्मणो ने यज्ञ प्रारभ किया और भिन्न प्रकार से बोलते हुए ऋचाओ के अनुसार होम करना आरभ किया । अनेक मुनियो ने जब विधिपूर्वक होम किया तो यज्ञकुण्ड से यज्ञ-पुरुष व्याकुल होकर प्रगट हुए ।। ५० ।। उनके हाथ मे खीर का एक पात्र था जो उसने राजा को दिया । राजा दशरथ उसे पाकर वैसे ही प्रसन्न हुए जैसे कोई दरिद्र दान पाकर प्रसन्न होता है । राजा ने अपने हाथो से उसके चार भाग किए और एक-एक भाग तो उसने दोनो रानियो को दिया तथा दो भाग एक रानी को दिए ।। ५१ ।। रानियाँ उस दूध (खीर) का पान कर गर्भवती हो गयी और बारह मास तक गर्भवती रही । तेरहवाँ महीना प्रारम्भ होते ही सतो के उद्धार के लिए रावण के शत्रु राम ने अवतार लिया ।। ५२ ।। फिर भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नामक तीन राजकुमारो ने जन्म लिया और राजा दशरथ के राजद्वार पर विभिन्न प्रकार के वाद्य बजने लगे । ब्राह्मणो की चरण-वदना कर राजा ने उन्हे अपार दान

दीन दान (मू०ग्रं०१६२) दुरंति। शत्र नासत होहिगे सुख पाइ हैं सभ संत ॥ ५३ ॥ लाल जाल प्रवेश्ट रिखबर बाज राज समाज। भाँति भाँतिन देत भ्यो दिज पतन को न्रिपराज। देस अउर बिदेस भीतरि ठउर ठउर महंत। नाच नाच उठे सभै जनु आज लाग बसंत ॥ ५४ ॥ किंकणीन के जाल भूखित बाज अउ गजराज। साज साज दए दिजेशन आज कउशल-राज। रंक राज भए घने तह रंक राजन जैस। राम जनमत भयो उतसव अउधपुर मै ऐस ॥ ५५ ॥ दुंदभ अउर म्रिदंग तूर तुरंग तान अनेक। बीन बीन बजंत छीन प्रबीन बीन बिसेख। झाँझ बार तरंग तुरही भेरनादि नियान। मोहि मोहि गिरे धरा पर सरब ब्योम बिवान ॥ ५६ ॥ जत्र तत्र बिदेस देसन होत मंगलचार। बैठ बैठ करै लगे सभ बिप्र बेद बिचार। धूप दीप महीप ग्रेह सनेह देत बनाइ। फूल फूल फिरै सभै गण देव देवन राइ ॥ ५७ ॥ आज काज भए सभै इह भाँति बोलत

दिया और सभी यह अनुभव करने लगे कि अब शत्रुओ का नाश होगा और संतो को सुख की प्राप्ति होगी ॥ ५३ ॥ हीरे-लालो के हार धारण किए हुए ऋषिवर राजसमाज मे शोभा बढा रहे है और राजा द्विजो को भाँति-भाँति के सोने-चाँदी के पत्नक भेट कर रहा है। देश-देशान्तरो के महतगण स्थान-स्थान पर प्रसन्नता व्यक्त कर रहे है और सभी लोग इस प्रकार नृत्य कर रहे है, मानो बसत के मौसम मे लोग प्रसन्न होकर नाच-गा रहे हो ॥ ५४ ॥ हाथियो और घोड़ो पर घटिकाओ के जाल शोभित हो रहे है और ऐसे अश्व तथा हाथी सजा-सजाकर राजाओ ने कौशल्यापति दशरथ को भेट किए है। राम के जन्म पर अयोध्या मे ऐसा महान् उत्सव हुआ है कि भिखारी भी दान पा-पाकर राजा हो गए है ॥ ५५ ॥ दुदुभियो, मृदगो और तुरहियो की ताने सुनाई दे रही है और बीनो तथा वीणाओ की विशिष्ट ध्वनि सुनाई पड़ रही है। झाँझ, जलतरंगे और भेरियो के नाद सुनाई पड़ रहे है और यह ध्वनियाँ इतनी आकर्षक है कि देवताओ के विमान भी आकर्षित होकर धरती पर आ गिर पड़ रहे है ॥ ५६ ॥ यत्र-तत्र-सर्वत्र देश-विदेशो मे मगलगीत गाए जा रहे है और विप्रगणो ने वेदचर्चा प्रारम्भ कर दी है। धूप और दीपो के कारण राजा के घर की ऐसी शोभा बन गई है कि सभी देव और देवराज आदि प्रसन्न होकर वही चक्कर लगा रहे है ॥ ५७ ॥ सभी यह कह रहे है कि आज हमारी सभी इच्छाएँ पूरी हो गई है। भूमि जयकार

बैन । भूँम भूर उठी जयतधुन बाज बाजत गैन । ऐन ऐन धुजा बधी सभ बाट बंदनवार । लीप लीप धरे मलयागर हाट पाट बजार ॥ ५८ ॥ साज साज तुरंग कंचन देत दीनन दान । मसत हसत दए अनेकन इंद्र दुरद समान । किंकणी के साल भूखत दए स्यंदन सुद्ध । गाइनन के पुर मनो इह भाँत आवत बुद्ध ॥ ५९ ॥ बाज साज दए इते जिह पाइऐ नही पार । द्योस द्योस बढै लग्यो रनधीर रामवतार । शस्त्र शास्त्रन की सभै बिध दीनें ताहि सुधार । अष्ट द्योसन मो गए लै सरब रामकुमार ॥ ६० ॥ बान पान कमान लै बिहरंत सरजू तीर । पीत पीत पिछोर कारन धीर चारहुँ बीर । बेख बेख न्रिपान के बिहरंत बालक संग । भाँत भाँतन के धरे तन चीर रंग तरंग ॥ ६१ ॥ ऐस बात भई इतै उह ओर बिस्वामित्र । जग्ग को सु कर्यो अरंभन तोखनारथ पित्र । होम की लै बासना उठ धात दैत दुरंत । लूट खात सभै समगरी मारकूट महंत ॥ ६२ ॥ लूट खात हविख्य जे तिन पै कछू न बसाइ ।

की ध्वनि से पूरित हो गई है और आकाश मे भी बाजे बज रहे है। सभी स्थानो पर झंडियाँ लगाई गई है और सभी रास्तो पर बंदनवार लगाए गए है तथा सभी हाट-बाजारो को चंदन से लीप दिया गया है ॥ ५८ ॥ घोडो को स्वर्ण-सज्जित कर दीनों को दिया जा रहा है और इद्र के हाथी (ऐरावत) के समान मस्त अनेक हाथियो को दान दिया जा रहा है। किंकणियो से जटित अश्व दिए गए और ऐसा लग रहा है कि मानो गायको के नगर मे स्वय ऐश्वर्य चलकर आ रहा हो ॥ ५९ ॥ इधर राजा ने घोड़े, हाथी इतने दान किए कि उनको गिना नही जा सकता और उधर दिन-प्रतिदिन राम भी बड़े होने लगे। उन्हे शस्त्र-शास्त्रो को सभी विधि-निषेध समझाए गए और थोडे ही समय (मानो आठ ही दिन) मे वे सब कुछ सीख गए ॥ ६० ॥ वे हाथ मे धनुष-बाण लेकर सरयू के तट पर विचरण करने लगे और पीली-पीली पत्तियो (और तितलियो) को चारो भाई इकट्ठा करने लगे। राजाओं के पुत्रो को साथ विचरण करते देखकर सरयू की लहरे भी अनेको रग धारण कर रही है ॥ ६१ ॥ इधर तो यह सब चल रहा था और उधर विश्वामित्र ने अपने पितरो की पूजा के लिए यज्ञ का प्रारम्भ किया। होम की सुगंधि पाकर क्रूर दैत्य उस ओर (यज्ञस्थल की ओर) आते और यज्ञकर्ता को मारपीट कर उससे यज्ञ की सामग्री छीन ले जाकर खा लेते थे ॥ ६२ ॥

ताक अउधह आइयो तब रोस कै मुनिराइ। आइ भूपत कउ कहा सुत देहु मोकउ राम। नात्र (मू०ग्रं०१९३) तोकउ भसम करि हउ आज ही इह ठाम ॥ ६३ ॥ कोप देख मुनीश कउ न्रिप पूत ता संग दीन। जग्ग मंडल कउ चल्यो लै ताहि संगि प्रबीन। एक मारग दूर है इक निअर है सुनि राम। राह मारत राछसी जिह तारका गनि नाम ॥ ६४ ॥ जउन मारग तीर है तिह राह चालहु आज। चित्त खित न कीजिऐ दिब देब के हैं काज। बाटि चापैं जात हैं तब लउ निसाचर आन। जाहुगे कत राम कहि मगि रोकियो तजि कान ॥ ६५ ॥ देख राम निसाचरी गहि लीन बाण कमान। भाल मध प्रहारियो सुर तान कान प्रमान। बान लागत ही गिरी बिसंभारु देहि बिसाल। हाथि स्त्री रघुनाथ के भ्यो पापनी को काल ॥ ६६ ॥ ऐस ताहि सँघार कै कर जग्ग मंडल मंड। आइगे तब लउ निसाचर दीह दोइ प्रचंड। भाज भाज चले सभै रिख ठाढ भे

होम-सामग्री को लुटता और उस पर कोई वश न चलता देखकर क्षुब्ध होकर मुनिराज विश्वामित्र अयोध्या नगरी मे आया। उसने आकर राजा से कहा कि मुझे अपना पुत्र राम (थोड़े दिनो के लिए) दे दो, नही तो मै तुम्हें इसी स्थान पर भस्म कर दूंगा ॥ ६३ ॥ मुनि का क्रोध देखकर राजा ने अपना पुत्र उसके साथ कर दिया और ऋषि उसे साथ लेकर पुनः यज्ञ प्रारम्भ करने के लिए चल दिया। ऋषि ने कहा कि हे राम ! सुनो, एक रास्ता दूर का है और एक पास का है, परन्तु (पासवाले) रास्ते मे एक राक्षसी रहती है जिसका नाम ताड़का है और जो राहगीरो को मार डालती है ॥ ६४ ॥ राम ने कहा जो पास का रास्ता है, आज इसी से चलिए और चिन्ता को छोडिए। ये कार्य (राक्षसों को मारना) तो दिव्य देवताओ का कार्य है। इन्होने मार्ग पर चलना शुरू कर दिया। इधर तब तक राक्षसों ने आकर यह कहते हुए कि राम ! तुम बचकर कहाँ जाओगे, रास्ता रोक लिया ॥ ६५ ॥ राम ने राक्षसी (ताड़का) को देखकर हाथ मे धनुष-बाण पकड लिया और बाण खीचकर उसके माथे पर दे मारा। बाण लगते ही उसकी भारी देह गिर पडी और इस प्रकार श्री रघुनाथ के हाथो उस पापिनी का अत हो गया ॥ ६६ ॥ इस प्रकार उस राक्षसी का सहार कर जब यज्ञ प्रारम्भ किया गया तो वहाँ पर तब तक दो दीर्घ-काय विशाल राक्षस (मारीच और सुबाहु) आ प्रकट हुए। उन्हें देखकर सभी ऋषि भाग खड़े हुए और केवल राम ही हठपूर्वक वहाँ डटे रहे और

हठि राम। जुद्ध क्रुद्ध कर्‌यो तिहूँ तिह ठउर सोरह जाम ॥६७॥ मार मार पुकार दानव शस्त्र अस्त्र सँभार। बान पान कमान कउ धर तबर तिच्छ कुठार। घेरि घेरि दसो दिशा नहि सूरबीर प्रमाथ। आइकै जूझे सभै रण राम एकल साथ ॥६८॥ ॥ रसावल छंद ॥ रणं पेख रामं। धुजं धरम धामं। चहूँ ओर ढूके। मुखं मार कूके ॥ ६९ ॥ बजे घोर बाजे। धुणं मेघ लाजे। झंडा गड्ड गाड़े। मंडे बैर बाड़े ॥ ७० ॥ कड़क्के कमाणं। झड़क्के क्रिपाणं। ढला ढुक्क ढालै। चली पीत पालै ॥ ७१ ॥ रणं रंग रत्ते। मनो मल्ल मत्ते। सरं धार बरखे। महिखुआस करखे ॥ ७२ ॥ करी बान बरखा। सुणे जीत करखा। सुबाहं मरीचं। चले बाछ मीचं ॥७३॥ इकै बार टूटे। मनो बाज छूटे। लयो घेरि रामं। ससं जेम कामं ॥ ७४ ॥ घिर्‌यो दैत सैणं। जिमं रुद्र मैणं।

उन तीनो मे सोलह प्रहर तक भीषण युद्ध चलता रहा ॥ ६७ ॥ अस्त्र-शस्त्रो को सँभालकर दानव 'मार-मार' की पुकार मचाने लगे और उन्होने हाथो मे कुल्हाड़े, तीर, कमान पकड लिये। दसो दिशाओ से उमड़ कर शूरवीर आ गए और आकर अकेले राम के साथ युद्ध मे जूझने लगे ॥ ६८ ॥ ॥ रसावल छद ॥ धर्म रूपी (ध्वजा को फहरानेवाले) राम को रणस्थल मे देखकर, मुखो से विभिन्न ध्वनियाँ निकालते हुए राक्षस चारो ओर से उमडकर इकट्ठे हो गए ॥ ६९ ॥ घोर बाजे बजने लगे और उनकी ध्वनि को सुनकर बादल भी लजाने लगे। अपने-अपने ध्वजो को पृथ्वी पर गाड़कर राक्षसो ने शत्रुतापूर्ण युद्ध का संचालन प्रारम्भ कर दिया ॥ ७० ॥ धनुष कडकने लगे और कृपाणे चलने लगी। ढालों पर ढकाढूक की ध्वनि शुरू हो गई और कृपाणे उन पर गिरकर (उनका मुख चूमकर) प्रीत की रीति का निर्वाह करने लगी ॥ ७१ ॥ सभी वीर युद्ध मे ऐसे मस्त थे, मानो मल्लयुद्ध मे पहलवान मस्त हो। तीरो की वर्षा होने लगी और धनुषो की टकार सुनाई पड़ने लगी ॥७२॥ अपनी जीत की इच्छा करते हुए (राक्षसो के द्वारा) बाण-वर्षा होने लगी। सुबाहु और मारीच भी दाँत कटकटाते हुए क्रोधित होकर आगे बढ़े ॥ ७३ ॥ वे दोनो इकट्ठे ही बाज की तरह झपट पड़े और उन्होने राम को इस प्रकार घेर लिया, मानो चन्द्रमा को कामदेव ने घेर लिया हो ॥ ७४ ॥ राम दैत्यो की सेना से ऐसे घिर गए जैसे रुद्र कामदेव की सेना से घिर गए थे। राम उसी पर रुककर (धैर्यपूर्वक) युद्ध करने लगे जैसे गगा समुद्र मे

रुके राम जंगं । मनो सिंध गंगं ॥ ७५ ॥ रणं राम बज्जे । धुणं मेघ लज्जे । रुले तच्छ मुच्छं । गिरे सूर स्वच्छं ॥७६॥ चलै ऐंठ मुच्छै । कहाँ राम पुच्छै । अबै हाथि लागे । कहा जाहु भागे ॥ ७७ ॥ रिपं पेख रामं । हठ्यो धरम धामं । करै नैण रातं । धुनरबेद ज्ञातं ॥ ७८ ॥ धनं उग्र करख्यो । सरंधार बरख्यो । हणी शत्र सैण । हसे देव गैण ॥ ७९ ॥ भजी सरब सैणं । लखी म्रीच (मू०ग्रं०१९४) नैणं । फिर्‌यो रोस प्रेर्‌यो । मनो साप छेड़्यो ॥ ८० ॥ हण्यो राम बाणं । कर्‌यो सिंध प्याणं । तज्यो राम देसं । लयो जोग भेसं ॥८१॥ सु बस्त्रं उतारे । भगवे बस्त्र धारे । बस्यो लंक बागं । पुनर द्रोह त्यागं ॥ ८२ ॥ सरोसं सुबाहं । चड़्यो लै सिपाहं । ठट्यो आण जुद्धं । भयो नाद उद्धं ॥ ८३ ॥ सुभं सैण साजी । तुरे तुंद ताजी । गजा जूह गज्जे । धुणं मेघ लज्जे ॥ ८४ ॥

मिलकर शांत तो हो जाती है परन्तु समुद्र के समान शक्तिशाली एव गम्भीर हो जाती है ॥ ७५ ॥ युद्ध मे राम इस प्रकार गरजने लगे कि उनकी गर्जना को सुनकर बादल भी लज्जित होने लगे । वीर धूल-धूसरित होने लगे और बड़े-बड़े महाबली धरती पर गिरने लगे ॥ ७६ ॥ मूँछों पर ताव देकर (मारीच और सुबाहु) राम को ढूँढने लगे और कहने लगे, ये हमारे हाथ से बचकर कहाँ जायेगा । इसे हम अभी पकड़ लेंगे ॥७७॥ राम शत्रुओ को देखकर हठपूर्वक और गम्भीर हो उठे और उस धनुर्वेद के ज्ञाता की आँखे लाल हो उठी ॥ ७८ ॥ राम का धनुप उग्र रूप से ध्वनि कर उठा और उससे बाणो की वर्षा होने लगी । शत्रुओं की सेना नष्ट होने लगी और यह देखकर आकाश मे देवगण मुस्कराने लगे ॥ ७९ ॥ भागती हुई सेना को मारीच ने देखा और क्रोधित होकर उसने अपनी सेना को ऐसे ललकारा मानो सर्प को छेड़ा जा रहा हो ॥ ८० ॥ राम ने बाण मारीच की तरफ चलाया और मारीच समुद्र की ओर भाग खडा हुआ । उसने अपना राज्य और देश त्यागकर योगी का वेष धारण कर लिया ॥८१॥ उसने सुन्दर वस्त्रो को त्यागकर योगियो वाले वस्त्र धारण कर लिये और सारे शत्रु-भाव त्याग कर लका की एक वाटिका मे रहने लगा ॥ ८२ ॥ सुबाहु क्रोधित होकर, सैनिको को साथ लेकर आगे बढा और उसके भी बाण-युद्ध से भयकर नाद होने लगा ॥ ८३ ॥ सुसज्जित सेना मे तीव्र गति से चलनेवाले घोड़े दौड़ने लगे । चारो दिशाओ में हाथी गरजने लगे और उनकी गर्जना के सामने बादलो की गडगड़ाहट भी फीकी पड़ने

ढका ढुक्क ढालं । सुभी पीत लालं । गहे शस्त्र उट्ठे । सरंधार बुट्ठे ।। ८५ ।। वहै अगन अस्त्रं । छूटे सरब शस्त्रं । रँगे स्रोण ऐसे । चड़े ब्याह जैसे ।। ८६ ।। घणे घाइ घूमे । मदी जेस झूमे । गहे बीर ऐसे । फुले फूल जैसे ।। ८७ ।। हन्यो दानवेसं । भयो आप भेसं । बजे घोर बाजे । धुणं अब्भ्र लाजे ।। ८८ ।। रथी नाग कूटे । फिरैं बाज छूटे । भयो जुद्ध भारी । छुटी रुद्र तारी ।। ८९ ।। बजे घंट भेरी । डहे डाम डेरी । रणके निशाणं । कणंछे किकाण ।। ९० ।। धहा धूह धोपं । टका टूक टोपं । कटे चरम बरमं । पल्यो छत्र धरमं ।। ९१ ।। भयो दुंद जुद्धं । भर्यो राम क्रुद्धं । कटी दुष्ट बाहं । सँघार्यो सुबाहं ।। ९२ ।। त्रसे दैत भाजे । रणं राम गाजे । भुअ भार उतार्यो । रिखीशं उबार्यो ।। ९३ ।। सभै साध हरखे । भए जीत करखे ।

लगी ।। ८४ ।। ढालो पर ढक-ढक की ध्वनि सुनाई पडने लगी और पीले तथा लाल रग की ढाले शोभायमान प्रतीत होने लगी । शूरवीर हाथो मे शस्त्र पकड़कर उठने लगे और तीरो की धारा बहने लगी ।। ८५ ।। अग्नि-बाण चलने लगे और वीरो के हाथो से शस्त्र छूटने लगे । शूरवीर इस प्रकार रक्त-रंजित थे मानो वे लाल वस्त्र धारण कर किसी विवाह मे शामिल होने जा रहे हो ।। ८६ ।। बहुत से लोग घायल होकर इस प्रकार घूम रहे हैं, मानो कोई शराबी शराब पीकर झूम रहा हो । वीर इस प्रकार से एक-दूसरे को पकड़े हुए हैं, मानो फूल एक-दूसरे से मिल रहे हो और प्रसन्न हो रहे हो ।। ८७ ।। दानवराज मारा गया और वह अपने असली स्वरूप को प्राप्त हो गया । वाद्य-यन्त्र बजने लगे और उनकी ध्वनि से मेघ लज्जित होने लगे ।। ८८ ।। कई रथी मारे गए और युद्धस्थल मे घोडे लावारिस घूमने लगे । यह युद्ध इतना भीषण हुआ कि शिव का ध्यान भी टूट गया ।।८९।। घटों और भेरियो तथा डमरुओ की डम-डम शुरू हो गई । नगाड़े वजने लगे और घोड़े हिनहिनाने लगे ।।९०।। युद्धस्थल मे विभिन्न ध्वनियाँ उठने लगी और शिरस्त्राणो पर टका-टक की ध्वनि होने लगी । शरीर के कवच कटने लगे और वीरगण क्षत्रिय-धर्म का पालन करने लगे ।। ९१ ।। भीषण युद्ध को चलते देखकर राम क्रोधित हो उठे । उन्होने सुबाहु की भुजाओ को काटकर उसका संहार कर दिया ।। ९२ ।। यह देखकर भयभीत दैत्य भाग गए और युद्धस्थल में राम गरजने लगे । राम ने पृथ्वी का भार हलका किया और ऋषियो

करै देव अरचा । ररै बेद चरचा ॥ ९४ ॥ भयो जग्ग पूरं । गए पाप दूरं । सुरं सरब हरखे । धनधार बरखे ॥ ९५ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे रामावतारे कथा सुबाहु मरीच बधह जग्य सपूरन करनं समापतम ॥

अथ सीता सुयंबर कथनं ॥

॥ रसावल छद ॥ रच्यो सुयंब्र सीता । महाँ सुद्ध गीता । बिधं चार बैणी । म्रिगीराज नैणी ॥ ९६ ॥ सुण्यो मोन-नेसं । चतुर चार देसं । लयो संग रामं । चल्यो धरम धामं ॥ ९७ ॥ सुनो राम प्यारे । चलो साथ हमारे । सीआ सुयंब्र कीनो । न्रिपं बोल लीनो ॥ ९८ ॥ तहा प्रात जइऐ । सिया जीत लइऐ । कही मान मेरी । बनी बात तेरी ॥ ९९ ॥ बली (मू०ग्रं०१९५) पान बाके । निपातो पिनाके । सिया जीत आनो । हनो सरब दानो ॥ १०० ॥

का उद्धार किया ॥ ९३ ॥ साधुगण विजय पर प्रसन्न हो उठे। देवताओं की पूजा होने लगी और वेद-चर्चा आरंभ हो गई ॥ ९४ ॥ (विश्वामित्र का यज्ञ पूर्ण हुआ और सभी पापों का नाश हुआ। यह देखकर देवतागण प्रसन्न हो पुष्प-वर्षा करने लगे ॥ ९५ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रंथ के रामावतार मे सुबाहु, मारीच-वध और यज्ञ पूर्ण करने की कथा की समाप्ति ॥

सीता-स्वयंवर-कथन प्रारम्भ

॥ रसावल छंद ॥ सती सीता का स्वयंवर रचा गया। सीता मधुरकंठी एवं मृगनयनी थी ॥ ९६ ॥ मुनि (विश्वामित्र) ने भी स्वयंवर के बारे में सुना कि उसमें चारों दिशाओं के चतुर एवं बलशाली राजा आ रहे हैं। मुनि ने देखा कि राम ने संग्राम जीत लिया है और धर्म का प्रचलन कर दिया है ॥ ९७ ॥ वे राम से कहने लगे कि हे राम! आप हमारे साथ चलें, क्योंकि सीता का स्वयंवर हो रहा है और उसमें राजा ने हमें आमंत्रित किया है ॥ ९८ ॥ प्रातः वहाँ चला जाय और सीता को जीत लिया जाय। मेरी बात मानिए, इससे आपका कल्याण होगा ॥ ९९ ॥ तुम अपने बलिष्ठ हाथों से धनुष को तोड़कर, सीता को जीतकर, सभी दानवों का नाश करो ॥ १०० ॥ तरकश से सुशोभित

चले राम संगं। सुहाए निखंगं। भए जाइ ठाढे। महाँ मोद बाढे।। १०१ ।। पुरं नार देखै। सही काम लेखै। रिपं शत्र जानै। सिधं साध मानै ।। १०२ ।। सिसं बाल रूपं। लह्यो भूप भूपं। तप्यो पउनहारी। भरं शस्त्रधारी ।। १०३ ।। निसा चंद जान्यो। दिनं भान मान्यो। गणं रुद्र रेख्यो। सुर इंद्र देख्यो ।। १०४ ।। स्रुतं ब्रहम जान्यो। दिजं ब्यास मान्यो। हरी बिशन लेखे। सिया राम देखे ।। १०५ ।। सिया पेख रामं। बिधी बाण कामं। गिरी झूमि भूमं। मदी जाणु घूमं ।। १०६ ।। उठी चेत ऐसे। महाँबीर जैसे। रही नैन जोरी। ससं जिउँ चकोरी ।। १०७ ।। रहे मोह दोनो। टरे नाहि कोनो। रहे ठाँढ ऐसे। रणं बीर जैसे ।। १०८ ।। पठे कोट दूतं। चले पउन

राम ऋषि के साथ चले और नगरी (जनकपुर) जा पहुँचे, जिससे वहाँ के लोग अत्यन्त प्रसन्न हो उठे ।। १०१ ।। नगर की नारियाँ उन्हे देख रही है और वे उन्हे कामदेव के समान दृष्टिगोचर हो रहे है। प्रतिद्वन्द्वी शत्रु राजा भी उनके आने के तथ्य से अवगत हो गये हैं और सिद्ध एवं साधु भी उनके आगमन से प्रसन्न है ।। १०२ ।। राजा ने इन बालको के स्वरूप को देखा और प्रसन्न हो उठा। तपस्वी लोग और प्रसन्न हो उठे और शस्त्रधारी राजा भ्रम मे पड़ गए ।। १०३ ।। कई लोग उन्हे रात्रि के चन्द्रमा के समान और कई लोग उन्हे सूर्य के समान मानने लगे। रुद्र एव उनके गण भी तथा इन्द्र एव अन्य देवता लोग भी यह देखने लगे ।। १०४ ।। श्रुतियो के ज्ञाता उन्हे (राम को) ब्रह्म-रूप मे और ब्राह्मण आदि उन्हे महान् व्यास के रूप मे देखने लगे। लोग उन्हे शिव और विष्णु के रूप मे भी देखकर प्रसन्न होने लगे और इसी सारी चहल-पहल मे सीता ने राम को देखा ।। १०५ ।। राम को देखकर सीता कामदेव के बाणो से बिंध गई। वह झूमकर इस प्रकार धरती पर गिर पडी, मानो कोई मदमस्त होकर गिर पड रहा हो ।। १०६ ।। पुनः वह युद्ध मे अचेत महावीर के समान चेतना अवस्था मे आने पर उठ बैठी और उसके नेत्र इस प्रकार राम के सौंदर्य की ओर एकटक लग गए जैसे चकोरी चन्द्रमा को देख रही हो ।। १०७ ।। दोनो एक-दूसरे को देखकर मोहित हो उठे और उनमे से कोई भी एक-दूसरे के सामने से नही हट रहा था। वे दोनो एक-दूसरे के सामने ऐसे खड़े थे, जैसे युद्ध मे दो वीर खड़े हो ।। १०८ ।। राजा ने कई दूतो को तीव्र गति के साथ विभिन्न नरेशो के

लयो पूतं। कुवंडान डारे। नरेशो दिखारे॥ १०९॥ लयो राम पानं। भर्यो बीर मानं। हस्यो ऐंच लीनो। उभै टूक कीनो॥ ११०॥ सभै देव हरखे। घनं पुहप बरखे। लजाने नरेशं। चले आप देसं॥ १११॥ तबै राजकन्या। तिहूँ लोक धन्या। धरे फूल माला। बर्यो राम बाला॥ ११२॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद॥ किधौ देवकन्या किधौ बासवी है। किधौ जच्छनी किन्नरी नागनी छै। किधौ गंध्रबी दैतजा देवता सी। किधौ सूरजा सुध सोधी सुधा सी॥ ११३॥ किधौ जच्छ बिद्याधरी गंध्रबी है। किधौ रागनी भाग पूरे रची है। किधौ सुवर्न की चित्र की पुत्रका है। किधौ काम की कामनी की प्रभा है॥ ११४॥ किधौ चित्र की पुत्रका सी बनी है। किधौ संखनी चित्रनी पदमनी है। किधौ राग पूरे भरी रागमाला। बरी राम तैसी सिया आज बाला॥ ११५॥ छके प्रेम दोनो लगे नैन ऐसे। मनो फाध फाँधै म्रिगीराज जैसे। लिध बाक बैणी कट देस छीणं।

पास भेजा और उन्हें पड़ा हुआ धनुष दिखाया गया॥ १०९॥ राम ने स धनुष को हाथ मे लिया और सभी योद्धा द्वेष से भर उठे। राम ने स्कराकर धनुष को खींचा और उसे दो टुकड़े कर दिया॥ ११०॥ भी देवता प्रसन्न हो उठे और फूलो की वर्षा करने लगे। राजा लज्जित होकर अपने-अपने देशो को चल दिए॥ १११॥ तभी राजकन्या सीता ने, जो तीनो लोक मे सुन्दर थी, हाथ मे जयमाल लेकर राम का वरण कर लिया॥ ११२॥ ॥ भुजंग प्रयात छद॥ सीता इस प्रकार लग रही थी मानो वह देवकन्या, नागकन्या, यक्षिणी, किन्नरनी हो। वह ऐसी लग रही थी मानो गधर्वी, दैत्यपुत्री अथवा देवी हो। वह सूर्य-पुत्री के समान लग रही थी और चन्द्रमा की अमृत-तुल्य चाँदनी के समान भी लग रही थी॥११३॥ वह ऐसी लग रही है मानो यक्षविद्या को धारण करनेवाली गंधर्व-स्त्री हो अथवा वह सगीत का स्वर हो। सीता ऐसी लग रही थी मानो स्वर्ण के स्वरूपवाली कोई पुतली हो अथवा काम मे मदमस्त कोई सौन्दर्यमयी कामिनी हो॥ ११४॥ वह चित्र के समान सुन्दर दिखने वाली सौन्दर्य की प्रतिमा है अथवा शखिनी, चित्रिणी, पद्मिनी स्त्री है। वह स्वरलहरियो की माला दिखनेवाली रागिनी है और इस प्रकार की सुन्दरी सीता का राम ने वरण कर लिया॥ ११५॥ दोनो प्रेम मे मस्त होकर इस प्रकार एक-दूसरे की ओर एकटक देख रहे है मानो प्रेम के

रँगे रंग रामं सुनैणं प्रबीणं ।। ११६ ।। जिणी राम सीता सुणो स्रउण राम । गहे शस्त्र अस्त्रं रिस्यो तउन जामं । कहा जात भाख्यो रह्मो राम ठाढे । लखो आज कैसे भए (मू०ग्रं०१६६) बीर गाढे ।।११७।। ।।भाखा पिंगल दी।। ।। सुंदरी छंद ।। भट हुंके धुंके बंकारे । रण बज्जे गज्जे नग्गारे । रण हुल्ल कलोलं हुल्लालं । ढल हल्लं ढल्लं उच्छालं ।। ११८ ।। रण उट्ठे कुट्ठे मुच्छाले । सर छुट्टे जुट्टे भीहाले । रतु डिग्गे भिग्गे जोधाणं । कणणंछे कच्छे किकाण ।। ११६ ।। भीखणीयं भेरी भुंकारं । झल लंके खंडे बुद्धारं । जुद्धं जुज्झारं बुब्बाड़े । रुलिए पखरिए आहाडे ।। १२० ।। बक्के बब्बाडे बंकारं । नच्चे पक्खरिए जुझारं । बज्जे सँगलीए भीहाले । रण रत्ते मत्ते मुच्छाले ।। १२१ ।। उछलीए कच्छी कच्छाले । उड्डे जणु पब्बं पच्छाले । जुट्टे भर छुट्टे मुच्छाले । रुलिए आहाड़ं पखराले ।। १२२ ।। बज्जे सपूरं नग्गारे । कच्छे कच्छीले

बन्धन मे वँधे हुए मृग एक-दूसरे को देख रहे हों । मधुर कण्ठ वाली और क्षीण कटिवाली सीता राम के नयनो के रंग मे रँगी हुई परम सुन्दर प्रवीण दिखाई पड रही है ।। ११६ ।। जब परशुराम ने यह सुना कि सीता को राम ने जीत लिया है (और धनुष तोड दिया है), तो वह उसी क्षण अस्त्र-शस्त्र धारण कर क्रोधित हो उठे । उसने राम को रुक जाने के लिए कहा और ललकारा कि मैं देखता हूँ कि तुम कैसे वीर हो ।। ११७ ।। ।। भाषा पिंगल की ।। ।। सुन्दरी छंद ।। युद्धस्थल का दृश्य बन गया और शूरवीरो की जय-जयकार की ध्वनियाँ तथा नगाड़ो के घडघडाहट की ध्वनियाँ सुनाई पडने लगी । युद्ध की तैयारी देख वीर प्रसन्न हो उठे और अपने शस्त्रो तथा ढालो को उछालने लगे ।। ११८ ।। मुडी हुई मूँछोवाले वीर युद्ध के लिए उठ खडे हुए और भीषण वाण-वर्षा करते हुए एक-दूसरे से भिड गए । रक्त से भीगे योद्धा गिरने लगे और युद्धस्थल मे घोडे रौंदे जाने लगे ।। ११९ ।। योगिनियो की भेरियो की ध्वनि सुनाई पडने लगी और दो धारों वाले खड्ग चमकने लगे । वड़वड़ाकर युद्ध मे जूझने लगे । लौह-कवच पहननेवाले वीर धूल-धूसरित होने लगे ।। १२० ।। वीर दहाड़ने लगे और लौह-कवच पहने हुए योद्धा मदमस्त होकर नृत्य करने लगे । भीषण नगाड़े बजने लगे और भयानक मूँछोवाले वीर युद्ध मे भिडने लगे ।। १२१ ।। काटनेवाले वीर इस प्रकार उछल रहे है मानो पर्वतों को पंख लगे हों । वीर आपस मे मूँछो पर ताव देते हुए भिड रहे

लुज्झारे। गण हूरं पूरं गैणायं। अंजनयं अंजे नैणायं ॥१२३॥ रण णक्के नादं नाफीरं। लब्बाणे बीरं हाबीरं। उग्घे जण नेजे जट्टाले। छुट्टे सिल सितियं सुच्छाले ॥ १२४ ॥ भट डिग्गे घायं अग्घायं। तन सुब्भे अद्धो अद्धायं। दल गज्जे बज्जे नीशाणं। चंचलिए ताजी चीहाणं ॥ १२५ ॥ चव दिस्यं चिको चावडं। खंडे खंडे कै आखंडै। रण डंके गिद्धं उद्धाणं। जै जंपे सिधं सुद्धाणं ॥ १२६ ॥ फुल्ले जण किस्सक बासतं। रण रत्ते सूरा सामंतं। डिग्गे रण सुंडी सुंडाणं। धर भूरं पूरं मुंडाणं ॥ १२७ ॥ ॥ मधुर धुन छंद ॥ तर भर रामं। परहर कामं। धर बर धीरं। परहरि तीरं ॥ १२८ ॥ दर बर ग्यानं। पर हरि ध्यान। थरहर कंपै। हरि हरि जंपै ॥ १२९ ॥ क्रोधं गलितं। बोधं दलितं। कर सर सरता। धरमर हरता ॥ १३० ॥ सरबर पाणं। धर कर

है और कवच धारण किए हुए योद्धा मिट्टी मे लोट रहे है ॥ १२२ ॥ दूर-दूर तक नगाडे बजने लगे और घोडे इधर-उधर दौड़ने लगे। आकाश-मडल मे अप्सराएँ घूमने लगी और नयनो मे अजन लगाकर एवं सौन्दर्य-युक्त होकर युद्ध को देखने लगी ॥ १२३ ॥ युद्ध मे घनघोर ध्वनि करनेवाले बाजे बज उठे और शूरवीर दहाड उठे। वीर अपने हाथो मे भाले लेकर चलाने लगे और शूरवीरो के अस्त्र-शस्त्र चलने लगे ॥ १२४ ॥ घायल होकर शूरवीर गिर पड़े और उनके शरीरो के टुकड़े-टुकड़े होने लगे। सेनाएँ गरजने लगी और नगाड़े बजने लगे तथा युद्धस्थल मे चंचल घोडे हिनहिनाने लगे ॥ १२५ ॥ चारो दिशाओ मे चील्हे बोलने लगी और खण्ड-खण्ड हो चुके वीरो के और अधिक टुकडे करने लगी। उस युद्धस्थल रूपी उद्यान मे गिद्ध मांस के टुकडो के साथ खेलने लगे और सिद्ध-योगीगण विजय की कामना करने लगे ॥ १२६ ॥ जिस प्रकार वसन्त ऋतु मे फूल खिलते हैं, उस प्रकार युद्धस्थल मे शूरवीर सामन्त लड़ते हुए दिखाई दे रहे है। युद्धस्थल मे हाथियो की सूँडे गिरने लगी और सारी धरती कटे हुए सिरो से भर गई ॥१२७॥ ॥ मधुर धुन छंद ॥ कामनाओ का त्याग करनेवाले परशुराम ने चारो ओर तहलका मचा दिया और शूरवीरो की तरह बाण चलाने लगे ॥ १२८ ॥ ज्ञानियो ने उसके क्रोध को देखकर परमात्मा पर ध्यान लगा लिया और थरथर काँपते हुए परमात्मा का जाप करने लगे ॥ १२९ ॥ क्रोध से पीडित होकर बुद्धि एवं विचार का हनन हो गया। उसके हाथो से तीरो की नदी बह निकली तथा उससे शत्रुओ के प्राण हरे जाने लगे ॥ १३० ॥ हाथो मे तीर पकड़े

माणं। अर उर सालो। धर उर मालो॥ १३१॥ कर बर कोपं। थरहर धोपं। गर बर करणं। घर बर हरणं॥१३२॥ छर हर अंगं। चर खर संगं। जर बर जामं। झर हर रामं॥ १३३॥ टर धर जायं। ठर हरि पायं। ढर हर ढालं। थरहर कालं॥१३४॥ अर बर दरण। नर बर हरणं। धर बर धीरं। फर हर भीरं॥ १३५॥ नर नर दरणं। मर हर करणं। हर हर (मू०ग्रं०१६७) रड़ता। बर हर गड़ता॥ १३६॥ सरबर हरता। चरमर धरता। बरमर पाणं। करबर जाणं॥ १३७॥ हरबर हारं। करबर बारं। गडबड रामं। गड़बड़ धामं॥ १३८॥ ॥ चरपट छीगा के आद क्रित छंद॥ खग्ग ख्याता। ग्यान ग्याता। चित्र बरमा। चार चरमा॥ १३९॥ शास्त्रं ग्याता। शस्त्रं ख्याता। चित्रं जोधी। जुद्धं क्रोधी॥ १४०॥ बीरं बरणं।

हुए शूरवीर गर्व से भरे और शत्रुओं के हृदय में इस प्रकार बाणो को रोप रहे है जैसे धरती पर माली पौधो को रोपता है॥ १३१॥ योद्धाओं के क्रोध से सभी थरथराने लगे और वीरो के युद्धकौशल के कार्यों से घरो के स्वामी नष्ट होने लगे॥ १३२॥ वीरो का प्रत्येक अग वाणो से बिधने लगा और परशुराम भीषण रूप से अस्त्रो की वर्षा करने लगे॥१३३॥ जो उस ओर बढ़ता है वह भगवान के चरणो मे पहुँच जाता है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। ढालो की गडगडाहट से काल देवता भी उतरकर आने लगे॥ १३४॥ श्रेष्ठ शत्रुओ का दमन होने लगा और नरश्रेष्ठ राजागण मारे जाने लगे। धैर्यवान वीरो के शरीरो मे तीर फहराने लगे॥ १३५॥ नरश्रेष्ठो का दमन होने लगा और धरती वीरों से पड़ने लगी। हरि के नाम का स्मरण करते हुए बार-बार वीरगण प्रभु नाम का जाप दृढ करने लगे॥ १३६॥ कुठार को धारण करनेवाले परशुराम युद्ध मे सबको नष्ट करने मे समर्थ थे। उनकी भुजाएँ लम्बी थी अर्थात् वे आजानुबाहु थे॥ १३७॥ वीरो के वार होने लगे और शिव के गले मे मुडमाला शोभायमान होने लगी। राम स्थिर होकर खड़े हो गए और सारे महल मे कोलाहल मच गया॥ १३८॥ ॥ चरपट छीगा के आदिकृत छंद॥ युद्धस्थल में खड़ग-चालन मे ख्यातिप्राप्त और महाज्ञानी पुरुष दिखाई दे रहे है। सुदर शरीरवालो ने कवच धारण कर रखे है और वे चित्र के समान दिखाई दे रहे है॥ १३९॥ शस्त्र और शास्त्रो के ज्ञाता और ख्यातिप्राप्त योद्धा क्रुद्ध होकर युद्ध मे संलग्न हैं॥ १४०॥ श्रेष्ठ वीर दूसरो को भय से भर रहे है। वे अस्त्रो को

बीरं भरणं । सत्रं हरता । अत्रं धरता ॥ १४१ ॥ बरमं बेधी । चरमं छेदी । छत्रं हंता । अत्रं गंता ॥ १४२ ॥ जुधं धामी । बुधं गामी । शस्त्रं ग्याता । अस्त्रं ग्याता ॥ १४३ ॥ जुद्धा मालो । कीरत सालो । धरमं धामं । रूप रामं ॥ १४४ ॥ धीरं धरता । बीरं हरता । जुद्धं जेता । शस्त्रं नेता ॥ १४५ ॥ दुरदं गामी । धरमं धामी । जोगं ज्वाली । जोतं माली ॥ १४६ ॥ ॥ परसराम बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ तूणि कसे कट चाँप धरे कर कोप कही बिज राम अहो । ग्रह तोर सरासन शंकर को सिय जात हरे तुम कउन कहो । बिन साच कहे नही प्रान बचे जिन कठ कुठार की धार सहो । घर जाहु चले तज राम रणं जिन जूझ मरो पल ठाढ रहो ॥ १४७ ॥ ॥ स्वैया ॥ जानत हो अविलोक मुझै हठि एक बली नही ठाढ रहैंगे । तात्ति गह्यो जिनके त्रिण दाँतन तेन कहा रण आज गहैंगे । बंब बजे रण खंभ गडे गहि

धारण कर शत्रुओ को नष्ट कर रहे है ॥ १४१ ॥ वीर कवचो को वेध कर शरीरों का छेदन कर रहे है । अस्त्रो के चलने से राजाओ के छत्र नष्ट होने लगे ॥ १४२ ॥ शस्त्रो और अस्त्रो के मर्मज्ञ उस युद्धस्थल की ओर चल पडे ॥ १४३ ॥ वीर युद्ध मे उद्यान के मालियो के समान विचरण करने लगे और पौधो को काटने-छाँटने की तरह वीरो की कीर्ति को नष्ट करने लगे । उस युद्धस्थल मे रूपवान और धर्म के धाम राम शोभायमान प्रतीत हो रहे है ॥ १४४ ॥ वे धैर्यवान, वीरो को नष्ट करनेवाले, युद्ध को जीतनेवाले तथा शस्त्रो के चालन मे अत्यन्त प्रवीण है ॥ १४५ ॥ वे हाथी की मस्त चालवाले है और धर्म के धाम है । वे योगाग्नि के स्वामी और परम ज्योति के रक्षक है ॥१४६॥ ॥ परशुराम उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ धनुष और तरकश को धारण किए हुए विप्र परशुराम ने क्रोधित होकर राम से कहा कि शकर का धनुप तोड़कर सीता को ले जानेवाले तुम कौन हो । सच-सच बताओ, नही तो तुम्हारे प्राण बच नही पायँगे और मेरे कुठार की धार को तुम्हे गर्दन पर सहना पड़ेगा । अच्छा होगा कि राम ! तुम युद्ध छोडकर अपने घर भाग जाओ, नही एक पल भी और यहाँ ठहरने पर तुम्हे यही पर मर जाना होगा ॥ १४७ ॥ ॥ सवैया ॥ तुम जानते हो कि मुझे देखकर कोई भी महावली स्थिर खड़ा नही रह सकता । जिनके वाप-दादाओ ने मुझे देखकर दाँतो मे घास के तिनके थाम लिये अर्थात् अपनी हार मान ली वे अब मुझसे क्या युद्ध करेंगे । अब चाहे कितना ही भीपण युद्ध हो, उनकी क्या हिम्मत है कि

हाथ हथिआर कहूँ उमहैंगे । भूम अकाश पताल दुरैबे कउ राम कहो कहाँ ठाम लहैंगे ।। १४८ ।। ।। कबि बाच ।। यौ जब बैंन सुने अरि के तब स्रो रघुबीर बली बलकाने । सात समुंद्रन लौ गरवे गिर भूम अकाश दोऊ थहराने । जच्छ भुजंग बिसा बिदिसान के दानव देव दुहूँ डर माने । स्रो रघुनाथ कमान ले हाथ कहौ रिसकै किह पै सर ताने ।। १४९ ।। ।। परसराम बाच राम सो ।। जेतक बैंन कहे सु कहे जु पै फेरि कहे तुपै जीत न जैहो । हाथि हथिआर गहे सु गहे जुपै फेरि गहे तुपै फेरि न लैहो । राम रिसै रण मै रघुबीर कहो भजिकै कत प्रान बचैहो । तोर सरासन शंकर को हरि सीअ चले घरि जान न पैहो ।। १५० ।। ।। राम बाच परसराम सो ।। ।। स्वैया ।। (मू०ग्रं०१८८) बोल कहे सु सहे दिज जू जु पै फेरि कहे तु पै प्रान खवैहो । बोलत ऐंट कहा सठ जिउँ सभ दाँत तुराइ अबै घरि जैहो । धीर तबै लहिहैं तुम कउ जद भीर परी

वे पुनः शस्त्र धारण कर लड़ाई के लिए आगे बढ़ सकेंगे । हे राम ! अब तुम मुझसे बचकर, आकाश, पाताल, पृथ्वी अर्थात् कहाँ पर छिपोगे ? ।।१४८।। ।। कवि उवाच ।। शत्रु (परशुराम) के यह वचन सुनकर श्री रामचन्द्र महाबलियो के समान दिखाई देने लगे । राम की सातो समुद्रो की गम्भीरता को लिये हुए गम्भीर मुद्रा को देखकर पर्वत, आकाश और सम्पूर्ण पृथ्वी थरथरा उठी । सभी दिशाओ के यक्ष, भुजग, देव, दानव भयभीत हो उठे । श्री रामचन्द्र ने अपना धनुष हाथ मे लेते हुए परशुराम से कहा कि आप ये किस पर क्रोधित होकर वाण ताने हुए है ।।१४९।। ।। परशुराम उवाच राम के प्रति ।। (हे राम !) जितनी बाते तुमने कह दी सो कह दी, अब और आगे कुछ कहा तो जीवित नही बच पाओगे । तुमने हाथ मे जो शस्त्र (धनुष) पकडना था पकड़ लिया, यदि कुछ और पकड़ने की कोशिश की तो तुम्हारी कोशिश बेकार जायगी । परशुराम ने क्रोधित होकर राम से कहा कि कहो, अब युद्ध से भागकर कहाँ जाओगे और कैसे प्राण बचाओगे । हे राम ! शिवधनुष को तोड़कर और अब सीता का वरण कर तुम अपने घर तक जा नही पाओगे ।। १५० ।। ।। राम उवाच परशुराम के प्रति ।। ।। सवैया ।। हे विप्र ! तुमने भी जितना कहना था कह लिया, अब और कहोगे तो तुमको प्राणो से हाथ धोना पड़ेगा । हे मूर्ख ! इतना अकडकर क्यो बोलते हो, अभी तुमको दाँत तुड़वाकर अर्थात् मार खाकर घर जाना पडेगा । तुमको मैं धैर्यपूर्वक देख रहा हूँ । अगर मुझे आवश्यकता हुई तो केवल एक तीर ही चलाना पड़ेगा (और तुम्हारा

इक तीर चलैहो । बात सँभार कहो मुखि ते इन बातन को अब ही फलि पैहो ॥१५१॥ ॥ परसराम बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ तउ तुम साच लखो मन मै प्रभ जउ तुम रामवतार कहाओ । रुद्र कुवंड बिहंडिय जिउँ कर तिउँ अपनो बल मोहि दिखाओ । तउही गदा कर सारंग चक्र लता भ्रिग की उर मद्ध सुहाओ । मेरो उतार कुवंड महाँबल मोहू कउ आज चड़ाइ दिखाओ ॥१५२॥ ॥ कबि बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ स्री रघुबीर सिरोमन सूर कुवंड लयो करमै हसिकै । लिय चाँप चटाक चड़ाइ बली खट टूक कर्‌यो छिन मै कसिकै । नभ की गति ताहि हती सर सो अध बीच ही बात रही बसिकै । न बसात कछू नट के बट ज्यों भव पास निशंगि रहै फसिकै ॥ १५३ ॥

॥ इति स्री राम जुद्ध जयत ॥

अथ अउध प्रवेश कथनं ॥

॥ स्वैया ॥ भेट भुजा भर अंक भले भरि नैन दोऊ

काम तमाम हो जायगा) । इसलिए मुँह को सँभालकर बात करो, अन्यथा इन बातो का फल तुम्हे अभी मिल जायगा ॥ १५१ ॥ ॥ परशुराम उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ तब तुम सच मानो कि यदि तुम रामावतार कहलाते हो तो जिस प्रकार तुमने शिवधनुष को तोड़ा है, उसी प्रकार मुझे भी अपना बल दिखाओ । मुझे गदा-चक्र-धनुष और हृदय में लगा भृगु ऋषि का पदाघात भी दिखाओ तथा साथ-ही-साथ मेरा प्रबल धनुष उतार कर उसकी प्रत्यञ्चा भी चढाकर दिखाओ ॥ १५२ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ वीर शिरोमणि श्री रामचन्द्र ने मुस्कुराते हुए धनुष हाथ में लिया; खीचकर उसे शीघ्र ही चढ़ा दिया और तीर कसते ही उसे तोड़कर दो टुकड़े कर दिया । धनुष के खडित होते ही इतनी भयकर ध्वनि हुई मानो आकाश की छाती मे तीर जा लगा हो और आकाश फट गया हो । जिस प्रकार नट के रस्से पर नट उछलता है, इस प्रकार सारा ब्रह्मांड धनुष के टूटने पर हिल गया और धनुप के दोनों टुकड़ों के बीच फँसकर रह गया ॥ १५३ ॥

॥श्रीराम-युद्ध-विजय समाप्त ॥

अवध-प्रवेश-कथन प्रारम्भ

॥ सवैया ॥ श्री रामचन्द्र ने दोनो आँखों मे खुशी के आँसू लेते

निरखे रघुराई। गुंजत भ्रिग कपोलन ऊपर नाग लवंग रहे लिव लाई। कंज कुरंग कलानिध केहरि कोकल हेर हिए हहराई। बाल लखै छब खाट परै नहि बाट चलै निरखे अधिकाई॥ १५४॥ सीय रही मुरझाइ मनै मन राम कहा मन बात धरैंगे। तोर सरासनि शंकर को जिम मोहि बर्यो तिम अउर बरैंगे। दूसर ब्याह बधू अब ही मन ते मुहि नाथ बिसार डरैंगे। देखत हौ निज भाग भले बिध आज कहा इह ठौर करैंगे॥ १५५॥ तउ ही लउ राम जिते दिज कउ अपने दल आइ बजाइ बधाई। भग्गुल लोक फिरै सभ ही रण मो लख राघव की अधकाई। सीय रही रन राम जिते अवधेशर बात जबै सुनि पाई। फूलि गयो अति ही मन मै धन के घन की बरखा बरखाई॥ १५६॥ बंदनवार बधो सभ ही दर चंदन सौ छिरके ग्रहि सारे। केसर डारि बरातन पै सभ ही जन हुइ

हुए और अपने स्वजनो को अक मे भरकर मिलते हुए अयोध्या में प्रवेश किया। गालो पर भौरे गूँज रहे थे और सीता की केशराशि ऐसे लटक रही थी मानो नागिने एकटक होकर उनके मुख को निहार रही हो। कमल, हिरण, चन्द्रमा, सिहिनी और कोयल क्रमशः उनकी आँखों की बनावट, चचलता, सुन्दरता, कटि की क्षीणता और मधुर कण्ठ को देख मन-ही-मन घबराने लगे। बच्चे भी उनकी सुन्दरता को देखकर अचेत होकर गिर पड़ रहे थे और पथिक भी अपना रास्ता चलना छोडकर उन्ही की ओर देख रहे थे॥ १५४॥ सीता मन मे यह सोचकर उदास सी हो रही थी कि रामचन्द्र जी मेरी बात मानेगे या नही और कही ऐसा तो नही होगा कि जिस प्रकार शंकर का धनुष तोडकर इन्होने मेरा वरण किया हो उसी प्रकार किसी अन्य स्त्री का वरण कर लेगे। दूसरे विवाह की बात यदि इनके मन मे होगी तो मेरे स्वामी निश्चित रूप से मुझे विस्मरित करके मेरे जीवन को व्याकुलता से परिपूर्ण कर देगे। देखो मेरे भाग्य मे क्या लिखा है और अब आगे श्री रामचन्द्र और क्या करते हैं॥ १५५॥ उसी समय द्विजो के दल ने आगे बढ बधाई के गीत गाने शुरू कर दिए। सब लोग रामचन्द्र की युद्ध मे विजय को सुनकर खुशी से इधर-उधर भागने लगे। जब राजा दशरथ ने यह सुना कि सीता को जीतकर राम ने युद्ध भी जीत लिया है तो वे खुशी से फूले न समाये और उन्होने बादलो की वर्षा के समान धन की वर्षा की॥ १५६॥ सबके द्वारो पर वन्दनवार सजाये गए और सारे घरों पर चन्दन छिडका गया। सब साथियो पर केसर छिड़का गया और ऐसा लग रहा था,

पुरहूत पधारे । बाजत ताल मुचंग पखावज नाचत कोटनि कोटि अखारे । आनि मिले सभ ही अगुआ सुत कउ पितु लै पुर अउध सिधारे ॥ १५७ ॥ ॥ चौपई ॥ (मू०ग्रं०१६६) सभहू मिलि गिल कियो उछाहा । पूत तिहूँ कउ रच्यो बियाहा । राम सिया बर कै घरि आए । देस बिदेसन होत बधाए ॥ १५८ ॥ जह तह होत उछाह अपारू । तिहूँ सुतन को ब्याह बिचारू । बाजत ताल म्रिदंग अपारं । नाचत कोटन कोट अखारं ॥ १५९ ॥ बन बन बीर पखरिआ चले । जोबनवंत सिपाही भले । भए जाइ इसथत न्रिप दर पर । महारथी अरु महा धनुरधर ॥ १६० ॥ बाजत जग मुचंग अपारं । ढोल म्रिदंग सुरंग सुधारं । गावत गीत चचला नारी । नैन नचाइ बजावत तारी ॥ १६१ ॥ भिच्छकन हवस न धन की रही । दार स्वरन सरता हुइ बही । एक बात मागन कउ आवै । बीसक बात घरै लै जावै ॥ १६२ ॥ बन बन चलत भए रघुनंदन । फूले पुहप बसंत जानु बन ।

मानो इन्द्र अपनी नगरी मे पधार रहे हो । मृदंग, पखावज आदि वाद्य बजने लगे और विभिन्न प्रकार के नृत्य होने लगे । सब लोग रामचन्द्र जी से आगे होकर आ मिले और पिता दशरथ अपने पुत्र को लेकर अवधपुरी (के महलो मे) पहुँच गए ॥ १५७ ॥ ॥ चौपाई ॥ सबने अत्यन्त उत्साहित होकर बाकी तीनो पुत्रो का भी विवाह आयोजित कर दिया । सीता और राम के विवाह के पश्चात् उनके घर वापस आने पर देश-विदेश से बधाई-सन्देश आये ॥ १५८ ॥ सब ओर अपार उत्साह का वातावरण था और तीनो पुत्रो के विवाह का आयोजन चल रहा था । सब ओर ताल, मृदग बजने लगे और अनेको मडलियाँ नृत्य करने लगी ॥ १५९ ॥ कवचधारी वीर सज-धजकर और नवयुवक सैनिक चल पड़े तथा ये सभी महारथी तथा महाधर्नुधर वीर राजा दशरथ के द्वार पर आ पहुँचे ॥ १६० ॥ विभिन्न वाद्य (चग, मुचग आदि) बजने लगे और ढोल-मृदग की सुरीली ध्वनियाँ सुनाई पडने लगी । चचल नारियाँ गीत गाने लगी और आँखो को नचाते हुए तालियाँ बजाकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने लगी ॥ १६१ ॥ भिक्षुको को भी धन की और इच्छा बाकी न रही, क्योकि दान का सोना नदी के समान बहने लगा । जो एक वस्तु माँगने के लिए आता, वह बीस वस्तुएँ प्राप्त कर घर को वापस जाता ॥ १६२ ॥ राजा दशरथ के पुत्र वनो मे विहार करते हुए ऐसे

सोभत केसर अंग डरायो । आनंद हिए उछर मन आयो ॥ १६३ ॥ साजत भए अमित चतुरंगा । उमँड चलत जिह बिध करि गंगा । भल भल कुअर चड़े सज सैना । कोटक्क चड़े सूर जनु गैना ॥ १६४ ॥ भरथ सहित सोभत सभ भ्राता । कहि न परत मुख ते कछु बाता । मातन मन सुंदर सुत मोहैं । जनु दिल ग्रहि रवि सस दोऊ सोहैं ॥ १६५ ॥ इह बिध कै सज सुद्ध बराता । कछु न परत कहि तिनकी बाता । बाढत कहत ग्रंथ बातन कर । बिदा होन सिस चले तात घर ॥ १६६ ॥ आइ पिता कहु कीन प्रनामा । जोर पान ठाढे बल धामा । निरख पुत्र आनंद मन भरे । दान बहुत बिप्पन कह करे ॥ १६७ ॥ तात मात लै कंठि लगाए । जन दुइ रतन निरधनी पाए । बिदा माँग जब गए राम घर । सीस रहे धर चरन कमल पर ॥ १६८ ॥ ॥ कवित्त ॥ राम

दिखाई देते है मानो वसंत ऋतु में फूल खिले हुए हों । अगों पर डाला हुआ केसर बाहर से ऐसे सुन्दर दिखाई पड़ रहा है मानो केसर के छीटो के रूप मे आनन्द हृदय से उमड़कर बाहर आ गया हो ॥ १६३ ॥ वे अपनी चतुरगिणी सेना को इस प्रकार सुसज्जित कर रहे है, मानो सेना के स्थान पर गगा उमडकर बह रही हो । अपनी-अपनी सेनाओ के साथ राजकुमार ऐसे शोभायमान हो रहे है, मानो आकाश मे करोड़ो सूर्य चढ़ आए हो ॥ १६४ ॥ भरत-सहित सभी भाई ऐसे शोभायमान हो रहे हैं कि उनकी शोभा का वर्णन नही किया जा सकता । सुन्दर राजकुमार अपनी माताओ के मन को मोह रहे है और इस प्रकार लग रहे है, मानो दिति के घर पर चन्द्र और सूर्य दोनो ने जन्म लेकर घर की शोभा को बढाया हो ॥ १६५ ॥ इस प्रकार सुन्दर बारात सजी, जिसका वर्णन नही किया जा सकता । यह सब कहने से ग्रंथ बढ जायगा । अतः ये सब बच्चे विदा होने की आज्ञा लेने के लिए पिता के महल की ओर चले ॥ १६६ ॥ उन सबने आकर पिता को प्रणाम किया और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए । पुत्रो को देखकर राजा प्रसन्नता से भर उठा और उसने बहुत सा दान ब्राह्मणो को दिया ॥ १६७ ॥ माता-पिता ने बच्चो को गले लगाकर उसी प्रकार प्रसन्नता अनुभव की जैसे कोई निर्धन रत्नो की प्राप्ति पर प्रसन्नता व्यक्त करता है । वहाँ से विदा होकर वे रामचन्द्र जी के महल मे पहुँचे और उनके चरणो पर अपने शीश झुका दिए ॥ १६८ ॥ ॥ कवित्त ॥ राम ने उन सबका सिर चूमा, प्रेम से उनकी पीठ पर हाथ रखा, उन्हे पान

बिदा करे सिर चूम्यो पान पीठ धरे आनद सो भरे लै तंबोर आगे धरे हैं। दुंदभी बजाइ तीनो भाई यौ चलत भए मानो सूर चंद कोटिआन अवतरे हैं। केसर सो भीजे पट सोभा देत ऐसी भाँत मानो रूप राग के सुहाग भाग भरे हैं। राजा अवधेश के कुमार ऐसे सोभा देत कामजू ने कोटक कलियोग कैधौ करे हैं ॥ १६९ ॥ ॥ कबित्त ॥ अउध ते निसर चले लीने संगि सूर भले रन (मू०ग्रं०२००) ते न टले पले सोभाहूँ के धाम के। सुंदर कुमार उरहार सोभत अपार तीनो लोग मद्ध की मुहय्या सभ बाम के। दुरजन दलय्या तीनो लोक के जितय्या तीनो राम जू के भय्या हैं चहय्या हरनाम के। बुद्ध के उदार हैं शिंगार अवतार दान सील के पहार कै कुमार बने राम के ॥ १७० ॥ ॥ अस्व बरननं ॥ ॥ कबित ॥ नागरा के नैन हैं कि चातरा के बैन हैं बघूला मानो गैन कैसे तैसे थहरत हैं। न्रितका के पाउ हैं कि जूप कैसे दाउ हैं कि छल को दिखाउ कोऊ तैसे बिहरत हैं। हाके बाज बीर हैं तुफंग कैसे तीर हैं कि अंजनी के

आदि प्रस्तुत किया और (प्रेमपूर्वक) उन सबको विदा किया। वाद्य एव दुदुभियाँ बजाते हुए सब लोग ऐसे चल पड़े मानो धरती पर करोड़ों चाँद-सूर्य अवतरित हो गए है। केसर से भीगे हुए वस्त्र ऐसे शोभा दे रहे है मानो स्वय सौदर्य साकार हो उठा हो। अवधनरेश दशरथ के राजकुमार ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो कामदेव अपनी कलाओं के साथ सुशोभित हो रहे हो ॥ १६९ ॥ ॥ कवित्त ॥ सभी अवधपुरी से निकल कर चल पड़े हैं और उन सबने अपने साथ युद्ध से कभी पीछे न हटनेवाले सुदर वीर अपने साथ ले लिये है। वे सुन्दर राजकुमार है, जिनके गले मे हार शोभा दे रहे है। वे सब स्त्रियो का वरण कर उन्हे ले आने के लिए जा रहे है। वे सभी दुर्जनो का दलन करनेवाले, तीनो लोको को जीत लेनेवाले प्रभु नाम के प्रेमी राम के भाई है। वे बुद्धि से उदार, शृंगार के मानो अवतार है, दानशीलता के पहाड है और रामचन्द्रजी के ही समान है ॥ १७० ॥ ॥ अश्व वर्णन ॥ ॥ कवित्त ॥ स्त्री के नयनो के समान चचल, चतुर व्यक्ति की तेज बातो के समान गतिमान अथवा आकाश मे उठे बगूले के समान चचल घोड़े इधर-उधर थरहरा रहे है। घोड़े ऐसे गतिमान है मानो नर्तकी के पाँव हो, पाँसा फेकनेवाले दाँव हो अथवा कोई छलावा हो। ये वीर घोडे, तीर और तुफंग के समान तेज गतिवाले है, अंजनीपुत्र हनुमान के समान चपल एवं बलशाली हैं और

धीर है कि धुजा से फहरत हैं। लहरै अनंग की तरंग जैसे गंग की अनंग कैस अग ज्यों न कहूँ ठहरत हैं ॥ १७१ ॥ निसा निसनाथि जानै दिन दिनपति मानै भिच्छकन दाता कै प्रमाने महाँ दान हैं। अउखधी कै रोगन अनंत रूप जोगन समीप कै बियोगन महेश महामान हैं। शस्त्र खग्ग ख्याता सिस रूपन के माता महाँ ग्यानी ग्यान ग्याता कै बिधाता कै समान हैं। गनन गनेश मानै सुरन सुरेश जाने जैसे पेखै तैसे ई लखे बिराजमान हैं ॥ १७२ ॥ सुधा सौ सुधारे रूप सोभत उजियारे किधौ साचे बीच ढारे महा सोभा कै सुधार कै। किधौ महामोहनी के मोहबे नमित्त बीर बिधना बनाए महाँविध सो बिचार कै। किधौ देव दैतन बिबाद छाड बडे चिर मथ कै समुंद्र छीर लीने है निकार है। किधौ बिस्वनाथ जू बनाए निज पेखबे कउ अउर न सकत ऐसी सूरतै सुधार कै ॥ १७३ ॥ सीम तज आपनी बिराने देस

ऐसे विचरण कर रहे हैं मानो ध्वजाएँ फहर रही हो। ये अश्व ऐसे है मानो कामदेव की तीव्र भावनाएँ हो, गगा की तेज लहरे हो। ये कामदेव के अगो के समान सुन्दर अंगवाले है और कही किसी एक स्थान पर स्थिर नही रहनेवाले है ॥ १७१ ॥ सभी राजकुमारो को रात तो चन्द्रमा समझ रही है और दिन उन्हे सूर्य मान रहा है। भिक्षुओ के लिए ये सभी महादानी के रूप मे जाने जाते हैं। रोग उन्हे ओषधि मानते है, वे अनत रूपवाले समीप होते है, तो उनके वियोग की आशंका बनी रहती है। वे सभी महेश के समान महामानी है। शस्त्रो एव खड्गो को चलाने मे ख्यातिप्राप्त, माताओ के लिए बच्चो के समान, महाज्ञानियो के लिए परमज्ञाता वे सभी (साक्षात्) विधाता के समान लग रहे है। सभी गण उनको गणेश मान रहे हैं और सभी देवता उन्हे इन्द्र मान रहे हैं। तात्पर्य यह है कि जो उनको जैसे देख रहा है वे वैसे ही उसके समक्ष विराजमान दिखाई दे रहे है ॥ १७२ ॥ अमृत से नहाए हुए, रूप और शोभा के प्रकाशस्वरूप ये परम सुन्दर राजकुमार ऐसे लग रहे है मानो उन्हे किसी साँचे मे ढालकर रचा गया हो। ऐसा लग रहा है मानो किसी महामोहनी को मोहित करने के लिए विधाता ने किसी विधि-विशेष से इन महान् वीरो की रचना की हो। अथवा ये वीर ऐसे लग रहे है, मानो देव-दानवो ने अपने विवादो को छोड़कर समुद्र को मथकर इन राजकुमार रूपी रत्नो को बाहर निकाला हो। या फिर यह लग रहा है कि विश्वनाथ परमातमा ने स्वय देखते रहने के लिए इन चेहरो को सुधारकर बनाया हो ॥१७३॥ अपने राज्य की सीमा पार कर अन्य देशो को लाँघकर ये सब (राजकुमार)

लाँघ लाँघ राजा मिथलेस के पहूचे देस आन कै। तुरही अनंत बाजे दुंदभी अपार गाजै भाँति भाँति बाजन बजाए ज़ोर जान कै। आगै आनि तीनै न्रिप कंठ लाइ लीने रीत रूड़ सभै कीने बैठे बेद कै बिधान कै। बरखियो धन की धार पाइयत न पारावार भिच्छक भए न्रिपार ऐसे पाइ दान कै।। १७४।। बाने फहराने घहराने दुंदभ अरराने जनकपुरी को निअराने बीर जाइकै। कहूँ चउर ढारै कहूँ चारण उचारै कहूँ भाटजु पुकारैं छंद सुंदर बनाइकै। कहूँ बीन बाजै कोऊ बासुरी म्रिदंग साजै देखे काम लाजै रहे भिचछक अघाइकै। रंक ते सु राजा भए (मू०ग्र०२०१) आसिख असेख दए माँगत न भए फेर ऐसो दान पाइकै।। १७५।। आन कै जनक लीनो कंठ सो लगाइ तिहूँ आदर दुरंतकै अनत भाँत लए हैं। बेद के बिधान कै कै ब्यास ते बधाई बेद एक एक बिप्र कउ बिसेख स्वरन दए हैं। राजकुअर सभै पहिराइ सिर पाइन ते मोती मान करके बरख मेघ गए हैं। दंती स्वेत दीने केते सिंधली तुरे नवीने राजा के कुमार

मिथिला के राजा (जनक) के यहाँ जा पहुँचे। पहुंचने पर इन लोगो ने अनेको प्रकार के वाजे और दुदुभियाँ पूरे ज़ोर के साथ बजाना शुरू कर दिया। राजा ने आगे बढकर तीनो को गले से लगा लिया। वेद-विधि से सभी रीतियो का पालन किया। धन की अनन्त धारा बरसने लगी और दान प्राप्त करके भिक्षुक भी राजा बन गए।। १७४।। ध्वजाएँ फहराने लगी, दुदुभियाँ वजने लगी और जनकपुरी के पास जाकर शूरवीर गर्जन करने लगे। कही पर चँवर झुलाया जा रहा है, कही चारण स्तुतिगान कर रहे थे तथा कही पर भाट लोग सुन्दर छद बनाकर सुना रहे थे। कही वीणा वज रही है, कही बाँसुरी, मृदग आदि वाद्य बज रहे है। यह सब देखकर कामदेव भी लजा रहा है और इतना दान दे दिया गया कि भिक्षुक भी अघा गए है। रक राजा हो गए और आशीषे देने लगे। दान पाने के वाद किसी की भी माँगने की प्रवृत्ति बाकी न बची।। १७५।। जनक ने आकर तीनो को गले से लगा लिया और विविध प्रकार से उनका आदर किया। वेदो के विधान का पालन किया गया और व्यासो ने वेदोक्त वधाई-वाक्य कहे। राजा ने एक-एक विप्र को विशेष प्रकार से स्वर्णदान दिया। राजकुमारों को भेंटे दी गयी और मोतियो की मेघ-वर्षा की गई। सफेद हाथी और सिंधुप्रदेश के चपल अश्व राजकुमारो को भेट मे दिए गए। इस प्रकार तीनो राजकुमार

तीनो ब्याहकै पठए हैं ॥ १७६ ॥ ॥ दोधक छंद ॥ ब्याह सुता न्रिप की न्रिपबालं। माँग बिदा मुखि लीन उतालं। साजन बाज चले गज संजुत। एशनएश नरेशन के जुत ॥१७७॥ दाज शुमार सकै कर कउनै। बीन सकै बिधना नही तउनै। बेसन बेसन बाज महा मत। भेसन भेस चले गज गज्जत ॥ १७८ ॥ बाजत नाद नफीरन के गन। गाजत सूर प्रमाथ महा मन। अउधपुरी निअरान रही जब। प्राप्त भए रघुनंद तही तब ॥ १७९ ॥ मातन वार पियो जल पानं। देख नरेश रहे छबि मानं। भूप बिलोकत लाइ लए उर। नाचत गावत गीत भए पुर ॥ १८० ॥ भूपज ब्याह जबै ग्रहि आए। बाजत भाँति अनेक बधाए। तात बशिष्ट सुमित्र बुलाए। अउर अनेक तहाँ रिख आए ॥ १८१ ॥ घोर उठी घहराइ घटा तब। चारो दिस दिग दाह लख्यो सभ। मंत्री मित्र सभै अकुलाने। भूपत सो इह भाँत बखाने ॥१८२॥ होत उतपात बडे सुन राजन। मंत्र करो रिख जोर समाजन।

विवाह करके चल पड़े है ॥ १७६ ॥ ॥ दोधक छद ॥ राजा जनक की कन्याओ से विवाह करके राजकुमारो ने शीघ्र ही बिदाई माँग ली। हाथियो और घोड़ो से युक्त राजाओ के झुण्ड-समेत अनेक कामनाओ को मन मे रखते हुए सभी लोग चल पड़े ॥ १७७ ॥ दहेज इतना दिया गया कि उसे ब्रह्मा भी इकट्ठा करके नही रख सकते थे। अनेक प्रकार के घोड़े और अनेक वेशो मे सुसज्जित गरजते हुए हाथी चल पड़े ॥१७८॥ नफीरो की ध्वनि बज उठी और महाबलशाली शूरवीर गरजने लगे। जब अवधपुरी पास आ गई तब सबको रामचन्द्रजी ने स्वागत किया ॥१७९ माताओं ने राजकुमारो पर न्योछावर करके जल-पान किया और राजा दशरथ इस छवि को देख मन मे प्रसन्न हो उठे। राजा ने देखते ही सबको गले लगा लिया और सभी लोग नाचते-गाते नगर मे प्रवेश कर गए ॥ १८० ॥ राजकुमार विवाह के बाद जब घर आये तो अनेक प्रकार की बधाइयों के गीत गूंजने लगे। दशरथ ने वशिष्ठ एवं सुमन्त्र को बुलाया तथा उनके साथ अन्य कई ऋषि भी आ पहुँचे ॥ १८१ ॥ उसी समय चारों ओर घटाएँ घहराने लगी और सबने चारो दिशाओ मे अग्नि-ज्वालाओं को प्रत्यक्ष देखा। यह देखकर सभी मन्त्री तथा मित्र व्याकुल हो उठे और राजा से इस प्रकार निवेदन करने लगे ॥१८२॥ हे राजन्! चारो ओर बहुत उत्पात हो रहा है, इसलिए सब ऋषियो और परामर्श-

बोलहु बिप्प बिलंब न कीजै। है क्रित जग्ग अरंभन कीजै ॥ १८३ ॥ आइस राज दयो ततकालह। मंत्र सुमित्रह बुद्ध बिसालह। है क्रित जग्ग अरंभन कीजै। आइस बेग नरेश करीजै ॥ १८४ ॥ बोल बडे रिख लीन महाँ दिज। है तिन बोल लयो जु तरित्तज। पावक कुंड खुद्यो तिह अउसर। गाडिय खंभ तहाँ धरमं धर ॥ १८५ ॥ छोरि लयो हयसारह ते हय। असित करन प्रभासत के क्षय। देसन देस नरेश दए संगि। सुंदर सूर सुरग सुभं अंग ॥१८६॥ ॥ समानका छंद ॥ नरेश संगि कै दए। प्रबीन बीन कै लए। सनद्धबद्ध हुइ चले। सु बीर बीर हा भले ॥१८७॥ बिदेस (मू०ग्रं०२०२) देस गाहकै। अदाह ठउर दाहकै। फिराइ बाज राज कउ। सुधार राज काज कउ ॥ १८८ ॥ नरेश पाइ लागियं। दुरंत दोख भागियं। सुपूर जग्ग को कर्‍यो। नरेश त्रास कउ हर्‍यो ॥ १८९ ॥ अनंत दान पाइकै। चले दिजं अघाइ कै। दुरंत आसिखैं रड़ैं। रिचा सु बेद की पड़ैं ॥ १९० ॥ नरेश

दाताओं को बुलाकर विचार-विमर्श कीजिए। ब्राह्मणो को अविलम्ब बुला लीजिए और क्रत-यज्ञ प्रारम्भ कीजिए ॥ १८३ ॥ मित्रों एव मंत्रियों की विशाल बुद्धि के अनुरूप, हे राजन्! तत्काल आदेश कीजिए और क्रत-यज्ञ को अविलम्ब प्रारम्भ कीजिए ॥ १८४ ॥ राजा ने बड़े ऋषियो और महान मित्रो को तुरन्त बुला लिया। वही पर अग्निकुड खोदा गया तथा धर्मस्तम्भ की स्थापना की गई ॥ १८५ ॥ घुड़साल से घोडे को छोड़ दिया गया, ताकि अन्य राजाओ की प्रभा को समाप्त कर उन्हे जीता जा सके। देश-देशान्तरो के राजा घोडे के साथ भेजे गए और ये सब अत्यन्त सौन्दर्यमय अंगो वाले तथा शोभा को बढानेवाले थे ॥१८६॥ ॥ समानका छद ॥ राजा ने चुन-चुनकर प्रवीण नरेशों को साथ भेजा और वे पूर्ण रूप से सुसज्जित होकर चल पडे। ये वीर बहुत ही भली प्रकार के वीर थे ॥ १८७ ॥ इन्होने देश-विदेशो मे विचरण किया और सब स्थानो मे अपने तेज की ज्वाला जलाकर सबको भस्म किया। अश्व को चारो ओर घुमाया और इस प्रकार राजा दशरथ के राजकाज मे वृद्धि की ॥ १८८ ॥ अनेको नरेश चरणो पर आ लगे और इन्होने उनके कष्टो का निवारण किया। राजा ने यज्ञ सम्पूर्ण किया और इस प्रकार प्रजा के कष्ट का हरण किया ॥ १८९ ॥ विभिन्न प्रकार का दान पाकर, विभिन्न प्रकार के आशीर्वाद देते हुए और वेदो की ऋचाओ का गायन

देस देस के। सुभंत बेस बेस के। बिसेख सूर सोमहीं। सुशील नारि लोभहीं ॥ १६१ ॥ बजंत्र कोट बाजहीं। सनाइ भरे साजहीं। बनाइ देवता धरैं। समान जाइ पा परैं ॥१६२॥ करै डँडउत पा परै। बिसेख भावना धरै। सु मंत्र जंत्र जापिए। दुरंत थाप थापिऐ ॥ १६३ ॥ नचात चारु मंगना। सुजान देव अंगना। कमी न कउन काज की। प्रभाव रामराज की ॥ १६४ ॥ ॥ सारसुती छंद ॥ देस देसन की क्रिआ सिखवंत हैं दिज एक। बान अउर कमान की बिध देत आन अनेक। भाँत भाँतन सों पड़ावत बार नार शिंगार। कोक काव्य पड़ै कहूँ ब्याकरन बेद बिचार ॥ १६५ ॥ राम परम पवित्र है रघुबंस के अवतार। दुष्ट दैतन के सँघारक संत प्रान अधार। देसि देसि नरेश जीत असेस कीन गुलाम। जत्र तत्र धुजा बधी जैपत्र की सभ धाम ॥ १६६ ॥ बाट तोन

करते हुए विप्रगण प्रसन्न मन से सतुष्ट होकर वापस चल पड़े ॥ १९० ॥ देश-देशान्तरो के राजा विभिन्न वेशो मे शोभायमान होने लगे और शूरवीरो की विशेष शोभा को देखकर सुन्दर एव सुशील स्त्रियाँ भी उन पर मोहित होने लगी ॥ १९१ ॥ करोडो वाद्य वजने लगे और सभी प्रेम से भरे हुए शोभायमान हो रहे थे। देवताओ की स्थापना हो रही थी और सभी आभारस्वरूप देवताओ को प्रणाम कर रहे थे ॥ १९२ ॥ सभी लोग दण्डवत कर चरण-वन्दना करने लगे और विशेष भावनाओ को मन मे धारण करने लगे। मन्त्रो-यन्त्रो का जाप होने लगा और गणो की स्थापना होने लगी ॥ १९३ ॥ सुन्दर स्त्रियाँ और अप्सराएँ नृत्य करने लगी। इस प्रकार रामराज्य के प्रभाव के फलस्वरूप राज्य मे किसी प्रकार की भी कमी न रही ॥ १९४ ॥ ॥ सरस्वती छद ॥ एक ओर द्विजगण विभिन्न देशो की क्रियाओ की शिक्षा दे रहे हैं और एक ओर धनुष-बाण चलाने की विधियो का निरूपण किया जा रहा है। नारियो के शृगार सम्बन्धी विभिन्न प्रकार का शिक्षण चल रहा है और कोक-शास्त्र, काव्य, व्याकरण और वेद-विचार भी साथ-साथ चल रहे हैं ॥ १९५ ॥ रघुवश के अवतार श्रीरामचन्द्र परमपवित्र हैं तथा दुष्ट दैत्यो का सहार करके सन्तो के प्राणो के आधार भी है। देश-देशान्तरो के राजाओ को जीतकर इन्होने उन्हे अपना दास बना लिया है और यत्र-तत्र-सर्वत्र इनके विजयपत्रको वाली ध्वजाएं फहर रही हैं ॥ १९६ ॥ राजा ने वशिष्ठ से काफी समय तक विचार-विमर्श करने

दिशा तिहूँ सुत राजधानी राम। बोल राज बिशिष्ट कीन बिचार केतक जाम। साज राघव राज के घट पूर राखशि एक। आंब्र मउलन दीसु उदकं अउर पुहप अनेक ॥ १९७ ॥ थार चार अपार कुंकम चंदनादि अनंत। राज साज धरे सभै तह आन आन दुरंत। मंथरा इक गांध्रबी ब्रहमा पठी तिह काल। बाज साज सणै छड़ी सभ सुभ्र धउल उताल ॥ १९८ ॥ बेण बीण म्रदग बाज सुणे रही चक बाल। रामराज उठी जयत धुनि भूम भूर बिसाल। जात ही सगि केकई इह भाँत बोली बाति। हाथ बात छुटो चली बर माँग हैं किह राति ॥ १९९ ॥ केकई इम जउ सुनी भई दुक्खता सरबंग। झूम भूम गिरी म्रिगी जिम लाग बाण सुरग। जात हो अवधेश कउ इह भाँत बोली बैन। दीजिऐ बर भूप मोकउ जो कहे दुइ दैन ॥२००॥ राम को बन दीजिऐ (मू०ग्रं०२०३) मम पूत कउ निज राज। राज साज सु संपदा दोऊ चउर छत्र समाज।

के बाद तीनो पुत्रो को तीन दिशाओ का राज्य तथा रामचन्द्र को राजधानी अयोध्या का राज्य दे दिया। राघवराज दशरथ के घर मे (वेश बदलकर) एक राक्षसी रहती थी, जिसने इस सब कार्य के लिए अबीर, धागा, जल एव पुष्प आदि प्रस्तुत किए ॥ १९७ ॥ चार थार जिसमे कुकुम, चन्दन आदि रखे थे वे सब सजाकर राजा के पास इस कार्य की पूर्ति के लिए रख दिए गए। उसी क्षण ब्रह्मा ने मथरा नामक एक गन्धर्व-स्त्री को उस जगह भेजा जो सब प्रकार की कलाओ से सुसज्जित हो श्वेत वस्त्र धारण कर शीघ्रतापूर्वक चल पड़ी ॥ १९८ ॥ वेणु, वीणा, मृदग एव अन्य वाद्यो की ध्वनि को वह चकित हो सुनने लगी और उसने यह भी देखा कि विशाल भूमि पर राम-राज्य के जय-जयकार की ध्वनि सुनाई पड रही है। कैकेयी के पास जाते ही वह इस प्रकार कहने लगी कि जब बात हाथ से निकल जायेगी तब तुम किसके लिए वर माँगोगी ॥ १९९ ॥ कैकेयी ने जब सारा प्रसग सुना तो वह सर्वांग रूप से दु:खित हो उठी और अचेत हो भूमि पर इस प्रकार गिर पडी मानो वाण लगने पर हिरणी गिर पड़ती है। वह अवधनरेश दशरथ के पास जाते ही यह कहने लगी कि हे राजन्! आपने जो दो वरदान मुझे देने का वादा किया था वे वरदान मुझे अभी दीजिए ॥ २०० ॥ राम को वनवास दीजिए और मेरे पुत्र को अपना राज्य दीजिए। उसको (भरत को) राज्यकाज, सम्पदा, चँवर और छत्र सब कुछ दे दीजिए देश और विदेश सबका राज्य जब आप मुझे दे देगे, तभी मै आपको

देस अउरि बिदेस की ठकुराइ दै सभ मोहि। सतत सील सती जतिब्रत तउ पछानो तोहि ॥ २०१ ॥ पापनी बन राम को पैहैं कहा जस काढ। भसम आनन ते गई कहि कै सके असि बाढ। कोप भूप कुअंड लै तुहि काटिऐ इह काल। नास तोरन कीजिऐ तक छातिऐ तुहि बाल ॥ २०२ ॥ ॥ नग सरूपी छंद ॥ नरदेव देव राम है। अभेव धरम धाम है। अबुद्ध नारि तै मनै। बिसुद्ध बात को भनै ॥ २०३ ॥ अगाधि देव अनंत है। अभूत सोभवंत है। क्रिपाल करम कारणं। बिहाल द्याल तारणं ॥ २०४ ॥ अनेक संत तारणं। अदेव देव कारणं। सुरेश भाइ रूपणं। समिद्ध्र सिद्ध कूपणं ॥ २०५ ॥ बर नरेश दीजिऐ। कहे सु पूर कीजिऐ। न संक राज धारिऐ। न बोल बोल हारिऐ ॥ २०६ ॥ ॥ नग सरूपी अद्धा छंद ॥ न लाजिऐ। न भाजिऐ। रघुएश को। बनेस को ॥ २०७ ॥ विदा करो। धरा हरो।

सत्यशील का पालन करनेवाला और यतिधर्म की पहचान करनेवाला मानूंगी ॥ २०१ ॥ राजा ने उत्तर दिया कि हे पापिनी ! राम को वन मे भेजकर तुमको कौन सा यश प्राप्त होगा ? तुम्हारे इस प्रकार वढकर कहने से मेरे माथे पर से छूटते हुए पसीने के साथ मेरे मस्तक की विभूति रूपी भस्म भी बह गई। राजा ने क्रोधित होकर हाथ मे धनुष लेते हुए यह कहा कि मै अभी तुमको काट फेकता और तुम्हारा नाश कर देता हूँ, परन्तु स्त्री होने के नाते तुम्हे छोड देता हूँ ॥ २०२ ॥ ॥ नगस्वरूपी छद ॥ नरो मे श्रेष्ठ देव राम है जो कि निश्चित रूप से धर्म के धाम है। हे बुद्धिहीन नारि ! तुम इस प्रकार की उलटी वात क्यो कह रही हो ॥ २०३ ॥ वे अगाध रूप से अनन्त देव-तुल्य है और सर्वभूतो से परे शोभायमान है। वे सव पर कृपा करनेवाले कृपालु है और बे-सहारो को दयापूर्वक सहारा देकर पार ले जानेवाले है ॥ २०४ ॥ वे अनेक सन्तो का उद्धार करनेवाले है तथा देव और अदेवो के मूल कारणस्वरूप (परब्रह्म) है। वे देवताओ के भी राजा है और समस्त सिद्धियो के भण्डार है ॥ २०५ ॥ रानी ने कहा कि हे राजन् ! मुझे वरदान दीजिए और अपनी कही हुई बात को पूरा कीजिए। मन मे द्विविधा की स्थिति का त्याग कीजिए और अपने वचन को मत हारिए ॥२०६॥ ॥ नगस्वरूपी अर्ध छद ॥ हे राजन् ! संकोच मत कीजिए और वचन से मत भागिए तथा राम को वनवास दीजिए ॥ २०७ ॥ राम को विदा करो

न भाजिऐ। बिराजिऐ ॥ २०८ ॥ बशिष्ट को। दिजिष्ट को। बुलाइऐ। पठाइऐ ॥ २०९ ॥ नरेश जी। उसेस ली। घुमे घिरे। धरा गिरे ॥ २१० ॥ सुचेत भे। अचेत ते। उसास लै। उदास ह्वै ॥ २११ ॥ ॥ उगाध छंद ॥ सबार नैणं। उदास बैणं। कह्यो कुनारी। कुब्रितकारी ॥ २१२ ॥ कलंक रूपा। कुबिरत कूपा। निलज्ज नैणी। कुबाक बैणी ॥ २१३ ॥ कलंक करणी। सम्रिद्ध हरणी। अक्रित्त करमा। निलज्ज धरमा ॥ २१४ ॥ अलज्ज धामं। निलज्ज बामं। असोभ करणी। ससोभ हरणी ॥ २१५ ॥ निलज्ज नारी। कुकरम कारी। अधरम रूपा। अकज्ज कूपा ॥ २१६ ॥ पहुपिट आरी। कुकरम कारी। मरै न मरणी। अकाज करणी ॥ २१७ ॥ ॥ केकई बाच ॥ नरेश मानो। कह्यो पछानो। बद्यो सु देहू। बरं दु मोहू ॥ २१८ ॥ चितार लीजै। कह्यो सु दीजै। न

और उसको दिया हुआ (देने के लिए सोचा हुआ) राज्य ले लो। वचन को पालने से दूर मत भागिए और शातिपूर्वक विराजिए ॥ २०८ ॥ हे राजन्! वशिष्ठ और राजपुरोहित को बुलाइए और (राम को) वन भेजिए ॥ २०९ ॥ राजा ने लबी साँस ली, इधर-उधर घूमा और धरती पर गिर पड़ा ॥ २१० ॥ अचेतावस्था से राजा फिर होश मे आया और उसने उदास होकर लबी साँस ली ॥ २११ ॥ ॥ उगाध छद ॥ आँखो मे आँसू भरकर उदास वाणी से राजा ने (कैकेयी से) कहा कि तुम नीच एव कुवृत्ति वाली स्त्री हो ॥ २१२ ॥ तुम (स्त्री-जाति पर) कलंक-स्वरूप हो और कुवृत्तियो का भडार हो। तुम्हारी आँखो मे लज्जा नही और तुम्हारे बोल दुर्वचन है ॥ २१३ ॥ तुम कलकिनी हो और समृद्धि का हरण करनेवाली हो। तुम अकृत्यो (निषिद्ध कर्मो) को करनेवाली हो और निर्लज्जता ही तुम्हारा धर्म है ॥ २१४ ॥ तुम निर्लज्जता का घर हो और सकोच को त्यागनेवाली स्त्री हो। तुम अशोभित कर्मो को करनेवाली हो और शोभा का हरण करनेवाली हो ॥ २१५ ॥ हे निर्लज्ज नारी! तुम कुकर्मो को करनेवाली अधर्मस्वरूपा और बुरे कामो का भडार हो ॥ २१६ ॥ पुष्पो को काट फेकनेवाली आरी-स्वरूपा स्त्री! तुम कुकर्मी हो। मारने पर भी तुम बुरे कार्यो से विलग होकर नही मरोगी और सदैव निषिद्ध कार्य ही करती रहोगी ॥ २१७ ॥ ॥ कैकेयी उवाच ॥ हे राजन्! मेरी बात मानो और अपने कथन का स्मरण कर जो आपने वचन दिया है उसके अनुरूप मुझे दो वर दो ॥ २१८ ॥ भली-

धरम (मू०ग्रं०२०४) हारो। न भरम टारो ॥ २१९ ॥ बुलै वशिष्टै। अपूर्व इष्टै। कही सिएसै। निकार देसै ॥२२०॥ बिलम न कीजै। सु मान लीजै। रिखेश रामं। निकार धामं ॥ २२१ ॥ रहे न इआनी। भई बिवानी। चुपं न बउरी। बकंत डउरी ॥ २२२ ॥ ध्रिगं सरूपा। निखेध कूपा। द्रुबाक बैणी। नरेश छैणी ॥ २२३ ॥ निकार रामं। अधार धामं। हत्यो निजेशं। कुकरम भेसं ॥ २२४ ॥ ॥ उगाथा छंद ॥ अजित्त जित्ते अबाह बाहे। अखंड खंडे अदाह दाहे। अभंड भंडे अडंग डंगे। अमुंन मुंने अभंग भगे ॥ २२५ ॥ अकरम करमं अलक्ख लक्खे। अडंड डंडे अभक्ख भक्खे। अथाह थाहे अदाह दाहे। अभंग

भाँति स्मरण कीजिए और जो कहा है उसे दीजिए। अपने धर्म का त्याग मत करिए और मेरे विश्वास को मत तोड़िए ॥ २१९ ॥ वशिष्ठ को बुलाइए और जो अपूर्व सुनियोजित है उसे क्रियान्वित कीजिए। सियापति राम को आदेश दीजिए और उसे देश से निकाल दीजिए ॥२२०॥ इस कार्य मे विलम्ब मत कीजिए और मेरा कहना मान लीजिए। राम को ऋषि बनाकर (अर्थात् वल्कल धारण करवा कर) घर से निकाल दीजिए ॥ २२१ ॥ (कवि कहता है कि) वह बच्चो की तरह ज़िद कर रही थी और दीवानी हो उठी थी। वह चुप ही नही हो रही थी और पागलो के समान बकती चली जा रही थी ॥२२२॥ वह धिक्कारस्वरूपा और निषिद्ध कर्मों का भंडार थी। नरेश के बल को क्षीण करनेवाली वह दुर्वाक्य बोलनेवाली (रानी) थी ॥ २२३ ॥ उसने घर के मूलभूत आधार राम को निकलवा दिया और इस प्रकार अपने पति को भी (वियोग-दु ख से) मार डालने का कुकर्म किया ॥ २२४ ॥ ॥ उगाथा छद ॥ (कवि कहता है कि स्त्री ने) अजेयो को जीत लिया, न नष्ट होने वालो को नष्ट कर दिया, अखड को खडित कर दिया और कभी भी न पिघलनेवालो को जलाकर भस्म कर दिया है। जिनकी कभी निन्दा नही हुई थी उनको (इसने) निन्दनीय बना दिया और जिन पर कभी चोट नही हो सकती थी उनको भी इसने काट खाया। कभी भी न छले (मूँडे जा सकनेवालो को इसने मूँड़ डाला और अभजनशीलो का इसने भंजन कर दिया ॥ २२५ ॥ इसने कर्म (-काण्डो) मे अलिप्त बने रहनेवालों को कर्मों मे उलझा दिया और इसकी दृष्टि इतनी तेज़ है कि यह भावी को भी देख सकती है। अदंडनीय को यह दडित और अभक्ष्य का भी यह भक्षण कर सकती है। इसने अथाह की भी थाह पा ली है और

भंगे अबाह बाहे ॥ २२६ ॥ अभिज्ज भिज्जे अजाल जाले । अखाप खापे अचाल चाले । अभिन भिने अडड डॉडे । अकित्त कित्ते अमुंड माँडे ॥ २२७ ॥ अछिन्न छिद्दे अदग्ग दागे । अचोर चोरे अठग्ग ठागे । अभिद्द भिद्दे अफोड़ फोड़े । अकज्ज कज्जे अजोड़ जोड़े ॥ २२८ ॥ अदग्ग दग्गे अमोड़ मोड़े । अखिच्च खिच्चे अजोड़ जोड़े । अकड्ढ कड्ढे असाध साधे । अफट्ट फट्टे अफाध फाधे ॥ २२९ ॥ अधंध धंधे अकज्ज कज्जे । अभिन भिने अभज्ज भज्जे । अछेड़ छेड़े अलद्ध लद्धे । अजित्त जित्ते अबद्ध बद्धे ॥ २३० ॥ अचीर चीरे अतोड़ ताड़े । अठट्ट ठट्टे अपाड़ पाड़े । अधक्क धक्के अपंग

अदग्ध बने रहनेवालो को भी इसने दग्ध कर दिया है । अभंजनशीलो को इसने तोड़कर रख दिया है और न हिलनेवालो को इसने अपना वाहन बना लिया है ॥ २२६ ॥ भीग न सकनेवालो को इसने (अपने रग में) रँग दिया है और अज्वलनशीलो को इसने अपनी ज्वाला से जला दिया है । अक्षय बने रहनेवालो का इसने क्षय कर दिया है और गतिहीनो को इसने गतिमान बना दिया है । समरूप बने रहनेवालो को इसने खड-खंड कर दिया है और अदडनीय लोगो को इसने दडित करवा दिया है । अकृत्यो को यह करनेवाली है और खडन योग्य का यह मडन करनेवाली है ॥२२७॥ इसने (दोष रूपी) छिद्रो से विहीन व्यक्तियो को छेदकर रख दिया और बेदाग लोगो को दागी कर दिया । चौर्यकर्म से विरत लोगो को चोर और ठगी न करनेवालो को इसने ठग बना दिया । अभेद्यो का इसने भेदन किया और कभी न टूट सकनेबालो को इसने फोड़ दिया । इसने नंगो को ढक दिया और कभी न जुड सकनेवालो को जोड़ दिया ॥ २२८ ॥ अदग्धशीलो को जला दिया और न मुड़नेवालो को इसने मोड दिया । न खिच सकनेवालो को इसने खीच दिया और अजोडो को इसने जोड़ दिया । कभी (घर से) न निकलनेवालो को इसने निकाल दिया और असाध्यो को भी इसने साध लिया । घायल न हो सकनेवालो को इसने घायल कर दिया और न फँसनेवालो को इसने फांस लिया ॥ २२९ ॥ त्याज्य-कार्य इसके काम हैं और दुराचार को यह ढकनेवाली है । एक रूप बने रहनेवालो मे यह भिन्नता पैदा करनेवाली है और न भागनेवाले भी इसके सामने भाग खड़े होते है । यह शान्त व्यक्ति को भी छेड़नेवाली और अत्यन्त गुप्त को भी ढूंढ निकालनेवाली है । अजेयो को यह जीतने वाली और अवध्यों का यह वध करनेवाली है ॥ २३० ॥ कठोर को भी यह चीर देनेवाली और तोड़ देनेवाली है । अनस्थापितो को यह स्थापित

पंगे । अजुद्ध जुद्धे अजंग जंगे ।। २३१ ।। अकुट्ट कुट्टे अघुट्ट आए । अचूर चूरे अदाव दाए । अभीर भीरे अभंग भंगे । अटुक्क टुक्के अकंग कगे ।। २३२ ।। अखिद्द खेदे अढाह ढाहे । अगंज गंजे अबाह बाहे । अभुंन भुंने अहेह हेहे । विरचंत नारी त सुक्ख केहे ।। २३३ ।। ।। दोहरा ।। इह बिधि कैकई हठ गह्यो बर माँगन न्रिप तीर । अति आतर क्या कहि सकै बिध्यो काम के तीर ।। २३४ ।। ।। दोहरा ।। बहु बिधि पर पाइन रहे मोरे बचन अनेक । गहिअउ हठि अबला रही मान्यो बचन न एक ।। २३५ ।। बर द्यो मै छोरो नही तै करि कोटि उपाइ । (मू०ग्रं०२०५) घर मो सुत कउ दीजिऐ बनबासै रघुराइ ।। २३६ ।। भूप धरन बिन बुद्धि गिर्यो सुनत बचन

करनेवाली तथा न फट सकनेवालो को यह फाड़ देनेवाली है। अचल को भी यह धकेल देनेवाली और स्वस्थ को भी यह पगु बना देनेवाली है। बलवानो से यह युद्ध करती है और जिन महावलियो से युद्ध करती है उनकी युद्धकला को मुर्चा लगाकर उन्हे खत्म कर देती है ।। २३१ ।। महाबलशालियों को इसने पीटकर रख दिया और कभी भी न घुट सकनेवाले भी इसकी शरण मे आते है (और इससे कलाएँ सीखते हैं)। कठोरतमो को इसने चूर्ण बना दिया और कभी भी दाँव न खानेवालो को भी इसने धोखा दे दिया। अभयो को इसने भयभीत कर दिया और अभजनशीलो का इसने भंजन कर दिया। न टूटनेवालो के इसने टुकड़े कर दिए और स्वस्थ शरीरवालो को इसने अपाहिज बना दिया ।। २३२ ।। डटनेवालो को इसने खदेड़ दिया और कभी न गिरनेवालो को इसने गिरा दिया। अभजनशीलो को इसने तोड़ दिया और बड़ो-बड़ो पर इसने सवारी की अर्थात् उन्हें अपना दास बनाया। कभी भी धोखा न खाने वालों को इसने छल लिया। जिस घर मे नारी ही भाग्यविधाता अर्थात् हर मामले की निर्णायक हो तो वहाँ सुख-समृद्धि कैसे रह सकती हैं ।। २३३ ।। ।। दोहा ।। इस प्रकार कैकेयी ने राजा के पास वरदान माँगने के समय बहुत हठ किया। राजा भी बहुत व्याकुल हो उठा, लेकिन कामिनी स्त्री के मोह और कामदेव के प्रभाव के कारण कुछ भी कहने मे असमर्थ हो गया ।।२३४।। ।।दोहा।। राजा बहुत प्रकार से पैर पकड़कर रानी के वचनो को मोड़ा (अर्थात् टालने का प्रयास किया), परन्तु उस स्त्री ने अबला बनते हुए अपना हठ बनाए रखा और राजा की एक भी बात नही मानी ।। २३५ ।। वरदान लिये बिना मैं छोड़ूँगी नही चाहे आप करोड़ो उपाय कर लें। मेरे पुत्र को राज्य दीजिए और रामचन्द्र को वनवास

त्रिय कान । जिम त्रिगेश बन के बिखै बध्यो बध करि बान ॥२३७॥ तरफरात प्रिथवी पर्यो सुनि बन राम उचार । पलक प्रान त्यागे तजत मछ्छि सफरि सर बार ॥ २३८ ॥ राम नाम स्रवनन सुण्यो उठि थिर भयो सुचेत । जनु रण सुभट गिर्यो उठ्यो गहि अस निडर सुचेत ॥ २३९ ॥ प्रान पतन न्रिप बर सहो धरम न छोरा जाइ । दैन कहे जो बर हुते तन जुत दए उठाइ ॥ २४० ॥ ॥ केकई बाच न्रिपो बाच बशिष्ट सों ॥ ॥ दोहरा ॥ राम पयानो बन करै भरथ करै ठकुराइ । बरख चतरदस के बिते फिरि राजा रघुराइ ॥ २४१ ॥ कही बशिष्ट सुधार करि स्री रघुबर सो जाइ । बरख चतुरदस भरथ न्रिप पुनि न्रिप स्री रघुराइ ॥ २४२ ॥ सुनि बशिष्ट को बच स्रवण रघुपति फिरे ससोग । उत दसरथ तन को तज्यो स्री रघुबीर बियोग ॥२४३॥ ॥ सोरठा ॥ ग्रहि आवत रघुराइ सभु धन दियो लुटाइकै । कटि तरकशी सुहाइ बोलत भे सिय सो बचन ॥ २४४ ॥ ॥ सोरठा ॥ सुनि सिय सुजस सुजान रहौ

दीजिए ॥ २३६ ॥ स्त्री के यह वचन सुनकर राजा अचेत होकर भूमि पर ऐसे गिर पड़ा, जैसे बाणो से बिंधकर शेर वन मे गिर पड़ता है ॥२३७॥ राम के वनवास की वात सुनकर राजा तड़फकर धरती पर ऐसे गिर पडा जैसे मछली जल से निकाल देने पर तड़फती है और प्राणो का त्याग कर देती है ॥ २३८ ॥ पुनः राम का नाम सुनने पर राजा चेतावस्था में आया और ऐसे उठ खडा हुआ जैसे युद्ध मे वीर अचेत होकर गिरने के बाद होश मे आने पर कृपाण पकड़कर उठ खड़े होते है ॥ २३९ ॥ राजा ने प्राणो का निकलना अर्थात् मृत्यु को स्वीकार कर लिया, परन्तु धर्म छोडना उचित नही समझा और जो वरदान देने को कहा था उन्हे मान लिया तथा राम को वनवास दे दिया ॥ २४० ॥ ॥ कैकेयी उवाच, नृप उवाच वशिष्ठ के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ राम को वनवास दे दीजिए और भरत को राज दे दीजिए । चौदह वर्ष के बाद रामचन्द्र पुनः राजा होगे ॥ २४१ ॥ वशिष्ठ ने यही वात अपने ढग से थोडा सुधार कर रामचन्द्र को कह दी कि चौदह वर्ष तक भरत राज्य करेगे और पुन आप राजा होगे ॥२४२॥ वशिष्ठ की वात सुनकर रघुवीर (राम) उदास मन से चल दिए और इधर राम के वियोग मे राजा ने प्राण त्याग दिए ॥२४३॥ ॥ सोरठा ॥ अपने महल तक पहुँचते ही रामचन्द्र जी ने सारा धन लुटाकर दान कर दिया और कमर में तरकश बाँधकर सीताजी से कहने

कौशल्या तीर तुम। राज करउ फिरि आन तोहि सहित बनबास बसि ॥ २४५ ॥ ॥ सीता बाच राम सों ॥ ॥ सोरठा ॥ मै न तजो पिय संगि कैसोई दुख जिय पै परो। तनक न मोरउ अंगि अंगि ते होइ अनंग किन ॥ २४६ ॥ ॥ राम बाच सीता प्रति ॥ ॥ मनोहर छंद ॥ जउ न रहउ ससुरार क्रिसोदर जाहि पिता ग्रिह तोहि पठै दिउ। नेक सु भानन ते हम कउ जोई ठाट कहो सोई गाठ गिठै दिउ। जे किछु चाह करो धन की टुक मोह कहो सभ तोहि उठै दिउ। केतक अउध को राज सलोचन रंक को लंक निशक लुटै दिउ ॥ २४७ ॥ घोर सिया बन तूं सुकुमार कहो हमसों कस तै निबहैहै। गुंजत सिंघ डकारत कोल भयानक भील लखै भ्रम ऐहै। संकत साप बकारत बाघ भकारत भूत महा दुख पैहै। तूं सुकुमार रची करतार बिचार चले तुहि क्रिउं बनि ऐहै ॥ २४८ ॥ ॥ सीता बाच राम सों ॥ ॥ मनोहर छंद ॥ (मू०ग्रं०२०६) सूल सहों

लगे ॥ २४४ ॥ ॥ सोरठा ॥ हे बुद्धिमती सीता ! तुम (माता) कौशल्या के पास रहो और वनवास के वाद तुम्हारे साथ मैं पुनः राज्य करूँगा ॥ २४५ ॥ ॥ सीता उवाच राम के प्रति ॥ ॥ सोरठा ॥ मुझे कितना ही दु:ख क्यो न उठाना पड़े, मैं अपने प्रियतम का साथ नही छोड सकती। इसके लिए बेशक अग-अग काट दिया जाय, मैं जरा भी पीछे नही हटूंगी और दुःख नही मानूंगी ॥ २४६ ॥ ॥ राम उवाच सीता के प्रति ॥ ॥ मनोहर छद ॥ हे क्षीण कटिवाली ! यदि तुम ससुराल मे रहना पसद नही करती तो मैं तुमको तुम्हारे पिता के घर भेज देता हूँ और तुम जैसा प्रवध कहो मैं कर देता हूँ। इसमे मुझे जरा भी आपत्ति नही है। यदि तुम्हे कुछ धन की इच्छा हो तब भी मुझसे साफ कहो, मैं तुमको जितना चाहो धन दे देता हूँ। हे सुन्दर नयनोवाली ! ये कितने समय की वात ही है; यदि तुम मान जाओ तो मैं लंका नगरी जैसी धन-धान्य से पूर्ण नगरी को निर्धनो मे लुटा दूं ॥ २४७ ॥ हे सीता ! वन कष्टकारक है और तुम सुकुमार हो; भला वताओ तुमसे यह कैसे निभेगा। वहाँ सिह गर्जते हैं, भयानक कोल-भील है, जिन्हे देखकर डर लगता है। वहाँ साँप फुफकारते हैं, वाघ दहाडते है और भूत-प्रेतादि महादु.ख देनेवाले है। परमात्मा ने तुम्हे सुकोमल वनाया है, तुम तनिक विचार करो कि तुम्हें वन मे क्योकर जाना चाहिए ॥ २४८ ॥ ॥ सीता उवाच राम के प्रति ॥ ॥ मनोहर छद ॥ कांटे चुभे और तन सूख जाय, शूलो के कष्टो

तन सूक रहों पर सी न कहों सिर सूल सहोंगी । बाघ बुकार फनीन फुकार सु सीस गिरो पर सी न करोंगी । बास कहा बनबास भलो नही पास तजो पिय पाइ गहोंगी । हास कहा इह उदास समै ग्रिहआस रहो पर मै न रहोंगी ।। २४९ ।। ।। राम वाच सीता प्रति ।। राम कहो तुहि बास करो ग्रिह सासु की सेव भली बिधि कीजै । काल ही बास बनै म्रिगलोचनि राज करों तुम सो सुन लीजै । जौ न लगै जिय अउध सुभाननि जाहि पिता ग्रिह साच भनीजै । तात की बात गडी जिय जात सिधात बनै मुहि आइस दीजै ।। २५० ।। ।। लछमण वाच ।। बात इतै इहु भाँत भई सुन आइगे भ्रात सरासन लीने । कउन कुपूत भयो कुल मे जिन रामहि बास बनै कहु दीने । राम के बान बध्यो बस कामन कूर कुचाल महामति हीने । राँड कुभाँड के हाथ बिक्यो कपि नाचत नाच छरी जिम चीने ।। २५१ ।। काम को डंड लिए कर केकई बानर जिउँ न्रिप नाच नचावै । ऐठन

को मैं अपने सिर पर सहन करूँगी । बाघ और सर्प मेरे सिर पर गिरे तब भी मैं 'हाय' तक न कहूँगी । मुझे राजमहल के आवास से वनवास भला है । हे प्रियतम ! मैं आपके पैर पडती हूँ, इस उदास समय मे आप मुझसे परिहास मत कीजिए । मुझे (आपके साथ रहते) घर आने की तो आशा है, पर मैं यहाँ (आपके बिना) नही रहूँगी ।। २४९ ।। ।। राम उवाच सीता के प्रति ।। हे सीता ! मैं तुमसे सत्य कह रहा हूँ कि घर में रहकर तुम भली प्रकार सास की सेवा करो । हे मृगनयनी ! काल (समय) तो शीघ्र ही गुजर जायगा, मै तुम्हारे समेत राज्य करूँगा । वास्तव मे यदि तुम्हारा मन अवध में न लगे तो, हे सुन्दर मुखवाली ! तुम अपने पिता के घर चली जाओ । मेरे मन मे तो पिता की आज्ञा बस गई है, अत. तुम मुझे आज्ञा दो ताकि मैं वन मे जाऊँ ।। २५० ।। ।। लक्ष्मण उवाच ।। अभी ऐसी बात चल ही रही थी कि इसे सुनकर धनुष हाथ मे पकड़े लक्ष्मण आ गए और कहने लगे कि हमारे कुल मे कौन कुपूत पैदा हो गया जिसने राम को वनवास के लिए कहा है । यह मतिहीन (राजा) काम के बाण से बिधा हुआ क्रूर कुचाल मे फँसकर कुमतिवाली स्त्री के हाथ मे पड़ा वैसे ही नाच रहा है जैसे बन्दर छडी के इशारे को समझता हुआ नाचता है ।। २५१ ।। काम रूपी दड को हाथ मे लेकर कैकेयी राजा को वानर की तरह नचा रही है । उस अभिमानयुक्त स्त्री ने राजा को पकड़ लिया है और उसके पास बैठकर उसको तोते की

ऐठ अमैठ लिए ढिग बैठ सुआ जिम पाठ पड़ावै। सउतन सीस ह्वै ईसक ईस प्रिथीस जिउँ चाम के दाम चलावै। कूर कुजात कुपंथ दुरानन लोग गए परलोक गवावै ॥ २५२ ॥ लोग कुटेव लगे उनको प्रभ पाव तजे मुहि क्यो बन ऐहै। जउ हट बैठ रहो घरि भो जस क्यो चलिहै रघुबस लजैहै। काल ही काल उचारत काल गयो इह काल सभो छल जैहै। धाम रहो नही साच कहों इह घात गई फिर हाथ न ऐहै ।। २५३ ।। चॉप धरै कर चार कु तीर तुनीर कसे दोऊ बीर सुहाए। आवध राज त्रिया जिह सोभत होन बिदा तिह तीर सिधाए। पाइ परे भर नैन रहे भर मात भली बिध कंठ लगाए। बोले ते पूत न आवत धाम बुलाइ लिउँ आपन ते किमु आए ।। २५४ ।। ।। राम बाच माता प्रति ।। तात दयो बनबास हमै तुम देह रजाइ अबै तह जाऊँ। कटक कानन बेहड़ गाहि त्रियोदस बरख बिते फिर आऊँ। जीत रहे तु मिलो फिरि मात मरे गए

तरह पाठ पढा रही है। यह स्त्री अपनी सौतो के भी सिर पर देवों के भी देव की तरह सवार है और (दो घड़ी के राजा की तरह) चमड़े के सिक्के चला रही है अर्थात् मनमाना व्यवहार कर रही है। इस क्रूर, कुजाति, कुमार्गी एव दुर्मुखी स्त्री ने लोगो को तो यहाँ रुष्ट किया ही है, साथ-ही-साथ परलोक भी गँवा लिया है ॥ २५२ ॥ लोग उनकी (राजा-रानी की) निन्दा करने लगे। मै प्रभु (राम) के चरण त्यागकर कैसे रह सकता हूँ अर्थात् मै भी वन मे जाऊँगा। प्रभु (राम) की सेवा करने के सुअवसर की बाट जोहते सारा समय बीत गया और ऐसे ही यह काल सबको छल जायगा। मैं सच कह रहा हूँ कि मै घर पर नही रहूँगा और (सेवा का) यह अवसर यदि हाथ से निकल गया तो फिर यह अवसर मेरे हाथ नही लगेगा ॥ २५३ ॥ हाथ मे धनुष पकडकर तरकश कसकर और तीन चार तीर हाथ मे पकड़े हुए दोनो भाई शोभायमान हो रहे है। अवधराज की स्त्रियाँ (रानियाँ) जिस ओर रह रही है ये दोनो भाई उसी तरफ़ चल दिए। इन्होने माताओ को प्रणाम किया और (माताएँ) इनको भली प्रकार गले से लगाते हुए बोली कि हे पुत्र ! बुलाने पर तो तुम बड़े सकोच से इस ओर आते हो, परन्तु आज स्वय ही कैसे आ गये ॥ २५४ ॥ ॥ राम उवाच माता के प्रति ॥ पिता ने हमे वनवास दे दिया है, अब आप हमे आज्ञा दे कि अब हम वन को जायँ। जगल के बीहडों मे घूमते हुए तेरह वर्षो के बाद (चौदहवे वर्ष) पुन. मै आऊँगा। यदि जीवित रहे तो, हे माता ! फिर मिलेगे और यदि मृत्यु को प्राप्त हो गए

भूलि परी बखसाऊँ । भूपह कै अरिणी बर ते बस के बन मो फिरि राज कमाऊँ ॥ २५५ ॥ (मू०ग्रं०२०७) **॥ माता बाच राम सों ॥ ॥ मनोहर छंद ॥ मात सुनी इह बात जबै तब रोवत ही सुत के उर लागी । हा रघुबीर सिरोमण राम चले बन कउ मुहि कउ कत त्यागी । नीर बिना जिम मीन दशा तिम भूख पिआस गई सभ भागी । झूम झराक झरी झट बाल बिसाल दवा उनकी उर लागी ॥ २५६ ॥ जीवत पूत तवानन पेख सिया तुमरी दुत देख अघाती । चीन सुमित्रज की छब को सभ शोक बिसार हिए हरखाती । केकई आदिक सउतन कउ लखि भउह चड़ाइ सदा गरबाती । ताकहु तात अनाथ जिउँ आज चले बन को तजि कै बिललाती ॥२५७॥ होर रहे जन कोर कई मिलि जोर रहे कर एक न मानी । लच्छन मात के धाम बिदा कहु जात भए जिय मो इह ठानी । सो सुनि बात पपात धरा पर घात भली इह बात बखानी । जानुक सेल सुमार लगे छित**

तो उसी के लिए मैं भूलो की क्षमा माँगने आया हूँ । राजा के वरदानों के कारण वन मे बसकर मैं पुनः राज्य करूँगा ॥ २५५ ॥ ॥ माता उवाच राम के प्रति ॥ ॥ मनोहर छद ॥ माता ने जब यह बात सुनी तो वह रोते हुए पुत्र के गले जा लगी और कहने लगी, हाय रघुवश-शिरोमणि राम ! तुम मुझे छोडकर क्यो वन जा रहे हो । जो दशा जल त्यागने पर मछली की हो जाती है, वही दशा उसकी हो गई और उसकी सब भूख-प्यास समाप्त हो गई । वह झटका खाकर अचेत होकर गिर पडी और उसके हृदय मे आग लग उठी ॥२५६॥ हे पुत्र ! मै तो तुम्हारा मुँह देखकर जीवित रहती हूँ और सीता भी तुम्हारी द्युति को देखकर ही प्रसन्न होती है । वह सौमित्र (लक्ष्मण) की छवि को निहारकर सारे शोको का विस्मरण करती हुई प्रसन्न रहती है । कैकेयी आदि सौतो को देखकर ये रानियाँ हमेशा भौं चढ़ाकर अपने स्वाभिमान के कारण गर्व करती थी, लेकिन देखो आज इनके पुत्र इनको रोता हुआ छोड़कर अनाथों की तरह वन को जा रहे है ॥ २५७ ॥ और भी कई अन्य लोग थे जिन्होने मिलकर रामचन्द्र जी के वन न जाने पर ज़ोर दिया, परन्तु इन्होने किसी की भी नही मानी । लक्ष्मण भी अपनी माता के महल मे विदाई के लिए गये । लक्ष्मण ने अपनी माँ से कहा कि पृथ्वी पाप से भर गई है और यह रामचन्द्र जी के साथ रहने का सुअवसर है । उनकी माता भी बात सुनकर ऐसे गिर पड़ी जैसे कोई बहुत बड़ा शूरवीर भाला लगने

सोमत सूर वडो अभिमानी ।। २५८ ।। कउन कुजात कुकाज कियो जिन राघव को इह भाँत बखान्यो । लोक अलोक गवाइ दुरानन भूप सँघार महाँ सुख मान्यो । भरम गयो उड करम कर्यो घट धरम को त्यागि अधरम्म प्रमान्यो । नाक कटी निरलाज निसाचर नाहनि पातल नेहु न मान्यो ।। २५९ ।। ।। सुमित्रा बाच लछमन सों ।। दास को भाव धरे रहियो सुत मात सरूप सिया पहिचानो । तात की तुल्लि सियापति कउ करि कै इह बात सही करि मानो । जेतक कानन के दुख है सभ सो सुख कै तन पै अनमानो । राम के पाइ गहे रहियो बन कै घर को घर कै बनु जानो ।। २६० ।। राजिवलोचन राम कुमार चले बन कउ सँगि भ्राति सुहायो । देव अदेव निछत्र सचीपत चउक चके मन मोद वढायो । आनन बिंब पर्यो बसुधा पर फैलि रह्यो फिरि हाथि न आयो । बीच अकाश निवास कियो तिन ताही ते नाम मयंक कहायो ।।२६१।।

पर धरती पर गिरकर सो जाता हो ।। २५८ ।। किस नीच ने यह कार्य किया है और राम को इस प्रकार कहा । उसने लोक और परलोक को गँवाकर राजा को मारकर महासुख प्राप्त करने की सोची है । सहार से विश्वास और धर्म-कर्म उड़ गया है और अधर्म ही प्रमाणित रूप से बच रहा है । इस राक्षसी ने वंश की नाक काट ली है और पति के मरने का भी इसको ज़रा शोक नहीं है ।। २५९ ।। ।। सुमित्रा उवाच लक्ष्मण के प्रति ।। हे पुत्र ! तुम हमेशा दास्य-भाव से साथ रहना और सीता को माता के समान मानना । सियापति राम को पिता के समान मानना और इस वात को सत्य करके जानना । वन के दु.खो को सुख अनुभव कर सहन करना । रामचन्द्र के चरणो को हमेशा पकड़े रहना और वन को घर और घर को वन के समान समझना ।। २६० ।। कमल के समान आँखोवाले राम कुमार भाई के साथ शोभायमान होते हुए वन को चले जिसे देख देवता चौक उठे, दानव चकित रह गए और (राक्षसों के अन्त को समीप जानकर) देवराज इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए । चन्द्रमा भी प्रसन्न होकर अपने त्रिम्ब को धरती पर फैलाने लगा और वीच आकाश मे निवास करने के कारण ही 'मयक' नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।२६१।।

।।दोहरा।। पित आज्ञा ते बन चले तजि ग्रहि राम कुमार। संग सिया म्रिगलोचनी जा की प्रभा अपार ।। २६२ ।। (मू०ग्रं०२०८)

।। इति स्री राम बनबास दीबो ।।

अथ बनबास कथनं ।।

।। सीता अनमान बाच ।। ।। बिजै छंद ।। चंद की अंस चकोरन कै करि मोरन बिद्दुलता अनमानी। मत्त गइंदन इंद्र बधू भुनसार छटा रवि की जिय जानी। देवन दोखन की हरता अर देवन काल क्रिया कर मानी। देसन सिंध दिसेसन ब्रिध जोगेशन गंग कै रंग पछानी ।। २६३ ।। ।। दोहरा ।। उत रघुबर बन को चले सीय सहित तजि ग्रेह। इतै दशा जिह बिधि भई सकल साध सुनि लेह ।। २६४ ।। ।। माता बाच ।। ।। कबित्त ।। सभै सुख लै के गए गाड़ो दुख देत भए राजा दसरथ जू कउ कै कै आज पात हो। अजहूँ न छीजै बात मान

।। दोहा ।। पिता की आज्ञा से घर छोड़कर रामचन्द्र वन को चले और उनके साथ मृगनयनी सीता शोभायमान हो रही थी ।। २६२ ।।

।। श्रीराम को वनवास देना समाप्त ।।

वनवास-कथन प्रारम्भ

।। सीता अनुमान उवाच ।। ।। विजय छद ।। वह चकोरी को चन्द्रमा की किरण के समान और मोरो को बादल मे बिजली के समान लग रही थी। मस्त हाथियो को वह शक्ति के समान और प्रात.काल को सूर्य की सुन्दरता के समान लग रही थी। देवताओं को वह दु.खों का हरण करनेवाली और सर्व प्रकार की धर्मक्रियाओ को करनेवाली लग रही थी। धरती को वह समुद्र के समान और सारी दिशाओं को सब ओर व्यापक लग रही थी तथा योगियो को वह गगा के समान पवित्र लग रही थी ।। २६३ ।। ।। दोहा ।। उधर घर को छोडकर सीता-समेत राम वन को चले और इधर (अयोध्यापुरी मे) जो दशा हुई उसे सभी साधुगण भलीभाँति सुन लें ।। २६४ ।। ।। माता उवाच ।। ।। कवित्त ।। सभी सुखो को साथ ले गए और बहुत बड़े दु:ख हमको देकर हमे राजा दशरथ के निधन का भी दु:ख देखने के लिए छोड़ गये। राजा राम यह सब देख-सुनकर भी नही पिघल रहे है। हे राम ! अब तो हमारी बात मान

लीजै राज कीजै कहो काज कउन कौ हमारे स्रोणनाथ हो। राजसी के धारौ साज साधन कै कीजै काज कहो रघुराज आज काहे कउ सिधात हो। तापसी के भेस कीने जानकी कौ संग लीने मेरे बनबासी मो उदासी दिए जात हो ॥२६५॥ कारे कारे करि बेस राजा जू को छोरि देस तापसी को कै कै भेस साथि ही सिधारिहौं। कुल हूँ की कान छोरों राजसी के राज तोरों संगि ते न मोरों मुख ऐसो कै बिचारिहौं। मुंद्रा कान धारौं सारे मुख पै बिभूति डारौं हठि को न हारौ पूत राज साज जारिहौ। जुगिआ को कीनो बेस कउशल के छोर देस राजा रामचंद्र जू के संगि ही सिधारिहौं ॥२६६॥ ॥ अपूरब छंद ॥ कानने गे राम। धरम करमं धाम। लचछनै लै संगि। जानकी सुभंगि ॥ २६७ ॥ तात त्यागे प्रान। उत्तरे ब्योमान। बिच्चरे बिचार। मंत्रिय अपार ॥ २६८ ॥ बैठ्यो बशिश्टि। सरब बिप्प इश्टि। सुकलियो कागद। पट्ठए मागध ॥ २६९ ॥ संकड़ेसा वंत। मत्तए मत्तंत। सुक्कले के दूत। पउन के से पूत ॥ २७० ॥ अशटन द्रयं लाख। दूत गे चरबाख।

लीजिए। भला बताइए, अव हमारा नाथ कौन बचा है? हे राम! तुम राजकाज सँभालो और सभी कार्यों को करो। बताओ भला तुम अब क्यो जा रहे हो। हे तपस्वी का वेश धारण किए हुए तथा जानकी को सग लिये हुए वनवासी (राम)! मुझे क्यो मात्र उदासीनता दिए जा रहे हो ॥ २६५ ॥ मैं भी काला वेश धारण कर राजा का देश छोड़कर, तपस्वी बनकर साथ ही चलूँगी। कुल की मर्यादा छोड़ दूँगी और राजसी ठाट-बाट छोड़ दूँगी, परन्तु तुम्हारे संग रहने से मुँह नही मोड़ूँगी। मैं कानों मे मुद्राएँ धारण कर सारे शरीर पर भभूत रमा लूँगी। मैं हठपूर्वक रहूँगी और हे पुत्र! सारे राजसाज का त्याग कर दूँगी। योगी का वेश धारण कर कौशल देश का भी त्यागकर मै राजा रामचन्द्र के ही सग चली जाऊँगी ॥ २६६ ॥ ॥ अपूर्व छद ॥ धर्म-कर्म के घर राम लक्ष्मण और जानकी को साथ लेकर वन मे गये ॥ २६७ ॥ उधर पिता ने प्राण त्याग दिए और वे देव-विमान मे बैठकर (स्वर्ग) सिधार गये। इधर मंत्रियो ने आपस मे विचार-विमर्श किया ॥ २६८ ॥ सभी विप्रो मे श्रेष्ठ विप्र वशिष्ठ की इष्ट के समान बात मानी गई। पत्रिका लिखी गई और उसे मगध भेजा गया ॥ २६९ ॥ बहुत ही सक्षेप मे विचार-विमर्श किया गया और पवनपुत्र की तेज़ गतिवाले कई दूत भेजे गए ॥ २७० ॥

भरत आगे जहाँ। जात भे ते तहाँ ॥ २७१ ॥ उचरे संदेश। ऊरध गे अउधेश। पत्र बाचे भले। लाग संगं चले ॥ २७२ ॥ कोप जीयं जग्यो। धरम भरमं भग्यो। काशमीरं तज्यो। राम रामं भज्यो ॥ २७३ ॥ पुज्जए अवद्ध। सूरमा सनद्ध। हेर्‍यो अउधेश। म्रितकं के भेस ॥ २७४ ॥ ॥ भरथ बाच केकई सों ॥ लख्यो कसूत। बुल्ल्यो (मू०ग्रं०२०६) सपूत। ध्रिग मइया तोहि। लजि लइया मोहि ॥ २७५ ॥ का कर्‍यो कुकाज। क्यो जिऐ निलाज। मोहि जैबे तही। राम हैगे जही ॥२७६॥ ॥ कुसम बचित्र छंद ॥ तिन बनबासी रघुबर जानैं। दुख सुख सम कर सुख दुख मानैं। बलकर धर कर अब बन जैहैं। रघुपत संग हम बन फल खैहैं ॥२७७॥ इम कह बचना घर बर छोरे। बलकल धर तन भूखन तोरे। अवधिश जारे अवधहि छाड्यो। रघुपति पग तर कर घर मांड्यो ॥ २७८ ॥ लख जल थल कह तज कुल धाए। मुन

दस दूत, जो अपने कार्य में निपुण थे, ढूँढ़े गए और वे वहाँ भेजे गए जहाँ भरत रहते थे ॥ २७१ ॥ उन दूतो ने सदेश दिया और बताया कि राजा दशरथ स्वर्ग सिधार गये है। भरत ने पत्र पढ़ा और साथ ही चल पड़े ॥ २७२ ॥ उसके हृदय मे क्रोध भड़क उठा और उसके मन से धर्म, आदर के भाव का लोप हो गया। उन्होने कश्मीर देश का त्याग किया (और चल पड़े) तथा राम-राम का स्मरण करने लगे ॥ २७३ ॥ शूरवीर भरत अवध मे आ पहुँचे उन्होने आकर अवधनरेश दशरथ को मृतक अवस्था मे देखा ॥ २७४ ॥ ॥ भरत उवाच कैकेयी के प्रति ॥ हे माँ! जब तुमने देखा कि महाकुकर्म हो गया, तब अपने पुत्र को (मुझे) बुला भेजा। तुम्हे धिक्कार है, तुमने तो मुझे भी कही का नही छोडा ॥२७५॥ कहाँ से तुम इतनी निर्लज्ज हो गई कि तुमने इतना बुरा काम भी कर दिया। मैं तो अब वही जाऊँगा जहाँ राम गये है ॥ २७६ ॥ ॥ कुसम बचित्र छद ॥ वन मे रहनेवाले लोग रघुवीर राम को जानते है और उनके दु:ख तथा सुख को अपना दु:ख तथा सुख मानते हैं। मैं भी अब वल्कल धारण कर वन मे जाऊँगा और रामचन्द्र जी के साथ वन के फल खाया करूँगा ॥२७७॥ इस प्रकार कहकर भरत ने घर का त्याग कर दिया और तन के आभूषणो को तोडकर फेक दिया तथा वल्कल धारण कर लिये। राजा दशरथ का दाह-सस्कार किया, अवध को छोड दिया और रामचन्द्र के चरणो में ही अपना घर बनाने का ध्यान किया ॥ २७८ ॥ वन के निवासी भरत

मन संगि लै तिह ठाँ आए। लख बल रामं खल दल भोरं। गहि धन पाणं सित धर तीरं ॥ २७६ ॥ गहि धनु रामं सर बर पूरं। अरबर थहरे खल दल सूरं। नर बर हरखे घर घर अमरं। अमररि धरके लह कर समरं ॥ २८० ॥ तब चित अपने भरथर जानी। रन रंग राते रघुबर मानी। दल बल तजि करि इक्ले निसरे। रघुबर निरखे सभ दुख बिसरे ॥ २८१ ॥ द्रिग जब निरखे भट मण रामं। सिर धर टेक्यो तज कर कामं। इम गति लखि कर रघुपति जानी। भरथर आए तज रजधानी ॥ २८२ ॥ रिपहा निरखे भरथर जाने। अवधिश मूए तिन मन माने। रघुबर लछमन परहर बानं। गिर तर आए तज अभिमानं ॥ २८३ ॥ दल बल तजि करि मिलि गल रोए। दुख कसि बिधि दिया सुख सभ खोए। अब घर चलिए रघुबर मेरे। तजि हठि लागे सभ

की दलबल देखकर ऋषि-मुनियो को साथ ले उस स्थान पर आये (जहाँ रामचन्द्र थे)। रामचन्द्र ने बलशाली सेना को देखकर समझा कि कुछ दुष्ट (राक्षस) लोगो ने आक्रमण कर दिया है। इसलिए उन्होने हाथ मे धनुष और बाण पकड लिया ॥ २७९ ॥ राम धनुष हाथ मे लेकर बाण चलाने लगे और यह देखकर इन्द्र और सूर्य आदि भी भय से थरथराने लगे। वनवासी यह देख अपने घरो में हर्षित हो उठे, परन्तु अमरपुरी के देवता इस युद्ध (की स्थिति) को देखकर घबरा उठे ॥ २८० ॥ तब भरत ने मन मे विचार किया कि रघुबर राम युद्ध करने का अनुमान लगा रहे हैं, इसलिए वह सब दल-बल को छोड अकेले आगे बढे और राम को देखते ही उनके सभी दु:ख दूर हो गए ॥ २८१ ॥ जब भरत ने अपनी आँखो से महाबलशाली राम को देखा तब सभी कामनाओ का त्याग करते हुए भरत ने धरती पर माथा टेकते हुए उन्हे प्रणाम किया। यह दृश्य देखकर रघुपति ने समझ लिया कि यह तो भरत अपनी राजधानी छोड़कर आये हैं ॥ २८२ ॥ शत्रुघ्न और भरत को देखकर राम ने पहचान लिया और राम-लक्ष्मण के मन मे यह बात भी आ गई कि राजा दशरथ स्वर्ग सिधार चुके है। राम और लक्ष्मण ने बाणो का त्याग किया और मन के रोष को मिटाते हुए पर्वत से नीचे आ गए ॥ २८३ ॥ दलबल को त्यागकर वे गले मिलकर रोये। विधाता ने उनको कैसा दु:ख दिया है कि उनके सभी सुख खो गए। भरत ने कहा कि हे रघुवर ! आप हठ को त्याग घर चले, क्योकि इसीलिए सब लोग आपके चरणो पर पड़े

पग तेरे ॥ २८४ ॥ ॥ राम बाच भरथ सों ॥ ॥ कंठ अभूखन छंद ॥ भरथ कुमार न अउहठ कीजै । जाह घरै नह मै दुख दीजै । काज कह्यो जु हमै हम मानी । त्रियोदस बरख बसै बनधानी ॥ २८५ ॥ त्रियोदस बरख बितै फिरि ऐहैं । राज संघासन छत्र सुहैहैं । जाहु घरै सिख मान हमारी । रोवत तोर उतै महतारी ॥ २८६ ॥ ॥ भरथ बाच राम प्रति ॥ ॥ कंठ अभूखन छंद ॥ जाउ कहा पग भेट कहउ तुह । लाज न लागत राम कहो मुह । मै अत दीन मलीन बिना गत । राख लै राज बिखै चरनामत ॥२८७॥ चचछ बिहीन सुपच्छ जिमं कर । तिउँ प्रभ तीर गिर्‌यो पग भरथर । (मू०ग्रं०२१०) अंक रहे गह राम तिसै तब । रोइ मिले लछनादि भय्या सभ ॥ २८८ ॥ पान पिआइ जगाइ सु बीरह । फेरि कह्यो हस स्री रघुबीरह । त्रियोदस बरख गए फिरि ऐहै । जाहु हमै कछु काज किवैहै ॥२८९॥ खीन गए चतरा चित मो सभ । स्री रघुबीर

है ॥ २८४ ॥ ॥ राम उवाच भरत के प्रति ॥ ॥ कण्ठ आभूषण छद ॥ हे भरत ! आप जिद न करे और घर को चले जाइए तथा मुझे अब यहाँ रहकर और कष्ट मत दीजिए । मुझे जो आज्ञा हुई है, उसी का मैंने पालन किया है और उसी के अनुसार तेरह वर्ष घोर वन मे रहूँगा (और चौदहवे वर्ष वापस आ जाऊँगा) ॥ २८५ ॥ तेरह वर्ष बीतने के बाद मैं फिर वापस आऊँगा और राजसिंहासन तथा छत्न को धारण करूँगा । मेरी शिक्षा को सुनो और वापस घर चले जाओ । वहाँ आपकी माताएँ रो रही होगी ॥ २८६ ॥ ॥ भरत उवाच राम के प्रति ॥ ॥ कण्ठ आभूषण छंद ॥ हे राम ! मैं अब आपके चरण स्पर्श कर कहाँ जाऊँ ? क्या मुझे लज्जा नही आयेगी ? मै अत्यन्त दीन, मलीन और गतिविहीन हूँ । हे राम ! आप राज्य को सँभालें और अपने अमृततुल्य चरणो से उसे शोभायमान करे ॥ २८७ ॥ जिस प्रकार पक्षी चक्षुविहीन हो जाने पर गिर पडता है, उसी प्रकार भरत प्रभु के पास गिर पड़े । उसी समय राम ने उन्हे अक मे भर लिया और वहाँ लक्ष्मण आदि सभी भाई रोने लगे ॥ २८८ ॥ वीर भरत को पानी पिला चेतना अवस्था मे लाते हुए श्री रघुवीर ने पुन. मुस्कुराते हुए कहा कि तेरह वर्ष बीतते ही हम वापस आ जायेंगे । अब तुम वापस चले जाओ, क्योंकि हमे (वन मे) कुछ कार्य भी करना है ॥ २८९ ॥ जब श्रीराम ने यह कहा तो इस बात का तात्पर्य सभी चतुर लोग समझ गए (कि इन्हे वन मे राक्षसो को

कही अस कै जब। मात समोध सु पावरि लीनी। अउर बसे पुर अउध न चीनी ॥ २६० ॥ सीस जटान को जूट धरे बर। राज समाज दियो पउवा पर। राज करे दिनु होत उजिआरै। रैनि भए रघुराज सँभारै ॥ २६१ ॥ जज्झर भ्यो झुर झंझर जिउँ तन। राखत स्री रघुराज बिखै मन। बैरन के रन बिंद निकंदत। भाखत कंठि अभूखन छंदत ॥ २६२ ॥ ॥ झूला छंद ॥ इतै राम राजं। करै देव काजं। धरो बान पानं। भरै बीर मानं ॥ २६३ ॥ जहाँ साल भारे। द्रुमं तार न्यारे। छुए सुरगलोकं। हरै जात शोकं ॥ २६४ ॥ तहाँ राम पैठे। महाँबीर ऐठे। लिए संगि सीता। महाँ सुभ्र गीता ॥२६५॥ बिधं बाक बैणी। म्रिगी राज नैणी। कटं छीन वे सी। परी पदमनी सी ॥ २६६ ॥ ॥ झूलना छंद ॥ चड़े पान बानी धरे सान मानो चछा बान सोहै दोऊ राम रानी। फिरै ख्याल

मारना है)। श्रीराम की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए प्रसन्न मन से भरत ने उनकी खड़ाऊँ ले ली तथा अयोध्या की पहचान भुलाते हुए नगर के वाहर बसने लगे ॥ २९० ॥ सिर पर जटाजूट धारणकर सारा राज-काज उन खड़ाऊँ को अर्पित कर दिया। दिन में उन चरण-पादुकाओ के आश्रय से भरत राजकाज सँभालते और रात्रि मे उन चरणपादुकाओ की रक्षा करते ॥ २९१ ॥ भरत का शरीर सूखकर जर्जर हो गया, परन्तु फिर भी उन्होने मन मे सदैव श्रीरामचन्द्र जी को बसाये रखा। साथ-ही-साथ वह शत्रुओ के समूहो का भी नाश करने लगे और आभूषणों के स्थान पर कण्ठी आदि मालाएँ धारण करने लगे ॥ २९२ ॥ ॥ झूला छंद ॥ इधर वन मे राजा राम देवताओ का कार्य अर्थात् दानवो के मारने का कार्य कर रहे हैं। वे हाथ मे बाण लेते हुए महाबलशाली वीर दिखाई पड़ रहे है ॥ २९३ ॥ वन मे जहाँ शाल के वृक्ष थे और अन्य वृक्ष तथा सरोवर आदि भी थे वहाँ की शोभा स्वर्गलोक से मेल खाती थी और सर्व प्रकार के शोको का नाश करनेवाली थी ॥ २९४ ॥ उस स्थान पर रामचन्द्र टिक गए और महावीरों की तरह शोभायमान होने लगे। सीता उनके साथ थी जो एक दिव्य गीत के समान थी ॥ २९५ ॥ वह मधुर वचन बोलनेवाली और मृगो की रानी के समान नेत्रोवाली थी। उसकी कटि क्षीण थी और वह पद्मिनी के समान कोई परी-सी दिखाई देती थी ॥ २९६ ॥ ॥ झूलना छद ॥ राम के हाथ मे तीक्ष्ण बाण शोभायमान होते है और राम की रानी सीता के दोनो नेत्रों के बाण सुदर लगते हैं।

सो एक हवाल सेती छुटे इंद्र सेती मनो इंद्र धानी । मनो नाग बाँके लवी आब फाँके रगे रंग सुहाव सौ राम वारे । म्रिगा देखि मोहे लखे मीन रोहे जिनै नैक चीने तिनौ प्रान वारे ॥२९७॥ सुने कूक कै कोकला कोप कीने मुखं देख कै चंद दारे रखाई । लखे नैन बाँके मनै मीन मोहै लखे जात के सूर की जोति छाई । मनो फूल फूले लगे नैन झूले लखे लोग भूले बने जोर ऐसे । लखे नैन थारे बिधे राम प्यारे रँगे रंग शाराब सुहाब जैसे ॥ २९८ ॥ रँगे रंग राते मयं मत्त माते मकबूलि गुल्लाब के फूल सोहैं । नरगस ने देखकै नाक ऐंठा म्रिगीराज के देखतैं मान मोहैं । शबो रोज़ शराब ने शोर लाइआ प्रजा आम जाहान के पेख वारे । भवा तान कमान की भाँत प्यारी नि कमान ही नैन के बान मारे ॥ २९९ ॥ ॥ कबित्त ॥ ऊचे द्रुमसाल जहाँ लाँबे बट ताल तहाँ ऐसी ठउर तप कउ पधारै ऐसो (मू०ग्रं०२११)

वह (राम के साथ) इस प्रकार विचारो मे मग्न घूमती है मानो राजधानी छूटने के बाद इन्द्र इधर-उधर डोल रहा हो। उसकी केशराशि की लटें मानो नागो की शोभा को लजाकर श्रीराम पर न्योछावर हो रही हों। मृग उसे देखकर मोहित हो रहे है, मछलियाँ उसकी सुदरता को देखकर ईर्ष्या कर रही है अर्थात् जिसने भी उसे देखा उसने उस पर प्राण न्योछावर कर दिये ॥ २९७ ॥ कोयल उसकी वाणी को सुनकर ईर्ष्याविश क्रोधित हो रही है और चन्द्रमा भी उसके मुख को देखकर स्त्रियों के समान लजा रहा है। मछली उसकी आँखो को देख मोहित हो रही है और उसके सौन्दर्य से ऐसा लग रहा है मानो सूर्य का प्रकाश फैला हुआ हो। उसके नेत्रो को देखकर ऐसा लग रहा है मानो कमल के फूल खिले हुए हों और वन के सभी लोग उसके सौन्दर्य को देखकर अत्यन्त मोहित हो रहे है। हे सीता! तुम्हारे मादक नयनो को देखकर रामचन्द्रजी (उन नेत्र-बाणो से) अपने-आपको बिधा हुआ पाते है ॥ २९८ ॥ तुम्हारे प्रेम के रग में रँगे हुए नेत्र मदमस्त है और ऐसा लग रहा है मानो वे गुलाब के प्रिय फूल हो। नर्गिस के फूल भी ईर्ष्याविश नाक चढ़ा रहे है और हिरणियाँ भी उसे देखकर अपने स्वाभिमान पर चोट का अनुभव कर रही है। मदिरा भी पूर्ण शक्ति लगाने के बावजूद सारे संसार मे सीता की मस्ती की बराबरी नही कर पा रही है। उसकी भौहे कमान की तरह प्यारी है और उन भौहों से वह नयनो के बाण चला रही है ॥ २९९ ॥ ॥ कवित्त ॥ जहाँ ऊँचे साल एवं वटवृक्ष तथा बड़े-बड़े सरोवर है, ऐसे स्थान पर तपस्या

कउन है। जाकी छब देख दुत पांडव की फीकी लागै आभा तकी नंदन बिलोक भजे मौन है। तारन की कहा नैक नभ न निहार्यो जाइ सूरज की जोत तहाँ चंद्र की न जउन है। देव न निहार्यो कोऊ दैत न बिहार्यो तहाँ पंछी की न गम जहाँ चीटी को न गउन है॥ ३००॥ ॥ अपूरब छंद॥ लखिए अलक्ख। तकिए सुभचछ। धायो बिराध। बँकड़्यो बिबाद॥ ३०१॥ लखिअं अबद्ध। सँबह्यो सनद्ध। सँभले हथिआर। उरड़े लुझार॥ ३०२॥ चिकड़ी चावंड। सँमुहे सावंत। सज्जिए सुब्बाह। अचछरो उछाह॥ ३०३॥ पक्खरे पवग। मोहले मतंग। चावडी चिकार। उझरे लुझार॥ ३०४॥ सिंधरे संधूर। बज्जए तंदूर। सज्जिए सुब्बाह। अचछरो उछाह॥ ३०५॥ बिज्झुड़े उझाड़। संमले सुमार। हाहले हंकार। अंकड़े अंगार॥ ३०६॥ संमले लुज्झार। छुट्टके

करनेवाला यह कौन है जिसकी छवि देख पाण्डवो की सुन्दरता भी फीकी लगती है और स्वर्ग के उद्यान भी उसके सौन्दर्य को देख चुप होने में ही अपनी भलाई समझते है। वहाँ इतनी सघन छाया है कि तारों की तो बात ही क्या वहाँ आकाश भी दिखाई नही देता। सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रकाश भी वहाँ नही पहुँच पाता। वहाँ कोई देव या दैत्य विचरण नही करता और पक्षी तथा चीटी तक भी वहाँ नही पहुँच पाती॥ ३००॥ ॥ अपूर्व छंद॥ अनजान व्यक्तियो को अच्छे खाद्य के रूप मे देखकर विराध नामक दैत्य (राम-लक्ष्मणादि की ओर) आगे बढा और इस प्रकार से उनके शान्त जीवन मे विवाद (एव कष्टपूर्ण) स्थिति आ गई॥३०१॥ राम ने उसे देखा और हथियारबद होकर उसकी ओर चले। शस्त्रो को सँभालकर योद्धा लड़ाई मे भिड पड़े॥ ३०२॥ चीले चहचहाने लगी और योद्धा एक-दूसरे के समक्ष खडे हो गए। वे भलीभाँति सुसज्जित थे और उनमे कभी भी समाप्त न होनेवाला उत्साह था॥ ३०३॥ (युद्ध मे) कवचादि से सज्जित घोडे और मस्त हाथी थे। चीलो की चाँय-चाँय और वीरो का आपस में उलझना दिखाई पड़ रहा था॥ ३०४॥ सिंधु के समान गम्भीर हाथी और नगाड़ों की ध्वनि हो उठी और अनुपम उत्साह को लिये हुए बड़ी भुजाओवाले वीर शोभायमान थे॥ ३०५॥ कभी न गिरनेवाले वीर गिरने और सँभलने लगे। (चारो तरफ से) अहकारपूर्ण आक्रमण होने लगा और वीर अगारो की तरह जलने लगे॥ ३०६॥ वीर सँभलने लगे और शस्त्र

बिसियार। हाहलेहं बीर। संघरे सु बीर॥ ३०७॥
॥ अनूप नराज छंद॥ गजं गजे हयं हले हुला हली हलो हलं। बबज्ज सिंधरे सुरं छुटंत बाण केवलं। पपक्क पक्खरे तुरे भभक्क घाइ निरमलं। पलुत्थ लुत्थ बित्थरी अमत्थ जुत्थ उत्थलं॥ ३०८॥ अजुत्थ लुत्थ बित्थरी मिलंत हत्थ बक्खयं। अघुम्म घाइ घुम्म ए बबक्क बीर दुद्धरं। किलं करंत खप्परी पिपंत स्रोण पाणयं। हहक्क भैरवं स्रतं उठंत जुद्ध ज्वालयं॥३०९। फिकंत फिकती फिर रड़ंत गिद्ध ब्रिद्धणं। डहक्क डामरी उठं बकार बीर बैतलं। खहत्त खग्ग खत्रियं खिमंत धार उज्जलं। घणंक जाण स्यावलं लसंत बेग बिज्जुलं॥ ३१०॥ पिपत स्रोण खप्परी भखंत मास चावडं। हकार वीर संभिड़ै लुझार धार दुद्धरं। पुकार मार कै परे सहंत अंग भारयं। बिहार देव मंडलं कटंत खग्ग पारयं॥ ३११॥ प्रचार वार पैज कै खुमार घाइ घूमही। तपी मनो अधोमुखं

उनके हाथो से सर्पो की तरह छूटने लगे। आक्रमणो मे वीरो का संहार होने लगा॥ ३०७॥ ॥ अनूप नराज छद॥ घोड़े चलने लगे, हाथी गर्जने लगे और चारो ओर हलचल मच गई। वाद्य बजने लगे और बाण छूटने की एक स्वर ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। घोड़े बिदककर चलने लगे और घावो से शुद्ध रक्त भभककर बहने लगा। युद्ध की उथल-पुथल मे धूल-धूसरित लाशे इधर-उधर बिखरने लगी॥ ३०८॥ हाथ मे ली हुई तलवार का वार कमर पर पड़ते ही लाशे बिखरने लगी और वीर कठिनाई से घूमकर अपने दो धारो वाले खड्गो से वार करने लगे। योगिनियाँ किलकारियाँ मारती हुई हाथो मे रक्त लेकर पीने लगी। भैरव स्वय युद्ध मे घूमने लगे और युद्ध की ज्वालाएँ जलने लगी॥ ३०९॥ गीदड और बड़े गिद्ध युद्धस्थल मे इधर-उधर घूमने लगे। डाकिनियाँ डकारने लगी और बैताल चीखने लगे। क्षत्रिय (राम-लक्ष्मण) के हाथों मे उज्ज्वल धार वाला खडग ऐसे शोभा दे रहा था, जैसे काले बादलो में बिजली शोभा दे रही हो॥ ३१०॥ खप्परोवाली योगिनियाँ रक्त पी रही है और चीले मास भक्षण कर रही है। वीर अपने दुधारे खड़ग सँभालकर साथियो को हाँककर भिड़ रहे है। मार-मार की पुकार लगाकर वे शस्त्रों का भार सहन कर रहे हैं। कुछ वीर देवपुरियो में विचरण कर रहे है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं और कुछ खड़गो से (अन्य वीरो को) काट रहे है॥ ३११॥ वीर वार कर-करके मदमस्त

सु घूम आग धूम ही । तुटंत अंग भंगयं वहंत अस्त्र धारयं । उठंत छिच्छ इच्छयं पिपंत मास हारयं ॥ ३१२ ॥ अघोर घाइ अग्घऐ कटे परे सु प्रासनं । घुमंत जाण रावलं लगे सु सिद्ध आसणं । परंत अंग भंग हुइ बकंत मार मारयं । बदंत जाण बंदियं सुक्रित क्रित अपारयं (मू०ग्रं०२१२) ॥ ३१३ ॥ बजंत ताल तंबुरं बिसेख बीन बेणयं । म्रिदंग झालना फिरं सनाइ भेर भै करं । उठंत नावि निरमलं तुटंत ताल तत्थियं । बदंत कित्त बदियं कबिंद्र काब्य कत्थिय ॥ ३१४ ॥ ढलंत धाल मालयं खहंत खग्ग खेतयं । चलंत बाण तीछणं अनंत अंतकं कयं । सिमट्टि साँग सुंकड़ं सटक्क सूल सेलयं । रुलंत रुंड मुंडयं झलत झाल अज्झलं ॥ ३१५ ॥ बचित्र बित्रतं सरं बहंत दारुणं रण । ढलंत ढाल अड्ढलं ढुलंत चार चामरं । दलंत निरदलो दलं तपात भूतल दितं । उठंत गद्दिब सद्दय निनद्दि नद्दिब दुब्भरं ॥ ३१६ ॥ भरंत पत्र चउसठी किलंक खेचरी करं ।

होकर ऐसे घूम रहे है मानो तपस्वी अधोमुख होकर धुएँ पर तपस्या करके झूम रहे हो । अस्त्रो की धारा बह रही है और अग टूटकर गिर पड़ रहे हैं । विजय की इच्छाओ की लहरे उठ रही है और मांस कट-कटकर गिर रहा है ॥ ३१२ ॥ कटे हुए अंगो को खा-खाकर अघोरी प्रसन्न हो उठे है और (रक्त-मांसाहारी) सिद्ध तथा रावलपथी आसन लगाकर बैठ गए है । अग-भग होकर मारो-मारो कहते हुए वीर गिर रहे है और उनकी वीरता के कारण उनकी वदना हो रही है ॥ ३१३ ॥ युद्ध मे ढालो पर वार रोकने की विशेष आवाज़ सुनाई पड़ रही है । बीन, बाँसुरी, मृदग, झाल और भेरियो की मिली-जुली आवाज भयानक वातावरण बना रही है । युद्धस्थल मे सुन्दर ध्वनियाँ भी विभिन्न प्रकार के शस्त्रों के प्रहारो के तालो को तोड़ती हुई उठ रही है । कही पर सेवक लोग वन्दना कर रहे है और कही कविगण काव्य-रचना सुना रहे है ॥ ३१४ ॥ ढालो की रोकने की ध्वनि और खड्गो के चलने की ध्वनि सुनाई पड़ रही है और अनन्त लोगो का अन्त करनेवाले तीक्ष्ण बाण भी चल रहे है । वर्छियाँ-भाले सरसरा रहे है और कटे हुए निस्तेज सिर धूल-धूसरित होकर इधर-उधर छिटक रहे है ॥ ३१५ ॥ युद्धस्थल मे चित्रकारी करते हुए अनोखे बाण चल रहे है और ढालो पर खड्गो की आवाज़ सुनाई पड़ रही है। दलो का दलन किया जा रहा है और धरती (रक्त की गर्मी के कारण) गर्म हो उठी है । चारो ओर से भीषण

फिरंत हूर पूरयं बरंत दुद्धरं नरं । सनद्ध बद्ध गोधयं सु सोभ अंगुलं त्रिणं । डकंत डाकणी भ्रमं भखंत आमिखं रणं ॥ ३१७ ॥ किलंक देवियं करंड हक्क डामरू सुरं । कड़क्क कत्तियं उठं परंत धूर पक्खरं । बबज्जि सिंधरेसुरं न्रिघात सूल सैहथीयं । भभज्जि कातरो रणं निलज्ज भज्ज भू भरं ॥ ३१८ ॥ सु शस्त्र अस्त्र संनिधं जुझंत जोधणो जुधं । अरुज्झ पंक लज्जणं करंत द्रोह केवलं । परंत अंग भंग हुइ उठंत मास करदमं । खिलंत जाणु कदवं सु मज्झ कान्ह गोपिकं ॥ ३१९ ॥ डहक्क डउर डाकणं झलंत झाल रोसुरं । निनद्द नाद नाफिरं बजंत भेर भीखणं । घुरंत घोर दुंदभी करंत कानरे सुरं । करंत झाझरो झड़ं बजंत बाँसुरी बरं ॥ ३२० ॥ नचंत बाज तीछणं चलंत चाचरी क्रितं । लिखत लीक उरबिअं सुभंत कुंडली करं ।

निनाद लगातार सुनाई पड़ रहा है ॥ ३१६ ॥ चौसठ योगिनियाँ किलकारियाँ भरती हुई अपने पात्रो को रग से भर रही है और स्वर्ग की अप्सराएँ महावीरो का वर्णन करने के लिए धरती पर विचर रही है । वीर सुसज्जित होकर हाथो पर भी कवच धारण किए हुए हैं और डाकिनियाँ मांस खाती तथा डकारती हुई युद्धभूमि मे विचर रही है ॥ ३१७ ॥ रक्तपान करनेवाली काली की किलकारी और डमरू का स्वर सुनाई पड़ रहा है । युद्धस्थल मे भीषण अट्टहास सुनाई पड़ रहा है और कवचो पर धूल जमी दिखाई पड़ रही है । तलवारो के वार से हाथी-घोड़े चीख-चिल्ला रहे हैं और लज्जा का त्याग कर असहाय होकर रण से भाग निकल रहे हैं ॥ ३१८ ॥ अस्त्र-शस्त्रो से सज्जित हो योद्धागण युद्ध में लगे है और लज्जा के कीचड़ मे न फँसते हुए केवल क्रोध से भरकर युद्ध कर रहे हैं । वीरों के अंग और मांस के टुकड़े इस प्रकार धरती पर टूटकर गिर रहे है, मानो कृष्ण गोपिकाओ के मध्य इधर से उधर गेद उछालकर खेल रहे हो ॥ ३१९ ॥ डाकिनियो के डमरू और क्रोधपूर्ण मुद्राएँ दिखाई पड़ रही हैं तथा भेरियो और नफीरियो आदि वाद्यो की भीषण ध्वनि सुनाई पड़ रही है । दुन्दुभियो की घोर ध्वनि कानों मे सुनाई पड़ रही है तथा झाँझरो की झनकार तथा बाँसुरियो की मधुर ध्वनि युद्धस्थल मे सुनाई पड़ रही है । (ये सब ध्वनियाँ योगिनियो, डाकिनियो एव अन्य गणो के स्वच्छन्द रूप से युद्धस्थल मे घूमने की परिचायक है) ॥ ३२० ॥ तेज घोड़े नृत्य करते हुए तेजी से चल रहे है और अपनी चाल से धरती पर कुण्डलाकार निशान डाल रहे है । उनकी टापो के कारण धूल उड़कर आसमान को भर दे रही है और इस प्रकार दिखाई दे रही है

उडंत धूर भूरियं खुरीन निरदली नभं । परंत भूर भउरणं सु भउर ठउर जिउँ जलं ।। ३२१ ।। भजंत धीर बीरणं रलंत मान प्रान लै । दलंत पंत दंतियं भजंत हार मान कै । मिलंत दाँत घास लै ररचछ शबद उचरं । बिराध दानवं जुझ्यो सु हतिथ राम निरमलं ।। ३२२ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके रामवतार कथा बिराध दानव बधह ।।

अथ बन मो प्रवेश कथनं ।।

।। दोहरा ।। इह बिधि मार बिराध कउ बन मे धसे निशंग । सु कबि स्याम इह बिधि कह्यो रघुबर जुद्ध प्रसंग ।। ३२३ ।। ।। सुखदा छंद ।। रिख अगसत धाम । गए राज राम । धुज (मू०ग्रं०२१३) धरम धाम । सिया सहित बाम ।। ३२४ ।। लख राम बीर । रिख दीन तीर । रिप सरब चीर । हरि सरब पीर ।। ३२५ ।। रिख बिदा कीन । आसिखा दीन । द्रुत राम चीन । मुन मन

मानो जल मे भंवर दिखाई दे रहा हो ।। ३२१ ।। धैर्यवान वीर भी अपने मान और प्राणो को लेकर भाग खड़े हुए है और हाथियो की पंक्तियों का दलन किया जा चुका है । राम के विरुद्ध पक्ष वाले राक्षसो ने घास के तिनके दाँतो मे पकड़ते हुए "रक्षा करो" शब्दो का उच्चारण किया है और इस प्रकार श्रीराम के सुन्दर हाथो से विराध नामक दानव मारा गया है ।। ३२२ ।।

।। श्री बचित्र नाटक की रामावतार कथा मे विराध दानव-वध समाप्त ।।

वन-प्रवेश-कथन प्रारम्भ

।। दोहा ।। इस प्रकार विराध को मारकर अभय होकर राम-लक्ष्मण आदि वन मे और अन्दर चले गए तथा युद्ध के इस प्रसग का उपर्युक्त प्रकार से श्याम कवि ने वर्णन किया है ।। ३२३ ।। ।। सुखदा छद ।। राजा राम अगस्त्य ऋषि के आश्रम मे गए और इस धर्म के धाम राम के साथ उनकी पत्नी सीता भी थी ।। ३२४ ।। वीरवर राम को देखकर ऋषि ने उन्हे सलाह दी कि आप सभी शत्रुओ का नाश कर सबकी पीड़ा का हरण करो ।। ३२५ ।। इस प्रकार आशीष देकर ऋषि ने राम के सौन्दर्य एवं शक्ति को प्रवीणता से अपने मन मे पहचानते हुए उन्हें

प्रबीन ॥ ३२६ ॥ प्रभ भ्रात संगि । सिय संग सुरंग । तजि चित अंग । धस बन निशग ॥ ३२७ ॥ धर बान पान । कटि कसि क्रिपान । भुज बर अजान । चल तीर्थ नान ॥ ३२८ ॥ गोदावर तीर । गए सहित बीर । तज राम चीर । किअ सुच सरीर ॥ ३२९ ॥ लख राम रूप । अतिभुत अनूप । जह हुती सूप । तह गए भूप ॥ ३३० ॥ कही ताहि धाति । सुनि सूप बाति । दुइ अतिथ नात । लहि अनुप गात ॥ ३३१ ॥ ॥ सुंदरी छंद ॥ सूपनखा इह भाँत सुनी जब । धाइ चली अबिलंब त्रिया तब । राम सरूप कलेवर जानै । रूप अनूप तिहूँ पुर मानै ॥ ३३२ ॥ धाइ कह्यो रघुराइ भए तिह । जंस न्रिलाज कहै न कोऊ किह । हउ अरकी तुमरी छबि के बर । रंग रंगी रँगए द्रिग दूपर ॥ ३३३ ॥ ॥ राम बाच ॥ ॥ सुंदरी छंद ॥ जाह तहाँ जह भ्रात हमारे । वै रिझहै लख नैन तिहारे । संग

बिदा किया ॥ ३२६ ॥ प्रभु राम सुन्दरी सीता और अपने भाई के साथ चलते हुए सर्वचिन्ताओ का त्याग करते हुए बिना किसी भय के गहरे वन मे घुसते चले गए ॥ ३२७ ॥ कमर मे कृपाण बाँधे हुए और हाथ मे बाण धारण किये हुए लम्बी भुजाओवाले (ये वीर) तीर्थों मे स्नान करने के लिए चले ॥ ३२८ ॥ अपने वीर भाई के साथ ये गोदावरी के तट पर पहुँचे और वहाँ राम ने (वल्कल) वस्त्र उतारकर स्नान करते हुए अपने शरीर को पवित्र किया ॥ ३२९ ॥ राम अद्भुत स्वरूपवाले थे। स्नान के बाद जब राम निकले तो उनके सौन्दर्य को देखकर वहाँ के सेवक राजा, शूर्पणखा (जो उस क्षेत्र की स्वामिनी थी) के पास गए ॥ ३३० ॥ दूतो ने उससे जाकर कहा कि हे स्वामिनी (शूर्पणखा) ! हमारी बात सुने। हमारे राज्य में अनुपम शरीरवाले दो अतिथि आये हुए हैं ॥ ३३१ ॥ ॥ सुन्दरी छद ॥ शूर्पणखा ने जब इस बात को सुना तो वह स्त्री अविलम्ब वहाँ से (राम-लक्ष्मण की ओर) चल पड़ी। उसने आते ही इन सबको कामदेव के रूप मे देखा और मन-ही-मन माना की तीनों लोको मे इनके जैसा सौन्दर्यशाली कोई अन्य नही है ॥ ३३२ ॥ आगे बढकर वह रघुवीर राम के समक्ष पूर्ण रूप से निर्लज्ज हो कहने लगी कि मैं तुम्हारे सौन्दर्य मे अटककर रह गई हूँ और मेरा मन तुम्हारे दोनों रगीन एव मदमस्त नेत्रो के रंग मे रँग गया है ॥ ३३३ ॥ ॥ राम उवाच ॥ ॥ सुन्दरी छंद ॥ तुम वहाँ जाओ जहाँ मेरा भाई है। वह

सिया अविलोक क्रिसोदर। कैसे कै राख सको तुम कउ घरि ॥ ३३४ ॥ मात पिता कह मोह तज्यो मन। संग फिरी हमरे बन ही बन। ताहि तजौ कस कै सुनि सुंदर। जाहु तहाँ जहाँ भ्रात क्रिसोदर ॥ ३३५ ॥ जात भई सुन बैन त्रिया तह। बैठ हुते रणधीर जती जह। सो न बरै अति रोस भरी तब। नाक कटाइ गई ग्रिह को सभ ॥ ३३६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके राम अवतार कथा सूपनखा को नाक
काटबो ध्याइ समापतम सतु सुभम सतु ॥

अथ खर-दूखन दईत जुद्ध कथनं ॥

॥ सुंदरी छंद ॥ रावन तीर रुरोत भई जब। रोस भरे दनु बंस बली सभ। लंकश धीर बजीर बुलाए। दूखन औ खर दइत पठाए ॥ ३३७ ॥ साज सनाह सुबाहु दुरग्गत। बाजत बाज चले गज गज्जत। मार ही मार दसो दिस कूके।

तुम्हारी सुन्दर आँखो को देख अवश्य मोहित हो जायेगा। तुम देखो, मेरे साथ तो क्षीण कटिवाली सुन्दरी सीता है और इस स्थिति मे मैं तुम्हे अपने घर कैसे रख सकता हूँ ॥ ३३४ ॥ माता-पिता के मोह को भी इसने मन से त्याग दिया और वनो मे हमारे साथ घूम रही है इसे अब, हे सुन्दरी, मैं कैसे त्याग दूं और तुम वहाँ जाओ जहाँ मेरा भाई बैठा हुआ है ॥३३५॥ यह बचन सुनकर वह स्त्री शूर्पणखा वहाँ पहुँची जहाँ यति लक्ष्मण बैठे हुए थे। जब उसने भी वरण करने से इकार कर दिया तो शूर्पणखा क्रोध से भर उठी और अपनी नाक कटवाकर अपने घर को गई ॥ ३३६ ॥

॥ इति श्री वचित्र नाटक की रामावतार कथा मे शूर्पणखा के नाक
काटने के अध्याय की शुभसत् समाप्ति ॥

खर-दूषण दैत्य-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ सुदरी छद ॥ जब शूर्पणखा रोती हुई रावण के पास गई तो सारा दानव-वश क्रोध से भर उठा। लंकेश रावण ने मंत्रियो को बुलाया, विचार-विमर्श किया तथा खर-दूषण दैत्यों को (रामादि को मारने के लिए) भेजा ॥ ३३७ ॥ कवचादि धारण कर लबी भुजाओवाले वीर वाद्यो और हाथियो की गर्जना के साथ चल पड़े। चारो ओर 'मारो-

सावन की घट ज्यों घुर ढूके ।। ३३८ ।। गज्जत है रणबीर महाँमन । तज्जत (मू०ग्रं०२१४) हैं नहीं भूमि अयोधन । छाजत है चख स्रोणत से सर । नादि करैं किलकार भयंकर ।। ३३९ ।। ।। तारका छंद ।। राज राजकुमार बिरच्चहिगे । सर सेल सरासन नच्चहिगे । सु बिरुद्ध अवद्धि सु गाजहिगे । रण रंगहि राम बिराजहिगे ।। ३४० ।। सर ओघ प्रओघ प्राहरैंगे । रणि रंग अभीत बिहारंगे । सर सूल सनाहरि छुट्टहिगे । दित पुत्र धरा पर लुट्टहिगे ।। ३४१ ।। सर शंक अशंकत बाहहिगे । बिनु भीत भया दल दाहहिगे । छित लुत्थ बिलुत्थ बिथारहिगे । तरु सर्ण समूल उपारहिगे ।। ३४२ ।। नव नाद नफीरन बाजत भे । गल गज्जि हठी रण रंग फिरे । लग बान सनाह दुसार कढे । सूअ तच्छक के जम रूप मढे ।। ३४३ ।। बिनु शंक सनाहरि झारत है । रणबीर नबीर प्रचारत है । सर सुद्ध सिला सित छोरत है । जिय रोस हलाहल घोरत है ।। ३४४ ।। रनधीर अयोधनु लुज्झत हैं । रद पीस भलो कर जुज्झत हैं ।

मारो' की पुकार सुनाई पड़ने लगी और सावन की घटा की तरह सेना उमड़ने-घुमड़ने लगी ।। ३३८ ।। महाबलशाली वीर गरजने लगे और भूमि पर स्थिर भाव से खड़े होने लगे । रक्त के सरोवर शोभायमान होने लगे और वीर भयंकर रूप से किलकारियाँ मारने लगे ।। ३३९ ।। ।। तारका छंद ।। अब राजकुमार युद्ध प्रारम्भ करेंगे और युद्ध मे भाले और बाण नृत्य करेंगे । विरोधी पक्ष को देख वीर गरजेंगे और युद्ध के रंग मे मस्त राम शोभायमान होगे ।। ३४० ।। तीरो के झुड चलेंगे और वीर अभय हो रण में विचरेंगे । शूल, बाण आदि चलेंगे और दैत्यों के पुत्र धराशायी होगे ।। ३४१ ।। शका-रहित होकर बाण चलायेंगे और शत्रुदल का दहन करेंगे । धरती पर लाशे बिखरायेंगे और वीरवर मूल-सहित पेड़ो को उखाड़ फेकेंगे ।। ३४२ ।। नफीरो के वाद्य बजने लगे और सिंहनाद करते हुए हठी शूरवीर युद्ध मे विचरने लगे । तरकशों से बाण निकलने लगे और वे तक्षक रूपी बाण यम-रूप हो चलने लगे ।। ३४३ ।। अभय होकर वीर बाण-वर्षा कर रहे है और रणवीर एक-दूसरे को ललकार रहे हैं । बाणो और शिलाओ को चला रहे है और हृदय मे रोष रूपी हलाहल का पान कर रहे है ।। ३४४ ।। युद्ध में रणधीर वीर एक-दूसरे से भिड़ गए है और दाँत पीसकर अर्थात् क्रोधित हो जूझ रहे हैं ।

रण देव अदेव निहारत हैं। जय सद्द निनद्दि पुकारत हैं ॥ ३४५ ॥ गण गिद्धन ब्रिद्ध रड़ंत नभं। किलकंत सु डाकण उच्च सुरं। भ्रम छाड भकारत भूत भुअं। रण रंग बिहारत भ्रात दुअं ॥ ३४६ ॥ खर-दूखण मार बिहाइ दए। जय सद्द निनद्द बिहद्द भए। सुर फूलन की बरखा बरखे। रणधीर अधीर दोऊ परखे ॥ ३४७ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके राम अवतार कथा खर-दूखण दईत बधह धिआइ समापतम सतु ॥

अथ सीता हरन कथनं ॥

॥ मनोहर छंद ॥ रावण नीच मरीच हूँ के ग्रिह बीच गए बद्ध बीर सुनैहै। बीसहूँ बाँहि हथिआर गहे रिस नार मनै दससीस धुनैहै। नाक कट्यो जिन सूपनखा कह तउ तिहको दुख दोख लगैहै। रावल को बनु कै पल मो छलकै तिह की घरनी धरि ल्यैहै ॥ ३४८ ॥ ॥ मरीच बाच ॥ ॥ मनोहर

देव और दानव दोनो युद्ध को देख रहे है और जय-जयकार की ध्वनि कर रहे हैं ॥ ३४५ ॥ आकाश मे बड़े-बड़े गिद्ध और गण विचर रहे है और डाकिनियाँ ऊँचे स्वर मे किलकारियाँ मार रही है। भूतगण भी अभय हो अट्टहास कर रहे है तथा दोनों भाई राम और लक्ष्मण इस सारे युद्धकर्म को देख रहे हैं ॥ ३४६ ॥ खर और दूषण दोनो को मारकर रामचन्द्र ने उन्हे मौत की नदी मे बहा दिया। चारों ओर से वृहद् रूप से जय-जयकार होने लगी। देवताओ ने पुष्प-वर्षा की और दोनो रणधीरो (राम-लक्ष्मण) का दर्शन किया ॥ ३४७ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार की खर-दूषण-वध की कथा के अध्याय की सत् समाप्ति ॥

सीता-हरण कथन प्रारम्भ

॥ मनोहर छंद ॥ खर-दूषण वीरों का वध सुनकर रावण नीच मारीच के घर गया। उसने वीसों हाथो में शस्त्र धारण कर रखे थे और वह अपने दसों सिरो को क्रोध मे धुन रहा था। उसने कहा कि जिन्होने शूर्पणखा का नाक काटा है, उनके इस कृत्य ने ही मुझे दुःखी किया है। छद्म वेश धारण कर वन मे तुमको साथ लेकर मैं उनकी पत्नी को चुरा लाऊँगा ॥ ३४८ ॥ ॥ मारीच उवाच ॥ ॥ मनोहर छंद ॥ हे

छंद ॥ नाथ अनाथ सनाथ कियो करि कै अति मोर क्रिपा कह आए । भउन भँडार अटी बिकटी प्रभ आज सभै घर बार सुहाए । द्वै करि जोर करउ बिनती सुनिकै न्रिपनाथ बुरो मत मानो । स्री रघुबीर सही अवतार तिनै तुम मानस कै न पछानो (मू०ग्रं०२१५) ॥ ३४६ ॥ रोस भर्यो सभ अंग जर्यो मुख रत्त कर्यो जुग नैन तचाए । तै न लगै हमरे सठ बोलन मानस दुइ अवतार गनाए । मात की एक ही बात कहे तत तात घ्रिणा बनबास निकारे । ते दोऊ दीन अधीन जुगिया कस कै भिरहैं संग आन हमारे ॥ ३५० ॥ जउ नही जात तहाँ कत तै सठि तोर जटान को जूट पटैहों । कंचन कोट के ऊपर ते डर तोहि नदीसर बीच डुबैहों । चित्त चिरात बसात कछू न रिसात चल्यो मुन घात पछानो । रावन नीच की मीच अधोगत राघव पान पुरी सुरि मानी ॥ ३५१ ॥ कंचन को हरना बन के रघुबीर बली जह थो तह आयो । रावन ह्वै उत ते जुगिआ सिय लैन

नाथ ! आपने अत्यन्त कृपा की जो मेरे यहाँ आये । आपके आने से मेरे भण्डार भर गए है और हे प्रभु ! मेरा घर शोभायमान हो उठा है, परन्तु मै दोनो हाथ जोड़ अपसे एक विनती कर रहा हूँ, जिसे हे नृपनाथ ! आप बुरा मत मानिएगा । मेरा यह निवेदन है कि श्री रघुवीर वास्तविक रूप में परमात्मा के अवतार है, उन्हे आप मात्र मनुष्य मत मानिए ॥ ३४९ ॥ यह सुनकर रावण क्रोध से भर उठा और उसके अग जलने लगे, उसका मुख लाल हो उठा तथा उसकी आंखे क्रोध से फैल गयी । वह कहने लगा कि हे मूर्ख ! मेरे सामने तुम यह क्या कह रहे हो और उन दोनों मनुष्यों की अवतारो मे गणना कर रहे हो । उनकी माता के एक ही बार कहने पर उनके पिता ने उनको घृणापूर्वक वन में निकाल दिया । वे दोनो दीन और असहाय है । वे मेरे संग कैसे लड़ाई कर सकेंगे ॥ ३५० ॥ हे मूर्ख ! यदि तुम्हे वहाँ जाने के लिए न कहना होता तो मैं तेरी जटाओ को उखाड़ फेकता और सोने के इस किले के ऊपर से तुझे समुद्र मे फेककर डुबो देता । यह सुनकर चित्त मे कुढ़ता हुआ और क्रोधित हो अवसर को पहचानता हुआ मारीच वहाँ से चल पडा । उसने यह अनुभव किया कि नीच रावण की मृत्यु और इसकी अधोगति रामचन्द्र के हाथो निश्चित है ॥ ३५१ ॥ सोने का मृग वन यह वहाँ पहुँचा जहाँ रघुवीर निवास कर रहे थे । उधर रावण योगी का वेश धारण कर सीता को लेने इस प्रकार चल पड़ा, मानो उसे मौत आगे ढकेल

चल्यो जनु मीच चलायो। सीय बिलोक कुरंक प्रभा कह मोहि रही प्रभ तीर उचारी। आन दिजै हम कउ म्रिग वासुन स्री अवधेश मुकंद मुरारी ॥ ३५२ ॥ ॥ राम बाच ॥ सीय म्रिगा कहूँ कंचन को नहि कान सुन्यो बिधिनै न बनायो। बीस बिसवे छल दानव को बन मै जिह आन तुमै डहकायो। प्यारी को आइस मेट सकै न बिलोक सिया कछु आतुर भारी। बाँध निखंग चले कटि सौ कहि भ्रात इहाँ करिजै रखवारी ॥ ३५३ ॥ ओट थक्यो करि कोटि निसाचर स्री रघुबीर निदान सँघार्यो। हे लछु बीर उबार लै मोकह यौ कहिकै पुनि राम पुकार्यो। जानकी बोल कुबोल सुन्यो तब ही तिह ओर सुमित्र पठायो। रेख कमान की काढ महाबल जात भए इत रावन आयो ॥३५४॥ भेख अलेख उचारकै रावण जात भए सिय के ढिग यौ। अविलोक धनी धनवान बडो तिह जाइ मिलै जग मो ठग ज्यो। कछु देहु भिछा म्रिगनैन हमै इह रेख मिटाइ हमै अब ही। बिनु

रही हो। सीता स्वर्णमृग की छवि को देख राम के समीप आकर बोली कि हे अवधेश एव दैत्यो को मारनेवाले ! मुझे वह मृग लाकर दे दीजिए ॥ ३५२ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे सीता ! सोने का मृग कभी सुना भी नही गया है और न ही विधाता ने इसे बनाया है। यह निश्चित रूप से किसी दानव का छल है, जिसने तुम्हें धोखे मे डाल दिया है। सीता की आतुरता को देख श्री रामचन्द्र उनके कहने को टाल नही सके और तरकश बाँधकर तथा भाई लक्ष्मण से रखवाली करने के लिए कहकर मृग लाने चल दिए ॥ ३५३ ॥ मारीच निशाचर ने बहुत भागदौड करके रामचन्द्र को सशय मे डालने की कोशिश की, परन्तु अन्त मे वह थक गया और श्रीराम ने उसका संहार कर दिया। परन्तु मरते समय राम की आवाज़ मे वह पुकार उठा, "हे भाई ! मुझे बचाओ" जानकी ने जब इस भयभीत करनेवाली आवाज को सुना तो उसने लक्ष्मण को उस ओर भेजा। इधर अपने धनुष से रेखा खीचकर महाबली लक्ष्मण गए और उधर से रावण ने प्रवेश किया ॥ ३५४ ॥ योगी का वेश धारण कर और अलख जगाता रावण सीता के पास उसी प्रकार गया, जिस प्रकार कोई ठग किसी धनवान को देखकर उसके पास जाता है। रावण ने कहा कि हे मृगनयनी ! इस रेखा को पार कर हमे कुछ भिक्षा दो और जब रावण ने सीता को उस रेखा से पार होते देखा तभी वह उसे लेकर आकाश

रेख भई अविलोक लई हरि सीय उड्यो नभि कउ तब ही ।।३५५।।

।। इति स्री बचित्र नाटक रामवतार कथा सीता हरन धिआइ समापतम ।।

अथ सीता खोजबो कथनं ।।

।। तोटक छंद ।। रघुनाथ हरी सिय हेर मनं । गहि बान सिला सित सज्जि धनं । चहुँ ओर सुधार निहार फिरे । छित ऊपर स्री रघुराज गिरे ।। ३५६ ।। लघु बीर उठाइ सु अंक भरे । मुख पोछ तबै बदना उचरे । कस अधीर परे प्रभ धीर धरो । सिय (मू०ग्रं०२१६) जाइ कहा तिह सोध करो ।। ३५७ ।। उठ ठाढि भए फिरि भूम गिरे । पहरेकक लउ फिर प्रान फिरे । तन चेत सुचेत उठे हठि यौं । रण मंडल मद्धि गिर्यो भट ज्यों ।। ३५८ ।। चहूँ ओर पुकार बकार थके । लघु भ्रात भए बहु भाँत झखे । उठकै पुन प्रात इशनान गए । जल जंत सभै जरि छारि भए ।। ३५९ ।। बिरही जिह

की ओर उड़ने लगा ।। ३५५ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार की कथा के सीता-हरण अध्याय की समाप्ति ।।

सीता की खोज का कथन प्रारम्भ

।। तोटक छंद ।। जब रघुनाथ ने मन में यह देखा कि सीता का हरण हो गया तो उन्होंने बाण और धनुष हाथ मे पकड़ा और एक श्वेत शिला पर बैठ गए । उन्होने एक बार फिर चारो ओर देखा, परन्तु अन्त मे निराश हो श्रीराम धरती पर गिर पड़े ।। ३५६ ।। छोटे भाई ने उन्हें पकड़कर उठाया । उनका मुँह पोछते हुए कहा कि हे प्रभु ! अधीर न होइए और धैर्य रखिए । सीता कहाँ चली गई इस तथ्य की खोज करिए ।। ३५७ ।। रामचन्द्र उठे परन्तु फिर भूमि पर अचेत हो गिर पड़े और पुनः लगभग एव प्रहर के वाद उन्हे चेतना आई । श्रीराम धरती से इस प्रकार उठे जिस प्रकार युद्धभूमि मे अचेत पड़ा वीर चेतना अवस्था मे आकर धीरे-धीरे उठता है ।। ३५८ ।। चारो ओर पुकारते-पुकारते थक गए और अपने छोटे भाई के साथ इस प्रकार बहुत दु.खी हुए । प्रातःकाल उठ वे स्नान करने के लिए गए, परन्तु उनके दुःख की अग्नि के प्रभाव से जल के सभी जन्तु जलकर राख हो गए ।। ३५९ ।। विरहाकुल

ओर सु दिष्ट धरै । फल फूल पलास अकाश जरै । कर सौ धर जउन छुअंत भई । कच बासन ज्यों पक फूट गई ।।३६०।। जिह भूम थली पर राम फिरे । दव ज्यों जल पात पलास गिरे । टुट आसू आरण नैन झरी । मनो तात तवा पर बूंद परी ।। ३६१ ।। तन राघव भेट समीर जरी । तज धीर सरोवर मॉझ दुरी । नहि तत्र थली सत पत्र रहे । जल जंत परत्त्रण पत्र दहे ।। ३६२ ।। इत ढूँढ बने रघुनाथ फिरे । उत रावन आन जटायु घिरे । रण छोर हठी पग दुइ न भज्यो । उड पच्छ गए पै न पच्छ तज्यो ।। ३६३ ।। ।। गीता मालती छंद ।। पच्छराज रावन मारि कै रघुराज सीतहि लै गयो । नभि ओर खोर निहारकै सु जटाउ सीअ सँदेस दयो । तब जान राम गए बली सिय सत्त रावन ही हरी । हनवंत मारग मो मिले तब मित्रता ता सों करी ।। ३६४ ।। तिन आन स्त्री रघुराज के

राम जिस ओर देखते थे, उसी ओर उनकी दृष्टि की गर्मी से फल-फूल पलास के वृक्ष एव आकाश जल उठते थे । हाथों से जब भी वे धरती को छूते थे तो उनके स्पर्श से कच्चे बर्तन के समान धरती फट जाती थी ।। ३६० ।। जिस भूमि पर राम विचरण करते थे उस धरती के पलास आदि के वृक्ष घास की तरह जलकर राख हो जाते थे । उनके आंसू की धारा धरती पर गिर ऐसे उड़ जाती थी, जैसे गर्म तवे पर पानी की बूंदे पड़कर उड जाती है ।। ३६१ ।। रामचन्द्र के शरीर के साथ लगते ही शीतल पवन भी जल उठता था और अपनी शीतलता को सम्हालते हुए धैर्य को छोड जल के सरोवर मे समा जाता था । उस स्थान पर कमल के पत्ते भी बाकी नही बचे और जल के जन्तु, घास, पत्र आदि सब श्रीराम की विरहाग्नि मे जलकर भस्म हो गए ।। ३६२ ।। इधर रघुनाथ सीता को ढूंढते वन मे घूम रहे थे, उधर रावण जटायु द्वारा घेर लिया गया । हठी जटायु भी युद्ध छोड़ एक कदम भी नही भागा । उसके पख कट गए, परन्तु फिर भी उसने सीता के पक्ष मे लडना नही छोड़ा ।। ३६३ ।। ।। गीता मालती छद ।। पक्षिराज जटायु को मार रावण सीता को ले गया है । यह सन्देशा जटायु ने श्रीराम को दिया, जब उन्होने आकाश की ओर देखा । जटायु से मिलने पर राम को निश्चित रूप से यह पता लग गया कि रावण ने ही सीता का हरण किया है । मार्गो पर घूमते हुए श्रीराम हनुमान से मिले और इनकी उनसे मित्रता हो गई ।। ३६४ ।। हनुमान ने कपिराज सुग्रीव को लाकर

कपिराज पाइन डारयो । तिन बैठ गैठ इकैठ ह्वै इह भाँति मंत्र बिचारयो । कप बीर धीर सधीर के भट मंत्र बीर बिचारकै । अपनाइ सुग्रिव कउ चले कपिराज बाल सँघारकै ॥ ३६५ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे बाल बधह धिआइ समापतम ॥

अथ हनूमान सोध को पठैबो ॥

॥ गीता मालती छंद ॥ दल बाँट चार दिसा पठ्यो हनवंत लंक पठै दए । लै मुद्रका लघ बारिधं जह सी हुती तह जात भे । पुरजारि अच्छकुमार छै बन टारिकै फिर आइयो । क्रित चार जो अमरारि को सभ राम तीर जताइयो ॥ ३६६ ॥ दल जोर कोर करोर लै बड घोर तोर सभै चले । रामचंद सुग्रीव लछमन अउर सूर भले भले । जामवंत सुखैन नील हणवंत अंगद केसरी । कपि पूत जूथपजूथ लै उमडे चहूँ दिस कै झरी ॥ ३६७ ॥ पाटि बारिध राज कउ करि (मू०ग्रं०२१७)

श्रीरामचन्द्र के पैरों मे डाल दिया और इन सबने मिलकर विचार-विमर्श किया । सब मत्रियो ने बैठकर अपनी-अपनी सलाह दी और श्रीराम ने कपिराज बालि का संहार कर सुग्रीव को अपना बना लिया ॥ ३६५ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ मे बालि-वध अध्याय की समाप्ति ॥

हनुमान को खोज के लिए भेजने का प्रसग प्रारम्भ

॥ गीता मालती छद ॥ दल को चार भागो में बाँटकर चारों दिशाओं मे भेज दिया गया और हनुमान को लंका की ओर भेजा गया । हनुमान मुद्रिका को लेकर और देखते-देखते समुद्र को पार कर जहाँ सीता थी वहाँ जा पहुँचे । लका का दहन और अक्षयकुमार का हनन तथा अशोक वाटिका को उजाड़ हनुमान वापस आये और देवताओ के शत्रु रावण के जो कृत्य थे उन्हे उन्होने राम के समक्ष रखा ॥ ३६६ ॥ अब दल को जोड़कर करोडो की सख्या मे ये सब लोग चले और इनकी सेना मे रामचन्द्र, सुग्रीव, लक्ष्मण, सुषेन, नील, हनुमान, अंगद आदि महाबली थे । कपिपुत्रों के झुडो के झुड चारो दिशाओं से वर्षा के समान उमड़कर चल

बाटि लाँघ गए जबै। दूत दई तन के हुते तब दउर रावन पै गए। रन साज बाज सभै करो इक बेनती मम मानिऐ। गड़ लंक बंक सँभारिऐ रघुबीर आगम जानिऐ॥ ३६८॥ धूम्रअच्छ सु जांबमाल बुलाइ बीर पठै दए। शोर कोर क्रोर कै जहाँ राम थे तहाँ जात भे। रोस कै हनवंत था पग रोप पाव प्रहारियं। जूझि भूमि गिर्यो बली सुरलोक माँझि बिहारियं॥ ३६९॥ जांबमाल भिरे कछू पुन मारि ऐसेइ कै लए। भाज कीन प्रवेश लंक संदेश रावन सो दए। धूमराछ सु जांबमाल दुहहूँ राघवजू हर्यो। है कछू प्रभु के हिए सुभमंत्र आवत सो करो॥ ३७०॥ पेख तीर अकंपनै दल संगि दै सु पठै दयो। भाँति भाँति बजे बजंत्र निनद्द सद्द पुरी भयो। सुरराइ आदि प्रहस्त ते इह भाँति मंत्र बिचारियो। सिय दे मिलो रघुराज को कस रोस राव सँभारियो॥ ३७१॥ ॥ छपय छंद॥ झल हलंत तरवार बजत बाजंत्र महा धुन।

पड़े॥ ३६७॥ जब समुद्र को पाटकर रास्ता बनाकर सब लोग उस ओर लाँघ गए, तब रावण के दूत दौड़कर रावण के पास यह समाचार देने के लिए गए कि हमारी यह प्रार्थना है कि युद्ध के लिए हमे तैयार होना चाहिए और सुन्दर लका नगरी की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि रघुवीर राम का आगमन हो चुका है॥ ३६८॥ रावण ने धूम्राक्ष और जाम्बुमाली को बुलाकर युद्ध के लिए भेज दिया और ये वीर भयकर कोलाहल करते वहाँ पहुंचे जहाँ राम स्थित थे। हनुमान ने क्रोधित होकर एक पैर धरती पर जमाकर दूसरे पैर से भीषण प्रहार किया; जिससे बली धूम्राक्ष गिर पड़ा और मृत्यु को प्राप्त हो गया॥ ३६९॥ पुनः जाम्बुमाली युद्ध मे भिडा परन्तु वह भी वैसे ही मारा गया तब दैत्यो ने भागकर लका मे प्रवेश किया और रावण को यह समाचार सुनाया कि धूम्राक्ष और जाम्बुमाली दोनो को ही श्रीरामचन्द्र ने मारा डाला है। हे प्रभु! अब जैसा आपको अच्छा लगे कोई और उपाय कीजिए॥ ३७०॥ अकम्पन को अपने पास देखकर उसको दल देकर रावण ने भेज दिया। उसके चलने पर भाँति-भाँति के वाद्य बजने लगे और सारी लका पुरी मे ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। प्रहस्त आदि मन्त्रियो ने यह विचार किया कि रावण को यह चाहिए कि वह सीता श्रीराम को वापस कर उनके क्रोध को और अधिक न उभारे॥ ३७१॥ ॥ छप्पय छद॥ वाद्यो एवं तलवारो की खड़खड़ाहट होने लगी और युद्धस्थल की भीषण ध्वनि

खड़ हड़ंत खह खोल ध्यान तजि परत चवध मुन। इक्क इक्क लै चले इक्क तन इक्क अरुज्झै। अंध धुंध पर गई हत्थि अर मुक्ख न सुज्झै। सुमुहे सूर सावंत सभ फउज राज अंगद समर। जै सद्द निनद्द बिहद्द हूअ धनु जंपत सुर पुर अमर॥ ३७२॥ इत अंगद युवराज दुतिअ दिस बीर अकंपन। करत ब्रिष्ट सर धार लजत नही नैक अयोधन। हत्थ बत्थ मिल गई लुत्थ बित्थरी अहाड़ं। घुम्मे घाइ अघाइ बीर बंकड़े बबाड़ं। पिक्खत बैठ बिबाण बर धंन धंन जंपत अमर। भव भूत भविक्खय भवान मो अब लग लख्यो न अस समर॥ ३७३॥ कहूँ मुंड पिखीअहि कहूँ भक रुंड परे धर। कितही जाँघ तरफंत कहूँ उछरंत सु छब कर। भरत पत्र खेचरी कहूँ चावंड चिकारै। किलकत कतह मसान कहूँ भैरव भभकारै। इह भाँति बिजै कपि की भई हण्यो असुर रावण तणा। भै दग्ग अदग्ग भग्गे हठी गहि गहि कर दाँतन त्रिणा॥ ३७४॥ उतै दूत रावणै जाइ हत बीर सुणायो।

से मुनियो के ध्यान टूटने लगे। वीर एक-एककर आगे बढने और एक-एक से उलझने लगे। ऐसी भीषण मारकाट मच गई कि हाथ-मुँह की पहचान भी जाती रही। सामने शूरवीरो की सेना और महाबली अंगद दिखाई पड़ रहे है और उनको देखकर उनकी जय-जयकार की ध्वनि आकाश से ही गूँजने लगी॥ ३७२॥ इधर युवराज अंगद और उधर दूसरी दिशा में वीर अकम्पन बाणो की वर्षा करते हुए जरा सा भी थक नही रहे हैं। हाथो से हाथ मिल रहे है और लाशे बिखरी पड रही है। वीर घूम-घूमकर और ललकार कर एक-दूसरे को मार रहे है। विमानो में बैठकर देवता लोग धन्य-धन्य पुकार रहे है और कह रहे है कि उन्होने कभी भी इस प्रकार का भीषण युद्ध नही देखा है॥ ३७३॥ कही मुड दिखाई पड़ रहे है और कही मुड-विहीन धड़ दृष्टिगोचर हो रहे है। कही जघाएँ तड़फ-तडफकर उछल रही हैं और कही गणिकाएँ रक्त से अपने पात्र भर रही हैं तथा कही चीलो का चीत्कार सुनाई पड रहा है। कही बैताल किलकारियाँ मार रहे है और कही भैरव अट्टहास कर रहे हैं। इस प्रकार अंगद की विजय हुई और उसने रावण के पुत्र अकम्पन को मार दिया। उसके मरते हुए भयभीत हो और दाँतो मे तिनके पकड़े हुए राक्षस भाग खड़े हुए॥ ३७४॥ उधर दूतो ने रावण को जाकर वीर अकम्पन के मरने का समाचार सुनाया और इधर कपिपति अंगद को

इत कपिपत अरु रामदूत अंगदहि पठायो। कही कत्थ तिह सत्थ गत्थ करि तत्थ सुनायो। मिलहु देहु जानकी काल नातर तुहि आयो। पग भेट चलत भ्यो बाल सुत प्रिष्ट पान रघुबर धरे। (मू०ग्रं०२१८) भर अंक पुलक तन पस्यो भाँत अनिक आसिख करे॥ ३७५॥ ॥ प्रतिउत्तर संबाद॥ ॥ छपै छंद॥ देहु सिया दसकंध छाहि नहि देखन पैहो। लंक छीन लीजिऐ लंक लखि जीत न जैहो। क्रुद्ध बिखै जिन घोर विरख कस जुद्धु मचैहै। राम सहित कपि कटक आज स्त्रिग स्यार खवैहै। जिन कर सु गरबु सुण मूड़ मत गरब गवाइ घनेर घर। बस करे सरब घर गरब हम ए किन महि द्वै दीन नर॥ ३७६॥ ॥ रावन बाच अंगद सो॥ ॥ छपै॥ अगन पाक कहु करै पवन मुर बार बुहारै। चवर चंद्रमा धरै सूर छत्रहि सिर धारै। मद लछमी पिआवंत बेद मुख ब्रहम

राम के दूत के रूप मे रावण के पास भेजा गया। अगद को सारी बातें और तथ्य (कि राम महाबलशाली है) रावण को बताने और सलाह देने के लिए भेजा गया कि वह जानकी को वापस कर दे अन्यथा यह मान ले कि उसका (रावण का) काल आ पहुँचा है। बालिपुत्र अंगद भगवान राम का चरण छू चल पड़ा और श्री रघुवीर ने उसकी पीठ पर हाथ रख उसको अक मे मारते हुए अनेक प्रकार से आशीर्वाद दे उसे विदा किया॥ ३७५॥ ॥ प्रति-उत्तर संवाद॥ ॥ छप्पय छंद॥ (यहाँ एक पक्ति मे अगद का कथन है और दूसरी पक्ति मे रावण का उत्तर है।) अंगद कहता है, हे दशानन रावण! सीता को लौटा दो, तुम उसकी छाया भी नही देख पाओगे अर्थात् नही तो मारे जाओगे। रावण ने उत्तर दिया कि लंका के छिन जाने पर भी मुझे कोई जीत नही सकता। जब अंगद ने फिर कहा कि क्रोध से तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, तुम युद्ध कैसे कर पाओगे तो उसे उत्तर मिला कि मै आज ही राम समेत पूरी वानर-सेना को जानवरो और गीदड़ो को खिला दूँगा। अगद ने कहा कि हे रावण! तुम अधिक गर्व मत करो, इस गर्व ने कई घरो को तबाह कर दिया है। रावण ने उत्तर दिया कि मुझे गर्व है कि मैंने अपनी शक्ति से सबको वश मे कर लिया है; फिर ये दोनो मनुष्य (राम-लक्ष्मण) किस खेत की मूली हैं॥ ३७६॥ ॥ रावण उवाच अगद के प्रति॥ छप्पय॥ अग्निदेवता मेरे यहाँ भोजन पकाता है और वायु मेरे यहाँ झाड़ू लगाता है। चंद्रमा मेरे सिर चँवर डुलाता है और सूर्य मेरे सिर पर छत्र धारण करता है। लक्ष्मी मुझे मद्यपान करवाती है और ब्रह्मा मेरे लिए वेदपाठ करता है।

उचारत। बरन बार नित भरे और कुलुदेव जुहारत। निज कहति सु बल दानव प्रबल देत धनुदि जछ मोहि कर। वे जुद्ध जीत ते जाँहिगे कहाँ दोइ ते दीन नर॥ ३७७॥ कहि हार्यो कपि कोटि दइत पति एक न मानी। उठत पाव रुपियो सभा मधि सो अभिमानी। थके सकल असुरार पाव किनहूँ न उचक्क्यो। गिरे धरन मुरछाइ बिमन दानव दल थक्क्यो। लै चल्यो बभीछन भ्रात इह बाल पुत्र धूसर बरन। भट हटक बिकट तिह नास के चलि आयो जित राम रन॥ ३७८॥ कहि बुलयो लंकेश ताहि प्रभ राजिवलोचन। कुटल अलक मुख छके सकल संतन दुखमोचन। कुपे सरब कपिराज बिजै पहली रण चक्खी। फिरै लंक गड़ि घेरि दिसा दच्छणी परक्खी। प्रभ करै बभीछन लकपति सुणी बाति रावण घरणि। सुद्धि सत्त तब्बि बिसरत भई गिरी धरण पर हुइ बिमण॥ ३७९॥

वरुण देवता मेरे यहाँ पानी भरता है और मेरे कुलदेव के समक्ष वदना करता है। यह मैंने अपना बल वताया है। इसके अतिरिक्त प्रबल दानव बल मेरे साथ है, जिसके कारण प्रसन्न मन से यक्षादि मुझे सर्व प्रकार का धन-धान्य देते है। जिनकी तुम बात करते हो वे दोनो दीन-असहाय मानव हैं; फिर कैसे वे युद्ध जीत लेगे॥ ३७७॥ कपि अंगद ने अनेकों वार रावण को समझाया परन्तु उसने एक न मानी। अंगद ने भी उठते समय गर्व से सभा के मध्य अपना पाँव गड़ा दिया (और पाँव हिलाने भर के लिए सवको ललकारा)। सभी असुर हार गए, परन्तु कोई भी पाँव को न हिला सका। सभी दानव ज़ोर लगाने के फलस्वरूप मूर्छित होकर गिर पड़े। मिटटी के रग वाला बालिपुत्र अगद (रावण के दरवार से) विभीषण को अपने संग लेकर चल पड़ा। जब असुरो ने उसे रोका तो वह सवको खदेड़कर उनका नाश करता हुआ राम के पक्ष मे युद्ध को जीतता हुआ वापस राम के पास आ पहुँचा॥ ३७८॥ अगद ने आकर कहा कि हे कमलनयन राम! लंकेश ने तुम्हे युद्ध के लिए वुला भेजा है। उस समय केशों की कुटिल अलके दु:खमोचन राम के मुख पर लहराकर उनके मुख की छवि को निहार रही थी। रावण से पहले युद्ध मे विजयी हो चुके सभी वानर अंगद के मुख से रावण की वात सुनकर कुपित हो उठे। वे लका की ओर वढने के लिए दक्षिण दिशा की ओर चले। इधर जव रावण की पत्नी (मदोदरी) ने राम द्वारा विभीषण को लंकापति वनाने की वात सुनी, तव वह अचेत होकर धरती पर गिर पड़ी॥ ३७९॥ ॥ मदोदरी उवाच॥ ॥ उटङण छद॥ शूरवीर सज

॥ मदोदरी बाच ॥ ॥ उटंङण छंद ॥ सूरबीरा सजे घोर बाजे बजे भाज कंता सुणे राम आए। बाल मार्यो बली सिंध पाट्यो जिनै ताहि सौ बैरि कैसे रचाए। ब्याध जीत्यो जिनै जंभ मार्यो उनै राम अउतार सोई सुहाए। दे मिलो जानकी बात है स्यान की चाम के दाम काहे चलाए॥ ३८०॥ ॥ रावण बाच॥ ब्यूह सैना सजो घोर बाजे बजो कोटि जोधा गजो आन नेरे। साज संजोअ सबूह सैना सभै आज मारो तरै द्रिश्टि तेरे। इंद्र जीतो करो जच्छ रीतो धनं नारि सीता बरं जीत जुद्धै। सुरग पाताल आकाश ज्वाला जरै बाचि है राम का मोर (मू०ग्रं०२१६) क्रुद्धै॥ ३८१॥ ॥ मदोदरी बाच॥ तारका जात ही घात कीनी जिनै अउर सुबाहु मारीच मारे। ब्याध बद्ध्यो खरदूखणं खेत थै एक ही बाण सों बाण मारे। धूम्रअच्छाद अउ जांबुमाली बली प्राण हीणं कर्यो जुद्ध जै कै। मारिहैं तोहि यौं स्यार के सिंघ ज्यो लेहिगे लंक को डंक दैकै॥ ३८२॥ ॥ रावण बाच॥ चउर चंद्रं करं

रहे है, घोर रणवाद्य बज रहे है; हे कंत (रावण)! तुम अपनी सुरक्षा हेतु भागो, क्योंकि राम आ पहुँचे है। जिसने बालि को मार दिया, सिंधु को पाटकर रास्ता बना लिया, उनसे तुमने शत्रुता क्यों मोल ले ली। जिसने विराध और जंभासुर को मार दिया ये वही शक्ति राम के रूप में अवतरित हुई है। तुम जानकी को वापस करके उनसे मिलो, अक्ल की बात यह है कि चमड़े के सिक्के चलाने की कोशिश मत करो॥ ३८०॥ ॥ रावण उवाच॥ सेना का व्यूह मेरे चारों ओर बन जाय, वाद्यो की घोर ध्वनि होने लगे और करोड़ो योद्धा मेरे पास आकर गरजने लगे, परन्तु फिर भी मैं कवच पहनकर तुम्हारे सामने देखते-देखते सबको नष्ट कर दूंगा। इन्द्र को जीतकर यक्ष को लूटकर उन्हें खाली कर दूंगा और युद्ध को जीतकर सीता का वरण करूँगा। मेरे क्रोध की ज्वाला से जब आकाश, पाताल और स्वर्ग जल उठता है, तो राम भला मुझसे कैसे बच जायगा॥ ३८१॥ ॥ मंदोदरी उवाच॥ जिसने ताडका, सुबाहु और मारीच को मार दिया; विराध, खर-दूषण को मारा और एक ही बाण से बालि का वध कर दिया; जिसने धूम्राक्ष और जाबुमाली का युद्ध मे नाश कर दिया वह डके की चोट पर लका को जीतकर तुम्हे भी इसी प्रकार मार देगा जैसे गीदड़ को शेर मार देता है॥ ३८२॥ ॥ रावण उवाच॥ चंद्रमा मेरे सिर पर चँवर करता है, सूर्य मेरा छत्र पकड़ता है और ब्रह्मा मेरे द्वार पर वेद-

छत्र सूरं धरं बेद ब्रहमा ररं द्वार मेरे। पाक पावक करं नीर बरणं भरं जच्छ बिद्याधरं कीन चेरे। अरब खरबं पुरं चरब सरबं करे देखु कैसे करौ बीर खेतं। चिक है चावडा फिक है फिक्करी नाच है बीर बैताल प्रेतं॥ ३८३॥ ॥ मदोदरी बाच॥ तास नेजे ढुलै घोर बाजे बजै राम लीने दलै आन ढूके। बानरी पूत चिकार अपारं करं मार मारं चहूँ ओर कूके। भीम भेरी बजै जंग जोधा गजै बान चापै चलै नाहि जउलौ। बात को मानिऐ घातु पहिचानिऐ रावरी देह की सांँत तउ लौ॥ ३८४॥ घाट घाटै रुको बाट बाटै तुपो ऐंठ बैठे कहा राम आए। खोर हरामहरीफ की आँख तै चाम के जात कैसे चलाए। होइगो ख्वार बिसिआर खाना तुरा बानरी पूत जउ लौ न गजिहै। लंक को छाडि कै कोटि को फाँध कै आसुरी पूत लै घासि भजिहै॥ ३८५॥ ॥ रावण बाच॥ बावरी राँड

पाठ करता है। अग्निदेवता मेरी रसोई तैयार करता है, वरुण पानी भरता है और यक्ष विद्याओ को सिखाते है। अरबो-खरबो पुरियों के सुखों को मैंने भोगा है। तुम देखना, मैं कैसे वीरों को मारता हूँ। ऐसा भीषण युद्ध करूँगा कि चीलें चहचहा उठेगी। भूतनियाँ घूमने लगेगी और वीर बैताल-प्रेतादि नृत्य कर उठेगे॥ ३८३॥ ॥ मंदोदरी उवाच॥ (उधर देखो) भाले झूलते हुए दिखाई दे रहे है, घोर बाजे बज रहे हैं और राम दल-बल-सहित आ पहुँचे हैं। चारो ओर वानरी सेना की 'मारो-मारो' की ध्वनि सुनाई पड रही है। हे रावण! जब तक रणभेरियाँ वज नही उठती है और गर्जना करते हुए योद्धा बाण चलाना नही प्रारम्भ कर देते हैं, उससे पहले ही अवसर को पहचानते हुए, अपने शरीर की सुरक्षा के लिए मेरी बात को मान जाओ (और युद्ध को न होने दो)॥ ३८४॥ सेनाओ को समुद्र के पत्तनो पर और अन्य रास्तों पर आगे बढ़ने से रोक दो, क्योकि अब तो राम आ पहुँचे है। अपनी आँखो पर से पाखड की पर्त हटाकर काम करो और चमड़े के सिक्के मत चलाओ अर्थात् मनमानी मत करो। तुम परेशानी मे पडोगे, तुम्हारा खानदान नष्ट हो जायगा। तुम्हारी सुरक्षा तभी तक है, जब तक वानरी सेना गर्जन प्रारम्भ नही कर देती। उसके बाद तो सभी असुर-पुत्र किले की दोवारों को फाँदकर दाँतो मे घास के तिनके दबाकर भाग खड़े होगे॥ ३८५॥ ॥ रावण उवाच॥ ओ मूर्ख कुलटा! तुम क्या बकवास कर रही हो। राम का गुणगान छोड़ो। राम तो मेरे लिए धूपबत्ती

क्या भाँत बातै बकै रंक से राम का छोड रासा। काढ़हो बासि दै बान बाजीगरी देखिहो आज ताको तमासा। बीस बाहे धरं सीस दस्यं सिरं सैण संबूह है संगि मेरे। भाज जैहै कहाँ बाटि पैहैं उहाँ मारिहौं बाज जैसे बटेरे ।। ३८६ ।। एक एकं हिरै झूम झूमं मरैं आपु आपं गिरै हाकु मारे। लाग जेहउ तहाँ भाज जैहै जहाँ फूल जैहै कहाँ तै उबारे। साज बाजे सभै आज लैहउँ तिनै राज कैसो करै काज मोसो। बानरं छै करो राम लच्छं हरो जीत हौं होड तउ तान तोसो ।।३८७।। कोटि बातै गुनी एक कै ना सुनी कोपि मुंडी धुनी पुत्त पट्ठै। एक नारांत देवांत दूजो बली भूम कपी रणंबीर उट्ठै। सार मारं परे धारधारं बजी क्रोध है लोह की छिट्ट छुट्टैं। रुंड धुक धुक परैं घाइ भकभक्क करैं बित्थरी जुत्थ सो लुत्थ लुट्टैं ।। ३८८ ।। पत्र जुग्गण भरैं सद्द देवी करैं नद्द भैरो ररैं गीत गावैं। भूत औ प्रेत बैताल बीरं बली मास अहार तारी बजावैं। जच्छ

के समान छोटे-छोटे बाण निकालकर चलाएगा अर्थात् मैं इतना विशाल हूँ कि उसके बाण मेरे लिए छोटी सी लकड़ी के समान होंगे। आज मैं यही तमाशा देखूँगा। मेरी बीस भुजाएँ, दस सिर हैं तथा समस्त सेना मेरे साथ है। राम को तो भागने का भी रास्ता नही मिलेगा। मैं उसे जहाँ पाऊँगा वहीं पर ऐसे मार दूँगा जैसे बाज बटेर को मार देता है ।। ३८६ ।। एक-एक को ढूंढ-ढूँढकर मारूँगा और वे सब मेरी ललकार सुनकर ही गिर पड़ेगे। वे जहाँ भी भागकर जायेगे मैं उनका पीछा करता वहाँ जा पहुँचूंगा तथा वे कही भी नही छिप पायेगे। आज सज-धजकर मैं उनको पकड़ लूँगा और मेरा सारा काम तो मेरे राज्य के अनुचर ही कर देगे। वानरी सेना को नष्ट कर दूंगा। राम और लक्ष्मण का वध कर दूंगा और जीतकर तुम्हारा गर्व भी चूर कर दूंगा ।। ३८७ ।। कई बाते कही गयी परन्तु रावण ने एक न सुनी और क्रोध मे सिर धुनता हुआ उसने अपने पुत्रो को युद्ध मे भेज दिया। युद्ध में जानेवाला एक नरान्तक और दूसरा देवान्तक महाबली था जिनको देखकर धरती काँप उठती थी। लोहे पर लोहा बजने लगा और बाणो की वर्षा से रक्त के छींटे उड़ने लगे। बिना सिर के धड़ तड़फने लगे, घावो से भभककर रक्त बहने लगा तथा लाशें इधर-उधर बिखरने लगी ।। ३८८ ।। योगिनियाँ खप्पर रक्त से भरने लगी और काली देवी को पुकारने लगी। भैरव भी भयंकर ध्वनि से गीत गाने लगे। भूत, प्रेत, वैताल तथा अन्य

गंध्रब अउ (मू०ग्रं०२२०) सरब बिद्याधरं मद्धि आकाश भयो सद्द देवं। लुत्थ बिथुत्थरी हूह कूहं भरी मच्चियं जुद्ध अनूप भतेवं ॥ ३८९ ॥ ॥ संगीत छपै छंद ॥ कागड़दी कुप्प्यो कपि कटक बागड़दी बाजन रण बज्जिय। तागड़दी तेग झलहली गागड़दी जोधा गल गज्जिय। सागड़दी सूर संमुहे नागड़दी नारद मुनि नच्च्यो। बागड़दी बीर बैताल आगड़दी आरण रंग रच्च्यो। संसागड़दी सुभट नच्चे समर फागड़दी फुंक फणीअर करै। संसागड़दी समटं सुंकड़े फणपति फणि फिरि फिरि धरैं ॥ ३९० ॥ फागड़दी फुंक फिकरी रागड़दी रण गिद्ध रड़क्कै। लागड़दी लुत्थ बित्थुरी भागड़दी भट घाटि भभक्कै। बागड़दी बरखत बाण झागड़दी झलमलत क्रिपाणं। गागड़दी गज्ज संजरे कागड़दी कच्छे किकाणं। बंबागड़दी बहत बीरन सिरन तागड़दी तमकि तेगं कड़ोअ। झंझागड़दी झड़कदै झड़ समै झलमल झुकि बिज्जुल झड़ोअ ॥ ३९१ ॥ नागड़दी

मांसाहारी तालियाँ बजाने लगे। आकाश मे यक्ष, गन्धर्व एव सर्वविद्याओं मे प्रवीण देवता विचरण करने लगे। लाशे विखरने लगी और चारो ओर भीषण कोलाहल से वातावरण भर उठा और इस प्रकार भीषण युद्ध अनुपम रूप से बढ़ चला ॥ ३८९ ॥ ॥ सगीत छप्पय छंद ॥ वानरों की सेना कुपित हो उठी और भयकर रणवाद्य बजने लगे। कृपाणो की झलक दिखने लगी और योद्धा सिहनाद करते गरजने लगे। शूरवीरों को एक-दूसरे से भिड़ा देख नारद मुनि प्रसन्न हो नृत्य करने लगे। वीर बैतालो की भगदड़ तेज़ हो गई और साथ-ही-साथ युद्ध भी तेज़ हो उठा। शूरवीर समरभूमि मे नाचने लगे और शेषनाग के सहस्रो फणो से निकलते विष की धार के समान वीरो के शरीर से रक्त बहने लगा और वे आपस मे फाग खेलने लगे। वीर कभी सर्प के फण की तरह पीछे हटते है, फिर कभी आगे बढकर वार करते हैं ॥ ३९० ॥ चारो ओर रक्त की पिचकारियाँ छूट रही है और होली का-सा समाँ बँध गया। रणस्थल मे गिद्ध भी दिखाई देने लगे। लाशे बिखरी पड़ी है और सुभटो के शरीरो से रक्त भभककर बह रहा है। बाण-वर्षा हो रही है और कृपाणों की चमचमाहट दिखाई दे रही है। हाथी गरज रहे है और घोड़े बिदककर भाग रहे है। वीरो के सिर रक्त की नदी मे बह रहे है और तलवारों की तमतमाहट दिखाई दे रही है। तलवारे ऐसे छपककर गिर रही है मानो आकाश से बिजली गिर रही हो ॥ ३९१ ॥ नरान्तक

नारांतक गिरत दागड़दी देवांतक धायो। जागड़दी जुद्ध कर तुमल सागड़दी सुरलोक सिधायो। दागड़दी देव रहसंत आगड़दी आसुरण रण सोगं। सागड़दी सिद्ध सर संत नागड़दी नाचत तजि जोगं। खंखागड़दी खयाह भए प्रापति खल पागड़दी पुहप डारत अमर। जंजागड़दी सकल जै जै जपै सागड़दी सुरपुरहि नार नर ॥ ३९२ ॥ रागड़दी रावणहि सुन्यो सागड़दी दोऊ सुत रण जुज्झे। बागड़दी बीर बहु गिरे आगड़दी आहवहि अरुज्झे। लागड़दी लुत्थ बित्थरी चागड़दी चाँवंड चिकारं। नागड़दी नद्द भए गद्द कागड़दी काली किलकारं। भंभागड़दी भयंकर जुद्ध भयो जागड़दी जूह जुग्गण जुरीअ। कंकागड़दी किलक्कत कुहर कर पागड़दी पत्र स्रोणत भरीअ ॥ ३९३ ॥

॥ इति देवातक नरातक वधहि धिआइ समापतम सत ॥

अथ प्रहसत जुद्ध कथनं ॥

॥ संगीत छपै छंद ॥ पागड़दी प्रहसत पठियो दागड़दी देकै दल अनगन। कागड़दी कंप भूअ उठी बागड़दी बाजन खुरी

के गिरते ही देवान्तक दौड़कर सामने आया और युद्ध करता हुआ सुरलोक सिधार गया। यह देख देवता प्रसन्न हुए और आसुरी सेना मे शोक छा गया। सिद्ध और सन्त भी अपनी योगसमाधियाँ छोड़ नृत्य करने लगे। खलों के दल का क्षय हो गया और देवता पुष्प-वर्षा करने लगे तथा सुरपुर के नर-नारी जय-जयकार करने लगे ॥ ३९२ ॥ रावण ने भी यह सुना कि मेरे दोनों पुत्र तथा अन्य वहुत से वीर युद्ध करते हुए मृत्यु को प्राप्त हो गये। युद्धस्थल मे लाशे बिखर गई हैं और चील्हे मांस नोचकर चिल्ला रही है। युद्ध मे रक्त की नदियाँ बह उठी है और काली देवी किलकारियाँ मार रही है। भयकर युद्ध हुआ है और योगिनियाँ रक्तपान के लिए इकट्ठी हो पात्रो मे रक्त भर किलकारियाँ मार रही है ॥ ३९३ ॥

॥ इति देवान्तक-नरान्तक-वध अध्याय की सत् समाप्ति ॥

प्रहस्त-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ संगीत छप्पय छंद ॥ तब रावण ने अगणित सैनिक के साथ प्रहस्त को युद्ध करने के लिए भेजा और घोड़ों की टापो से धरती कांप

अनतन। नागड़दी नील तिह झिण्यो भागड़दी गहि भूमि पछाड़ीअ। सागड़दी समर हहकार दागड़दी दानव दल मारीअ। (मू०ग्रं०२२१) घंघागड़दी घाइ भकभक करत रागड़दी रुहिर रण रंग बहि। जंजागड़दी जुयह जुग्गण जपै कागड़दी काक कर करककह॥ ३९४॥ पागड़दी प्रहसत जुझंत लागड़दी लै चल्यो अप्प दल। भागड़दी भूमि भड़हड़ी कागड़दी कंपी दोई जल थल। नागड़दी नाद निह नद्द भागड़दी रण भेर भयंकर। सागड़दी साँग झलहलत चागड़दी चमकंत चलत सर। खंखागड़दी खड़ग खिमकत खहत चागड़दी चटक चिनगै कढै। ठंठागड़दी ठाट ठट्ट कर मनो नागड़दी ठणक ठठिअर गढै॥ ३९५॥ ढागड़दी ढाल उछलहि बागड़दी रण बीर बबक्कहि। आगड़दी इक लै चलै इक कहु इक उचक्कहि। तागड़दी ताल तंबुरं गागड़दी रणबीन सु बज्जै। सागड़दी संख के शबद गागड़दी गैवर गल गज्जै। धंधागड़दी धरणि धड़ धुकि परत चागड़दी चकत चित महि अमर। पंपागड़दी पुहप बरखा करत जागड़दी जच्छ गंध्रब वर॥ ३९६॥ झागड़दी झुज्झ भट गिरै मागड़दी मुख मार उचारै। सागड़दी संज पंजरे

उठी। नील ने उससे उलझकर उसे भूमि पर पछाड़ फेंका और इससे दानवदल में हाहाकार मच उठा। युद्ध मे घाव भभकने लगे और रक्त बहने लगा। योगिनियो के झुंड जाप करने लगे और कौवो की कांव-कांव भी सुनाई देने लगी॥ ३९४॥ प्रहस्त जूझता हुआ अपना दल लेकर बढ़ चला और उसके चलने से धरती पर तथा जलस्थल पर तहलका मच गया। भयकर नाद होने लगा और भेरियो की भयकर आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। भाले झलमलाने लगे और चमकते हुए तीर चलने लगे। खड्ग खड़खड़ाने लगे और ढालो पर लगने के फलस्वरूप चिनगारियाँ छूटने लगी। इस प्रकार की ठट-ठट की ध्वनि होने लगी मानो ठठेरा बर्तन बना रहा हो॥ ३९५॥ ढाले उछलने लगी और वीर एक-दूसरे को ललकारने लगे। एक लय से शस्त्र चलने लगे और ऊँचे उठकर नीचे गिरने लगे। ऐसा लगने लगा मानो सुरताल मे तानपूरे और बीन बज रही हो। शाख की ध्वनि की गड़गड़ाहट भी चारो ओर गरजने लगी। धरती का हृदय धड़कने लगा और युद्ध की भयंकरता को देख देवगण भी चकित हो उठे तथा यक्ष-गन्धर्व आदि पुष्पों की वर्षा करने लगे॥ ३९६॥ जूझते हुए वीर गिरते-गिरते भी मुख से मार-मार का उच्चारण करने लगे।

घाघड़दी घणीअर जणु कारै। तागड़दी तीर बरखंत गागड़दी गहि गदा गरिष्टं। सागड़दी मंत्र मुख जपै आगड़दी अच्छर बर इष्टं। संसागड़दी सदा शिव सिमर कर जागड़दी जूझ जोधा मरत। संसागड़दी सुभट मनमुख गिरत आगड़दी अपच्छरन कह बरत॥ ३९७॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद॥ इतै उच्चरे राम लंकेश बैणं। उतै देव देखै चड़े रथ गैणं। कहो एक एकं अनेकं प्रकारं। मिले जुद्ध जेते समंतं लुज्झारं॥ ३९८॥ ॥ बभीछण बाच राम सो॥ धनं मंडलाकार जाको बिराजै। सिरं जैत पत्रं लित छत्र छाजै। रथं बिसटतं ब्याघ्र चरमं अभीतं। तिसै नाथ जानो हठी इंद्रजीतं॥ ३९९॥ नहे पिंग बाजी रथं जेन सोभै। महाँ काइ पेखे सभै देव छोभै। हरे सरब गरबं धनं पाल देवं। महाँ काइ नामा महाँबीर जेवं॥४००॥ लगे म्यूर बरणं रथं जेन बाजी। बकै मार मारं तजै बाण राजी। महाँ जुद्ध को कर महोदर बखानो। तिसै जुद्ध करता बडो राम जानो॥ ४०१॥ लगे मुखकं बरण बाजी

वे जालीदार कवच पहने इस प्रकार लग रहे थे मानो काले बादल लहरा रहे हो। गदाओ और तीरो की वर्षा होने लगी और युद्धस्थल मे अप्सराएँ इष्ट योद्धाओ का वरण करने के लिए मन्त्रो का जाप करने लगी। योद्धा शिव का स्मरण कर जूझने और मरने लगे और इन सुभटो के गिरते ही अप्सराएँ इनका वरण आगे बढकर करने लगी॥ ३९७॥ ॥ भुजंग प्रयात छद॥ इधर राम और रावण का वार्त्तालाप चल रहा है और उधर देवगण अपने रथों पर सवार आकाश से यह दृश्य देख रहे है। जितने भी योद्धा युद्ध मे जूझ रहे है उन एक-एक का अनेक प्रकार से वर्णन किया जा सकता है॥ ३९८॥ ॥ विभीषण उवाच राम के प्रति॥ यह जिसका मण्डलाकार धनुष है और जिसके सिर पर श्वेतछत्र विजयपत्र की तरह घूम रहा है और जो रथ मे व्याघ्रचर्म पर अभय हो बैठा है; हे नाथ! वही हठी इन्द्रजित् (मेघनाद) है॥ ३९९॥ जिसके रथ मे भूरे घोड़े शोभायमान है और जिसकी विशाल काया को देखकर देवगण भयभीत हो उठते है और जिसने सभी देवताओ का गर्व चूर कर दिया है वह महाबली महाकाय (कुम्भकर्ण) के नाम से जाना जाता है॥ ४००॥ जिस रथ मे मोरो के रंग वाले घोड़े लगे है और जो मार-मार की ध्वनि के साथ बाण-वर्षा कर रहा है, हे राम! उसका नाम महोदर है और उसे भी बहुत बड़ा योद्धा माना जाना चाहिए॥ ४०१॥ जिस रथ मे मुख के

रथेसं । हसै (मू०ग्रं०२२२) पउन कै गउन को चार देसं । धरे बाण पाणं किधो काल रूपं । तिसै राम जानो सही दइत भूपं ।। ४०२ ।। फिरै मोर पुच्छं ढुरै चउर चारं । रड़ै क्रित्त बंदी अनंतं अपारं । रथं स्वर्ण की किंकणी चार सोहै । लखे देवकन्या महाँ तेज मोहै ।। ४०३ ।। छकै मद्ध जाको धुजा सारदूलं । इहै दइतराजं दुरं द्रोह मूलं । लसै क्रीट सीसं कसै चंद्र भा को । रमानाथ चीनो दसं ग्रीव ताको ।। ४०४ ।। दुहूँ ओर बज्जे बजंत्र अपारं । मचे सूरबीर महाँ शस्त्र धारं । करे अत्र पातं निपातत सूरं । उठे मद्ध जुद्धं कमद्धं करूरं ।। ४०५ ।। गिरै रुंड मुंड भसुंडं अपारं । रुले अंग भंगं समंतं लुझारं । परी कूह जूहं उठे गद्द सद्दं । जके सूरबीरं छके जाण मद्दं ।। ४०६ ।। गिरे झूम भूम अघूमेति घायं । उठे गद्द सद्दं चड़े चउप चायं । जुझे बीर एकं अनेकं प्रकारं । कटे अग जंगं रटै मार मारं ।। ४०७ ।। छुटै बाण पाणं उठैं

समान श्वेत अश्व जुते हुए है और जो चाल मे पवन की भी हँसी उड़ाते है और जो बाण हाथ मे लिये हुए काल के समान स्वरूपवाला दिखाई पड़ रहा है, हे राम ! उसे दैत्यराज (रावण) जानो ।। ४०२ ।। जिस पर सुन्दर मोर के पंखों का चँवर डुलाया जा रहा है और जिसके सामने अनेकों लोग वन्दना करनेवाले खड़े हो और जिसके रथ मे सोने की घटिकाएँ शोभायमान हो रही हों और जिसे देख देवकन्याएँ मोहित हो रही हैं ।। ४०३ ।। जिसकी ध्वजा के बीच शेर का चिह्न है, यही मन मे राम के प्रति द्रोह लिये हुए दैत्यराज रावण है । जिसके मुकुट पर चन्द्रमा और सूर्य शोभा दे रहे है, हे रमानाथ ! पहचान लीजिए यही दशानन रावण है ।। ४०४ ।। दोनों ओर से अनेको रणवाद्य बजने लगे और शूर-वीर महाशस्त्रो की धारा बरसाने लगे । अस्त्र चलने लगे और शूरवीर गिरने लगे और इस युद्ध मे क्रूर कबन्ध उठकर विचरण करने लगे ।।४०५।। धड और मुड तथा सूँड़े गिरने लगी और वीरगणो के अग कटकर धूल-धूसरित होने लगे । रणस्थल मे भीषण आर्तनाद और पुकारे प्रारम्भ हो गईं और ऐसा लगने लगा मानो मदमत्त हो वीर झूम रहे हों ।। ४०६ ।। वीरगण घायल होकर चकराते हुए झूमकर भूमि पर गिर रहे है और पुनः दुगुने उत्साह के साथ उठकर गदाओ के वार कर रहे है । अनेकों प्रकार से वीरो ने युद्ध शुरू कर दिया है और युद्ध मे अग कटकर गिर रहे है, परन्तु फिर भी वे मार-मार की पुकार लगाये हुए हैं ।। ४०७ ।। बाणो के

गद्व सद्दं । रुले झूम भूमं सु बीरं बिहद्दं । नचे जंग रंगं ततथइ ततत्थ्यं । छुटे बाण राजी फिरै छूछ हत्थ्यं ॥४०८॥ गिरे अंकुसं बारणं बीर खेतं । नचे कंध हीणं कबंधं अचेतं । भरैं खेचरी पत्र चउसठ तारी । चले सरब आनंदि हुइ मासहारी ॥ ४०९ ॥ गिरे बंकुड़े बीर बाजी सुदेसं । परे पीलवानं छुटे चार केसं । करैं पैज वारं प्रचारंत बीरं । उठै स्रोण धारं अपारं हमीरं ॥४१०॥ छुटैं चारि चित्रं बचित्रंत बाणं । चले बैठ कै सूरबीरं बिमाणं । गिरे बारुणं बित्थरी लुत्थ जुत्थं । खुले सुरग द्वारं गए वीर अछुत्थं ॥ ४११ ॥ ॥ दोहरा ॥ इह बिधि हत सैना भई रावण राम बिरुद्ध । लंक बंक प्रापत भयो दससिर महा सक्रुद्ध ॥ ४१२ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तबै मुक्कले दूत लंकेश अप्पं । मनं बच करमं शिवं जाप जप्पं । सभै मंत्र हीणं समै अंत काल । भजो एक चित्तं सु कालं क्रिपालं ॥ ४१३ ॥ रथी पाइकं दंत पंती अनंतं । चले पक्खरे

छूटते ही भयकर आवाज होती है और भीमकाय वीर झूमते हुए धरती पर गिर पड़ते हैं। सभी जग के रग मे सगीत की ताल पर नृत्य कर रहे है और कई बाणो के छूटते ही निहत्थे हो इधर-उधर घूम रहे है ॥ ४०८ ॥ वीरों को नष्ट करनेवाले भाले गिर रहे है और युद्धभूमि मे अचेत कबन्ध नाच रहे है। चौसठ योगिनियो ने अपने खप्पर रक्त से भर लिये है और सभी मांसाहारी परम आनन्द मनाते हुए विचरण कर रहे है ॥ ४०९ ॥ बाँके वीर और सुन्दर घोड़े गिर रहे है तथा दूसरी ओर हाथियो के पीलवान बिखरे हुए केशो के साथ पड़े हुए है। वीरगण अपने बल के अनुरूप शत्रु पर वार कर रहे हैं, जिसके फलस्वरूप रक्त की अपार धारा बह निकली है ॥ ४१० ॥ सुन्दर चित्रकारी करते हुए विचित्र प्रकार के बाण शरीरों को छेदते हुए चले जा रहे हैं और साथ ही साथ शूरवीर भी मृत्यु के विमान पर बैठकर उड़ते चले जा रहे हैं। बाणो के गिरते ही लाशो के झुड बिखर पड़े है और वीरो के लिए स्वर्ग के द्वार खुल गए है ॥ ४११ ॥ ॥ दोहा ॥ इस प्रकार राम के विरुद्ध लडनेवाली सेना हताहत हो गई और लका के सुन्दर किले मे बैठा रावण यह समाचार सुन अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा ॥ ४१२ ॥ ॥ भुजग प्रयात छद ॥ तभी मन-बचन और कर्म से शिव का जाप करते हुए लकेश रावण ने अपने दूत (कुम्भकर्ण के पास) भेजे। वे सभी मत्र की शक्ति से हीन थे और अपने अन्त समय को निकट जानते हुए वे एक कालकृपालु का स्मरण कर रहे थे ॥ ४१३ ॥ रथी, प्यादे और हाथियो पर तथा अश्वो पर सवार

बाज राजं सु भंतं । धसे नासका स्रोण मज्झं सु बीरं । बजे कान्हरे डंक डउरू नफीरं ।। ४१४ ।। बजे लाग बादं निनाबंति बीरं । उठै गद्द सद्दं निनद्दं नफीरं । भए आकुलं ब्याकलं छोरि भगिअं । बली कुंभकानं तऊ नाहि (मू०ग्रं०२२३) जगिअं ।। ४१५ ।। चले छाडिकै आस पासं निरासं । भए भ्रात के जागबे ते उदासं । तबै देवकन्या कर्‌यो गीत गानं । उठ्यो देव दोखी गदा लीस पानं ।। ४१६ ।। करो लंक देसं प्रवेसंति सूरं । बली बीस बाहं महाँ शस्त्र पूरं । करै लाग मंत्रं कुमंत्रं बिचारं । इतै उचरे बैन भ्रातं जुझारं ।। ४१७ ।। जलं गागरं सप्त साहंस्र पूरं । मुखं पुच्छ ल्यो कुंभकानं करूरं । कियो मासहारं महा मद्यपानं । उठ्यो लै गदा को भर्‌यो बीर मानं ।। ४१८ ।। भजी बानरी पेख सैना अपारं । त्रसे जूथ पै जूथ जोधा जुझारं । उठै गद्द सद्दं निनद्दंति बीरं । फिरै रुंड मुंडं तनं तच्छ तीरं ।। ४१९ ।। ।। भुजंग प्रयात छंद ।। गिरं मुंड तुंडं भसुडं गजानं । फिरै रुंड मुंडं सु झुंडं

कवचधारी वीर चल पड़े । वे सब (कुम्भकर्ण की) नाक और कान में घुस गये और उसमें डमरू और अन्य वाद्य बजाने लगे ।। ४१४ ।। ये सभी बच्चो की तरह व्याकुल हो भाग खडे हुए परन्तु फिर भी बली कुम्भकर्ण नही जागा ।। ४१५ ।। सभी उसको जगाने मे असमर्थ समझकर निराश हो चल दिए और भाई के इस प्रकार न जागने से सभी उदास हो गए । तभी देवकन्याओं ने गीतो का गायन प्रारम्भ कर दिया, जिसे सुन देवताओं का शत्रु कुम्भकर्ण जग पड़ा और उसने अपने हाथ मे गदा ले ली ।। ४१६ ।। उस शूरवीर ने लका मे प्रवेश किया, जहाँ महान् शस्त्रो से सुसज्जित वीस भुजाओ वाला महावली रावण था । इन्होने मिलकर विचार-विमर्श किया और एक-दूसरे से युद्ध से सम्बन्धित वातचीत की ।। ४१७ ।। सात सहस्र जल की गगरियाँ कुम्भकर्ण ने अपना मुँह साफ करने के लिए तृप्त की, मांसाहार किया तथा अत्यधिक मद्यपान किया । इस सबके बाद वह अभिमानी वीर गदा लेकर उठा और चल पड़ा ।। ४१८ ।। इसको देखकर अपार वानर-सेना भाग खड़ी हुई और देवताओ के झुंड-के-झुड भयभीत हो उठे । वीरो की भीषण आवाज़ उठने लगी और तीरों से छिले हुए तन रुड-मुड होकर विचरने लगे ।। ४१९ ।। ।। भुजंग प्रयात छद ।। हाथियो की सूँड़ कटकर गिर रही है और ध्वजाएँ भी कटी हुई इधर-उधर झूल रही हैं । सुन्दर घोड़े

निशानं । रड़ै कंक बंकं ससंकंत जोधं । उठी कूह जूहं मिले सैण क्रोधं ।। ४२० ।। खिमी तेग तेजं सरोसं प्रहारं । खिमी दामनी जाणु भादो मझारं । हसे कंक बंकं कसे सूरवीरं । ढली ढाल मालं सुभे तच्छ तीरं ।। ४२१ ।। ।। बिराज छंद ।। हक्क देवी करम् । सद्द भैरो ररम् । कावडी चिच्चरम् । डाकणी डिकरम् ।। ४२२ ।। पत्र जुग्गण भरम् । लुत्थ बित्थुथरम् । समुहे संघरम् । हूह कूहं भरम् ।। ४२३ ।। अच्छरी उछरम् । सिधुरे सिधुरम् । मार मारुच्चरम् । बज्ज गज्जे सरम् ।। ४२४ ।। ।। बिराज छंद ।। उज्झरे लुज्झरम् । झुम्मरे जुज्झरम् । बज्जियं डंमरम् । तालणो तुंबरम् ।।४२५।। ।। रसावल छंद ।। परी मार मारम् । मंडे शस्त्र धारम् । रटै मार मारम् । तुटै खग्ग धारम् ।।४२६।। उठै छिच्छ अपारम् । वहै स्रोण धारम् । हसै मासहारम् । पिऐ स्रोण स्यारम् ।। ४२७ ।। गिरै चउर चारम् । भजे एक हारम् ।

लुढक पडे है और योद्धा रणक्षेत्र में सिसक रहे हैं। पूरे रणस्थल में भीषण हाहाकार मचा हुआ है ।। ४२० ।। कृपाणों की झमझमाहट दिखलाते हुए तेज प्रहार हो रहे है और ऐसा लग रहा है, मानो भादों के महीने मे बिजली चमक रही हो। सुन्दर घोडे शूरवीरो को लिये हुए हिनहिना रहे है और ढालो की मालाएँ तथा तेज़ बाणो को लिये हुए शोभायमान हो रहे है ।। ४२१ ।। ।। विराज छंद ।। कालीदेवी को प्रसन्न करने के लिए भीषण युद्ध होने लगा और भैरव भी पुकारने लगे। चीलहे चीत्कार करने लगी और डाकिनियाँ भी डकारने लगी ।। ४२२ ।। योगिनियो के खप्पर भरने लगे और लाशे बिखरने लगी। झुडो का सहार होने लगा और कोलाहल की ध्वनि चारो ओर भर उठी ।। ४२३ ।। अप्सराएँ नाचने लगी और बिगुल बजने लगे। मार-मार की ध्वनि और तीरो की सरसराहट सुनाई पड़ने लगी ।। ४२४ ।। ।। विराज छद ।। वीर उलझ पड़े और योद्धा उमड पड़े। रणस्थल में डमरू तथा अन्य वाद्य बजने लगे ।। ४२५ ।। ।। रसावल छद ।। अस्त्रो के प्रहार पडने लगे और शस्त्रो की धारे तेज होने लगी। वीर 'मारो-मारो' की रट लगाने लगे तथा उनके खड्ग की धार टूटने लगी ।। ४२६ ।। रक्त की धारे बहने लगी और रक्त की छीटे उडने लगी। मांसाहारी जीव मुस्कुराने लगे और गीदड रक्त पीने लगे ।। ४२७ ।। सुन्दर चँवर गिरने लगे और एक तरफ वीर हारकर भागने लगे। दूसरी ओर 'मारो-मारो' की रट

रटै एक्क मारम् । गिरे सूर स्वारम् ॥ ४२८ ॥ चले एक्क स्वारम् । परे एक्क बारम् । बडो जुद्ध धारम् । निकारे हथ्यारम् ॥ ४२९ ॥ करै एक वारम् । लसै खग्ग धारम् । उठै अंगिआरम् । लखै ब्योम चारम् ॥ ४३० ॥ घुपै जंप चारम् । मंडे अस्त्र धारम् । करे मार मारम् । इके कंप बारम् ॥ ४३१ ॥ महाँ बीर जुट्टै । सरम् संज फुट्टै । तड़ंकार छुट्टै । झड़ंकार उट्ठैं ॥ ४३२ ॥ सरंधार बुट्ठैं । जगं जुद्ध जुट्ठैं । रण रोसु रुट्ठैं । इकं एक कुट्ठैं ॥ ४३३ ॥ ढली ढाल उट्ठैं । अरम् फउज फुट्टै । (मू०ग्रं०२२८) कि नेजे पलट्टैं । चमतकार उट्ठैं ॥ ४३४ ॥ किते भूमि लुट्ठैं । गिरे एक्क उट्ठैं । रणं फेरि जुट्टै । बहे तेग तुट्टै ॥ ४३५ ॥ मचे वीर वीरम् । धरे बीर चीरम् । करैं शस्त्र पातं । उठै अस्त्र घातं ॥ ४३६ ॥ इतैं बान राजं । उतै कुंभ काजं ।

लग पडी तथा अश्वारोही वीर गिरने लगे ॥४२८॥ एक ओर अश्वारोही चले और एक ही साथ टूट पडे । उन्होने शस्त्र निकाले और भीषण युद्ध करने लगे ॥ ४२९ ॥ वार करती हुई तलवारो की धार शोभायमान हो रही है । ढालो पर वार पडने से और तलवारो के आपस मे टकराने से चिंगारियाँ फूट रही है, जिन्हें आकाश से देवगण देख रहे है ॥ ४३० ॥ वीर जिस पर टूट पडते है, उसी पर अपने अस्त्रो की धार का मडन कर देते है । 'मार-मार' की पुकार चल रही है और वीर क्रोध से काँपते हुए सुन्दर दिखाई पड़ रहे हैं ॥ ४३१ ॥ महावीर भिड़ गए है और तीरो से कवच फूट रहे है । तडतडाकर तीर छूट रहे है और झनझन की आवाज सुनाई पड रही है ॥ ४३२ ॥ बाणो की वर्षा हो रही है और ऐसा लग रहा है कि सारा ससार युद्ध मे रत हो गया है । रण मे योद्धा एक-दूसरे पर क्रोधित हो रहे है और एक-दूसरे को काट रहे है ॥ ४३३ ॥ गिरी हुई ढाले उठाई जा रही है और शत्रुओं की सेना (बादलो की तरह) फट रही है । भाले पलट-पलटकर चमत्कारिक रूप से चल रहे है ॥ ४३४ ॥ कितने ही लोग भूलुठित हो गए है, कितने ही गिरकर उठ रहे है और पुन' युद्ध मे सलग्न होकर कृपाणो को चला-चलाकर तोड़ डाल रहे हैं ॥ ४३५ ॥ योद्धा, योद्धा के साथ भिड़ रहे है और वीरो को शस्त्रो से चीर रहे हैं । शस्त्रो को गिरा रहे है और अस्त्रो से घाव कर रहे है ॥ ४३६ ॥ इधर वाण चल रहे है और उधर कुंभकर्ण अपना कार्य कर रहा है अर्थात् सेना का नाश कर रहा है ।

कर्यो साल पातं । गिर्यो बीर भ्रातं ।। ४३७ ।। दोऊ जांघ फूटी । रतं धार छूटी । गिरे राम देखे । बडे दुष्ट लेखे ।। ४३८ ।। करी बाण बरखं । भर्यो सैन हरखं । हणे बाण ताणं । छिण्यो कुंभकाणं ।। ४३९ ।। भए देव हरखं । करी पुहप बरखं । सुण्यो लंक माथं । हणे भूम माथं ।।४४०।।

।। इति स्री बचित्र नाटके रामवतार कुभकरन बधहि ध्याइ समापतम सतु ।।

अथ त्रिमुंड जुद्ध कथनं ।।

।। रसावल छंद ।। पठ्यो तीन मुंडं । चल्यो सैन झुंडं । क्रिती चित्र जोधी । मडे परम क्रोधी ।। ४४१ ।। बकै मार मारं । तजै बाण धारं । हनूमंत कोपे । रणं पाइ रोपे ।। ४४२ ।। असं छीन लीनो । तिसी कंठि दीनो । हन्यो खष्ट नैणं । हसे देव गैणं ।। ४४३ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटक रामवतार त्रिमुड बधह ध्याइ समापतम सतु ।।

परन्तु अन्त मे (रावण का वह) वीर भाई साल के वृक्ष की तरह गिर पड़ा ।। ४३७ ।। उसकी दोनो जँघाएँ फूट गयी और उनमे से रक्तधार बह निकली । राम ने उस महादुष्ट को गिरा हुआ देखा ।। ४३८ ।। राम ने बाण-वर्षा की और वानर-सेना हर्ष से भर उठी । एक बाण उन्होने तानकर मारा जिससे कुभकर्ण मारा गया ।। ४३९ ।। देवता प्रसन्न होकर पुष्प-वर्षा करने लगे । जब लकेश रावण ने यह समाचार सुना तो उसने अपना सिर शोक मे भूमि पर दे मारा ।। ४४० ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार मे कुभकर्ण-वध नामक अध्याय की सत् समाप्ति ।।

त्रिमुंड-युद्ध-कथन प्रारम्भ

।। रसावल छद ।। अब रावण ने त्रिमुड असुर को भेजा जो कि सेना लेकर चला । वह योद्धा चित्र के समान अनुपम एवं परम क्रोधवान था ।। ४४१ ।। वह 'मारो-मारो' चिल्लाने लगा और बाणो की धार चलाने लगा । हनुमान ने कुपित होकर युद्धस्थल में अपना पाँव जमा दिया ।। ४४२ ।। उसकी तलवार को (हनुमान ने) छीन लिया और उसी से उसके गले पर वार चला दिया । वह छः नेत्रो वाला दैत्य मारा गया, जिसे देखकर आकाश मे देवगण मुस्कुराने लगे ।। ४४३ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार मे त्रिमुड-वध अध्याय की सत् समाप्ति ।।

अथ महोदर मंत्री जुद्ध कथनं ॥

॥ रसावल छंद ॥ सुण्यो लंक नाथं । धुणे सरब माथं । कर्यो मद्द पाणं । भरे बीर माणं ॥ ४४४ ॥ महिखुआस करखै । सरंधार बरखै । महोद्रादि वीरं । हठे खग्ग धीरम् ॥४४५॥ ॥ मोहणी छंद ॥ ढल हल्ल सुढल्ली ढोलाणं । रण रंग अभंग कलोलाणं । भरणंकसु नद्दं नाफीरं । बरणंकसु बज्जे मज्जीरं ॥ ४४६ ॥ भरणंकसु भेरी घोराणं । जण सावण भादो मोहाणं । उच्छलिए पखरे पावंगं । मच्चे जुज्झारे जोधंगं ॥ ४४७ ॥ सिधुरिए सुंडी दंताले । नच्चे पक्खरिए मुच्छाले । ओरझिए सरबं सैणायं । देखंत सु देवं गैणायं ॥ ४४८ ॥ झल्लै अवझड़ियं उज्झाड़ं । रण उठै बैहैं बब्बाड़ं । घै घुम्मे घायं अग्घायं । भुअ डिग्गे अद्धो अद्धायं ॥४४९॥ रिस मंडै छंडै अउ छंडै । हठि हस्सै कस्सै को

महोदर मंत्री-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ रसावल छंद ॥ अपने वीरो के नाश का समाचार सुनकर रावण माथा पकड़कर बैठ गया। उस वीर ने गर्व मे (तथा दु ख को दूर करने के लिए) मद्यपान किया ॥ ४४४ ॥ धनुषो के कर्षण की ध्वनि आने लगी और तीरो की वर्षा होने लगी। महोदर आदि हठी वीर खड्ग पकड़ कर धैर्यपूर्वक स्थिर हो गए ॥ ४४५ ॥ ॥ मोहिनी छद ॥ ढाले ढोलों की तरह बजने लगी और युद्ध के रसरग का कोलाहल सुनाई पडने लगा। नफ़ीरो की ध्वनि चारो ओर भर उठी और विभिन्न वर्णो के मजीरे बजने लगे ॥ ४४६ ॥ भेरियाँ ऐसे घहराने लगी मानो सावन मे बादलो को देखकर मोर घिरकर इकट्ठे हो रहे हो। कवचधारी अश्व उछलने लगे और योद्धा युद्ध मे जूझने लगे ॥ ४४७ ॥ सूँड़ो और दाँतो वाले हाथी मस्त होने लगे तथा भयानक मूँछो वाले वीर नृत्य करने लगे। सभी सेनाएँ हलचल करने लगी और आकाश से देवता उन्हे देखने लगे ॥ ४४८ ॥ वहुत ही कठोर वीरो के वारो को सहन किया जा रहा है। वीर रण मे गिर रहे है और फिर (रक्त की नदी मे) बह रहे हैं। घायल होकर वीर चक्राकार मे घूम रहे हैं और अधोमुख होकर धरती पर गिर रहे है ॥ ४४९ ॥ क्रोधित होकर वे दूसरो को झटक रहे है और झटकते चले जा रहे हैं। हठी वीर मुस्कुरा कर शस्त्रों को कस रहे है

अंडै । रिल बाहैं गाहैं जोधाणं । रण रोहैं जोहैं क्रोधाणं ।। ४५० ।। (मू०ग्रं०२२५) रण गज्जै सज्जै शस्त्राणं । धनु करखै बरखैं अस्त्राणं । दल गाहै बाहै हथियारं । रण रुज्झै लुज्झै लुज्झारं ।। ४५१ ।। भट भेदे छेदे वरयामं । भुअ डिग्गे चउरं चरमायं । उग्घे जण नेजे मतवाले । चल्ले ज्यों रावल जट्टाले ।। ४५२ ।। हट्ठे तरवरिए हंकारं । मच्चे पक्खरिए सूरारं । अवकुड़ियं वीर ऐठाले । तन सोहे पत्री पत्राले ।। ४५३ ।। ।। नव नामक छंद ।। तरभर परसर । निरखत सुरनर । हरपुर पुरसुर । निरखत बरनर ।। ४५४ ।। बरखत सरबर । करखत धन कर । परहर पुर कर । निरखत बरनर ।। ४५५ ।। सरबर धरकर । परहर पुरसर । परखत उरनर । निसरत उर धर ।। ४५६ ।। उझरत जुझ कर । बिझुरत जुझ नर । हरखत मसहर । बरखत सित सर ।। ४५७ ।। झुर झर कर

और क्रोधित होकर योद्धाओ का मथन कर रहे है और अन्य योद्धाओं को क्रोधित कर रहे है ।। ४५० ।। युद्ध मे शस्त्रो से सुसज्जित वीर गरज रहे है और धनुषो को खीच-खीचकर उनमे से बाण-वर्षा की जा रही है। वीर शस्त्र चलाते हुए दलो का मथन कर रहे हैं और युद्ध मे भिड़े हुए है ।। ४५१ ।। शूरवीरो का भेदन एव छेदन किया जा रहा है और वे कवच एव चँवरो के साथ धरती पर गिर रहे हैं । लबे-लंबे भाले लेकर वीर ऐसे चल रहे हैं मानो रावलपथी जटाओ वाले योगी जा रहे हों ।। ४५२ ।। कृपाणधारी अहकारी हठ दिखा रहे है और कवचधारी शूरवीर भिड रहे है । शानवाले वीर अकड रहे है और उनके शरीरो पर लौहपत्रो के कवच शोभायमान हो रहे है ।। ४५३ ।। ।। नव नामक छद ।। वीर तडपते हुए दिखाई दे रहे है, जिन्हे सभी देवता और मानव देख रहे है। ऐसा लग रहा है, मानो इन्द्रलोक भूत-प्रेतो और गणो से भरकर शिव का निवास स्थान बन गया । इस सारे दृश्य को सभी लोग देख रहे है ।। ४५४ ।। बाण-वर्षा हो रही है और धनुष खीचे जा रहे हैं। लोग नगर को छोडकर जा रहे है और यह दृश्य सभी लोग देख रहे हैं ।। ४५५ ।। लोग शीघ्रता से नगर का त्याग कर रहे है, अपने-अपने धैर्य को परख रहे है और हृदय की इच्छाएँ हृदय मे लेकर निकल रहे है ।। ४५६ ।। वीर आपस मे उलझ रहे है और सभी लोग एक-दूसरे से जूझ रहे है । कुछ लोग प्रसन्न भी हो रहे है और बाणों की वर्षा कर

कर। डर डर धर हर। हर बर धर कर। बिहरत उठ नर ॥ ४५८ ॥ उचरत जम नर। बिचरत धसि नर। थरकत नरहर। बरखत भुअ पर ॥ ४५९ ॥ ॥ तिलकड़ीआ छंद ॥ खटाक चोटं। अटाक ओटं। झझार झाड़ं। तड़ाक ताड़ं ॥ ४६० ॥ फिरंत हूरं। बरंत सूरं। रणंत जोह। उठंत क्रोह ॥ ४६१ ॥ भरंत पत्नं। तुटंत अत्नं। झड़त अगनं। जलंत जगनं ॥ ४६२ ॥ तुटंत खोलं। जुटंत टोलं। खिमंत खग्गं। उठंत अग्गं ॥ ४६३ ॥ चलंत बाणं। रुकं दिसाणं। पपात शस्त्रं। अघात अस्त्रं ॥ ४६४ ॥ खहंत खत्री। भिरंत अत्नो। चुठंन बाणं। छिवै क्रिपाणं ॥४६५॥ ॥ दोहरा ॥ लुत्थ जुत्थ बित्थुर रही रावण राम बिरुद्ध। हत्यो महोदर देख कर हरि अरि फिर्‌यो सु क्रुद्ध ॥ ४६६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतार महोदर मन्त्री बधहि धिआइ समापतम सतु ॥

रहे है ॥ ४५७ ॥ लोग मन-ही-मन डरते हुए शिव का ध्यान कर रहे है और अपनी रक्षा के लिए शिव का स्मरण करते हुए काँप उठते है ॥ ४५८ ॥ जैसी ही ऊँची ध्वनि होती है तो लोग और अन्दर घरों मे घुस जाते है तथा इधर वीर नरसिंह-अवतार की तरह विचरण करते हुए धरती पर गिर पड़ रहे हैं ॥ ४५९ ॥ ॥ तिलकड़िया छंद ॥ ढालों पर चटाक की ध्वनि करती हुई कृपाणो की चोट पड रही है और ढालों से अपने-आप को वचाया जा रहा है। शस्त्रो को झाडा जा रहा है और लक्ष्य वनाकर मारा जा रहा है ॥ ४६० ॥ युद्धस्थल मे अप्सराएँ विचरण कर रही हैं और शूरवीरो का वरण कर रही है। युद्ध को वे देख रही है और उनको पाने की कामना करनेवाले वीरो मे और अधिक क्रोध जग रहा है ॥ ४६१ ॥ खप्परो को रक्त से भरा जा रहा है, अस्त्र टूट रहे है, अग्नि की चिनगारियाँ इस प्रकार निकल रही है, मानो जुगनू जल रहे हो ॥ ४६२ ॥ वीर भिड रहे है, कवच टूट रहे है, खड्‌ग ढालों पर गिर रहे है और चिनगारियाँ उठ रही है ॥ ४६३ ॥ बाणो के चलने से दिशाएँ पट गई है। शस्त्रो और अस्त्रो के घात-प्रतिघात चल रहे हैं ॥ ४६४ ॥ क्षत्रियगण अस्त्रो को हाथ मे लेकर भिड रहे है, बाण चला रहे है और कृपाणो से वार कर रहे हैं ॥ ४६५ ॥ ॥ दोहा ॥ राम और रावण के इस युद्ध मे लाशो के झुड इधर-उधर बिखर गये और महोदर को मारा जाता हुआ देखकर इन्द्रजित् मेघनाद युद्ध के लिए आगे बढा ॥ ४६६ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार मे महोदर मन्त्री-वध अध्याय की सत् समाप्ति ॥

अथ इंद्रजीत जुद्ध कथनं ॥

॥ सिरखिंडी छंद ॥ जुट्टे वीर जुझारे धग्गां वज्जिआँ। बज्जे नाद करारे दलाँ मुसाहृदा। लुज्झे कारणयारे संघर सूरमे। वुट्ठे जाणु डरारे घणिअर कैवरी ॥ ४६७ ॥ वज्जे संगलिआले हाठां जुट्टिआँ। खेत वहे मुच्छाले फहर ततारचे। डिग्गे वीर जुज्झारे हूँगाँ फुट्टिआँ। बक्के जण मतवाले (मू०ग्रं०२२६) भंगाँ खाइकै ॥ ४६८ ॥ ओरझए हंकारी धग्गां वाइकै। वाहि फिरे तरवारी सूरे सूरिआँ। वग्गै रतु झुलारी झाड़ी कैबरी। पाई धूँम लुझारी रावण राम दी ॥ ४६९ ॥ चोबी धउस वजाई संघरु मच्चिआ। बाहि फिरे वैराई तुरे ततारचे। हूराँ चित्त वधाई अंबर पूरिआ। जोधियाँ देखण ताई हूले होइआँ ॥ ४७० ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ इंद्रार वीर कुप्प्यो कराल। मुकतंत बाण गहि धनु बिसाल। थरकंत लुत्थ

इन्द्रजित्-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ शिखंडी छद ॥ नगाड़े वज उठे, वीर एक-दूसरे के सम्मुख उपस्थित हो गये और दोनों दलों ने गर्जना करते हुए मुकाबले की तैयारी कर ली। भीषण कामों को करनेवाले शूरवीर जूझ पड़े और तीर ऐसे चल रहे है, मानो भयकर सर्प उड़ रहे है ॥ ४६७ ॥ वृहद् नगाड़े बज उठे और सैनिकों की पक्तियाँ एक-दूसरे से भिड़ उठी। लम्बी-लम्बी मूँछों वाले तथा कहर ढानेवाले वीर चल पड़े और साथ-ही-साथ पराक्रमी वीर रणस्थल मे गिरकर सिसकने लगे। वीर इस प्रकार मदमस्त होकर प्रलाप कर रहे है, मानो भाँग खाकर नशे मे कोई चिल्ला रहा हो ॥ ४६८ ॥ अहकारी वीर बड़े-बड़े नगाडो को वजाकर चल पड़े और उन शूरवीरों ने तलवारे चलाना शुरू कर दिया। वाण-वर्षा से धाराप्रवाह रक्त वह निकला और राम और रावण के इस युद्ध की चारो ओर धूम मच गई ॥ ४६९ ॥ नगाडो की चोट पड़ते भीषण संग्राम शुरू हो गया और तीव्रगामी अश्वों पर शत्रु इधर-उधर घूमने लगे। इधर आकाश में अप्सराएँ मन में वीरों के वरण का उत्साह लिये हुए एकत्र हो गई और इन योद्धाओ का युद्ध देखने के लिए और पास आ गई ॥ ४७० ॥ ॥ पाधड़ी छंद ॥ इन्द्रजित् ने कुपित होकर अपने विशाल धनुष को पकड़कर बाण छोड़ना शुरू किया। लाशे तड़पने लगी, वीरो की भुजाएँ फड़कने लगी। शूरवीर जूझने लगे और अप्सराएँ प्रसन्न होने

फरकंत बाह। जुज्झंत सूर अछरै उछाह॥ ४७१॥ चमकंत चक्र सरखंत सेल। जुम्मे जटाल जण गंग मेल। संघरे सूर आघाइ घाइ। बरखंत बाण चड़ चउप चाइ॥ ४७२॥ सुंमले सूर आहुरे जंग। बरखंत बाण बिखधर सुरंग। नभि हवै अलोप सर बरख धार। सभ ऊच नीच किने शुमार॥ ४७३॥ सम शस्त्र अस्त्र बिद्या प्रबीन। सर धार बरख सरदार चीन। रघुराज आदि मोहे सु बीर। दल सहित भूम डिग्गे अधीर॥ ४७४॥ तब कही दूत रावणहि जाइ। कपि कटक आजु जीत्यो बनाइ। सिय भजहु आजु हुइ कै निचीत। संघरे राम रण इंद्रजीत॥ ४७५॥ तब कहे बैण त्रिजटी बुलाइ। रण म्रितक राम सीतहि दिखाइ। लै गई नाथ जहि गिरे खेत। म्रिग मार सिंघ ज्यों सुपत अचेत॥ ४७६॥ सिय निरख नाथ मन महि रिसान। दस अउर चार बिद्यानिधान। पड़ नाग मंत्र संघरी पास।

लगी॥ ४७१॥ चक्र चमकने लगे, भाले सनसनाने लगे और जटाओं वाले वीर इस तरह से दौड़-दौड़कर युद्ध करने लगे, मानो वे गंगास्नान के लिए लालायित हो। घाव खानेवाले वीरो का संहार होने लगा और दूसरी ओर योद्धा चौगुने उत्साह के साथ बाण-वर्षा करने लगे॥ ४७२॥ भयानक वीर युद्ध मे उलझे हुए विषधरों के समान बाणों की वर्षा कर रहे हैं। तीरो की वर्षा से आसमान भी छुप गया है और ऊँच-नीच का भेद भी नही रह गया है॥ ४७३॥ सभी योद्धा अस्त्र-शस्त्र विद्या में प्रवीण हैं और सेनापतियो को पहचान-पहचानकर उन पर बाण-वर्षा कर रहे है। रघुराज रामचन्द्र भी मोहित होकर अपने दल-सहित भूमि पर आ गिरे॥ ४७४॥ तब दूतो ने जाकर रावण को समाचार दिया कि आज वानर-सेना को परास्त कर दिया गया। आज आप निश्चिन्त होकर सीता का वरण कीजिए क्योंकि इन्द्रजित् ने युद्ध मे राम का संहार कर दिया है॥ ४७५॥ तब रावण ने त्रिजटा नामक राक्षसी को बुलाया और मृतक राम को सीता को दिखलाने के लिए कहा। वह सीता को अपनी तंत्र-विद्या के बल से वहाँ ले गई जहाँ रामचन्द्र इस प्रकार अचेत पड़े सो रहे थे, जैसे मृगो को मारकर सिंह निश्चिन्त होकर सोता है॥ ४७६॥ राम को इस अवस्था में देखकर सीता को मन में अत्यन्त क्षोभ हुआ, क्योंकि राम चौदह कलाओ के भण्डार थे और उनके साथ इस प्रकार की घटना का तालमेल बैठाना सीता के लिए असंभव था। सीता नागमंत्र पढ़ती हुई उनके पास गई और राम तथा लक्ष्मण को पुनः

पति भ्रात ज्याइ चित भ्यो हुलास ॥ ४७७ ॥ सिय गई जगे अंगराइ राम। दल सहित भ्रात जुत धरम धाम। बज्जे सुनादि गज्जे सु बीर। सज्जे हथियार भज्जे अधीर ॥ ४७८ ॥ सुंभले सूर सर बरख जुद्ध। हन साल ताल बिक्राल क्रुद्ध। तजि जुद्ध सुद्ध सुर मेघ धरण। थल ग्योन कुंभला होम करण ॥ ४७९ ॥ लख बीर तीर लंकेश आन। इम कहै बैण तज भ्रात कान। आइहै शत्रु इह घात हाथ। इंद्रार बीर अरबर प्रमाथ ॥ ४८० ॥ निज मास काटकर करत होम। थरहरत भूंमि अर चकत व्योम। तह गयो राम (मू०ग्रं०२२७) भ्राता निशंगि। कर धरे धनख कट कसि निखंग ॥ ४८१ ॥ चिंती सु चित देवी प्रचंड। अर हण्यो बाण कीनो दुखंड। रिप फिरे मार दुंदभ बजाइ। उत भजे दइत दलपति जुझाइ ॥ ४८२ ॥

॥ इति इद्रजीत बधहि धिआइ समापतम सतु ॥

जीवित करते हुए मन मे प्रसन्न हो उठी ॥ ४७७ ॥ इधर सीता गई और उधर राम अपने भाई और दल-सहित जग पड़े। धर्म के धाम राम के उठते ही वीरो ने सिंहनाद करते हुए शस्त्रो से सुसज्जित होना शुरू कर दिया और बड़े-बड़े धैर्यवान युद्धस्थल से भागने लगे ॥ ४७८ ॥ भयानक पजो वाले वीर युद्ध मे बाण-वर्षा करने लगे और विकराल रूप से क्रोधित होकर पेड़ो तक का नाश करने लगे। इसी समय इन्द्रजित् मेघनाद युद्ध को त्यागकर होमयज्ञ करने के लिए वापस चला गया ॥ ४७९ ॥ छोटे भाई के पास आकर विभीषण ने कहा कि इस समय आपका परम शत्रु और महाबलशाली इन्द्रजित् आपके हाथ मे आया हुआ है ॥ ४८० ॥ वह अपना मास काट-काटकर होम कर रहा है, जिससे सारी भूमि काँप रही है और आकाश आश्चर्यचकित हो उठा है। यह सुन लक्ष्मण अभय हो वहाँ हाथो मे धनुष और पीठ पर तरकस बाँधे हुए गए ॥ ४८१ ॥ इन्द्रजित् ने देवी को प्रकट करने के लिए जाप प्रारम्भ कर दिया और इधर लक्ष्मण ने बाण मारकर इन्द्रजित् के दो टुकड़े कर दिए। लक्ष्मण दल-सहित दुन्दुभी बजाते वापस लौटे और उधर दैत्य सेनापति को मरा देख भाग खड़े हुए ॥ ४८२ ॥

॥ इति इन्द्रजित्-वध अध्याय की सत् समाप्ति ॥

अथ अतकाइ दईत जुद्ध कथनं ॥

॥ संगीत पधिसटका छंद ॥ कागड़दंग कोप कै दईत राज। जागड़दंग जुद्ध को सज्यो साज। बागड़दंग बीर बुल्ले अनंत। रागड़दंग रोस रोहे दुरंत ॥ ४८३ ॥ पागड़दंग धरम बाजी बुलंत। चागड़दंग चत्र नट ज्यों कुदंत। कागड़दंग क्रूर कड्ढे हथिआर। आगड़दंग आन बज्जे जुझार ॥ ४८४ ॥ रागड़दंग राम सैना सुक्रुद्ध। जागड़दंग ज्वान जुझंत जुद्ध। नागड़दंग निशाण नव सैन साज। सागड़दंग मूड़ मकराछ गाज ॥४८५॥ रागड़दंग रोस रोने गहीर। आगड़दंग एक अतकाइ वीर। सागड़दंग सिंध बेला बिबेक। आगड़दंग एकहु के अनेक ॥ ४८६ ॥ तागड़दंग तीर छुटै अपार। बागड़दंग बूंद बन दल अनुचार। आगड़दंग अरब टीडी प्रमान। चागड़दंग चार चीटी समान ॥ ४८७ ॥ बागड़दंग वीर बाहुड़े नेख। दागड़दंग देव जुद्ध अतकाइ देख। जागड़दंग जै जै कहंत। भागड़दंग भूप धन धन भनंत ॥ ४८८ ॥ कागड़दंग कहक काली कराल। जागड़दंग जूह जुग्गण बिसाल।

अतिकाय दैत्य-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ सगीत पधिस्टका छंद ॥ दैत्यराज ने कुपित हो युद्ध का उपक्रम किया। क्रोधित हो अनन्त वीरों को बुलाया ॥ ४८३ ॥ अति तीव्रगामी अश्व लाये गये जो कि नट के समान इधर-उधर कूदनेवाले थे। भयानक हथियारो को निकालकर शूरवीर एक-दूसरे से जूझने लगे ॥ ४८४ ॥ इधर राम की सेना मे भी क्रोधित हो शूरवीर जूझने लगे। अपनी सेना का नया ध्वज लेकर मूढ मकराक्ष भी गरजने लगा ॥ ४८५ ॥ असुर-सेना में एक अतिकाय नामक वीर राक्षस भी गम्भीर रूप से क्रोधित हो उस एक के साथ अनेको जुट गए और विवेक-बुद्धि के अनुसार युद्ध करने लगे ॥ ४८६ ॥ अपार बाण-वर्षा होने लगी और बाण बूंदो के समान गिरने लगे। सैन्य-दल टिड्डियो के समान अथवा चीटियो की सेना के समान दिखाई दे रहा था ॥ ४८७ ॥ अतिकाय का युद्ध देखने के लिए शूरवीर उसके पास आ पहुँचे। देवगण जय-जयकार करने लगे और राजागण धन्य-धन्य कहने लगे ॥ ४८८ ॥ कराल कालीदेवी कुहुकने लगी और युद्धस्थल मे विशालमय योगिनियाँ विचरने लगी। अनन्त भैरव और भूतगण रक्त-

झागड़दंग भूत भैरो अनंत। सागड़दंग स्रोण पाणं करंत ।। ४८९ ।। डागड़दंग डउर डाकण डह्क्क। कागड़दंग क्रूर काकं कह्क्क। चागड़दंग चत्र चावडी चिकार। झागड़दग भूत डारत धमार ।। ४९० ।। ।। दोहा छंद ।। टुटे परे। नवे मुरे। असं धरे। रिसं भरे ।। ४९१ ।। छुटे सरं। चक्यो हरं। रुकी दिसं। चपे किसं ।। ४९२ ।। छुटं सरं। रिसं भरं। गिरै भटं। जिमं अटं ।। ४९३ ।। घुमे घयं। भरे भयं। चपे चले। भटं भले ।। ४९४ ।। रटै हरं। रिसं जरं। रुपै रणं। घुमे व्रणं ।। ४९५ ।। गिरैं धरं। (मू०ग्रं०२२८) हुलै नरं। सरं तछे। कछं कछे ।। ४९६ ।। घुमे व्रणं। भ्रमे रणं। लजं फसे। कटं कसे ।। ४९७ ।। धुके धकं। टुके टकं। छुटे सरं। रुके दिसं ।। ४९८ ।। ।। छपै छंद ।। इक्क इक्क आ रहे इक्क इक्कन कह तक्कै। इक्क इक्क लै चलै इक्क कह इक्क उचक्कै। इक्क इक्क सर बरख इक्क धन करख रोस भर।

पान करने लगे ।। ४८९ ।। डाकिनियों के डमरू डगमगाने लगे और क्रूर कौवे काँव-काँव करने लगे। चारों तरफ चील्हों का चीत्कार और भूत-प्रेतों की उछल-कूद दिखाई-सुनाई पड़ने लगी ।। ४९० ।। ।। दोहा छद ।। वीर टूटकर मुड पड़ने लगे और क्रोधित हो तलवारे पकडने लगे ।। ४९१ ।। तीरो को छूटते देख मेघ भी हैरान थे। बाणो के कारण सारी दिशाएँ पट गईं ।। ४९२ ।। क्रोध से भरे हुए तीर छूट रहे है और पृथ्वी पर वीर ऐसे गिर रहे है मानो अट्टालिकाएँ मिट रही हो ।। ४९३ ।। भयभीत वीर घूम-घूमकर घाव खा रहे है और पड़े शूरवीर उडते चले जा रहे है ।। ४९४ ।। मन मे ईर्ष्या धारण किये हुए शत्रु को मारने के लिए वे शिव का गायन कर रहे है और रण मे घूम-घूमकर भय से आकुल हो युद्ध कर रहे है ।। ४९५ ।। राक्षसो के धरती पर गिरते ही लोग प्रसन्न हो रहे है। राक्षसो मे बाण शोभायमान हो रहा है और वीरो का दलन हो रहा है ।। ४९६ ।। घायल वीर इधर-उधर रणस्थल मे घूम और तड़प रहे है। कमरबद होकर वे लज्जित हो फँसे हुए हैं ।। ४९७ ।। दिल में धड़काहट जारी है। रह-रहकर बाण छूट रहे हैं, जिससे दिशाएँ पट गयी है ।। ४९८ ।। ।। छप्पय छद ।। एक-से-एक बढ़कर वीर आ रहे हैं और एक एक को तक रहे है। एक एक को लेकर चल रहे है और एक वीर एक को लेकर उचक रहे है। एक

इक्क इक्क तरफंत इक्क भव सिंध गए तरि। रणि इक्क इक्क सावंत भिड़ैं इक्क इक्क हुइ विज्झड़े। नर इक्क अनिक शस्त्रण भिड़े इक्क इक्क अवझड़ झड़े॥ ४९९॥ इक्क जूझ भट गिरैं इक्क बबकंत मद्ध रण। इक्क देवपुर बसै इक्क भज चलत खाइ ब्रण। इक्क जुज्झ उज्झड़े इक्क विज्झड़े झाड़ अस। इक्क अनिक ब्रण झलै इक्क मुकतंत बान कसि। रण भूँम घूम सावंत मँडै दीर्घु काइ लछमण प्रबल। थिर रहे ब्रिछ उपबन किधो जण उत्तर दिस ध्रुइ अचल॥ ५००॥ ॥ अजबा छंद॥ जुट्टे बीरं। छुट्टे तीरं। ढुक्की ढालं। क्रोहे कालं॥ ५०१॥ ढंके ढोलं। बंके बोलं। कच्छे शस्त्रं। अच्छे अस्त्रं॥ ५०२॥ क्रोधं गलितं। बोधं दलतं। गज्जै वीरं। तज्जै तीरं॥ ५०३॥ रत्ते नैणं। मत्ते बैणं। लुज्झै सूरं। सुज्झै हूरं॥ ५०४॥ लग्गै तीरं। भग्गैं

ओर शर को वरसा रहे है और एक ओर क्रोध भर के धनु को खीच रहे है। एक ओर वीर तड़फ रहे है तथा एक ओर मृत्यु को प्राप्त करते हुए वीर भवसागर पार कर रहे हैं। एक-से-एक बढकर योद्धा एक दूसरे से भिड़े है और मृत्यु को प्राप्त हुए है। सैनिक सभी एक-से ही है, परन्तु शस्त्र अनेक है और ये शस्त्र वर्षा की तरह सैनिको पर झड रहे है॥ ४९९॥ एक ओर वीर गिर पड़े हैं तथा एक ओर वीर दहाड रहे है। एक ओर देवपुरी मे वीर जा विराजे है तथा दूसरी ओर घाव खाकर वीर भाग खड़े हुए हैं। एक युद्ध मे स्थिर हो जूझ रहे है तथा एक ओर पेड़ की तरह कटकर वीर गिर रहे है। एक ओर अनेकों घाव सहे जा रहे है तथा एक ओर कस-कसकर बाण छोड़े जा रहे है। रणभूमि मे दीर्घकाय तथा लक्ष्मण दोनो ने घूम-घूमकर व्यूह-रचना की है और ये दोनो वीर ऐसे लग रहे है कि मानो किसी उपवन मे विशाल पेड़ हों अथवा उत्तर दिशा में सदैव अचल बने रहनेवाले ध्रुव तारे हो॥ ५००॥ ॥ अजबा छंद॥ वीर भिड़ गए, तीर चल पड़े, ढालो की ढकढकाहट प्रारम्भ हो गई और काल रूप वीर क्रोधित हो उठे॥ ५०१॥ ढोल बज उठे, तलवारें सुनाई पड़ने लगी और शस्त्र तथा अस्त्र चलने लगे॥ ५०२॥ क्रोध से गलित होकर वडी सूझ-बूझ के साथ सेनाओ का दलन किया जा रहा है। वीर गरज रहे हैं और बाण-वर्षा कर रहे हैं॥ ५०३॥ लाल नेत्रो वाले वीर मद-मस्त हो चिल्ला रहे है। शूरवीर भिड़ रहे है और अप्सराएँ इनको देख रही है॥ ५०४॥ तीर खाकर वीर भाग रहे है और कुपित हो

वीरं। रोसं रुज्झै। अस्त्रं जुज्झै ॥ ५०५ ॥ झुम्मे सूरं। घुम्मे हूरं। चक्कै चारं। बक्कै मारं ॥ ५०६ ॥ भिद्दे बरम। छिद्दे चरमं। तुट्टं खग्ग। उट्ठं अग्गं ॥ ५०७ ॥ नच्चे ताजी। गज्जे गाजी। डिग्गे वीरं। तज्जे तीरं ॥ ५०८ ॥ झुम्में सूरं। घुम्मी हूरं। कच्छे बाणं। मत्ते माणं ॥ ५०९ ॥ ॥ पाधरी छंद ॥ तह भयो घोर आहव अपार। रणभूंमि झूमि जुज्झे जुझार। इत राम भ्रात अतकाइ उत्त। रिस जुज्झ उज्झरे राज पुत्त ॥ ५१० ॥ तब राम भ्रात अति कीन रोस। जिम परत अगन घ्रित करत जोस। गहि बाण पाण तज्जे अनंत। जिम जेठ सूर किरणै दुरंत ॥ ५११ ॥ व्रण आप मद्ध बाहत अनेक। बरणै न जाहि कहि एक एक। उज्झरे वीर जुज्झण जुझार। जै शब ददेव भाखत पुकार ॥ ५१२ ॥ रिप (मू०ग्रं०२२९) कर्यो शस्त्र अस्त्रं बिहीन। बहु शस्त्र शास्त्र बिद्या प्रबीन। हय मुकट सूत बिनु भ्यो गवार। कछु चपे चोर जिम बल

अस्त्रो को लेकर जूझ रहे है ॥ ५०५ ॥ वीर झूम रहे है और अप्सराएँ घूम-घूमकर इन्हे देख रही है और इनके "मार-मार" के प्रलाप से चकित हो रही है ॥ ५०६ ॥ कवचो को भेदते शस्त्र शरीरो को छेद रहे है। खड्ग टूट रहे है और उनमे से अग्नि की चिनगारियाँ छूट रही हैं ॥ ५०७ ॥ घोड़े नृत्य कर रहे है और शूरवीर गरज रहे है तथा तीरो को छोडते हुए गिर पड रहे है ॥ ५०८ ॥ अप्सराओ को विचरते देख शूरवीर झूम रहे हैं और मदमस्त हो बाण चला रहे है ॥ ५०९ ॥ ॥ पाधरी छद ॥ इस प्रकार वहाँ घोर सग्राम हुआ और रणभूमि मे कई जुझारू वीर खेत रहे। एक ओर राम के भाई लक्ष्मण और दूसरी ओर अतिकाय नामक दैत्य है और ये दोनो ही राजपुत्र क्रोधित हो एक-दूसरे से भिड़ रहे है ॥ ५१० ॥ तब लक्ष्मण ने उसी भाँति अत्यन्त क्रोध किया और अपने उत्साह को बढाया जैसे अग्नि पर घी पड़ते ही अग्नि और अधिक प्रज्वलित हो उठती है। उसने ज्येष्ठ मास के सूर्य की विकराल किरणो के समान दग्ध करनेवाले वाण चलाये ॥ ५११ ॥ स्वयं घायल होते हुए उसने इतने बाण चलाये कि उनका वर्णन नही किया जा सकता। ये जुझारू वीर आपस मे भिड़े हुए है और दूसरी ओर देवगण जय-जयकार की ध्वनि कर रहे हैं ॥ ५१२ ॥ बहुत से शस्त्रो और शास्त्रो की विद्या के प्रवीण शत्रु अतिकाय को अन्त मे लक्ष्मण ने शस्त्र-अस्त्र-विहीन कर दिया। वह

सँभार ।। ५१३ ।। रिप हणे बाण बज्रव घात । सम चले काल की ज्वाल तात । तब कुप्यो वीर अतकाइ ऐस । जन प्रलै काल को मेघ जैस ।। ५१४ ।। इम करन लाग लपटै लबार । जिम जुबणहीण लपटाइ नार । जिम दंत रहत गह स्वान ससक । जिम गए बैस बल बीर्ज रसक ।। ५१५ ।। जिम दरबहीण कछु करि बपार । जण शस्त्र हीण रुज्झ्यो जुझार । जिम रूप हीण बेस्या प्रभाव । जण बाज हीण रथ को चलाव ।। ५१६ ।। तब तमक तेग लछमण उदार । तह हण्यो सीस किनो दुफार । तब गिर्‍यो बीर अतिकाइ एक । लख ताहि सूर भज्जे अनेक ।। ५१७ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके रामवतार अतकाइ बधहि धिआइ समापतम ।।

घोड़े, मुकुट और वस्त्रों से विहीन हो गया और जिस प्रकार कुछ साहस कर चोर छिपने की कोशिश करता है उस प्रकार छिपने लगा ।। ५१३ ।। वज्र का-सा आघात करनेवाले बाण शत्रु की ओर चलाये और वे बाण ऐसे लग रहे थे मानो काल रूपी ज्वाला आगे बढ़ रही हो । इस पर वीर अतिकाय भी प्रलयकाल के बादलो के समान अत्यन्त कुपित हो उठा ।। ५१४ ।। वह इस प्रकार से बकवाद करने लगा, जैसे यौवनहीन पुरुष स्त्री से लिपटकर उसको सन्तुष्ट न कर सकने की स्थिति में प्रलाप करता है अथवा जिस प्रकार दन्त-विहीन कुत्ता खरगोश को पकड़ लेता है, परन्तु उसका कुछ भी बिगाड़ नही पाता अथवा जैसी वीर्य विहीन रसिक की दशा होती है ।। ५१५ ।। अतिकाय की वही दशा हो गई जो दशा द्रव्यहीन व्यापारी की अथवा शस्त्र-विहीन शूरवीर की हो जाती है । वह इसी प्रकार का दिखाई देने लगा मानो रूपहीन वेश्या हो अथवा अश्व-विहीन रथ हो ।। ५१६ ।। तभी उदार लक्ष्मण ने (अतिकाय को उसकी असहाय अवस्था से मुक्ति दिलाने के लिए) अपनी तेज धार वाली कृपाण चलाई और उस राक्षस को मारकर दो खण्डो मे बाँट दिया । वह अतिकाय नामक वीर युद्धभूमि मे गिर पड़ा और उसे देख अनेको शूरवीर भाग खड़े हुए ।। ५१७ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार मे अतिकाय-वध अध्याय समाप्त ।।

अथ मकराछ जुद्ध कथनं ॥

॥ पाधरी छंद ॥ तब रुक्यो सैन मकराछ आन । कह जाहु राम नही पैहो जान । जिन हत्यो तात रण मो अखंड । सो लरो आन मोसों प्रचंड ॥ ५१८ ॥ इम सुणि कुबैण रामावतार । गहि शस्त्र अस्त्र कोप्यो जुझार । बहु ताण बाण तिह हणे अंग । मकराछ मारि डार्यो निशंग ॥ ५१९ ॥ जब हते बीर अर हणी सैन । तब भजौ सूर हुइ कर निचैन । तब कुंभ और अनकुंभ आन । दल रुक्यो राम को त्याग कान ॥ ५२० ॥ ॥ अजबा छंद ॥ त्रप्पे ताजी । गज्जे गाजी । सज्जे शस्त्रं । कच्छे अस्त्रं ॥ ५२१ ॥ तुट्टे त्राणं । छुट्टे बाणं । रुप्पे बीरं । बुटठे तीरं ॥ ५२२ ॥ घुम्मे घायं । झुम्मे च्चायं । रज्जे रोसं । तज्जे होसं ॥ ५२३ ॥ कज्जे संजं । पूरे पंजं । जुज्झे खेतं । डिग्गे चेतं ॥ ५२४ ॥ घेरी लंकं । बीरं बंकं । भज्जी

मकराक्ष-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ पाधरी छद ॥ तत्पश्चात् सेना मे मकराक्ष आ उपस्थित हुआ और कहने लगा कि राम ! अब तुम बचकर नही जा सकते । जिसने मेरे पिता का वध किया है वह प्रचण्ड वीर मुझसे आकर युद्ध करे ॥ ५१८ ॥ राम ने ये कुटिल वचन सुने और क्रोधित होकर उन्होंने हाथ मे अस्त्र-शस्त्र पकड़ लिये । बहुत से बाण खीचकर उन्होने चलाये और मकराक्ष को अभय होकर मार डाला ॥ ५१९ ॥ जब यह वीर और उसकी सेना मारी गई, तब निहत्थे होकर सभी शूरवीर भाग खड़े हुए । इसके बाद कुम्भ और अनकुम्भ आ उपस्थित हुए और राम की सेना को उन्होंने रोक लिया ॥ ५२० ॥ ॥ अजबा छद ॥ घोड़े बिदकने लगे, वीर गरजने लगे और शस्त्र-अस्त्रो से सुसज्जित होकर मार करने लगे ॥ ५२१ ॥ धनुष टूटने लगे, बाण छूटने लगे, वीर स्थिर होने लगे और तीर बरसने लगे ॥ ५२२ ॥ घाव खाकर वीर घूमने लगे और उनका उत्साह बढने लगा । क्रोधित होकर वीर अपने होश खोने लगे ॥ ५२३ ॥ कवच से ढके हुए वीर रणस्थल मे जूझने लगे और अचेत होकर गिरने लगे ॥ ५२४ ॥ वीर बांकुरो ने लका को घेर लिया । आसुरी सेना लज्जित होकर भाग

सैणं। लज्जी नैणं ॥ ५२५ ॥ डिग्गे सूरं। भिग्गे नूरं। ब्याहैं हूरं। कामं पूरं ॥ ५२६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतार मकराछ कुंभ अनकुभ बधहि ध्याइ समापतम सतु ॥

अथ रावन जुद्ध कथनं ॥

॥ दोहा छंद ॥ सुण्यो इसं। जिण्यो किसं। चप्यो चित्तं। बुल्यो बित्तं ॥ ५२७ ॥ (मू०ग्रं०२३०) घिर्यो गड़ं। रिसं बड़ं। भजी त्रियं। भ्रमी भयं ॥ ५२८ ॥ भ्रमी तबै। भजी सभै। त्रियं इसं। गह्यो किसं ॥ ५२९ ॥ करैं हहं। अहो दयं। करो गई। छमो भई ॥ ५३० ॥ सुणी स्त्रुतं। धुणं उतं। उठ्यो हठी। जिमं भठी ॥ ५३१ ॥ कछ्यो नरं। तजे सरं। हणे किसं। रुकी दिसं ॥ ५३२ ॥ ॥ त्रिणणिण छंद ॥ त्रिणणण तीर। ब्रिणणिण बीरं। ढ्रणणण ढालं। ज्त्रणणण ज्वालं ॥ ५३३ ॥ खत्रणणण खोलं। ब्रणणण बोल।

खड़ी हुई ॥ ५२५ ॥ शूरवीर गिर पड़े और उनके चेहरे चमक उठे। उन्होने अप्सराओ का वरण किया और अपनी कामनाएँ पूरी की ॥ ५२६ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार के मकराक्ष-कुम्भ-अनकुम्भ-वध अध्याय की सत् समाप्ति ॥

रावण-युद्ध-कथन प्रारम्भ

॥ दोहा छंद ॥ रावण ने सुना कि किसकी जीत हुई है तो वह मन मे क्रोधित हो उठा और पूरे ज़ोर के साथ चिल्लाने लगा ॥ ५२७ ॥ किले को घिरा हुआ देखकर उसका क्रोध बढ़ उठा और उसने देखा कि स्त्रियाँ भयातुर होकर भाग रही हैं ॥ ५२८ ॥ सभी स्त्रियाँ भ्रमवश भाग रही है और रावण ने उनके केश पकड़कर रोक लिया ॥ ५२९ ॥ वे सभी हाहाकार मचाती हुई, ईश्वर को पुकार रही थी और अपने पापों के लिए क्षमा माँग रही थी ॥ ५३० ॥ इस प्रकार की ध्वनियो को सुनते हुए वह हठी रावण उठा और ऐसा लगने लगा मानो धधकती हुई अग्नि का कुण्ड ॥ ५३१ ॥ तीर चलाकर वह मानवी सेना को मारने लगा और उसके चलाये हुए बाणो से सभी दिशाएँ पट गईं ॥ ५३२ ॥ ॥ त्रिणणिण छंद ॥ तीर चलने लगे, वीर घायल होने लगे। ढालें ढलकने लगी, ज्वालाएँ जलने लगी ॥ ५३३ ॥ शिरस्त्राण खड़कने लगे और घाव बनने

क्रणणण रोसं । ज्रणणण जोसं ।। ५३४ ।। ब्रणणण बाजी । त्रिणणण ताजी । ज्रणणण जूझे । ल्रणणण लूझे ।। ५३५ ।। हरणण हाथी । सरणण साथी । भरणण भाजे । लरणण लाजे ।। ५३६ ।। चरणण चरमं । बरणण बरमं । करणण काटे । बरणण बाटे ।। ५३७ ।। मरणण मारे । तरणण तारे । जरणण जीता । सरणण सीता ।। ५३८ ।। गरणण गैणं । अरणण ऐणं । हरणण हूरं । परणण पूरं ।। ५३९ ।। बरणण बाजे । गरणण गाजे । सरणण सुज्झे । अरणण जुज्झे ।। ५४० ।। ।। त्रिगता छंद ।। तत्त तीरं । बब्ब बीरं । ढल्ल ढालं । जज्ज ज्वालं ।। ५४१ ।। तत्त ताजी । गग्ग गाजी । मम्म मारे । तत्त तारे ।। ५४२ ।। जज्ज जीते । लल्ल लीते । तत्त तोरे । छच्छ छोरे ।। ५४३ ।। रर्र राजं । गग्ग गाजं । धद्ध धायं । चच्च चाय ।। ५४४ ।। डड्ड डिग्गे । भब्भ भिग्गे । सस्स स्रोणं । तत्त तोणं ।। ५४५ ।। सस्स साधैं । बब्ब बाधै । अअ्अ अंगं । जज्ज जंगं ।।५४६।।

लगे। वीर कुपित होने लगे और उनका उत्साह बढने लगा ।। ५३४ ।। तीव्र गति वाले अश्व दौडने लगे और वीर जूझकर वीरगति को प्राप्त होने लगे ।। ५३५ ।। हाथी हिरणो के समान भागने लगे और वीर साथियों की शरण पडने लगे। शत्रु भागने लगे और लडने से लजाने लगे ।। ५३६ ।। शरीर और कवच कटने लगे। कान और आँखे क्षत-विक्षत होने लगी ।। ५३७ ।। वीर मरने लगे और भवसागर तरने लगे। कुछ क्रोध की अग्नि मे जल उठे और शरणागत हो गए ।। ५३८ ।। देवता विमान से विचरण करके दृश्य देखने लगे। अप्सराएँ घूमने लगी और वीरो का वरण करने लगी ।। ५३९ ।। विभिन्न प्रकार के वाद्य बजने लगे और हाथी गरजने लगे। वीर शरणागत होने लगे और अन्य युद्ध मे जूझने लगे ।। ५४० ।। ।। त्रिगता छद ।। तीर वीरो को मारने लगे और ढालो से ज्वालाएँ निकलने लगी ।। ५४१ ।। अश्व दौड़ने लगे, योद्धा गरजने लगे। वे एक-दूसरे को मारने लगे और भवसागर पार उतरने लगे ।। ५४२ ।। युद्ध मे जीतकर शत्रु अपनी ओर मिलाए जाने लगे। वीरों को तोड़ा जाने लगा और छोड़ा जाने लगा ।। ५४३ ।। राजा (रावण) गरजकर उत्साहपूर्वक आगे बढ़ा ।। ५४४ ।। वीर रक्त से भीगकर गिरने लगे और रक्त मानो पानी की तरह बह रहा था ।। ५४५ ।। साधकर लक्ष्य बाँधे जा रहे है और युद्ध मे अंगो का भेदन किया जा रहा है ।। ५४६ ।।

कक्क क्रोधं । जज्ज जोधं । घग्घ घाए । धद्ध धाए ।।५४७।।
हह्ह हूरं । पप्प पूरं । गग्ग गैणं । अअ्अ ऐणं ।। ५४८ ।।
बब्ब बाणं । तत्त ताणं । छच्छ छोरैं । जज्ज जोरैं ।।५४९।।
बब्ब बाजे । गग्ग गाजे । भब्भ भूमं । झज्झ झूमं ।।५५०।।
।। अनाद छंद ।। चल्ले बाण रुक्के गैण । मत्ते सूर रत्ते नैण । ढक्के ढोल ढुक्को ढाल । छुट्टै बान उट्ठै ज्वाल ।। ५५१ ।।
भिग्गे स्रोण डिग्गे सूर । झुम्मे भूम घुम्मी हूर । बज्जे संख सब्बं गद्द । तालं संख भेरी नद्द ।। ५५२ ।। तुट्टे त्राण फुट्टे अंग । जुज्झे वीर रुज्झे जंग । मच्चे (मू०ग्रं०२३१) सूर नच्ची हूर । मत्ती धूम भूमी पूर ।। ५५३ ।। उट्ठे अद्ध बद्ध कमद्ध । पक्खर राग खोल सनद्ध । छक्के छोभ छुट्टे केस । संघर सूर सिंघन भेस ।। ५५४ ।। टुट्टर टीक टुट्टे टोप । भग्गे भूप भंनी धोप । घुम्मे घाइ झूमी भूम । अउझड़ झाड़ धूमं धूम ।। ५५५ ।। बज्जे नाद बाद अपार । सज्जे सूर वीर जुझार । जुज्झे टूक टूक ह्वै खेत । मत्ते मद्द जाण अचेत ।। ५५६ ।। छुट्टे शस्त्र अस्त्र अनंत । रंगे रंग भूम

युद्ध में योद्धा क्रुद्ध होकर घायल कर रहे है और दौड रहे है ।। ५४७ ।। व्योम मे अप्सराएँ आकर भर गयी हैं ।। ५४८ ।। वीर बाणो को तानकर ज़ोर लगाकर छोड़ रहे है ।। ५४९ ।। वाद्य बज रहे है, वीर गरज रहे है और झूमकर भूमि पर गिर रहे है ।। ५५० ।। ।। अनाद छद ।। बाणो से आकाश पट गया और वीरो के नयन लाल हो उठे है। ढालो की ढकमकाहट सुनाई दे रही है और उठती ज्वालाएँ दिखाई दे रही है ।। ५५१ ।। रक्त से भीगे शूरवीर झूमकर धरती पर गिर रहे है और अप्सराएँ विचरण कर रही हैं। शंख, ताल और भेरियो की आवाजो से आकाश भर उठा है ।। ५५२ ।। वीरों के कवच फूट चुके हैं और वीर युद्ध मे जूझ रहे है। योद्धा भिड़ रहे हैं और अप्सराएँ नाच रही हैं तथा धरती पर युद्ध की धूम मच गयी है ।। ५५३ ।। युद्ध मे कबंध उठने लगे और अपने जालीदार कवचो को खोलने लगे। सिंहो के समान वेश वाले वीर क्षोभ से भर उठे है और उनके केश भी खुल गये है ।। ५५४ ।। शिरस्त्राण टूट चुके है और राजा-गण भाग खड़े हुए है। वीर घाव खाकर झूमकर गिर रहे हैं और धमाधम करते हुए वीर गिर रहे है ।। ५५५ ।। वृहद् नगाड़े बज उठे है और सुसज्जित वीर दिखाई पड़ रहे है। वे खड-खड होकर युद्ध में मर रहे हैं और युद्ध के रग में मदमस्त होकर अचेत हो रहे हैं ।। ५५६ ।।

दुरंत। खुल्ले अंध धुंध हथियार। बक्के सूर बीर बिकार ॥५५७॥ बिथुरी लुत्थ जुत्थ अनेक। मच्चे कोटि भग्गे एक। हस्से भूत प्रेत मसाण। लुज्झे जुज्झ रुज्झ क्रिपाण॥ ५५८॥ ॥ बहड़ा छंद॥ अधिक रोस कर राज पखरिआ धावही। राम राम बिनु शंक पुकारत आवही। रुज्झ जुज्झ झड़ पड़त भयानक भूम पर। रामचंद्र के हाथ गए भवसिंध तर॥ ५५९॥ सिमट साँग संग्रहै समुह हुइ जूझही। टूक टूक हुइ गिरत न घर कह बूझही। खंड खंड हुइ गिरत खंड धन खंड रन। तनक तनक लग जाँहि असन की धार तन॥५६०॥ ॥ संगीत बहड़ा छंद॥ सागड़दी साँग संग्रहै तागड़दी रण तुरी नचावहि। झागड़दी झूम गिर भूमि सागड़दी सुरपुरहि सिधावहि। आगड़दी अंग हुइ भंग आगड़दी आहव महि डिगही। हो बागड़दी बीर बिकार सागड़दी स्रोणत तन भिगही॥ ५६१॥ रागड़दी रोस रिप राज लागड़दी लछमण पै धायो। कागड़दी क्रोध तन कुड़्यो पागड़दी हुइ पवन सिधायो। आगड़दी अनुज उर तात घागड़दी गहि घाइ प्रहार्यो। झागड़दी झूमि भूअ गिर्यो सागड़दी सुत बैर

अनंत अस्त्र-शस्त्र छूट रहे है और दूर-दूर तक भूमि रक्त से रँग गयी है। अंधाधुध शस्त्र चल रहे है और विकराल वीर प्रलाप कर रहे हैं॥ ५५७॥ लाशो के झुड बिखर रहे है; एक ओर भीषण युद्ध में सैनिक सलग्न है और दूसरी ओर सैनिक भाग रहे हैं। भूत-प्रेत श्मशानो मे हँस रहे हैं और इधर कृपाणो के वार खाकर योद्धा जूझ रहे है॥ ५५८॥ ॥ बहड़ा छंद॥ कवचधारी असुर वीर क्रोधित होकर आगे बढते हैं, परन्तु राम की सेना मे पहुँचते ही राममय हो जाते है और राम-राम पुकारने लग जाते है। वे युद्ध करते हुए भयानक रूप से भूमि पर गिर पड़ते हैं और रामचन्द्र के हाथो भवसागर पार कर जाते है॥ ५५९॥ पलटकर भाला पकड़कर फिर सामने आकर वीर जूझ रहे है और टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ते हैं। तलवारो की तनिक-सी धार लग जाने पर भी वीर खंड-खंड होकर गिर पड़ते है॥ ५६०॥ ॥ सगीत बहड़ा छंद॥ भालो को पकड़कर वीर उन्हे युद्ध मे नचा रहे है और झूमकर भूमि पर गिरते हुए देवलोक सिधार रहे है। अंग-भग होकर युद्धस्थल मे वीर गिर रहे है और उनके विकराल शरीर रक्त से भीग रहे है॥ ५६१॥ रिपुराज रावण क्रोधित होकर लक्ष्मण पर टूट पड़ा और पवन-वेग से अत्यन्त क्रोधित होकर उसकी ओर चला। लक्ष्मण के हृदय पर उसने घाव कर दिया और इस प्रकार अपने

उतार्यो ।। ५६२ ।। चागड़दी चिक चाँवडी डागड़दी डाकण डक्कारी । भागड़दी भूत भर हरे रागड़दी रण रोस प्रजारी । लागड़दी मूरछा भयो लागड़दी लछमण रण जुझ्यो । जागड़दी जाण जुझि गयो रागड़दी रघुपत इम बुझ्यो ।।५६३।। (मू०ग्रं०२३२)

।। इति स्री बचित्र नाटके रामवतार लछमन मूरछना भवेत धिआइ समापतम ।।

।। संगीत बहड़ा छंद ।। कागड़दी कटक कपि भज्यो लागड़दी लछमण जुज्झ्यो जब । रागड़दी राम रिस भर्‌यो सागड़दी गहि अस्त्र शस्त्र सभ । धागड़दी धउल धड़ हड़्यो कागड़दी कोड़ंभ कड़क्कयो । भागड़दी भूमि भड़हदी पागड़दी जन पले पलट्ट्यो ।। ५६४ ।। ।। अरध नराज छंद ।। कढी सु तेग दुब्धरं । अनूप रूप सुब्भरं । भकार भेर भै करं । बचित्र चित्रतं सरं ।। ५६५ ।। तजंत बकार बंदणो बरं । जणंकि सावणं घटं ।।५६६।। तीखणो नरं । परंत जूझत भटं । चलंत त्यागते तनं । घुमंत अघ ओघयं । बदंत बक्त्र तेजयं । छुटंत तीर तीखणं । बजंत भेर भणंत देवता धनं ।। ५६७ ।।

पुत्र के वध का बदला लेते हुए उसने लक्ष्मण को गिरा दिया ।। ५६२ ।। इस क्रोधाग्नि में चीलें चीत्कार करने लगी और डाकिनियाँ डकारने लगी । लक्ष्मण रण मे जूझते हुए जलते हुए रणस्थल मे भूत आदि प्रसन्न हो उठे । मूर्च्छित हो गया और रघुपति राम उसे मृतक समझकर निस्तेज हो गये ।। ५६३ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार मे लक्ष्मण-मूर्च्छना अध्याय समाप्त ।।

।। सगीत वहड़ा छद ।। लक्ष्मण के गिरते ही कपि-सेना भाग खड़ी हुई और अस्त्र-शस्त्रों को हाथ में पकड़कर राम अत्यन्त क्रोधित हो उठे । राम के शस्त्रो की कड़कड़ाहट से धरती का आश्रय वृषभ काँप उठा और भूमि इस प्रकार थरथरा उठी मानो प्रलय आ गया ।। ५६४ ।। ।। अर्द्ध नराज छद ।। दो धार वाली कृपाणे निकल पडी और श्रीराम शोभायमान होने लगे । भेरियो की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी और बन्दीगण चिल्लाने लगे ।। ५६५ ।। विचित्र दृश्य बन गया और मानव तथा वानर-सेना तीखे नाखूनों से इस प्रकार असुर वीरो पर टूट पड़े जैसे सावन की घटा उमड़ रही हो ।। ५६६ ।। चारो ओर पाप को नाश करने के लिए वीर घूम रहे है और एक-दूसरे को ललकार रहे है । शूरवीर शरीर का त्याग कर रहे हैं और देवतागण धन्य-धन्य का उच्चारण कर रहे है ।। ५६७ ।।

भीखणं। उठंत गद्द मद्दणं। समत्त जाण मद्दणं ॥५६८॥ करंत चाचरो चरं। नचंत निरतणो हरं। पुअंत पारबती सिरं। हसंत प्रेतणी फिरं ॥ ५६९ ॥ ॥ अनूप निराज छंद ॥ डकंत डाकणी डुलं। भ्रमंत बाज कुंडलं। रडंत बंदिणो क्रितं। बदंत मागधो जयं ॥ ५७० ॥ ढलंत ढाल उड्ढलं। खिमंत तेग निरमलं। चलंत राजवं सरं। पपात उरविअं नरं ॥ ५७१ ॥ भजंत आसुरी सुतं। किलंक बानरी पुतं। बजत तीर तुप्पकं। उठंत दारुणो सुरं ॥ ५७२ ॥ भभक्क भूत भै करं। चचक्क चउदणो चकं। ततक्ख पक्खरं तुरे। बजे निनद्द सिंधुरे ॥ ५७३ ॥ उठंत भै करी सुरं। मचंत जो धणो जुधं। खिमत उज्जलीअसं। बबरख तीखणो सरं ॥ ५७४ ॥ ॥ संगीत भुजंग प्रयात छंद ॥ जागड़दंग जुज्झ्यो भागड़दंग भ्रातं। रागड़दंग रामं तागड़दंग तातं। बागड़दंग बाणं छागड़दंग घोरे। आगड़दंग आकाश ते जान ओरे ॥ ५७५ ॥ बागड़दंग बाजी रथी बाण काटे। गागड़दंग गाजी गजी वीर डाटे। मागड़दंग मारे सागड़दंग सूरं।

तीखे बाण चल रहे है और भीषण भेरियाँ बज रही है तथा चारो ओर से मदमस्त करनेवाली आवाज सुनाई पड रही है ॥ ५६८ ॥ शिव व उनके गण नृत्य करते हुए दिखाई दे रहे है और ऐसा लग रहा है मानो प्रेतनियाँ हँसती हुई पार्वती के समक्ष शीश झुका रही हैं ॥ ५६९ ॥ ॥ अनूप निराज छद ॥ डाकिनियाँ घूम रही हैं और अश्व चक्राकार दृश्य बनाते हुए भ्रमण कर रहे है। वीर बन्दी बनाये जा रहे है और जय-जयकार कर रहे है ॥ ५७० ॥ ढालो पर तलवारो के वार पड रहे हैं और राजाओ के चलते हुए तीरो से नर एव वानर धरती पर गिर रहे हैं ॥ ५७१ ॥ (दूसरी ओर) बानर किलकारियाँ मार रहे हैं, जिससे असुर भाग रहे है। तीरो एवं अन्य शस्त्रो के ध्वनि से कोलाहलपूर्ण दारुण स्वर उठ रहा है ॥ ५७२ ॥ भूतगण भयभीत और आश्चर्यचकित हो रहे है तथा युद्धस्थल मे कवचधारी घोड़े और चिघाडते हुए हाथी चल रहे है ॥ ५७३ ॥ सुरगण भी योद्धाओ के भीषण युद्ध को देखकर भयभीत हो रहे है। श्वेत कृपाणो और तीक्ष्ण बाणो की वर्षा हो रही है ॥ ५७४ ॥ ॥ सगीत भुजंग प्रयात छंद ॥ भ्राता लक्ष्मण को जूझते हुए भाई राम ने देखा और उन्होने आकाश को छूनेवाले बाण छोड़े ॥ ५७५ ॥ रथी और अश्वारोहियो को इन बाणों ने काट डाला,

बागड़दंग ब्याहैं हागड़दंग हूरं ॥ ५७६ ॥ जागड़दंग जीता खागड़दंग खेतं । भागड़दंग भागे कागड़दंग केतं । सागड़दंग सूरानु जुंआन पेखा । पागड़दंग प्रानान ते प्रान लेखा ॥५७७॥ चागड़दंग चितं पागड़दंग प्राजी । सागड़दंग सैना लागड़दंग (मू०ग्रं०२३३) लाजी । सागड़दंग सुग्रीव ते आदि लैकै । कागड़दंग कोपे तागड़दंग तैकै ॥ ५७८ ॥ हागड़दंग हनू कागड़दंग कोपा । बागड़दंग बीरा नभो पाव रोपा । सागड़दंग सूरं हागड़दंग हारे । तागड़दंग तैकै हनू तउ पुकारे ॥ ५७९ ॥ सागड़दंग सुनहो रागड़दग रामं । दागड़दंग दीजे पागड़दंग पानं । पागड़दंग पीठं ठागड़दंग ठोको । हरो आज पानं सुरं मोह लोको ॥ ५८० ॥ आगड़दंग ऐसे कह्यो अउ उडानो । गागड़दंग गैनं मिल्यो मद्ध मानो । रागड़दंग रामं आगड़दंग आसं । बागड़दंग बैठे नागड़दग निरासं ॥५८१॥ आगड़दंग आगे कागड़दंग कोऊ । मागड़दंग मारे सागड़दंग सोऊ । नागड़दंग नाकी तागड़दंग तालं । मागड़दंग मारे बागड़दंग बिसालं ॥ ५८२ ॥ आगड़दंग एकं दागड़दंग दानो । चागड़दग चीरा दागड़दंग दुरानो । दागड़दंग देखी बागड़दंग

परन्तु फिर भी शूरवीर युद्ध मे डटे रहे । राम ने शूरवीर को मार डाला और अप्सराओ ने इन शूरवीरो का वरण कर लिया ॥ ५७६ ॥ इस प्रकार युद्ध जीत लिया और इस युद्ध मे कितने ही वीर भाग खडे हुए । जहाँ भी शूरवीरो ने एक-दूसरे को देखा तो प्राण देकर ही उन्होने हिसाब चुकता किया ॥ ५७७ ॥ पराजय का स्मरण कर सेना लज्जित हो उठी । सुग्रीव आदि भी अत्यन्त क्रोधित हो उठे ॥ ५७८ ॥ हनुमान भी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और उन्होने युद्धस्थल मे अपना पाँव जमा दिया । उनसे लडते हुए सभी हार गये और इसीलिए हनुमान को सबका हनन करने वाला कहा जाता है ॥ ५७९ ॥ हनुमान ने राम से कहा कि आप अपना हाथ मेरी ओर करके मेरी पीठ पर आशीर्वाद दीजिए और मैं आज सारे सुरलोको का हरण कर ले आऊँगा ॥ ५८० ॥ इतना कहकर हनुमान उड चले और ऐसा लगा जैसे वे आकाश के साथ मिलकर एक हो गए । रामचन्द्र आशा को मन मे बसाते हुए निराश से होकर बैठ गये ॥ ५८१ ॥ हनुमान के सामने जो भी आया, उन्होने उसे मार डाला और वे इस प्रकार मारते हुए एक सरोवर के किनारे पहुँचे ॥ ५८२ ॥ वहाँ एक भयानक वेष वाला राक्षस छिपा हुआ था और वही पर हनुमान ने एक के

बूटी । आगड़दंग है एक ते एक जूटी ।। ५८३ ।। चागड़दंग चउका हागड़दग हनवंता । जागड़दग जोधा महाँ तेज मंता । आगड़दंग उखारा पागड़दंग पहारं । आगड़दग लै अउखधी को सिधारं ।। ५८४ ।। आगड़दंग आए जहा राम खेतं । बागड़दंग बीरं जहाँ ते अचेतं । बागड़दंग बिसल्ल्या मागड़दंग मुक्खं । डागड़दंग डारी सागड़दंग सुक्खं ।। ५८५ ।। जागड़दंग जागे सागड़दंग सूरं । घागड़दंग घुम्मी हागड़दंग हूरं । छागड़दंग छूटे नागड़दंग नादं । बागड़दंग बाजे नागड़दंग नादं ।। ५८६ ।। तागड़दंग तीरं छागड़दंग छूटे । गागड़दंग गाजी जागड़दंग जूटे । खागड़दंग खेतं सागड़दंग सोए । पागड़दंग ते पाक शाहीद होए ।। ५८७ ।। ।। कलस ।। नच्चे सूरबीर बिकारं । नच्चे भूत प्रेत बैतारं । झमझम लसट कोटि करवारं । झलहलंत उज्जल अस धारं ।। ५८८ ।। ।। त्रिभंगी छंद ।। उज्जल अस धारं लसत अपारं करण सुभारं छबि धारं । सोभित जिमु आरं अत छबि धारं सु विध सुधारं अर गारं । जैपत्रं दाती मदिणं माती स्रोणं राती जै करणं । दुज्जन दल हंती अछल जयंती किलबिख (मू०ग्रं०२३४) हंती भै हरणं ।। ५८९ ।। ।। कलस ।। भरहरंत

साथ एक जुड़ी हुई अनेक बूटियाँ देखी ।। ५८३ ।। महातेजवान योद्धा हनुमान यह देखकर चौक उठा (और असमजस मे पड़ गया कि कौन सी जड़ी ले जाऊँ) । उन्होंने सारा पहाड़ ही उखाड़ लिया और ओषधि को लेकर चल पड़े ।। ५८४ ।। पहाड़ लेकर वे उस युद्धस्थल पर पहुँचे जहाँ वीर (लक्ष्मण) अचेत पड़े थे । सुषेन वैद्य ने उनके मुँह मे वह जड़ी डाल दी ।। ५८५ ।। शूरवीर अचेतावस्था से जग पड़े और अप्सराएँ विचरण करती हुई वापस लौट गईं । युद्धस्थल मे चारों ओर बृहद् नगाड़े बज उठे ।। ५८६ ।। तीर छूटने लगे और योद्धा फिर आपस मे भिड़ने लगे । योद्धा रणस्थल मे मृत्यु को प्राप्त कर सच्चे अर्थों मे शहीद होने लगे ।। ५८७ ।। ।। कलस ।। विकराल शूरवीर भिड़ उठे और भूत, प्रेत, बैताल नृत्य करने लगे । अनेको हाथों से झम-झम की आवाज़ करते हुए वार होने लगे और कृपाणों की श्वेत धारे झलमलाने लगी ।। ५८८ ।। ।। त्रिभंगी छद ।। कृपाणों की श्वेत धारें सौंदर्य बढाती हुई शोभायमान हो रही हैं । ये कृपाणे शत्रुओ का नाश करनेवाली हैं और आरे के समान दिखाई पड़ रही हैं । ये विजयपत्र देनेवाली रक्त मे स्नान करनेवाली मदमस्त,

भज्जत रण सूरं। थरहर करत लोह तन पूरं। तड़भड़ बजैं तबल अरु तूरं। घुम्मी पेख सुभट रन हूरं॥ ५९०॥
॥ त्रिभंगी छंद॥ घुंमी रण हूरं नभ झड़ पूरं लख लख सूरं मन मोही। आरुण तन बाणं छब अप्रमाणं अणिदुत खाणं तन सोही। काछनी सुरंगं छबि अंग अंगं लजत अनंगं लख रूपं। साइक द्रिग हरणी कुमत प्रजरणी बरबर बरणी बुध कूपं॥ ५९१॥ ॥ कलस॥ कमल बदन साइक म्रिग नणी। रूप रास सुंदर पिक बैणी। म्रिगपत कट छाजत गज गैणी। नैन कटाछ मनहि हर लैणी॥ ५९२॥ ॥ त्रिभंगी छंद॥ सुंदर म्रिगनैणी सुर पिकबैणी चित हर लैणी गज गैणं। माधुर बिधि बदनी सुबुद्धिन सदनी कुमतिन कदनी छबि मैणं। अंगका सुरंगो नटवर रंगो झाँझ उतंगो पग धारं। बेसर गजरारं पहूच अपारं कचि घुंघरारं आहारं॥ ५९३॥

दुर्जनो के दल का हनन करनेवाली तथा सभी विषय-विकारो का नाश कर शत्रु को भयभीत करनेवाली है॥ ५८९॥ ॥ कलस॥ खलवली मच गई, योद्धा भागने लगे और कवच धारण किए हुए उनके शरीर थरथराने लगे। युद्ध मे तडातड नगाड़े बजने लगे और बलशाली वीरो को देखकर अप्सराएँ पुनः उनकी ओर बढ चली॥ ५९०॥ ॥ त्रिभगी छद॥ आकाश से अप्सराएँ मुड़कर वीरो की ओर चली और उनके मन को मोहित करने लगी। उनके शरीर रक्त लगे वाणों के समान लाल थे और उनकी छवि अद्वितीय थी। सुरम्य करधनियाँ धारण की हुई इन अप्सराओं के सौंदर्य को देखकर कामदेव भी लजा रहा था और ये धनुषाकार नेत्रों वाली, कुमति का नाश करनेवाली और बरबस वरण करनेवाली, बुद्धिमती अप्सराएँ थी॥ ५९१॥ ॥ कलस॥ इनके मुख कमल के समान, नयन मृग के समान और वाणी कोयल के समान थी। ये रूप-रस की राशि अप्सराएँ गज के समान गमन करनेवाली, सिंह के समान पतली कमर वाली और अपने नयनो के कटाक्ष से मन को हरनेवाली थी॥ ५९२॥ ॥ त्रिभंगी छंद॥ वे सुन्दर नयनो वाली, कोयल के समान मधुर स्वर वाली और गजगामिनी के समान चित्त को हर लेनेवाली है। माधुर्ययुक्त उनका मुख और कामदेव की छवि के समान सुन्दर वे सुबुद्धि का भण्डार और कुमति का खण्डन करनेवाली सुरम्य अगो वाली और एक ओर झुककर खड़ी होनेवाली पैरो मे पायल पहने हुए, नाक मे हाथीदाँत का गहना और काले घुंघराले केश धारण किए हुए वे सर्वत्र रमण करनेवाली है॥ ५९३॥

॥ कलस ॥ चिबक चार सुंदर छबि धारं। ठउर ठउर मुकतन के हारं। कर कंगन पहुची उजिआरं। निरख मदन दुत होत सु छारं ॥ ५९४ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ सोभित छबि धारं कच घुंघरारं रसन रसारं उजिआरं। पहुँची गजरारं सुबिध सुधारं मुकत निहारं उर धारं। सोहत चख चारं रंग रँगारं बिबिधि प्रकारं अति आँजे। बिखधर म्रिग जैसे जल जन वैसे ससिअर जैसे सर माँजे ॥ ५९५ ॥ ॥ कलस ॥ भयो मूड़ रावण रण क्रुद्धं। मच्यो आन तुम्मल जब जुद्धं। जूझे सकल सूरमाँ सुद्धं। अर दल मद्धि शबद कर उद्धं ॥ ५९६ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ धायो कर क्रुद्धं सुभट बिरुद्धं गलित सुबुद्धं गहि बाणं। कीनो रण सुद्धं नचत कबुद्धं अत धुन उद्धं धनु ताणं। धाए रजवारे दुद्धर हकारे सु ब्रण प्रहारे कर कोपं। घाइन तन रज्जे दु पग न भज्जे जनु हर गज्जे पग रोपं ॥ ५९७ ॥ ॥ कलस ॥ अधिक रोस सावत रन जूटे। बखतर टोप जिरै

॥ कलस ॥ सुन्दर गाल और अनुपम छवि वाली अप्सराओ के अग-अंग पर मोतियो की मालाएँ पड़ी हुई है। उनके हाथो के कंगन उजाला कर रहे है और इस प्रभा को देखकर कामदेव की छवि भी धूमिल हो रही है ॥ ५९४ ॥ त्रिभगी छद ॥ काली केशराशि और मीठी वाणी के साथ ये शोभायमान हो रही है और मुक्त रूप से विचरण करती हुई ये हाथियों की धकापेल मे घूम रही है। नेत्रो मे काजल डालकर वे विविध प्रकार के रगों से रँगी हुई सुन्दर नयनो वाली शोभायमान हो रही है तथा इस प्रकार उनकी आँखे विषधरो के समान वार करनेवाली परन्तु मृग के समान भोली-भाली और कमल तथा चन्द्रमा के समान सौदर्यशालिनी है ॥ ५९५ ॥ ॥ कलस ॥ मूढ रावण युद्ध मे अत्यन्त क्रोधित हो उठा। जब भयकर तुमुलनाद के मध्य युद्ध चलने लगा तो सभी शूरवीर जूझने लगे और शत्रुओ के दल मे ललकारकर घुसने लगे ॥ ५९६ ॥ ॥ त्रिभगी छंद ॥ वह दुर्बुद्धि वाला असुर हाथ मे बाण लेकर अत्यन्त क्रोधित होकर युद्ध करने के लिए आगे बढा। उसने भयकर युद्ध किया और युद्धस्थल मे ताने जा रहे धनुषो के बीच कबध नृत्य करने लगे। राजागण ललकारकर आगे बढे और वीरो को घायल करते हुए क्रोधित हो उठे। घाव वीरो के तन पर शोभा दे रहे है, परन्तु फिर भी वीर नही भाग रहे है और मेघ के समान गर्जन करते हुए रणस्थल मे पाँव जमाकर रण कर रहे हैं ॥ ५९७ ॥ ॥ कलस ॥ और अधिक रोष बढ़ने से वीर आपस मे जूझ गये और कवच

सभ फूटे। निसर चले साइक जन छूटे। जनिक सिचान मास लख टूटे ॥ ५९८ ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ साइक जणु छूटे तिम अरि जूटे बखतर फूटे जेब जिरे। समहर मुखि आए तिमु अरि धाए (मू०ग्रं०२३५) शस्त्र नचाइन फेरि फिरें। सनमुखि रण गाजैं किमहूँ न भाजैं लख सुर लाजैं रण रंगं। जंजै धुन करही पुहपन डरही सु बिधि उचरही जै जंगं ॥५९९॥ ॥ कलस ॥ मुख तंबोर अरु रंग सुरंगं। निडर भ्रमंत भूँमि उह जंगं। लिपत मलै घनसार सुरगं। रूप भान गतिवान उतंगं ॥ ६०० ॥ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ तन सुभत सुरंगं छबि अंग अंगं लजत अनंगं लख नैणं। सोभित कचकारे अत घुँघरारे रसन रसारे म्रिद बैणं। मुखि छकत सुबासं दिनस प्रकासं जनु सस भासं लख सोभं। रीझत चख चारं सुरपुर प्यारं देव दिवारं लखि लोभं ॥ ६०१ ॥ ॥ कलसि ॥ चंद्रहास

तथा शिरस्त्राण टूटने लगे। धनुष से बाण छूटने लगे और शत्रुओं के शरीर से मास के टुकड़े कट-कटकर गिरने लगे ॥ ५९८ ॥ ॥ त्रिभगी छंद ॥ जैसे ही तीर छूटते हैं, शत्रु और अधिक सख्या मे एकत्रित होकर टूटे-फूटे कवचो के साथ भी लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। वे इस प्रकार आगे बढते है, जैसे भूखा व्यक्ति इधर-उधर दौडता है। वे शस्त्रों को नचाकर इधर-उधर घूम रहे है। वे सम्मुख होकर लडते है, भागते नही और उनको युद्ध मे मदमस्त देखकर देवता भी लजाते है। देवगण भी भीषण युद्ध को देखकर जय-जयकार की ध्वनि करते हुए पुष्प-वर्षा करते है और युद्ध की जय-जयकार करते है ॥ ५९९ ॥ ॥ कलस ॥ रावण के मुख मे पान है और उसके शरीर का रग लाल है। वह निडर होकर युद्धभूमि मे विचरण कर रहा है और उसने अपने अगो पर चदन का लेप किया हुआ है। वह सूर्य के समान तेजवान है और उत्तम गति से चल रहा है ॥ ६०० ॥ ॥ त्रिभगी छद ॥ उसके सुरम्य शरीर को और छविमान अगो को देखकर कामदेव भी लजा रहा है। उसके घुँघराले काले बाल है और उसकी बोली भी मधुर है। उसका मुख सुवासित है और ऐसा लग रहा है कि वे मानो सूर्य के समान प्रकाश करनेवाला और शशि के समान शोभा देनेवाला हो। उसको देखकर सभी प्रसन्न हो उठते है और देवपुरी के लोग भी उसको देखने का लोभ सवरण नही कर पाते ॥ ६०१ ॥ ॥ कलस ॥ उसके एक हाथ मे चन्द्रहास तलवार थी और दूसरे हाथ मे धोप नामक एक अन्य अस्त्र तथा तीसरे हाथ में

एकं करधारी। दुतिय धोपु गहि त्रिती कटारी। चत्रथ हाथ सैहथी उजिआरी। गोफन गुरज करत चमकारी ।।६०२।। ।। त्रिभंगी छंद ।। सतए अस भारी गदहि उभारी त्रिसूल सुधारी छुरक्कारी। जंबूवा अरबानं सु कसि कमानं चरम अप्रमानं धर भारी। पंद्रए गलोलं पास अमोलं परस अडोलं हथि नालं। लिछुआ पहरायं पटा भ्रमायं जिम जम धायं बिक्करालं।। ६०३ ।। ।। कलसि ।। शिव शिव शिव मुख एक उचारं। दुतिय प्रभा जानकी निहारं। त्रितिय झुंड सभ सुभट पचारं। चत्रथ करत मार ही मारं ।। ६०४ ।। ।। त्रिभंगी छंद ।। पचए हनवंतं लख दुत मंतं सु बल दुरंतं तजि कलिणं। छठए लखि भ्रातं तकत पपातं लगत न घातं जिय जलिणं। सतए लखि रघुपति कप दल अधमत सुभट बिकट मत जुतभ्रातं। अठिओ सिरि ढोरैं नवमि निहोरैं दस्यन बोरैं रिस रातं ।। ६०५ ।। ।। चबोला छंद ।। धाए महाँ बीर साधे सितं तीर काछे रणं चीर बाना सुहाए। रवाँ. करद मरकब

कटार थी। उसके चौथे हाथ मे भी तेज़ चमक वाला सैहथी नामक शस्त्र था। पाँचवे और छठवे हाथ मे चमकता हुआ गदा एव गोफन नामक शस्त्र था ।। ६०२ ।। ।। त्रिभगी छद ।। सातवें हाथ मे एक अन्य भारी उभरी हुई गदा तथा अन्य हाथो मे त्रिशूल, जम्बूर, बाण, कमान आदि शस्त्र-अस्त्र थे। पन्द्रहवे हाथ मे गुलेलनुमा अस्त्र और फरसा नामक शस्त्र थे। हाथों में उसने बघनखे धारण कर रहे थे और वह इस प्रकार विचरण कर रहा था मानो विकराल यमराज जा रहा हो ।। ६०३ ।। ।। कलस ।। वह एक मुख से शिव-शिव का जाप कर रहा था, दूसरे से सीता के सौंदर्य को निहार रहा था, तीसरे से अपने सुभटो को देख रहा था तथा चौथे से मारो-मारो पुकार रहा था ।। ६०४ ।। ।। त्रिभंगी छद ।। पाँचवे से हनुमान को देखकर द्रुत वेग से मन्त्र का जाप कर रहा है और उसके बल को खीचने का प्रयत्न कर रहा है। छठवे शिर से गिरे हुए भाई कुम्भकर्ण को देख रहा है और उसका हृदय जल रहा है। सातवें सिर से वह राम और कपिदल तथा अन्य विकट बलशालियो को देख रहा है। आठवे सिर को वह हिला रहा है, नवे सिर से सर्वेक्षण कर रहा है- तथा दसवे सिर से वह अत्यन्त क्रोधित हो रहा है ।। ६०५ ।। ।। चबोला छंद ।। श्वेत बाणो को साधते हुए बलशाली वीर चले और उनके शरीर पर सुन्दर वस्त्र शोभायमान हो रहे हैं। उनके घोड़े भी बहुत ही तीव्रगामी और युद्ध में

यलो तेज इम सभ चूं तुंद अजद होउ मिआ जंगाहे। भिड़े आइ ईहाँ बुले बैण कीहाँ करे घाइ जीहाँ भिड़े भेड़ भज्जे। पियो पोसताने भछो राबड़ीने कहाँ छैअणी रोधणीने निहारैं ॥६०६॥ गाजे महा सूर घुमी रणं हूर भरमी नभं पूर बेखं अनूपं। वले वल्ल साई जीवी जुगाँ लाई तैडे घोली जाई अलावीत ऐसे। लगो लार थाने बरो राज माने कहो अउर काने हठी छाड थेसो। बरो मान मोको भजो (मू०ग्रं०२३६) आन लोको चलो देव लोको तजो बेग लंका ॥ ६०७ ॥ ॥ स्वैया ॥ अनंत तुका ॥ रोस भर्यो तज होश निसाचर स्री रघुराज को घाइ प्रहारे। जोश बडो कर कउशलिहं अध बीच ही ते सर काट उतारे। फेर बडो कर रोस दिवारदन धाइ परै कपि पुंज सँघारैं। पट्टस लोह हथी पर संगड़ीए जंबुवे जमदाड़ चलावै ॥ ६०८ ॥ ॥ चबोला स्वैया ॥ स्री रघुराज सरासन लै रिस ठान घनी रन बान प्रहारे। बीरन मार दुसार गए सर अंबर ते बरसे जन ओरे। बाज गजी रथ साज गिरे धर पत्र अनेक सु कउन गनावै। फागन पउन प्रचंड बहे बन पत्रन ते जन पत्र

पूर्ण शीघ्रता दिखा रहे है। वे कभी इस ओर भिड़ते है, कभी उस ओर जा ललकारते है और जहाँ भी वे वार करते है, शत्रु भाग खडे होते है। वे ऐसे लगते है, मानो कोई भाँग खाकर मदमस्त होकर इधर-उधर घूम रहा हो ॥ ६०६ ॥ शूरवीर गरजने लगे और आकाश मे इस अनुपम युद्ध को देखने के लिए अप्सराएँ विचरण करने लगी। वे दुआएँ देने लगी कि ये भीषण युद्ध करनेवाले योद्धा युगो-युगो तक जिएँ और राज्य का भोग दृढपूर्वक करे। ओ योद्धाओ! इस लका को छोडो और आकर हम लोगो का वरण करने के लिए स्वर्गलोक को चलो ॥ ६०७ ॥ ॥ सवैया ॥ अनन्त तुक वाला ॥ रावण होश को त्यागते हुए अत्यन्त क्रोधित हो उठा और उसने श्री रघुराज रामचन्द्र पर प्रहार किया। इधर श्री रामचन्द्र भी उसके बाणो को आधे रास्ते मे ही काट डाला। पुनः उसने क्रोधित होकर वानर-सेना के समूह का नाश प्रारम्भ कर दिया और विभिन्न प्रकार के विकराल अस्त्रो को चलाना शुरू कर दिया ॥ ६०८ ॥ ॥ चबोला सवैया ॥ रामचन्द्र ने धनुष हाथ मे लेकर क्रुद्ध होकर बहुत से बाण छोड़े जो वीरो को मारते हुए दूसरी ओर निकलकर पुन. आकाश से वरसने लगे। युद्धस्थल मे हाथी, घोडे, रथ अगणित सख्या मे गिर पड़े और ये सब ऐसे लगने लगे जैसे फागुन मास मे प्रचण्ड पवन चलने से पत्ते

उडाने ॥ ६०६ ॥ ॥ स्वैया छंद ॥ रोस भर्यो रन मौ रघुनाथ सु रावन को बहु बान प्रहारे। स्रोणत नैक लग्यो तिन के तन फोर जिरै तन पार पधारे। बाज गजी रथ राज रथी रणभूमि गिरे इह भाँति सँघारे। जानो बसंत के अंत समै कदली दल पउन प्रचंड उखारे ॥ ६१० ॥ धाइ परे कर कोप बनेचर है तिनके जिय रोस जग्यो। किलकार पुकार परे चहूँ घारण छाडि हठी नहि एक भग्यो। गहि बान कमान गदा बरछी उत ते दल रावन को उमग्यो। भट जूझि अरूझि गिरे धरणी द्विजराज भ्रम्यो शिव ध्यान डिग्यो ॥ ६११ ॥ जूझि अरूझि गिरे भटवा तन घाइन घाइ घने भिभराने। जंबुक गिद्ध पिसाच निसाचर फूल फिरे रन मौ रहमाने। काँप उठी सु दिशा बिदिशा दिगपालन फेर प्रलै अनुमाने। भूमि अकाश उदास भए गन देव अदेव भ्रमे भहराने ॥ ६१२ ॥ रावन रोस भर्यो रन मो रिस सो सर ओघ प्रओघ प्रहारे। भूमि अकाश दिशा बिदिशा सभ ओर रुके नहि जात निहारे। स्री रघुराज

उडते हुए दिखाई पडते हैं ॥ ६०९ ॥ ॥ सवैया छद ॥ श्रीरामचन्द्र ने क्रोधित होकर रावण पर बहुत से बाण चलाये और वे बाण थोड़ा-सा रक्त से रँगे हुए शरीर को फाड़कर दूसरी ओर निकल गये। युद्धस्थल मे हाथी, घोड़े, रथ और रथी कटकर गिर पड़े जैसे बसन्त के अन्त मे प्रचण्ड पवन केले के पेडो को उखाड़ फेकती है ॥ ६१० ॥ वानर-सेना भी हृदय मे क्रुद्ध होकर टूट पड़ी और किलकारियाँ मारती हुई अपने स्थान से बिलकुल न हटते हुए चारो ओर से उमड़ पड़ी। दूसरी ओर से बाण, कमान, गदा, बरछी आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर रावण का दल भी उमड़ पड़ा और योद्धा इस प्रकार एक-दूसरे से भिड़कर गिरने लगे कि चन्द्रमा भी चलते-चलते भ्रम मे पड़ गया और शिव की समाधि भी टूट गयी ॥ ६११ ॥ तन पर घाव खाकर शूरवीर घूम-घूमकर गिरने लगे और गीदड, गिद्ध, पिशाच, निशाचर आदि मन मे प्रसन्न हो उठे। भीषण युद्ध को देखकर सारी दिशाएँ काँप उठी और दिग्पालो ने प्रलय होने का अनुमान लगाना शुरू कर दिया। भूमि और आकाश उदास हो गये तथा युद्ध की भीषणता को देखकर देवता तथा राक्षस सभी घबरा उठे ॥ ६१२ ॥ रावण ने मन मे क्रोधित होकर झुण्ड रूप मे बाण चलाने प्रारम्भ किए और उसके बाणों से भूमि, आकाश और सभी दिशाएँ पट गयी। इधर श्री रामचन्द्र ने भी क्षण भर मे क्रुद्ध होकर उन सारे तीर-समूहो का नाश कर दिया और जो तीरो के

सरासन लै छिन मो छुभ कै सर पुंज निवारे। जानक भान उदै निस कउ लखि कै सभ ही तप तेज पधारे ॥ ६१३ ॥ रोस भरे रन मो रघुनाथ कमान लै बान अनेक चलाए। बाज बजी गजराज घने रथ राज बने रसि रोस उडाए। जे दुख देह कटे सिय के हित ते रन आज प्रतक्ख दिखाए। राजिव-लोचन राम कुमार घनो रन घाल घनो घर घाए ॥६१४॥ रावन रोस भर्‌यो गरज्यो रन मो लहिकै सभ सैन (मू०ग्रं०२३७) भजान्यो। आप ही हाक हथ्यार हठो गहि स्री रघुनंदन सो रण ठान्यो। चाबक मोर कुदाइ तुरंगन जाइ पर्‌यो कछु त्रास न मान्यो। बानन ते बिधु बाहन ते मन मारत को रथ छोरि सिधान्यो ॥ ६१५ ॥ स्री रघुनदन की भुज ते जब छोर सरासन बान उडाने। भूँमि अकाश पतार चहूँ चक पूर रहे नही जात पछाने। तोर सनाह सुबाहन के तन आह करी नही पार पराने। छेद करोटन ओटन कोट अटानमो जानकी बान पछाने ॥ ६१६ ॥ स्री असुरारदन के कर को जिन एक ही बान बिखै तन चाख्यो। भाज सक्यो न भिर्‌यो हठ कै भट एक ही घाइ धरा पर राख्यो। छेद सनाह सुबाहन को सर

कारण अँधेरा छा गया था, पुन सूर्य के निकलने से चारो ओर प्रकाश-ही-प्रकाश हो गया ॥ ६१३ ॥ रोष से भरे हुए श्रीराम ने अनेको बाण चलाये और हाथी, घोड़ो और रथियो को उड़ा दिया। जिस प्रकार भी सीता का कष्ट दूर होकर उसे स्वतन्त्र कराया जा सकता था, वे सब कार्य आज श्रीराम ने प्रत्यक्ष करके दिखाये और कमल के समान नयनो वाले श्रीराम ने भीषण युद्ध करके अनेको घरो को खाली कर दिया ॥ ६१४ ॥ रावण क्रोधित होकर गरजा और सेना को दौड़ाकर, ललकार कर तथा हाथो मे शस्त्र धारण कर सीधा श्रीराम से आ भिड़ा। वह चाबुक मारकर तथा अभय होकर अश्वो को कुदाने लगा। बाणो से रामचन्द्र जी को मारने के लिए वह रथ छोड़कर आगे बढा ॥ ६१५ ॥ श्रीराम के हाथो से जब बाण उड़ने लगे तो भूमि, आकाश, पाताल और चारो दिशाओ को पहचानना कठिन हो गया। वे बाण वीरो के कवचो को भेदकर और बिना आह किये उनको मारकर उनके शरीर से पार निकल गये। लोहे के कवचो को छेदते हुए बाण जब गिरे तो जानकी ने यह पहचान लिया कि ये बाण श्रीरामचन्द्र के है ॥ ६१६ ॥ जिसने भी श्रीराम के हाथ का एक बाण खाया, वह शूरवीर न तो वहाँ से भाग सका और न ही युद्ध में पुनः भिड़

ओटन कोट करोटन नाखयो। स्वार जुझार अपार हठी रन हार गिरे धर हाइ न भाखयो ॥ ६१७ ॥ आन करे सुमरे समही भट जीत बचे रन छाडि पराने। देव अदेवन के जितिया रन कोट हते कर एक न जाने। स्री रघुराज प्राक्रम को लख तेज संबूह सभै भहराने। ओटन कूद करोटन फाँध सु लंकहि छाडि बिलंक सिधाने ॥ ६१८ ॥ रावन रोस भर्‌यो रन मो गहि बीसहूँ बाहि हथ्यार प्रहारे। भूँमि अकाश दिशा बिदिशा चकि चार रुके नही जात निहारे। फोकन तै फल तै मद्ध तै अध तै बध कै रणमंडल डारे। छत्र धुजा बर बाज रथी रथ काटि सभै रघुराज उतारे ॥ ६१९ ॥ रावन चउप चल्यो चपकै निज बाज बिहीन जबै रथ जान्यो। ढाल त्रिसूल गदा बरछी गहि स्री रघुनंदन सो रन ठान्यो। धाइ पर्‌यो ललकार हठी कप पुंजन को कछु तास न मान्यो। अंगद आदि हनवंत ते लै भट कोट हुते कर एक न जान्यो ॥ ६२० ॥ रावन को रघुराज जबै रणमंडल आवत मद्धि निहार्‌यो। बीस सिला सित साइक लै करि कोपु बडो उर मद्ध प्रहार्‌यो। भेद चले

सका, अपितु धराशायी हो गया। श्रीराम के बाण वीरो के कवचो को छेदकर निकलने लगे और महाबली जुझारू वीर बिना हाय तक किये धरती पर गिर पड़े ॥ ६१७ ॥ रावण ने अपने सभी शूरवीरो को बुलाया, परन्तु वे बचे हुए वीर भाग खड़े हुए। देवो और अदेवों को जीतनेवाले रावण ने करोड़ो को मारा, परन्तु युद्धस्थल मे इससे कोई अन्तर नहीं पडा। श्रीराम के पराक्रम को देखकर सभी तेजस्वी घबरा उठे और किलो की दीवारे फाँदकर समुद्र पार भाग गए ॥ ६१८ ॥ क्रोधित होकर रावण ने बीसों भुजाओं से शस्त्र पकड़कर प्रहार किया, और उसके वारों से भूमि, आकाश, चारो दिशाएँ अदृश्य हो गयी। श्रीराम ने रणमडल मे शत्रुओ को ऐसे काटकर फेक दिया जैसे फल को आसानी से काटकर फेंक दिया जाता है। रावण के छत्र, ध्वज, अश्व और सारथी सभी को श्रीराम ने काटकर फेक दिया ॥ ६१९ ॥ जब रावण ने अपना रथ अश्वविहीन देखा तो वह शीघ्रता से स्वय आगे बढ़ा और ढाल, त्रिशूल, गदा, बरछी हाथो मे पकडकर श्रीराम से आ भिडा। हठी रावण वानर-सेना का ज़रा-सा भी भय न मानता हुआ तथा ललकारता हुआ आगे बढा। अगद, हनुमान आदि अनेको वीर वहाँ थे, परन्तु उसने किसी का भी भय नही माना ॥ ६२० ॥ जब रघुराज ने रावण को युद्ध मे आगे बढ़ते देखा तो शिलाओ जैसे बीस बाण

मरमसथल को सर स्रोण नदी सर बीच पखार्यो । आगे ही रेंग चल्यो हठिकै भट धाम को भूल न नाम उचार्यो ।। ६२१ ।। रोस भर्यो रन मौ रघुनाथ सु पान के बीच सरासन लै कै । पाँचक पाइ हटाइ दयो तिह बीसहूँ बाँहि बिना ओह कै कै । दै दस बान बिमान दसो सिर काट दए शिवलोक पठै कै । स्री रघुराम बर्यो सिय को बहुरो (मू०ग्रं०२३८) जनु जुद्ध सुयंबर जै कै ।। ६२२ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके रामवतार दस सिर बधह धिआइ समापतम ।।

अथ मदोदरी समोध बभीछन को लंक राज दीबो ।।
सीता मिलबो कथन ।।

।। स्वैया छंद ।। इंद्र डराकुल थो जिहके डर सूरज चंद्र हुतो भयभीतो । लूट लयो धन जउन धनेश को ब्रहम हुतो चित मोननि चीतो । इंद्र से भूत अनेक लरै इन सौ फिरिकै ग्रह जात न जीतो । सो रन आज भलै रघुराज सु जुद्ध सुयंबर कै सिय जीतो ।। ६२३ ।। ।। अलका छंद ।। चटपट सैणं खटपट भाजे ।

लेकर राम ने उसकी छाती मे प्रहार किया । ये बाण उसके मर्मस्थल का भेदन कर गये और वह रक्त की नदी मे नहा गया । रावण गिर गया और रेंग-रेंगकर आगे बढने लगा तथा घर का पता भी भूल गया ।। ६२१ ।। रघुनाथ ने क्रोधित होकर हाथ में धनुष लेकर पाँच कदम पीछे होकर रावण की बीसों भुजाएँ काट डाली । दस बाणो से उसके दस सिर शिवलोक भेजने के लिए काट डाले । (युद्ध के पश्चात्) श्रीराम ने पुनः सीता का ऐसे वरण किया, मानो उसे स्वयवर मे उन्होने जीता हो ।। ६२२ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार मे दशानन-वध अध्याय समाप्त ।।

मंदोदरी को सम्यक् ज्ञान और विभीषण को लंका का राज्य-
प्रदान-कथन प्रारम्भ ।। सीता-मिलाप-कथन

।। सवैया छद ।। जिससे इन्द्र, चन्द्र, सूर्य भी घबराते थे, जिसने कुबेर का भंडार भी लूट लिया था और ब्रह्मा जिसके सामने चुप्पी साधे रहता था । इन्द्र जैसे अनेको भूत इससे लड़ते थे पर इसे जीता नही जा सकता था, उसी को आज रण मे जीतकर राम ने सीता को स्वयवर की भाँति जीत लिया ।। ६२३ ।। ।। अलका छद ।। सेनाएँ शीघ्रता से दौड़ी

झटपट जुज्झ्यो लख रण राजे। सरपट भाजे अटपट सूरं। झटपट बिसरी पट घट हूरं ॥ ६२४ ॥ चटपट पैठे खटपट लंकं। रण तज सूरं सरधर बंकं। झलहल बारं नरबर नैणं। धकि धकि उचरे भकि भकि बैणं ॥ ६२५ ॥ नर बर रामं बरनर मारो। झटपट बाहं कटि कटि डारो। तब सभ भाजे रख रख प्राणं। खटखट मारे झटपट बाणं ॥ ६२६ ॥ चरपट रानी सरपट धाई। रटपट रोवत अटपट आई। चटपट लागी अटपट पायं। नरबर निरखे रघुबर रायं ॥ ६२७ ॥ चटपट लोटैं अटपट धरणी। कसि कसि रोवैं बरनर बरणी। पटपट डारैं अटपट केसं। बट हरि कूकैं नट वर भेसं ॥ ६२८ ॥ चटपट चीरं अटपट पारै। धर कर धूमं सरबर डारैं। सरपट लोटैं खटपट भूमं। झटपट झूरैं घरहर घूमं ॥ ६२९ ॥ ॥ रसावल छंद ॥ जबै राम देखैं। महा रूप लेखैं। रही न्याइ सीसं। सभै नार ईसं ॥ ६३० ॥ लखैं रूप मोही। फिरी राम दोही। दई ताहि लंका। जिमं राज टंका ॥ ६३१ ॥ क्रिपा द्रिष्ट भीने। तरे नेत्र कीने। झरै बार ऐसे। महामेघ

और जूझ गईं। शूरवीर सरपट भागने लगे और उन्हे अप्सराओ का विचार विस्मरण हो गया ॥ ६२४ ॥ शूरवीर रण और बाणों को छोड़ कर लका मे घुस गये। रामचन्द्र को अपने नेत्रों से देखकर तीव्र प्रलाप करने लगे ॥ ६२५ ॥ नरश्रेष्ठ राम ने सबको मार दिया और सबकी भुजाएँ काट डाली। तव सभी प्राणों को बचाकर भाग खड़े हुए और भागते हुए वीरो पर राम ने बाण-वर्षा की ॥ ६२६ ॥ सभी रानियाँ रोती हुई शीघ्रता से भागी और आकर राम के पैरो पर गिर पड़ी। राम यह सब दृश्य देखने लगे ॥ ६२७ ॥ रानियाँ धरती पर लोटने लगी और विभिन्न प्रकार विलाप करने लगी। वे अपने केश एव वस्त्रों को खीच-खीचकर तरह-तरह से चीखकर रोने लगी ॥ ६२८ ॥ वे वस्त्र फाड़ने लगीं और धूल सिर पर डालने लगी। वे दुःख मे धरती पर पछाड़ खाकर बिलखने लगी और लोटने लगी ॥ ६२९ ॥ ॥ रसावल छद ॥ जब महा सौन्दर्यशाली राम को सबने देखा तो सिर झुकाकर खड़ी हो गयी ॥ ६३० ॥ वे राम का स्वरूप देखकर मोहित हो उठी। चारो ओर राम की चर्चा छिड़ गई और उन सबने राम को लका वैसे ही दे दी जैसे करदाता राज्य को कर का भुगतान करता है ॥ ६३१ ॥ राम ने कृपादृष्टि से पूरित नेत्रो को झुकाया। राम को देखकर लोगो के नेत्रों से खुशी का जल ऐसे बहने

जैसे ॥ ६३२ ॥ छकी पेख नारी । सरं राम मारी । बिधी रूप रामं । महाँ धरम धामं ॥ ६३३ ॥ तजी नाथ प्रीतं । चुभे राम चीतं । रही चोर नैणं । कहैं मद्ध बैणं ॥ ६३४ ॥ सिया नाथ नीके । हरै हार जीके । लए जात चित्तं । मनो चोर बित्तं ॥ ६३५ ॥ सभै पाइ लागो । पतं द्रोह त्यागो । लगी धाइ पायं । सभै नारि आयं ॥ ६३६ ॥ महा रूप जाने । चितं (मू०ग्रं०२३६) चोर माने । चुभे चित्र ऐसे । सितं साइ कैसे ॥ ६३७ ॥ लगो हेम रूपं । सभै भूप भूपं । रँगे रंग नैण । छके देव गैणं ॥ ६३८ ॥ जिनै एक बारं । लखे रावणारं । रही मोहत ह्वैकं । लुभी देख कै कै ॥६३९॥ छकी रूप रामं । गए भूल धामं । कर्‌यो राम बोधं । महाँ जुद्ध जोधं ॥६४०॥ ॥ राम बाच मदोदरी प्रति ॥ ॥ रसावल छंद ॥ सुनो राज नारी । कहा भूल हमारी । चितं चित्त कीजै । पुनर दोश दीजै ॥ ६४१ ॥ मिलै मोहि सीता ।

लगा मानो बादलों की धारा बरस रही हो ॥ ६३२ ॥ काम से मोहित नारियाँ राम को देखकर प्रसन्न हो उठी और वे सब उस धर्म-धाम राम के स्वरूप में बिधकर रह गयी ॥ ६३३ ॥ वे अपने स्वामियो से प्रीति तोड़कर राम मे चित्त लगाने लगीं और एकटक निहारते हुए आपस मे बाते करने लगी ॥ ६३४ ॥ सीता के स्वामी राम सुन्दर है और मन को हरनेवाले है । वे चोर की तरह चित्त को चुराये लिये जा रहे है ॥ ६३५ ॥ रावण की स्त्रियो को कहा गया कि पति के द्रोहभाव को त्यागकर सभी राम के चरण स्पर्श करो । सभी नारियाँ आगे बढ़कर राम के पांव पड़ गयी ॥ ६३६ ॥ महारूप राम ने उनके मन के भाव को पहचान लिया । वे सबके हृदय मे चित्र के समान अकित हो गये और सभी उनका छाया के समान पीछा करने लगे ॥ ६३७ ॥ राम स्वर्ण-रूप वाले लग रहे थे और सभी राजाओं के राजा लग रहे थे । सबके नयन उनके प्रेम मे रँगे थे और देवता भी व्योम से उन्हे देखकर प्रसन्न हो रहे थे ॥ ६३८ ॥ जिसने एक बार भी राम को देखा वह उन पर मोहित होकर रह गई ॥ ६३९ ॥ वह राम के सौदर्य मे अपने घर-बाहर की भी सुधि भूल गयी और महाबली राम से वार्त्तालाप करने लगी ॥ ६४० ॥ ॥ राम उवाच मदोदरी के प्रति ॥ ॥ रसावल छद ॥ हे राजरानी ! (आपके पति का वध करने मे) मेरी कोई भूल नहीं है । आप भली प्रकार चित्त मे विचार कीजिए और तब मुझे दोष दीजिएगा ॥ ६४१ ॥ मुझे मेरी सीता वापस मिल जानी

चलै धरम गीता। पठ्यो पउन पूतं। हुतो अग्र दूतं ॥६४२॥ चल्यो धाइ कै कं। सिया सोध लै कं। हुती बाग माही। तरे ब्रिछ छाही ॥ ६४३ ॥ पर्‍यो जाइ पायं। सुनो सीय मायं। रिपं राम मारे। खरे तोहि द्वारे ॥ ६४४ ॥ चलो बेग सीता। जहा राम सीता। सभै शत्र मारे। भुअंभार उतारे ॥ ६४५ ॥ चली मोद कै कं। हनू संग लै कं। सिया राम देखे। उही रूप लेखे ॥ ६४६ ॥ लगी आन पायं। लखी राम रायं। कह्यो कउल नैनी। बिधुं बाक बैनी ॥ ६४७ ॥ धसो अग्ग मद्धं। तबै होइ सुद्धं। लई मान सीसं। रच्यो पावकीसं ॥ ६४८ ॥ गई पैठ ऐसे। घनं बिज्ज जैसे। स्रुतं जेम गीता। मिली तेम सीता ॥ ६४९ ॥ धसी जाइ कै कै। कढी कुंदन ह्वै कै। गरे राम लाई। कबं क्रित गाई ॥ ६५० ॥ सभो साध मानी। तिहू लोग

चाहिए, ताकि धर्म का कार्य आगे बढे। (इस प्रकार कहते हुए) राम ने पवनपुत्र को अग्रदूत की तरह भेजा ॥ ६४२ ॥ वह सीता को खोजते हुए वहाँ जा पहुँचा जहाँ सीता बाग मे वृक्ष के नीचे बैठी थी ॥ ६४३ ॥ हनुमान सीता के चरणों पर गिरते हुए बोले कि हे सीता माता ! राम ने शत्रु (रावण) को मार दिया है और अब वे तुम्हारे द्वार पर खडे है ॥ ६४४ ॥ हे सीता माता ! आप शीघ्रता से वहाँ चलें जहाँ रामजी है। उन्होने सभी शत्रुओ को मारकर पृथ्वी का भार हलका कर दिया है ॥ ६४५ ॥ सीता प्रसन्न होकर हनुमान को साथ लेकर चल पडी। सीता ने राम को देखा और पाया कि राम वैसे ही स्वरूपवान हैं ॥ ६४६ ॥ सीता राम के चरणो मे आ गिरी। राम ने उसकी ओर देखा तथा उस कमलनयनी तथा मधुरभाषिणी को इस प्रकार कहा ॥ ६४७ ॥ हे सीता ! तुम अग्नि-प्रवेश करो ताकि तुम शुद्ध हो सको। उसने इस बात को मान लिया और अग्नि-चिता तैयार की ॥ ६४८ ॥ वह इस प्रकार अग्नि में प्रविष्ट हो गई जैसे बादल मे बिजली दिखाई देती है। सीता इस प्रकार अग्नि के साथ एक हो गई जैसे श्रुतियाँ गीता के साथ एकात्म है ॥ ६४९ ॥ वह अग्नि मे प्रवेश कर गई और कुदन की तरह शुद्ध होकर बाहर निकली। राम ने उसे गले से लगा लिया और कवियो ने इस तथ्य का गुणानुवाद किया ॥ ६५० ॥ सभी साधुओ-संतो ने भी इस प्रकार की अग्नि-परीक्षा को स्वीकार किया और त्रिलोकी के जीव इस तथ्य को मान गये। विजय के बाजे बजने लगे और राम भी प्रसन्नतापूर्वक गर्जन

आनी। बजे जीत बाजे। तबै राम गाजे ॥ ६५१ ॥ लई जीत सीता। महाँ सुभ्र गीता। सभै देव हरखे। नभं पुहप बरखे ॥ ६५२ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतार बभीछन को लंका को राज दीबो मदोदरी समोध कीबो सीता मिलबो धयाइ समापतम ॥

॥ रसावल छंद ॥ तबै पुहपु पै कै। चड़े जुद्ध जै कै। सभै सूर गाजे। जयं गीत बाजे ॥ ६५३ ॥ चले मोद ह्वैकै। कपी बाहन लैकै। पुरी अउध पेखी। स्रुतं सुरग लेखी ॥ ६५४ ॥ ॥ मकरा छंद ॥ सिय लै सिएश आए। मंगल सु चार गाए। आनंद हिए बढाए। सहरो अवध जहाँ रे ॥ ६५५ ॥ धाई लुगाई आवै। भीरो न बार पावै। आकल खरे उघावै। भाखै ढोलन कहाँ रे ॥६५६॥ (मू०ग्रं०२४०) जुलफ अनूप जाँको। नागन कि स्याह बाँकी। अतभुत अदाइ ताँकी ऐसो ढोलन कहाँ है ॥ ६५७ ॥ सरवोस ही चमनरा। पर चुस्त जाँ वतनरा। जिन दिल हरा हमारा वह मनहरन कहाँ है ॥ ६५८ ॥ चित को चुराइ लीना। जालम फिराक

करने लगे ॥ ६५१ ॥ महाशुभ्र गीत के समान पवित्र सीता को जीत लिया गया। सभी देवता प्रसन्न होकर नभ से पुष्पवर्षा करने लगे ॥ ६५२ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार मे विभीषण को लका का राज्य देने, मदोदरी को सम्यक् ज्ञान देने तथा सीता-मिलन अध्याय की समाप्ति ॥

॥ रसावल छंद ॥ युद्ध मे विजयी होकर, तब (राम) पुष्पक (विमान) पर चढ़े। सभी शूरवीर प्रसन्नता से गर्जन करने लगे तथा विजय के बाजे बजने लगे ॥ ६५३ ॥ कपिगण वाहन को लेकर प्रसन्नतापूर्वक चले और उन्होने स्वर्ग के समान सुन्दर अवधपुरी का दर्शन किया ॥ ६५४ ॥ ॥ मकरा छद ॥ सीता को लेकर राम आए हैं और नगर में मंगलाचार हो रहा है। अवध शहर के हृदय मे आनन्द का वर्धन हो रहा है ॥ ६५५ ॥ औरते दौड़ी चली आ रही है, भीड का अन्त नही है, सभी व्याकुल खड़े है और पूछ रहे हैं कि प्रियतम (राम) कहाँ हैं ॥ ६५६ ॥ जिसकी केशराशि अनुपम है और नागिन की तरह काली हैं। जिसकी चितवन अद्‌भुत है, वह प्यारा कहाँ है ॥ ६५७ ॥ बाग के समान खिला रहनेवाला और अपने देश का सदैव स्मरण बनाए रखनेवाला, जिसने हमारा मन चुरा लिया है वह राम कहाँ है ॥ ६५८ ॥

दीना। जिन दिल हरा हमारा वह गुल चिहर कहाँ है ॥६५६॥ कोऊ बताइ दै रे। चाहो सु आन लै रे। जिन दिल हरा हमारा वह मन हरन कहाँ है ॥ ६६० ॥ माते मनो अमल के। हरिआ कि जा वतन ते। आलम कुशाइ खूबी वह गुल बिहर कहाँ है ॥ ६६१ ॥ जालम अदाइ लीए। खंजन खिसान कीए। जिन दिल हरा हमारा वह महबदन कहाँ है ॥ ६६२ ॥ जालम अदाइ लीने। जानुक शराब पीने। रुखसर जहान ताबाँ वह गुलबदन कहाँ है ॥ ६६३ ॥ जालम जमाल खूबी। रोशन दिमाग अखतर। पूर चश्त जाँ जिगर रा वह गुल चिहर कहाँ है ॥ ६६४ ॥ बालम बिदेश आए। जीते जुआन जालम। कामल कमाल सूरत वह गुल चिहर कहाँ है ॥ ६६५ ॥ रोशन जहान खूबी। जाहर कलीम हफ़तज। आलम खुसाइ जिलवा वह गुल चिहर कहाँ है ॥ ६६६ ॥ जीते बजंग जालम। कीने खतंग परा। पुहपक बिबान बैठे सीता

दिल को चुराकर जिसने हमें विरह दिया, वह फूल से चेहरे वाला मन-हरण कहाँ है ॥ ६५९ ॥ कोई बता दे और जो चाहे हमसे ले ले, पर यह जरूर पता दे दे कि वह मन-हरण राम कहाँ है ॥ ६६० ॥ अपने पिता की आज्ञा को ऐसे माना जैसे कोई नशा करनेवाला नशा करवानेवाले की हर बात को स्वीकार करता चला जाता है और वह वतन को छोड़कर चला गया। वह सारे संसार का सौंदर्य, गुलाब के चेहरेवाला (राम) कहाँ है ॥ ६६१ ॥ उसकी जालिम अदाओ से खजन पक्षी भी ईर्ष्या करते थे। जिसने हमारे चित्त को हर लिया, वह खिले चेहरे वाला (राम) कहाँ है ॥ ६६२ ॥ उसकी अदाएँ मदमस्त व्यक्ति की अदाएँ थी। उसके चेहरे की ताबेदारी करनेवाला सारा संसार है। कोई बताए कि वह फूल-से चेहरे वाला कहाँ है ॥ ६६३ ॥ उसके चेहरे की सौम्यता विशिष्ट थी और वह बुद्धि-चातुर्य से भी पूर्ण था। वह हृदय के प्रेम की शराब से भरे पात्र के समान तथा फूल से चेहरे वाला (राम) कहाँ है ॥ ६६४ ॥ अत्याचारियो को जीतकर प्रियतम विदेश से आए हैं। वह सर्वकलाओं मे पूर्ण फूल के समान चेहरा कहाँ है ॥ ६६५ ॥ उसकी खूबियाँ सारे जहान मे जानी जाती है और वह धरती के सातों खडो मे प्रसिद्ध है। जिसका जलवा सारे संसार मे फैला हुआ है, वह फूल के चेहरे वाला कहाँ है ॥ ६६६ ॥ जिसने अपने बाणो के वार से अत्याचारियो को जीता, पुष्पक विमान पर बैठनेवाला वह सीता के साथ रमण करनेवाला कहाँ है ॥ ६६७ ॥

रवन कहाँ है ॥ ६६७ ॥ मादर खुसाल खातर । कीने हज़ार छावर । मातुर सिता वधाई वह गुल चिहर कहाँ है ॥ ६६८ ॥

॥ इति स्री राम अवतार सीता अयुधिआ आगम नाम धिआइ समापतम ॥

अथ माता मिलणं ॥

॥ रसावल छंद ॥ सुने राम आए । सभै लोग धाए । लगे आन पायं । मिले राम रायं ॥ ६६९ ॥ कोऊ चउर ढारैं । कोऊ पान खुआरैं । परे मात पायं । लए कंठ लायं ॥ ६७० ॥ मिलै कंठ रोवैं । मनो शोक धोवैं । करैं बीर बातैं । सुने सरब मातैं ॥ ६७१ ॥ मिले लच्छ मातं । परे पाइ भ्रातं । कर्यो दान एतो । गनै कउन केतो ॥६७२॥ मिले भरथ मातं । कही सरब बातं । धनं मात तो को । अरिणी कीन मोको ॥ ६७३ ॥ कहा दोश तेरै । लिखी (मू०ग्रं०२४१) लेख मेरै । हुनी हो सु होई । कहै कउन

जिसने माँ को खुश करने के लिए हजारो खुशियाँ न्योछावर कर दी, वह कहाँ है । माँ सीता को भी आज बधाई है, परन्तु कोई यह तो बताए कि वह फूल से चेहरे वाला कहाँ है ॥ ६६८ ॥

॥ इति श्री रामावतार-सीता का अयोध्या-आगमन अध्याय समाप्त ॥

माता-मिलाप (-कथन) प्रारम्भ

॥ रसावल छद ॥ जब लोगो ने सुना कि राम वापस आ गए हैं, तो सभी लोग दौड़े और राम के पाँव आ पड़े । राम उन सबसे मिले ॥ ६६९ ॥ कोई चँवर डुलाने लगा, कोई पान खिलाने लगा । रामजी माता के चरणो पर गिर पड़े और माताओ ने उन्हें हृदय से लगा लिया ॥ ६७० ॥ गले मिलकर के ऐसे रो रहे थे मानो सारे शोक को धो रहे हों । वीर राम बाते करने लगे जिसे सब माताएँ सुनने लगी ॥ ६७१ ॥ फिर वे लक्ष्मण की माँ से मिले और भरत-शत्रुघ्न आदि भाइयो ने उनके पाँव छुए । मिलाप की खुशी मे इतना दान हुआ जिसे गिना नही जा सकता ॥ ६७२ ॥ फिर राम भरत की माता (कैकेयी) से मिले और उनको सब बाते बतायी । राम ने कहा कि हे माता (कैकेयी) ! आपको धन्यवाद है, क्योकि आपने मुझे ऋण से उऋण कर दिया है ॥ ६७३ ॥ इसमे आपका कोई दोष नही है, क्योकि मेरे

कोई ॥ ६७४ ॥ करो बोध मातं । मिल्यो फेरि भ्रातं । सुन्यो भरथ धाए । पगं सीस लाए ॥ ६७५ ॥ भरे राम अंकं । मिटी सरब शंकं । मिल्यो शत्र हंता । सरं शास्त्र गंता ॥ ६७६ ॥ जटं धूर झारी । पगं राम रारी । करी राज अरचा । दिजं बेद चरचा ॥ ६७७ ॥ करें गीत गानं । भरे वीर मानं । दियो राम राजं । सरे सरब काजं ॥ ६७८ ॥ बुलै बिप्प लीने । श्रुतोचार कीने । भए राम राजा । बजे जीत बाजा ॥ ६७९ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ चहूँ चक्क के छत्रधारी बुलाए । धरे अत्र नीके पुरी अउध आए । गहे राम पायं परम प्रीत कै कै । मिले चत्र देसी बड़ी भेट दै कै ॥ ६८० ॥ दए चीन माचीन चीनंत देसं । महाँ सुंदरी चेरका चार केसं । मनं मानकं हीर चीरं अनेकं । किए खोज पइयै कहूँ एक एकं ॥ ६८१ ॥ मनं मुत्तियं मानकं बाज राजं । दए बंतपंती सजे सरब साजं । रथं बेसटं हीर चीरं अनंतं । मनं मानकं बद्ध रद्धं दुरंतं ॥ ६८२ ॥ किते स्वेत ऐरावतं तुल्लि

भाग्य में ऐसा ही लिखा था । जो होना होता है होकर रहता है, इसका वर्णन कोई नही कर सकता ॥ ६७४ ॥ माताओ को इस प्रकार सान्त्वना दी और भाई भरत से मिले । भरत ने सुना तो वह दौड़ा और राम के पैरों को उसने शीश से स्पर्श किया ॥ ६७५ ॥ राम ने उसे गले से लगाया और सभी शंकाओं का निवारण किया । तब वे शस्त्र और शास्त्रों के ज्ञाता शत्रुघ्न से मिले ॥ ६७६ ॥ भाइयों ने राम के पैरो, जटाओं आदि की धूल साफ की । राजकीय तरीके से पूजा-अर्चन किया तथा ब्राह्मणों ने वेद-पाठ किया ॥ ६७७ ॥ सभी वीरवर स्नेह से भरकर गीतगान करने लगे । राम को राज्य दिया गया और सभी कार्य इस प्रकार सपूर्ण हुए ॥ ६७८ ॥ विप्रो को बुलाया गया और वेद-मन्त्रोच्चार के साथ राम को राजा बनाया गया । (चारो ओर) विजय की ध्वनि देनेवाले बाजे बजने लगे ॥ ६७९ ॥ ॥ भुजग प्रयात छंद ॥ चारों दिशाओं के छत्रधारी राजा बुलाए गए और वे सब अवधपुरी पहुँचे । परम प्रेम का प्रदर्शन करते हुए वे राम के पैरो मे पड़े और बडी-बड़ी भेटे देकर आकर मिले ॥ ६८० ॥ राजाओ ने देशों और विदेशों की निशानियाँ तथा चारु केशो वाली सुन्दरी दासियाँ प्रस्तुत की । खोजने पर भी न मिलनेवाले मोती, मणियाँ एव वस्त्र प्रस्तुत किये ॥ ६८१ ॥ सुन्दर घोड़े, मणि, माणिक और मोती तथा हाथी भेंट मे दिए । रथ,

वंती । दए मुत्तयं साज सज्जे सुपंती । किते बाजराजं जरी जीन संगं । नचै नट्ट मानो मचे जंग रंगं ॥ ६८३ ॥ किते पक्खरे पील राजा प्रमाणं । दए बाज राजी सिराजी न्रिपाणं । दई रकत नीलं मणी रंग रंगं । लख्यो राम को अत्रधारी अभंगं ॥ ६८४ ॥ किते पशम पाटंबरं स्वरण बरणं । मिले भेट लै भाँति भाँतं अभरणं । किते परम पाटंबरं भान तेजं । दए सीअ धामं सभो भेज भेजं ॥ ६८५ ॥ किते भूखणं भान तेजं अनंतं । पठे जानकी भेट दैवै दुरंतं । घने राम मातान की भेज भेजे । हरे क्रित्त के जाहि हेरे कलेजे ॥ ६८६ ॥ धमं चक्र चक्रं फिरी राम दोही । मनो ब्योत बागो तिमं सीअ सोही । पठै छत्र दैवै छितं छोण धारी । हरे सरब गरबं करे पुरख भारी ॥ ६८७ ॥ कट्यो काल एवं भए राम राजं । फिरी आन रामं सिरं सरब राजं । फिर्यो जैत पत्रं सिरं सेत छत्रं । करे राज आगिआ धरैं बीर अत्र ॥ ६८८ ॥ दयो

हीरे, बस्त्र और अमूल्य मणि-माणिक प्रस्तुत किये गए ॥ ६८२ ॥ कही श्वेत ऐरावत मोतियो से सजाकर दिए जा रहे है, कही घोड़े जरी वस्त्र की ज़ीन कसे हुए इस प्रकार नृत्य कर रहे है मानो युद्ध का दृश्य प्रस्तुत कर रहे हों ॥ ६८३ ॥ कही कबचधारी पीलवान दिखाई दे रहे है और कही नृप घोड़े दिए जा रहे है । विभिन्न रंगो की लाल और नीली मणियाँ देनेवाले राजाओं ने अस्त्र-शस्त्रधारी राम के दर्शन किए ॥ ६८४ ॥ कही राजा स्वर्ण के रग के रेशमी वस्त्र और भाँति-भाँति के आभूषण लेकर मिल रहे हैं । कही सूर्य के समान चमकनेवाले वस्त्र सीता के निवास की ओर भेजे जा रहे हैं ॥ ६८५ ॥ कही सूर्य के समान चमकनेवाले आभूषण जानकी की ओर भेजे जा रहे है । कितने ही आभूषण, बस्त्रादि राम की माताओ की ओर भेजे गए, जिन्हे देखकर कितनो का ही हृदय ललचा उठा है ॥ ६८६ ॥ चारो ओर छत्र घुमा-घुमाकर राम की उद्घोषणाएँ सुनाई गयी और सीता भी एक सजे-सँवरे बाग की तरह शोभायमान होने लगी । राजाओ को राम का छत्र देकर दूर-दूर भेजा गया । उन्होने सभी का गर्व खडित कर भारी-भारी उतसव किये ॥ ६८७ ॥ इस प्रकार राम-राज्य मे काफी समय बीत गया और राम अपने शौर्य से राज्य करने लगे । सभी ओर बिजयपत्र भेज दिए गए और राजाज्ञा करते हुए श्वेत छत्र धारण कर राम शोभायमान होने लगे ॥ ६८८ ॥ एक-एक व्यक्ति को अनेको प्रकार से धन-धान्य दिया गया और लोगो ने

एक एकं अनेकं प्रकारं। लखे सरब लोकं सही रावणारं। सही बिशन देवारदन द्रोह हरता। चहूँ चक्क जान्यो सिया नाथ भरता (मू०ग्रं०२४२) ॥ ६८९ ॥ सही बिशन अउतार कै ताहि जान्यो। सभो लोक ख्याता बिधाता पछान्यो। फिरी चार चक्कं चतुर चक्क धारं। भयो चक्रवरती भुअं रावणारं ॥ ६९० ॥ लख्यो परम जोगिंद्रणो जोग रूपं। महादेव देवं लख्यो भूप भूपं। महाँ शत्र शत्रं महाँ साध साधं। महाँ रूप रूपं लख्यो ब्याध बाधं ॥ ६९१ ॥ त्रियं देव तुल्लं नरं नार नाहं। महाँ जोध जोधं महाँ बाह बाहं। स्रुतं बेद करता गणं रुद्र रूपं। महाँ जोग जोगं महाँ भूप भूपं ॥ ६९२ ॥ परं पारगंता शिवं सिद्ध रूपं। बुधं बुद्धिदाता रिध रिद्ध कूप। जहाँ भाव कै जेण जैसो बिचारे। तिसी रूप सौ तउन तैसे निहारे ॥ ६९३ ॥ सभो शस्त्रधारी लहे शस्त्र गता। दुरे देव द्रोही लखे प्राण हता। जिसी भाव सो जउन जैसे बिचारे। तिसी रंग कै काछ काछे निहारे ॥ ६९४ ॥ ॥ अनंत तुका भुजंग प्रयात छंद ॥ किते काल बीत्यो भयो राम राज। सभं

राम के वास्तविक स्वरूप को देखा। राम को विष्णु एवं अन्य देवों के द्रोहियो का नाश करनेवाले और सीता के नाथ के रूप में चारो दिशाओ मे जाना जाने लगा ॥ ६८९ ॥ सबने उन्हे विष्णु के अवतार के रूप मे तथा सभी लोको मे प्रसिद्ध विधाता के रूप मे जाना। चारो दिशाओ मे राम के यश की धारा बह निकली और रावण के शत्रु राम को चक्रवर्ती सम्राट् की तरह जाना जाने लगा ॥ ६९० ॥ वह योगियो मे परमयोगी, देवो मे महादेव और राजाओ मे सम्राट् दिखाई पडने लगे। शत्रुओ के महाशत्रु और सतो मे परम सत के रूप मे जाने जाने लगे। वह सर्व व्याधियो का नाश करनेवाले महान रूपवान थे ॥ ६९१ ॥ स्त्रियो के लिए वह देवतुल्य और पुरुषो के लिए वह सम्राट् थे। योद्धाओ के लिए परम योद्धा और शस्त्रधारियो के लिए महान् शस्त्रधारी थे ॥ ६९२ ॥ वे मुक्तिदाता, कल्याणकारी, सिद्धस्वरूप, बुद्धिप्रदाता और ऋद्धियो-सिद्धियो के भडार थे। जिसने उसे जिस भावना से देखा, उसने उसे उसी स्वरूप मे दर्शन दिए ॥ ६९३ ॥ सभी शस्त्रधारी उसे शस्त्रो मे गति रखनेवाले के रूप मे देखने लगे और सभी देवद्रोही राक्षस उस प्राणहता को देखकर छिप गए। जिसने उसका जिस भाव से विचार किया, राम उसे उसी रग मे दिखाई दिए ॥ ६९४ ॥ ॥ अनत तुका भुजग प्रयात छद ॥ उस प्रकार राम-राज्य

शत्र जीते महा जुद्ध माली। फिर्यो चक्र चारो दिसा मद्ध रामं। भयो नाम ताते महाँ चक्रवरती ॥ ६९५ ॥ सभै बिप्प आगस्त ते आदि लै कै। भ्रिगं अंगुरा ब्यास ते लै बिशिष्टं। बिस्वामित्र अउ बालमीकं सु अत्रं। दुरबाशा सभै कशप ते आद लै कै ॥ ६९६ ॥ जबै राम देखैं सभै बिप्प आए। पर्यो धाइ पायं सिया नाथ जगतं। दयो आसनं अरघु पाद रघुतेणं। दई आसिखं मौननेसं प्रसिन्यं ॥ ६९७ ॥ भई रिख रामं बडी ग्यान चरचा। कहो सरब जौपै बढै एक ग्रंथा। बिदा बिप्प कीने घनी दच्छना दै। चले देस देसं महाँ चित्त हरखं ॥ ६९८ ॥ इही बीच आयो म्रितं सून बिप्पं। जिऐ बाल आजं नही तोहि स्रापं। सभै राम जानी चितं ताहि बाता। दिसं बारणी ते बिबाणं हकार्यो ॥ ६९९ ॥ हुतो एक शूद्रं दिशा उत्र मद्धं। झुलै कूप मद्ध पर्यो औध मुक्खं। महाँ उग्र ते जाप पलयात उग्र। हन्यो ताहि रामं असं आप हत्थं ॥ ७०० ॥ जियो ब्रह्मपुत्रं हर्यो ब्रह्म सोगं। बढी

को पर्याप्त समय बीत गया और महायुद्ध कर-करके सभी शत्रुओ को जीत लिया गया। चारो दिशाओं मे राम ने भ्रमण किया और इस प्रकार उनका नाम चक्रवर्ती सम्राट् हो गया ॥ ६९५ ॥ अगस्त्य, भृग, अगिरा, व्यास, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि, अत्रि ऋषि एव दुर्वासा तथा कश्यप आदि ऋषि राम के यहाँ पहुँचे ॥ ६९६ ॥ जब राम ने सभी विप्रो को अपने यहाँ आये देखा तो सीता एव जगत के नाथ राम ने दौड़कर उनमे पाँव छुए। उनको आसन दिया और उनके चरण धोये तथा महामुनियो ने प्रसन्न हो उन्हें आशीर्वाद दिया ॥ ६९७ ॥ ऋषियो और श्रीराम मे वृहद् ज्ञान-चर्चा चली और यदि उन सबका वर्णन किया जाय तो यह ग्रन्थ और बढ जायेगा। सब विप्रो को पर्याप्त दक्षिणा देकर विदा किया गया और वे प्रसन्न मन से देश-देशान्तरो को चल दिए ॥ ६९८ ॥ इसी दौरान एक विप्र मृतक पुत्र को लेकर आया और राम से कहने लगा कि यदि मेरा बालक जीवित नही हुआ तो मैं तुम्हे श्राप दे दूँगा। श्रीराम ने अपने मन मे सारी बात को समझ लिया और पश्चिम दिशा की ओर अपना विमान लेकर चल पड़े ॥ ६९९ ॥ एक शूद्र उत्तर (पश्चिम) दिशा मे कुएँ के बीच औधा लटका हुआ था और महान उग्र तप कर रहा था। राम ने अपने हाथो से उसका वध किया ॥ ७०० ॥ ब्राह्मण का पुत्र जीवित हो उठा और ब्राह्मण का शोक समाप्त हो गया। श्रीराम की कीर्ति चारों

कीर्त रामं चतुर कुंट मद्धं । कर्यो दस सहंस्र लउ राज अजधं । फिरी चक्र चारो बिखै राम दोही ॥ ७०१ ॥ जिणे देस देसं नरेशं त रामं । महाँ जुद्ध जेता तिहूँ लोक जान्यो । बयो मंत्री अत्रं महाभ्रात भरथं । कियो (मू०ग्रं०२४३) सैन नाथं सुमित्राकुमारं ॥ ७०२ ॥ ॥ म्रितगत छंद ॥ सुमति महा रिख रघुबर । दुंदभ बाजति दरदर । जग की अस धुन बर बर । पूर रही धुन सुरपुर ॥ ७०३ ॥ सुधर महा रघुनंदन । जगपत मुन गन बंदन । धरधर लौ नर चीने । सुख वै दुख बिन कीने ॥ ७०४ ॥ अर हर नर कर जाने । दुख हर सुख कर माने । पुर धर नर बरसे है । रूप अनूप अभै है ॥ ७०५ ॥ ॥ अनका छंद ॥ प्रभू है । अजू है । अजै है । अभै है ॥ ७०६ ॥ अजा है । अता है । अलै है । अजै है ॥ ७०७ ॥ ॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ बुल्यो बत्र भ्रातं सुमित्राकुमारं । कर्यो माथुरेसं तिसे रावणारं । तहाँ एक दइतं लवं उग्र तेजं । दयो ताहि अप्पं शिवं सूल भेजं ॥ ७०८ ॥

दिशाओ में फैल गई । इस प्रकार चारो दिशाओं में राम की कीर्ति फैल गई तथा उन्होने दस हजार वर्ष तक राज्य किया ॥ ७०१ ॥ देश-देशान्तरो के राजाओ को राम ने जीता और त्रिलोक में उन्हे महाविजेता के रूप मे जाना गया । भरत को उन्होने मंत्री बनाया और सुमित्रा-कुमारो— लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न को सेनापति बनाया ॥ ७०२ ॥ ॥ मृतगत छंद ॥ महा ऋषि रघुवीर के द्वार पर दुन्दुभि बज रही है और सारे जगत तथा घर-द्वार और देवलोक मे उनकी जय-जयकार होने लगी ॥ ७०३ ॥ रघुनन्दन के नाम जाने जानेवाले श्रीराम जगत्पति और मुनिगणो के वन्दनीय है । उन्होने सारी धरती पर से पहचान-पहचानकर लोगो को सुखी किया और उनके दुःख दूर किए ॥ ७०४ ॥ सभी लोगो ने उन्हे शत्रुनाशक और दुःख को हरकर सुख देनेवाले के रूप मे माना । सभी अयोध्यापुरी उनके अनुपम स्वरूप एव अभय वरदान के कारण सुखपूर्वक रह रही है ॥ ७०५ ॥ ॥ अनका छंद ॥ वे राम प्रभु है, अनन्त हैं, अजेय हैं और अभय हैं ॥ ७०६ ॥ वे प्रकृति के स्वामी है, पुरुष है, समस्त जगत है और परब्रह्म है ॥ ७०७ ॥ ॥ भुजग प्रयात छंद ॥ एक दिन सुमित्रा के पुत्र को श्रीरामचन्द्र जी ने बुलाया और उससे कहा कि दूर देश मे एक लवण नामक उग्र दैत्य रहता है, जिसे शिव का त्रिशूल प्राप्त है ॥ ७०८ ॥ राम ने मत्र पढ़कर एक तीर दिया जो कि उस धर्मधाम

पठ्यो तीर मंत्रं दियो एक रामं। महाँ जुद्ध माली महाँ धरम धामं। शिवं सूल हीणं जबै शत्र जान्यो। तबै संगि ता कै महाँ जुद्ध ठान्यो॥ ७०९॥ लयो मंत्र तीरं चल्यो न्याइ सीसं। त्रिपुर जुद्ध जेता चल्यो जाण ईसं। लख्यो सूल हीणं रिपं जउण कालं। तबै कोप मंड्यो रणं बिकरालं॥ ७१०॥ भजे घाइ खायं अघायंत सूरं। हसे कंक बंकं घुमी गैण हूरं। उठे टोप ढुक्कं कमाणं प्रहारे। रणं रोस रज्जे महाँ छत्र धारे॥ ७११॥ फिर्यो अप दइतं महा रोस कै कै। हणे राम भ्रातं बहै बाण लै कै। रिपं नास हेतं दियो राम अप्पं। हण्यो ताहि सीसं द्रुगा जाप जप्पं॥ ७१२॥ गिर्यो झूम भूमं अघूम्यो अरि घायं। हण्यो शत्र हंता तिसै चउप चायं। गणं देव हरखे प्रबरखंत फूलं। हत्यो दैत द्रोही मिट्यो सरब सूलं॥ ७१३॥ लवं नासु रैयं लवं कीन नासं। सभै संत हरखे रिपं भे उदासं। भजै प्रान लै लै तज्यो नगर बासं। कर्यो माथुरेसं पुरीवा नवासं॥ ७१४॥ भयो माथुरेसं

की ओर से महायुद्ध करने के लिए सक्षम था। राम ने कहा कि जब शत्रु को शिव के त्रिशूल से विहीन देखना तभी उससे युद्ध करना॥ ७०९॥ शत्रुघ्न अभिमन्त्रित तीर लेकर और सिर झुकाकर चल पड़े और ऐसा लग रहा था मानो वह तीनो लोको के विजेता के रूप मे जा रहे हों। जब उन्होने शत्रु को त्रिशूल-विहीन देखा, तब अवसर पा क्रोधित होकर उससे युद्ध प्रारम्भ कर दिये॥ ७१०॥ शूरवीर घाव खाकर भागने लगे, कौवे लाशों को देख काँव-काँव करने लगे और आकाश मे अप्सराएँ घूमने लगी। बाणों के प्रहार से सिरस्त्राण फटने लगे और महा छत्रधारी राजा युद्ध में क्रोधित होने लगे॥ ७११॥ महाक्रोधित होकर वह दैत्य घूमा और उसने राम के भाई पर बाण-वर्षा की। शत्रु के नाश के लिए जो बाण राम ने दिया था, उसी को दुर्गा का जाप जपकर शत्रुघ्न ने दैत्य के ऊपर चलाया॥ ७१२॥ घायल होकर शत्रु घूमकर भूमि पर गिर पड़ा तथा उसे शत्रुघ्न ने मार डाला। देवता आकाश में प्रसन्न हो उठे और फूलों की वर्षा करने लगे। इस द्रोही दैत्य के मारे जाने से उनका सर्व कष्ट मिट गया॥ ७१३॥ लवण नामक असुर का नाश होने से सभी सन्त प्रसन्न हो उठे तथा शत्रु उदास हो गए और नगर को त्याग भाग खड़े हुए। शत्रुघ्न ने मथुरा नामक पुरी मे निवास किया॥ ७१४॥ लवण का नाश कर शत्रुघ्न ने मथुरा का राज्य किया और सभी शस्त्रधारी उनको

लवंनास्त्र हंता। सभै शस्त्रगामी सुभं शस्त्र गंता। भए दुष्ट दूरं करूरं सु ठामं। कर्यो राज तैसो जिमं अउध रामं॥ ७१५॥ कर्यो दुष्ट नासं पपातंत सूरं। उठी जै धुनं पुर रही लोग पूर। गई पार सिधं सु बिधं प्रहारं। सुन्यो चक्र चार लवं लावणार॥ ७१६॥

अथ सीता को बनबास दीबो॥

भई एम तउनै इतै (मू०ग्रं०२४४) रावणारं। कही जानकी सो सु कत्थं सुधारं। रचे एक बागं अभिरामं सु सोभं। लखे नंदनं जउन की क्रांत छोभं॥ ७१७॥ सुनी एम बानी सिया धरम धामं। रच्यो एक बागं महाँ अभरामं। मणी भूखितं हीर चीरं अनंतं। लखे इंद्र पत्थं लजे स्रोभवंतं॥ ७१८॥ मणी माल बज्रं शशोभाइमानं। सभै देव देवं दुती सुरग जानं। गए राम ता मो सिया संग लीने। किती कोट सुंदरी सभै संगि कीने॥ ७१९॥ रच्यो एक मंद्रं महा सुभ्र ठामं।

शुभकामना देने लगे। सभी दुष्टो को उन्होने समाप्त कर दिया और उसी भाँति राज्य किया, जिस भाँति अवध मे राम राज्य कर रहे थे॥ ७१५॥ दुष्ट का नाश करते हुए शत्रुघ्न के लिए सभी दिशाओ और लोगो से जय-जयकार की ध्वनि उठने लगी। उसकी प्रसिद्धि चारों दिशाओ मे भली प्रकार फैल गई और लोगो ने बड़े उत्साह से यह जाना कि लवणासुर मार डाला गया है॥ ७१६॥

सीता को वनवास

उधर तो इस प्रकार हुआ और इधर राम ने जानकी को प्रेम से कहा कि एक उद्यान की रचना की जाय, जिसको देखकर नन्दन वन की भी कान्ति क्षीण हो जाय॥ ७१७॥ धर्मधाम राम की आज्ञा को सुनकर एक बहुत ही सुन्दर बाग की रचना की गई। वह बाग मणियों एव हीरो से सुशोभित प्रतीत होता था और उसके सामने इन्द्र का उद्यान लजायमान होता था॥ ७१८॥ मणियो, मालाओ और हीरो से वह इस प्रकार सुशोभित था कि सभी देवताओ ने उसे दूसरा स्वर्ग मान लिया था। रामचन्द्रजी अनेको सुन्दरियो और सीता को लेकर उसमे जा बसे॥ ७१९॥ वहाँ एक सुन्दर महल बनवाया गया, जिसमे धर्मधाम राम शयन करते थे।

कर्‌यो राम सैनं तहाँ धरम धामं। करी केल खेलं सु बेलं सु भोगं। हुतो जउन कालं समै जैस जोगं॥ ७२०॥ रह्‌यो सीअ गरभं सुन्यो सरब बामं। कहे एम सीता पुनर बंन रामं। फिर्‌यो बाग बागं बिदा नाथ दीजै। सुनो प्रान प्यारे इहै काज कीजै॥ ७२१॥ दियो राम संग सुमित्राकुमार। दई जानकी संग ता के सुधारं। जहाँ घोर सालं तमालं बिक्रालं। तहाँ सीअ को छोर आयो उतालं॥ ७२२॥ बनं निरजनं देख कै कै अपारं। बनंबास जान्यो दयो रावणारं। रुरोदं सुरं उच्चं पपातंत प्रानं। रणं जेम वीरं लगे मरम बामं॥ ७२३॥ मुनी बालमीकं स्रुतं दीन बानी। चल्यो चउक चित्तं तजी मोन धानी। सिया संगि लीने गयो धाम आपं। मनो बच्च करमं दुरगा जाप जापं॥ ७२४॥ भयो एक पुत्रं तहाँ जानकी तैं। मनो राम कीनो दुती राम ते लैं। वहै चार चिह्नं वहै उग्र तेजं। मनो अप्प अंसं दुती काढि भेजं॥ ७२५॥ दियो एक पालं सु बालं रिखीसं। लसै चंद्र रूपं किधो द्‌योस ईसं। गयो एक दिवसं रिखी संधियानं। लयो बाल संगं गई सीअ

वही पर वे अनेक प्रकार के भोग-विलास समयानुसार किया करते थे॥ ७२०॥ कुछ समय पश्चात् सभी स्त्रियो ने सुना कि सीता गर्भवती है। तब सीता ने राम से कहा कि मैंने इस उद्यान का बहुत भ्रमण कर लिया है। हे प्राणनाथ! मुझे अब बिदा दीजिए॥ ७२१॥ राम ने लक्ष्मण को सीता के साथ कर दिया और भेज दिया। लक्ष्मण उसे, जहाँ बीहड वन प्रदेश मे साल और तमाल के विकराल वृक्ष थे, छोड़ आये॥ ७२२॥ निर्जन वन में अपने-आप को पाकर सीता ने समझ लिया कि राम ने उन्हे वनवास दिया है। वहाँ ऊँचे स्वर मे प्राणघातक ध्वनि से इस प्रकार रुदन करने लगी, मानो युद्धस्थल मे किसी वीर के मर्मस्थल पर बाण लग गया हो॥ ७२३॥ मुनि वाल्मीकि ने आवाज सुनी और मौन को त्यागते हुए चकित हो पुकारते हुए सीता की ओर चले। वह मन, वचन और कर्म से दुर्गा का जाप करते सीता को साथ ले अपने घर गये॥ ७२४॥ वहाँ जानकी को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो बिल्कुल दूसरा राम ही दिखाई पड़ता था। उसका वही वर्ण और चिह्न तथा तेज था और वह ऐसा लग रहा था, मानो राम ने ही अपना अंश अपने मे से निकालकर दे दिया हो॥ ७२५॥ ऋषिवर ने उस बालक का पालन किया जो चन्द्र के समान था और दिन मे सूर्य के समान दिखाई पड़ता था। एक दिन

नानं ॥ ७२६ ॥ रही जात सीता महाँ मोन जागे। बिनाँ बाल पालं लख्यो शोकु पागे। कुशा हाथ लै कै रच्यो एक बालं। तिसी रूप रंगं अनूपं उतालं ॥ ७२७ ॥ फिरी नाइ सीता कहा आन देख्यो। उही रूप बालं सुपालं बसेख्यो। क्रिपा मोन राजं घनी जान कीनो। बुतो पुत्र ता ते क्रिपा जान दीनो ॥ ७२८ ॥ (मू०ग्रं०२४५)

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतार दुइ पुत्र उतपंने ध्याइ समापतम ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ उतै बाल पालै इतै अउध राजं। बुले बिप्प जग्यं तज्यो एक बाजं। रिपं नास हंता दयो संग ताकै। बडी फउज लीने चल्यो संग वाके ॥ ७२९ ॥ फिर्यो देस देसं नरेशाण बाजं। किनी नाहि बाध्यो मिले आन राजं। महाँ उग्र धनियाँ बडी फउज लै कै। परे आन पायं बडी भेट दै कै ॥ ७३० ॥ दिशा चार जीती फिर्यो फेरि बाजी। गयो बालमीकं रिखिसथान ताजी। जबै भाल पत्रं लबं छोर बाच्यो।

ऋषि संध्या-पूजा के लिए और सीता भी बालक को लेकर स्नान के लिए गई ॥ ७२६ ॥ जब ऋषि सीता के जाने के बाद समाधि से जगे तो बालक को वहाँ न पा शोकमग्न हुए। उन्होने हाथ मे कुशा पकड़ते हुए पहले बालक के ही रूप-रंग वाले बालक के समान शीघ्रता से एक बालक की रचना कर दी ॥ ७२७ ॥ सीता जब वापस आई तो उसने देखा कि उसी स्वरूपवाला एक बालक वहाँ विराजमान है। सीता ने कहा कि हे मुनिवर ! आपने मुझ पर बहुत कृपा की है और कृपापूर्वक दो पुत्रों का दान मुझे दिया है ॥ ७२८ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार मे दो पुत्रो की उत्पत्ति का अध्याय समाप्त ॥

॥ भुजग प्रयात छद ॥ उधर बालको का पालन-पोषण होने लगा और इधर अवधनरेश राम ने विप्रो को बुलाकर यज्ञ किया और यज्ञ के लिए एक अश्व छोड़ा। शत्रुघ्न एक बहुत बड़ी सेना ले उस अश्व के साथ चले ॥ ७२९ ॥ देश-देशान्तरो के राजाओं के पास वह अश्व पहुँचा, परन्तु किसी ने भी उसे नही बांधा। बड़े-बड़े राजा बड़ी-बड़ी सेनाओ-समेत शत्रुघ्न के पाँव-तले आ गिरे ॥ ७३० ॥ चारो दिशाओ मे घूमता हुआ अश्व वाल्मीकि ऋषि के आश्रम मे भी पहुँचा। जब अश्व के मस्तक पर लिखा पत्रक लव और उसके साथियो ने पढ़ा तो वे रौद्ररूप धारण करते

बडो उग्र धंन्या रसं रुद्र राच्यो ।। ७३१ ।। ब्रिछं बाज बाँध्यो लख्यो शस्त्रधारी । बडो नाद कै सरब सैना पुकारी । कहा जात रे बाल लीने तुरंग । तजो नाहि याको सजो आन जंगं ।। ७३२ ।। सुण्यो नाम जुद्धं जबै स्त्रउण सूरं । महा शस्त्र सञ्जडी महाँ लोह पूरं । हठे बीर हाठं समै शस्त्र लै कै । पर्यो मद्धि सैणं बडो नादि कै कै ।। ७३३ ।। भलीभाँत मारे पचारे सु सूरं । गिरे जुद्ध जोधा रही धूर पूरं । उठी शस्त्र झारं अपारंत बीरं । भ्रमे रुंड मुंडं तनं तच्छ तीरं ।।७३४।। गिरे लुत्थ पत्थं सु जुत्थंत बाजी । भ्रमै छूछ हाथी बिना स्वार ताजी । गिरे शस्त्र हीणं बिअस्त्रंत सूरं । हसे भूत प्रेतं भ्रमी गण हूरं ।। ७३५ ।। घणं घोर नीशाण बज्जे अपारं । बहे वीर धीरं उठी शस्त्र झारं । चले चार चित्रं बचित्रंत बाणं । रणं रोस रज्जे महाँ तेजबाणं ।। ७३६ ।। ।। चाचरी छंद ।। उठाई । दिखाई । नचाई । चलाई ।। ७३७ ।। भ्रमाई । दिखाई । कँपाई । चलाई ।। ७३८ ।। कतारी । अपारी । प्रहारी । सुनारी ।। ७३९ ।। पचारी । प्रहारी ।

हुए क्रोधित हो उठे ।। ७३१ ।। उन्होने अश्व को वृक्ष के साथ बाँध दिया और शत्रुघ्न की सारी सेना ने उसे देखा । सेना के वीरो ने पुकारकर कहा कि हे बालक ! इस अश्व को कहाँ ले जा रहे हो । इसे छोड़ो नही तो हमसे युद्ध करो ।। ७३२ ।। युद्ध का नाम जब उन शस्त्रधारियो ने सुना तो उन्होने वृहद्-रूप से बाण-वर्षा की । सभी वीर हठपूर्वक शस्त्र धारण कर लड़ने लगे और इधर लव भयकर गर्जन करता हुआ उस सेना में कूद पड़ा ।। ७३३ ।। अनेक योद्धाओ को मार डाला गया, योद्धा धराशायी हो गए और चारो ओर धूल उडने लगी । शस्त्रो की वर्षा वीर करने लगे और योद्धाओ के धड़ और सिर इधर-उधर उडने लगे ।। ७३४ ।। मार्ग मे अश्वो की लाशे पट गयी और बिना सवारो के हाथी और घोड़े दौड़ने लगे । शस्त्र-हीन हो योद्धा गिरने लगे तथा भूत-प्रेत और अप्सराएँ मुस्कुराते हुए भ्रमण करने लगी ।। ७३५ ।। घनघोर नगाड़े बजने लगे, बीर भिड़ने लगे और शस्त्रो की वर्षा होने लगी । विचित्र प्रकार की चित्रकारी करते हुए बाण चलने लगे और महातेजस्वी वीर रण मे क्रुद्ध होने लगे ।। ७३६ ।। ।। चाचरी छद ।। कृपाण उठी, दिखाई, नचाई और चलाई गई ।। ७३७ ।। भ्रम मे डाला गया, पुन: कृपाण दिखाई गई तथा कम्पायमान करते हुए वार कर दिया गया ।। ७३८ ।।

हकारी । कटारी ।। ७४० ।। उठाए । गिराए । भगाए । दिखाए ।।७४१।। चलाए । पचाए । त्रसाए । चुटआए ।।७४२।। ।। अणका छंद ।। जब सर लागे । तब सभ भागे । दलपत मारे । भट भटकारे ।। ७४३ ।। हय तज भागे । रघुबर आगे । बहुबिध रोवैं । समुहि न जोवैं ।। ७४४ ।। लव अर मारे । तव दल हारे । द्वै सिस जीते । नह भय भीते ।। ७४५ ।। लछमन भेजा । बहु दल लेजा । जिन सिस मारू । मोहि दिखारू ।। ७४६ ।। सुण लहु भ्रातं । रघुबर बातं । सज दल चल्ल्यो । (मू०ग्रं०२४६) जल थल हल्ल्यो ।। ७४७ ।। उठ दल धूरं । नभ झड़ पूरं । चहु दिस ढूके । हरि हरि कूके ।। ७४८ ।। बरखत बाणं । थिरकत ज्वाणं । लह लह धुजणं । खह खह भुजणं ।। ७४९ ।। हसि हसि ढूके । कसि कसि कूके । सुण सुण बालं । हठि तज उतालं ।। ७५० ।। ।। दोहरा ।। हम नही त्यागत बाज बर

अनेको कटारियो के प्रहार होने लगे ।। ७३९ ।। कृपाणें निकाली गयी, ललकारा गया और कटारियो से प्रहार किए गए ।। ७४० ।। वीरो को उठाया, गिराया, दौड़ाया और रास्ता दिखाया गया ।। ७४१ ।। बाण चलाए गए, खाये गए और वीरो को भयभीत किया गया ।। ७४२ ।। ।। अणका छद ।। जब बाण लगे तब सभी भाग खड़े हुए, सेनापति मारे गए और वीर इधर-उधर भाग खड़े हुए ।। ७४३ ।। वे घोड़ो को छोडकर राम की तरफ भागे और विभिन्न प्रकार से रोते हुए सामने आने की हिम्मत नही कर रहे थे ।। ७४४ ।। (सैनिको ने राम से कहा) लव ने शत्रुओं को मारकर आपके दल को हरा दिया । वे दो बालक बिना भयभीत हुए युद्ध कर रहे हैं और जीत गए ।। ७४५ ।। राम ने बहुत सा दल ले जाने के लिए कहकर लक्ष्मण को भेजा और कहा, उन बालको को मारना नही अपितु उन्हे पकडकर मुझे दिखाना ।। ४४६ ।। रघुवीर की बात सुनकर दल को सुसज्जित कर जल और स्थल को हिलाते हुए लक्ष्मण चले ।। ७४७ ।। सेना के कारण उडी धूल से आकाश भर गया । सभी सैनिक चारो दिशाओ से उमड पडे और ईश्वर का नाम लेने लगे ।। ७४८ ।। थिरकते हुए जवान बाण-वर्षा करने लगे । ध्वजाएँ लहलहाने लगी और भुजाएँ आपस मे भिडने लगी ।। ७४९ ।। हँसते हुए पास आकर वे जोर-जोर से कहने लगे कि हे बालको ! अपना हठ शीघ्रता से त्याग दो ।। ७५० ।। ।। दोहा ।। बालको ने कहा कि लक्ष्मणकुमार ! हम घोड़े को नही छोड़ेंगे,

सुणि लछमना कुमार। अपनो भर बल जुद्ध कर अब ही शंक बिसार ॥ ७५१ ॥ ॥ अणका छंद ॥ लछमन गज्ज्यो। बड धन सज्ज्यो। बहु सर छोरे। जण घण ओरे ॥ ७५२॥ उत दिब देखैं। धनु धनु लेखैं। इत सर छूटैं। मस कण तूटैं ॥ ७५३ ॥ भट बर गाजैं। दुंदभ बाजैं। सरबर छोरैं मुख नह मोरैं ॥ ७५४ ॥ ॥ लछमन बाच सिस सो ॥ स्रिण स्रिण लरका। जिन कर करखा। दे मिलि घोरा। तुहि बल थोरा ॥ ७५५ ॥ हठ तजि अइऐ। जिन समुहइऐ। मिलि मिलि मोको। डर नहीं तोको ॥ ७५६ ॥ सिस नही मानी। अति अभिमानी। गहि धनु गज्ज्यो। दु पग न भज्ज्यो ॥७५७॥ ॥ अजबा छंद ॥ रुद्धे रण भाई। सर झड़ लाई। बरखे बाणं। परखे जुआणं ॥ ७५८ ॥ डिग्गे रण मद्धं। अद्धो अद्ध। कट्टे अगं। रुज्झे जंगं ॥ ७५९ ॥ बाणन झड़ लायो। सरबर सायो। बहु अर मारे। डील डरारे ॥ ७६० ॥ डिग्गे रण भूमं। नर बर घूमं। रज्जे रण घायं। चक्के

तुम सब शंकाओ को छोडकर अपने पूर्ण बल से युद्ध करो ॥ ७५१ ॥ ॥ अणका छंद ॥ लक्ष्मण ने बहुत वड़ा धनुष पकड़कर गर्जना करते हुए बादलो के समान बहुत से बाण छोडे ॥ ७५२ ॥ उधर से देवतागण युद्ध देख रहे है और धन्य-धन्य की आवाज़ सुनाई पड़ रही है। इधर बाण छूट रहे हैं और मास के टुकड़े कट रहे है ॥ ७५३ ॥ वीर गरज रहे है, दुन्दुभियाँ बज रही है, बाण छोड़े जा रहे है परन्तु फिर भी वे युद्ध से मुँह नही मोड़ रहे है ॥ ७५४ ॥ ॥ लक्ष्मण उवाच बालको के प्रति ॥ हे लड़को ! सुनो और युद्ध मत करो। घोड़े को लेकर मुझसे मिलो, क्योकि तुम लोगो मे बल थोडा है ॥ ७५५ ॥ हठ को छोड़कर आ जाओ और मुकाबला मत करो। डरो नही, मुझसे आकर मिलो ॥ ७५६ ॥ बालको ने बात नही मानी, क्योकि उन्हे भी अपनी शक्ति पर अभिमान था। वे धनुष लेकर गरजने लगे और दो कदम भी पीछे न हटे ॥ ७५७ ॥ ॥ अजबा छद ॥ दोनो भाई युद्ध मे लिप्त हो गए और उन्होने बाणो की वर्षा करते हुए जवानो की बहादुरी की परख की ॥ ७५८ ॥ वीर खण्ड-खण्ड होकर युद्धस्थल में गिरने लगे और युद्ध में भिड़े हुए वीरो के अंग कटने लगे ॥ ७५९ ॥ बाणो की वर्षा से रक्त के सरोवर लहलहाने लगे। बहुत से शत्रुओ को मारा गया और बहुत से भयभीत हो उठे ॥ ७६० ॥ नरश्रेष्ठ वीर घूम-घूमकर रणस्थल मे गिरने लगे। उनके शरीरों पर

चायं ।। ७६१ ।। ।। अपूरब छंद ।। गणे केते । हणे जेते । कई मारे । किते हारे ।। ७६२ ।। सभै भाजे । चितं लाजे । भजे भै कै । जियं लै कै ।। ७६३ ।। फिरे जेते । हणे केते । किते घाए । किते धाए ।। ७६४ ।। सिसं जीते । भटं भीते । महाँ क्रुद्धं । कियो जुद्धं ।। ७६५ ।। दोऊ भ्राता । खगं ख्याता । महाँ जोधं । मँडे क्रोधं ।। ७६६ ।। तजे बाणं । धनं ताणं । मचे बीरं । भजे भीरं ।। ७६७ ।। कटे अंगं । भजे जंगं । रणं रुज्झे । नरं जुज्झे ।। ७६८ ।। भजी सैनं । बिना चैनं । लछन बीरं । फिर्‌यो धीरं ।। ७६९ ।। इकै बाणं । रिपं ताणं । हर्‌यो भालं । गिर्‌यो तालं ।। ७७० ।। (मू०ग्रं०२४७)

।। इति लछमन वधहि धयाइ समापतम ।।

।। अड़ूहा छंद ।। भाज गयो दल त्रास कै कै । लछमणं रण भूम दै कै । चले रामचंद हुते जहाँ । भट भाज भग्ग

घाव शोभायमान हो रहे थे, परन्तु फिर भी उनमे उत्साह की कमी नही थी ।। ७६१ ।। ।। अपूरब छद ।। कितने मारे गए इसकी कोई गिनती नही । कितने ही मारे गए और कितने ही हार गए ।। ७६२ ।। सभी चित्त मे लजायमान हो भाग खड़े हुए और भयभीत होकर तथा अपने प्राण लेकर चले गए ।। ७६३ ।। जितने वापस आये उनको मार डाला गया । कितने ही घायल हो गए और कितने ही दौड़ गए ।। ७६४ ।। बालक जीत गए और शूरवीर भयभीत हो उठे । इन्होने महाक्रोधित होकर युद्ध किया ।। ७६५ ।। दोनो भाई, जो कि खड्ग के धनी थे, महा-क्रोधित होकर महायुद्ध करने लगे ।। ७६६ ।। वे धनुष को तानकर बाण चलाने लगे और भीषण युद्ध करते हुए इन वीरो को देखकर सेना की भीड़ भाग खडी हुई ।। ७६७ ।। योद्धा अंगो को कटवाते हुए युद्ध से भाग खड़े हुए और बचे हुए वीर युद्ध मे भिड गए ।। ७६८ ।। व्याकुल होकर सेना भाग खड़ी हुई । तब लक्ष्मण धैर्य से वापस मुड़े ।। ७६९ ।। शत्रु की ओर तानकर एक बाण (लव ने) मारा जो उनके मस्तक का हरण करके ले गया और लक्ष्मण वृक्ष के समान गिर पड़े ।। ७७० ।।

।। इति लक्ष्मण-वध अध्याय समाप्त ।।

।। अड़ूहा छंद ।। लक्ष्मण को युद्ध की भेंट चढ़ाकर दल भयभीत होकर भाग खडा हुआ । जहाँ रामचन्द्र खड़े थे, शूरवीर भागकर वहाँ

लगे तहाँ ।। ७७१ ।। जब जाइ बात कही उनै । बहु भाँत शोक दयो तिनै । सुन बैन मोन रहै बली । जन चित्र पाहन की खली ।। ७७२ ।। पुन बैन मंत्र बिचारयो । तुम जाहु भरथ उचारयो । मुन बाल द्वै जिन मारियो । धनि आन मोहि दिखारियो ।। ७७३ ।। सज सैन भरथ चले तहाँ । रण बाल बीर मँडे जहाँ । बहु भात बीर सँघारही । सर ओघ प्रओघ प्रहारही ।। ७७४ ।। सुग्रीव और भभीछनं । हनवंत अंगद रीछनं । बहु भाँति सैन बनाइकै । तिन पै चल्यो समुहाइकै ।। ७७५ ।। रणभूम भरथ गए जबै । मुन बाल दोइ लखे तबै । दुइ काक पचछा सोभही । लख देव दानो लोभही ।।७७६।। ।। भरथ बाच लव सो ।। ।। अकड़ा छंद ।। मुन बाल छाडहु गरब । मिलि आन मोहू सरब । लै जाँहि राघव तीर । तुहि नैक दै कै चीर ।। ७७७ ।। सुन ते भरे सिस मान । कर कोप तान कमान । बहु भाँति साइक छोरि । जन अभ्र सावण ओर ।। ७७८ ।। लागे सु साइक अंग । गिरगे सु बाह उतंग । कहूँ अंग भंग सबाह । कहूँ चउर चीर

पहुँचे ।। ७७१ ।। जब यह सारा वृत्तात उन्हे बताया गया तो उनको बहुत शोक हुआ। वचन सुनकर महाबली पत्थर की शिला की तरह चित्र बनकर मौन हो रहे ।। ७७२ ।। पुनः बैठकर विचार-विमर्श किया और भरत को जाने के लिए कहते हुए उससे कहा कि मुनि-बालको को मत मारना, अपितु उन्हे लाकर मुझे दिखाना ।। ७७३ ।। भरत सेना को सुसज्जित कर उस ओर चले जहाँ वीर बालक युद्ध के लिए तैयार थे। वे बहुत प्रकार से बाणो का प्रहार करते हुए वीरो को मारने के लिए तत्पर थे ।। ७७४ ।। सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अगद एवं जाम्बवत आदि की विभिन्न प्रकार की सेना ले भरत उन वीर बालको की ओर चल पडे ।। ७७५ ।। रण-भूमि मे जब भरत पहुँचे तो उन्होने दोनो मुनि-बालको को देखा। दोनो बच्चे शोभायमान थे और उन्हे देख देव-दानव दोनो मोहित होते थे ।। ७७६ ।। ।। भरत उवाच लव के प्रति ।। ।। अकड़ा छंद ।। हे मुनि-बालको ! गर्व को छोड़ तुम सब मुझसे आकर मिलो। मैं तुमको कपड़े पहनाकर राघव रामचन्द्र के पास ले जाऊँगा ।। ७७७ ।। यह सुनकर बालक मान से भर उठे और क्रोधित हो उन्होने कमान तान लिया। उन्होंने सावन की घटाओ की तरह बहुत प्रकार से बाण छोड़े ।। ७७८ ।। वे बाण जिसको लगे वे उलटकर गिर पड़े। कही उन बाणो ने अग-भग कर दिया और कही

सनाह ।। ७७९ ।। कहूँ चित्र चार कमान । कहूँ अंग सोधन बान । कहूँ अंग घाइ भभक्क । कहूँ स्रोण सरत छलक्क ।। ७८० ।। कहूँ भूत प्रेत भकंत । सु कहूँ कमद्ध उठंत । कहूँ नाच बीर बैताल । लो बमत डाकण ज्वाल ।। ७८१ ।। रण घाइ घाए वीर । सभ स्रोण भीगे चीर । इक बार भाज चलंत । इक आन जुद्ध जुटंत ।। ७८२ ।। इक ऐंच ऐंच कमान । तक वीर मारत बान । इक भाज भाज मरंत । नही सुरग तउन बसंत ।। ७८३ ।। गजराज बाज अनेक । जुज्झे न बाचा एक । तब आन लंका नाथ । जुज्झ्यो सिसन के साथ ।। ७८४ ।। ।। बहोड़ा छंद ।। लंकेश के उर मो तक बान । मार्यो राम सिसत जि कान । तब गिर्यो दानव सु भूमि मद्ध । तिह बिसुध जाण नही कियो बद्ध ।। ७८५ ।। तब रुक्यो तास सुग्रीव आन । कहा जात बाल नही पैस जान । तब हण्यो बाण तिह भाल तक्क । तिह लग्यो भाल मो रह्यो चक्क ।। ७८६ ।। चप चली (मू०ग्रं०२४८) सैण कपणी सु

उन्होने चँवर और कवच को चीर दिया ।। ७७९ ।। कही सुन्दर कमानो से निकलकर वे चित्र बनाने लगे और कही योद्धाओ के अगो मे घुस गये । कही अंगो के घाव भभकने लगे और कही रक्त की नदियाँ छलकने लगी ।। ७८० ।। कही भूत, प्रेत धकारने लगे और कही युद्धस्थल मे कवन्ध उठने लगे । कही वीर बैताल नृत्य करने लगे और कही डाकिनियाँ ज्वालाएँ उठाने लगी ।। ७८१ ।। युद्धस्थल मे घायल होकर वीरों के वस्त्र रक्त से भीग गए । एक ओर वीर भागे चले जा रहे है तथा दूसरी ओर वीर आकर युद्ध मे भिड रहे है ।। ७८२ ।। एक ओर कमान खीच-खीचकर वीर वाण मार रहे हैं । दूसरी ओर वीर भाग-भागकर ही प्राण त्याग रहे हैं और वे स्वर्ग मे स्थान नही पा रहे है ।। ७८३ ।। अनेको हाथी-घोडे जूझ गये और एक भी न बचे । तब लंकानाथ (विभीषण) उन बालको के साथ भिड़ गया ।। ७८४ ।। ।। बहोडा छद ।। राम के शिशुओ ने लकेश के हृदय मे वाण खीचकर मारा । वह दानव भूमि पर गिर पड़ा और उसे अचेत जानकर बालको ने उसका वध नही किया ।। ७८५ ।। तव वहाँ आकर सुग्रीव रुका और उसने कहा कि बालको ! कहाँ जाते हो ? तुम लोग वचकर जा नही सकते । तब उसके मस्तक का निशाना लगाकर मुनि-वालक ने वाण चलाया जो उसके मस्तक मे लगा और वाण की तीक्ष्णता का अनुभव कर किंकर्तव्यविमूढ हो

क्रुद्ध । नल नील हनू अंगद सु जुद्ध । तब तीन तीन लै बाल बान । तिह हणे भाल मो रोस ठान ॥७८७॥ जो गए सूर सो रहे खेत । जो बचे भाज ते हुइ अचेत । तब तकि तकि सिस कस्सि बाण । दल हत्यो राघवी तज्जि काणि ॥ ७८८ ॥ ॥ अनूप निराज छंद ॥ सु कोपि देखि कै बलं सु क्रुद्ध राघवी सिसं । बचित्र चित्रतं सर बबर्ख बरखणो रणं । भभज्जि आसुरी सुतं उठंत भैकरी धुनं । भ्रमंत कुंडली क्रितं पपीड़ दारणं सर ॥७८९॥ घुमंत घाइलो घणं ततच्छ बाणणो बरं । भभज्ज कातरो क्रितं गजंत जोधणो जुद्धं । चलंत तीछणो असं खिमंत धार उज्जलं । पपात अंगदादि के हनुवत सुग्रिवं बलं ॥ ७९० ॥ गिरंत आसुरं रणं भभरम आसुरी सिसं । तजंत स्यामणो धरं भजंत प्रान लै भटं । उठंत अंध धुंधणो कबंध बंधतं कटं । लगंत बाणणो बरं गिरंत भूम अहवयं ॥ ७९१ ॥ पपात त्रिछणं धरं बबेग मार तुज्जणं । भरंत धूर भूरणं बमंत स्रोणतं मुखं । चिकार चाँवडी नभं ठिकंत फिकरी फिरं ।

उठा ॥ ७८६ ॥ यह देखकर सारी सेना दब चली और नल, नील, हनुमान, अंगद आदि समेत क्रोधित होकर युद्ध करने लगी। तब बालको ने तीन-तीन बाण लेकर क्रोधित हो इन सबके मस्तक पर दे मारे ॥ ७८७ ॥ जो शूरवीर मैदान में रहे वे मृत्यु को प्राप्त हुए और जो बच रहे वे होश भुलाकर भाग खड़े हुए। तब उन बालको ने निशाना लगा कस-कसकर बाण मारे और अभय होकर राघवी सेना का हनन कर दिया ॥ ७८८ ॥ ॥ अनूप निराज छंद ॥ राघव के बालको का बल और क्रोध देखकर और उनके विचित्र प्रकार से युद्ध मे बाण-वर्षा को देखकर आसुरी सेना भयंकर ध्वनि करती भाग खडी हुई और कुण्डलाकार से भ्रमण करने लगी ॥ ७८९ ॥ युद्ध-स्थल मे अनेको घायल तीखे बाणो की मार खाते घूमने लगे और कितने ही योद्धा गरजने लगे तथा कितने ही असहाय हो प्रयाण करने लगे। श्वेत धार वाली तीक्ष्ण कृपाणे युद्धस्थल मे चलने लगी। अगद, हनुमान, सुग्रीव आदि के बल का क्षय होने लगा ॥ ७९० ॥ असुर रण मे गिरने लगे और उन्हें यह भ्रम हो गया कि ये बालक मायावी असुर-बालक हैं। वे धरती को छोड़ और प्राणो को लेकर भागने लगे। कबन्ध बन्धन काट कर अंधाधुंध उठने लगे और बाण लगने से पुनः युद्धस्थल मे गिरने लगे ॥ ७९१ ॥ वीर बाणो की मार से शीघ्रता से धरती पर गिरने लगे। उनके शरीर पर धूल लिपटने लगी और मुँह से रक्त का वमन होने लगा।

भकार भूत प्रेतणं डिकार डाकणी डुलं ॥ ७६२ ॥ गिरं धरं धुरं धरं धरा धरं धरं जिवं । भभज्जि स्रउणतं तणे उठंत भै करी धुनं । उठंत गद्द सद्दणं ननद्द निफिरं रणं । बबर्ख साइकं सितं घुमंत जोधणो व्रणं ॥ ७६३ ॥ भजंत भै धरं भटं बिलोक भरथणो रणं । चल्यो चिराइकं चपी बबर्ख साइको सितं । सु क्रुद्ध साइकं सिसं बवद्ध भालणो भटं । पपात प्रिथवियं हठी समोह आस्त्र मंगतं ॥ ७६४ ॥ भभज्जि भीतणो भटं ततज्जि भरथणो भुअं । गिरंत लुत्थतं उठं रुरोब राघवं तटं । जुझे सु भ्रात भरथणो सुणंत जानकी पतं । पपात भूमिणो तलं अपीड़ पीड़त दुखं ॥ ७६५ ॥ ससज्ज जोधणं क्रुधी सु क्रुद्ध बद्धणो बरं । ततज्जि जग्ग मंडलं अदंड डंडणो नरं । सु गज्ज बज्ज बाजणो उठंत भै धरी सुरं । सनद्ध बद्ध खै दलं सबद्ध जोधणो बरं ॥ ७६६ ॥ चचक्क चाँवडी नभं फिकंत फिकरी धरं । भखत मास हारणं बमंत ज्वाल दुरगयं । पुअंत पारबती सिरं नचंत ईसणो रणं । भकंत भूत प्रेतणो

चील्हे आसमान मे चीख़ती गोलाकार घूमने लगी और युद्धस्थल मे भूत-प्रेत ढकारते हुए तथा डाकिनियाँ डकारती हुई विचरने लगी ॥ ७९२ ॥ वीर धरती पर जिस ओर भी थे, गिरने लगे । भागते हुए वीरो के शरीर से रक्त बहने लगा और भयानक ध्वनियाँ उठने लगी । युद्ध मे नफीरो का निनाद भर उठा और वीरगण तीर बरसाते हुए तथा घायल होते हुए घूमने लगे ॥ ७९३ ॥ भरत के युद्ध को देख कई शूरवीर भयभीत हो भागने लगे । इधर भरत क्रोधित होकर और बाण-वर्षा करने लगे । मुनिपुत्रो ने क्रोधित होकर बाण-वर्षा की और हठी भरत को धराशायी कर दिया ॥ ७९४ ॥ भरत को धरती पर गिरा छोड़ शूरवीर भाग खड़े हुए और लाशो पर उठते-गिरते रुदन करते हुए रामचन्द्र के पास पहुँचे । जानकीपति राम ने जब भरत के जूझ जाने की बात सुनी, तो अत्यन्त दु:ख से पीड़ित हो वे भूमि पर गिर पड़े ॥ ७९५ ॥ योद्धाओं की सेना को सुसज्जित कर क्रोधित हो वीरो का वध करने के लिए और अदण्डनीयो को दण्डित करने के लिए राम स्वय चल पड़े । हाथी और घोड़ो की आवाज को सुन देवगण भी भयभीत हो उठे और इस सैन्यदल मे सुसज्जित सेनाओं का क्षय करनेवाले वीर योद्धा भी थे ॥ ७९६ ॥ चील्हे आसमान मे घूमती हुई धरती पर विचरण करने लगी । दुर्गादेवी अगणित ज्वालाएँ बरसाती हुई मांस का भक्षण करनेवाली और ऐसा लग रहा था कि पार्वती

बकंत बीर बैतलं ॥ ७९७ ॥ (मू०ग्रं०२४६) ॥ तिलका छंद ॥ जुट्टे बीरं । छुट्टे तीरं । फुट्टे अंगं । तुट्टे तंगं ॥ ७९८ ॥ भग्गे बीरं । लग्गे तीरं । पिक्खे रामं । धरमं धामं ॥ ७९९ ॥ जुज्झे जोधं । मच्चे क्रोधं । बंधो बालं । बीर उतालं ॥ ८०० ॥ ढुक्के फेर । लिन्ने घेर । वीरैं बाल । जिउ द्रैकाल ॥ ८०१ ॥ तज्जी काण । मारे बाण । डिग्गे बीर । भग्गे धीर ॥ ८०२ ॥ कट्टे अंग । डिग्गे जंग । सुद्धं सूर । भिन्ने नूर ॥ ८०३ ॥ लक्खैं नाहि । भग्गे जाहि । तज्जे राम । धरमं धाम ॥ ८०४ ॥ अउरैं भेस । खुल्ले केस । शस्त्र छोर । दै दै कोर ॥ ८०५ ॥ ॥ दोहरा ॥ दुहूँ दिसन जोधा हरै पर्या जुद्ध दुइ जाम । जूझ सकल सैना गई रहिगे एकल राम ॥ ८०६ ॥ तिहू भ्रात बिनु भै हन्यो अर सभ दलहि सँघार । लव अर कुश जूझन निमित लीने राम हकार ॥ ८०७ ॥ सैना सकल जुझाइ कै कति बैठे छप जाइ । अब हम सो तुमहूँ लरो सुनि सुनि कउशल

का स्वामी शिव युद्धस्थल में ताण्डव नृत्य कर रहा हो । युद्धस्थल मे भूत-प्रेत और वीर वैतालो का प्रलाप सुनाई पड़ने लगा ॥ ७९७ ॥ ॥ तिलका छद ॥ वीर जुट गए, तीर छूटने लगे, अग फूटने लगे और घोड़ों की जीने टूटने लगी ॥ ७९८ ॥ तीर लगने से वीर भागने लगे । धर्म के धाम ने यह सब देखा ॥ ७९९ ॥ क्रोधित होकर योद्धा जूझने लगे और कहने लगे कि शीघ्र ही इन बालको को बाँध लो ॥ ८०० ॥ सैनिक उमड़ पड़े और काल के समान तेजस्वी दोनो वीर बालकों को घेर लिया ॥ ८०१ ॥ बालकों ने अभय होकर बाण चलाये जिससे वीर गिर पड़े और बड़े-बड़े धैर्यवान वीर भाग खड़े हुए ॥ ८०२ ॥ कटे हुए योद्धा अगो के योद्धा युद्ध मे गिर पड़े । शूरवीर अत्यन्त तेजवान दिखाई पड रहे थे ॥ ८०३ ॥ वे बिना कुछ देखते हुए भागे जा रहे है । वे धर्म के धाम राम को भी छोड चले है ॥ ८०४ ॥ वीर वेश बदलकर, केशों को खुला छोडकर और शस्त्रों को त्यागकर युद्धस्थल के किनारो से भागे चले जा रहे है ॥ ८०५ ॥ ॥ दोहा ॥ दोनो ओर से योद्धा मारे गये और दो प्रहर (तीन घटे का एक प्रहर) युद्ध चलता रहा । राम की सारी सेना जूझ गयी और अब केवल राम अकेले रह गए ॥ ८०६ ॥ तीनो भाइयो का बिना किसी डर के सेना-समेत लव और कुश ने सहार कर दिया तथा अब लव-कुश ने युद्ध के लिए राम को भी ललकार दिया ॥ ८०७ ॥ मुनि-बालको ने राम से यह कहा

राइ ॥ ८०८ ॥ निरख बाल निज रूप प्रभ कहे बैन मुसकाइ । कवन तात बालक तुमै कवन तिहारी माइ ॥ ८०९ ॥ ॥ अकरा छंद ॥ मिथलापुर राजा । जनक सुभाजा । तिह सिस सीता । अस सुभ गीता ॥ ८१० ॥ सो बनि आए । तिह हम जाए । है दुइ भाई । सुनि रघुराई ॥ ८११ ॥ सुनि सिय रानी । रघुबर जानी । चित पहिचानी । मुख न बखानी ॥ ८१२ ॥ तिह सिस मान्यो । अत बल जान्यो । हठि रण कीनो । कह नही दीनो ॥ ८१३ ॥ कसि सर मारे । सिस नही हारे । बहु बिध बाणं । अत धनु ताणं ॥ ८१४ ॥ अंग अंग बेधे । सभ तन छेदे । सभ दल सूझे । रघुबर जूझे ॥ ८१५ ॥ जब प्रभ मारे । सभ दल हारे । बहु बिधि भागे । दुइ सिस आगे ॥ ८१६ ॥ फिर न निहारैं । प्रभ न चितारैं । ग्रह दिस लीना । असरण कीना ॥ ८१७ ॥ ॥ चौपई ॥ तब दुहूँ बाल अयोधन देखा । मनो रुद्र कीड़ा बन पेखा । फाट धुजन के ब्रिच्छ सवारे ।

कि हे कोशलराज ! आप पूरी सेना को नष्ट करवाकर कहाँ छुप गए हैं । अब आप हमसे युद्ध कीजिए ॥ ८०८ ॥ बच्चो को अपने स्वरूपवाला ही देखकर प्रभु राम ने मुस्कुराकर पूछा कि हे बालको ! तुम लोगो के माता-पिता कौन हैं ? ॥ ८०९ ॥ ॥ अकरा छद ॥ मिथिलापुर के राजा जनक की पुत्री सीता शुभ्रगीत के समान सुन्दर है ॥८१०॥ हे रघुराज ! वह वन मे आयी है और उसने हमे जन्म दिया है तथा हम दो भाई हैं ॥ ८११ ॥ सीता ने जब सुना और उसे राम के बारे मे जानकारी मिली, तब वह पहचानते हुए भी मुख से न बोली ॥ ८१२ ॥ उसने पुत्रों को मना किया और बताया कि राम अत्यन्त बलशाली है । तुम हठपूर्वक उनसे युद्ध कर रहे हो । यह सब कहते हुए भी सीता ने पूरी बात नही कही ॥ ८१३ ॥ वे बालक हारकर पीछे नही हटे और कसकर बहुत प्रकार से धनुष तान-तानकर बाण चलाते रहे ॥ ८१४ ॥ श्रीराम का अग-अग बिंध गया और सारा शरीर छिद गया । सारे दल को यह पता लग गया कि श्रीराम जूझ गये है ॥ ८१५ ॥ जब प्रभु राम मृत्यु को प्राप्त हुए, तब सम्पूर्ण दल उन दोनो बालको के सामने जैसे-तैसे भागने लगा ॥ ८१६ ॥ वे मुड़कर प्रभु राम को भी नही देख रहे थे और अशरणागत हो जिस दिशा मे बन पड़ा भाग निकले ॥ ८१७ ॥ ॥ चौपाई ॥ तब दोनो बालको ने निश्चिन्त होकर रणभूमि को इस प्रकार देखा मानो रुद्र वन मे सर्वेक्षण कर रहे हो

भूखन अंग अनूप उतारे ॥८१८॥ मूरछ भए सभ लए उठाई । बाज सहित तह गे जह माई । देख सिया पत (मू०ग्रं०२५०) मुख रो दीना । कह्यो पूत बिधवा मुहि कीना ॥ ८१९ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतार लव बाज बाँधवे राम बधह ॥

सीता ने सभ जीवाए कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अब मोकउ काशट दे आना । जरउ लागि पति होउँ मसाना । सुनि मुनिराज बहुत बिध रोए । इन बालन हमरे सुख खोए ॥ ८२० ॥ जब सीता तब रहा कि काढूं । जोगअगनि उपराज सु छाडूं । तब इम भई गगन ते बानी । कहा भई सीता तै इयानी ॥ ८२१ ॥ ॥ अरूपा छंद ॥ सुनी बानी । सिया रानी । लयो आनी । करे पानी ॥८२२॥ ॥ सीता बाच मन मै ॥ ॥ दोहरा ॥ जउ मन बच करमन सहित राम बिना नही अउर । तउ ए राम

ध्वजाओ को काटकर वृक्षों पर लगा दिया गया और सैनिकों के अनुपम आभूषणों को अगो से उतारकर फेक दिया गया ॥ ८१८ ॥ जितने मूर्च्छित थे, बालको ने उन्हे उठा लिया और अश्वो-समेत वहाँ पहुँचे जहाँ सीता माता बैठी थी । सीता मृतक पति को देख कहने लगी, हे पुत्रो ! तुमने मुझे विधवा कर दिया है ॥ ८१९ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक के रामावतार मे लव के अश्व बाँधने और राम-वध के अध्याय की समाप्ति ॥

सीता द्वारा सबको जीवित करने का कथन

॥ चौपाई ॥ अब मुझे लकड़ी लाकर दो ताकि मै पति के साथ जलकर भस्म हो जाऊँ । यह सुन मुनिराज (वाल्मीकि) बहुत विलाप करने लगे और कहने लगे कि इन बालको ने तो हमारे सभी सुखो का हरण कर लिया है ॥ ८२० ॥ जब सीता ने यह कहा कि मै योग-अग्नि अपने शरीर से ही निकालकर अपने शरीर का त्याग कर दूंगी तो उस समय आकाशवाणी हुई, जिसमें यह कहा गया कि ऐ सीता ! तू क्यो बच्चो जैसा कार्य कर रही है ॥ ८२१ ॥ ॥ अरूपा छद ॥ सीता ने बात सुनी और अपने हाथ में जल ले लिया ॥ ८२२ ॥ ॥ सीता उवाच मन मे ॥ ॥ दोहा ॥ यदि मेरे मन, वचन और कर्म से राम के बिना किसी अन्य का कभी भी निवास

सहित जिऐ फट्यो सिया तिह ठउर ॥ ८२३ ॥ ॥ अरूपा छंद ॥ सभै जागे। भ्रमं भागे। हठं त्यागे। पगं लागे ॥ ८२४ ॥ सिया आनी। जगं रानी। धरम धानी। सती मानी ॥ ८२५ ॥ मनं भाई। उरं लाई। सती जानी। मनै मानी ॥ ८२६ ॥ ॥ दोहरा ॥ बहुबिधि सियहि सम्बोध कर चले अजुधिआ देस। लव कुश दोउ पुत्रनि सहित स्री रघुबीर नरेश ॥ ८२७ ॥ ॥ चौपई ॥ बहुतु भाँति कर सिसन समोधा। सिय रघुबीर चले पुर अउधा। अनिक भेख से शस्त्र सुहाए। जानत तीन राम बन आए ॥ ८२८ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके रामवतारे तिहू भिरातन सैना सहित जीबो ॥

सीता दुहू पुत्रन सहित पुरी अवध प्रवेश कथनं ॥

॥ चौपई ॥ तिहूँ मात कंठन सो लाए। दोउ पुत्र पाइन लपटाए। बहुर आन सीता पग परी। मिट गई तहीं दुखन की

न हुआ हो तो इसी स्थान पर ये सभी राम-सहित जीवित हो जायँ ॥ ८२३ ॥ ॥ अरूपा छद ॥ सभी जीवित हो उठे, सबका भ्रम दूर हो गया और सभी हठ त्यागकर सीता के चरणो मे आ गये ॥ ८२४ ॥ सीता जगत की रानी धर्म की स्रोत सती के रूप मे मानी गयी ॥ ८२५ ॥ राम के मन को वह भाने लगी और उसे सती जानते हुए उन्होने हृदय से लगा लिया ॥ ८२६ ॥ ॥ दोहा ॥ बहुत प्रकार से सीता को समझाते हुए लव-कुश को साथ ले श्री रघुवीर अयोध्या की ओर चल पड़े ॥ ८२७ ॥ ॥ चौपाई ॥ बच्चो को बहुत प्रकार समझाया और सीता-राम अवध की ओर चल पड़े। तीनो ने विभिन्न वेशो मे शस्त्र धारण कर रखे थे और ऐसा लग रहा था मानो तीन राम चल रहे हो ॥ ८२८ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक के रामावतार मे सेना-सहित तीनो भ्राताओ को जीवित करना समाप्त ॥

सीता का दोनों पुत्रों-सहित अवधपुरी में प्रवेश-कथन

॥ चौपाई ॥ तीनों माताओ ने इन सबको गले से लगा लिया और लव-कुश दोनो पुत्र भी आकर चरण-स्पर्श करने लगे। फिर सीता ने भी पाँव छुए और ऐसा लगने लगा कि दुःख का समय समाप्त हो गया ॥८२९॥

घरी ॥ ८२९ ॥ बाजमेध पूरन किय जग्गा । कउशलेश रघुबीर अभग्गा । ग्रिह सपूत दो पूत सुहाए । देस बिदेश जीत ग्रह आए ॥ ८३० ॥ जेतिक कहे सु जग्ग बिधाना । बिध पूरब कीने ते नाना । एक घाट सत कीने जग्गा । चट पट चक्र इंद्र उठ भग्गा ॥ ८३१ ॥ राजसूइ कीने दस बारा । बाजमेधि इक्कीस प्रकारा । गवालंभ अजमेध अनेका । भूपमेध कर सके अनेका ॥ ८३२ ॥ नागमेध खट जग्ग कराए । जउन करे जगमे (मू०ग्रं०२५१) जय पाए । अउरै गनत कहाँ लग जाऊँ । ग्रंथ बढन ते हिऐ डराऊँ ॥ ८३३ ॥ दस सहंस्र दस बरख प्रमाना । राज करा पुर अउध निधाना । तब लउ काल दशा नियराई । रघुबर सिरि स्रित डंक बजाई ॥ ८३४ ॥ नमशकार तिह बिबिधि प्रकारा । जिन जग जीत कर्‌यो बस सारा । सभहन सीस डंक तिह बाजा । जीत न सका रंक अरु राजा ॥ ८३५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जे तिन की शरनी परे कर दै लए बचाइ । जौ नही कोऊ बाचिआ किशन बिशन रघुराइ ॥ ८३६ ॥ ॥ चौपई छंद ॥ बहु बिधि

रघुवीर ने अश्वमेध यज्ञ सम्पूर्ण किया और उनके घर मे दो पुत्र शोभायमान होने लगे जो देश-विदेश को जीतकर अपने घर वापस आये ॥ ८३० ॥ यज्ञ के जितने भी कर्मकाण्ड थे, उन सबको विधिपूर्वक पूरा किया गया। एक ही स्थान पर सात यज्ञ किए जिन्हे देखकर चकित इन्द्र भी भाग खड़ा हुआ ॥ ८३१ ॥ दस राजसूय यज्ञ किये गये और इक्कीस प्रकार के अश्वमेध किये गये । गोमेध और अजमेध, भूपमेध आदि अनेको यज्ञ किये गये ॥ ८३२ ॥ छः नागमेध यज्ञ किये गये जिनको करने से जीवन मे विजय प्राप्त होती है । अन्यो की गिनती मै कहाँ तक करूँ कि ग्रंथ के बढ़ जाने का भय बना हुआ है ॥ ८३३ ॥ दस हज़ार दस वर्ष तक श्रीराम ने अवधपुरी मे राज्य किया, तब काल-दशा के अनुसार श्रीरघुवीर के सिर पर मृत्यु ने डका वजा दिया ॥ ८३४ ॥ काल को मैं विविध प्रकार से नमस्कार करता हूँ, जिसने सारे ससार को जीतकर अपने वश मे कर रखा है । काल का नगाड़ा हर एक के सिर पर बजा है और कोई भी रक अथवा राजा इसे जीत नही सका है ॥ ८३५ ॥ ॥ दोहा ॥ जो इसकी शरणागत हुआ उसको इसने बचा लिया, और जो इसकी शरणागत नही हुआ, चाहे वह कृष्ण हो, चाहे वह विष्णु हो, चाहे वह राम हो, वह नही बच सका ॥ ८३६ ॥ ॥ चौपाई छद ॥ बहुत प्रकार से राजकाज करते हुए

करो राज को साजा। देस देस के जीते राजा। शाम दाम अरु दंड सभेदा। जिह बिध हुती शाशना बेदा॥ ८३७॥ बरन बरन अपनी क्रित लाए। चार चार ही बरन चलाए। छत्री करैं बिप्र की सेवा। बैस लखै छत्री कह देवा॥ ८३८॥ शूद्र सभन की सेव कमावै। जह कोई कहै तही वह धावै। जैसक हुती बेद शासना। निकसा सैस राम की रसना॥८३९॥ रावणादि रण हाँक सँघारे। भाँत भाँत सेवक गण तारे। लंका दई टंक जनु लीनो। इह बिध राज जगत मै कीनो॥ ८४०॥ ॥ दोहरा छंद॥ बहु बरखन लउ राम जी राज करा ?? काल। ब्रहमरंध्र कह फोर कै भ्यो काउशलिआ काल॥ ८४१॥ ॥ चौपई॥ जैस म्रितक के हुते प्रकारा। तैसेइ करे बेद अनुसारा। राम सपूत लाहि घर माही। ताकहु तोट कोऊ कह नाही॥ ८४२॥ बहु बिधि गति कीनी प्रम माता। तब लउ भई कैकई शांता। ता के मरत सुमित्रा मरी। देखहु काल क्रिआ कस करी॥ ८४३॥ एक दिवस जानकि त्रिय सिखा। भीत लए रावण कह लिखा। जब

सास, दाम, दण्ड, भेद और शासन के अन्य तरीको को अपनाते हुए राजा राम ने देश-विदेश के अन्य राजाओ को जीत लिया॥ ८३७॥ प्रत्येक वर्ण को उसके कार्य मे लगाया और वर्णाश्रम धर्म को चलाया। क्षत्री विप्र की सेवा करने लगे और वैश्य क्षत्रियो को देवतुल्य मानने लगे॥ ८३८॥ शूद्र सवो की सेवा करने लगे और जो जहाँ कहता था वही जाने लगे। राम के मुख से सदैव वेद के अनुसार शासन करने की वात ही निकलती थी॥ ८३९॥ रावणादि का सहार करते हुए भिन्न-भिन्न सेवक और गणो को तारते हुए लका से कर वसूलते हुए श्रीराम ने राज्य किया॥ ८४०॥ ॥ दोहा छद॥ इस प्रकार बहुत वर्षो तक श्रीराम ने राज्य किया और एक दिन कौशल्या के ब्रह्मरन्ध्र को फोडते हुए उसका प्राणान्त हो गया॥ ८४१॥ ॥ चौपाई॥ जिस प्रकार मृतक का क्रिया-कर्म होता है, वेद-अनुसार वैसा ही किया गया। सुपुत्र राम घर में गये (और स्वय अवतार होने के नाते) उन्हे किसी प्रकार की कमी नही थी॥ ८४२॥ बहुत प्रकार से माता की गति के लिए कर्मकाण्ड किये गये तव तक कैकेयी भी मृत्यु को प्राप्त हो गयी। उसकी मृत्यु के बाद काल की क्रिया देखो, सुमित्रा भी मृत्यु को प्राप्त हो गयी॥ ८४३॥ एक दिन जानकी ने स्त्रियो को बताते हुए दीवार पर रावण का चित्र बना दिया। जब रघुवर ने यह देखा तो

रघुबर तिह आन निहारा। कछुक कोप इम बचन उचारा॥ ८४४॥ ॥ राम बाच मन मै॥ याको कछु रावन सो हेता। ता ते चित्र चित्र कै देखा। बचन सुनत सीता भई रोखा। प्रभ मुहि अजहुँ लगावत दोखा॥ ८४५॥
॥ दोहरा॥ जउ मेरे बच करम करि ह्रिदै बसत रघुराइ। प्रिथी पैंड मुहि दीजिऐ लीजै मोहि मिलाइ॥ ८४६॥
॥ चौपई॥ सुनत बचन धरनी फट गई। लोप सिया तिह भीतर भई। चक्रत रहे निरख (मू०ग्रं०२५२) रघुराई। राज करन की आस चुकाई॥ ८४७॥ ॥ दोहरा॥ इह जग धुअरो धउलहरि किह के आयो काम। रघुबर बिनु सिय ना जिऐ सिय बिन जिऐ न राम॥ ८४८॥ ॥ चौपई॥ द्वारे कह्यो बैठ लछमना। पैठ न कोऊ पावै जना। अंतहि पुरहि आप पगु धारा। देहि छोरि त्रिलोक सिधारा॥ ८४९॥
॥ दोहरा॥ इंद्रमती हित अज न्रिपत जिम ग्रिह राज

कुछ कुपित होकर ऐसा कहा॥ ८४४॥ ॥ राम उवाच मन मे॥ इसको (सीता को) यदि रावण से कुछ स्नेह रहा होगा तभी तो वह उसका चित्र बनाकर देख रही है। यह मचन सुन सीता रुष्ट हो उठी और कहने लगी कि प्रभु राम अभी भी मुझ पर दोषारोपण कर रहे हैं॥ ८४५॥ ॥ दोहा॥ यदि मेरे वचन और कर्म तथा हृदय मे सदैव रघुराज राम ही बसते हो तो हे पृथ्वी माता! तुम मुझे स्थान देकर अपने मे मिला लो॥ ८४६॥ ॥ चौपाई॥ यह वचन सुनते ही धरती फट गयी और सीता उसमें समा गयी। राम यह देख चकित हो उठे और दुःख मे अब राज्य करने की आशा उन्होने समाप्त कर दी॥ ८४७॥ ॥ दोहा॥ यह संसार धुएँ का महल है जो किसी के काम नही आया। राम के बिना सीता जीवित नही रह सकी और सीता के बिना राम का जीवित रहना असंभव है॥ ८४८॥ ॥ चौपाई॥ राम ने लक्ष्मण से कहा कि तुम द्वार पर बैठो और अन्दर कोई न आने पाये। राम स्वय महल मे प्रविष्ट हुए और शरीर त्यागकर इस मृत्युलोक को छोड़ चले गए॥ ८४९॥ ॥ दोहा॥ जिस प्रकार राजा अज ने इन्दुमती के लिए योग धारण कर

लिय जोग। लिम रघुबर तन को तजा स्री जानकी बियोग ॥ ८५० ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक रामवतारे सीता के हेत म्रितलोक से गए धिआइ समापतम ॥

अथ तीनो भ्राता त्रीअन सहित मरबो कथनं ॥

॥ चौपई ॥ रउर परी सगरे पुर माही। काहूँ रही कछू सुध नाही। नर नारी डोलत दुखिआरे। जानुक गिरे जूझि जुझिआरे ॥ ८५१ ॥ सगर नगर महि पर गई रउरा। ब्याकुल गिरे हसत अरु घोरा। नर नारी मन रहत उदासा। कहा राम कर गए तमाशा ॥ ८५२ ॥ भरथउ जोग साधना साजी। जोग अगन तन ते उपराजी। ब्रहमरंध्र झट देकर फोरा। प्रभ सो चलत अंग नही मोरा ॥ ८५३ ॥ सकल जोग के किए बिधाना। लछमन तजे तैस ही प्राना। ब्रहमरंध्र लछमन फुन फूटा। प्रभ चरनन तर प्रान निखूटा ॥ ८५४ ॥ लव कुश दोऊ तहाँ चल गए।

लिया था और घर का त्याग कर दिया था, उसी प्रकार जामकी के वियोग मे भी राम ने शरीर का त्याग कर दिया ॥ ८५० ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के रामावतार मे सीता के हित (राम) मृत्युलोक से गये अध्याय समाप्त ॥

तीनों भ्राताओं का स्त्रियों-सहित-मरण-कथन प्रारम्भ

॥ चौपाई ॥ सारे नगर मे कोलाहल मच गया और किसी को कोई सुध न रही। नर-नारी दुःखी होकर इस भाँति डोलने लगे मानो रण-स्थल मे योद्धा जूझकर गिरकर तड़फ रहे हो ॥ ८५१ ॥ सारे नगर मे कुहराम मच गया और हाथी तथा घोडे भी व्याकुल होकर गिरने लगे। राम यह क्या खेल खेल गये, इस बात को सोचकर नर-नारी उदास रहने लगे ॥ ८५२ ॥ भरत ने भी योगसाधना करकर अपने तन से योगाग्नि उत्पन्न की और झटककर अपने ब्रह्मरन्ध्र को फोड़कर प्रभु राम की ओर निश्चित रूप से चल पड़े ॥ ८५३ ॥ सकल प्रकार की योगसाधना करते हुए लक्ष्मण ने भी यही किया। लक्ष्मण का भी ब्रह्मरंध्र फट गया और प्रभु-चरणों मे उसके भी प्राण निकल गये ॥ ८५४ ॥ लव-कुश दोनो ने

रघुबर सियहि जरावत भए। अर पित भ्रात तिहूँ कह दहा। राज छत्र लव के सिर रहा ॥ ८५५ ॥ तिहुँअन की इसत्री तिह आई। संगि सती ह्वै सुरग सिधाई। लव सिर धरा राज का साजा। तिहुँअन तिहूँ कुंट किय राजा ॥ ८५६ ॥ उत्तर देश आपु कुश लीआ। भरथ पुत्र कह पूरब बीआ। दछन दिय लछछन के बाला। पछम शत्रुघन सुत बैठाला ॥ ८५७ ॥ ॥ दोहरा ॥ राम कथा जुग जुग अटल सभ कोई भाखत नेत। सुरग बास रघुबर करा सगरी पुरी समेत ॥ ८५८ ॥ (मू०ग्रं०२५३)

॥ इति राम भिरात त्रीअन सहित सुरग गए ॥ सगरी पुरी सहित सुरग गए ॥

॥ चौपई ॥ जो इह कथा सुनै अरु गावै। दूख पाप तिह निकटि न आवै। बिशन भगति की ए फल होई। आधि व्याधि छ्वै सकै न कोई ॥८५९॥ संमत सत्रह सहस पचावन। हाड़ वदी प्रिथमै सुख दावन। त्व प्रसादि करि ग्रंथ सुधारा। भूल परी लहु लेहु सुधारा ॥ ८६० ॥ ॥ दोहरा ॥ नेत्र तुंग

आगे होकर सीता और राम का दाह-संस्कार किया। उन्होंने पिता के भाइयो का भी क्रिया-कर्म किया और इस प्रकार राजछत्र लव ने धारण किया ॥ ८५५ ॥ तीनो भाइयो की स्त्रियाँ भी वहाँ आयी और वे भी सती होकर स्वर्ग सिधार गयी। लव ने राज्य धारण किया और तीनों को तीनो दिशाओं का राजा बना दिया ॥ ८५६ ॥ उत्तर का देश कुश ने स्वयं लिया तथा भरत-पुत्र को पूर्व, लक्ष्मण-सुत को दक्षिण तथा शत्रुघ्न के पुत्र को पश्चिम दिशा का राज्य प्रदान कर दिया ॥ ८५७ ॥ ॥ दोहा ॥ नित्य कही जानेवाली राम की कथा युगों-युगों तक अमर रहेगी और इस प्रकार सारे नगर समेत रघुबीर राम ने स्वर्गवास किया ॥ ८५८ ॥

॥ इति राम-भ्राता स्त्रियो-सहित स्वर्ग गये। सारे नगर-सहित स्वर्ग गये ॥

॥ चौपाई ॥ जो इस कथा को सुनेगा अथवा इसका गायन करेगा, दुःख एवं पाप उसके पास नही आएँगे। विष्णु (रामावतार की) भक्ति का यह फल होगा कि कोई आधि-व्याधि उसे छू नही सकेगी ॥ ८५९ ॥ सवत सत्रह सौ पचपन की अषाढ़ वदी प्रथमा को तुम्हारी (प्रभु की) कृपा से सुधारकर इस ग्रन्थ को सपूर्ण किया; यदि फिर भी इसमें कोई भूल रह गई हो तो (कृपया) सुधार ले ॥ ८६० ॥ ॥ दोहा ॥ पर्वत की घाटी मे सतलज नदी के किनारे पर श्री भगवत्-प्रभु की कृपा से रघुवर

के चरन तर सतद्रव तीर तरंग। स्री भगवत पूरन कियो रघुबर कथा प्रसंग ॥ ८६१ ॥ साध असाध जानो नही बाद सुबाद बिबादि। ग्रंथ सकल पूरण कियो भगवत क्रिपा प्रसादि ॥ ८६२ ॥ ॥ स्वैया ॥ पाँइ गहे जब ते तुमरे तब ते कोऊ आँख तरे नही आन्यो। राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहैं मत एक न मान्यो। सिम्रिति शासत्र बेद सभै बहु भेद कहै हम एक न जान्यो। स्री असिपान क्रिपा तुमरी करि मैं न कह्यो सभ तोहि बखान्यो ॥ ८६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ सगल द्वार कउ छाडि कै गह्यो तुहारो द्वार। बाँहि गहे की लाज असि गोबिंद दास तुहार ॥ ८६४ ॥

॥ इति स्री रामाइण समापतम सतु सुभम सतु ॥

१ ओं वाहिगुरू जी की फ़तह ॥

अथ क्रिशना अवतार इक्कीसमो अवतार कथनं ॥

॥ चौपई ॥ अब बरणो क्रिशना अवतारू। जैस भाँत

कथा के प्रसग को पूरा किया गया ॥ ८६१ ॥ साधु को सभी असाधु के रूप मे तथा सुसवाद को सभी विवाद के रूप मे नही जानना चाहिए। यह सारा ग्रन्थ भगवत्-कृपा से सपूर्ण हुआ है ॥ ८६२ ॥ ॥ सवैया ॥ हे परमात्मन्! जब से मैने तुम्हारे चरण पकड़े है, तब से अब मेरी नज़र मे कोई ठहरता नही अर्थात् मुझे अन्य कोई भी अच्छा नही लगता। पुराण और कुरान तुम्हे राम और रहीम आदि अनेको नामो और कथाओं के माध्यम से तुम्हे जानने की बात करते है, परन्तु मै इनमे से किसी के भी मत को नही मानता। स्मृतियाँ, शास्त्र, वेद तुम्हारे अनेको भेदो का वर्णन करते है, परन्तु मैं एक भी भेद से सहमत नही हूँ। हे खड्गधारी परमात्मन्! यह सब तुम्हारी कृपा से ही वर्णन हुआ है। मुझमे भला इतना (लिख जाने का) सामर्थ्य कहाँ (कि मैं इतना विशाल वर्णन कर सकूँ) ॥ ८६३ ॥ ॥ दोहा ॥ सारे द्वारो को छोडकर मैंने, हे प्रभु! केवल तुम्हारा द्वार पकड़ा है। हे परमात्मन्! तुमने मेरी बाँह पकडी है। यह गोविंद तुम्हारा दास है; बांह पकड़ने की लाज निभाना ॥ ८६४ ॥

॥ इति श्री रामायण की शुभ समाप्ति ॥

कृष्णावतार इक्कीसवाँ अवतार-कथन प्रारम्भ

॥ चौपाई ॥ अब मैं कृष्णावतार का वर्णन करता हूँ कि कैसे मुरारि

बर धर्यो मुरारू। परम पाप ते भूम डरानी। डगमगात बिध तीर सिधानी ॥ १ ॥ ॥ चौपई ॥ ब्रहमा गयो छीरनिध जहाँ। कालपुरख इसथित ते तहाँ। कह्यो बिशन कह निकट बुलाई। क्रिशन अवतार धरो तुम जाई ॥ २ ॥ ॥ दोहरा ॥ कालपुरख के बचन ते संतन हेत सहाइ। मथरा मंडल के बिखै जनम धर्यो हरिराइ ॥ ३ ॥ ॥ चौपई ॥ जे जे क्रिशन चरित्र दिखाए। दसम बीच सभ भाख सुनाए। ग्यारा सहस बानवे छंदा। कहे दसम पुर बैठ अनंदा ॥ ४ ॥ (मू०ग्रं०२५४)

अथ देवी जू की उसतत कथनं ॥

॥ स्वैया ॥ होइ क्रिपा तुमरी हम पै तु सभै सगनंगुन ही धरिहों। जिय धार बिचार तबै बर बुद्धि महाँ अगनंगुन को हरिहौं। बिनु चंड क्रिपा तुमरी कबहूँ मुख ते नही अच्छर हउ करिहौं। तुमरो कर नामु किधो तुलहा जिम बाक समुंद्र बिखै तरिहौं ॥ ५ ॥ ॥ दोहरा ॥ रे मन भज तूँ सारदा

ने शरीर धारण किया। पृथ्वी पाप से डगमगाती हुई विधाता के पास पहुँची ॥ १ ॥ ॥ चौपाई ॥ क्षीरसागर मे जहाँ काल-पुरुष अवस्थित थे, ब्रह्मा वहाँ पहुँचे। कालपुरुष ने विष्णु को पास बुलाकर कहा कि (तुम धरती पर जाकर) कृष्णावतार धारण करो ॥ २ ॥ ॥ दोहा ॥ काल-पुरुष की आज्ञा से सतो के हित के लिए विष्णु ने मथुरा मडल मे आकर जन्म लिया ॥ ३ ॥ ॥ चौपाई ॥ कृष्ण ने जो-जो खेल रूपी चरित्र दिखाये हैं, उनका दशम स्कध मे वर्णन है। दशम स्कध मे कृष्णावतार से सम्बन्धित ग्यारह हजार बानबे छद है ॥ ४ ॥

देवी जी की स्तुति-कथन प्रारम्भ

॥ सवैया ॥ तुम्हारी कृपा होने पर ही मै सर्वगुणों को धारण करूँगा। चित्त मे तुम्हारे गुणो का विचार करता हुआ मैं सर्व अवगुणों का नाश करूँगा। हे चंडिके ! तुम्हारी कृपा के बिना मेरे मुँह से एक अक्षर भी नही निकल सकता है, तुम्हारे नाम की नाव पर ही मैं वाक्य रूपी समुद्र को पार कर सकता हूँ ॥ ५ ॥ ॥ दोहा ॥ हे मन ! तू अगणित गुणो को धारण करनेवाली शारदा का स्मरण कर और यदि उसकी कृपा

अनगन गुन है जाहि। रचौं ग्रंथ इह भागवत जउ वै क्रिपा कराहि ॥ ६ ॥ ॥ कबितु ॥ संकट हरन सभ सिद्ध की करन चंड तारन तरन शरन लोचन बिसाल है। आदि जाकै आहम है अंत को न पारावार शरन उबारन करन प्रतिपाल है। असुर सँघारन अनिक भुख जारन सो पतित उधारन छडाए जमजाल है। देवी बर लाइक सबुद्धिहू की दाइक सु देह बर पाइक बनावै ग्रंथ हाल है ॥ ७ ॥ ॥ स्वैया ॥ अद्र सुता हूँ की जो तनया महिखासुर की मरता फुनि जोऊ। इंद्र को राजहि की दिवया करता बध सुंभ निसुंभहि दोऊ। जो जप कै इह सेव करै बर को सु लहै मन इचछता सोऊ। लोक बिखै उह की सम तुल्ल गरीबनिवाज़ न दूसर कोऊ ॥ ८ ॥

॥ इति स्री देवी जू की उसतति समापतम ॥

अथ प्रिथमी ब्रहमा पहि पुकारत भई ॥

॥ स्वैया ॥ दइतन के भर ते डर ते जु भई प्रिथमी बहु भारहि भारी। गाइ को रूपु तबै धर कै ब्रहमा रिख पै चल

हो तो मैं इस भागवत (पर आधारित) ग्रन्थ की रचना करूँ ॥ ६ ॥ ॥ कवित्त ॥ सब सकटो को हरनेवाली, सिद्धियों को प्रदान करनेवाली, असहायो को भवसागर से पार करवानेवाली तथा विशाल नेत्रों वाली चंडिका है। जिसका आदि-अत जानना कठिन है, जो शरणागत का उद्धार कर उसका पालन करनेवाली है, असुरो का संहार कर अनेक प्रकार की तृष्णाओ को समाप्त करनेवाली और मृत्यु-फाँस से छुड़ानेवाली है, वही देवी वरदान देने और सुबुद्धि देने लायक है। उसकी कृपा हो तो इस ग्रन्थ की रचना हो सकती है ॥ ७ ॥ ॥ सवैया ॥ जो पर्वत की पुत्री है, महिषासुर का नाश करनेवाली, शुभ-निशुंभ का वध करके इन्द्र को राज दिलानेवाली है। उसका जो जाप करके सेवा करता है, वह मनोवांछित फल प्राप्त करता है और सारे ससार में उसके समान ग़रीबनवाज़ दूसरा कोई नही होता है ॥ ८ ॥

॥ इति श्री देवी जी की स्तुति समाप्त ॥

पृथ्वी की ब्रह्मा के पास पुकार

॥ सवैया ॥ दैत्यो के भार से और डर से जब पृथ्वी वहुत भारी

जाइ पुकारी । ब्रह्म कह्यो तुमहूँ हमहूँ मिल जाहि तहाँ जिह है ब्रतधारी । जाइ करैं बिनती तिह की रघुनाथ सुनो इह बात हमारी ।। ९ ।। ।। स्वैया ।। ब्रह्म के अग्र सभै धरकै सु तहाँ को चले तन के तनिआ । तब जाइ पुकार करी तिह सामुहि रोवत ता मुनि ज्यो हनिआ । ता छबि की अति ही उपमा कब ने मन भीतर यौ गनिआ । जिम लूटे ते अग्रज चउधरी कै कुटबार पै कूकत है बनिआ ।। १० ।। लै ब्रहमासुर सैन सभै तह दउर गए जह सागर भारी । जाइ प्रनाम करो तिनको अपनै लखि बारनि बार पखारी । पाइ पए चतुरानन ताहि के देखि बिवान तहा ब्रतिधारी । ब्रहम कह्यो ब्रहमा कह (मू०ग्रं०२५५) जाहु अउतार लै मै जर दैतन मारी ।। ११ ।। ।। स्वैया ।। स्रउनन मै सुनि ब्रहम की बात सभै मन देवन के हरखाने । कै कै प्रनाम चले ग्रहि आपन लोक सभै अपने कर माने । ता छबि को जस उच्च महाँ कब ने अपने मन मै पहिचाने । गोधन भाँत गयो सभ लोक मनो सुर जाइ बहोर कै आने ।। १२ ।। ।। ब्रहम बाच ।। ।। दोहरा ।। फिरि हरि इह

हो गयी तो गाय का रूप धारण कर वह ऋषि ब्रह्मा के पास गई। ब्रह्मा ने कहा कि हम तुम दोनो उस महाविष्णु के पास चलते है और कहते है कि हे रघुनाथ! हम लोगो की प्रार्थना सुनो ।। ९ ।। ।। सवैया ।। ब्रह्मा को आगे करते हुए सभी बलशाली लोग उस ओर चले और मुनि आदि महाविष्णु के पास इस प्रकार रोने लगे कि मानो उन्हें किसी ने मारा हो। उस दृश्य की छवि कवि को वर्णित करते हुए कहा है कि वे ऐसे लग रहे थे कि जैसे चौधरी के द्वारा लूटे जाने पर कोतवाल के सम्मुख कोई बनिया चीखता-चिल्लाता हो ।। १० ।। ब्रह्मा सभी देवताओ और सेनाओ को साथ लेकर क्षीरसागर मे पहुँचे और जाकर जल से (महाविष्णु के) चरण धोये। उस महाव्रतधारी कालपुरुष को देख चतुरानन ब्रह्मा उनके पांव पड़े तथा इस पर परब्रह्म ने ब्रह्मा से कहा कि तुम जाओ, मैं अवतार लेकर दैत्यो का नाश करूँगा ।। ११ ।। ।। सवैया ।। ब्रह्मा की बात को सुन सभी देवता हर्षित हो उठे और अपनी बात को मनवाते हुए सभी प्रणाम करके अपने-अपने निवास पर चले गये। उस छवि को कवि ने पहचानते हुए कहा है कि वे इस प्रकार जा रहे थे मानो गायों का झुंड जा रहा हो ।। १२ ।। ।। ब्रह्म उवाच ।। ।। दोहा ।। फिर परमात्मा ने सभी देवों को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम लोग भी जाकर अवतार

आज्ञा दई देवन सकल बुलाइ। जाइ रूप तुमहूँ धरो हउ हूँ धरिहौ आइ ॥ १३ ॥ बात सुनी जब देवतन कोट प्रनाम जु कीन। आप समेत सुधामिऐ लीने रूप नवीन ॥ १४ ॥ ॥ दोहरा ॥ रूप धरे सभ सुरन यौ भूम माहि इह भाइ। अब लीला देवकी की मुख ते कहौ सुनाइ ॥ १५ ॥

॥ इति स्री बिशन अवतार ह्वैबो बरननं ॥

अथ देवकी को जनम कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ उग्रसैन की कंनका नाम देवकी तास। सोमवार दिन जठर ते कीनो ताहि प्रकाश ॥ १६ ॥

॥ इति देवकी को जनम बरनन प्रिथम धिआइ समापतम सतु ॥

अथ देवकी को बर ढूँढवो कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ जबै भई वहि कंनिका सुंदर बर के जोगु। राज कही बर के नमित ढूँढहु अपना लोगु ॥ १७ ॥ ॥ दोहरा ॥ दूत पठ्यो तिन जाइकै निरख्यो है बसुदेव। मदन

धारण करो और फिर मैं भी आता हूँ ॥ १३ ॥ जब देवताओ ने यह सुना तो प्रणाम करते हुए अपनी पत्नियो-समेत उन्होने नवीन रूप (ग्वाल-ग्वालिनो का) धारण कर लिया ॥ १४ ॥ ॥ दोहा ॥ देवता सब इस प्रकार रूप धारण करके पृथ्वी पर आ गये और अब मैं देवकी की कथा कहता हूँ ॥ १५ ॥

॥ श्री विष्णु के अवतार होने के वर्णन की समाप्ति ॥

देवकी का जन्म-कथन

॥ दोहा ॥ उग्रसेन की देवकी नामक कन्या का जन्म सोमवार के दिन हुआ ॥ १६ ॥

॥ इति देवकी का जन्म-वर्णन प्रथम अध्याय समाप्त ॥

देवकी के वर ढूँढ़ने का कथन

॥ दोहा ॥ जब वह सुन्दरी कन्या विवाह के योग्य हुई, तब राजा ने अपने लोगो से उसका वर ढूंढने के लिए कहा ॥ १७ ॥ ॥ दोहा ॥ दूत

बदन सुख को सदन लखै तत्त को भेव ॥ १८ ॥ ॥ कबितु ॥ दीनो है तिलकु जाइ भाल बसुदेव जू के डार्यो नारीएर गोद माहि दै असीस कौ । दीनी है बडाई पै मिठाई हूँ ते मीठी सभ जन मन भाई अउर ईसन के ईस कौ । मन जो पै आई सो तो कहिकै सुनाई ताकी सोभा सभ भाई मन मद्ध धरनीस कौ । सारे जग गाई जिन सोभा जाकी गाई सो तो एक लोक कहा लोक भेदे बीस तीस कौ ॥१९॥ ॥ दोहरा ॥ कंस बासदेवं तबै जोर्यो ब्याह समाज । प्रसन्य भए सभ धरन मै बाजन लागे बाज ॥ २० ॥

अथ देवकी को ब्याह कथनं ॥

॥ स्वैया ॥ आसनि दिज्जन को धरकै तर ताको नवाइ लै जाइ बैठायो । कुंकम को घस कै कर प्रोहति बेदन की धुनि सो तिह लायो । डारत फूल पंचांम्रित अच्छत मंगलाचार भयो मन भायो । भाट कलावत अउर गुनी सभ लै (मू०ग्रं०२५६) **बखशीश महाँ जसु गायो ॥ २१ ॥ ॥ दोहरा ॥ रीत बरातन**

को भेजा गया जिसने मदन के समान मुखवाले और सभी सुखो के सदन तथा तत्त्ववेत्ता वसुदेव को पसन्द कर लिया ॥ १८ ॥ ॥ कवित्त ॥ उसने जाकर वसुदेव की गोद मे नारियल डालते हुए और उसे आशीर्वाद देते हुए उसको तिलक लगा दिया । मिठाई से भी मीठी उसकी गुणस्तुति की जो ईश्वर को भी अच्छी लगी । घर आकर उसने घर की स्त्रियो के समक्ष भी मन भर के प्रशंसा की । सारे जग मे उसकी शोभा का गायन किया गया और उसकी गूँज इस लोक को क्या बीस-तीस लोको को भेदकर गूँजने लगी ॥ १९ ॥ ॥ दोहा ॥ इधर कंस ने उधर वसुदेव ने विवाह का उपक्रम किया तथा सारी धरती पर प्रसन्नता छा गई तथा खुशी के वाद्य बजने लगे ॥ २० ॥

देवकी का विवाह-कथन

॥ सवैया ॥ द्विजों को आसन देते हुए उन्हें सम्मानपूर्वक बैठाया गया और उन्होने कुंकुम आदि को घिसकर वेदध्वनि करते हुए वसुदेव के माथे पर लगाया गया तथा फूल, अक्षत एवं पचामृत आदि डालते हुए मंगलाचार के गीत गाये गये । इस अवसर पर भाट, कलाकार तथा अन्य गुणी जनों ने उनके यश का गुणानुवाद किया और पुरस्कार प्राप्त

दुलह् की बासदेव सम कौन। तबै काज चलबे नमित मथरा मै मनु दीन ॥ २२ ॥ बासदेव को आगमन उग्रसैन सुन लीन। चमूँ सभै चतुरंगनी भेज अगमनै दीन ॥२३॥ ॥ स्वैया ॥ आपस मै मिलबे हित कौ दल साज चलै धुजनी पति ऐसे। लाल करे पट पैंडर के सर रंग भरे प्रतनापति कैसे। रंचक ता छब ढूंड लई कब ने मन के पुन भीतर मै से। देखन कउतक ब्याहहि को निकसे इह कुंकम आनंद जैसे ॥ २४ ॥ ॥ दोहरा ॥ कंस अवर बसदेव जू आपसि मै मिल अंग। तबै बहुरि देवन लगे गारी रंगारंग ॥ २५ ॥ ॥ सोरठा ॥ दुंदभ तबै बजाइ आए जो मथुरा निकटि। ता छबि को निरखाइ हरख भयो हरिखाइ कै ॥ २६ ॥ ॥ स्वैया ॥ आवत कौ सुनिकै बसदेवहि रूप सजे अपने तन नारी। गावत गीत बजावत ताल दिवावति आवत नागर गारी। कोठन पै निरखै चड़ तासन ता छब की उपमा जिय धारी। बैठ बिवान कुटंब समेत सु देखत देवन की महतारी ॥ २७ ॥ ॥ कबित्तु ॥ बासदेव आयो राजै मंडल बनायो मन महाँ सुख पायो ताको आनन निरख कै। सुगंध

किये ॥ २१ ॥ ॥ दोहा ॥ वसुदेव ने वारात की सारी तैयारी करके मथुरा की ओर चलने का उपक्रम किया ॥ २२ ॥ उग्रसेन ने जब वसुदेव का आगमन सुना तो स्वागत के लिए उसने अपनी चतुरगिनी सेना को पहले ही भेज दिया ॥ २३ ॥ ॥ सवैया ॥ आपस मे मिलाप के लिए दोनो ओर के दल चल पड़े। इन सबने लाल रंग की पगडियाँ बाँध रखी थी और वे रस-रंग भरे शोभायमान हो रहे थे। कवि उस छवि की उपमा देते हुए थोड़े मे वर्णन करते हुए कहता है कि वे सब ऐसे लग रहे थे जैसे केसर की क्यारियाँ इस विवाह के आनन्ददायक कौतुक को देखने के लिए अपने घर से निकल पडी हो ॥ २४ ॥ ॥ दोहा ॥ कस और वसुदेव आपस में गले मिले और पुनः एक-दूसरे को रंगारंग गालियो के उपहार देने लगे ॥ २५ ॥ ॥ सोरठा ॥ दुन्दुभियाँ बजाते हुए वे मथुरा के समीप आये और इनकी इस छवि को देख सभी हर्षित हो उठे ॥ २६ ॥ ॥ सवैया ॥ वसुदेव का आना सुन सभी स्त्रियाँ सज-धजकर ताल पर गाने लगी और आती हुई बारात को गालियाँ निकालने लगी। छतों पर चढकर देखती हुई स्त्रियों की छवि की उपमा देते हुए कवि ने कहा है कि वे ऐसी लग रही है कि मानो देवताओ की माताएँ इस विवाह को विमानों मे बैठकर देख रही हो ॥ २७ ॥ ॥ कवित्त ॥ वसुदेव के आने पर

लगायो राग गाइनन गायो तिसै बहुतु दिवायो बर ल्यायो जो परख कै। छाती हाथु लायो सीस न्यायो उग्रसैन तबै आदर पठायो पूज मन मै हरख कै। भयो जन मंगनन भूम पर बादर सो राजा उग्रसैन गयो कंचन बरख कै ॥ २८ ॥
॥ दोहरा ॥ उग्रसैन तब कंस को लयो हजूर बुलाइ। कह्यो साथ तुम जाइकै देहु भंडार खुलाइ ॥ २९ ॥ अउर समगरी अंन्य की लै जा ता के पासि। करि प्रनामु ता को तबै इउ करियो अरदास ॥ ३० ॥ काल रात्र को ब्याह कै कंसहि कही सुनाइ। बासदेव प्रोहत कही भली जु तुमै सुहाइ ॥ ३१ ॥ कंस कह्यो करि जोरि तब सभै बात को भेव। साध साध पंडत कह्यो अस मानी बसदेव ॥३२॥ ॥स्वैया॥ रात बितीत भई अर प्रात भई फिर रात तबै चड़ आए। छाड दए हथि फूल हजार दोऊ भव प्योधर ऐस फिराए। अउर हवाइ चली नभ को उपमा तिहकी कबि स्याम सुनाए। (मू०ग्रं०२५७) देखहि कउतक

राजा ने मण्डप बनवाया और उसके सुन्दर मुख को देखकर प्रसन्नता प्राप्त की। सब पर सुगन्धियाँ छिड़की गयी। गायन प्रस्तुत किये गये तथा जो दूत वर को पसन्द करके आया था उसे बहुत सा पुरस्कार दिया गया। छाती पर हाथ रखते हुए प्रसन्नतापूर्वक सिर झुकाते हुए उग्रसेन ने मन में प्रसन्न होते हुए वर की पूजा-अर्चना की और इस समय राजा उग्रसेन स्वर्ण के बादल के समान सोना बरसानेवाला राजा लग रहे थे अर्थात् उसने अनन्त स्वर्णमुद्राएँ दान में माँगनेवाले को दी ॥ २८ ॥
॥ दोहा ॥ तब उग्रसेन ने कंस को अपने पास बुलाकर कहा कि जाओ, तुम साथ जाकर दान-पुण्य के लिए समूचा भण्डार खुलवा दो ॥ २९ ॥ कस ने अन्न आदि सामग्री ले आते हुए प्रणाम करके वसुदेव के सम्मुख यह प्रार्थना की ॥ ३० ॥ कंस ने कहा कि विवाह अमावस्या की रात को होना निश्चित हुआ है। इस पर वसुदेव के पुरोहित ने यह कहकर कि जैसी आपकी इच्छा, अपनी स्वीकारोक्ति दी ॥ ३१ ॥ तब इधर आकर हाथ जोड कस ने सारी बात कह सुनाई और जब पडितो को पता लगा कि वसुदेव पक्ष के लोग विवाह की तिथि एव मुहूर्त मान गये हैं तो सबो ने उन्हे मन से साधुवाद दिया ॥ ३२ ॥ ॥ सवैया ॥ रात्रि व्यतीत हुई, प्रातःकाल हुआ और फिर रात हुई तो उस रात्रि मे सहस्रों फूलो का रंग बिखेरती हुई आतिशबाजियाँ चलाई गयी। आसमान मे हवाइयों को उड़ते देखकर कवि श्याम यह उपमा देते हुए कहता है कि ऐसा लगता है

देव सभै तिह ते मनो कागद कोट पठाए ॥३३॥ ॥ स्वैया ॥ लै बसदेव को अग्र प्रोहत कंसहि के चल धाम गए है। आगे ते नार भई इक लेहस गागर पंडत डार दए है। डार दए लडुआ गह झाटनि ताको सोऊ वहि भच्छ गए है। जादव बंस दुहूँ दिस ते सुनिकै सु अनेकिक हास भए है ॥३४॥ ॥ कबित्तु ॥ गावत बजावत सु गारन दिवावत सु आवत सुहावत है मंद मंद गावती। केहरी सी कटि अउ कुरंगन से द्रिग जा के गज कै सी चाल मन भावत सु आवती। मोतिन के चउकि करे लालन कै खारे धरे बैठे तबै दोऊ दूलहि दुलही सुहावती। बेदन की धुन कीनी दच्छनादि जन दीनी लीनी सात भावरै जो भावते सो भावती ॥ ३५ ॥ ॥ दोहरा ॥ रात भए बसुदेव जू कीनो तहाँ बिलासि। प्रात भए उठकै तबै गयो ससुर के पासि ॥ ३६ ॥ ॥ स्वैया ॥ साज समेत दए हय उतगज अउर दए त्रिगुणी रथनारे। लच्छ भटं दस लच्छ तुरंगम ऊँट अनेक भरे जर भारे। छत्तीस कोट दए दल पैदल संगि किधो तिनके रखवारे।

मानो देवतागण इस कौतुक को देखते हुए कागज़ के किले नभमण्डल मे उड़ा रहे हो ॥ ३३ ॥ ॥ सवैया ॥ वसुदेव को लेकर पुरोहित कंस के घर की तरफ चले है और आगे से एक सुन्दर स्त्री को देखकर पडितो ने गगरी गिरा दी है और उसमे से झटके से लड्डू गिर गये है। इन लड्डुओ को वे पुनः उठाकर खा गये हैं, इस बात को जानकर यादव वंश के दोनो लोगो की अनेको प्रकार की हँसी हुई है ॥ ३४ ॥ ॥ कवित्त ॥ गाती-बजाती और गाली देती हुई तथा मन्द-मन्द गाती हुई स्त्रियाँ शोभायमान हो रही है। सिंहो के समान उनकी पतली कटि हैं, हिरण के समान उनकी आँखे है और हाथी जैसी चाल मे वे आती हुई शोभायमान हो रही हैं। मोतियो के चौक मे और हीरे-लालो के आसनो पर बैठे दोनों वर-वधू शोभायमान हो रहे है। वेदध्वनि एव दक्षिणादि के लेन-देन के बीच उस परमात्मा की इच्छानुसार वर-वधू के सात फेरे होकर विवाह सम्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ ॥ दोहा ॥ रात्रि मे वसुदेव जी ने वही निवास किया और प्रातः उठकर वे ससुर (उग्रसेन) के पास गये ॥ ३६ ॥ ॥ सवैया ॥ सुसज्जित हाथी-घोड़े और उनसे तीन गुने रथ दिये गये। एक लाख शूरवीर, दस लाख घोड़े और स्वर्ण से लदे अनेको ऊँट दिये गये। छत्तीस करोड़ पैदल सैनिक दिये गये जो मानो इन सबकी रखवाली के लिए दिये गये हो तथा कस स्वय इन सबकी रक्षा करने के लिए (देवकी

कंस तवै तिह राखन कउ मनो आप भए रथ के हकवारे ॥ ३७ ॥ ॥ दोहरा ॥ कंस लवाए जात तिन सकल प्रबल दल साज। आगे ते स्रबनन सुनी बिध की असुभ अवाज ॥ ३८ ॥ ॥ नभि बानी बाच कंस सों ॥ ॥ कबित्तु ॥ दुक्ख के हरन त्रिद्ध सिद्ध के करन रूप मंगल धरन ऐसो कह्यो है उचार कै। लिए कहा जात तेरो काल है रे मूड़ मति आठवो गरभ याको तोको डारै मार कै। अचरज मान लीनो मन मै बिचार इह काढ कै क्रिपान डारो इनही सँघार कै। जाहिगे छपाइ कैसु जानी कंस मन माहि इहै बात भली डारों जर ही उखार कै ॥ ३९ ॥ ॥ दोहरा ॥ कंस दुहू के बध नमित लीनो खड़ग निकार। बासदेव अरु देवकी डरे दोऊ नरि नार ॥ ४० ॥ ॥ बासदेव बाच कंस सो ॥ ॥ दोहरा ॥ बासदेव डर मान कै तासो कही सुनाइ। जो याही ते जनम है मारहु ताकहु राइ ॥ ४१ ॥ ॥ कंस बाच मन मै ॥ ॥ दोहरा ॥ पुत्र हेत के भाव सौ मति इह जाइ छपाइ। बंदीखाने देउ इन इहै बिचारी राइ ॥ ४२ ॥

और वसुदेव के) रथ का सारथी बन गया ॥ ३७ ॥ ॥ दोहा ॥ कंस जब सारे दल को लेकर चला जा रहा था तो आगे जाने पर उसने एक अदृश्य अशुभ आवाज़ सुनी ॥ ३८ ॥ ॥ आकाशवाणी उवाच कंस के प्रति ॥ ॥ कवित्त ॥ दुःख को हरनेवाले और वृहद् सिद्धियो की साधना करनेवाले तथा मगलकारी प्रभु ने आकाशवाणी के माध्यम से कहा कि "हे मूर्ख ! तुम अपने काल को कहाँ ले जा रहे हो। इस (देवकी) का आठवाँ पुत्र तुम्हारा कोल होगा।" कस ने आश्चर्यचकित हो मन मे यह विचार किया कि कृपाण निकाल इनका ही सहार कर दिया जाय। कब तक इस तथ्य को छिपाकर रखा जायेगा और इनसे बचा जायेगा। अत: इसी मे भला है कि मैं इस डर की जड़ ही नष्ट कर दूँ ॥ ३९ ॥ ॥ दोहा ॥ कस ने दोनो का वध करने के लिए खड्ग निकाल लिया और यह देखकर वसुदेव और देवकी दोनो पति-पत्नी भयभीत हो उठे ॥ ४० ॥ ॥ वसुदेव उवाच कस के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ वसुदेव ने डरते हुए कस से कहा कि तुम देवकी को मत मारो, अपितु, हे राजन् ! जो इससे जन्म लेगा तुम उसका वध कर देना ॥ ४१ ॥ ॥ कस उवाच मन मे ॥ ॥ दोहा ॥ कही ऐसा न हो कि पुत्र के मोह मे यह अपनी सतान मुझसे छिपा दे, इसलिए मेरा विचार है कि [illegible] ब[illegible] मे डाल दिया जाय ॥ ४२ ॥

अथ देवकी बसदेव कैद कीबो ॥

॥ स्वैया ॥ डार (मू०ग्रं०२५८) जंजीर लए तिन पाइन पै फिरकै मथरा महि आयो। सो सुनिकै सभ लोग कथा अति नाम बुरो जग मै बिथरायो। आन रखै ग्रह आपन मै रखवारी को सेवक लोग बिठायो। आन बडेन की छाड दई कुल भीतर आपनो राह चलायो ॥४३॥ ॥कबियो बाच॥ ॥दोहरा॥ कितक दिवस बीते जबै कंसराज उतपात। तबै कथा अउरै चली करम रेख की बात ॥ ४४ ॥

प्रथम पुत्र देवकी के जनम कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ पुत्र भयो देवकी कै कीरतमत तिह नामु। बासदेव लै ताहि को गयो कंस कै धाम ॥४५॥ ॥ स्वैया ॥ लै करि तात को तात चल्यो जब ही न्रिप कै दर ऊपर आयो। जाइ कह्यो दरवानन सों तिन बोलकै भीतर जाइ जनायो। कंस करी करना सिस देख कह्यो हमहूँ तुम को बखशायो।

देवकी-वसुदेव को कैद करने का कथन

॥ सवैया ॥ उनके पैरो मे जंजीर डाल कस वापस उन्हे मथुरा ले आया और सब लोगो ने जब यह बात जानी तो कंस के नाम पर बहुत बुरा-भला कहा। कस ने उन्हे अपने ही घर मे कैद करके रखा और चौकीदारी के लिए सेवको को बैठाकर इस प्रकार अपने पुरखो की परम्पराओ को छोड़ते हुए अपने वश मे अपनी ही आज्ञा मानने के लिए सबको बाध्य कर दिया ॥ ४३ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ कसराज के राज्य मे उत्पात होते हुए कितने ही दिन बीत गये और इस प्रकार भाग्य की रेखा के अनुसार और की और ही बात बन गई ॥ ४४ ॥

देवकी के प्रथम पुत्र का जन्म-कथन

॥ दोहा ॥ देवकी के कीरतमति नाम का पहला पुत्र हुआ और वसुदेव उसे ले कंस के घर पहुँचे ॥ ४५ ॥ ॥ सवैया ॥ पुत्र को ले पिता जब राजद्वार पर पहुँचा तो उसने जाकर दरबान को कस से कहने के लिए कहा। शिशु को देखकर दया करते हुए कंस ने कहा कि हमने

फेरि चल्यो ग्रह को बसदेव तऊ मन मै कछु ना सुखु पायो ॥४६॥ ॥ बसदेव बाच मन मै ॥ ॥ दोहरा ॥ बासदेव मन आपने कीने इहै बिचार । कंस मूड़ दुरमति बडो याकौ डरिहै मारि ॥ ४७ ॥ ॥ नारद रिख बाच कंस प्रति ॥ ॥ दोहरा ॥ तब मुनि आयो कंस ग्रहि कही बात सुनि राइ । अष्ट लीक करकै गनी दीनो भेद बताइ ॥४८॥ ॥ अथ भ्रितन सौ कंस बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ बात सुनी जब नारद की इह तो न्रिप के मन माहि भई है । मारहु जाइ इसै अब ही करि भ्रितन नैन की सैन दई है । दउर गए तिह आइस मान कै बात इहै चल लोग गई है । पाथर पै हनि कै घनि जिउँ पुन जीवहि ते करि भिन लई है ॥ ४९ ॥ ॥ प्रिथम पुत्र बधहि ॥ ॥ स्वैया ॥ अउर भयो सुत जो तिहके ग्रहि तउ न्रिप कंस महा मति हीनो । सेवक भेज दए तिन ल्याइकै पाथर पै हनि कै पुनि दीनो । शोर पर्‍यो सभ ही पुर मै कबि नै तिह को जस इउ लख लीनो । इंद्र मुओ सुनिकै रन मै मिल कै सुरमंडल रोदन कीनो ॥ ५० ॥ अउर भयो सुत जो तिह के ग्रह नाम धर्‍यो

तुमको क्षमा कर दिया । वसुदेव वापस घर को चल पड़े, परन्तु उनको मन मे फिर भी खुशी नही थी ॥ ४६ ॥ ॥ वसुदेव उवाच मन मे ॥ ॥ दोहा ॥ वसुदेव ने मन में विचार किया कि कस बड़ा दुर्मति है, डरता हुआ इस शिशु को अवश्य मार डालेगा ॥ ४७ ॥ ॥ नारद ऋषि उवाच कस के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ तब ऋषि नारद कस के पास आये और उससे आठ लकीरे खीचते हुए कुछ भेद की बाते बताईं ॥ ४८ ॥ ॥ कस उवाच सेवको के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ जब नारद की बात राजा ने सुनी तो बात उसको लग गई । नौकरो को संकेत से समझाते हुए कस ने कहा, कि उस शिशु को अभी शीघ्र ही मार दो । उसकी आज्ञा मान वे सब दौड़कर चले गये और हथौड़े की तरह उसे पत्थर पर पटकते हुए उसकी जीवात्मा को उसके शरीर से अलग कर दिया अर्थात् उसे मार दिया ॥ ४९ ॥ ॥ प्रथम पुत्र का वध ॥ ॥ सवैया ॥ एक पुत्र और जो वसुदेव और देवकी के यहाँ हुआ उसे भी मतिहीन कस ने सेवको को भेजकर पत्थर पर पटककर मारकर उन्हे वापस दे दिया । सारी नगरी मे इस कृत्य के बारे में सुनकर कोलाहल मच गया और कवि को यह कोलाहल ऐसा लगा मानो इद्र के मरने पर सुरमडल मे रुदन की आवाजे उठ रही हो ॥ ५० ॥ एक और पुत्र उनके यहाँ हुआ जिसका नाम उन्होने 'जय' रखा, परन्तु उसे भी राजा

तिह को तिन हूँजै । मार दयो सुनिकै न्रिप कंस सु पाथर पै हनि डारिओ खूँजै । सीस के बार उखारत देवकी रोदन चोरन तें घरि गूँजै । जिउँ रुत अंत बसंत समै नभि कों जिम जात पुकारत कूँजै ।। ५१ ।। ।। कबित्तु ।। चउथो पुत्र भयो सो भी कंस मार दयो (मू०ग्रं०२५६) तिह शोक बड़वा की लाटैं मन मैं जगत है । परी हैगी दासी महा मोहहू की फासी बीच गई मिट सोभा पै उदासी ही पगत है । कैधौ तुम नाथ ह्वै सनाथ हमहूँ पै हूँजै पत की न गति और तन को न गत है । भई उपहासी देह पूतन बिनासी अबिनासी तेरी हासी हमै गासी सी लगत है ।। ५२ ।। ।। स्वैया ।। पाचवो पुत्र भयो सुनि कंस सु पाथर सौं हनि मारि दयो है । स्वास गयो नभि के मग मैं तन ताको किधौ जमना मै गयो है । सो सुनि कै पुन स्रोनन देवकी शोक सौं सास उसास लयो है । मोह भयो अति ता दिन मै मनो याही ते मोह प्रकाश भयो है ।। ५३ ।। ।। देवकी बेनती बाच ।। ।। कबित्तु ।। पुत्र भयो छठो बंस सो भी मारि डार्यो कंस देवकी पुकारी नाथ बात सुनि लीजिऐ । कीजिऐ अनाथ

कंस ने पत्थर पर दे मारा । देवकी शोक में सिर के बाल नोचने लगी और इस प्रकार रुदन करने लगी जैसे बसंत ऋतु मे क्रौंच पक्षी आकाश मे क्रन्दन करते हुए जाते है ।। ५१ ।। ।। कवित्त ।। चौथा पुत्र हुआ उसे भी कंस ने मार दिया और दुःख की ज्वालाएँ वसुदेव-देवकी के हृदय में जलने लगी । महामोह की फाँसी गले में पड़ जाने से सारा सौंदर्य (देवकी का) समाप्त हो गया और वह उदासी मे डूब गई । वह कहती है कि हे ईश्वर! तुम कैसे नाथ हो और हम कैसे सनाथ है कि हमे न तो सम्मान ही मिल रहा है और न हमारे शरीर की ही कोई सुगति है । पुत्र के मरण के कारण भी हमारा उपहास ही हो रहा है, अतः, हे अविनाशी प्रभु! तुम्हारा यह क्रूर मजाक हमे तीर की तरह तीक्ष्णता से चुभ रहा है ।। ५२ ।। ।। सवैया ।। कंस ने पाँचवे पुत्र के जन्म के बारे मे सुनकर उसे भी पत्थर पर पटककर मार दिया । उसका प्राण तो गगनमडल मे गया तथा उसकी देह यमुना में प्रवाहित कर दी गई । यह सुनकर देवकी ठडी साँसे भरने लगी और मोह मे उसे उस दिन इतना अधिक कष्ट हुआ और ऐसा लगने लगा मानो देवकी से ही मोह की उत्पत्ति हुई हो ।। ५३ ।। ।। देवकी प्रार्थना उवाच ।। ।। कवित्त ।। जब छठवाँ पुत्र भी कस ने मार डाला तो देवकी ने परमात्मा से प्रार्थना की कि दीनानाथ! या तो हम लोगो को मार डालो या

न सनाथ मेरे दीनानाथ हमै मार दीजिऐ कि याको मार दीजिऐ। कंस बडो पापी जाको लोक भयो जापी सोई कीजिऐ हमारी दसा जाते सुखी जीजिऐ। स्रोनन मै सुनि असवारी गजवारी करो लाइऐ न ढील अब दो मै एक कीजिऐ ॥ ५४ ॥

॥ इति छठवो पुत्र बधह ॥

अथ बलभद्र जनम ॥

॥ स्वैया ॥ जौ बलभद्र भयो गरभांतर तौ दुहूँ बैठ कै मंत्र कर्यो है। ताही ते मंत्र के जोर सो काढ कै रोहनी के उर बीच धर्यो है। कंस कदांच हनै सिस को तिह ते मन मै बसदेव डर्यो है। सेख मनो जग देखन को जग भीतर रूप नवीन कर्यो है ॥ ५५ ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिशन क्रिशन करि साध दो बिशन क्रिशन पति जास। क्रिशन बिशव तरबे नमित तन मै कर्यो प्रकाश ॥ ५६ ॥

कस को मार दो। कंस बड़ा पापी है, जिसे लोग अपना राजा मानकर उसके नाम का स्मरण करते हैं; हे प्रभु! इसकी भी वही दशा कर दीजिए जो हमारी दशा है। मैंने सुना है कि आपने गज के प्राण बचाये थे, अतः हमारे लिए भी अविलम्ब दो मे से एक कार्य करने की कृपा करे ॥ ५४ ॥

॥ छठवाँ पुत्र-वध समाप्त ॥

बलभद्र-जन्म (-कथन)

॥ सवैया ॥ जब बलभद्र गर्भ मे आये तो दोनो (देवकी-वसुदेव) ने बैठकर विचार-विमर्श किया और मत्र-बल से उसे देवकी के गर्भ से निकालकर रोहिणी के गर्भ मे स्थानांतरित कर दिया। कदाचित् कस इसका भी वध कर देगा, यह सोचकर वसुदेव भयभीत हो गये। ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो शेषनाग ने ससार देखने के लिए नवीन रूप धारण किया हो ॥ ५५ ॥ ॥ दोहा ॥ दोनो (देवकी और उसका पति) अत्यन्त साधुभाव से मायापति विष्णु का स्मरण करने लगे और इधर विष्णु ने कालिमायुक्त विश्व का उद्धार करने के लिए देवकी के शरीर मे निवास कर उसे प्रकाशित कर दिया ॥ ५६ ॥

अथ क्रिशन जनम ॥

॥ स्वैया ॥ संख गदा कर अउर त्रिसूल धरे तन कउच बडे बडभागी । नंद गहै कर सारंग सारंग पीत धरे पट पै अनुरागी । सोई हुती जनम्यो इह के ग्रहि कै डरपै मन मै उठ जागी । देवकी पुत्र न जान्यो लख्यो हरि कै कै प्रनाम सु पाइन लागी ॥ ५७ ॥ ॥ दोहरा ॥ लख्यो देवकी हरि मनै लख्यो न कर कर तात । लख्यो जानकर मोहि की तानी तान कनात ॥ ५८ ॥ क्रिशन जनम जब ही भयो देवन भयो हुलास । शत्र सभै अब नास होहि हमको होइ बिलास ॥ ५९ ॥ ॥ दोहरा ॥ आनंद सों सभ देवतन सुमन दीन बरखाइ (मू०ग्रं०२६०) शोक हरन दुशटन दलन प्रगटे जग मो आइ ॥ ६० ॥ जै जै कार भयो जबै सुनी देवकी कान । त्रासत हुइ मन मै कह्यो शोर करै को आन ॥ ६१ ॥ ॥ दोहरा ॥ बासदेव अरु देवकी मंत्र करै मन माहि । कंस कसाई जानकै हिऐ अधिक डरपाहि ॥ ६२ ॥

॥ इति क्रिशन जनम बरननं ॥

कृष्ण-जन्म (-कथन)

॥ सवैया ॥ तन पर कवच, हाथो मे शंख-गदा तथा त्रिशूल, कृपाण एव धनुष धारण किये हुए, पीताम्बर पहने हुए विष्णु जी (कृष्ण के रूप मे) सोती हुई देवकी के उदर से प्रकट हुए और देवकी डर के मारे जगकर बैठ गयी । देवकी को यह पता न लगा कि उसके पुत्र पैदा हुआ है । वह साक्षात् विष्णु को देखकर उन्हे चरणो पर प्रणाम करने लगी ॥ ५७ ॥ ॥ दोहा ॥ देवकी ने उन्हे पुत्र न माना, अपितु परमात्मा के रूप मे देखा, परन्तु फिर भी माँ होने के नाते उसका मोह बढने लगा ॥ ५८ ॥ जैसे ही कृष्ण का जन्म हुआ, देवगण हर्षित हो उठे और सोचने लगे कि अब शत्रुओ का नाश होगा और हमको अधिक प्रसन्नता प्राप्त होगी ॥ ५९ ॥ ॥ दोहा ॥ प्रसन्न होकर देवताओ ने पुष्प-वर्षा की और यह माना कि शोको को तथा दुष्टो का दलन करनेवाले (विष्णु) ससार मे प्रकट हो गये है ॥ ६० ॥ जब जय-जयकार को देवकी ने अपने कानो से सुना तो वह डरते हुए मन मे सोचने लगी कि यह कौन शोर कर रहा है ॥ ६१ ॥ ॥ दोहा ॥ वसुदेव और देवकी आपस मे विचार करने लगे और क़साई कस के बारे मे सोचकर हृदय मे अधिक डरने लगे ॥ ६२ ॥

॥ कृष्ण-जन्म-वर्णन समाप्त ॥

॥ स्वैया ॥ मंत्र विचार कर्यो दुहहूँ मिल मार डरै इह को मत राजा । नंदहि के घरि आइ हो डार कै ठाट इही मन मै तिन साजा । कान्ह कह्यो मन मै न डरो तुम जाहु निशंक बजावत बाजा । माया की खैंच कनात लई धरि बालक सउरभ आप बिराजा ॥ ६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिशन जबै तिन ग्रिह भयो बासदेव इह कीन । दस हजार गाई भली मनै मनस करि दीन ॥ ६४ ॥ ॥ स्वैया ॥ छूटि किवार गए घरि के दरि के न्रिप के बरके चलते । हरखे सरखे बसदेवहि के पग जाइ छुयो जमुना जल ते । हरि देखन कौ हरि अउ बडके हरि दउर गए तन के बल ते । काज इही कहि दोऊ गए जु खिझे बहु पापन की मलते ॥ ६५ ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिशन जबै चड़ती करी फेर्यो माया जाल । असुर जिते चउकी हुते सोइ गए ततकाल ॥६६॥ ॥ स्वैया ॥ कंसहि के डरते बसदेव सु पाइ जबै जमना मधि ठानो । मान कै प्रीत पुरातन को जल पाइन भेटन काज उठानो । ता छबि को जस ऊच महा कबि ने अपने मन मै

॥ सवैया ॥ दोनो ने मिलकर यह विचार किया कि कही राजा इस पुत्र को मार न दे इसलिए इसे नद के घर जाकर छोड़ा जाय । कृष्ण ने कहा, आप बिलकुल भयभीत न हो और शका-रहित होकर जाइए । इतना कहकर कृष्ण ने अपनी योगमाया का प्रसार चारों ओर कर दिया और स्वय एक सुन्दर बालक के रूप मे विराजमान होने लगे ॥ ६३ ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण के पैदा होते ही वसुदेव ने मन-ही-मन (कृष्ण की रक्षा-हित) दस हजार गायो का दान कर दिया ॥ ६४ ॥ ॥ सवैया ॥ बसुदेव के चलते ही घर के किवाड़ खुल गये । वसुदेव के पैर प्रसन्न होकर आगे बढने लगे और उन्होने जाकर यमुना में प्रवेश किया । कृष्ण को देखने के लिए यमुना का जल बढा और शेषनाग भी बलपूर्वक दौडकर आया तथा उसने फन फैलाकर चँवर किया तथा साथ-ही-साथ यमुना के जल और शेषनाग दोनों ने ससार मे बढती हुई पाप की मैल के बारे मे भी कृष्ण को बता दिया ॥ ६५ ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण को लेकर बसुदेव ने जब चलना शुरू किया तो कृष्ण ने अपना माया-जाल फैला दिया जिससे जितने असुर पहरे पर थे वे सो गये ॥ ६६ ॥ ॥ सवैया ॥ कस के डर से जब वसुदेव ने अपने पैर यमुना मे रखे तो यमुना किसी पुरानी प्रगति को मन मे पहचानती हुई कृष्ण के चरणो का स्पर्श करने के लिए उछली । उस छवि की ऊँची महिमा को कवि ने इस प्रकार अनुभव किया है कि

पहचानो। कान्ह को जान किधो पति है इह कै जमना तिह भेटत मानो ॥ ६७ ॥ ॥ दोहरा ॥ जबै जसोधा सुइ गई माया कियो प्रकाश। डार किशन तिह पै सुता लीनी है कर तास ॥ ६८ ॥ ॥ स्वैया ॥ माया को लै कर मै बसदेव सु शीघ्र चल्यो अपने ग्रिहि माही। सोइ गए पर द्वार सभै घर बाहरि भीतरि की सुधि नाही। देवकी तीर गयो जबही सभ ते मिलगे पट आपसि माही। बाल उठी जब रोवन कै जग कै सुधि जाइ करी नर नाही ॥ ६९ ॥ रोइ उठी वह बाल जबै तब स्रोनन मै सुनि ली धुनि होरै। धाइ गए न्रिप कंसहि के घरि जाइ कह्यो जनम्यो रिप तोरै। लै कै क्रिपान गयो तिह के चलि जाइ गही करतै कर जोरै। देखहु बाल महा जड़ को अब आविक के बिख खावत भोरै ॥७०॥ (मू०ग्रं०२६१) लाइ रही उर सो तिह को मुख ते कह्यो बात सुनो मतवारे। पुत्र हने मम पावक से छठ ही तुम पाथर पै हन डारे। छीन कै कंस कह्यो मुख ते इह भी पटकौ इह कै अब नारे। दामन ह्वै लहकी

यमुना मानो कृष्ण को पति मान उसके चरण को स्पर्श करने के लिए ऊपर उठी ॥ ६७ ॥ ॥ दोहा ॥ इधर जब यशोदा सो गयी तो उसके उदर से योगमाया उत्पन्न हुई। वसुदेव ने कृष्ण को वहाँ डालते हुए यशोदा की पुत्री को उठा लिया और चल पड़े ॥ ६८ ॥ ॥ सवैया ॥ माया को अपने हाथ मे लेकर वसुदेव शीघ्र ही अपने घर मे चले गये और उस समय सभी लोग सोये हुए थे और किसी को भी बाहर-भीतर का होश नही था। जब वसुदेव देवकी के पास पहुँच गये तो किवाड स्वय ही बन्द हो गये तथा जब बच्ची के रुदन की सेवको ने आवाज सुनी तो उन्होंने राजा को खबर कर दी ॥ ६९ ॥ वह बालिका जब रोई तब सबने उसकी आवाज सुनी। सेवक दौडकर कस के पास गये और उससे कहा कि तुम्हारा शत्रु पैदा हो गया है। कस कृपाण लेकर दोनो हाथो से उसे मजबूती से पकड़ते हुए वहाँ जा पहुँचा और इस महामूर्ख का कृत्य देखो कि अब वह स्वयं विष का सेवन करने जा रहा है अर्थात् मरने की तैयारी कर रहा है ॥ ७० ॥ देवकी ने पुत्री को गले से लगा रखा था। वह कहने लगी कि अरे पागल ! तुम मेरी बात सुनो कि तुमने मेरे अग्नि के समान तेजवान पुत्रो को पत्थर पर पटककर मार डाला है। इतना सुनते ही कस ने यह कन्या भी छीन ली और कहा कि अब मै इसको भी पटककर मार दूँगा। जब कस ने वही सब किया तो यह बच्ची, जिसे परमात्मा ने सुरक्षा प्रदान की, आकाश

नभ मै जब राख लई वह राखनहारे ।। ७१ ।। ।। कबित्तु ।। कै कै क्रोध मन करि ब्योत वाके मारबे को चाकरन कह्यो मार डारो न्रिप बात है । कर मो उठाइकै बनाइ भारो पाथर पै राज काज राखबे को कछु नही पात है । अपनो सो बल कर राखै इह भलीभाँति स्वंद छंद बंद कै कै छूट इह जात है । माया को बढाइ कै सु सभन सुनाइ कै सु ऐसे उडी बारा जैसे पारा उड जात है ।। ७२ ।। ।। स्वैया ।। आठ भुजा करिकै अपनी सभनो कर मै बर आयुध लीने । ज्वाल निकास कही मुख ते रिप अउर भयो तुमरो मति हीने । दामन सी लहकै नभि मै डरकै फटगे तिह शत्रुन सीने । मार डरै इहहूँ हमहूँ सभ त्रास मने अति दैतन कीने ।। ७३ ।।

अथ देवकी बसदेव छोरबो ।।

।। स्वैया ।। बात सुनी इह की जब स्रोनन निंदत देवन के घरि आयो । झूठ हने हम पै भगनी सुत जाइकै पाइन सीस

मे बिजली बन चमक उठी ।। ७१ ।। ।। कवित्त ।। मन मे क्रोधित हो और कई प्रकार के विचार करते हुए कस ने नौकरो को कहा कि यह मेरी आज्ञा है कि इसको मार डालो । हाथ मे पकडकर और बिना राजधर्म की परवाह किये भारी पत्थर पर उसको दे मारा, परन्तु वह इतने बलवान हाथों मे पड़ने पर भी स्वयं ही छूट छूटकर छिटक रही थी तथा माया के प्रभाव के कारण वह सबको अपनी ध्वनि सुनाते हुए ऐसे उड़कर छिटकी जैसे पारा छिटक जाता है ।। ७२ ।। ।। सवैया ।। वह माया आठ भजाओ को धारण करती अपने हाथ मे शस्त्र लेती प्रकट हुई । उसके मुख से अग्नि-ज्वाला निकल रही थी और उसने कहा कि हे मतिहीन कस ! तुम्हारा शत्रु अन्यत्र पैदा हो चुका है । इतना कहकर वह शत्रुओ की छाती को भयभीत करती हुई नभ मे बिजली के समान लहराने लगी और सभी दैत्य यह सोच भयभीत होने लगे कि यह कही हम सबको मार न डाले ।। ७३ ।।

देवकी-वसुदेव का छोड़ा जाना

।। सवैया ।। जब कंस ने अपने कानो से यह सब सुना तो देवताओ की निन्दा करनेवाला कस अपने घर आ गया । वह सोचने लगा कि मैंने व्यर्थ ही अपनी बहिन के पुत्रो का नाश किया । यह सोचते हुए कस ने

निवायो । ग्यान कथा करकै अति ही बहु देबकी औ बसदेव रिझायो । ह्वैकै प्रसंनि बुलाइ लुहार को लोह अउ मोह को फाँध कटायो ।। ७४ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके क्रिशनावतारे देवकी बसदेव को छोरबो बरननं समापतम ।।

कंस मंत्रीअन सो बिचार करत भया ।।

।। दोहरा ।। मंत्री सकल बुलाइकै कीनो कंस बिचार । बालक जो मम देस मै सो सभ डारो मार ।। ७५ ।। ।। स्वैया ।। भागवत को यह सुद्ध कथा बहु बात भरे भलीभाँति उचारी । बाकी कहौ फुनि अउ कथ को सुभ रूप धर्‌यो ब्रिज मधि मुरारी । देव सभै हरखे सुन भूमहि अउर मनै हरखै नर नारी । मंगल होहि घरा घर मै उतर्‌यो अवतारन को अवतारी ।। ७६ ।। ।। स्वैया ।। जाग उठी जसुधा जब ही पिख पुत्रहि देन लगी हुनिआ है । पंडतन के अरु गाइन को बहु दान दियो सभ ही गुनिआ है । पुत्र भयो सुनिकै ब्रिज भामन ओढकै

अपनी बहिन के चरणो पर सिर झुका दिया । बहुत सी बाते करते हुए उसने देवकी और वसुदेव को प्रसन्न कर लिया तथा स्वय ही प्रसन्न हो लुहार को बुलाकर देवकी और वसुदेव की ज़जीरे कटवा उन्हे स्वतन्त्र कर दिया ।। ७४ ।।

।। इति श्री बचित्र नाटक के कृष्णावतार मे देवकी-वसुदेव के छोड़ने का वर्णन समाप्त ।।

कंस का मंत्रियों के साथ विचार-विमर्श करना

।। दोहा ।। सब मंत्रियो को बुलाकर कंस ने विचार करते हुए कहा कि मेरे देश मे जितने भी बालक हैं उन सबको मार डाला जाय ।। ७५ ।। ।। सवैया ।। भागवत की यह शुद्ध कथा भलीभाँति उच्चारण की गयी है और उसी मे से मै अब वर्णन कर रहा हूँ कि व्रज मे विष्णु ने मुरारी का रूप धारण किया, जिसे देखकर देवतागण तथा भूमि पर सभी नर-नारी हर्षित हो उठे । अवतारो के अवतार को अवतरित होते देखकर घर-घर में मंगलाचार होने लगा ।। ७६ ।। ।। सवैया ।। जब यशोदा जगी तो वह पुत्र को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो उठी उसने पडितों को, गायको को और सभी गुणी जनो को बहुत सा दान दिया । यशोदा के यहाँ पुत्र उत्पन्न होने की बात सुनकर व्रज की स्त्रियाँ प्रसन्नता से लाल चुनरियाँ

लाल चली चुनिआ है। जिउँ मिलकै घन के दिन मै उडकै सु चली जु मनो मुनिआ है ॥ ७७ ॥ ॥ नंद बाच कंस प्रति ॥ ॥ दोहरा ॥ (मू०ग्रं०२६२) नंद महर लै भट्ट को गयो कंस के पासि। पुत्र भयो हमरे ग्रहे जाइ कही अरदासि ॥ ७८ ॥ ॥ बसदेव बाच नंद सो ॥ ॥ दोहरा ॥ नंद चल्यो ग्रह को जबै सुनी बात बसदेव। भै ह्वैहै तुमको बडो सुनो गोपपति भेव ॥ ७६ ॥ ॥ कंस बाच बकी सो ॥ ॥ स्वैया ॥ कंस कहै बकी बात सुनो इह आज करो तुम काज हमारो। बारक जे जनमै इह देस मै ताहि को जाइ कै शीघ्र सँघारो। काल बहै हमरो कहिऐ तिह त्रास डर्यो हिअरा मम भारो। हाल बिहाल भयो तिह काल मनो तन मै सु डस्यो अहि कारो ॥८०॥ ॥ पूतना बाच कंस प्रति ॥ ॥ दोहरा ॥ इह सुनिकै तब पूतना कही कंस सौ बात। बरमा जाए सभ हनो मिटै तिहारो तात ॥ ८१ ॥ ॥ स्वैया ॥ सीस निवाइ उठी तब बोल सु घोल मिठा लपटो थन मै। बाल जु पान करे तजै प्रानन ताहि मसान करौ छिन मै। बुधतान सुजान कह्यो सतिमान सु

ओढकर चल पडी और ऐसी लग रही थी मानो बादलो में विद्युत् रूपी मणियाँ इधर-उधर बिखरकर चल रही है ॥ ७७ ॥ ॥ नन्द उवाच कंस के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ नन्द चौधरी कुछ लोगो को साथ ले कस के पास पहुँचा और उसने यह प्रार्थना की कि हमारे यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ है ॥ ७८ ॥ ॥ वसुदेव उवाच नन्द के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ जब नन्द के वापस जाने की बात वसुदेव ने सुनी तो वसुदेव ने गोपपति नन्द से यह कहा कि तुमको अत्यन्त भय होना चाहिए (क्योकि भेद की बात यह है कि कंस ने सभी बालको को वध करने की आज्ञा दी है) ॥ ७९ ॥ ॥ कस उवाच बकासुर के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ कस ने वकासुर से कहा कि तुम मेरी बात सुनो और मेरा यह काम करो कि इस देश मे जितने भी बालक पैदा हुए हैं, शीघ्र ही उनका सहार कर दो। इन बालको मे से ही एक मेरा काल है, इसलिए मेरा हृदय बुरी तरह भयभीत है। कस यही सोचते हुए व्याकुल था और ऐसा लग रहा था मानो उसे काले नाग ने काट लिया हो ॥ ८० ॥ ॥ पूतना उवाच कंस के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ यह सुनकर पूतना ने कंस से कहा कि मैं जाकर सब बच्चो को नष्ट कर दूँगी जिससे तुम्हारा कष्ट दूर हो जायेगा ॥ ८१ ॥ ॥ सवैया ॥ यह बोलकर सिर झुकाकर वह उठी और उसने मीठा विष अपने स्तनो मे लगा लिया, ताकि जो भी बच्चा उसके

आइहै टोरकै ताहन मै । निरभउ न्रिपराज करो नगरी सगरा जिन सोच करो मन मै ॥ ८२ ॥ ॥ कबियो बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ अति पापन जगंनाथ पर बीड़ा लियो उठाइ । कपट रूप सोरह सजे गोकल पहुची जाइ ॥ ८३ ॥ ॥ स्वैया ॥ काजर नैन दिए मन मोहन इंगर की बिंदरी जु बिराजै । टांड भुजान बनी कटि केहरि पाइन नूपर की धुनि बाजै । हार गरे मुकताहल के गई नंद दुआरहि कंस कै काजै । बास सुबास बसी सभ ही तन आनन मै ससि कोटिक लाजै ॥८४॥ ॥ जसुधा बाच पूतना प्रति ॥ ॥ दोहरा ॥ बहु आदर करि पूछिओ जसमति बचन रसाल । आसन पै बैठाइकै कह्यो बात कहु बाल ॥ ८५ ॥ ॥ पूतना बाच जसोधा सो ॥ ॥ दोहरा ॥ महर तिहारे सुत सुन्यो जनम्यो रूप अनूप । मो गोदी दै दूध को होवै सभ को भूप ॥ ८६ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोद दयो जसुधा तब ताके सु अंत समै तब ही उन लीनो । भाग बडे दुरबुधन के भगवानहि कौ जिन असथन

स्तन का पान करे वह क्षण भर मे मर जाए । हे बुद्धिशाली, सुजान और सत्यवादी राजा ! हम सब तुम्हारी सेवा मे आये है । तुम अभय हो राज करो और समस्त चिन्ताओ को त्याग दो ॥ ८२ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ उस पापिनी ने जगन्नाथ कृष्ण को मारने का वीणा उठा लिया और सोलह शृगार करती हुई कपट वेश धारण कर गोकुल जा पहुँची ॥ ८३ ॥ ॥ सवैया ॥ उसने नयनो मे काजल लगा रखा था, माथे पर बिंदिया लगाई थी, उसकी भुजाएँ सुन्दर थी, कमर सिह के समान पतली थी तथा उसके पैरो में पायल की ध्वनि निकल रही थी । गले में मोतियो के हार पहने वह कंस का कार्य करने के लिए नन्द के दरवाजे पर जा पहुँची और उसके शरीर से निकल रही सुगन्ध चारो ओर फैल गयी तथा उसके मुख को देखकर चन्द्रमा भी लजाने लगा ॥ ८४ ॥ ॥ यशोदा उवाच पूतना के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ यशोदा ने उसे आदर देते हुए उसका हाल-चाल पूछा और आसन पर बैठाते हुए उससे बातचीत प्रारम्भ कर दी ॥ ८५ ॥ ॥ पूतना उवाच यशोदा के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ हे माता ! सुना है, तुम्हारे यहाँ एक अनुपम वालक जन्मा है । लाओ इसे मेरी गोदी मे दो मैं इसे दूध पिलाऊँ, क्योकि यह होनहार बालक सबका सम्राट् बनेगा ॥ ८६ ॥ ॥ सवैया ॥ तब यशोदा ने कृष्ण को उसकी गोद मे दे दिया और इस प्रकार पूतना ने अपना अन्तिम समय बुला लिया । उस दुर्बुद्धि स्त्री के भी बड़े भाग्य हैं

बीनो। छीररकत्र सु ताही के प्रान सु ऐच लए मुख मो इह कीनो। जिउँ गगड़ी तुमरी तन लाइकै तेल लए तुच छाडकै पीनो ॥ ८७ ॥ ॥ दोहरा ॥ पाप कर्‌यो बहु पूतना जासो नरक डराइ। अंत कह्‌यो हरि छाडि दै (मू०ग्रं०२६३) बसी बिकुंठह जाइ ॥ ८८ ॥ ॥ स्वैया ॥ देहि छि कोस प्रमान भई पुखरा जिम पेट मुखो नलुआरे। डंड दुकूल भए तिहके जनु वार सिवाल ते सेख पुआरे। सीस सुमेर को स्रिग भयो तिह आखन मै परगे खडुआरे। साह के कोट मे तोप लगी बिब गोलन के ह्वै गए गलुआरे ॥ ८९ ॥ ॥ दोहरा ॥ असथन मुख लै क्रिशन तिह ऊपरि सोइ गए। धाइ तबै ब्रिजलोक सभ गोद उठाइ लए ॥ ९० ॥ ॥ दोहरा ॥ काट काट तन एकठे कीयब ता को ढेर। दे इंधन चहूं ओर ते बारत लगी न बेर ॥ ९१ ॥ ॥ स्वैया ॥ जब ही नंद आइ है गोकल मै लई बात सु बास महा बिसमान्यो। लोक सभै ब्रिज को बिरतांत कह्‌यो सुनिकै मन मै डरपान्यो। साच कही बसदेवहि मो पहि सो परतच्छि

जिसने भगवान को स्तनपान करवाया। दूध रूपी रक्त के साथ कृष्ण ने अपने मुँह से उसके प्राण भी ऐसे खीच लिये जैसे तुमड़ी से तेल छानकर निकाल लिया जाता है ॥ ८७ ॥ ॥ दोहा ॥ पूतना ने इतना वडा पाप किया कि जिससे नरक भी डर जाए। मरते हुए वह बोली, हे कृष्ण ! मुझे छोड़ दो और इतना कहकर वह स्वर्गलोक मे चली गयी ॥ ८८ ॥ ॥ सवैया ॥ पूतना की देह छः कोस जितनी लम्बी हो गयी, उसका पेट तालाब और मुख नाले के समान हो गया। उसकी भुजाएँ मानो तालाब के दो किनारो के समान तथा बाल तालाब पर फैली सेवार के समान दिखाई देने लगे। सिर उसका सुमेरु पर्वत की चोटी के समान हो गया और आँखो की जगह बड़े-वड़े खड्डे दिखाई देने लगे। उसके आँखों के खड्डो मे गोलक बिन्दु ऐसे दिखाई दे रहे थे मानो किसी राजा के किले में तोपे स्थित की हुई हो ॥ ८९ ॥ ॥ दोहा ॥ पूतना का स्तन मुँह मे लिये कृष्ण उसी पर सो गये और व्रजवासियो ने दौड़कर उन्हे उठा लिया ॥ ९० ॥ ॥ दोहा ॥ लोगो ने पूतना के शरीर को टुकड़ो मे एकत्र कर लिया और चारो ओर से ईंधन लगाकर उसे तत्काल जला दिया ॥ ९१ ॥ ॥ सवैया ॥ जब नन्द गोकुल मे आये तो सब बात जान कर अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए। लोगो ने व्रज मे पूतना वाली बात जब उन्हे बताई तो वे और भी मन मे डर गये। वे सोचने लगे कि

भई हम जान्यो । ता दिन दान अनेक दियो सभ बिप्पन बेद असीस बखान्यो ॥ ९२ ॥ ॥ दोहरा ॥ बाल रूप ह्वै उतरियो क्रिया सिंध करतार । प्रिथम उधारी पूतना भूम उतार्‌यो भार ॥ ९३ ॥

॥ इति स्री दसम सकध पुराणे बचित्र नाटक पूतना बध धिआइ समापते ॥

अथ नामकरण कथनं ॥

॥ दोहरा ॥ बासदेव तब गरग को निकटि सु कही बठाइ । गोकल नंदहि के भवन क्रिपा करो तुम जाइ ॥ ९४ ॥ उतै तात हमरै तहा नामकरन कर देहु । हम तुम बिनु नही जानही अउर स्रवन सुन लेहु ॥ ९५ ॥ ॥ स्वैया ॥ बेग चल्यो द्विज गोकल को बसुदेव महान कही सोई मानी । नंद के धाम गयो तब ही बहु आदर ताहि कर्‌यो नंद रानी । नाम सु क्रिशन कह्यो इह को कर मान लई इह बात बखानी । लाइ लगंन निछत्रन सोध कही समझाइ अकथ कहानी ॥ ९६ ॥

वसुदेव ने मुझे जो चेतावनी दी थी, वह सत्य ही थी और उस सबको मै प्रत्यक्ष देख रहा हूँ । उस दिन नन्द ने विप्रो को अनेक प्रकार से दान दिया और विप्रो ने उन्हे अनेक आशीर्वाद दिये ॥ ९२ ॥ ॥ दोहा ॥ कृपा के सिन्धु परमात्मा बाल-रूप होकर अवतरित हुए है और उन्होने सर्वप्रथम पूतना के भार से धरती को मुक्त कर दिया है ॥ ९३ ॥

॥ इति श्री दशम स्कध पुराण के वचित्र नाटक का पूतना-वध अध्याय समाप्त ॥

नामकरण-कथन

॥ दोहा ॥ तब वसुदेव ने कुलगुरु गर्ग को निवेदन किया, आप कृपा कर गोकुल मे नन्द के घर जायँ ॥ ९४ ॥ वहाँ मेरा पुत्र है, आप कृपा कर उसका नामकरण कर दे और इस बात का ध्यान रखे कि आपके और मेरे सिवा इस रहस्य को कोई नही जानता है ॥ ९५ ॥ ॥ सवैया ॥ वसुदेव का कहना मानकर विप्र गर्ग शीघ्रता से गोकुल की ओर चल दिया और नन्द के घर पहुँचा जहाँ नन्दरानी यशोदा ने उनका बहुत आदर किया । विप्र ने बालक का नाम कृष्ण रखा जो सबने स्वीकार कर लिया । तब विप्र ने लग्न, मुहूर्त आदि का अध्ययन कर बालक के जीवन में होनेवाले अभूतपूर्व प्रसगो का सकेत कर दिया ॥ ९६ ॥

॥ दोहरा ॥ क्रिशन नाम ता को धर्यो गरगहि मनैं बिचारि । श्याम पलोटैं पाइ जिह इह सम मनो मुरार ॥ ९७ ॥ सुकल बरन सतिजुग भए पीत बरन त्रेताइ । पीत बरन पट स्याम तन नर नाहनि के नाहि ॥ ९८ ॥ ॥ स्वैया ॥ अंन्य दयो गरगैं जब नंदहि तउ उठि कै जमना तट आयो । नाइ फटै करिकैं धुतिआ हरि को अरु देवन भोग लगायो । आइ गए नंदलाल तबै कर सो गहि कै अपने मुख पायो । चक्रत ह्वै गयो पेख तबै तिह अंन्य सभै (मू०ग्रं०२६४) इन भीट गवायो ॥ ९९ ॥ फेरि बिचार कर्यो मन मै इह तो नह बालक पै हरिजी है । मानस पंच भू आतम को मिलि कै तिन सो करता सरजी है । याद करी ममता इह कारन मध कौ दूर करै करजी है । मूँद लई तिह की मति यौ पट सौ तन ढाँपत जिउँ दरजी है ॥१००॥ ॥ स्वैया ॥ नंदकुमार त्रिबार भयो जब तो मन बामनै क्रोध कर्यो है । मात खिझी जसुधा हरि को गहिकै उर आपने लाइ

॥ दोहा ॥ गर्ग ने मन में विचारकर बालक का नाम कृष्ण रख दिया और जैसे ही बालक ने पैर ऊपर उठाये तो पडित को लगा कि यह स्वय विष्णु का स्वरूप है ॥ ९७ ॥ शुक्लवर्ण सतयुग का प्रतीक और पीला वर्ण त्रेता का प्रतीक है; परन्तु पीले वर्ण के कपड़े धारण करना और श्याम रग वाला शरीर होना ये दोनो सामान्य मनुष्यों के लक्षण नही है ॥ ९८ ॥ ॥ सवैया ॥ जब नन्द ने गर्ग को अन्नदान किया तो वह सब लेकर भोजन पकाने के लिए यमुना के तट पर आ गया । स्नान करके उसने देवताओ को तथा परमात्मा को भोग लगाया । परमात्मा का स्मरण करते ही वहाँ नन्द के पुत्र (कृष्ण) पहुँच गये और उन्होने गर्ग के हाथ से अन्न लेकर भोग लगाया । विप्र चकित होकर यह देखने लगा और सोचने लगा कि इस बालक ने छूकर मेरा अन्न अपवित्र कर दिया है ॥ ९९ ॥ फिर पडित ने मन मे विचार किया कि यह बालक कैसे हो सकता है, यह कोई भ्रम है । कर्ता ने मन, पचतत्त्व और आत्मा के संयोग से इस रचना का सृजन किया है । मुझे मात्र नन्दलाल का स्मरण बना रहा अत. यह मेरा भ्रम होगा । वह विप्र पहचान नही पाया और उसकी बुद्धि वैसे ही बन्द हो गयी जैसे दरजी कपड़े से शरीर को ढक देता है ॥ १०० ॥ ॥ सवैया ॥ जब तीन बार वैसा ही हुआ तो ब्राह्मण के मन मे क्रोध आ गया । माता यशोदा भी इस प्रकार कहने से खीझ उठी और उसने कृष्ण को अपने सीने से लगा लिया । तब कृष्ण बोल उठे कि इसमे मेरा दोष नही है, इसी विप्र का

धर्यो है। बोल उठे भगवान तबै इह दोशन है मुहि यादि कर्यो है। पंडत जान लई मन मै उठ क तिह के तब पाइ पर्यो है॥ १०१ ॥ ॥ दोहरा ॥ नंद दान ता कौ दयो कह लउ कहो सुनाइ। गरग आपने घरि चल्यो महाँ प्रमुद मन पाइ॥ १०२ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे नामकरन बरननं ॥

॥ स्वैया ॥ बालक रूप धरे हरि जी पलना पर झूलत है तब कैसे। मात लडावत है तिह कौ औ झुलावत है करि मो हित कैसे। ता छबि की उपमा अति ही कबि स्याम कही मुख ते फुनि ऐसे। भूमि दुखी मन मै अति ही जनु पालत है रिप वं तन जैसे॥ १०३ ॥ भूख लगी जब ही हरि कौ तब पै जसुधा थन कौ तिन चाह्यो। मात उठी न भयो मन क्रुद्ध तबै पग सो महि गोडकै बाह्यो। तेल धर्यो अरु घीउ भर्यो घुट भूमि पर्यो जसु स्याम सराह्यो। होत कुलाहल मधि पुरी धरनी को

दोष है। इसने मुझे (भोग लगाने के लिए) याद किया है और मैं उपस्थित हुआ हूँ। यह सुनकर विप्र मन-ही-मन समझ गया और उठकर उसने कृष्ण के चरण स्पर्श किये॥ १०१ ॥ ॥ दोहा ॥ नन्द द्वारा विप्र को दिये गये दान का वर्णन नही किया जा सकता। गर्ग प्रसन्न मन से अपने घर को चल दिया॥ १०२ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक ग्रथ मे नामकरण-वर्णन समाप्त ॥

॥ सवैया ॥ बालक का रूप धारण किये हुए श्रीकृष्ण जी पालने पर झूल रहे है और माता उन्हे प्यार से झुला रही है। इस छवि की उपमा को कवि ने इस प्रकार कहा है कि जिस प्रकार धरती समान भाव से दुष्टो एव सज्जनो का पालन करती है, उसी प्रकार यशोदा माता भी श्रीकृष्ण के पालन-पोषण करने मे आनेवाली कठिनाइयों की सम्भावनाओ को जानते हुए भी प्रसन्न भाव से कृष्ण का पालन कर रही है॥ १०३ ॥ जब कृष्ण को भूख लगी तो यशोदा माता का दूध पीना चाहा। माता बिना क्रुद्ध हुए उठी तभी श्रीकृष्ण ने जोर से पाँव चलाया और भरा हुआ तेल तथा घी के पात्र हाथ से छूटकर धरती पर गिर पड़े। इस दृश्य को श्याम कवि ने अपनी कल्पना में देखा। उधर पूतना का वध सुनकर सारे व्रज प्रदेश मे कोलाहल मच गया और धरती का शोक समाप्त हो

द्रिग मूँदकै लोकन लै हरि को नभि के मग धायो ।। १०८ ।। जउ हरि भी नभि बीच गयो कर तउ अपने बल को तन घट्टा । रूप भयानक को धरिकै मिलि जुद्ध कर्‌यो तब राछस फट्टा । फेरि सँभार दसो नख आपने कै कै छुरा सिर शत्र को कट्टा । रुंड गिर्‌यो जन पेडि गिर्‌यो इम मुंड पर्‌यो जन डार ते खट्टा ।।१०९।।

।। इति स्री बचित्र नाटकै ग्रथे क्रिशनावतारे त्रिणावरत बधह ।।

।। स्वैया ।। कान्ह बिना जन गोकल के बसु आजज़ होइ इकत्र ढुँढायो । द्वादस कोस पै जाइ पर्‌यो हुतो खोजत खोजत पै मिल पायो । लाइ लियो हिय सो सभ ही तब ही मिलिकै उन मंगल गायो । ता छबि को जस उच्च महाँ कब नै मुख ते इह भाख सुनायो ।। ११० ।। दंत को रूप भयानक देखकै गोप सभौ मन मै डरु कीआ । मानस की कहहै गनती सुरराजहि को पिख फाटत हीआ । ऐसो महाँ बिकराल सरूप तिसै हरि ने छिन मै हनि लीआ । आइ सुन्यो अपने ग्रह मै तिह को बिरतांत सभै कहि बीआ ।। १११ ।। ।। स्वैया ।। दै बहु बिप्पन कौ तब दान

मार्ग से उड़ चला ।। १०८ ।। जब वह कृष्ण को लेकर बीच आकाश मे गया तो कृष्ण की मार के फलस्वरूप उसके शरीर की शक्ति क्षीण होने लगी । कृष्ण ने भयानक रूप धारण कर उस राक्षस से युद्ध किया और राक्षस को घायल कर दिया । पुनः अपने हाथ के दसो नाखूनों से कृष्ण ने शत्रु के सिर को काट डाला । तृणावर्त का धड पेड़ की तरह धरती पर गिर पड़ा और उसका सिर इस प्रकार गिरा मानो डाली से नीबू टूटकर नीचे गिरा हो ।। १०९ ।।

।। श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार मे तृणावर्त-वध समाप्त ।।

।। सवैया ।। कृष्ण के विना गोकुल के लोग हताश हो गये और इकट्ठे हो उन्हे ढूंढने लगे । बारह कोस दूर तक खोजने पर कृष्ण मिले और सबने उन्हे गले से लगाते हुए मगलगीत गाये तथा उस छवि को महाकवि ने अपने मुख से इस प्रकार कहकर सुनाया ।। ११० ।। दैत्य का भयानक रूप देखकर सभी गोप डर गये और मनुष्य की तो बात ही क्या, देवराज इन्द्र का हृदय भी दैत्य के शरीर को देखकर भयभीत हो उठा। ऐसे विकराल स्वरूप वाले राक्षस का कृष्ण ने क्षण भर में नाश कर दिया । तब कृष्ण अपने घर पर आये और इस सारी घटना का वर्णन सबने एक-दूसरे से किया ।। १११ ।। ।। सवैया ।। विप्रो को बहुत सा दान देकर माता

सु खेलत है सुत सो फुन माई । अंगुल कै मुख सामुहि हेत ही लेत भले हरि जी मुसकाई । आनंद होत महाँ जसुधा मन अउर कहा कहौ तोहि बडाई । ता छबि को उपमा अति पै कबि के मन मै तन ते अति भाई ॥ ११२ ॥

अथ सारी बिस्व मुख सो क्रिशन जी जसोधा को दिखाई ॥

॥ स्वैया ॥ मोहि बढाइ महा मन मै हरि कौ लगी फेरि खिलावन माई । तउ हरि जी मन मद्धि बिचार शिताब लई मुखि माहि जँभाई । चक्रत होइ रही जसुधा मन मद्धि भई तिह के दुचिताई । माइ सु ढाप लई तब ही सभ बिशन मया तिन जो लख पाई ॥ ११३ ॥ कान्ह चले घुँटुआ घरि भीतरि मात करै उपमा तिह चंगी । लालन की मन ग्वाल किधौ नंद (मू०ग्रं०२६६) धेन सभै तिहके सभ संगी । लाल भई जसुधा पिख पुत्रहि जिउँ घनि मै चमकै दुत रंगी । किउ नहि होवै प्रसंन्य सु मात भयो जिनके ग्रह तात त्रिभंगी ॥ ११४ ॥ ॥ स्वैया ॥ राह सिखावन काज गडी हरि गोप मनो मिलकै सु

यशोदा फिर बालक कृष्ण के साथ खेलना प्रारम्भ कर देती है और श्रीकृष्ण जी ओठो पर उँगली रखकर धीरे-धीरे मन्द-मन्द मुस्कुराते है । माता यशोदा महाआनन्दित होती है और उसकी खुशी का वर्णन नही किया जा सकता । यह दृश्य कवि के मन को भी अत्यन्त रुचिकर लगा ॥ ११२ ॥

सारा विश्व मुख में से कृष्ण जी द्वारा यशोदा को दिखाया जाना

॥ सवैया ॥ मन मे मोह को बढाकर माता यशोदा फिर पुत्र को खेलाने लगी, तब भी कृष्ण ने मन में कुछ विचार कर शीघ्र ही एक जम्हाई ली । यशोदा चकित हो गई और उसके मन मे विचित्र प्रकार के सशय उठने लगे तथा माँ ने आगे बढ़कर हाथ से पुत्र के मुँह को ढाँप लिया और इस प्रकार विष्णु की माया को देखा ॥ ११३ ॥ घुटनो के बल कृष्ण घर मे चलने लगे और माता उन्हे विभिन्न उपमाएँ देते हुए प्रसन्न होने लगी । कृष्ण के साथियो के पैरो के निशानो के पीछे-पीछे नन्द की गायें भी चल रही है । माता यशोदा यह देखकर बादल मे चमकनेवाली बिजली के समान खुशी से चमक उठी और वह माता प्रसन्न भी क्यों न हो जिसके घर मे कृष्ण जैसा पुत्र पैदा हुआ हो ॥ ११४ ॥

बनायो । कानहि को तिहक्रू पै बिठाइकै आपने आङन बीच धवायो । फेरि उठाइ लयो जसुधा उर मे गहिकै पय पान करायो । सोइ रहे हरि जी तबही कबि ने अपने मन मैं सुख पायो ॥ ११५ ॥ ॥ दोहरा ॥ जब ही निद्रा छुट गई हरी उठे ततकाल । खेल खिलावन सो कर्‌यो लोचन जाहि बिसाल ॥ ११६ ॥ इसी भाँत सो क्रिशन जी खेल करे ब्रिज माहि । अब पग चलत्यों की कथा कहो सुनो नर नाहि ॥११७॥ ॥ स्वैया ॥ साल बितीत भयो जब ही तब कान्ह भयो बल कै पग मै । जस मात प्रसंन्य भई मन मै पिख धावत-पुत्रहि को मग मै । बात कही इह गोपन सो प्रभा फैल रही सु सभै जग मे । जन सुंदर ती अति माखन को सभ धाइ धसी हरि के नग मै ॥ ११८ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोपन सौ मिलकै हरि जी जमना तट खेल मचावत है । जिम बोलत है खग बोलत है जिम धावत है तिम धावत है । फिर बैठ बरेतन मद्धि मनो हरि सो वह ताल बजावत है । कबि स्याम कहै तिनकी उपमा सुभ गीत भले मुख गावत है ॥ ११९ ॥ ॥ स्वैया ॥ कूँजन मै जमना तट तै

॥ सवैया ॥ चलना सिखाने के लिए सभी गोपो ने मिलकर कृष्ण के लिए एक वच्चो की गाड़ी बनाई और कृष्ण को उस पर बिठाकर आँगन के बीच मे घुमाया । फिर यशोदा ने उसे गोदी मे उठाकर अपना दूध पिलाया और जब श्रीकृष्ण जी सो गये तो कवि ने अपने हृदय मे परम सुख माना ॥ ११५ ॥ ॥ दोहा ॥ निद्रा छूटते ही श्रीकृष्ण तत्काल उठे और खेलने के लिए नेत्रो से सकेत कर मचलने लगे ॥ ११६ ॥ इस प्रकार व्रज मे कृष्ण ने अनेक प्रकार से खेल खेले और अव मैं उनके पैरों पर चलने की कथा का वर्णन करता हूँ ॥ ११७ ॥ ॥ सवैया ॥ एक वर्ष जब व्यतीत हुआ तो श्रीकृष्ण पैरो पर बल देकर चलने लगे । यशोदा माता प्रसन्न हो उठी और पुत्र को देखने के लिए रास्ते में उसके पीछे-पीछे जाने लगी । यशोदा ने कृष्ण के चलने की वात सभी गोपिकाओ को बताई और कृष्ण का तेज सारे ससार मे फैलने लगा । सुन्दर स्त्रियाँ भी श्रीकृष्ण को देखने के लिए माखन इत्यादि लेकर चल पड़ी ॥ ११८ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपो के साथ मिलकर कृष्ण जी यमुना तट पर खेल की धूम मचाते है और जैसे पक्षी बोलते हैं, वैसी बोलियाँ बोलते है और जिस प्रकार चलते है, उस प्रकार चलने का नाटक करते है । फिर रेत पर बैठकर वे सब तालियाँ बजाते है और कवि श्याम का कथन है कि सभी अपने

मिल गोपन सो हरि खेलत है। तरि कै तब ही सिगरी जमना हट मद्धि बरेतन पेलत है। फिरि कूदत है जु मनो नट जिउँ जल कौ हिरदे संगि रेलत है। फिर ह्वै हुँडुआ लरके दुहूँ ओर ते आपसि मै सिर मेलत है ॥ १२० ॥ आइ जबै हरि जी ग्रहि आपने खाइकै भोजन खेलन लागे। मात कहै न रहै घरि भीतरि बाहरि को तब ही उठ भागे। स्याम कहै तिनकी उपमा ब्रिज के पति बीथन मै अनुरागे। खेल मचाइ दयो लुकमीचन गोप सभै तिह के रस पागे ॥ १२१ ॥ खेलत है जमना तट पै मन आनंद कै हरि बारन सों। चड़ रूख चलावत सोट किधो सोऊ धाइकै ल्यावै गुआरन सों। कबि स्याम लखी तिनकी उपमा मनो मद्धि अनंत अपारन सों। बल जात सभै (मू०ग्रं०२६७) मुन देखन कौ करिकै बहु जोग हजारन सों ॥ १२२ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके ग्रथे क्रिशनावतारे गोपन सो खेलबो बरनन अशटम ध्याइ समापतम ॥

सुन्दर मुख से गीत गाते है ॥ ११९ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपो के साथ मिलकर यमुना के तट पर कुजो मे कृष्ण खेलते हैं और समूची यमुना को तैरकर दूसरी ओर रेत पर जाकर लोटते है। फिर सभी बच्चो के साथ कृष्ण नट के समान कूदते है तथा अपनी छाती से जल को चीरते है। फिर भेडो के समान आपस में लड़ते हुए एक-दूसरे के सिर पर सिर मारते है ॥ १२० ॥ जब कृष्ण जी घर पर आते है तो वे भोजन करने के बाद फिर खेलने लग जाते है। माता घर पर रहने के लिए कहती है, परन्तु कहने पर भी घर के भीतर न रहकर वे उठकर वाहर भाग खडे होते है। कवि श्याम का कथन है कि व्रज के स्वामी कृष्ण को व्रज की गलियो से परम अनुराग हो गया है और गोपो के साथ लुका-छिपी के खेल का रस सब पर चढ गया है ॥ १२१ ॥ यमुना के तट पर खेलते हुए कृष्ण वच्चो के साथ परम आनन्दित हो रहे है। पेड़ पर चढकर वे डडा चलाते है और फिर उसे ग्वालिनो के बीच से ढूंढकर लाते है। कवि श्याम ने इस उपमा का वर्णन करते हुए कहा है कि इस शोभा को देखने के लिए हजारों प्रकार से योगसाधना करनेवाले मुनि भी बलिहारी हो रहे है ॥ १२२ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार मे गोपो के साथ खेल-वर्णन नामक आठवां अध्याय समाप्त ॥

अथ माखन चोर खैबो कथनं ॥

॥ स्वैया ॥ खेलन के मिस पै हरिजी घरि भीतर पैठ कै माखन खावै । नैनन सैन तबै करिकै सभ गोपन को तब ही सु खुलावै । बाकी बच्यो अपने करि लैकर बानर के मुख भीतरि पावै । स्याम कहै तिह की उपमा इह कै बिध गोपन कान खिझावै ॥ १२३ ॥ खाइ गयो हरि जी जब माखन तउ गुपिआ सभ जाइ पुकारी । बात सुनो पत की पतनी तुम डार दई दध की सभ खारी । कानहि कै डर ते हम चोर कै राखत है चड़ ऊच अटारी । ऊखल को धरि कै मनहा पर खात है लंगर दे करि गारी ॥ १२४ ॥ होत नही जिहके घरि मै दध दै करि गारन शोर करै है । जो लरका जनिकै खिझ है जन तो मिल सोटन साथ मरै है । आइ परै जु त्रिया तिह पै सिर के तिह बार उखार डरै है । बात सुनो जसुधा सुत की सु बिना उतपात न कान्ह टरै है ॥ १२५ ॥ बात सुनी जब गोपन की जसुधा

मक्खन चुराकर खाने का कथन

॥ सवैया ॥ खेलने के बहाने कृष्ण घर के अन्दर घुसकर मक्खन खा रहे है और आंखो के सकेतो से कृष्ण गोपो को बुला-बुलाकर उनको भी खिला रहे है । बाकी बचा हुआ मक्खन हाथो मे लेकर वे वानरो को खिला रहे है । श्याम कवि कहता है कि इस प्रकार कृष्ण गोपियों को खिझा रहे हैं ॥ १२३ ॥ जब कृष्ण सारा मक्खन खा गए तो गोपियाँ चिल्लाने लगी और नन्द की पत्नी यशोदा से कहने लगी कि कृष्ण ने दही-मक्खन के सब वर्तन गिरा दिये है । कृष्ण के डर से हम स्वय मक्खन को ऊँचे स्थान पर रखती हैं, परन्तु फिर भी यह ऊखलो के सहारे ऊपर चढ कर साथियों-समेत हमको वुरा-भला कहते हुए मक्खन खा जाते है ॥ १२४ ॥ हे यशोदा ! जिसके घर मे इन लोगो को मक्खन आदि नही मिलता उनको ये शोर मचाते हुए गालियाँ देते है । यदि कोई इनको बालक समझकर इनके साथ खीझता है तो ये सब डडे से उनकी पिटाई करते है । इस पर यदि कोई स्त्री आकर इनको डाँटने की कोशिश करती है तो ये सव उसके सिर के बाल तक नही छोड़ते । अतः, हे यशोदा ! तुम अपने बच्चे की बातें सुन लो, ये बिना उत्पात किये नहीं मानता है ॥ १२५ ॥ गोपियो की वातों को सुनकर यशोदा मन मे रुष्ट हो गई, परन्तु जैसे ही कृष्ण घर आये

तब ही मन माहि खिझी है। आइ गयो हरि जी तब ही पिख पुत्रहि कौ मन माहि रिझी है। बोल उठे नंदलाल तबै इह ग्वार खिझावत मोहि गिझी है। मात कहा दध दोश लगावत मार बिना इह नाहि सिझी है ॥ १२६ ॥ मात कह्यो अपने सुत को कहु किउ करि तोहि खिझावत गोपी। मात सों बात कही सुत यो करि सो गहि भागत है मुहि टोपी। डारकै नास बिखै अंगुरी सिर मारत हैं मुझ कौ वह थोपी। नाक घसाइ हसाइ उनै फिर लेत तबै वह देत है टोपी ॥ १२७ ॥ ॥ जसुधा बाच गोपन सों ॥ ॥ स्वैया ॥ मात खिझी उन गोपन को तुम किउ सुत मोहि खिझावत हउ री। बोलत हो अपने मुख ते हमरे धन है दध दाम सु गउरी। मूड़ अहीर न जानत है बड बोलत हो सु रहो तुम ठउरी। कान्हि साध बिना अपराधहि बोलहि गो जु भई कछु बउरी ॥ १२८ ॥ ॥ दोहरा ॥ बिनती कै जसुधा (मू०ग्रं०२६४) तबै दोऊ दए मिलाइ। कान्ह बिगारै सेर दध लेहु मनक तुम आइ ॥ १२९ ॥ ॥ गोपी बाच

उनको देखकर पुनः प्रसन्न हो उठी। कृष्ण ने आते ही कहा कि ये ग्वालिनें मुझे बहुत तंग करती है। मेरी माँ के सामने ये क्या केवल दही का दोष लगा रही है, ये ग्वालिने तो मार खाए बिना ठीक नही होगी ॥ १२६ ॥ माँ ने पुत्र से पूछा, अच्छा बेटा ! बताओ, तुमको ये गोपियाँ कैसे तग करती है ? तो पुत्र ने माँ से कहा कि ये सब मेरी टोपी (मुकुट) लेकर भाग जाती है। मेरा नाक बन्द कर देती है और मेरे सिर पर मारती है और फिर मुझसे नाक रगड़वाकर, मेरी हँसी उड़ाकर मुझे टोपी वापस करती है ॥ १२७ ॥ ॥ यशोदा उवाच गोपियों के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ माता यशोदा उन गोपियों को खीझकर कहने लगी कि तुम मेरे बच्चे को क्यों तग करती हो। तुम अपने मुंह से अपनी शेखी मार रही हो कि जैसे तुम्हारे ही घर मे दही, गाय और धन आदि है और किसी के पास नही। मूर्ख ग्वालिनो ! तुम विना सोचे-समझे ही बोले जा रही हो। रुको, मै अभी तुम सबको ठीक करती हूँ। कृष्ण सीधा-सादा है, इसको बिमा अपराध के ही यदि कुछ कहोगी तो तुम्हारा पागलपन समझा जायगा ॥ १२८ ॥ ॥ दोहा ॥ फिर यशोदा ने दोनो (कृष्ण और गोपियो) को समझाते हुए दोनों पक्षो की सुलह करवा दी और गोपियों से कहा कि ठीक है, अब अगर कृष्ण तुम लोगों का एक सेर दूध खराब करे तो तुम आकर मुझसे मन भर ले जाओ ॥ १२९ ॥ ॥ गोपी उवाच

जसुधा से ॥ ॥ दोहरा ॥ तब गोपी मिलि यौ कही मोहनि जीवै तोहि । याहि देहि हम खान दध सभ मन करै न क्रोहि ॥ १३० ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे क्रिशनावतारे माखन चुरैबो बरननं ॥

अथ जसुधा को बिस्व सारी मुख पसार दिखैबो ॥

॥ स्वैया ॥ गोपी गई अपने ग्रिह मै तब ते हरि जी इक खेल मचाई । संगि लयो अपने मुसलीधर देखत ता मिटिआ इन खाई । भोजन खानहि को तजि खेलै सु ग्वार चले घर को सब धाई । जाइ हली सु कह्यो जसुधा पहि बात वहै तिन खोलह सुनाई ॥ १३१ ॥ मात गह्यो रिस कै सुत को तब लै छिटीआ तन ताहि प्रहार्यो । तउ मन म्द्धि डर्यो हरि जी जसुधा जसुधा करिकै जु पुकार्यो । देखहु आइ सभै मुहिको मुख मात कह्यो तब तात पसार्यो । स्याम कहै तिन आनन मै सभही धर मूरत बिस्व दिखार्यो ॥ १३२ ॥ सिंध धराधर अउ धरनी

यशोदा के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ तब गोपियो ने कहा कि हे माता यशोदा ! तुम्हारा मोहन युग-युग तक जिए, हम स्वय इसे दूध की खान दे देगी और कभी मन मे बुरा नही मानेगी ॥ १३० ॥

॥ श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार मे मक्खन-चोरी-वर्णन समाप्त ॥

मुख पसारकर यशोदा को सारा विश्व दिखाना

॥ सवैया ॥ जब गोपियाँ अपने घर को चली गयी तो कृष्ण ने नया खेल शुरू कर दिया । इन्होने बलराम को साथ लिया और खेलने लगे । खेल मे बलराम ने देखा कि कृष्ण मिट्टी खा रहा है । जब खेल छोड़कर सभी ग्वाल भोजन करने के लिए घरो को आये तो बलराम ने चुपके से कृष्ण की मिट्टी खानेवाली बात माता यशोदा को कह दी ॥ १३१ ॥ माता ने रुष्ट होकर पुत्र कृष्ण को पकड़ लिया और डंडी लेकर उसे मारने लगी । तब कृष्ण मन मे डर गये और 'यशोदा माँ', 'यशोदा माँ' पुकारने लगे । माँ ने कहा, सभी आकर इसके मुँह को देखो । माँ ने जब मुँह दिखाने के लिए कहा तो कृष्ण ने मुँह खोल दिया । कवि का कथन है कि कृष्ण ने उसी समय अपने मुख मे सारा विश्व इन लोगों को दिखा दिया ॥ १३२ ॥ सिंधु, धरती, पाताल और नागलोक सभी

सम थांबल को पुर अउ पुर नागनि । अउर सभै निरखे तिह मै पुर बेद पड़ै ब्रहमागनि तापनि । रिद्ध अउ सिद्ध अउ आपने देख कै जान अभेव लगी पग लागनि । स्याम कहै तिन चच्छन सौ सभ देख लयो जु बडी बडभागनि ।। १३३ ।। ।। दोहरा ।। जेरज स्वेतज उतभुजा देखे तिन तिह जाइ । पुत्र भाव कौ दूर करि पाइन लागी धाइ ।। १३४ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिशनावतारे मात जसुधा को मुख पसार बिस्व रूप दिखैबो ।।

अथ तर तोर जुमलारजन तारबो ।।

।। स्वैया ।। फेरि उठी जसुधा परि पाइन ताकी करी बहु भात बडाई । हे जग के पति हे करुनानिध होइ अजान कह्यो मम माई । सारे छिमो हमरे तुम अउगन ह्वै मतिमंदि करी जु ढिठाई । मोट लयो मुख तउ हरि जी तिह पै ममता डर बात छपाई ।। १३५ ।। ।। कबितु ।। करुना कै जसुधा कह्यो

दिखा दिये । मुँह मे ब्रह्माग्नि तपते हुए वेद-पाठी दिखाई दिए । ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ और स्वय को देखकर, माता यशोदा कृष्ण को सब रहस्यों से परे जानकर उनके पाँव छूने लगी । कवि का कथन है कि जिन्होने अपने नेत्रो से वह दृश्य देख लिया वे बड़े भाग्यशाली है ।। १३३ ।। ।। दोहा ।। माता ने जेरज, स्वदेज एव उद्भिद् सभी प्रकार के जीव कृष्ण के मुख मे देखे । वह पुत्र-भाव को त्यागकर कृष्ण के चरण स्पर्श करने लगी ।। १३४ ।।

।। श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार मे माता यशोदा को मुँह पसारकर विश्वरूप दिखाना समाप्त ।।

वृक्षों को तोड़कर यमलार्जुन का उद्धार

।। सवैया ।। फिर यशोदा कृष्ण के पाँवो पर से उठी और उसने अनेको प्रकार से कृष्ण की स्तुति की । हे प्रभु ! तुम जगत के स्वामी हो और करुणा के सागर हो, मैंने अनजाने मे अपने को तुम्हारी माँ समझ लिया था । मैं मतिमन्द हूँ, मेरे सारे अवगुणो को तुम क्षमा कर दो । तब हरि ने अपने मुख को बन्द कर लिया और ममतावश इस बात को छिपा लिया ।। १३५ ।। ।। कवित्त ।। यशोदा ने कृपापूर्वक कृष्ण को गोपों

है इम गोपन सों खेलबे के काज रलि आए गोप बन सो। बारको के कहे कर क्रोध मन आपने मैं स्याम को प्रहार तन लागी छूछकन सौ। (मू०ग्रं०२६९) देख देख लासन कौ रोवै सुत मात कहै कबि स्याम महा मोह करि मन सौ। राम राम कहि सभो मारबे की कहा चली सामुहि न बोलिऐ ही ऐसे साध जन सो॥ १३६॥ ॥ दोहरा॥ खीर बिलोवन कौ उठी जसुधा हरि की माइ। मुख ते गावै पूत गुम महिमा कही न जाइ॥ १३७॥ ॥ स्वैया॥ एक समै जसुधा संगि गोपन खीर मथै कर लै कै मधानी। ऊपरि को कट सौ कसिकै पटरो मन मै हरि जोति समानी। घंटकाछुद्र कसी तिह ऊपरि स्याम कह्यो तिह की जु कहानी। दान औ प्राक्रम की सुध कै मुख तैं हरि की सुत गावत बानी॥ १३८॥ खीर भर्यो जबही तिह को कुच तउ हरि जी तब ही फुनि जागे। पय सु पिआवत हुते जसुधा प्रभ जी इह ही रसि मै अनुरागे। दूध फट्यो हुइ बासन तें तब धाइ चली इह रोवन लागे। क्रोध कर्यो मन मै ब्रिज के पति पै घरि ते उठ बाहरि भागे॥ १३९॥ ॥ दोहरा॥ क्रोध

के साथ वन मे खेल आने की आज्ञा दे दी, परन्तु बालको के कहने में आकर माता यशोदा कृष्ण को (फिर) डंडियो से मारने लगी। पुनः डंडियों के निशान शरीर पर पड़े देखकर माता मोहवश रोने लगी। कवि श्याम का कथन है कि ऐसे साधु व्यक्ति को मारना तो दूर रहा उसके सामने तो क्रोध में आना ही नही चाहिए॥ १३६॥ ॥ दोहा॥ माँ यशोदा दही बिलोने के लिए उठी है। वह मुख से पुत्र-महिमा का गायन कर रही है और उसकी महिमा का वर्णन नही किया जा सकता १३७॥ ॥ सवैया॥ एक बार यशोदा गोपिनो को संग लेकर दही मथ रही थी। उसने कमर बाँध रखी थी और मन मे वह कृष्ण का ध्यान लगाये हुए थी। कमरबन्द के ऊपर छोटी-छोटी घंटियाँ कसी हुई थी। कवि श्याम का कहना है कि दान और तप-तेज का तो वर्णन ही नही किया जा सकता। माता प्रसन्न होकर मुख से कृष्ण के गीत गा रही है॥ १३८॥ जब माता यशोदा के स्तनों मे दूध भर आया तो कृष्ण जी जगे। माता उन्हे दूध पिलाने लगी और कृष्ण इसी रंग मे मस्त हो गये। इधर बर्तन मे पड़ा-पडा दूध फट गया। तब माता यशोदा बर्तन का ध्यान आते ही बर्तन देखने के लिए चली तो कृष्ण रोने लगे। ब्रजराज कृष्ण को इतना गुस्सा आ गया कि वे उठकर घर से बाहर भाग गये॥ १३९॥ ॥ दोहा॥ क्रोधित होकर कृष्ण घर से

भरे हरि जी मनै घरि ते बाहरि जाइ। संगि सखा लै कप सभै आए सैन बनाइ ॥ १४० ॥ पाथर को गहिकै करै छीनो मटु सु भगाइ। खीर दसो दिस बहि चल्यो अउ पीनो हरि धाइ ॥ १४१ ॥ ॥ स्वैया ॥ सैन बनाइ भलो हरि जो जसुधा दध को मिल लूटन लाए। हाथन मै गहि कै सभ बासन कै बल को चहूँ ओर बगाए। फूट गए वह फैल पर्यो दध भाव इहै कबि के मन आए। कंस को मीझ निकारन को अगुआ जन आगम कान जनाए ॥ १४२ ॥ ॥ स्वैया ॥ फोर दए तिन जो सभ बासन क्रोध भरी जसुधा तब धाई। फाध चड़े कपि कान्हन ग्वारन ग्वारन सैन भगाई। दउरत दउर तबै हरि जी बसुधा परि आपनी मात हराई। स्याम कहै फिरकै ब्रिज के पति ऊखल सो फुनि देहि बँधाई ॥ १४३ ॥ ॥ स्वैया ॥ दउर गहे हरि जी बसुधा जब बाँधि रही रसिआ नही मावै। कै इकठी ब्रिज की रसिआ सभ जोर रही कछु थाहि न पावै। फेरि बँधाइ भए ब्रिज के पति ऊखल सो धरि ऊपरि धावै। साध उधारन को जुमलारजनु ताहि नमित किधौ

बाहर जाकर गोपों को तथा वानरो को साथ लेकर सेना बनाकर वापस आये ॥ १४० ॥ पत्थर से मार-मारकर इन सबने दूध के मटके फोड़ दिये, जिससे दूध चारों ओर वह निकला। कृष्ण (और उनके साथियों ने) जी भरकर दूध का पान किया ॥ १४१ ॥ ॥ सवैया ॥ इस प्रकार सेना बनाकर कृष्ण जी यशोदा के दूध को लूटने लगे। हाथों मे बर्तन पकड़-पकड़कर इधर-उधर फेकने लगे। दूध और दही को इधर-उधर फैला देखकर कवि के हृदय मे यह भाव आया है कि दही का फैलना मानो कंस का मेद्धा, खोपड़ी फूटकर गिरने का पूर्व सकेत हो ॥ १४२ ॥ ॥ सवैया ॥ जब सब बर्तन कृष्ण ने फोड़ दिये तो यशोदा क्रोधित होकर दौड़ी। बन्दर वृक्षों पर चढ गये और ग्वालों की सेना को कृष्ण ने इशारा करके भगा दिया। तब दौड़ते-दौड़ते कृष्ण ने अपनी माता को हरा दिया अर्थात् उस समय वे उसके हाथ नही आये। परन्तु जब पकड़े गये तो व्रजराज कृष्ण को ऊखल के वृक्ष के साथ बाँध दिया गया ॥ १४३ ॥ ॥ सवैया ॥ यशोदा ने दौड़कर कृष्ण को पकड़कर जब कृष्ण को बाँध दिया तो कृष्ण चिल्लाने लगे। माता ने सारे व्रज की रस्सी इकट्ठी कर ली, परन्तु कृष्ण फिर भी बाँधने में नही आ रहे थे। अन्त में व्रजपति कृष्ण ऊखल के साथ बँध गये और लोटने लगे। ऐसा वे यमलार्जुन के उद्धार के

वह जावै ॥१४४॥ ॥ दोहरा ॥ घीसति घीसति ऊखलहि कान्ह उधारत साध । निकटि तबै तिनकै गए जाननहार (मू०ग्रं०२७०) अगाध ॥ १४५ ॥ ॥ स्वैया ॥ ऊखल कान्ह अराइ किधौ बल कै तन को तर तोर दए है । तउ निकसे तिन तै जुमलारजन कै बिनती सुरलोक गए है । ता छबि के गज उच्च महा कब के मन मै इह भाँति भए है । नागन के पुर ते मधु के मटुकै मत कील जु ऐच लए है ॥ १४६ ॥ ॥ स्वैया ॥ कउतक देख सभै ब्रिज के जन जाइ तबै जसुधा पहि आखी । तोर दए तन को बल कै तर भाँत चली हरि की सुभ साखी । ता छबि की उपमा अति ही कबि ने अपुने मुख ते इम भाखी । फेर कही भहराइ तितै उडे जिउँ घर ते उड जात है माखी ॥१४७॥ ॥ स्वैया ॥ दैतन के बध कौ शिव मूरत है निज सो करता सुख दय्या । लोगन को बरता हरता दुख है करता मुसलीधर भय्या । डार दई ममता हरि जी तब बोल उठी इह है मम जय्या ।

लिए करने लगे ॥ १४४ ॥ ॥ दोहा ॥ ऊखल को घसीटते-घसीटते कृष्ण साधु-जनो का उद्धार करने लगे और अगाध प्रभु उनके निकट चले गये ॥ १४५ ॥ ॥ सवैया ॥ ऊखल को कृष्ण ने (एक अन्य पेड़ के साथ) अडाकर शरीर के बल से तोड़ दिया और उसमे से यमलार्जुन प्रकट हुए और कृष्ण की वन्दना करते हुए सुरलोक चले गये । (कुवेर के पुत्र नलकूवर और मणिग्रीव एक बार गगा के तट पर निर्लज्ज होकर क्रीड़ा कर रहे थे तो नारद ने उन्हे मृत्युलोक मे वृक्ष बनकर रहने का श्राप दिया था । ये दोनो भाई व्रज-भूमि मे वृक्ष बनकर पैदा हुए जिनको ऊखल के साथ अड़ाकर कृष्ण ने तोडा और इनका उद्धार किया ।) यह छवि महाकवि को इतना प्रसन्न कर गई है कि मानो इसे नागलोक से खिचकर चली आयी अमृत रूपी शहद की मटकी मिल गई हो ॥ १४६ ॥ ॥ सवैया ॥ इस लीला को देख सभी व्रज के लोग यशोदा के पास दौड़े हुए आये और उसे वताने लगे कि कृष्ण ने अपने तन के बल से वृक्षो को तोड दिया । उस छवि का भी कवि ने वर्णन करते हुए कहा है कि माता का गला भर आया और वह मक्खी की तरह उड़कर कृष्ण को देखने के लिए चली ॥ १४७ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण दैत्यो के वध के लिए शिव-रूप है, कर्ता है, सुख को देनेवाले हैं, लोको के कष्टो को दूर करनेवाले वलराम के भाई हैं । माँ जाकर उन्हे ममतावश बेटा-बेटा कह पुकारने लगी और कहने लगी कि यह

खेल बनाइ दयो हमको बिध जो जनम्यो ग्रह पूत कन्हय्या ॥ १४८ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे क्रिशनावतारो तर तोर जुमलारजन उधारबो बरननं ॥

॥ स्वैया ॥ तोर दए तर जो तिहही तब गोपन बूढन मंत्र बिचारो। गोकल कौ तजिऐ चलिए ब्रिज ह्वै इहा भाव ते भावन भारो। बात सुनी जसुधा अरु नंदहि ब्योत भलो मन मद्धि बिचारो। अउर भली इह ते न कछू जिह ते सु बचे सुत स्याम हमारो ॥ १४९ ॥ घासि भलो द्रुम छाइ भली जमना ढिग है नग है तट जाके। कोटि झरै झरना तिह ते जग मै सम तुल्लि नही कछु ताके। बोलत है पिक कोकल मोर किधौ घन मे चहूँ ओरन वाके। बेग चलो तुम गोकल को तज पुंन हजार अबै तुम गाके ॥ १५० ॥ ॥ दोहरा ॥ नंद सभै गोपन सनै बात कही इह ठउर। तजि गोकल ब्रिज कौ चले इह ते भली न अउर ॥ १५१ ॥ लटपट बाँधे उठि चले आए जब ब्रिज होर। देख्यो अपनै नैन भर बहितो जमना

परमात्मा की लीला ही है कि मेरे घर मे कृष्ण जैसा पुत्र पैदा हुआ है ॥ १४८ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक ग्रथ के कृष्णावतार मे वृक्षो को तोड़कर यमलार्जुन-उद्धार-वर्णन समाप्त ॥

॥ सवैया ॥ जब वृक्षों को तोड दिया तो सभी गोपों ने यह विचार-विमर्श किया कि गोकुल को छोड़कर अब हमे व्रज मे जाकर रहना चाहिए, क्योकि यहाँ रहना अब कठिन हो गया है। यशोदा और नन्द ने भी इस विचार को सुनकर सलाह की कि हमारे पुत्र को सुरक्षित रूप से रखने के लिए व्रज से और अच्छी जगह कोई नही है ॥ १४९ ॥ वहाँ घास, पेड़ों की छाया, यमुना का किनारा और पर्वत भी है। वहाँ कई झरने बहते हैं और ससार मे उसके तुल्य अन्य कोई और स्थान नही है। वहाँ मोर, कोयल चारो ओर बोलते सुनाई पडते है, इसलिए शीघ्र ही गोकुल को त्यागकर हज़ारो पुण्यों को कमाने के लिए हमे यहाँ से चल देना चाहिए ॥ १५० ॥ ॥ दोहा ॥ नन्द ने सभी गोपों को यह बात कही कि अब गोकुल को छोड़कर व्रज के लिए हमे चल देना चाहिए, क्योकि उससे भली जगह अन्य कोई नही है ॥ १५१ ॥ सभी अपना सामान आदि बाँध शीघ्रता से व्रज मे चले आये और वहाँ उन्होने यमुना के बहते

नीर ।। १५२ ।। ।। स्वैया ।। आइस पाइकै नंदहि को सभ गोपन जाइ भले रथ साजे । बैठ सभै तिन पै तिरिआ संगि गावत जात बजावत बाजे । हेम को दानु करै जु बोऊ हरि गोद लए जसुधा इम राजे । कैधउ सैल सुता गिर भीतर ऊच मनो मन नील बिराजे (मू०ग्रं०२७१) ।। १५३ ।। गोप गए तज गोकल कौ ब्रिज आपने आपने डेरन आए । डार दई लसिआ अरु अच्छत बाहरि भीतरि धूप जगाए । ता छबि को जस उच्च महाँ कबि नै मुख ते इम भाख सुनाए । राज बिभीछन दै किधौ लंक को राम जी धाम पवित्र कराए ।। १५४ ।। ।। कबियो बाच ।। ।। दोहरा ।। गोप सभै बिज पुर बिखै बैठे हरख बढाइ । अब मै लीला क्रिशन की मुख ते कहों सुनाइ ।। १५५ ।। ।। स्वैया ।। सात्ति बतीत भए जब साल लगे तब कान्ह चरावन गउआ । पात बजावत औ मुरली मिल गावत गीत सभै लरकउआ । गोपन लै ग्रिह आवत धावत ताड़त है सभ को मन भउआ । दूध पिआवत है जसुधा रिझ कै हरि खेल करै जु नचउआ ।। १५६ ।। ।। स्वैया ।। रूख गए गिरकै

पानी का अवलोकन किया ।। १५२ ।। ।। सवैया ।। नन्द की आज्ञा पाकर सभी गोपो ने रथो को सजा लिया, उन पर सब स्त्रियाँ बैठ गयी और वे वाद्य बजाते हुए चल दिये । यशोदा कृष्ण को गोद मे लिये हुए शोभायमान है और ऐसा लग रहा है कि मानो उसने स्वर्णदान करके यह पुण्यफल प्राप्त किया हो । यशोदा पर्वत की शुभ्र चट्टान की तरह और उनकी गोद में कृष्ण नीलमणि की तरह विराजमान हो रहे थे ।। १५३ ।। गोप गोकुल को तजकर व्रज में अपने-अपने डेरो पर आ गये और आकर उन्होने वन्दना-स्वरूप इधर-उधर छाछ तथा अक्षत आदि गिराकर अन्दर-बाहर धूप-अगरबत्तियाँ जला ली । उस छवि को महाकवि ने बताते हुए कहा है कि यह ऐसा लग रहा था जैसे राम ने विभीषण को लका का राज्य देकर लका को पुन: पवित्र करवाया हो ।। १५४ ।। ।। कवि उवाच ।। ।। दोहा ।। सभी गोप हर्षित हो व्रजपुरी मे बैठे और अब मैं कृष्ण की लीला का वर्णन करता हूँ ।। १५५ ।। ।। सवैया ।। जब सात वर्ष व्यतीत हुए तो कृष्ण गाय चराने लगे । पीपल के पत्तो को जोड़कर बजाने लगे तथा मुरली के धुन पर सभी लड़के गाने लगे । गोपो को घर में लेकर आने-जाने लगे और अपनी इच्छानुसार सबको डराने-धमकाने लगे । यशोदा माता प्रसन्न होकर इनके नृत्य को देखकर इन सबको दूध पिलाती ।। १५६ ।। ।। सवैया ।। व्रज-

धसिकै संगि दैत चलाइ दयो हरि जी जो। फूल गिरे नभि मंडल ते उपमा तिह की कबि नै सु करी जो। धंनि ही धंनि भयो तिहूँ लोकन भूमि को भारु अबै घट कीजो। स्याम कथा सु कही इसको चित दै कबि पै इह को जु सुनी जो ॥ १५७ ॥ कउतकि देख सभै ब्रिज बालक डेरन डेरन जाइ कही है। दानो की बात सुनी जसुधा गर आनंद के मद्धि बात डही है। ता छबि की अति ही उपमा कबि ने मुख ते सरता जिउँ कही है। फैलि पर्यो सु दसो दिस कौ गनती मन की तिह मद्धि बही है ॥ १५८ ॥

अथ बकी दैत को बध कथनं ॥

॥ स्वैया ॥ दैत हन्यो सुनिकै न्रिप स्रउनन बात कही बक को सुनि लइयै। होइ तयार अबै तुम ते तजिकै मथुरा ब्रिज मंडल जइयै। कै तसलीम चल्यो तिहकौ जब डारत हो मुसली-धर भइयें। कंस कही हसिकै उहि को सुनि रे उहिको छल सो हनि दइयै ॥ १५९ ॥ ॥ स्वैया ॥ प्रात भए बछरे संग लै

मण्डल के वृक्ष ढहने और गिरने लगे और साथ-ही-साथ दैत्यों का भी उद्धार होने लगा। यह देख नभमण्डल से पुष्प-वर्षा होने लगी और कवियो ने इस दृश्य की विभिन्न प्रकार से उपमाएँ दी। तीनो लोकों में धन्य-धन्य की आवाज़ आने लगी और पुकार होने लगी कि हे प्रभु! धरती का भार हलका करो। इस कथा को, जो श्याम कवि ने कहा है, उसे ध्यानपूर्वक सुनिए ॥ १५७ ॥ इस लीला को देखकर व्रज के बालकों ने घर-घर जाकर यह बाते बताई है। दानवो के वध की बात सुनकर यशोदा भी मन-ही-मन आनन्दित हो उठी और कवि ने इसका वर्णन सरिता रूपी वाणी के माध्यम से जो किया है वह चारो दिशाओ मे प्रसिद्ध हो गया और यशोदा माता के मन मे प्रसन्नता की नदी बह निकली ॥ १५८ ॥

बकासुर दैत्य का वध-कथन

॥ सवैया ॥ दैत्यो का मारा जाना सुनकर राजा कंस ने बकासुर से कहा कि अब तुम मथुरा को त्याग व्रजमण्डल में जाओ। वह प्रणाम करता हुआ यह कहकर चल पड़ा कि जब आप मुझे भेज रहे है तो मैं जा रहा हूँ। कंस ने हँसकर कहा कि उसको (कृष्ण को) तो तुम छल से ही मार दोगे ॥ १५९ ॥

कर बीच गए बन कै गिरधारी। फेरि गए जमना तटि पै बछरे जल सुद्ध अचै नहि खारी। आइ गयो उत दैत बकासुर देखन माहि भयानक भारी। लील लए सभ ह्वै बगुला फिरि छोरि गए हरि जोर गजारी ॥ १६० ॥ ॥ दोहरा ॥ अगन रूप तब क्रिशन धर कंठि दयो तिह जाल। गहि सु मुकति ठानत भयो उगल डर्यो ततकाल ॥ १६१ ॥ ॥ स्वैया ॥ चोट करी उन जो इह पै इन तो बलिकै (मू०ग्रं०२७२) उहि चोच गही है। चीर दई बल कै तन को सरता इक स्रउनत साथ बही है। अउर कहा उपमा तिह की सु कही जु कछू मन मद्धि लही है। जोत रली तिह मै इम जिउं दिन मै दुत दीप समाइ रही है ॥ १६२ ॥ ॥ कबितु ॥ जबै दैत आयो महा मुखि चवरायो जब जान हरि पायो मन कीनो वाकै नास को। सिद्ध सुर जाप तिनै उखार डारी चोच वाकी बली मार डार्यो महाबली नाम जास को। भूमि गिर पर्यो ह्वै दुटूक महा मुखि वाको ताको छबि कहिबो को भयो मन दास को। खेलबे के काज बन बीच

॥ सवैया ॥ प्रात होते ही गाय-बछडो को लेकर गिरधारी कृष्ण वन को गये। फिर वे यमुना के तट पर गये और बछड़े जल इत्यादि पीने लगे, उसी समय उधर से भयानक दिखनेवाला बकासुर नामक दैत्य आ गया और उसने बगुले का रूप धारण करते हुए सभी जानवरो को लील लिया ॥ १६० ॥ ॥ दोहा ॥ तब विष्णु ने अग्नि-रूप धारण करके उसके गले को जला दिया और बकासुर ने अपना अन्त पास जानकर डर से उन सबको उगल दिया ॥ १६१ ॥ ॥ सवैया ॥ जब बकासुर ने इन पर चोट की तो इन्होने बलपूर्वक उसकी चोच को पकड़ लिया। बलपूर्वक कृष्ण ने उसको चीर दिया और रक्त-नदी बहने लगी। इस दृश्य का और क्या वर्णन करूँ! उस दैत्य की ज्योति परमज्योति मे इस प्रकार मिल गयी जिस प्रकार तारो की ज्योति दिन के प्रकाश मे विलीन हो जाती है ॥ १६२ ॥ ॥ कवित्त ॥ जब दैत्य आया और उसने मुख खोला तो कृष्ण ने उसका नाश करने का विचार कर लिया। सिद्ध और देवताओ के वन्दनीय कृष्ण ने उसकी चोंच उखाड डाली और उस महाबली राक्षस को मार डाला। वह दो टुकडे हो भूमि पर गिर पड़ा और कवि यह सब वर्णन करने के लिए लालायित हो उठा। वह दृश्य ऐसा लग रहा था जैसे बालक जंगल मे

गए बालक जिउँ लै कै कर मद्धि चीर डारैं लांबे घास को ॥ १६३ ॥

॥ इति बकासुर दैत बधहि ॥

॥ सवैया ॥ संग लए बछुरे अरु गोप सु साँझि परी हरि डेरन आए। होइ प्रसंनि महाँ मन मै मन भावत गीत सभो मिल गाए। ता छबि को जसु उच्च महा कबि नै मुख ते इह भाति बनाए। देवन देव हन्यो धर पै छलि कै तर अउरन को जु सुनाए ॥ १६४ ॥ ॥ कानजू बाच गोपन प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ फेरि कही इह गोपन कउ फुन प्रात भए सभ ही मिलि जावैं। अंनु अचौ अपनै ग्रिह सो जिन मद्धि महा बन के मिल खावैं। बीच तरैं हम पै जमना मन भावत गीत सभै मिल गावैं। नाचहिगे अरु कूदहिगे गहिकै कर मै मुरली सु बजावैं ॥ १६५ ॥ ॥ सवैया ॥ मान लयो सभनो वह गोपन प्रात भई जब रैन बिहानी। कान बजाइ उठ्यो मुरली सभ जाग उठे तब गाइ छिरानी। एक बजावत है द्रुम पात किधो उपमा कबि स्याम पिरानी। कउतक देखि महा इह को पूरहूत बधू सुरलोक खिसानी ॥ १६६ ॥ गेरी के चित्र लगाइ

खेल खेलने गये हो और वहाँ लम्बी घास को बीचो बीच से चीर रहे हों ॥ १६३ ॥

॥ बकासुर दैत्य-वध समाप्त ॥

॥ सवैया ॥ साँझ होने पर बछड़ो और गोपो को सग लेकर श्रीकृष्ण घर आये और सबने प्रसन्न होकर खुशी के गीत गाये। इस छवि की उपमा कवि ने इस प्रकार कही है कि देवो के भी देव श्रीकृष्ण ने छल से मारने के लिए आये वकासुर को छल से समाप्त कर दिया ॥ १६४ ॥ ॥ कृष्ण उवाच गोपो के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने फिर गोपो से कहा कि कल प्रात. सब मिलकर फिर चलेगे। तुम लोग अपने-अपने घर से खाने के लिए कुछ ले चलना हम सब वन मे मिलकर खायेगे। यमुना को तैरकर पार करेंगे, नाचेगे, कूदेगे और बाँसुरी बजायेगे ॥ १६५ ॥ ॥ सवैया ॥ सब गोपों ने यह बात मान ली तथा जब रात बीत गयी और सुबह हुई तो कृष्ण, ने मुरली बजाई और सबने जगकर गायों को छोड दिया। कुछ ग्वाल पत्तो को मोडकर उनका वाजा बनाकर बजाने लगे और कवि श्याम का कथन है कि इस लीला को देखकर सुरलोक मे इन्द्र की पत्नियाँ भी खिसियाने लगीं ॥ १६६ ॥

तनै सिर पंख धर्‌यो भगवान कलापी । लाइ तनै हरिता मुरली मुखि लोक भयो जिह को सभ जापी । फूल गुछे सिर खोस लए तर रूख खरो धरनो जिन थापी । खेलि दिखावत है जग कौ अर कोऊ नही हुइ आप ही आपी ॥ १६७ ॥ ॥ कंस बाच मंत्रीअन सों ॥ ॥ दोहरा ॥ जउ बकलै हरिजी हन्यो कंस सुन्यो तब स्रउन । करि इकत्र मंत्रहि कह्यो तहा भेजिए कउन ॥ १६८ ॥ ॥ मंत्री बाच कंस प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ (मू०ग्रं०२७३) बैठ बिचार कर्‌यो न्रिप मंत्रनि दैंत अघासुर को कहु जावै । मारग रोक रहै तिनको धर पंनग रूप महाँ मुख बावै । आइ परें हरि जी जब ही तब ही सभ ग्वार सनै चब जावै । आइ है खाइ तिनै सुनि कंस कि नातर आपनो जीउ गवावै ॥ १६९ ॥

अथ अघासुर दैंत आगमन ॥

॥ सवैया ॥ जाहि कह्यो अघ कंसि गयो तह पंनग रूप महा धर आयो । भ्रात हन्यो भगनी सुनि कै बध कै मन क्रुद्ध

कृष्ण ने गेरू रंग शरीर पर लगा लिया और सिर पर मोरपंख लगा लिया। हरी मुरली अधर पर रख ली और सारे विश्व के लिए वन्दनीय मुख शोभायमान हो उठा। फूलों के गुच्छे उसने सिर पर खोंस लिये और वह सृष्टि का रचयिता वृक्ष के नीचे खडा हो स्वय ही समझ सकनेवाला खेल सारे विश्व को दिखा रहा है ॥ १६७ ॥ ॥ कस उवाच मंत्रियो के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ जब कस ने बकासुर के वध के बारे मे सुना तो वह मन्त्रियो को इकट्ठा कर विचार करने लगा कि अब किसको भेजा जाय ॥ १६८ ॥ ॥ मन्त्री उवाच कस के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ राजा कंस ने मन्त्रियो से विचार कर अघासुर को व्रज जाने के लिए कहा, ताकि वह महा विकराल सर्प का रूप धारण कर मार्ग मे पड़ा रहे और जब कृष्ण उधर आये तो ग्वालो-समेत सबको चबा जाय। या तो अघासुर उनको खाकर वापस आये और यदि वह ऐसा न करे तो कस के द्वारा मार दिया जाय ॥ १६९ ॥

अघासुर दैत्य-आगमन-कथन

॥ सवैया ॥ कंस के कहने पर भयंकर सर्प का रूप धारण कर अघासुर गया और भ्राता वकासुर तथा बहिन पूतना के वध के बारे में सुन

तहाँ कहु धायो । बैठि रह्यो तिनकै मग मै हरि के बध काज महाँ मुख बायो । देखत ताहि सभै ब्रिज बालक खेल कहा मन मै लखि पायो ॥ १७० ॥ ॥ सभ गोपन बाच आपिस मै ॥ ॥ स्वैया ॥ कोऊ कहे गिर मद्धि गुफा इह कोऊ इकन कहै अँधिआरो । बालक कोऊ कहै इह राछस कोऊ कहै इह पंनग भारो । जाहि कहै इक नाहि कहै इक ब्योत इहो मन मै तिन धारो । एक कहै चलो भउन कछू सु बचाव करे घनि स्याम हमारो ॥ १७१ ॥ होर हरै तिह मद्धि धसे मुख नाउ नराछस मीच लयो है । स्याम जू आवै जबै मम मीट हो ब्योत इही मन मद्धि कयो है । कान्ह गए तब मीट लयो मुख देवन तो हहकार भयो है । जीवन मूर हुती हमरी अब सोऊ अघासुर चाब गयो है ॥ १७२ ॥ ॥ स्वैया ॥ देहि बढाइ बडो हरि जी मुख रोक लयो उह राछस ही को । रोक लए सभ ही करिकै बल सासि बढ्यो तब ही उह जी को । कान्ह बिदार दयो तिह को सिर प्रान भयो बिन भ्रात बकी को । गूद पर्‍यो

कर वह और क्रोधित होकर चल पड़ा। वह रास्ते मे कृष्ण के वध के उद्देश्य को ध्यान मे रखकर विकराल मुख फैलाकर बैठ गया। उसे देखकर सभी व्रज के बालको ने एक खेल समझा और उसके वास्तविक उद्देश्य को न जान पाये ॥ १७० ॥ ॥ सब गोप उवाच परस्पर ॥ ॥ सवैया ॥ कोई कहने लगा, यह पर्वत के बीच मे गुफा है, कोई कहने लगा, यहाँ अंधकार का निवास है; कोई कहने लगा, यह राक्षस है; और कोई कहने लगा, यह भारी सर्प है। कुछ उसमे जाने के लिए कहने लगे और कुछ जाने से इन्कार करने लगे और इसी प्रकार विचार-विमर्श चलता रहा। तब एक ने कहा कि अभय हो इसमे घुस जाओ, कृष्ण हमारी रक्षा करेगा ॥ १७१ ॥ कृष्ण को बुलाकर सभी उसके मुख मे घुस गये और उस राक्षस ने अपना मुख बन्द कर लिया। उसका तो यह विचार ही था कि जब कृष्ण आयेंगे तो मैं मुख बन्द कर लूँगा। जब कृष्ण अन्दर गये तो उसने मुख बन्द कर लिया और देवताओ मे हाहाकार मच गई। वे सभी कहने लगे कि यही तो मेरे जीवन के आधार थे और उसे भी अघासुर चबा गया ॥ १७२ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने अपने शरीर को बढ़ाकर उस राक्षस के मुख को बन्द होने से रोक लिया। अपने बल और हाथों से सारा मार्ग कृष्ण ने रोक लिया तो अघासुर की साँस फूलने लगी। कृष्ण ने उसके सिर को फोड़ दिया और बकासुर का वह भाई निष्प्राण हो गया।

तिहको इम जिउँ सवदागर को टूट ग्यो मट घी को ।। १७३ ।। राह भयो तब ही निकसे हरि ग्वार सभे निकसे तिह नारे । देव तबै हरखे मन मे पिख कान बच्यो हरि पंनग भारे । गावत गीत सभै गन गंध्रब ब्रहम सभो मुख बेद उचारे । आनंद स्याम भयो मन मै नग रच्छक जीत चले घर भारे ।। १७४ ।। ।। स्वैया ।। कान्ह कढ्यो सिरि के मग ह्वै न कढ्यो मुख के मग जोर अड़ी के । स्रउन भर्‌यो इम ठाढि भयो पहरे पट जिउँ मुनि स्त्रिग मड़ी के । एक कही इह की उपमा फुन अउ कबि के मन मद्धि वड़ी के । ढोअति ईट गुआर सनै हरि दउर चड़े जन सीस गड़ी के ।। १७५ ।। (मू०ग्रं०२७४)

।। इति अघासुर दैत बधहि ।।

अथ बछरे ग्वार ब्रहमा चुरैबो कथनं ।।

।। स्वैया ।। राछस मार गए जमना तट जाइ सभो मिलि अंन मँगायो । कान्ह प्रवार पर्‌यो मुरलीकट खोस लई मन

उसके सिर की मेधा इस प्रकार बाहर निकल पडी मानो किसी व्यापारी के घी का मटका फूट गया हो ।। १७३ ।। इस प्रकार जब रास्ता बन गया तो कृष्ण ग्वालो के साथ उसके सिर मे से निकले । कृष्ण को उस भारी सर्प के आक्रमण से बच गया देखकर सभी देवगण हर्षित हो उठे । गण-गन्धर्व गीत गाने तथा ब्रह्मा वेदपाठ करने लगे । सबके मन मे आनन्द छा गया और नाग को जीतनेवाले श्रीकृष्ण और उनके साथी घर की ओर चल दिये ।। १७४ ।। ।। सवैया ।। कृष्ण दैत्य के सिर के मार्ग से निकले और मुँह मे से वापस नही निकले । रक्त से सने हुए वे सब इस प्रकार खड़े थे मानो किसी मुनि ने गेरुए वस्त्र धारण कर रखे हो । कवि ने भी इस दृश्य के लिए एक उपमा दी है कि वे सब ऐसे लग रहे थे कि मानो ग्वाले ईंटो को ढोते हुए लाल हो गये हो और कृष्ण मानो दौड़कर किले के शिखर पर जा खड़े हुए हो ।। १७५ ।।

।। अघासुर दैत्य-वध समाप्त ।।

बछड़े और ग्वालों का ब्रह्मा द्वारा चुराया जाना

।। सवैया ।। राक्षस को मारकर सभी यमुना के तट पर गए और खाद्यान्न इकट्ठा किया गया । कृष्ण के चारो ओर सब इकट्ठा हो गए

मै सुख पायो । कै छमका बरखै छटका कर बाम हूँ सो सभ हूँ वह छायो । मीठ लगै तिह को उपमा करकै गति कै हरि के मुख पायो ॥ १७६ ॥ कोऊ डरै हरि के मुखि ग्रास ठगाइ कोऊ अपणे मुख डारे । होइ गए तन मै कछु नामक खेल करो संगि कानर कारे । ता छिन लै बछरे ब्रहमा इकठे करि कै सु कुटी मधि डारे । ढूँढि फिरै न लहै सु करै बछरे अरु ग्वारन एक रतारे ॥१७७॥ ॥ दोहरा ॥ जबै हरो ब्रहमा इहै तब हरि जी ततकाल । किधो बनाए छिनक मै बछरे संगि गुवाल ॥१७८॥ ॥ स्वैया ॥ रूप उही पट के रंग है वह रंग वहै सभ ही बछरा को । साँझि परी सु गए हरि जी ग्रहि कोइ लखै इतनो बल काको । मात पिता सु लखे न लखे इक आद को नाम मनो मन जाको । बात इही समझी मन मै इह है अब खेल समापति वाँको ॥ १७९ ॥ चूम लयो जसुधा सुत को सिर कान्ह बजाइ उठे मुरली तो । बाल लखे अपनो न किनी जन गोद धरी तिह सो हित कीजो । होत कुलाहल पै ब्रिज मै नहि होत इतै सु कहूँ किम बीतो । गावत गीत सने हरि ग्वारन लेह बलाइ वधू

तथा कृष्ण ने मुरली को कमर मे खोसकर प्रसन्नता का अनुभव किया। वे अन्न को झटपट छौककर बाये हाथ से शीघ्रतापूर्वक खाने लगे और सुस्वाद अन्न कृष्ण के मुँह मे भी डालने लगे ॥ १७६ ॥ कोई डरा हुआ कृष्ण के मुँह मे ग्रास डालने लगा तथा कोई कृष्ण को छकाते हुए ग्रास अपने मुँह में डालने लगा। इस प्रकार सभी कृष्ण के साथ खेल करने लगे और उसी क्षण ब्रह्मा ने उनके बछडे इकट्ठे कर एक कुटिया मे बन्द कर दिए। सभी बछड़े ढूँढने लगे, परन्तु एक भी ग्वाले और बछड़े का पता न लगा ॥ १७७ ॥ ॥ दोहा ॥ जब ब्रह्मा ने यह हरण किया तो उसी क्षण कृष्ण ने ग्वालों-सहित बछड़ो की रचना कर दी ॥ १७८ ॥ ॥ सवैया ॥ वही स्वरूप, वही वस्त्र और बछड़ो का रग भी ठीक वही। सध्या हुई और श्रीकृष्ण वापस घर गए। भला कौन उनके वल को जान सकता है। ब्रह्मा ने सोचा कि माता-पिता इस सबको देखकर समझ जायेंगे और कृष्ण का खेल अब समाप्त हो जायेगा ॥ १७९ ॥ जब कृष्ण ने मुरली बजाई तो यशोदा ने पुत्र का सिर चूम लिया और किसी ने भी अपने बालक की तरफ ध्यान न दिया और सभी कृष्ण से प्यार करने लगे। व्रज मे जितना कोलाहल हो रहा है, उतना कोलाहल कहीं नही हो रहा है और पता ही नही लग रहा है कि समय कैसे बीत रहा है। ग्वालिनो के साथ कृष्ण जी

ब्रिज कीसो ॥ १८० ॥ ॥ स्वैया ॥ प्रात भए हरि जी उठ कै बन बीच गए संग लैकर बच्छे । गावत गीत फिरावत है छटका गहि ग्वार सभै कर हच्छे । खेलत खेलत नंद को नंद सु आप ही तो गिर को उठ गच्छे । कोऊ कहै इह खेद गहे हम कोऊ कहैं इह नाहनि नच्छे ॥ १८१ ॥ ॥ स्वैया ॥ होइ इकत्र सने हरि ग्वारन लै अपने संगि पै सभ गाई । देखि तिनै गिर के सिर ते मन मोहि बढाइ सभै उठि धाई । गोप गए तिन पै चलकै जब जात पिखी तिन नैनन माई । रोह भरे सु खरे न टरे सुत नंदहि के बहु बात सुनाई ॥ १८२ ॥ ॥ नंद बाच कान्ह प्रति ॥ ॥ स्वैया ॥ किउ सुत गउअन ल्याइ इहाँ इह तं हमरो सभ ही वध खोयो । चूघ गए बछरा इन को इह ते हमरै मन मै भ्रम होयो । कान्ह फरेब कर्‍यो तिन सो मन मोह महाँ तिन के जु करोयो । बार भयो तत क्रोध (मू०ग्रं०२७५) मनो तिह मै जल सीतल मोह समोयो ॥ १८३ ॥ ॥ सवैया ॥ मोहि बढ्यो तिह के मन मै नहि छोडि सकै अपनो सुत कोऊ । गउअनि छोडि सकै बछरे इतनो मन मोह करै तब सोऊ । तै गरुए ग्रिहगे संगि

व्रज की वधुओ को साथ लेते हुए गीत गाने लगे ॥ १८० ॥ ॥ सवैया ॥ जब सुबह हुई तो कृष्ण बछड़ों को ले फिर वन में गए और वहाँ उन्होने देखा कि लाठी घुमाते हुए सभी ग्वाल-बाल गीत गा रहे है । खेलते-खेलते कृष्ण स्वयं ही गिरि की ओर गए । कोई कहने लगा कि कृष्ण हमसे नाराज़ हैं और कोई कहने लगा कि ये अस्वस्थ है ॥ १८१ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी ग्वालो-सहित कृष्ण गायो को लेकर चल पड़े । उनको पर्वत के शिखर पर देखकर सब मोहवश उनकी ओर दौड़े । गोप भी उनकी तरफ़ चले और यह दृश्य माता यशोदा ने भी देखा । कृष्ण वहाँ रुष्ट होकर खड़े थे और हिल नही रहे थे और इन सब लोगो ने कृष्ण को बहुत सी बातें कही ॥ १८२ ॥ ॥ नन्द उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ हे पुत्र ! तुम गायो को यहाँ क्यो ले आये हो । इस प्रकार तो हमें दूध की हानि हुई है । सब बछड़े ही इनका दूध पी गए हैं और हम लोगों के मन में यह भ्रम बना हुआ है । कृष्ण ने उन सबको कुछ नही बताया और इस प्रकार उनके मन के मोह को और बढ़ने दिया । कृष्ण के स्वरूप को देखकर सबका क्रोध जल के समान शीतल हो गया ॥ १८३ ॥ ॥ सवैया ॥ सबके मन मे मोह बढ गया, क्योकि कोई भी अपने पुत्र को छोड़ नही सकता था । गायो और बछड़ो का मोह तो छोड़ा

लै तिन चउक हली इहि बात लखोऊ। देव डरी ममता इन पै कि चरित्र किधो हरि को इह होऊ ॥ १८४ ॥ साल बितीत भए जबही हरि जी बन बीच गए दिन कउनै। देखन कउतक को चतुरानन शीघ्र भयो तिह को उठि गउनै। ग्वार वहै बछुरे संगि है वह चक्कृत जाइ गयो हुइ तउनै। देखि तिनै डर कै पर पाइन आइकै आनंद दुंदभ छउनै ॥ १८५ ॥ ॥ ब्रहमा बाच कान्ह जू प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे करुनानिध हे जग के पति अच्चुत हे बिनती सुन लीजै। चूक भई हम ते तुमरी तिह ते अपराध छिमापन कीजै। कान कही इह बात छिमी हम ना बिख अंम्रित छाडिकै पीजै। ल्याउ कह्यो न लिआइहो जाह सिताब अइयो नही ढील करीजै ॥ १८६ ॥ लै बछरे ब्रहमा तबही छिन मै चलकै हरि जी पहि आयो। कान मिले जबही सभ ग्वार तबै मन मै तिनहूँ सुख पायो। लोप भयो संगि के बछरे तब भेद किनी लख जान न पायो। बात बुझी न किनी उठि बोलि सु ल्याउ वहै हम जो मिलि खायो ॥ १८७ ॥ होइ इकत्र किधो ब्रिज बालक अंनि अचयो

जा सकता था। इस प्रकार धीरे-धीरे इन सब बात का स्मरण करते हुए सब अपने घर को चले गए। यह सब देखकर माता यशोदा भी डर गयी और सोचने लगी कि हो सकता है कि यह भी कृष्ण का कोई चरित्र हो ॥ १८४ ॥ वर्षों बीतने पर एक बार कृष्ण वन मे गए तो ब्रह्मा भी उनकी लीला देखने के लिए वहाँ पहुँच गए। वह यह देखकर चकित हो गया कि वही ग्वाल और वही बछडे कृष्ण के सग हैं जो उसने (ब्रह्मा ने) चुराये थे। यह सब देखकर डरकर ब्रह्मा कृष्ण के पैरो पर आ गिर पड़े और आनन्दित होकर मंगल-वाद्य बजाने लगे ॥ १८५ ॥ ॥ ब्रह्मा उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे जगत्पति, करुणानिधि, अच्युत प्रभु ! मेरी प्रार्थना सुनिए। मुझसे भूल हुई है, मेरे अपराध को कृपा कर क्षमा कर दीजिए। कृष्ण ने कहा कि हमने क्षमा किया, परन्तु अमृत छोड़कर विष का सेवन नही करना चाहिए। जाओ, अविलम्ब सव लोगो को लेकर आओ ॥ १८६ ॥ क्षण भर मे ब्रह्मा सब बछडो और ग्वालो को लेकर आ गया। कृष्ण को जव सभी ग्वाल-बाल मिले तो सबको परमसुख प्राप्त हुआ। इसी के साथ जो कृष्ण की माया के फलस्वरूप बछड़े बने हुए थे, उन सबका लोप हो गया परन्तु इस भेद को कोई भी जान न सका। किसी ने इस रहस्य को न समझा और सभी यह कहने लगे कि लाओ जो लाए

सबनो जु पुरानो। कान कही हम नाग हन्यो हरि को इह खेल किनी नहि जानो। होइ प्रसंनि महाँ मन सै गरड़ाधुज को कर रच्छक मानो। दान दयो हमको जिय को इह मात पिता पहि जाइ बखानो॥ १८८॥

॥ इति ब्रहमा बछरे आन पाइ परा॥

अथ धेनक दैत बध कथनं॥

॥ स्वैया॥ बारह साल बितीत भए तु लगे तब कान्ह चरावन गाई। सुंदर रूप बन्यो इह को कहिकै इह ताहि सराहत दाई। ग्वार सनै बन बीच फिरै कबि नै उपमा तिह की लखि पाई। कंसहि के बध के हित को जनु बाल चमूं भगवान बनाई॥ १८९॥ ॥ कवित्तु॥ कमल सो आनन कुरंग ताके वाके नैन कट सम केहरि म्रिनाल बाहै ऐन है। कोकल सो कंठ कीर नासका धनुखु भउहै बानी सुरसर जाहि लागै नहि चैन

हो, उसे मिलकर खाया जाय॥ १८७॥ व्रज के बालको ने उसी पुराने अन्न को इकट्ठा होकर खाना शुरू किया। कृष्ण ने कहा कि मैने नाग को मार डाला है, परन्तु इस खेल का किसी को भी पता नही चला। वे सब गरुड को अपना रक्षक मानकर प्रसन्न होने लगे और कृष्ण ने कहा कि तुम सब लोग घर पर यह बता देना कि उस ईश्वर ने हमारे प्राणों की रक्षा की है॥ १८८॥

॥ ब्रह्मा का बछडे-सहित आकर पाँव पर पडना समाप्त॥

धेनुक दैत्य-वध-कथन

॥ सवैया॥ बारह वर्ष की आयु तक कृष्ण गाय चराने गए। उनका स्वरूप अत्यन्त सुन्दर बना हुआ था और सभी उनकी सराहना करते थे। ग्वालो के साथ वन के बीच विचरण करते हुए कृष्ण को देखकर कवि ने ऐसा माना है कि मानो कस का वध करने के लिए भगवान ने सेना तैयार की है॥ १८९॥ ॥ कवित्त॥ कमल के समान मुख, बाँके नयन, सिह के समान कटि और कमलनाल के समान लम्बी भुजाएँ हैं। कृष्ण का कठ कोकिला के समान मीठा, तोते के समान नासिका, धनुष के समान भौहे, गगा के समान पवित्र वाणी है। वे जिससे भी बात कर लेते है, उसको चैन नही पडता। वे स्त्रियो को मोहित करते हुए इसी प्रकार आसपास के गाँवो मे विचरण करते हैं जैसे चन्द्रमा

है। त्रीअनि को मोहति फिरति ग्राम आस (मू०ग्रं०२७६) पास बिरहन के दाहबे को जैसे पति रैन है। मंदमति लोक कछु जानत न भेद याको एते पर कहै चरवारो स्याम धेन है ॥१९०॥ ॥ गोपी बाच कान्ह जू सो ॥ ॥ सवैया ॥ होइ इकत्र वधू ब्रिज की सभ बात कहै मुख ते इह स्यामै। आनन चंद बने म्रिग से द्रिग राति दिना बसतो सु हिया मै। बात नही अरि पै इह की बिरतांत लख्यो हम जान जिया मै। कै डरपै हरि के हरि कौ छप मैन रह्यो अब लउ तन या मै ॥ १९१ ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ सवैया ॥ संग हली हरि जी सभ ग्वार कही लख तोर सुनो इह भइया। रूप धरो अवतारन को तुम बात इहै गति की सुरगइया। ना हमरो अब को इह रूप सभै जग मै किनहूँ लख पइया। कान्ह कह्यो हम खेल करै जोऊ होइ भलो मन को परचइया ॥ १९२ ॥ ॥ सवैया ॥ ताल भले तिह ठउर बिखै सभ ही जन के मन के सुखदाई। सेत सरोवर है अति ही तिन मै सरमास सिसी दमकाई। मद्ध बरेतन की उपमा कबि नै मुख ते इम भाख सुनाई। लोचन सउ करिकै बसुधा हरि

विरहिणियो को जलाते हुए आकाश मे भ्रमण करता है। मदमति लोग इस भेद को न जानते हुए इतने महान गुणो वाले श्रीकृष्ण को मात्र गायो का चरानेवाला कृष्ण ही कहते हैं॥ १९० ॥ ॥ गोपी उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ व्रज की सभी वधुएँ इकट्ठी होकर बाते करती है कि इसका मुख तो श्याम है, चेहरा चन्द्रमा के समान है, आँखे मृग के समान है और यह कृष्ण दिन-रात हमारे हृदय मे विराजमान रहता है। इसकी बात का वृत्तान्त, हे सखी! जानने पर हृदय मे भय बन जाता है और ऐसा लगने लगता है कि कृष्ण के शरीर में कामदेव का निवास है ॥ १९१ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ सभी ग्वालिने कृष्ण के साथ हो गयी और उनसे यह कहने लगी कि तुम तो अवतारों का रूप धारण करनेवाले हो। तुम्हारी गति को कोई नही जान सकता। कृष्ण ने कहा कि हमारा यह स्वरूप कोई नही देख पाएगा। हम तो केवल मन को वहलाने के लिए यह सब खेल करते रहते है ॥ ॥ १९२ ॥ ॥ सवैया ॥ उस स्थान पर मन को सुख देनेवाले सुन्दर तालाब थे। और उसमे एक सरोवर सुन्दर सफेद पुष्पो से भरा हुआ दमक रहा था। उस तालाब के वीचोबीच एक टीला-सा उभरा हुआ दिखाई पड़ रहा था और श्वेत पुष्पो को देखकर कवि को ऐसा लग रहा है कि मानो पृथ्वी सैकड़ो नेत्र बनाकर कृष्ण की

के इह कउतक देखन आई ॥ १६३ ॥ रूप बिराजत है अति ही जिन को पिख कै मन आनंदि बाढे। खेलत कान्ह फिरै तिह जाइ बने जिह ठउर बडे सर गाढे। ग्वाल हली हरि के संग राजत देख दुखी मन को दुख काढे। कउतक देख धरा हरखी तिह ते तर रोम भए तन ठाढे ॥ १६४ ॥ कान्ह तरै तरु के मुरली सु बजाइ उठ्यो तन को कर ऐडा। मोहि रही जमना खग अउ हरि जच्छ सभै अरना अरु गैडा। पंडित मोहि रहे सुनकै अरु मोहि गए सुनके जन जैडा। बात कही कबि नै मुख ते मुरली इहनाहन रागन पैडा ॥ १६५ ॥ आनन देख धरा हरि को अपने मन मै अति ही ललचानी। सुंदर रूप बन्यो इह को तिह ते प्रतमा अत ते अति भानी। स्याम कही उपमा तिह की अपने मन मै फुनि जो पहिचानी। रंगन के पट लै तन पै जु मनो इह को हुइबे पटरानी ॥ १६६ ॥ ॥ गोप बाच ॥ ॥ सवैया ॥ ग्वार कही बिनती हरि कै इक ताल बडो तिह पै फल हच्छे। लाइक है तुमरे मुख की करुआ

लीला देखने के लिए आई हो ॥ १९३ ॥ श्रीकृष्ण का अत्यन्त सुन्दर स्वरूप है, जिसको देखकर मन में आनन्द की वृद्धि होती है। कृष्ण वन मे उन स्थानो पर जाकर खेलते हैं जहाँ गहरे सरोवर है। ग्वाल-बाल कृष्ण के सग शोभायमान होते है और उनको देखकर दुःखी हृदयो का कष्ट दूर हो जाता है। कृष्ण की लीला को देखकर धरती भी प्रसन्न हो उठी और धरती के रोमो के प्रतीक वृक्ष भी उनकी लीला को देखकर शीतलता का अनुभव करते हैं ॥ १९४ ॥ कृष्ण वृक्ष के नीचे शरीर को टेढ़ा करके मुरली वजाते हैं और यमुना, पक्षी, सर्प, यक्ष एवं जगली जानवर सभी मोहित हो उठते हैं। पडित और सामान्य व्यक्ति जिसने भी मुरली को सुना, वह मोहित हो गया और कवि का कथन है कि यह मुरली नही है किन्तु ऐसा लगता है मानो यह राग-रागिनियो का एक लम्वा मार्ग हो ॥ १९५ ॥ धरती श्रीकृष्ण का सुन्दर मुख देखकर मन-ही-मन ललचाती है और मन मे विचार करती है कि इसके सुन्दर स्वरूप के कारण ही इसकी प्रतिमा अति तेजवान है। श्याम कवि ने अपने मन की बात को कहते हुए यह उपमा दी है कि धरती विभिन्न रगो के वस्त्रों को धारण कर कृष्ण की पटरानी वनने की कल्पना मे डूवी हुई है ॥ १९६ ॥ ॥ गोप उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ ग्वालो ने एक दिन कृष्ण से प्रार्थना की कि एक सरोवर है, वहाँ पर वहुत ही अच्छे फल लगे हुए है। वहाँ के अंगूरो के

जह बाग दसो दिस गुच्छे। धेनक दैत बडो तिह जाइ किधो हनि लोगन के उन रच्छे। पुत्र मनो मधरेंद प्रभात तिनै उठ प्रात (मू०ग्रं०२७७) समै वह भच्छे ॥ १९७ ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ जाइ कही तिन को हरि जी जह ताल वहै अरु है फल नीके। बोलि उठ्यो मुख ते मुसली सु तो अंम्रित के नहि है फुनि फीके। मार है दैत तहा चलकै जिहते सुर जाहि नभै दुख जी के। होइ प्रसंनि चलै तह को मिल संख बजाइ सभै मुरली के ॥ १९८ ॥ होइ प्रसंनि तहा हरि जी जु गए मिलकै तट पै सर भारे। कैबल तो मुसली तन को तरु ते फर बूंदन ज्यों धर डारे। धेनक क्रोध महा करकै दोऊ पाइ ह्रिदे तिह साथ प्रहारे। गोडन ते गहि फैंक दयो हरि जिउँ सिर ते गहि कूकर मारे ॥ १९९ ॥ ॥ स्वैया ॥ क्रुद्ध भई धुजनी तिह की पति जान हत्यो इन ऊपरि आई। गाइ को रूपु धर्यो सभ ही तब ही खुर सो धर धूर उचाई। कान्ह हली बलि कै

गुच्छे, हे कृष्ण ! तुम्हारे लायक है, परन्तु वहाँ पर धेनुक नामक दैत्य है जो लोगो को मार डालता है, वही दैत्य उस तालाब की रक्षा करता है। वह लोगो के पुत्रो को रात मे पकड़ लेता है और प्रातः उठकर उनका भक्षण करता है ॥ १९७ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने अपने सब साथियों से कहा कि उसी तालाब के फल वास्तव मे अच्छे है। बलराम भी उसी समय बोल उठा कि अमृत भी उनके सामने फीका है। चलो चलकर वहाँ दैत्य को मारा जाय ताकि नभवासी देवताओ का दु:ख दूर हो सके। इस प्रकार सभी प्रसन्न होकर मुरली और शख बजाते हुए उस ओर चल दिए ॥ १९८ ॥ प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण जी सबके साथ मिलकर उस सरोवर के तट की ओर गए। बलराम ने उस वृक्ष से फल इस प्रकार झाड लिये जैसे बूंदे धरती पर गिरती है। धेनुक दैत्य ने क्रोधित होकर दोनो पैरो से एक साथ प्रहार किया, परन्तु कृष्ण ने उसे टाँगो से पकड़कर इस प्रकार फेंककर दे मारा जैसे कुत्ते को उठाकर फेंक दिया जाता है ॥ १९९ ॥ ॥ सवैया ॥ तब उस दैत्य की सेना अपने सेनापति को मारा गया समझकर गायो का रूप धारण कर क्रोधित होकर धूल उडाती हुई इन सब पर टूट पडी। कृष्ण और बलवान हलधर ने उस चतुरगिणी सेना को उसी प्रकार दसो दिशाओं मे उडा दिया जिस प्रकार खलिहान मे

तब ही चतुरंग दसो दिस बीच बगाई। लै किरसान मनो तंगुली खल दानन ज्यों नभि बीचि उडाई ॥ २०० ॥

॥ इति स्री दसम सकंध पुराणे बचित्र नाटक क्रिशनावतारे धेनक दैत बधहि ॥

॥ स्वैया ॥ दैत हन्यो चतरंग चमूं सुन देव करै मिलि कान्ह बडाई। अचछ सभै फल ग्वार चले ग्रह धूर परी मुख पै छब छाई। ता छबि की उपमा अति ही कबि ने मुख ते इम भाख सुणाई। धावत घोरन की पग की रज छाइ लए रब सी छब पाई ॥ २०१ ॥ सैन सनै हनि दैत गयो ग्रह गोप गए गुपिआ सभ आई। मात प्रसनि भई मन मै तिह की जु करैं बहु भात बडाई। चावर दूध कर्‌यो खइबे कहु खाइ बहू तिह देह बधाई। होइ बडी तुमरी चुटिआ इह ते फुन बात सभै मिल चाई ॥ २०२ ॥ भोजन कै टिकगे हरि जी पलका पर अउर करे जु कहानी। राज गयो तरनो मगरै न लह्यो सु लग्यो वह पीअन पानी। रात परी तब ही भर भै तिन स्रउन सुनी अपने इह बानी। जाहु कह्यो तिन तउ हरि ग्यो ग्रिह जाइ मिल्यो

किसान अनाज को अलग करने के लिए भूसे को आकाश मे उड़ा देता है ॥ २०० ॥

॥ श्री दशम स्कन्ध पुराण के बचित्र नाटक के कृष्णावतार मे धेनुक दैत्य-वध समाप्त ॥

॥ सवैया ॥ दैत्यों की चतुरंगिणी सेना को नष्ट होते सुनकर देवताओ ने कृष्ण की स्तुति की। सभी ग्वाल-बाल फल खाते हुए और धूल उडाते हुए चल पडे। उस दृश्य का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है कि मानो घोड़ो की टापों की धूल सूर्य तक पहुँच गयी ॥ २०१ ॥ सेना-समेत दैत्यो का हनन कर गोप-गोपिकाएँ तथा कृष्ण घर आ गये। माताएँ प्रसन्न हुईं और भांति-भाँति से सबकी बड़ाई करने लगी। चावल और दूध खा-खाकर वे सब हृष्ट-पुष्ट हो रहे थे और माताओं ने गोपिकाओ को कहा कि इसी तरह सब लोगो की चोटियाँ भी लम्बी और मोटी हो जायेगी ॥ २०२ ॥ भोजन करके कृष्ण जी सो गये और सपने देखने लगे कि पानी पी-पीकर उनका पेट बहुत अधिक भर गया। जब रात्रि और अधिक हुई तब उन्होने भयभीत करनेवाली एक आवाज सुनी, जिसमे उनसे कहा गया कि यहाँ से चले जाओ। कृष्ण जी वहाँ से चले आये

अपनी पटरानी ॥ २०३ ॥ ॥ स्वैया ॥ सोइ गए हरि प्रात भए फिर लै बछरे बन गे गिरधारी । मद्धि भए रवि के जमना तट धाइ गए जिह थो सर भारी । गो बछरे अरु गोप सभै गिरगे सभ प्रान डसै जबकारी । धाइ कह्यो मुसली प्रभ पै (मू०ग्रं०२७८) सभ सैन सखा तुमरी हरि मारी ॥ २०४ ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिपा द्रिश्टि चितवी तिनै जीव उठे ततकाल । गऊ सभै अरु सुत तिनै भउ फुनि सभै गुपाल ॥ २०५ ॥ ॥ दोहरा ॥ उठ पाइन लागै तबै करहि बडाई सोइ । जीअ दान हमको दयो इह ते बडो न कोइ ॥ २०६ ॥

अथ काली नाग नाथबो ॥

॥ दोहरा ॥ गोप जानकै आपने कीनो मनै बिचार । दुश्ट नाग सर मो बसै ताको लेउ निकार ॥ २०७ ॥ ॥ स्वैया ॥ ऊच कदंमहि को तरु थो तिह पै चड़िक हरि कूद पर्यो । तिन शंक करी मन मै न कछू फुन धीरज गाढ धर्यो न टर्यो । मनुखो सत लौ जल उच भयो निकस्यो तब नाग बडो

और अपने घर अपनी माता के पास पहुँच गये ॥ २०३ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण सो गये और पुनः प्रात काल बछड़ो को लेकर वन मे गये । दोपहर में यमुना तट पर वे वहाँ पहुँचे जहाँ एक बहुत भारी तालाब था । वहाँ पर कालिय नाग ने सभी गायों, बछड़ो और गोपो को डस लिया और वे सब निष्प्राण होकर गिर पड़े । यह देखकर बलराम ने कृष्ण से कहा कि दौड़ो, तुम्हारी सारी बाल-सेना सर्प ने मार दी है ॥ २०४ ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण ने कृपादृष्टि करते हुए उन सबकी ओर देखा और गाये, ग्वाल-गोपाल सभी तत्काल जीवित हो उठे ॥ २०५ ॥ ॥ दोहा ॥ सभी उठकर चरण-स्पर्श करने लगे कि हे हमको जीवन-दान देनेवाले ! तुमसे बड़ा और कोई नही है ॥ २०६ ॥

कालिय नाग को नाथना

॥ दोहा ॥ गोपो के साथ कृष्ण ने विचार किया कि दुष्ट नाग इसी तालाव मे निवास करता है, उसे निकाला जाय ॥ २०७ ॥ ॥ सवैया ॥ ॥ कदम्ब के पेड पर ऊँचाई पर चढ़कर कृष्ण तालाव मे कूद पड़े । कृष्ण ज़रा-सा भी नही डरे और धैर्यपूर्वक चल पड़े । मनुष्य से सात गुना ऊँचा जल उठा और उसमे से नाग निकला, परन्तु श्रीकृष्ण फिर

न डर्‌यो। पट तीर धरे तन पै नर देखि महाबलि कै तिन जुद्ध कर्‌यो ॥ २०८ ॥ बाँध लयो हरि को तन सो कर क्रुद्ध किधो तिह को तन काटे। ढीलो रह्‌यो हुइ पै हरि जो पिखयारन को हियरे फुन फाटे। रोवत आवत पै पतनी ब्रिज ठोकत मूँड उखारत झाटे। आए है मार उसै नही रोवहु नंद इहै कहि कै इन डाटे ॥ २०९ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह लपेट बडो बहु पंनग फूकत है कर क्रुद्धहि कैसे। जिउँ धनपात्र गए धन ते अति झूरत लेत उसासन तैसे। बोलत जिउँ धमिआ हरि मै सुर के मधि स्वास भरे वह ऐसे। भूमर बीच परे जल जिउँ तिह ते फुनि होत महा धुन जैसे ॥ २१० ॥ चवक्रंत होइ रहै ब्रिज बालक मार लए हरि जी इह नागै। दच्छन तीअ भुजा गहिकै इह मति लगै दुख अउ सुख भागै। खोजत खोज सभै ब्रिज के जन कउतक देख लयो इह आगै। स्यामहि स्याम बडो अहि काटत जिउँ रुच कै नर खावत सागै ॥ २११ ॥ रोवन लाग जबै जसुधा चुप ताहि करावत पै जु अली है। दैत त्रिनाव्रत

भी नही डरे। नाग ने जब अपने ऊपर सवार किसी मनुष्य को देखा तो वह युद्ध करने लगा ॥ २०८ ॥ उसने कृष्ण को अपनी लपेट मे बाँध लिया और कृष्ण ने क्रोधित होकर उसके तन को काट दिया। कृष्ण पर सर्प की पकड़ ढीली हुई परन्तु देखनेवालो का हृदय भय मे फटने लगा। व्रज गाँव की स्त्रियाँ बाल नोचती हुई और सिर धुनती हुई उस तरफ़ चली, परन्तु नन्द ने सबको यह कहकर डाँटा कि तुम सब लोग रोओ मत। कृष्ण उसे मारकर ही लौटेगा ॥ २०९ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण को अपनी लपेट मे लेकर वह विशाल सर्प क्रोध से फुफकारने लगा। सर्प ऐसे फुफकार रहा था, जैसे कोई साहूकार धन की तिजोरी चली जाने से लम्बी-लम्बी साँसे भरता है। उस सर्प की साँस ऐसे चल रही थी, मानो कही धमधमाकर ढोल बज रहा हो अथवा वह ध्वनि ऐसी भी लग रही थी कि मानो जल मे पड़े बड़े भँवर की ध्वनि हो ॥ २१० ॥ व्रज के बालक चकित होकर यह देख रहे थे और एक-दूसरे की भुजाओ को पकड़कर यही विचार कर रहे थे कि कृष्ण किसी प्रकार सर्प को मार डाले। सभी व्रज के नर-नारी इस लीला को देख रहे थे और इधर काला सर्प कृष्ण को इस प्रकार काट रहा था जैसे कोई व्यक्ति रुचिकर भोजन को खा रहा हो ॥ २११ ॥ जब यशोदा भी रोने लगी तो उसकी सखियाँ उसे यह कहकर चुप कराने लगी कि तुम चिन्ता मत करो, कृष्ण ने तृणावर्त, बकासुर आदि

अउर बकी बबकास्र हने इह कान्ह बली है। आइहै मार अबै इह सॉपहि बोलि उठ्यो इह भाँत हली है। तोर डरै सभ ही इहके फनि पै करनानिध जोर छली है॥ २१२॥ ॥ कबियो बाच॥ ॥ स्वैया॥ जान दुखी अपन्यो जन कौ अपने तन ता कै छडाइ लयो है। बक्त्र बिलोक बडो वह पंनग पै मन भीतर क्रुद्ध भयो है। सउ फन को सु फलाइ उचाइकै (मू०ग्रं०२७६) सामुहि ताहि के धाइ गयो है। कूदकै कान्ह बचाइकै दावहि ऊपरि माथ जु ठाढो भयो है॥ २१३॥ ॥ स्वैया॥ कूदत है चड़िकै सिर ऊपरि स्त्रउन संबूह चलै सिर ताते। प्रान लगे छुटने जब ही छिन मैन गई उडकै मुख राते। तउ हरि जी बलि कै तन को सर तीर निकास लयो बहु भाँते। जात बडो सह तीर बह्यो रस रे बँध खैंचत है चहूँ घाते॥ २१४॥ ॥ काली नाग की त्रियो वाच॥ ॥ स्वैया॥ तउ तिह की तिरिया सभ ही सुत अंजल जोर कै यौ घिघयावै। रच्छ करो इह की हरि जी तुम पै वरदान इहै हम पावै। अंम्रित देत वहै हम ल्यावत बिक्ख दई वह ही हम ल्यावै। दोश नही हमरे पति को कछु बात कहै अरु सीस झुकावै॥ २१५॥ त्रास बडो अहि के रिप को कर

दैत्यो को मार डाला है। यह कृष्ण महाबली है, अभी सर्प को मारकर वह चला आएगा। इधर कृष्ण ने उस सर्प के सभी फन अपनी शक्ति से नष्ट कर डाले॥ २१२॥ ॥ कवि उवाच॥ ॥ सवैया॥ अपने लोगों को किनारे पर दुःखी खड़ा देखकर कृष्ण ने अपना तन सर्प की लपेट से छुड़ा लिया। यह देखकर वह विकराल सर्प अत्यन्त क्रोधित हो उठा। वह अपने फनों को पुनः फैलाता हुआ दौड़कर कृष्ण के सामने जा पहुँचा। कृष्ण कूदकर दाँव बचाते हुए उसके माथे पर पैर रखकर खड़े हो गये॥ २१३॥ ॥ सवैया॥ उस सर्प के सिर पर चढकर कृष्ण कूदने लगे और गर्म रक्त की धाराएँ उसके सिर से बहने लगी। जब उस सर्प के प्राण निकलने लगे तो उसकी सब कांति समाप्त हो गयी। तब श्रीकृष्ण ने बलपूर्वक उस सर्प को खीचकर किनारे पर ले आए। सर्प किनारे की तरफ खिचने लगा और चारो ओर से रस्सियाँ बाँधकर उसे खीचा जाने लगा॥ २१४॥ ॥ कालिय नाग की स्त्री उवाच॥ ॥ सवैया॥ तब सर्प की स्त्रियाँ हाथ जोड़कर घिघियाते हुए कहने लगी कि हे प्रभु! इस सर्प की रक्षा का वरदान हमें दीजिए। हे प्रभु! यदि तुम अमृत देते हो तो वह भी हम धारण करते है और यदि विष दो तो वह भी हम ही धारण करते है, अतः हमारे पति का इसमे कोई दोष नही

भागि सरा मधि आइ छपे थे। गरबु बडो हमरे पति मै अब जान हमै हरि नाहि जपे थे। हे जग के पति हे करुनानिध तै दस रावन सीस कपे थे। मूरख बात जनी न कछू परवार समै हम इउ ही खपे थे॥ २१६॥ ॥ कान्ह बाच काली सों॥ ॥ सवैया॥ बोलि उठ्यो तब यौ हरि जी अब छाडत हउ तुम दच्छन जइयो। रंचक ना बसियो सर मै सभ ही सुत लै संग बाटहि पइयो। शीघ्रता ऐसी करो तुमहू त्रिया लइयो प्रिया अर नाम सु लइयो। छोडि दयो हरि नाग बडो थक जाइके मद्ध बरेतन पइयो॥ २१७॥ ॥ कबियो बाच॥ ॥ स्वैया॥ हेर बडो हरि भे वह पंनग पै अपने ग्रिह को उठ भागा। बारू के मद्धि गयो परकै जन सोइ रह्यो सुख कै निस जागा। गरब गयो गिरकै तिह को रन कै हन के रस सो अनरागा। लेट रह्यो करकै उपमा इह डार चले किरसान सुहागा॥ २१८॥ सुद्ध भई जब ही उह को तब ही उठकै हरि पाइन लाग्यो। पउढ रह्यो थक कै सुन मो पति पाइ लग्यो जब ही फुनि जाग्यो।

है। इतना कहते हुए उन्होने (स्त्रियो ने) अपने सिर झुका दिये॥ २१५॥ हम लोगो को गरुड का बहुत भय था अत: हम सब इस सरोवर मे आकर छुप गये थे। हमारे पति को कुछ घमड अवश्य था अत. उसने प्रभु का स्मरण नही किया। हे प्रभु ! हमारे मूर्ख पति ने यह नही जाना कि आप ही ने रावण के दस सिर काट डाले थे। हम सब परिवार समेत व्यर्थ ही व्याकुल होकर नष्ट हुए॥ २१६॥ ॥ कृष्ण उवाच कालिय नाग के प्रति॥ ॥ सवैया॥ तब कृष्ण बोले कि अब मैं तुम लोगो को छोड़ता हूँ और तुम लोग दक्षिण दिशा मे चले जाओ। अब कभी तालाब मे निवास नही करना और अपने पुत्रो को साथ ले आप सब रास्ता पकड़ लो। सब शीघ्रतापूर्वक अपनी स्त्रियो को साथ लेते हुए चल दो और प्रभु के नाम का स्मरण करो। इस प्रकार कृष्ण ने कालिय नाग को छोड दिया और स्वय थककर रेत पर जा लेटे॥ २१७॥ ॥ कवि उवाच॥ ॥ सवैया॥ कृष्ण ने देखा कि वह भारी सर्प वापस अपने स्थान की ओर उठकर चल दिया और रेत पर पडकर इस प्रकार सुखपूर्वक सोने लगा, मानो कई रातो का जगा हुआ हो। उसका गर्व चूर हो गया और वह प्रभु-प्रेम मे लीन हो गया। वह प्रभु की स्तुति करता हुआ इस प्रकार पडा रहा जैसे खेत मे किसान द्वारा छूटा हुआ हेगा (सोहागा) पडा हो॥ २१८॥ जब सर्प की चेतना लौटी तो वह पुन: श्रीकृष्ण के पाँव पड़ा। हे प्रभु ! मै थककर सो गया था और

दी धरमोर सु नैक बिखै तुम कान कहो तिह को उठि भाग्यो । देख लता तुम कउन बधै सम बाहनि मोर सभो अनुराग्यो ।। २१६ ।। (मू०ग्रं०२८०)

।। इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे क्रिशनावतारे काली नाग निकारबो बरननं ।।

अथ दान दीबो ।।

।। सवैया ।। नाग बिदा करिकै गरुड़ाध्वज आइ मिल्यो अपने परवारै । धाइ मिल्यो गरे ताहि हली अरु मात मिली तिह दूख निवारै । स्रिग धरे हरि धेन हजार तबै तिह के सिर ऊपरि वारै । स्याम कहै मन मोह बढाइ बहु पुंन कै बामन को दै डारै ।। २२० ।। लाल मनी अरु नाग बडे नग देत जवाहर तीछन घोरे । पुहकर अउ बिरजे चुनके जर बाफ दिवावत है दिज जोरे । मोतनहार हीरे अरु मानक देवत है भर पानन बोरे । कंचन रोकन के गहने गड़ि देत कहै सु बचे सुत मोरे ।। २२१ ।।

जगते ही आपके चरण-स्पर्श करने चला आया । श्रीकृष्ण ने कहा कि जैसा मैंने कहा है, तुम वैसा ही करके धर्म का पालन करो और हे स्त्रियो ! बेशक मेरा वाहन गरुड़ इसका वध करने को लालायित था, परन्तु फिर भी मैंने इसका वध नही किया ।। २१९ ।।

।। श्री बचित्र नाटक ग्रथ के कृष्णावतार मे कालिय नाग निकालने का वर्णन समाप्त ।।

दान-प्रदान-कथन

।। सवैया ।। नाग को बिदा कर श्रीकृष्ण जी अपने परिवार मे आ गये, जहाँ उन्हे दौडकर बलराम मिले, माता मिली और उन सबका दुःख दूर हुआ । उसी समय सोने की सीगो वाली एक हज़ार गाये कृष्ण पर न्योछावर करके दान दी गयी । कवि श्याम का कथन है कि इस प्रकार मन मे अत्यन्त मोह बढाते हुए यह दान ब्राह्मणो को दे दिया गया ।। २२० ।। लाल मणियाँ, नग, जवाहरात और घोडे दान मे दिये गये । अनेक प्रकार के जरी वाले वस्त्र द्विजो को दिये गये । बोरा भर-भर के हीरे-माणिक और मोतियों के हार दिये गये और सोने के गहने देती हुई माता यशोदा प्रार्थना करती है कि मेरे पुत्र की सुरक्षा हो ।। २२१ ।।

अथ दवानल कथनं ॥

॥ सवैया ॥ होइ प्रसंनि सभै ब्रिज के जन रैन परे घर भीतरि सोए । आग लगी सु दिशा बिदिशा मधि जाग तबै तिह ते डर होए । रचछ करै हमरी हरि जी इह चित्त बिचार तहाँ कहु होए । द्रिग बात कही करुनानिध मीच लयो इतनै सु तऊ दुख खोए ॥ २२२ ॥ मीच लए द्रिग जउ सभही नर पान कर्यो हरि जी हरि दौ तउ । दोख मिटाइ दयो पुर को सभ ही जन के मन को हन द्यो भउ । चिंत कछू नहि है तिह को जिन को करुनानिध दूर करै खउ । दूर करी तपता तिह की जनु डार दयो जल को छल कै रउ ॥ २२३ ॥ ॥ कबितु ॥ आख मिटवाइ महा बपु को बढाइ अति सुख मन पाइ आग खाइ गयो सावरा । लोकन की रचछन के काज करना कै निधि महाँ छल करिकै बचाइ लयो गावरा । कहै कबि स्याम तिन काम कर्यो दुहु करि ताको फुन फैल रह्यो दसो दिस नावरा । दिसटि बचाइ साथ दातन चबाइ सो तो गयो है पचाइ जैसे खेले साँग बावरा ॥ २२४ ॥

॥ इति क्रिशनावतार दवानल ते बचैबो बरननं ॥

दावानल-कथन

॥ सवैया ॥ व्रज के सभी लोग प्रसन्न होकर रात मे अपने घरो मे सो गये । रात्रि मे सभी दिशाओ मे आग लग गयी और सभी डर गये । सभी के मन में यह विचार था कि श्रीकृष्ण जी हमारी रक्षा करेगे । श्रीकृष्ण ने सबसे कहा कि सब आँखे बन्द कर ले और सबका दु:ख दूर हो जायेगा ॥ २२२ ॥ जैसे ही सब लोगो ने आँखे बन्द की तो श्रीकृष्ण ने सारी अग्नि को पी लिया । सबके दुख को दूर कर दिया और सबके भय का नाश कर दिया । जिनका दु:ख श्रीकृष्ण दूर करे, उनको भला किस बात की चिन्ता हो सकती है । सबकी गर्मी को इस प्रकार शीतल कर दिया, मानो सभी जल से शीतल हो गये ॥ २२३ ॥ ॥ कवित्त ॥ लोगो की आँखे बन्द करवाकर और अपने शरीर को बढाते हुए तथा अनन्त सुख पाते हुए श्रीकृष्ण अग्नि को खा गये । श्याम कवि कहता है कि श्रीकृष्ण ने बड़ा दुष्कर कार्य किया और इससे उनका नाम दसो दिशाओ मे फैल गया और यह सारा कार्य उन्होने उस खेल दिखानेवाले के समान किया जो सबकी नज़र बचाकर बहुत कुछ चबा-पचा जाता है ॥ २२४ ॥

॥ कृष्णावतार मे दावानल से बचाव-वर्णन समाप्त ॥

अथ गोपन सों होली खेलबो ॥

॥ सवैया ॥ माघ बितीति भए रुत फागुन आइ गई सभ खेलत होरी। गावत गीत बजावत ताल कहै मुख ते भरुआ मिलि जोरी। डारत है अलता बनिता छटका संग मारत बेसन थोरी। खेलत स्याम धमार अनूप महा मिलि सुंदरि साँवल गोरी ॥ २२५ ॥ अंत बसंत भए रुत ग्रीखम (मू०ग्रं०२८१) आवहु मिवक दुहूँ दिस ते तुम आइ गई हरि खेल मचायो। दैत प्रलंब बडो कपटी तब बालक रूप धर्यो न जनायो। कांन्ह भए धनठी सुख पायो। कंध चड़ाइ हली को उड्यो तिन मूकन सो धर मार गिरायो ॥ २२६ ॥ केशव राम भए धनठी मिक बालक ए तबही सभ प्यारे। दैत मिक्यो सुत नंदहि के संगि खेलि जित्यो मुसली हरि हारे। आव चड़ो न चड़्यो सु कह्यो इनपै बीर तिह्के बपु को पग धारे। मार गिराइ दयो धरनी पर बडो उन मूकन मारे ॥ २२७ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके क्रिशनावतारे प्रलंब दैत बधहि ॥

गोपों से होली खेलना

॥ सवैया ॥ माघ महीने के व्यतीत होते फालगुन की ऋतु आई और सभी होली खेलने लगे। सभी लोग जोड़ियो में मिल-मिलकर गाने-बजाने लगे। स्त्रियो पर रग पड़ने लगा और स्त्रियाँ भी लाठी लेकर पुरुषों को (प्रेमपूर्वक) पीटने लगी। श्याम कवि का कथन है कि कृष्ण और गोरियाँ मिलकर यह धमाकेदार होली खेल रहे है ॥ २२५ ॥ बसन्त ऋतु का अन्त हुआ और ग्रीष्म ऋतु का प्रारम्भ होते ही कृष्ण ने खेल की धूम मचा दी। दोनो दिशाओ से लोग आने लगे और कृष्ण को अपना मुखिया बना देखकर अत्यन्त प्रसन्न होने लगे। इसी सवमे प्रलम्ब नामक दैत्य बालक का रूप धारण कर उन बालको मे आ मिला और कृष्ण को कधे पर बिठाकर उड़ चला। कृष्ण ने उस दैत्य को अपने मुक्को से मार गिराया ॥ २२६ ॥ श्रीकृष्ण जी मुखिया बने और सब प्यारे बच्चो के साथ खेलने लगे। दैत्य भी कृष्ण का साथी बना और उस खेल मे बलराम जीत गए और कृष्ण हार गये। तब श्री कृष्ण ने हलधर को उसके शरीर पर चढ़ाया। बलराम ने दैत्य के शरीर पर पाँव रखा और उसे गिराकर पटक दिया तथा मुक्को से मारकर समाप्त कर दिया ॥ २२७ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक के कृष्णावतार मे प्रलम्ब दैत्य-वध समाप्त ॥

अथ लुकमीचन खेल कथनं ॥

॥ स्वैया ॥ मार प्रलंब लयो मुसली जब याद करी हरि जी तब गाई । चूमन लाग तबै बछरा मुख धेन बहै उनकी अरु माई । होइ प्रसंन्य तबै करुनानिधि तउ लुकमीचन खेल मचाई । ता छबि की अति ही उपमा कबि के मन मै बहु भाँतन भाई ॥ २२८ ॥ ॥ कबितु ॥ बैठि करि ग्वार आँखै मीचै एक ग्वार हूँ की छोर देत ताको सो तो अउरो गहै धाइकै । आँखै मूँदत है तब ओही गोप हूँ की फेरि जाके तनकौ जु छुऐ कर साथ जाइकै । लह तो छल बलकै पलावै हाथ आवै नही तउ मिटावै आखै आपही ते सो तो आइकै । कहै कबि स्याम ताकी महिमा न लखी जाइ ऐसो भाँति खेलै कान्ह महाँ सुखु पाइकै ॥ २२९ ॥ ॥ स्वैया ॥ अंत भए रुत ग्रीखम की रुत पावस आइ गई सुखदाई । कान्ह फिरै वन बीथन मै संगि लै बछरे तिनकी अरु माई । बैठ तबै फिर मद्ध गुफा गिर गावत गीत सभै मनु भाई । ता छबि की अति ही उपमा कबि ने मुख ते इम भाख सुनाई ॥ २३० ॥ सोरठ सारंग

आँखमिचौनी खेल-कथन

॥ सवैया ॥ हलधर ने प्रलम्ब दैत्य को मार दिया और कृष्ण को बुलाया । तब कृष्ण गाय-बछडो के मुख को चूमने लगे और प्रसन्न होकर करुणानिधि ने आँखमिचौनी का खेल प्रारम्भ किया । इस छवि को कवि ने अनेकों प्रकार से कहा है ॥ २२८ ॥ ॥ कवित्त ॥ बैठकर एक ग्वाल दूसरे की आँखे बद करता है और छोडकर फिर दूसरे की आँखे वन्द करता है । फिर वह ग्वाल आँखे बद करनेवाले उस ग्वाल की आँखे बन्द करता है जिसके शरीर को हाथ लगा दिया जाता है । फिर वह छल-बल के साथ हाथ नही आने की कोशिश करता है । इस प्रकार कवि कहता है कि इस महिमा का वर्णन नही किया जा सकता और कृष्ण इस प्रकार के खेल मे अनन्त सुख का प्राप्त कर रहे है ॥ २२९ ॥ ॥ सवैया ॥ ग्रीष्म ऋतु का अत हो गया और सुख देनेवाली वर्षाऋतु का आगमन हुआ । कृष्ण वनो और कदराओ मे गाय और बछड़ो को लेकर घूम रहे है और वही गुफाओ मे बैठकर मन को भानेवाले गीत गा रहे है । उस छवि का वर्णन को कवि ने इस प्रकार किया है ॥ २३० ॥ सभी वहाँ राग सोरठ,

अउ गुजरी ललता अरु भैरव दीपक गावै। टोडी अउ मेघ मलहार अलापत गौंड अउ सुद्ध मलहार सुनावै। जैतसिरी अरु मालसिरी अउ परज सु राग सिरी ठट पावै। स्याम कहै हरि जी रिझ कै मुरली संग कोटक राग बजावै॥ २३१॥ ॥ कबितु॥ ललत धनासरी बजावै संगि बासुरी किदारा और मालवा बिहागड़ा अउ गूजरी। मारू अउ परज और कानड़ा (मू०ग्रं०२८२) कलिआनि सुभ कुंभक बिलावलु सुने ते आवै मूजरी। भैरव पलासी भीम दीपक सु गउरी नट ठाढो द्रुम छाइ मै सु गावै कान्ह पूजरी। ताते ग्रिह त्यागि ताकी सुनि धुनि स्रोनन मै म्रिगनैनी फिरत सु बन बन ऊजरी॥ २३२॥ ॥ स्वैया॥ सीत भई रुत कातक की मुन देव चड़्यो जल ह्वै ग्यो थोरो। कान्ह कनीरे के फूल धरे अरु गावत बेन बजावत भोरो। स्याम किधो उपमा तिहकी मन मद्धि बिचार कबित्तु सु जोरो। मैन उठ्यो जगिकै तिनकै तन लेत है पेच मनो अहि तोरो॥ २३३॥ ॥ गोपी बाच॥ ॥ स्वैया॥ बोलत है मुख ते सभ ग्वारन पुंनि कर्यो इनहूं अति माई। जग्य करै कि कर्यो तप तीरथ गंध्रब ते इनकै सिछ पाई। कै कि

सारंग, गूजरी, ललित, भैरव, दीपक, टोडी, मेघमल्हार, गौड और शुद्ध मल्हार एक-दूसरे को सुना रहे है। जैतश्री, मालश्री और श्रीराग वहाँ सभी गा रहे है। कवि श्याम का कथन है कि कृष्ण प्रसन्न होकर मुरली पर कई राग सुना रहे है॥ २३१॥ ॥ कवित्त॥ कृष्ण बाँसुरी पर ललित, धनासरी, केदारा, मालवा, विहागड़ा, गूजरी, मारू, कानड़ा, कल्याण, मेघ, विलावल राग सुना रहे है। राग भैरव, भीमपलासी, दीपक और गउड़ी को कृष्ण पेड़ के नीचे खडे होकर सुना रहे है। इन रागो की ध्वनि सुनकर घर को त्यागकर, मृग के समान नयनो वाली स्त्रियाँ इधर-उधर दौड़ी फिर रही है॥ २३२॥ ॥ सवैया॥ शीत ऋतु आ गई और कार्तिक माह के चढते ही जल थोड़ा हो गया। कृष्ण कनेर के फूलो को धारण कर भोर मे ही मुरली बजा रहे है। श्याम कवि का कथन है कि उस उपमा को याद करता हुआ मैं मन-ही-मन कवित्त जोड़ रहा हूँ और वर्णन करता हूँ कि सभी स्त्रियो के तन मे कामदेव जग चुका है और साँप के समान लोट रहा है॥ २३३॥ ॥ गोपी उवाच॥ ॥ सवैया॥ हे माँ! इस मुरली ने बहुत तप, त्याग, तीर्थस्नान किया है और गंधर्वो से शिक्षा प्राप्त की है। इसे कामदेव ने शिक्षा दी है

पड़ी सित बानहु ते कि किधो चतुरानन आप बनाई। स्याम कहै उपमा तिहकी इह ते हरि ओठन साथ लगाई ।। २३४ ।। सुत नन्द बजावत है मुरली उपमा तिह की कबि स्याम गनो। तिह की धुनि को सुनि मोहि रहे मुन रीझत है सु जनोरु कनो। तन काम भरी गुपिआ सभ ही मुख ते इम भाँतन ज्वाब भनो। मुख कान्ह गुलाब को फूल भयो इह नाल गुलाब चुआत मनो ।। २३५ ।। मोहि रहे सुनिकै धुनि को म्रिग मोहि पसार गे खग्ग पै पक्खा। नीर बह्यो जमना उलटो पिख कै तिह को नर खोल के चक्खा। स्याम कहै तिनको सुनिकै बछरा मुख सो कछु ना चुगै कक्खा। छोडि चली पतनी अपने पत तारक ह्वै जिम डारत लक्खा ।। २३६ ।। कोकिल कीर कुरंगन के हरि मैन रह्यो ह्वैकै मतवारो। रीझ रहे सभ ही पुर के जन आनन पै इह ते ससि हारो। अउ इह की मुरली जु बजै तिह ऊपरि राग सभै फुनि वारो। नारद जात थकै इहते बँसरी जु बजावत कानर कारो ।। २३७ ।। लोचन है म्रिग के कट के हरि नाक किधो सुक को तिहको है। ग्रीव कपोत सी है तिह

अथवा ब्रह्मा ने इसे स्वय बनाया है। यही कारण है कि कृष्ण ने इसे ओठों से लगाया है ।। २३४ ।। नदपुत्र कृष्ण मुरली बजा रहे है और कवि श्याम कहता है कि मुरली की धुन को सुनकर मुनि तथा वन के जीव भी रीझ रहे है। गोपियो के तन मे काम भर गया है और वे इस भाँति कह रही है कि कृष्ण का मुँह तो गुलाब के समान है और बंसी की आवाज ऐसी है मानो गुलाब का रस चू रहा हो ।। २३५ ।। मुरली की धुन को सुनकर खग, मृग, पंक्षी सभी मोहित हो रहे है। हे लोगो! आँखे खोलकर देखो कि यमुना का जल भी उलटी दिशा मे बहने लगा है। कवि कहता है कि मुरली को सुनकर बछड़ो ने घास खाना भी बद कर दिया है। पत्नी अपने पति को छोडकर इस प्रकार चल दी है जैसे कोई सन्यासी होकर अपने घर और सम्पत्ति को छोड़कर चल देता है ।। २३६ ।। कोकिला, तोते और मृगादि सभी कामपीड़ित होकर मतवाले हो उठे है। नगर के सभी लोग रीझ रहे है और कह रहे है कि कृष्ण के मुख के सामने चन्द्रमा भी फीका है। इसकी मुरली की तान पर तो सभी राग न्योछावर हैं। नारद भी अपनी वीणा को थामकर काले कृष्ण की बाँसुरी सुनते-सुनते थक गए है ।। २३७ ।। उसकी (कृष्ण की) आँखें मृग के समान, कमर सिह के समान, नाक तोते के समान, गर्दन कपोत के समान और अधर

की अधरा पिय से हरि मूरत जो है। कोकिल अउ पिक से बचनाम्रित स्याम कहै कबि सुंदर सोहै। पै इह ते लजकै अब बोलत मूरत लै न करे खग रोहै ॥ २३८ ॥ फूल गुलाब न लेत है ताब सहाब को आब ह्वै देख खिसानो। (मू०ग्रं०२८३) पै कमला दल नरगस को गुल लज्जत है फुनि देखत तानो। स्याम किधो अपने मन मै बर तागन कै कबिता इह ठानो। देखन को इनके सम पूरब पच्छम डोलै लहे नहि आनो ॥ २३९ ॥ ॥ सवैया ॥ मंघर मै सभ ही गुपिआ मिलि पूजत , चंड पते हरि काजै। प्रात समे जमना मध न्हावत देख तिनै जल जंमुख लाजै। गावत गीत बिलावल मै जुर बाहनि स्याम कथा इह साजै। अंग अनंग बढ्यो तिन के पिख कै जिह लाज को लाजन भाजै ॥ २४० ॥ गावत गीत बिलावल मै सभ ही मिलि गोपन उज्जल कारी। कानर को भरता करबे कह बाँछत है पतली अरु भारी। स्याम कहै तिनके मुख कौ पिखि जोति कला ससि की फुनि हारी। न्हावत है जमुना जल मै

अमृत के समान है। कोयल और मोर के समान मधुर वाणी है। ये मधुर-भाषी जीव भी अब मुरली की ध्वनि सुनकर लजाकर बोल रहे है और मन-ही-मन ईर्ष्या कर रहे है ॥ २३८ ॥ उसके सौंदर्य के सामने गुलाब भी फीका है और सुर्ख सुन्दर रंग भी उसकी सुन्दरता पर खिसिया रहा है। कमल और नरगिस के फूल और उसके सौदर्य को देखकर लज्जित हो रहे हैं। कवि अपने मन मे उसके सौदर्य की उधेडबुन मे लगा हुआ है और कहता है कि कृष्ण के समान सौदर्यशाली व्यक्ति देखने के लिए मैं पूर्व से पश्चिम दिशा तक मे घूम आया परन्तु मुझे ऐसा कोई नही मिला ॥ २३९ ॥ ॥ सवैया ॥ अगहन के महीने मे सभी गोपियाँ कृष्ण की पति के रूप में कामना करती हुई दुर्गादेवी की पूजा करती है। प्रातः वे यमुना में स्नान करती है जिन्हे देखकर कमल के फूल भी लजाते है। बिलावल राग मे वे एक-दूसरे की बाँह पकड़कर गीत गाती है और श्यामकथा का वर्णन करती हैं। उनके अगो मे कामदेव अत्यन्त वेग से बढ चला है और उन सबको देखकर लज्जा भी लजा रही है ॥ २४० ॥ सभी काली और गोरी गोपियाँ गीत गा रही है और सभी पतली और भारी गोपिकाएँ कृष्ण की पति के रूप मे कामना कर रही हैं। उनके मुख को देखकर चन्द्रमा की कलाएँ भी निस्तेज दिखाई पड़ रही है और वे यमुना मे नहाती हुई ऐसी लग रही है मानो घर मे फुलवाड़ी शोभायमान हो रही

जनु फूल रही ग्रिह मै फुलवारी ॥ २४१ ॥ ॥ सवैया ॥ न्हावत है गुपिआ जल मै तिनके मन मै फुन हउल न को। गुन गावत ताल बजावत है तिह जाइ किधौ इक ठउलन को। मुखि ते उचरैं इह भाँति सभै इतनो सुख ना हरि धउलन को। कबि स्याम बिराजत है अति ही कि बन्यो सर सुंदर कउलन को ॥ २४२ ॥ ॥ गोपी बाच देवी जू सों ॥ ॥ सवैया ॥ लै अपने कर जो मिटिआ तिह थाप कहै मुख ते जु भवानी। पाइ परैं तिहके हित सो करि कोटि प्रनामु कहै इह बानी। पूजत है इह ते हम तो तुम देहु वहै जिय मै हम ठानी। ह्वै हमरो भरता हरि जी मुखि सुंदर है जिह को ससि सानी ॥ २४३ ॥ भाल लगावत केसर अच्छत चंदन लावत है सितकै। फुन डारत फूल उडावत है मखिआ तिहकी अत ही हितकै। पट धूप पचांम्रित दच्छना पान प्रदच्छना दैत महाँ चितकै। बरबे कहु कान उपाव करैं मित हो सोऊ ताल किधो कितकै ॥ २४४ ॥ ॥ गोपी बाच देवी जू ॥ ॥ कबित ॥ दैतन सँघारनी पतित-लोक तारनी सु संकट निवारनी कि ऐसी तूँ शकत है। बेदन उधारनी सुरेद्र राज कारनी पै गउरजा को जागै जोति अउर

है ॥ २४१ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी गोपियाँ अभय होकर जल मे नहा रही है। वे कृष्ण के गीत गा रही हैं, ताल बजा रही है और सभी एक झुड मे इकट्ठी है। वे सब कह रही है कि इतना सुख तो इद्र के महलो मे नही है और कवि का कथन है कि वे सब कमल के फूलो से भरे हुए तालाव की तरह शोभायमान हो रही हैं ॥ २४२ ॥ ॥ गोपी उवाच देवी जी के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ अपने हाथो मे मिट्टी लेकर और देवी की स्थापना करके उसके चरणो मे प्रणाम करते हुए सभी यह कहती है कि हे देवी! हम तुम्हारी पूजा इसलिए करती है कि तुम हमे मनवाछित वरदान दो तथा हमारा पति चन्द्र के समान मुखवाला कृष्ण हो ॥ २४३ ॥ वे कामदेव के माथे पर केसर, अक्षत और चन्दन लगाती है। पुनः फूल डालकर प्रेम-पूर्वक पखा झलती हैं। वस्त्र, धूप, पचामृत, दक्षिणा, प्रदक्षिणा आदि दे रही है और कृष्ण को वरण करने का उपाय करते हुए कहती है कि कोई हमारा मित्र हो जो हमारे मन की इच्छा पूरी करवा दे ॥ २४४ ॥ ॥ गोपी उवाच देवी जी के प्रति ॥ ॥ कवित्त ॥ हे देवो! तू दैत्योंका सहार करनेवाली, पतितो को इस लोक से तारनेवाली, सकट का हरण करनेवाली शक्ति हो। तुम वेदो का उद्धार करनेवाली, इन्द्र को राज्य दिलानेवाली, गौरी की

जात कत है। धूअ मै न धरा मै न ध्यान धारी मै पै कछू जैसे तेरे जोति बीच आन ना छकत है। दिनस दिनेश मै दिवान मैं सुरेश मै सुपत मै महेश जोति तेरीऐ जगति है॥ २४५॥ ॥ कबितु॥ बिनती करत सभ गोपी (मू०ग्रं०२८४) करि जोरि जोरि सुनि लेहु बिनती हमारी इह चंडका। सुर तै उधारे कोटि पतित उधारे चंड मुंड मुंड डारे सुंभ निसुंभ की खंडका। दीजै माग्यो दान ह्वै प्रतच्छ कहै मेरी माई पूजै हम तुमै नाही पूजे सुतगडका। ह्वै करि प्रसंन्य ताको कह्यो शीघ्र मानदीनो वहै बरदान फुनि राछन को मंडका॥ २४६॥ ॥ देवी जी बाच गोपन सों॥ ॥ स्वैया॥ ह्वै भरता अब सो तुमरो हरि दान इहै दुरगा तिन दीना। सो धुनि स्त्रउनन मै सुन कै तिन कोटि प्रनाम तबै उठ कीना। ता छबि को जस उच्च महा कबि ने अपने मन मै फुनि चीना। है इनको मनु कान्हर मै रउ ज पै रस कान्हर के संगि भीना॥ २४७॥ ॥ स्वैया॥ पाइ परी तिह के तब ही सभ भाँत करी बहु ताहि बडाई। है जग की करता हरता दुख है सभ तूँ गण गंध्रब माई। ता छबि की अति ही उपमा कबि ने मुख ते इम भाख सुनाई। लाल भई

जगमगाती ज्योति, धरती-आकाश और कही पर भी तुम्हारी जैसी ज्योति नही है। तुम सूर्य मे, चन्द्र मे, ताराओ मे, इन्द्र मे और महेश आदि सब मे ज्योतिस्वरूप मे प्रज्वलित हो रही हो॥ २४५॥ ॥ कवित्त॥ सभी गोपिकाएँ हाथ जोडकर प्रार्थना कर रही हैं कि हे चडिका! हमारी प्रार्थना सुन लो, क्योकि तुमने देवताओ का भी उद्धार किया है, करोड़ो पतियो को तारा है, चण्ड, मुण्ड, शुभ और निशुभ का खडन किया है। हे माँ! हमे माँगा हुआ दान दो। हम तुम्हारी और गडक नदी के पुत्र शालिग्राम की पूजा कर रही है, क्योकि तुमने प्रसन्न होकर उसका कहना माना था, इसलिए हमे भी वरदान दो॥ २४६॥ ॥ देवी जी उवाच गोपियो के प्रति॥ ॥ सवैया॥ तुम्हारा पति कृष्ण होगा, यह कहते हुए दुर्गा ने उन्हे दान दिया। यह ध्वनि कान मे पडते ही सबने उठकर देवी को कोटि-कोटि प्रणाम किया। इस छवि को कवि ने अपने मन मे इस प्रकार जाना है कि इन सबका मन कृष्ण मे लगा हुआ उसके मन मे रँगा हुआ है॥ २४७॥ ॥ सवैया॥ सभी गोपिकाएँ देवी के पाँव पकड़कर विभिन्न प्रकार से उसकी स्तुति करने लगी कि [illegible] जगमाता! तुम सारे संसार के दुःख हरनेवाली [illegible] तथा [illegible] गण [illegible] हो। कवि का कथन है [illegible]

तबही गुपिआ फुनि बात जबै मन बाछत पाई ।। २४८ ।। लै बर दान सभै गुपिआ अति आनंद कै मन डेरन आई । गावत गीत सभै मिलकै इक ह्वैकै प्रसंन्य सु देत बधाई । पाँतन साथ खरी तिन की उपमा कबि ने मुख ते इम गाई । मानहु पाई निसापति को सर मद्धि खिरी कबिआ धुर ताई ।। २४९ ।। ।। स्वैया ।। प्रता भए जमना जल मै मिलि धाइ गई सभही गुपिआ । मिलि गावत गीत चली तिह जाकरि आनंद भा मन मै कुपिआ । तब ही फुनि कान्ह चले तिह जा जमुना जल को फुन जा जुपिआ । सोऊ देख तबै भगवान कहै नहि बोलहु री करिहो चुपिआ ।। २५० ।।

अथ चीर हरन कथनं ।।

।। सवैया ।। न्हावन लागि जबै गुपिआ तब लै पट कान चर्यो तर ऊपै । तउ मुसक्यान लगी मध आपन कोइ पुकार करे हरि जू पै । चीर हरे हमरे छल सो तुमसो ठग नाहि किधो कोऊ भूपै । हाथन साथ सु सारी हरी द्रिग साथ हरो हमरो तुम रूपै ।। २५१ ।। ।। गोपी बाच कान्ह सों ।।

के रूप मे प्राप्त कर सभी गोपिकाओ के चेहरे खुशी और लज्जा से लाल हो उठे ।। २४८ ।। वरदान प्राप्त करके गोपियाँ प्रसन्न मन से घर आईं और गीत गा-गाकर आनन्दित होते हुए एक-दूसरे को बधाई देने लगी। वे कतार बनाकर इस प्रकार खडी हुई हैं मानो तालाब के वीच चन्द्रमा को देखते हुए कमलिनियाँ खिली हुई खड़ी हो ।। २४९ ।। ।। सवैया ।। प्रातः होते ही सभी गोपियाँ यमुना की तरफ चली । वे गीत गा रही थी और उनके आनन्द को देखकर आनन्द भी कुपित हो रहा था । तब कृष्ण भी यमुना की तरफ गए और देखकर गोपियो को कहने लगे कि तुम सव बोलती क्यो नही हो और चुप क्यों हो ।। २५० ।।

चीर-हरण-कथन

।। सवैया ।। जब गोपियाँ नहाने लगी तो श्रीकृष्ण वस्त्र लेकर पेड पर जा चढे । गोपियाँ मुस्कुराने लगी और उनमे से कुछ कृष्ण को पुकारने लगी तथा कहने लगी कि तुमने छल से हमारे वस्त्र चुरा लिये हैं, तुम्हारे जैसा ठग और अन्य कोई नही है । तुमने हाथो से तो हमारे वस्त्रो का हरण किया और अब आँखो से हमारे रूप का हरण कर रहे हो ।। २५१ ।।

॥ सवैया ॥ स्याम कह्यो मुख ते गुपिआ इह कान्ह सिखे तुम बात भली है। नंद को ओर पिखो तुमहूँ दिखो भ्रात की ओर कि नाम हली है। चीर हरे हमरे छल सों सुनि मार डरै तुहि कंस बली है। को मर है हमको तुमको न्रिप तोर (मू०ग्रं०२८५) डरैं जिम कउल कली है॥ २५२॥ ॥ कान्ह बाच गोपी सों॥ ॥ स्वैया॥ कान्ह कही तिनको इह बात न द्यों पट हउ निकर्यो बिन तोको। किउ जल बीच रही छप कै तन काहि कटावत हो पहि जोको। नाम बतावत हो न्रिप को तिह को फुनि नाहि कछू डर मोको। केसन ते गहिकै तप की अगनी मधि ईधन जिउँ उरि झोको॥ २५३॥ ॥ स्वैया॥ रूख चरे हरि जा रिझकै मुख ते जब बात कही इह तासो। तउ रिस बात कही उन हूँ इह जाइ कहैं तुहि मात पिता सो। जाइ कहो इह कान्ह कही मन है तुमरो कहबो कहु जासो। जो सुनि कोऊ कहैं हमको इहलो हमहूँ समझै फुन वासो॥ २५४॥ ॥ स्वैया॥ ॥ कान्ह बाच॥ देउ बिना निकरै नहि चीर कह्यो हसि कान्ह सुनो तुम प्यारी। सीत

॥ गोपी उवाच कृष्ण के प्रति॥ ॥ सवैया॥ गोपियो ने कहा कि हे कृष्ण! तुमने यह भला काम सीखा है। तुम नन्द की ओर देखो, अपने भाई बलराम की ओर देखो (वे कितने सज्जन है), कस यदि यह सुनेगा कि तुमने हमारे वस्त्र चुरा लिया है तो वह बलवान तुम्हे मार डालेगा। हमको कोई कुछ नही कहेगा। राजा तुम्हे कमल के फूल के समान तोड़ डालेगा॥ २५२॥ ॥ कृष्ण उवाच गोपियो के प्रति॥ ॥ सवैया॥ कृष्ण ने कहा कि जब तक तुम बाहर नही निकलोगी, मैं तुम लोगो को वस्त्र नही दूंगा। क्यो तुम सब पानी मे छुपी हुई हो और अपने तन को जोकों से कटवा रही है। जिस राजा का तुम नाम बता रही हो, मुझे उसका तनिक भी भय नही है। उसे मैं ऐसे केशो से पकड़कर पटक दूंगा जैसे अग्नि मे लकड़ी को पकडकर डाला जाता है॥ २५३॥ ॥ सवैया॥ कृष्ण यह कहकर क्रुद्ध होकर पेड पर और ऊँचे चढ गये तो गोपियो ने गुस्से मे आकर कहा कि हम तुम्हारे माता-पिता से कह देंगी। कृष्ण ने कहा, जाओ जिससे कहना हो कह दो, मैं जानता हूँ कि तुम लोगो का मन किसी से भी कहने का नही है। जो कोई मुझसे कुछ कहेगा तो मैं उससे समझ लूंगा॥ २५४॥ ॥ सवैया॥ ॥ कृष्ण उवाच॥ हे प्यारियो! मैं पानी से बाहर निकले बिना वस्त्र नही दूंगा, तुम व्यर्थ ही पानी मे शीत

सहो जल मै तुम नाहिक बाहरि आवहु गोरी अउ कारी। दै अपने अगुआ पिछुआ करि बार तजो पतली अरु भारी। यौ नहि देउ कह्यो हरि जी तसलीम करो करि जोरि हमारी ॥ २५५ ॥ ॥ स्वैया ॥ फेरि कही हरि जी तिन सो रिसकै इह बात सुनो तुम मेरी। जोरि प्रनाम करो हमरो कर लाज को काट सभै तुम बेरी। बार ही बार कह्यो तुम सौ मुहि मानहु शीघ्र किधो इह हेरी। नातर जाइ कहो सभ ही पहि सउह लगै फुन ठाकुर केरी ॥ २५६ ॥ ॥ गोपी बात कान्ह सों ॥ ॥ स्वैया ॥ जो तुम जाइ कहौ तिनही पहि तो हम बात बनावहि ऐसो। चीर हरे हमरे हरि जी देई बार ते न्यारी कढै हम कैसे। भेद कहै सभ ही जसुधा पहि तोहि करै शरमिंदत वैसे। जिउँ नर को गहिकै तिरिया हूँ सु मारत लातन मूकन जैसे ॥ २५७ ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ बात कही तब इह हरी काहि बधावत मोहि। नमशकार जो ना करो मोहि दुहाई तोहि ॥ २५८ ॥ ॥ गोपी बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ काहि खिझावत हो हमको अरु देत कहा जदुराइ दुहाई। जा बिधि कारन बात

सहन कर रही हो। हे गोरी, काली, पतली और भारी गोपियो! तुम अपने आगे-पीछे हाथ रखकर बाहर क्यों आ रही हो। तुम हाथ जोडकर माँगो अन्यथा इस प्रकार मै वस्त्र नही दूंगा ॥ २५५ ॥ ॥ सवैया ॥ फिर कृष्ण ने (थोडे) क्रोध मे उनसे कहा कि मेरी बात सुनो और लज्जा का त्याग करते हुए मुझे (बाहर निकलकर) दोनो हाथ जोड़कर प्रणाम करो। तुमसे मैं बार-बार कह रहा हूँ कि तुम शीघ्रता से मेरी बात मान लो, नही तो मैं सबसे जाकर बताऊँगा। मै तुम्हे ठाकुर जी की कसम दे रहा हूँ, मेरी बात मान लो ॥ २५६ ॥ ॥ गोपी उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ जो तुम जाकर कहोगे तो हम भी बात को ऐसे बनाते हुए कहेगी कि कृष्ण ने हमारे वस्त्र चुरा लिये थे, हम जल से बाहर कैसे निकलती। यशोदा माता को सब बात बताकर तुम्हे वैसे ही शर्मिन्दा करेगी जैसे स्त्रियो से लात घूंसे के द्वारा पिटाई करवाकर कोई व्यक्ति शर्मिन्दा होता है ॥ २५७ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण ने कहा कि मुझे बेकार मे फँसवा रही हो, परन्तु इतना याद तुम यदि मुझे प्रणाम नही करोगी तो तुम्हे कसम लगेगी ॥ २५८ ॥ ॥ गोपी उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ गोपियाँ कहने लगी, हे कृष्ण! हमे क्यो खिझा रहे हो और सौगन्ध खिला रहे हो। तुम जिस कारण से यह सब कर रहे हो, हम सब भी समझ गयी है। तुम्हारे मन

बतावत सो बिध है हमहूँ लख पाई । भेद करो हम सो तुम नाहक बात इहै मन मै तुहि आई । सउह लगै हम ठाकुर की जु रहै तुमरी बितु मात सुनाई ।। २५६ ।। ।। कान्ह बाच गुपीआ सों ।। ।। स्वैया ।। मा सुनि है तब का करिहै हमरो सुनि लेहु सभै ब्रिज नारी । (मू०ग्र०२८६) बात कही तुम मूड़न की हम जानत है तुम हो सभ भारी । सीखत हो रस रीत अबै इह कान्ह कही तुमको मुहि प्यारी । खेलन कारन को हम हूँ जु हरी छलकै तुम सुंदर सारी ।। २६० ।। ।। गोपी बाच ।। ।। स्वैया ।। फेरि कही मुख ते इम गोपिन बात इसी मनिए पट देहै । सौह करो मुसलीधर की जसुधा नंद की हम जो डहकैहो । कान बिचार पिखो मन मै इन बातन ते तुम ना किछु पैहो । देहु कह्यो जल मै हम को इह देह असीस सभै तुम जैहो ।। २६१ ।। ।। गोपी बाच ।। ।। स्वैया ।। फेरि कही मुख ते मिल गोपन नेह लगै हरि जी नहि जोरी । नैनन साथ लगै सोऊ नेहु कहै मुख ते इह सावल गोरी । कान्ह कही हसिकै इह बात सुनो रस रीत कहो मम होरी । आखन साथ लगै टकबा फुन हाथन साथ लगै सुभ

मे जब वही बात है (अर्थात् तुम हम सबको पाना चाहते हो), तो क्यो व्यर्थ हमसे झगड रहे हो । हम लोगो को ठाकुर जी की कसम है जो तुम्हारी माता से न कहे ।। २५९ ।। ।। कृष्ण उवाच गोपियो से ।। ।। सवैया ।। माँ मेरी बात सुनकर क्या कहेगी, पर साथ-ही-साथ व्रज की सारी स्त्रियो को पता चल जाएगा । मैं जानता हूँ कि तुम भारी मूर्ख हो इसलिए मूर्खता की बात कर रही हो । कृष्ण ने कहा कि तुम अभी रस-लीला की रीति नही जानती हो, परन्तु तुम सब मुझे बहुत प्यारी लगती हो । मैने भी खेलने के लिए ही तुम सबकी साड़ियो का हरण किया है ।। २६० ।। ।। गोपी उवाच ।। ।। सवैया ।। फिर गोपियों ने आपस मे बात करते हुए कृष्ण से कहा कि तुम्हे बलराम और यशोदा की सौगन्ध है, जो हमको तग करो । हे कृष्ण ! मन मे विचार कर देखो, इन बातो से तुम्हे कुछ हाथ नही लगेगा । तुम जल मे ही हमको वस्त्र दे दो, ये सब तुम्हे साधुवाद देंगी ।। २६१ ।। ।। गोपी उवाच ।। ।। सवैया ।। फिर गोपियो ने कृष्ण से कहा कि प्रेम बलपूर्वक नही किया जाता है, जो प्रेम आँखो से देखने पर हो जाता है वही प्रेम है । कृष्ण ने हँसकर कहा कि देखो, तुम मुझे रस की रीति मत समझाओ । आँखो से टेक लगाकर पुन. हाथों से ही प्रेम किया जाता

सोरी ॥ २६२ ॥ फेर कही मुख ते गुपिआ हमरे पट देहु कह्यो नंदलाला । फेरि शनान करैं न इहाँ कहिकै हम लोगन आछन बाला । जोर प्रनाम करो हमको कर बाहर ह्वै जल ते ततकाला । कान्ह कही हसि कै मुखि ते करहो नही ढील देऊ पट हाला ॥ २६३ ॥ ॥ दोहरा ॥ मंत्र सभन मिल इह कर्‌यो जल को तज सभ नार । कान्हर की बिनती करो कीनो इहै बिचार ॥ २६४ ॥ ॥ स्वैया ॥ दै अगुआ पिछुआ अपने कर पै सभही जल त्याग खरी है । कान्ह कै पाइ परी बहुबारन अउ बिनती बहु भाँत कही है । देहु कह्यो हमरी सरिआ तुम जो करि कै छल साथ हरी है । जो कहिहो मनि है हम सो अतिही सभ सीतहि साथ ठरी है ॥ २६५ ॥ ॥ कान बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह कही हस बात तिनै कहि है हम जो तुम सो मन हो । सभ हो मुखि चूमन देहु कह्यो चुम है हमहूँ तुमहूँ गनिहो । अरु तोरन देहु कह्यो सभ ही कुच ना तर हउ तुम कौ हनिहो । तबही पट देउ सभै तुमरे इह झूठ नही सत कै जनिहो ॥ २६६ ॥ ॥ स्वैया ॥ फेरि कही मुख ते हरि जी सुनि री इक बात कहो संग तेरे । जोर प्रनाम

है ॥ २६२ ॥ गोपियो ने फिर कहा कि हे नंदलाल ! हमको वस्त्र दे दो, हम अच्छी स्त्रियाँ है । यहाँ फिर कभी स्नान नही करेगी । कृष्ण ने उत्तर दिया कि ठीक है, तत्काल जल से बाहर निकलकर तुम मुझे प्रणाम करो । कृष्ण ने हँसकर कहा कि जल्दी करो मैं अभी वस्त्र दे देता हूँ ॥ २६३ ॥ ॥ दोहा ॥ सबने सलाह की कि ठीक है, सभी जल से बाहर आओ और फिर कृष्ण से प्रार्थना करो ॥ २६४ ॥ ॥ सवैया ॥ अंगो को अपने हाथों से छुपाती हुई सभी जल के बाहर आ गयी है । वे कृष्ण के पैरों पड़ रही है और अनेक प्रकार से प्रार्थना कर रही है कि हमारे वस्त्र दे दो जो तुमने चुराये है । अब जो मन मे था, हम लोगो ने कह दिया है । जल्दी वस्त्र दो, हम शीत से ठिठुर रही है ॥ २६५ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने कहा कि देखो, अब मैं जो कहूँगा वह तुम सबको मानना होगा । मुझे सबका मुँह चूमने दो । मैं चूमता हूँ और तुम सब गिनो । मुझे अपने कुच भी स्पर्श करने दो अन्यथा मैं सबके साथ और भी बुरा व्यवहार करूँगा । मैं सत्य कह रहा हूँ कि मैं यह सब कर लेने के बाद ही तुमको वस्त्र दूँगा ॥ २६६ ॥ ॥ सवैया ॥ पुनः कृष्ण ने कहा कि मेरी एक बात सुनो और हाथ जोडकर मुझे प्रणाम करो (अर्थात् मेरी बात मान लो), क्योकि

करो करि सो तुम कामकरा उपजी जिय मेरे। तौ हम बात कही तुमसो जब घात बनी सुभ ठउर अकेरे। दान लहै जिय को हमहूँ हस कान्ह कही तुमरो तन हेरे॥ २६७॥
॥ कबियो बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ कान (मू०ग्रं०२८७) जबै गोपी सभै देखयो नैन नचात। हवै प्रसंनि कहने लगी सभै सुधा सी बात॥ २६८॥ ॥ गोपो बाच कान्ह सों॥
॥ सवैया॥ कान्ह बहिक्रम थोरी तुमै तुम खेलहु ना अपने घर काहो। नंद सुनै जसुधा तपतै तिह ते तुम कान्ह भए हरकाहो। नेहु लगै नह जोरि भए तुम नेह लगावत हो बर काहो। लेह कहा इन बातन ते रस जानत का अजहूँ लरका हो॥ २६९॥
॥ कबितु॥ कमल से आनन कुरंगन से नेत्रन सौ तन की प्रभा मै सारे भावन सो भरिआ। राजत है गुपिआ प्रसंन भई ऐसी भाँति चंद्रमा चरे ते जिउँ बिराजै सेत हरिआ। रस ही की बातै रस रीत ही के प्रेम हूँ मै कहै कबि स्याम साथ कान्ह जू के खरिआ। मदन के हारन बनाइबे को काज मानो हित कै परोबत है मोतन की लरिआ॥ २७०॥ ॥ सवैया॥ काहे कौ कान्ह जू काम के बान लगावत हो तन के धन भउहै।

तुम सब कामदेव की कलाओं की तरह मेरे हृदय मे इस समय निवास कर रही हो। मैंने भी तुम सबको यह सब करने के लिए अवसर और एकांत देखकर ही कहा है। मेरा हृदय तो तुम सबको देखकर तुम सबके रूप का दान लेकर तृप्त हो रहा है॥ २६७॥ ॥ कवि उवाच॥ ॥ दोहा॥ कृष्ण ने जब आँखे नचाते हुए गोपियों की ओर देखा तो सब प्रसन्न होकर अमृत के समान मीठे बोल बोलने लगी॥ २६८॥ ॥ गोपी उवाच कृष्ण के प्रति॥ ॥ सवैया॥ हे कृष्ण! अभी तुम्हे कम समझ है, तुम अभी अपने घर मे ही खेलो। नद और यशोदा सुनेगे तो तुम शर्म से और भी हलके हो जाओगे। प्रेम बलात् नही किया जाता, तुम ऐसा क्यो कर रहे हो। तुम अभी इन बातो मे रस नही ले सकते क्योकि तुम अभी लड़के हो॥ २६९॥ ॥ कवित्त॥ कमल के समान मुखो वाली, हिरणी की-सी आँखो वाली और तन की प्रभा को भावो से भरी हुई गोपियाँ ऐसी शोभायुक्त लग रही है जैसे चन्द्र के चढने पर हरा और श्वेत वर्ण और भी शोभा देते है। वे रस और रस-रीति की बाते करती हुई कृष्ण के साथ खड़ी है। वे ऐसे खड़ी है मानो कामदेव को हार पहनाने के लिए मोतियो की माला गूंथने के लिए खड़ी है॥ २७०॥ ॥ सवैया॥ हे कृष्ण! भौहो के धनुष

काहे कउ नेहु लगावत हो मुसकावत हो चलि आवत सउहै। काहे कउ पाग धरो तिरछी अरु काहे भरो तिरछी तुम गउहै। काहे रिझावत हो मन भावत आहि दिवावत है हम सउहै ॥ २७१ ॥ बात सुनी हरि की जब स्रउनन रीझ हसी सभ ही ब्रिज बामै। ठाढी भई तरु तीर तबै हरुए हरुए कल कै गजगामै। बेर बने तिन नेत्रन के जन मैन बनाइ धरे इह दामै। स्याम रसातुर पेखत यौ जिम टूटत बाज छुधातुर तामै ॥ २७२ ॥ ॥ सवैया ॥ काम से रूप कलानिध से मुख कीर से नाक कुरंग से नैनन। कंचन से तन दारम दाँत कपोत से कंठ सु कोकल बैनन। कान्ह लग्यो कहने तिन सौ हसि कै कबि स्याम सहाइक धैनन। मोहि लयो सभ ही मनु मेरो सु भउह नचाइ तुमै संग सैनन ॥ २७३ ॥ कान्ह बडे रस के हिरिआ सभही गल बीच अचानक हेरी। सउह तुमै जसुधा कहु बात की सारथ कौ इह जा हम घेरी। वेहु कह्यो सभही हमरे पट होहि सभै तुमरी हम चेरी। कैसे प्रनाम करै तुम को

पर चढ़ाकर क्यो कामदेव के बाण मार रहे हो। तुम क्यो प्रेम बढ़ाकर मुस्कराते हुए हमारी ओर बढ़ते चले आ रहे हो ? क्यों तुम तिरछी पगड़ी धारण करते हो और क्यो तुम टेढ़ा-मेढ़ा चलते भी हो? तुम क्यो हम सबको रिझा रहे हो ? हे मनभावन ! तुम हमे बहुत अच्छे लगते हो, चाहे तुम इस बात की कसम ले लो ॥ २७१ ॥ जब व्रज की स्त्रियो ने कृष्ण की बाते सुनी तो वे सब मन-ही-मन प्रसन्न होने लगी और धीरे-धीरे वे गजगामिनियाँ उस वृक्ष के नीचे आ गयी (जिस पर कृष्ण बैठे हुए थे)। उनके नेत्र एकटक कृष्ण को निहारने लगे। वे ऐसी लग रही थी जैसे काम रूपी बिजलियाँ हो। कृष्ण व्याकुल होकर स्त्रियो को देखकर भूखे बाज की तरह टूट पड़े ॥ २७२ ॥ ॥ सवैया ॥ कामदेव के समान रूप, चन्द्रमा के समान मुख, तोते के समान नाक, हिरण के समान नेत्र, स्वर्ण के समान शरीर, अनार के समान दांत, कबूतर की तरह गर्दन और कोकिला के समान उन गोपियो की मधुर वाणी थी। कृष्ण उनसे मुस्कुराकर कहने लगे कि तुम लोगों ने सकेतो से और भौहो को नचा-नचाकर मेरा मन मोह लिया है ॥ २७३ ॥ कृष्ण बहुत बडे रसिक उन गोपियों को लगे और सब गोपियाँ आकर उनके गले लग गयी। वे कहने लगी, तुम्हे यशोदा की कसम है जो तुम बताओ कि तुमने इस प्रकार हमे घेर लिया है। सभी कहने लगी कि हम तुम्हारी दासियाँ हैं। तुम हमारे वस्त्र वापस कर दो।

अति लाज करै हरि जी हम तेरी ।। २७४ ।। ।। सवैया ।। पा पकर्‍यो हरिकै तुमरे पट अउ तर पै च्रड़ि सीत सहा है । जो हम प्रेम छके अति ही तुमको हम ढूढत ढूँढ लहा है । जोर प्रनाम करो हमको कर सउह लगै तुम मोरी हहा है । कान्ह कही हस बात सुनो (मू०ग्रं०२८४) सभचार भई तु बिचार कहा है ।।२७५।। शंक करो हम ते न कछू अरु लाज कछू जिय मै नहीं कीजै । जोर प्रनाम करो हमको कर दासन की बिनती सुनि लीजै । कान्ह कही हसिकै तिनसो तुमरे म्रिग से द्रिग देखत जीजै । डेरन नाहि करै तुम रे इह ते तुमरो कछु नाहिन छीजै ।। २७६ ।। ।। दोहरा ।। कान्ह जबै पट ना दए तब गोपी सभ हार । कान्ह कहै सो कीजिए कीनो इहै बिचार ।। २७७ ।। ।। सवैया ।। जोर प्रनाम करो हरि को करि आपसि मै कहिकै मुसकानी । स्याम लगी कहने मुख ते सभ ही गुपिआ मिलि अंम्रित बानी । होहु प्रसंन्य कहयो हम पै कर बात कही तुम सो हमसानी । अंतर नाहि रह्‍यो इह जा अब सोऊ भली तुम जो मन भानो ।। २७८ ।। ।। सवैया ।। काम के बान बनी बरछी

हे कृष्ण ! हम तुमको कैसे प्रणाम करे । हमे बहुत लज्जा का अनुभव हो रहा है ।। २७४ ।। ।। सवैया ।। मैंने तुम्हारे वस्त्र चुरा लिये है और अब तुम व्यर्थ ही और शीत सहन कर रही हो । हम तुम्हारे प्रेम मे मस्त है और मैंने ढूँढ़ते-ढूंढते आज तुमको पाया है । तुम सब हमको हाथ जोड़कर प्रणाम करो और तुम्हे कसम है कि आज से तुम मेरी हो । कृष्ण ने हँस कर कहा कि सुनो (तुम्हारे बाहर निकलने से ही) सब कुछ तो हो गया, अब क्यो व्यर्थ और विचार कर रही हो ।। २७५ ।। मेरे से लज्जा मत करो और मुझ पर ज़रा भी शंका मत करो । मैं भी तुम्हारा दास हूँ । मेरी प्रार्थना मानते हुए मुझे हाथ जोडकर प्रणाम करो । कृष्ण ने कहा, मै तुम्हारे मृगनयनो को ही देखकर जीवित हूँ। तुम देर मत करो, इससे तुम्हारा कुछ भी घिस नही जायगा ।। २७६ ।। ।। दोहा ।। जब कृष्ण ने वस्त्र नही दिये तो हारकर गोपियो ने यह विचार किया कि जो कृष्ण कहते है वही किया जाय ।। २७७ ।। ।। सवैया ।। सब आपस में मुस्कराकर और अमृतवाणी बोलती हुई कृष्ण को प्रणाम करने का उपक्रम करने लगी । हे कृष्ण ! अब तुम हमसे प्रसन्न हो जाओ, हम तुम्हें प्रणाम करती है। अब तुम्हारे और हमारे मे कोई अन्तर नही रह गया है और जो तुमको अच्छा लगता है, वही हमारे लिए अच्छा है ।। २७८ ।। ।। सवैया ।। तुम्हारी

भरुटे धन से द्रिग सुंदर तेरे। आनन है ससि सो अलकै हरि मोहि रहै बन रंचक हेरे। तउ तुम साथ करी बिनती जब काम करा उपजी जिय मेरे। चुंबन देहु कह्यो सभ ही मुख सउह हमै कह है नहि डेरे ॥ २७९ ॥ ॥ सवैया ॥ होहि प्रसंन्य सभै गुपिआ मिलि मान लई जोऊ कान्ह कही है। जोरि हुलास बढ्यो जिय मै गिनती सरता मग नेह बही है। शंक छुटी दुहूँ के मन ते हसिकै हरि तो इह बात कही है। बात सुनो हमरी तुमहू हमको निधि आनंद आज लही है ॥ २८० ॥ ॥ सवैया ॥ तउ फिर बात कही उनहूँ सुनि री हरि जू पिख बात कहो। सुनि जोर हुलास बढ्यो जिय मै गिनती सरता मग नेह बही। अब शंक छुटी इन के मन की तब ही हसिकै इह बात कही। अब सत्ति भयो हम कौ दुरगा बर मात सबा इह मत्ति सही ॥ २८१ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह तबै कर केल तिनो सगि पै पट दे करि छोर दई है। होइ इकत्र तबै गुपिआ सभ चंड सराहत धाम गई है। आनंद अति सु बढ्यो तिनके जिय सो उपमा कबि चीन लई है। जिउँ अत मेघ परैं धर पै

भौहे धनुष-सी है और उसमे से काम के बाण निकलकर बरछी के समान लग रहे है। इनके नेत्र भी अत्यन्त ही सुन्दर है, मुख चन्द्रमा के समान हैं और केश नागिन के समान है। जरा-सा देखने पर ही मन लोभी हो जाता है। कृष्ण ने कहा कि जब मेरे मन मे काम उदित हुआ है, तभी मैंने तुम सबसे प्रार्थना की। मुझे मुख का चुम्बन दो और मुझे कसम है कि मैं घर जाकर नही बताऊँगा ॥ २७९ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपियों ने प्रसन्न होकर वह सब कुछ मान लिया, जो-जो कृष्ण ने कहा। उनके मन में प्रसन्नता की लहर बढ चली और प्रेम की सरिता बह निकली। दोनों ओर से लज्जा छूट गयी और कृष्ण ने तो हँसकर यह भी कहा कि मुझे तो आज आनन्द का भण्डार मिल गया है ॥ २८० ॥ ॥ सवैया ॥ गोपियाँ आपस मे कहने लगी कि देखो, कृष्ण ने क्या कहा है। कृष्ण की बात को सुनकर प्रेम की नदी और उमड़ चली। अब इन सबके मन से शंका का निवारण हो गया और वे सब हँसते हुए कहने लगी कि माँ दुर्गा का वरदान प्रत्यक्ष रूप से हमारे सामने आ उपस्थित होकर सत्य सिद्ध हुआ ॥ २८१ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने उन सबके साथ प्रेम-लीला करके और उन सबको वस्त्र देकर छोड़ दिया। सभी गोपियाँ दुर्गा माता की प्रशंसा करती हुई अपने-अपने घर गयी। उनके हृदय में अत्यन्त आनन्द की वृद्धि ठीक

धर ज्यों सबजी सुभ रंग भई है ॥ २८२ ॥ ॥ गोपी बाच ॥ ॥ अड़िल ॥ धंनि चंडका मात हमै बर इह दयो । धंनि दियोस है आज कान हम मित भयो । दुरगा अब इह किरपा हम पर कीजिऐ । हो कान्हन को बहु दिवस सु देखन दीजिऐ (मू०ग्रं०२८६) ॥ २८३ ॥ ॥ गोपी बाच देवी जू सो ॥ ॥ स्वैया ॥ चंड क्रिपा हम पै करिऐ हमरो अति प्रीतम होइ कन्हइया । पाइ परै हमहूँ तुमरे हम कान्ह मिलै मुसलीधर भइया । याही ते दैत सँघारन नाम किधो तुमरो सभ ही जुग गइया । तउ हम पाइ परी तुमरे जब ही तुम तै इह पै बर पइया ॥ २८४ ॥ ॥ कबितु ॥ दैतन की म्रित साध सेवक की बरता तूं कहै कबि स्याम आदि अंतहूँ की करता । दीजै बरदान मोहि करत बिनंती तोहि कान्ह बर दीजै दोख दारद की हरता । तूँही पारबती अश्टभुजी तुही देवी तुही तुही रूप छुधा तुही पेटहू की भरता । तुही रूप लाल तुही सेत रूप पीत तुही तुही रूप धरा को है तुही आप करता । २८५ ॥ ॥ स्वैया ॥ बाहनि सिंघ भुजा अश्टा जिह चक्र त्रिसूल गदा कर मै ।

उसी प्रकार हुई जैसे वर्षा होने पर धरती पर घास की हरियाली में वृद्धि हुई ॥ २८२ ॥ ॥ गोपी उवाच ॥ ॥ अड़िल ॥ दुर्गा माँ धन्य है, जिसने हमें यह वरदान दिया और आज का यह दिन धन्य है जिसमे कृष्ण हम लोगो का मित्र बन गया । हे दुर्गा माँ ! अब हम पर यह कृपा कीजिए कि अन्य दिनों मे भी कृष्ण को देखने का अवसर हमे मिलता रहे ॥ २८३ ॥ ॥ गोपी उवाच देवी के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे चंडिके ! हम पर कृपा कीजिए ताकि हम लोगो का प्रियतम कृष्ण बना रहे । हम तुम्हारे पाँव पड़ती हैं कि हमे कृष्ण मिले (प्रियतम के रूप मे) और बलराम भाई के रूप मे प्राप्त हो । इसीलिए, हे माँ ! तुम्हारा नाम सारे संसार मे दैत्य-सहारिणी के रूप मे गाया जाता है । हम तुम्हारे फिर चरण-स्पर्श करेंगे, जब हमे यह वरदान प्राप्त हो जायगा ॥ २८४ ॥ ॥ कवित्त ॥ कवि श्याम का कथन है कि हे देवि ! तू दैत्यो की मृत्यु और साधु सेवकों को प्रेम करनेवाली तथा आदि और अन्त को करनेवाली हो । तुम ही पार्वती, अष्टभुजा देवी, अत्यन्त रूपवती तथा भूखे का पेट भरनेवाली हो । तुम ही लाल, सफेद, पीला वर्ण हो और तुम ही धरती का रूप और धरती की रचना करनेवाली हो ॥ २८५ ॥ ॥ सवैया ॥ तुम्हारा वाहन सिंह है, तुम्हारी अष्टभुजाओ मे चक्र, गदा, त्रिशूल, बरछी, तीर, ढाल, कमान और

**बरछी सर ढाल कमान निखंग धरे कट जो बर है बर मै।
गुपिआ सभ सेव करै तिह की चित बैल हमै तिह कै हरि मै।
पुन अच्छत धूप पंचांम्रित दीप जगावत हार डरै गर मै ॥२८६॥
॥ कबितु ॥ तोही को सुनैहै जाप तेरो ही जपैहै ध्यान तेरो ही धरैहै न जपैहै काहूँ आन कौ। तेरो गुन गैहै हम तेरे ही कहैहै फूल तोही पै डरैहै सभ राखै तेरे मान कौ। जैसे बर दीनो हमै होइकै प्रसंनि पाछै तैसे बर दीजै हमै कान सुर ग्यान कौ। दीजिए बिभूत कै बनासपती दीजै कैधो माला दीजै मोतिन कै मुंद्रा दीजै कान कौ ॥ २८७ ॥ ॥ देवी बाच ॥
॥ स्वैया ॥ तौ हस बात कही दुरगा हम तो तुमको हरि को बरु दैहै। होहु प्रसंन्नि सभै मन मै तुम सत्त कह्यो नही झूठ कहैहै। कान्हि को सुख हो तुमको हम सो सुख सो अखिआ भरि लैहै। जाहु कह्यो सभ ही तुम डेरन कान्ह वहै बर को तुम पैहै ॥ २८८ ॥ ॥ कबियो बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ ह्वै प्रसंन्य सभ ब्रिजबधू तिह को सीस निवाइ। पर पाइन कर बेनती चली ग्रिहन कौ धाइ ॥ २८९ ॥ ॥ स्वैया ॥ आपस मै**

कमर मे तरकस है। सभी गोपियाँ मन मे कृष्ण की कामना करते हुए उस देवी की पूजा कर रही है और अक्षत, धूप, पंचामृत अर्पण करते हुए तथा दीप जलाते हुए उसके गले मे फूलो की हार डाल रही हैं ॥ २८६ ॥
॥ कबित्त ॥ हे माँ ! तुम्हे ही सुना रही हैं, तुम्हारा ही जाप कर रही है तथा अन्य किसी का भी स्मरण नही कर रही है। हम तेरे ही गुणगान कर रही हैं और तेरे मान के अनुरूप तेरे पर पुष्प चढा रही है। जिस प्रकार का वर तुमने प्रसन्न होकर हमे पहले दिया है, वैसा ही से कृष्ण से सम्बन्धित वर पुन: दीजिए। यदि हमे कृष्ण प्राप्त नही होता है तो हमे भभूत, गले मे डालने के लिए कठी और कान मे डालने के लिए मुद्राएँ दीजिए ताकि हम ससार को त्यागकर योगिनियाँ बन जायँ ॥ २८७ ॥
॥ देवी उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ तब दुर्गा ने हँसकर कहा कि मै तो तुम सबको कृष्ण का वर दे चुकी हूँ। तुम सव प्रसन्न होवो, क्योकि मैंने यह सत्य कहा है, झूठ नही कहा है। कृष्ण का सुख तुम्हारे ही लिए है और तुम्हे सुखी देखकर मेरी आँखे भी सुख से भर जायँगी। तुम सब अपने घर जाओ और कृष्ण तुम सबका ही वरण करेगा ॥ २८८ ॥ ॥ कवि उवाच ॥
॥ दोहा ॥ सभी व्रज की बहुएँ प्रसन्न होकर सिर को झुकाती हुई, देवी के चरणो को स्पर्श करती हुई अपने-अपने घर को चली गयी ॥ २८९ ॥

कर जोर सभै गुपिआ चलि धाम गई हरखानी। रीझ दयो हम को दुरगा बर स्याम भली कहती इह बानी। आनंद मत्त भरी मद सो सभ सुंदर धामन को निज कानी। दान दयो दिजहूँ बहुत्यो मन इच्छत है हरि हो हम जानी ॥ २९० ॥

॥ दोहरा ॥ समै भलै इक घात सिउ ह्वै इकत्र सभ बाल। (मू०ग्रं०२९०) अंग सभै गननै लगी करिकै बात रसाल ॥ २९१ ॥

॥ स्वैया ॥ कोऊ कहै हरि को मुख सुंदर कोऊ कहै सुभ नाक बन्यो है। कोऊ कहै कट केहरि सी तन कंचन सो रिझ काहू गन्यो है। नैन कुरंग से कोऊ गनै जस ता छबि को कबि स्याम भन्यो है। लोगन मै जिमु जीव बन्यो तिनके तन मै तिम कान्ह मन्यो है ॥ २९२ ॥

कान्ह को पेख कलानिध सो मुख रीझ रही सभ ही ब्रिज बारा। मोहि रहे भगवान उतै इनहूँ दुरगा बर चेटक डारा। कानि टिकै ग्रिह अउर बिखै तिह को अति ही जसु स्याम उचारा। जीव इकत्र रहै तिनको इम टूट गए जिउँ म्रिनाल की तारा ॥ २९३ ॥

॥ सवैया ॥ सब गोपियाँ एक-दूसरे का हाथ पकड़ती हुई प्रसन्न मन से घर चली गईं। वे सब यह कह रही थी कि दुर्गा ने प्रसन्न होकर हम सबको वर के रूप मे कृष्ण को दे दिया है और इसी आनन्द से भरी हुई वे सब सुन्दरियाँ अपने घरो मे पहुँच गयी। उन्होने बहुत सा दान ब्राह्मणो को दिया, क्योकि उन्हे मनवाछित कृष्ण प्राप्त हो गया था ॥ २९० ॥ ॥ दोहा ॥ एक अवसर पर सभी बालिकाएँ इकट्ठी होकर मीठी-मीठी बाते करती हुई कृष्ण के अगो का वर्णन करने लगी ॥ २९१ ॥ ॥ सवैया ॥ कोई कहती है कि कृष्ण का मुख सुन्दर है; कोई कहती है, कृष्ण की नासिका सुन्दर है। कोई रीझकर कह रही है कि कृष्ण की कमर शेर के समान है और कोई कहती है, कृष्ण का तन कचन का बना हुआ है। कोई नयनों की उपमा मृग से देती है और कवि श्याम का कथन है कि जिस प्रकार मनुष्यो मे जीव ओतप्रोत रहता है, उसी तरह सभी गोपियो के मन कृष्ण रमा हुआ है ॥ २९२ ॥ कृष्ण का चन्द्र के समान मुख देखकर सभी व्रज-बालिकाएँ प्रसन्न हो रही है। इधर कृष्ण भी सब पर मोहित है और उधर दुर्गा के वरदान ने गोपियो को भी व्याकुल कर दिया है। कृष्ण गोपियो की व्याकुलता बढाने के लिए किसी अन्य घर मे कुछ समय मे टिक गये तो सभी गोपियो के दिल विरह-वेदना से ऐसे टूट गये जैसे कमल की नाल के तार आसानी से टूट जाते हैं ॥ २९३ ॥ इन गोपियो का कृष्ण से और

नेहु लग्यो इन को हरि सों अरु नेहु लग्यो हरि को इन नारे। चैन परै दुह कौ नहि हूं पल नावन जावत होत सवारे। स्याम भए भगवान इनै वस दैतन के जिह ते दल हारे। खेल दिखावत है जग को दिन थोरन मैं अब कंस पछारे॥ २६४॥ ॥ स्वैया॥ उत जागत स्याम इतै गुपिआ कबि स्याम कहै हित कै संगि ताके। रीझ रही तिह पै सभ ही पिखि नैनन सो फुनि कान्हर बाके। प्रेम छकी न परै इनको कलि काम बढ्यो अति ही तन वाके। खेलहि प्रातहि काल भए हम नाहि लखै हम कै जन गाके॥ २६५॥ प्रात भयो चुहलात चिरी जल जात खिरे बन गाइ छिरानी। गोप जगे पति गोप जग्यो कबि स्याम जगी अरु गोपन रानी। जाग उठे तबही करुनानिध जाग उठ्यो मुसलीधर मानी। गोप गए उत न्हान करै इह कान्ह चले गुपिआ निज कानी॥ २६६॥ ॥ स्वैया॥ बात कहे रस की हसकै नहि अउर कथा रस की कोऊ भाखैं। चंचल स्रोपत के अपने द्रिग मोहि तिनै बतिआ इह आखैं। बात न जानत होरस की रस जानत सो नर जो रस गाखैं।

कृष्ण का गोपियों से स्नेह बढ़ता ही जा रहा है। दोनो को चैन नही पड़ रहा है और दोनो कई-कई बार नहाने जाते हैं। कृष्ण, जिनसे दैत्यो के दल हार मान गये थे, ये अब गोपियो के वश मे हो गये है। अब वे संसार को लीला दिखा रहे है और थोडे ही दिनो मे कस को पछाड़ेगे ॥ २९४॥ ॥ सवैया॥ कवि श्याम का कथन है कि प्रेम मे उधर गोपियाँ जग रही है और इधर रात्रि मे कृष्ण को नीद नही आ रही है। कृष्ण को अपने नेत्रो से देखकर वे रीझ रही है। प्रेम से उनकी तृप्ति नही हो रही है और कामदेव उनके तन मे बढता जा रहा है। कृष्ण के साथ खेलते-खेलते सुबह हो जाती है और उन सबको पता ही नही लगता है॥ २९५॥ प्रात.काल हुआ, चिड़िया चहचहाने लगी और वन मे गायो को छोड़ दिया गया। गोप जग गये, नन्द जग गये और माता यशोदा भी जग गयी। तभी कृष्ण भी जग गये और बलराम भी जग गये। उधर गोप स्नान करने गये और इधर कृष्ण भी गोपियो के पास पहुँच गये ॥ २९६॥ ॥ सवैया॥ गोपियाँ हँस-हंसकर रसीली बाते कर रही हैं। चंचल श्रीकृष्ण को अपने नयनो से मोहकर गोपियाँ इस प्रकार कहती हैं कि हमे दूसरे किसी का तो कुछ पता नही है, लेकिन इतना अवश्य पता है जो रस को पीनेवाला है वही रस की कद्र जानता है। प्रीति

प्रीत पढ़ै कर प्रीत कढ़ै रस रीतन धोत सुनो सोई चाखै ॥ २९७ ॥ ॥ गोपी बाच कान सो ॥ ॥ स्वैया ॥ मीत कहो रस रीत सभै हम प्रीत भई सुनबे बतिआ की । अउर भई तुहि देखनि की तुम प्रीत भई हमरी छतिआ की । रीझ लगी कहने मुख ते हस सुंदर बात इसी गतिआ की । (मू०ग्रं०२६१) नेह लग्यो हरि सो भई मोछन होति इती गत है सु त्रिआ की ॥ २९८ ॥

॥ इति स्री दसम सकंध बचित्र नाटक क्रिशनावतारे चीर हरन धिआइ ॥

अथ बिपन ग्रिह गोप पठैबो ॥

॥ दोहरा ॥ कै क्रीड़ा इन सो किशन कै जमना इशनानु । बहुर स्याम बन को गए गऊ सु त्रिनन चरान ॥ २९९ ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिशन सराहत तरन को बन मै आगे गए । संग ग्वाल जेते हुते ते सभ भूख भए ॥ ३०० ॥ ॥ सवैया ॥ पत्र भले तिन के सुभ फूल भले फल है सुभ सोभ सुहाई । भूख लगे घर को उमगे पै बिराजन को सुखदा पर छाई । कान्ह तरै तिहके मुरली गहि कै कर मो मुख साथ

होने पर ही प्रेम मे गहराई आती है और रस की बातो को अनुभव करने मे आनन्द आता है ॥ २९७ ॥ ॥ गोपी उवाच कृष्ण से ॥ ॥ सवैया ॥ हे मित्र ! हम रस की बाते सुनना चाहती है । हमे रस की रीति समझाओ । हम तुम्हें देखना चाहती हैं और तुम्हे हमारे कुचो से प्रेम है । गोपियाँ इसी प्रकार की बाते कृष्ण से करती हैं और उन स्त्रियो की यह अवस्था है कि वे हरि के प्रेम मे मूर्च्छित-सी हो रही है ॥ २९८ ॥

॥ श्री दशम स्कध बचित्र नाटक के कृष्णावतार मे चीर-हरण अध्याय समाप्त ॥

विप्रों के घर गोपों को भेजना

॥ दोहा ॥ गोपियो से क्रीड़ा करके और स्नान करके कृष्ण वन में गाय चराने गए ॥ २९९ ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण सुन्दरियो की प्रशसा करते हुए वन मे आगे निकल गए और जितने ग्वाल-बाल उनके संग थे उन सबको भूख सताने लगी ॥ ३०० ॥ ॥ सबैया ॥ उन पेड़ो के पत्ते भले है, फल-फूल और सुखदाई छाया भली है, जिनके नीचे घर लौटते समय कृष्ण ने मुरली की तान बजाई । कृष्ण की मुरली को सुनकर तो पवन

बजाई। ठाढि रह्यो सुन पउन घरी इक थकत रही जमुना उरझाई ॥ ३०१ ॥ मालसिरी अरु जैतसिरी सुभ सारंग बाजत है अरु गउरी। सोरठि सुद्ध मलार बिलावल मीठी है अंम्रित ते नह कउरी। कान्ह बजावत है मुरली सुन होत सुरी असुरी सभ बउरी। आइ गई ब्रिखभान सुता सुन पै तरनी हरनी जिमु दउरी ॥ ३०२ ॥ जोर प्रनाम कर्यो हरि को करि नाथ सुनो हम भूख लगी है। दूर रहे सभ गोपन के घर खेलन की सभ सुद्ध भगी है। डोलत संग लगै तुमरे हम कान्ह तबै सुन बात पगी है। जाहु कह्यो मथुरा ग्रिह बिप्पन सति कह्यो नहि बात ठगी है ॥ ३०३ ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ सवैया ॥ फेर कही हरि जी सभ गोपन कंस पुरी इह है इह जइऐ। जग को मंडल बिप्पन को ग्रिह पूछत बूछत ढूँढ सु लइऐ। अंजुल जोरि सभै पर पाइन तउ फिर कै बिनती इह कइऐ। खान के कारन भोजन मागत कान्ह छुधातुर है सु सुनइऐ ॥ ३०४ ॥ मान लई जोऊ कान्ह कही पर पाइन सीस निवाइ चले। चलिकै पुर कंस बिखै जो

भी एक घडी भर के लिए रुक गया और यमुना भी उलझन मे पड़ गई अर्थात् कृष्ण की मुरली सबको प्रभावित करती है ॥ ३०१ ॥ कृष्ण मुरली पर मालश्री, जैतश्री, सारग, गौड़ी, सोरठ, शुद्ध मल्हार और अमृत के समान मीठा बिलावल राग बजाते है और इसको सुनकर अप्सराएँ और राक्षसियाँ सभी मोहित हो रही है। बाँसुरी को सुनकर ही वृषभानु की पुत्री (राधा) भी हिरणी के समान दौडी हुई चली आ रही है ॥ ३०२ ॥ राधा ने हाथ जोड़कर कहा कि हे नाथ ! मुझे भूख लगी है। सब गोपो के घर दूर रह गए और खेल-खेल मे हमे कुछ स्मरण ही नही रहा (कि हम इतनी दूर निकल आए है)। हम तुम्हारे साथ ही घूम रहे है। कृष्ण ने जब यह सुना तो सबसे कहा कि तुम सब मथुरा मे ब्राह्मणो के घरो मे जाओ (और कुछ खाने के लिए ले आओ)। यह मैं तुम लोगो से सत्य कह रहा हूँ, इसमे तनिक भी झूठ नही है ॥ ३०३ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने सब गोपो से कहा कि कंसपुरी मथुरा मे जाओ और यज्ञ करनेवाले विप्रो के बारे मे पूछ लेना। उनसे हाथ जोड़कर तथा पाँव पड़कर प्रार्थना करना कि कृष्ण को भूख लगी है और खाने के लिए भोजन माँग रहे है ॥ ३०४ ॥ गोपो ने कृष्ण की बात मान ली और शीश झुकाकर वे सब चल दिए और मथुरा मे विप्रो के घर पर

गए ग्रिह बिप्पन के सभ गोप भले। करि कोटि प्रनाम करी बिनती फुनि भोजन माँगत कान्ह खले। अब देखहु चातुरता इन की धर बालक मूरत ब्रिप्प छले ॥ ३०५ ॥ ॥ बिप्र बाच ॥ ॥ सवैया ॥ कोप भरे दिज बोल उठे हम ते तुम भोजन माँगन आए। कान्ह बडो सठ अउ मुसली हमहूँ तुमहूँ सठ से लख पाए। पेट भरैं अपनो तब ही जब आनत तंदुल माग पराए। (मू०ग्रं०२६२) एते पैं खान को माँगत है इह यों कहिकै अति बिप्प रिसाए ॥ ३०६ ॥ बिप्पन भोजन जो न दयो तब ही ग्रिह गोप चले सु खिसाने। कंस पुरी तज कै ग्रिह बिप्पन नाथ चले जमुना निज काने। बोलि उठ्यो मुसली क्रिशनं संगि अंन्य बिना जब आवत जाने। देखहु लैन को आवत थे दिज देन की बेर को दूर पराने ॥ ३०७ ॥ ॥ कबितु ॥ बडे है कुमती अउ कुजती कूर काइर है बडे है कमूत अउ कुजात बडे जग मै। बडे चोर चूहरे चपाई लिए तजै प्रान करै अति जारी भटपारी अउर मग मै। बैठे है अजान मानो कहीअत है स्याने कछू जाने न गिआन सउ कुरंग बाँधे पग मै।

पहुँचे। गोपो ने प्रणाम किया और कृष्ण के रूप मे भोजन माँगने लगे। अब इन सबकी चतुराई देखो कि कृष्ण के रूप मे सभी विप्रों को ठग रहे हैं ॥ ३०५ ॥ ॥ विप्र उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ क्रुद्ध होकर विप्र बोल उठे कि तुम हम लोगो से भोजन माँगने आए हो। कृष्ण और बलराम तो बड़े मूर्ख है। क्या तुमने हम सबको भी मूर्ख समझ लिया है। हम तो अपना पेट भी चावल माँगकर भरते है। तुम हमसे माँगने आ गए हो। यह कहते हुए विप्र क्रुद्ध हो उठे ॥ ३०६ ॥ विप्रो ने जब खाने को कुछ न दिया तो खिसियाकर सभी गोप मथुरा को छोड़कर यमुना के तट पर अपने कृष्ण के पास आ पहुँचे। उन्हे बिना अन्न के आते हुए देखकर कृष्ण और बलराम बोल उठे कि विप्र लेने के लिए तो हम लोगो के पास आ जाते है, परन्तु देने के समय दूर भागते है ॥ ३०७ ॥ ॥ कवित्त ॥ ये विप्र व्यभिचारी, क्रूर, कायर, महानीच और कुजाति है। ये चोर-चमारो के कर्म करनेवाले विप्र रोटी के लिए प्राण तक छोडने को तैयार हो जाते है। ये रास्तो पर धूर्तता और लूट भी करते है। ये अनजान बनकर बैठे रहते हैं। अन्दर से चतुर होते है और ज्ञान तो इनमें होता नही परन्तु हिरण की-सी तीव्र गति से इधर-उधर दौड़ा करते हैं। ये बड़े भद्दे है, परन्तु अपने-आपको सुन्दर कहलाते है और नगर मे ऐसे स्वच्छन्द होकर घूमते हैं जैसे

बडे है कुछैल पै कहावत है छैल ऐसे फिरत नगर जैसो फिरै ढोर बग मै ॥ ३०८ ॥ ॥ मुसली बाच कान सो ॥ ॥ सवैया ॥ आइस होइ तउ खैर हला संग मूसल सों मथुरा सभ फाटो । बिप्पन जाइ कहो पकरो कहो मार डरो कहो रंचक डाटो । अउर कहो तो उखार पुरी बलु कै अपनो जमुना महि साटो । संकत हो तुमते जदुराइ न हउ इकलो अर को सिर काटो ॥ ३०९ ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ सवैया ॥ क्रोध छिमापन कै मुसली हरि फेरि कही संगि बालक बानी । बिप्प गुरू सभ ही जग के समझाइ कही इह कान्ह कहानी । आइस मान गए फिर कै जु हुतो न्रिप कंसहि की रजधानी । खैबे को भोजन माँगत कान्ह कह्यो नहि बिप्प मनी अभिमानी ॥ ३१० ॥ ॥ कबितु ॥ कान्ह जू के ग्वारन को बिप्पन दुबार रिस उत्तर दयो न कछू खैबे को कछू दयो । तब ही रिसाए गोप आए हरिजू कै पास करिकै प्रनाम ऐसे उत्तर तिनै दयो । मोन साध बैठ रहै खैबे को न देत कछू तबै फिरि आइ जबै क्रोध मन मै भयो । अत ही छधातर भए हैं हम दीनानाथ कीजिऐ उपाव ना तो बल

जानवर अपने साथियों-समेत बेरोक-टोक घूमते है ॥ ३०८ ॥ ॥ बलराम उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे कृष्ण ! यदि तुम कहो तो मैं अपने शस्त्र मुगदर (मूसल) के प्रहार से सारी मथुरा को फाड़कर दो टुकडे कर दूं । यदि कहो तो विप्रो को पकड लूं, कहो तो मार डालूं और कहो तो थोड़ा डांटकर छोड़ दूं । यदि कहो तो सारी मथुरा नगरी को अपने बल से उखाड़कर यमुना मे फेक दूं । मुझे तुम्हारा ही थोड़ा भय है, अन्यथा हे यादवराज ! मैं अकेला ही सारे शत्रुओ को नष्ट कर दूं ॥ ३०९ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ हे बलराम ! क्रोध और क्रोधी को क्षमा कर देना चाहिए । यह कहते हुए सभी बालको से कृष्ण कहने और समझाने लगे कि विप्र तो सारे जगत् का गुरु होता है, (परन्तु यह आश्चर्य है कि) गोप तो आज्ञा मानकर दुबारा भोजन मांगने चले गए और नृप की राजधानी मे जा पहुँचे, पर कृष्ण का नाम लेने पर भी अभिमानी विप्रों ने इन्हे कुछ नही दिया ॥ ३१० ॥ ॥ कवित्त ॥ कृष्ण के ग्वाल-बालो को दुबारा क्रोधित होकर विप्रो ने उत्तर दिया, परन्तु खाने को कुछ नही दिया । तब रुष्ट हो गोप कृष्ण के पास आए और प्रणाम कर कहने लगे कि ब्राह्मण हम लोगो को देखकर मौन साध गए है और उन्होने कुछ भी खाने को नही दिया है । इसलिए हम क्रोधित है । हे दीनानाथ ! हमे अत्यन्त भूख

तन को गयो ॥ ३११ ॥ ॥ सवैया ॥ गरुड़ाध्वज देख तिनै छुधवान कह्यो मिलिकै इह काम करउरे । जाहु कह्यो उनकी पतनी पहि बिप्प बडे मत के अति बउरे । जग्गि करै जिह कारन को अरु होम करै जपु अउ सतु सउरे । ताही को भेवु न जानत मूड़ कहै मिशटान के खान को कउरे ॥ ३१२ ॥ ॥ सवैया ॥ सभ गोप निवाइकै सीस चले चलके फिर बिप्पन के घरि आए । (मू०ग्रं०२९३) जाइ तबै तिन की पतनी पहि कान्ह तबै छुधवान जताए । तौ सुन बात सभै पतनी दिज ठाढि भई उठ आनंद पाए । धाइ चली हरि के मिलबे कहु आनंद कै दुख दूर नसाए ॥ ३१३ ॥ बिप्पन की बरजी न रही त्रिय कानर के मिलबे कछु धाई । एक परी उठ मारग मै इक देह रही जिय देह पुजाई । ता छबि की अति ही उपमा कबि नै मुख ते इम भाख सुनाई । जोर सिउँ ज्यों बहती सरता न रहै हटकी भुस भीत बनाई ॥३१४॥ ॥ स्वैया ॥ धाइ सभै हरि के मिलबे कहु बिप्पन की पतनी बडभागन । चद्रमुखी म्रिग से द्रिगनी कबि स्याम चली हरि के पग लागन । है सुभ अंग सभै जिनके न सकै

लगी है, हमारा कुछ उपाय कीजिए। हमारे तन का बल अत्यन्त क्षीण हो गया है ॥ ३११ ॥ ॥ सवैया ॥ श्रीकृष्ण ने उन्हे अत्यन्त क्षुधातुर देखकर कहा कि तुम लोग एक काम करो कि तुम विप्रो की पत्नियो के पास जाओ, ये विप्र अत्यन्त मतिमद है। ये जिस कारण से यज्ञ और होम करते रहते हैं, उसके रहस्य को ये मूर्ख नही जानते है और मिष्टान्न को भी कड़वा कर रहे है (अर्थात् ये मुझे नही पहचान रहे है) ॥ ३१२ ॥ ॥ सवैया ॥ गोप पुनः शीश झुकाकर चले और विप्रो के घर पहुँचे। उनकी पत्नियो से गोपो ने कहा कि कृष्ण को अत्यन्त भूख लगी है। पत्नियाँ कृष्ण की बात सुनकर आनन्द से उठ खड़ी हुई और दौड़कर कृष्ण को मिलने और अपने दुःखो को दूर करने के लिए चल पडी ॥ ३१३ ॥ विप्रो के मना करने पर भी स्त्रियाँ नही मानी और कृष्ण को मिलने के लिए दौड़ पड़ी। कोई रास्ते मे गिर पडी है और कोई फिर उठकर दौड़ी है और प्राणो के रहते-रहते वहाँ आ पहुँची है। उस छवि को कवि ने इस प्रकार कहा है कि स्त्रियाँ इतने वेग से चली जैसे भूसे का बाँध तोड़कर नदी पूर्ण वेग से बह निकलती है ॥ ३१४ ॥ ॥ सवैया ॥ बड़े भाग्य वाली विप्रों की पत्नियाँ कृष्ण को मिलने के लिए चल पड़ी। वे चन्द्रमुखियाँ और मृगनयनियाँ कृष्ण के चरण स्पर्श करने के लिए बढ़ चली। उनके

जिनकी ब्रहमा गनता गन। भउनन ते सभ इउ निकरी जिमु मंत्र पड़ै निकरै बहु नागन ॥ ३१५ ॥ ॥ दोहरा ॥ हरि को आनन देख कै भई सभन कौ चैन। निकटि त्रिया को पाइकै परत चैन पर मैन ॥ ३१६ ॥ ॥ स्वैया ॥ कोमल कंज से फूल रहे द्रिग मोर को पंख सिर ऊपर सोहै। है बरनी सरसी भरुटे धन आनन पै ससि कोटक को है। मित्र की बात कहा कहिये जिह को पिख कै रिप को मन मोहै। मानहु लै शिब के रिप आप दयो बिधना रस याहि निचोहै ॥ ३१७ ॥ ग्वार के हाथ पै हाथ धरै हरि स्याम कहै तरु के तरु ठाढे। पाट को पाट धरे पियरो उर देख जिसै अति आनंद बाढे। ता छबि की अति ही उपमा कबि जिउँ चुनली तिसको चुन काढे। मानहु पावस की रुत मै चपला चमको घन सावन गाढे ॥ ३१८ ॥ ॥ स्वैया ॥ लोचन कान्ह निहार त्रिया दिज रूप कै मान महा मत हूई। होइ गई तन मै ग्रिह की सुध यौ उडगी जिमु पउन सौं रूई। स्याम कहै तिनकौ बिरहागनि यौ भरकी जिमु तेल

सुन्दर अंग है और वे गिनती मे इतनी हैं कि ब्रह्मा भी गणना नही कर सकता। वे अपने घरो से ऐसे निकली हैं जैसे नागिनें मंत्र के वशीभूत होकर अपने घरो से निकल पडती है ॥ ३१५ ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण के मुख को देखकर सबको सुख मिला और स्त्रियो को सन्निकट देखकर उस सुख मे कामदेव भी मिश्रित हो गए ॥ ३१६ ॥ ॥ सवैया ॥ आँखे कोमल कमल के फूल के समान है और सिर पर मोरपंख शोभायमान है। बरौनियाँ और भौहे मुख की शोभा करोडों चन्द्रो के समान वढ़ा रही है। इस मित्र कृष्ण की क्या बात कहे, इसको देखकर तो शत्रु भी मोहित हो जाता है। यह तो ऐसा लग रहा है मानो कामदेव ने स्वयं सारा रस निचोड़कर कृष्ण के सामने प्रस्तुत किया हो ॥ ३१७ ॥ ग्वालो के हाथो पर हाथ रखे कृष्ण पेड के नीचे खड़े है। पीला वस्त्र उन्होने धारण कर रखा है जिसे देखकर मन मे आनन्द की वृद्धि हो रही है। इस छवि की उपमा कवि ने इस प्रकार चुनी है कि यह दृश्य ऐसा लग रहा है मानो काले बादलो मे बिजली चमक रही हो ॥ ३१८ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण के नेत्रो को देखकर द्विजस्त्रियाँ उसके रूप मे मस्त हो गईं। उनके हृदयों से घरो की याद ऐसे उड़ गई जैसे पवन से रूई उडती है। उनमे विरहाग्नि ऐसे भड़क उठी जैसे तेल डालने से ज्वाला भड़कती है। उनकी वही दशा हो गयी जो चुम्वक को देखकर लोहे की हो जाती है अर्थात् लोहे की सूई

सो धूई। जिउँ टुकरा पिख चुंमक डोलत बीच मनो जल लोह की सूई ॥ ३१६ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह को रूप निहार त्रिया दिज प्रेम बढ्यो दुख दूर भए हैं। भीखम मात को ज्यों परसे छिन मै सभ पाप बिलाइ गए है। आनन देखिके स्याम घनो चित बीच बस्यो द्रिग मूँद लए है। जिउँ धनवान मनो धन को तर अंदर धाम किवार दए है ॥ ३२० ॥ ॥ स्वैया ॥ सुद्ध भई जब ही तन (मू०ग्रं०२६४) मै तब कान्ह कही हसिकै ग्रिह जावहु। बिप्पन बीच कहे रहियो दिन रैन सभै हमरे गुन गावहु। होइ न त्रास तुमै जम की हित कै हम सो जब ध्यान लगावहु। जो तुम बात करो इह ही तब ही सभ ही मुकताफलु पावहु ॥ ३२१ ॥ ॥ दिजन त्रियो बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ पतनी दिज की इह बात कही हम संग न छाडत कान्ह तुमारो। संग फिरै तुमरे दिन रैन चलै ब्रिज कौ ब्रिज जोऊ सिधारो। लाग रह्यो तुम सो हमरो मन जात नही मन धाम हमारो। पूरन जोग को पाइ जुगीसुर आनन ना धन बीच सँभारो ॥ ३२२ ॥ ॥ कान्ह बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ स्री भगवान तिनै पिख प्रेम

चुम्बक से मिलन के लिए अत्यन्त लालायित हो उठती है ॥ ३१९ ॥ ॥ सवैया ॥ विप्र-स्त्रियो का कृष्ण को देखकर वैसे ही दुःख दूर हो गया और उनका प्रेम और अधिक बढ़ चला जैसे माता के चरण स्पर्श कर भीष्म का दुःख दूर हो गया था। स्त्रियो ने कृष्ण का मुख देखकर उसे चित्त में बसा लिया है और अपनी आँखे उसी प्रकार बन्द कर ली है जैसे धनवान धन को सँभालकर तिजोरी मे बन्द कर लेता है ॥ ३२० ॥ ॥ सवैया ॥ जब उन स्त्रियो की चेतना कुछ लौटी तो कृष्ण ने हँसकर उनसे कहा कि अब तुम अपने घर जाओ, विप्रो के पास रहो और दिन-रात मुझे स्मरण करो। जब तुम मेरा ध्यान करोगी तो तुम्हे यम का भय भी नही रहेगा और इस प्रकार करने पर ही तुम सब मुक्ति को प्राप्त करोगी ॥ ३२१ ॥ ॥ द्विजस्त्री उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ हम ब्राह्मणों की पत्नियाँ है, परन्तु, हे कृष्ण ! हम तुम्हारा साथ नही छोड़ेगी, दिन-रात तुम्हारे साथ रहेगी और यदि तुम व्रज को जाओगे तो तुम्हारे साथ हम सब व्रज चलेगी। हमारा मन तुम्हारे मे लीन हो गया है और घर जाने की इच्छा अब नही होती। जो पूर्ण रूप से योगी बन जाता है और घर-वार छोड़ देता है, वह पुन: घर, द्वार, धन-दौलत की सँभाल नहीं करता है ॥ ३२२ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ श्री भगवान ने प्रेम-

कह्यो मुख ते तुम धाम सिधारो। जाइ सभै पति आपन आपन कान्ह कथा कहि ताहि उधारो। पुत्रन पउत्रन पत्तिन सो इह कै चरचा सभ ही दुख टारो। गंध मलियागर स्याम को नाम लै रूखन को करि चंदन डारो॥ ३२३॥ मान लई पतनी द्विज की सभ अंम्रित कान्ह कही बतिआ। जितनो हरि या उपदेश कर्‌यो तितनो नहि होत कछू जतिआ। चरचा जब जा उनसो इन की तबही उनकी भई या गतिआ। इन स्याह भए मुख यौ जुवती मुख लाल भए वह जिउँ रतिआ॥ ३२४॥ चरचा सुनि बित्त जु त्रीअन सो मिलकै सभ ही पछतावन लागे। बेदन कौ हमकौ सभ कौ ध्रिग गोप गए मँग कै हम आगे। मान समुंद्र मै बूडे हुते हम चूक गयो अउसर तउ हम जागे। पै जिनकी इह है पतनी तिह ते फुनि है हमहूँ बडभागे॥ ३२५॥ मान सभै दिज आपन को ध्रिग फेरि करी मिलि कान्ह बडाई। लोकन के सभ के पति कान्ह हमै कहि बेदन बात सुनाई। तौ न गए उनके हम पासि डरे जु मरे हम कउ हम राई। सत्ति लख्यो तुम कउ भगवान कहो हम सत्त कहो न बनाई॥ ३२६॥

पूर्वक उनको देखकर घर जाने के लिए कहा और साथ ही यह भी कहा कि कृष्ण की कथा कहकर अपने-अपने पतियो का भी उद्धार करो। पुत्र, पौत्र और पतियों के दुःख इस चर्चा से दूर करो और चन्दन की गन्ध देनेवाला कृष्ण नाम ले लेकर अन्य वृक्षो को भी सुगन्धित कर डालो॥ ३२३॥ कृष्ण की अमृत-तुल्य बातो को सुनकर द्विजपत्नियाँ मान गयी और जितना उपदेश कृष्ण ने उनको दिया उतना कोई यति भी उपदेश नही दे सकता। जब इन्होने अपने पतियो से कृष्ण की चर्चा की तो स्थिति यह हो गयी कि द्विज पतियो के मुख काले पड़ गये और इन युवतियो के मुख प्रेम-रस मे लाल हो उठे॥ ३२४॥ स्त्रियो से चर्चा सुन सभी ब्राह्मण पछताने लगे और कहने लगे कि हमको और हमारे वेद-ज्ञान को धिक्कार है, जो गोपगण हमसे माँगने के लिए आये और चले गये। हम अभिमान के समुद्र में डूबे रहे और अवसर चूक जाने पर जाग्रत् हुए। अब तो हम मात्र इसलिए भाग्यशाली है कि कृष्ण के प्रेम मे रँगी ये स्त्रियाँ हमारी पत्नियाँ हैं॥ ३२५॥ अपने-आपको धिक्कारते हुए ब्राह्मणों ने कृष्ण का गुणानुवाद किया और वे कहने लगे कि वेद भी हमें यह बताते है कि कृष्ण सारे लोको के स्वामी हैं। हम तो इस डर के मारे उसके पास नही गए कि हमे राजा कस मार डालेगा। परन्तु, हे स्त्रियो! तुम सबने उस परमात्मा

॥ कबित्तु ॥ पूतना सँघारी त्रिणाव्रत की बिदारी देह दैत अघासुर हूँ की सिरी जाह फारी है। सिला जाहि तारी बक हूँ की चोंच चीर डारी ऐसे भूप पारी जैसे आरी चीर डारी है। राम ह्वै कै दैतन की सैना जिन मारी अरु आपनो बभीछन को दीनी लंका सारी है। ऐसी भाँत दिजन की पतनी उधारी अवतार लै कै साध जैसे प्रिथमी उधारी है ॥३२७॥ (मू०ग्रं०२८५) ॥ स्वैया ॥ बिप्पन की त्रिय की सुनकै कबिराज कह्यो दिज अउर कहीजै। कान्ह कथा अति रोचन जीय बिचार कहो जिह ते फुन जीजै। तौ हस बात कही मुसकाइ पहलै न्रिप ताहि प्रनाम जु कीजै। तौ भगवान कथा अति रोचन वै चित पै हम से सुन लीजै ॥ ३२८ ॥ ॥ स्वैया ॥ सालन अउ अखनी बिरिआ जुज ताहरी अउर पुलाव घने। नुगदी अरु सेवकिआ चिरवे लडुआ अरु सूत भले जु बने। फुन खीर दही अरु दूध के साथ बरे बहु अउर न जात गने। इह खाइ चल्यो भगवान ग्रिहं कहु स्याम कबीसुर भाव भने ॥ ३२९ ॥ ॥ स्वैया ॥ गावत गीत चले ग्रिह को गरुड़ाध्वज जीय मै आनंद पैकै। सोभत स्याम के संगि हली घन स्याम अउ सेत चल्यो

को सत्यस्वरूप मे पहचाना ॥ ३२६ ॥ ॥ कवित्त ॥ जिस कृष्ण ने पूतना का सहार किया, तृणावर्त के शरीर का नाश किया, अघासुर का सिर फोडा, राम के रूप मे अहल्या का उद्धार किया और वकासुर की चोच ऐसे चीर डाली जैसे आरी से चीरा जाता है। जिसने राम होकर दैत्यो की सेना का संहार करके स्वयं विभीषण को सम्पूर्ण लंका दान कर दी, उसी कृष्ण ने अवतार लेकर पृथ्वी का उद्धार करते हुए द्विजपत्नियों का उद्धार किया ॥ ३२७ ॥ ॥ सवैया ॥ विप्रो की स्त्रियो की बातें सुनकर ब्राह्मणो ने उन्हे और सुनाने को कहा। कृष्ण की कथा अतिरोचक है, इसे विचारकर फिर कहो, ताकि हम लोगों में प्राणो का संचार हो सके। वे स्त्रियाँ हँसकर कहने लगी कि पहले उस सम्राट् (कृष्ण) को प्रणाम कीजिए और फिर भगवान श्रीकृष्ण की रोचक कथा हमसे सुनिए ॥ ३२८ ॥ ॥ सवैया ॥ विभिन्न प्रकार से भुना और पका हुआ मांस, पुलाव, बूंदी, सेवई, चिउड़ा, लड्डू, खीर, दही, दूध इत्यादि भोज्य पदार्थ श्रीकृष्ण भगवान खाकर अपने घर की तरफ चल दिये ॥ ३२९ ॥ ॥ सवैया ॥ गीत गाते हुए और आनन्दित होते हुए श्रीकृष्ण घर को चले। उनके साथ हलधर (बलराम) चले और श्वेत व श्याम की जोड़ी शोभायमान होने लगी।

उन सैकै । कान्ह तबै हसिकै मुरली सु बजाइ उठ्यो अपने कर लैकै । ठाढ भई जमना सुनिकै धुनि पउन रह्यो सुनिकै उरझैकै ।। ३३० ।। ।। सवैया ।। रामकली अरु सोरठि सारंग मालसिरी अरु बाजत गउरी । जैतसिरी अरु गोंड मलार बिलावल राग बसै सुभ ठउरी । मानस की कह है गनती सुन होत सुरी असुरी धुन बउरी । सो सुनिकै धुनि स्रउनन मै तरनी हरनी जिम आवत दउरी ।। ३३१ ।। ।। कबित ।। बाजत बसंत अरु भैरव हिंडोल राग बाजत है ललता के साथ ह्वै धनासरी । मालवा कल्यान अरु मालकउस मारू राग बन मै बजावै कान मंगल निभासरी । सुरी अरु आसुरी अउ पंनगी जे हुती तहाँ धुन के सुनत पै न रही सुध जासरी । कहै इउ दासरी सु ऐसी बाजी बासुरी सु मेरे जाने यामै सभ राग को निवासरी ।। ३३२ ।। ।। कबित ।। करुनानिधान बेद कहत बखान याकी बीच तीन लोक फैल रही है सु बासुरी । देवन की कन्या ताकी सुनि धुनि स्रउनन मै धाई धाई आवै तजिकै सुरग बासुरी । ह्वै कर प्रसिन्य रूप राग कौ निहार कह्यो रच्यो है बिधाता इह रागन को बासुरी । रीझे सभ गन

तभी मुस्कुराकर कृष्ण ने अपने हाथ मे लेकर मुरली को बजाना शुरू कर दिया और उसकी ध्वनि सुन यमुना का पानी भी रुक गया तथा चलता हुआ पवन भी उलझन मे पड़ गया ।। ३३० ।। ।। सवैया ।। रामकली, सोरठ, सारग, मालश्री, गौडी, जैतश्री, गौड, मल्हार, विलावल आदि राग मुरली पर बजने लगे । मनुष्य की तो बात छोड़ो, अप्सराएँ एव राक्षसियाँ भी उस ध्वनि को सुनकर बावरी हो गयी । मुरली की ध्वनि को सुनकर युवतियाँ इस प्रकार भागी चली आ रही है, जैसे हिरणियाँ भागी चली आ रही हो ।। ३३१ ।। ।। कवित्त ।। मुरली पर वसन्त, भैरव, हिंडोल, ललित, धनासरी, मालवा, कल्याण, मलकौस, मारू आदि राग कृष्ण वातावरण को मगलमय बनाते हुए वन मे बजा रहे है । तान को सुनकर सुर-असुर और नागकन्याएँ अपने शरीर की सुधि भूल रही है । वे सब ऐसे कह रही है कि बाँसुरी ऐसे बज रही है मानो चारो ओर राग-रागिनियो का ही निवास हो ।। ३३२ ।। ।। कवित्त ।। जिसकी वेद भी व्याख्या करते हैं, उस करुणानिधान की बाँसुरी की ध्वनि तीनो लोको मे फैल रही है । देव-कन्याएँ भी उसकी आवाज को सुनकर स्वर्ग के आवास को छोड भागी चली आ रही है तथा कह रही है कि विधाता ने इन रागो को स्वय बाँसुरी

उडगन भे मगन जब बन उपवन मै बजाई कान बासुरी ।।३३३।।
।। सवैया ।। कान बजावत है मुरली अति आनंद कै मन डेरन आए । ताल बजावत कूदत आवत गोप सभो मिल मगल गाए । आपन ह्वै (मू०ग्रं०२६६) धनठी भगवान तिनो पहि ते बहु नाच नचाए । रैन परी तब आपन आपन सोइ रहै ग्रिह आनंद पाए ।। ३३४ ।।

।। इति स्री दसम सिकध बचित्र नाटके ग्रथे क्रिशनावतारे बिपन की त्रीयन को चित हरि भोजन लेइ उधार करवो बरननं ।।

अथ गोवरधन गिरि कर पर धारबो ।।

।। दोहरा ।। इसी भाँत सो क्रिशन जी कीने दिवस बितीत । हरि पूजा को दिनु अयो गोप बिचारी चीत ।।३३५।।
।। सवैया ।। आयो है इंद्र की पूजा को द्योस सभो मिलि गोपन बात उचारी । भोजन भाँत अनेकन कोरु पंचाम्रित को करो जाइ तयारी । नंद कह्यो जब गोपन सो बिधि अउर चिती मन बीच मुरारी । को बपुरा मघवा हमरी सम पूजन जात जहाँ

के लिए रचा है। सभी गण और तारागण प्रसन्न हो उठे है, जब कृष्ण ने वनो-उपवनो मे बाँसुरी की तान सुनाई ।। ३३३ ।। ।। सवैया ।। कृष्ण अति आनन्दित होकर अपने घर पर आकर बाँसुरी बजाते है और सभी गोप ताल बजाते हुए, कूदते हुए तथा मगलगान गाते आ जाते है। स्वय भगवान उनको प्रेरणा देते है और विभिन्न प्रकार से उनसे नृत्य करवाते है। रात्रि होने पर तब सभी आनन्दित हो अपने-अपने घर मे सो जाते है ।। ३३४ ।।

।। श्री दसम स्कन्ध बचित्र नाटक ग्रथ के कृष्णावतार मे विप्रो की स्त्रियो का चित्त-हरण कर भोजन लेने और उद्धार करने का वर्णन समाप्त ।।

गोवर्धन पर्वत को हाथ पर उठाना

।। दोहा ।। इस प्रकार कृष्ण ने बहुत समय बिताया। इन्द्र की पूजा का दिन आया तो गोपो ने मिलकर विचार-विमर्श किया ।। ३३५ ।।
।। सवैया ।। सभी गोपो ने कहा कि इन्द्र की पूजा का दिन आ गया है। हमें अनेक प्रकार के भोजन तथा पचामृत आदि की तैयारी करनी चाहिए। जब नन्द ने गोपो से यह सब कहा तो कृष्ण ने मन मे और ही विचार किया कि यह विचारा इन्द्र कौन है जिसकी हमारे समान पूजा करने व्रज

ब्रिज नारी ॥ ३३६ ॥ ॥ कबितु ॥ इह बिधि बोल्यो कान किरपा निधान तात काहे के नमित्त तै समिग्री बनाई है। कह्यो ऐसे नंद जो त्रिलोकीपति भाखिअत ताही को बनाई हरि हरि कै सुनाई है। काहे के नमित्त कह्यो बारव त्रिनन काज गउअन की रच्छ को करी अउ होत आई है। कह्यो भगवान ए तो लोग है अजान ब्रिज ईशर ते होत नही मघवा ते गाई है॥ ३३७॥ ॥ कान्ह बाच॥ ॥ सवैया॥ है नही मेघु सुरप्पति हाथ सु तात सुनो अरु लोक सभै रे। भंजन अउ अन भै भगवान सु दैत सभै जन को अरु लै रे। किउ मघवा तुम पूजन जात करो तुम सेव हितं चित कै रे। ध्यान धरो सभ ही मिलकै सभ बातन को तुम को फल दै रे॥ ३३८॥ बासव जग्गयन कै बसि मेघ किधो ब्रहमा इह बात उचारै। लोगन के प्रतिपारन को हरि सूरज मै हुइकै जल डारै। कउतक देखत जीवन को पिख कउतक ह्वै शिव ताहि सँघारै। है बह एक किधो सरता सभ बाहन के जम बाह बिथारै॥ ३३९॥ पाथर पै जल पै नग पै तर पै धर पै अर अउर नरी है। देवन

की नारियाँ जा रही है॥ ३३६॥ ॥ कवित्त॥ कृपा के समुद्र कृष्ण ने कहा कि हे पिताजी! ये सारी सामग्री किसके लिए बनाई गई है? नन्द ने कृष्ण को कहा कि जो त्रिलोकी का पति है, उसी इन्द्र के निमित्त यह सारी सामग्री बनायी गयी है और ऐसा हम वर्षा और घास के लिए करते हैं, जिससे हमेशा से ही गौवों की रक्षा होती चली आई है। श्रीकृष्ण ने कहा कि ये लोग अनजान है, जो यह नही जानते कि यदि व्रज के स्वामी के द्वारा सुरक्षा नही होगी तो इन्द्र से कैसे हो पायेगी॥ ३३७॥ ॥ कृष्ण उवाच॥ ॥ सवैया॥ हे पिता तथा अन्य सभी लोगो! सुन लो कि बादल इन्द्र के हाथ मे नही है। केवल एक भगवान ही, जो कि सदैव अभय है, सबको देता-लेता है। तुम लोग क्यो इतने प्रेम से इन्द्र की पूजा करने जा रहे हो। तुम सब मिलकर ईश्वर का स्मरण करो, वह तुम्हे इसका फल देगा॥ ३३८॥ इन्द्र यज्ञो के वश मे है, ब्रह्मा ने भी ऐसा कहा है। लोगो का पोषण करने के लिए भगवान सूर्य के माध्यम से जल बरसाता है। वह स्वय जीवो की लीला देखता है और इसी लीला के अन्तर्गत शिव जीवो का सहार करते है। वह परमतत्त्व एक नदी के समान है और सब विभिन्न प्रकार की छोटी-छोटी नदियां उसी में से निकली हैं॥ ३३९॥ पत्थर मे, जल मे, पर्वत में, वृक्ष मे, धरती में,

पै अरु दैतन पै कवि स्याम कहै अउ मुरार हरी है। पच्छन पै म्रिगराजन पै म्रिग के गन पै फुन होत खरी है। भेद कह्यो इह बात सभै इनहू किह को कहा पूज करी है ॥ ३४० ॥ तब ही हसिकै हरि बात कही नंद पै हमरी बिनती सुनि लइयै। पूजहु बिप्पन को मुख (मू०ग्रं०२६७) गउअन पूजन जा गिर है तह जइयै। गउअन को पय पीअत है गिर के चढिए मन आनंद पइयै। दान दए तिनकै जस ह्याँ परलोक गए जु दयो सोऊ खइयै ॥ ३४१ ॥ ॥ स्वैया ॥ तब ही भगवान कही पित सो इक बात सुनो तु कहो मम तोसो। पूजहु जाइ सभै गिर कौ तुम इंद्र करै कुप क्या फुन तोसो। मोसो सुपूत भयो तुमरे ग्रिह मार डरो मघवा संग झोसो। रहसि कही पित पाथर की तजहै इह जा हमरी अन मोसो ॥ ३४२ ॥ तात की बात जु नंद सुनी सुभ बात भली सिर ऊपर बाधो। बाको की कै मुरली तन कै धन तीछन मत्त महा सर साधो। स्रउनन मै सुनत्यो इह बात कबुद्ध गी छूट चिरी जिम फाधो। मोहि की बारद ह्वै करि ग्यान निवार दई उमडी जन आँधी ॥ ३४३ ॥ नंद बुलाइकै गोप लए हरि आइस मान सिर ऊपर लीआ।

मनुष्यों में, देवताओं मे, दैत्यो मे वह केवल एक मुरारि हरि ही निवास करता है। पक्षियो मे, मृगो मे, सिंहों मे वही सत्यस्वरूप मे विराजमान है। मैं रहस्य की बात आप सबसे कहता हूँ कि इन सबकी अलग-अलग पूजा करने की बजाय उस एक परमात्मा की पूजा करो ॥ ३४० ॥ कृष्ण ने हँसकर नद से कहा कि आप मेरा एक निवेदन सुन लीजिए। आप ब्राह्मणो, गायो और पर्वत की पूजा करो, क्योकि गायों का दूध हम पीते है और पर्वत पर जाकर हमे आनन्द मिलता है। इनको दान देने से यहाँ यश मिलता है और परलोक में भी सुख मिलता है ॥ ३४१ ॥ ॥ सवैया ॥ तब श्रीकृष्ण ने पिता से यह भी कहा कि आप जाकर पर्वत की पूजा करो, इन्द्र नाराज़ नही होगा। मेरे जैसा सुपुत्र आपके घर में है, मैं इन्द्र को मार डालूँगा। हे पिता ! मै रहस्य की बात कहता हूँ कि पर्वत की पूजा करो और इन्द्र की पूजा का त्याग करो ॥ ३४२ ॥ पुत्र की बात जब नन्द ने सुनी तो इस बात को पल्ले बाँध लिया। तीक्ष्ण बुद्धि के तीर ने उनके मन को वेध दिया। कानो से कृष्ण की बातें सुनते ही कुबुद्धि ऐसे छूट गयी जैसे पकड़ी हुई चिड़िया छूट जाती है। मोह के बादलो को ज्ञान की आँधी ने उड़ा दिया ॥ ३४३ ॥ कृष्ण की बात को मान

पूजहु गउअन अउ मुख बिप्पन भइअन सो इह आइस कीआ। फेर कह्यो हम तउ कह्यो तोसो ग्यान भलो मन मै समझीआ। चित्त दयो सभनो हम सो तिहु लोगन को पति चित्त न कीआ ॥ ३४४ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोप चले उठकै ग्रिह को ब्रिज के पति को फुनि आइस पाई। अच्छत धूप पंचांम्रित दीपक पूजन की सभ भाँत बनाई। लै कुरबे अपनै सभ संग चलै गिर को सभ ढोल बजाई। नंद चल्यो जसुधाऊ चली भगवान चले मुसली संग भाई ॥ ३४५ ॥ नंद चल्यो कुरबे संग लै करि तोर जबै गिरके चलि आयो। गउअन घास चरा हित सो बहु बिप्पन खीर अहार खवायो। आप परोसन लाग जदुप्पति गोप सभै मन मै सुख पायो। बार चड़ाइ लए रथ पै चलकै इह कउतक अउर बनायो ॥ ३४६ ॥ ॥ स्वैया ॥ कउतक एक बिचार जदुप्पति सूरत एक धरी गिरबा की। स्त्रिंग बनाइ धरी नग कै कबि स्याम कहै जह गम्य न का की। भोजन खात प्रतच्छि किधो वह बात लखी न परी कछु वा की। कउतक एक लखै भगवान अउ जो पिखवै अटकै मत ता की ॥ ३४७ ॥

कर नन्द ने सभी गोपो को बुलाकर कहा कि ब्राह्मणों और गायों की पूजा करो। फिर उन्होने कहा कि मैं आप लोगो से इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि मैंने भलीभाँति इस बात को समझ लिया है। मैंने आज तक सब लोगो का तो ध्यान किया परन्तु त्रिलोकी के स्वामी परमात्मा का ध्यान नही किया ॥ ३४४ ॥ ॥ सवैया ॥ व्रज के स्वामी नन्द की आज्ञा पाकर गोप चल पडे और अक्षत, धूप, पंचामृत, दीपक आदि लेकर पूजन का उपक्रम करने लगे। अपने परिवार के लोगो को संग लेकर सब ढोल बजाते हुए पर्वत की ओर चले। नन्द भी, यशोदा, कृष्ण और बलराम भी चल पडे ॥ ३४५ ॥ नन्द परिवार को लेकर चल पड़े और जब पर्वत के समीप आए तो उन्होने गायो को आहार दिया और विप्रो को खीर आदि खिलायी। यदुपति स्वय परोसने लगे और सभी गोप प्रसन्न हो गए। कृष्ण ने सभी बालकों को रथ पर चढ़ा लिया और एक नयी लीला प्रारम्भ कर दी ॥ ३४६ ॥ ॥ सवैया ॥ लीला को मन मे रखते हुए श्रीकृष्ण ने एक बालक की शक्ल पर्वत की बना दी। बालक के सीग बना दिए और उसे ऊँचे पर्वत का प्रतीक बना दिया, जहाँ किसी की पहुँच नही हो सकती। अब वह गिरि रूपी बालक प्रत्यक्ष रूप से भोजन खाने लगा। भगवान स्वयं यह लीला देखने लगे और जो भी इस दृश्य

।। स्वैया ।। तौ भगवान तबै हसिकै सम अंम्रित बात तिनै संग भाखी । भोजन खात दयो हमरो गिर लोक सभै पिखवो तुम भाखी । होइ रहे बिसमै सभ गोप सुनी हरिके मुख ते जब साखी । (मू०ग्रं०२६८) ग्यान जनावर की लई बाज ह्वै ग्वारन कान्ह गई जब चाखी ।। ३४८ ।। अंजल जोर सभै ब्रिज के जन कोटि प्रनाम करै हरि आगे । भूल गई सभ को मघवा सुध कान्ह ही के रस भीतर पागे । सोवत थे जु परे बिखमै सभ ध्यान लगे हरि के जन जागे । अउर गई सुध भूल सभो इक कान्ह ही के रस मै अनुरागे ।। ३४६ ।। ।। स्वैया ।। कान्ह कही सभ को हसिकै मिलि धाम चले जोऊ है हरिता अघ । नंद चल्यो बलभद्र चल्यो जसुधाउ चली नंदलाल बिना नघ । पूज जबै इनहू न करी तब ही कुपिओ इन पै धरता प्रघ । बेदन मद्ध कही इन भीम ते मारि डर्यो छल सो पतवा मघ ।। ३५० ।। ।। स्वैया ।। भू सुत सो लरकै जिनहू नव सात छुडाइ लई बरमंडा । आदि सत्त जुग के मुर फे गड़ तोर दए सभ जिउँ कच बंडा । है करता सभ ही जग को अरु देवनहार इही जुग

को देख रहा था, उसकी मति इसमे ही अटक जा रही है ।। ३४७ ।। ।। सवैया ।। तब भगवान ने हँसकर यह कहा कि सभी देखो, पर्वत हमारा दिया हुआ भोजन खा रहा है । सभी गोप कृष्ण के मुँह से यह सुनकर आश्चर्य में पड़ गये । ग्वालिनो को भी जब कृष्ण की इस लीला का पता लगा तो उन्हे भी ज्ञान हो गया ।। ३४८ ।। हाथ जोडकर सभी बार-बार कृष्ण को प्रणाम करने लगे । सबको इन्द्र भूल गया और सभी कृष्ण के प्रेम मे रँग गये । जो विषयो-विकारो मे सोये हुए थे, वे सभी हरि के रस मे ध्यान लगाकर जग उठे । उनको बाकी सब सुधि भूल गई और वे कृष्ण मे मस्त हो उठे ।। ३४९ ।। ।। सवैया ।। कृष्ण, जो कि सबके पापो का हरण करनेवाले है, ने मुस्कुराकर सबसे कहा कि सभी घर चलो । यशोदा, नन्द, कृष्ण, बलभद्र सभी पाप-विहीन होकर घर चल पड़े । जब इन्होने पूजा नहीं की तो वज्र को धारण करनेवाला इन्द्र क्रोधित हो उठा । वेदो मे इस इन्द्र की शक्ति और छल का विस्तृत वर्णन किया गया है ।। ३५० ।। ।। सवैया ।। जिस (कृष्ण) ने भूमासुर से लडकर सोलह हजार स्त्रियो की मुक्ति कराई । सत्ययुग मे भी जिसने (नरसिंह के रूप मे हिरण्यकशिपु के) किलो को उसी भाँति तोड़ डाला था जिस प्रकार काँच की चूड़ियाँ तोड़ दी जाती है । यही सारे विश्व का कर्ता और पोषक

संडा । लोकन के पति सो मत मंद बिबाद करै मघवा मत लंडा ॥ ३५१ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोपन सौ खिझकै मघवा तजिकै मन आनंद कोप रचे । संगि मेघन जाइ कही बरखो ब्रिज पै रस बीर ही मद्धि गचे । करियो बरखा इतनी उन पै जिह ते फुनि गोप न एक बचे । सभ भैनन भ्रातन तातन पउत्रन तउ अन मारहु साथ चचे ॥ ३५२ ॥ ॥ स्वैया ॥ आइस मान पुंरदर को अपनै सभ मेघन काछ सु काछे । धाइ चले ब्रिज के मरबे कहु घेर दसो दिस ते घन आछे । कोप भरे अर बार भरे बधबे कउ चले चरिआ जोऊ बाछे । छिप्र चले करबे न्रिप कारज छोड़ चले बनता सुत पाछे ॥ ३५३ ॥ दैत संखासुर के मरबे कहु रूपु धर्‌यो जल मै जिन मचछा । सिंध मथ्यो जबही असुरासुर मेर तरै भयो कचछप हुचछा । सो अब कान्ह भयो इह ठउर चरावत है ब्रिज के सभ बचछा । खेल दिखावत है जग को इह है करता सभ जीवनरचछा ॥ ३५४ ॥ आइस मान सभै मघवा हरि के पुर घेरि घने घन गाजै । दामन जिउँ गरजै जन राम के सामुहि रावन दुंदभ बाजै । सो धुन स्रउनण मै सुन गोप दसो दिस कौ डरकै उठ भाजै । आइ परे हरि के

है । इससे मतिमन्द इन्द्र विवाद रचा रहा है ॥ ३५१ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपों से रुष्ट होकर और मन का आनन्द त्यागकर कुपित होकर इन्द्र ने वादलो से कहा कि तुम सब जाकर सम्पूर्ण शक्ति लगाकर व्रज पर बरसो । इतनी वर्षा करो कि एक भी गोप जीवित न बचे और भाई, वहिन, पिता, पुत्र, पौत्र, चाचा सभी नष्ट हो जायँ ॥ ३५२ ॥ ॥ सवैया ॥ इन्द्र की आज्ञा पाकर सभी वादल व्रज को समाप्त करने के लिए उसे चारो ओर से घेरने के लिए चल पड़े । वे क्रोध और जल से भरकर गाय-बछडों का वध करने के लिए चल पड़े । वे अपने बीवी-बच्चो को पीछे छोड़कर देवराज इन्द्र का कार्य करने के लिए शीघ्रता से चल पड़े ॥ ३५३ ॥ शखासुर दैत्य को मारने के लिए जिसने मत्स्य का रूप धारण किया, समुद्र-मथन के के समय जो सुमेरु पर्वत के नीचे कच्छप-रूप से विराजमान हुआ, वही कृष्ण अब व्रज के गाय-बछड़े चरा रहा है और इस प्रकार सबके जीवन की रक्षा करते हुए सबको लीला दिखा रहा है ॥ ३५४ ॥ इन्द्र की आज्ञा मानकर नगर को घेरकर मेघ गर्जन करने लगे । बिजली इस प्रकार कड़क रही थी मानो राम के सम्मुख रावण की दुदुभियाँ बज रही हो । इस ध्वनि को सुनकर गोप दसो दिशाओ मे भाग खड़े हुए और सहायता माँगने के

सभ पाइन आपन जीव सहाइक काजै ।। ३५५ ।। मेघन को डरके हरि सामुहि गोप पुकारत है दुख साँझा । रच्छ करो हमरी (मू०ग्रं०२६६) करुनानिधि ब्रिष्ट भई दिन अउ सत साँझा । एक बची न गऊ पुरकी मरगी दुधरी बछरे अरु बाँझा । अग्रज स्याम के रोवत इउ जिम हीर विना पिखए पति राँझा ।।३५६।। ।। कबितु ।। काली नाथ केसी रिप कउलनैन कउलनाभ कमला के पति इह बिनती सुनि लीजियै । कामरूप कंस के प्रहारी काजकारी प्रभ कामनी के काम के निवारी काम कीजियै । कउलासन पत कुंभ कान्ह के मरइया कालनेम के बधइया ऐसी कीजै जाते जीजियै । कारमा हरन काज साधन करन तुम क्रिपानिध दासन अरज सुनि लीजियै ।।३५७।। ।। स्वैया ।। बूँदन तीरन सी सभ ही कुप कै ब्रिज के पुर पै जब पइया । सोऊ सही न गई किह पै सभ धामन बेध धरा लग गइया । सो पिख गोपन नैनन सो बिनती हरिके अगुआ पहुचइया । कोप भर्यो

लिए श्रीकृष्ण के पैरो पर आ पड़े ।। ३५५ ।। मेघो से डरकर सभी गोप कृष्ण के सम्मुख दुःख से पुकार लगाते हुए कह रहे है कि हे करुणानिधान ! सात दिन और रात से वर्षा हो रही है, हमारी रक्षा कीजिए । नगर की दुधारू गाय, बछड़े और बाँझ गाय भी नही बची । सभी मर गयी है । वे सभी श्याम के सम्मुख इस प्रकार रोने लगे जैसे अपनी प्रेमिका हीर के बिना उसका प्रेमी राँझा रोता है (हीर और राँझा पजाब के दो प्रसिद्ध प्रेमी युगल हो गुज़रे है, जिन्हे वियोग का वहुत कष्ट सहना पड़ा था) ।। ३५६ ।। ।। कवित्त ।। हे कालिय नाग और केशी दैत्य के शत्रु ! कमलनयन, कमलनाभि, कमलापति ! हमारी प्रार्थना सुनिए । तुम कामदेव के समान रूपवान, कंस का नाश करनेवाले, कार्य करनेवाले प्रभु और कामिनियो के काम की तृप्ति करनेवाले हो । आप हमारा भी कार्य कीजिए । आप लक्ष्मीपति, कुम्भासुर को मारनेवाले तथा कालनेमि दैत्य का वध करनेवाले हो । आप हमारे लिए ऐसा कार्य कीजिए, जिनसे हम जीवित रह सके । हे प्रभु ! आप कामनाओ को समाप्त करनेवाले, सर्व कार्यो के साधक हो । कृपा कर हमारी प्रार्थना सुनिए ।। ३५७ ।। ।। सवैया ।। तीरो के समान कुपित होकर जब बूँदे व्रज की धरती पर पड़ने लगी तो वे किसी से सहन न हो सकी, क्योकि वे घरो को छेदकर धरती तक पहुँच रही थी । गोपो ने यह अपनी आँखो से देखा और कृष्ण के पास यह समाचार पहुँचाया कि हे कृष्ण ! इन्द्र हम पर क्रुद्ध हो गया

हम पै मघवा हमरी तुम रच्छ करो उठि सइया ॥ ३५८ ॥
॥ सवैया ॥ ईसत है न कहूँ अरणोदिति घेरि दसो दिस ते घन आवैं । कोप भरे जनु केहरि गाजत दामन दाँत निकास डरावैं । गोपन जाइ करी बिनती हरिपै सुनियै हरि जो तुम भावैं । सिंघ के देखत सिंघन स्यार कहै कुप कै जमलोक पठावैं ॥३५६॥
॥ सवैया ॥ कोप भरे हमरे पुर मै बहु मेघन के इह ठाट ठटे । जिह को गज बाहन लोक कहै जिन पब्बन के पर कोप कटे । तुम हो करता सभ ही जग के तुम ही सिर रावन काट सटे । तुम स्यों फुनि देखित गोपन को घनघोर डरावत कोप लटे ॥ ३६० ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह बडो सुन लोक तुमै फुन जाम सु जाप करै तुह आठो । मीर हुतासन भूम धराधर थापि कर्‌यो तुमही प्रभ काठो । बेद दए करकै तुमही जग मे छिन तात भयो जब घाठो । सिंध मथ्यो तुमही त्रिय ह्वैकर दीम सुरासुर अंम्रित बाँटो ॥ ३६१ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपन फेर कही मुख ते बिन तै हमरो कोऊ अउर न आडा । मेघन मार बिथार डरो कुपि बालक मूरत जिउँ तुम गाडा । मेघन को

है, आप हमारी रक्षा कीजिए ॥ ३५८ ॥ ॥ सवैया ॥ दसो दिशाओ से बादल घिरकर आ रहे है और सूर्य कही दिखाई नही दे रहा है। बादल शेर के समान गरज रहे है और बिजली दाँत दिखाकर डरा रही है। गोपो ने जाकर कृष्ण से प्रार्थना की कि हे कृष्ण, जो तुम्हे अच्छा लगे वह करो, क्योकि शेर को शेर का मुकाबला करना चाहिए और कुपित होकर गीदडो को यमलोक नही पहुँचाना चाहिए ॥ ३५९ ॥ ॥ सवैया ॥ हमारे नगर मे क्रोधित होकर मेघो के झुड टूट पड़े है। ये मेघ उस इन्द्र के भेजे हुए है जो ऐरावत हाथी पर सवारी करता है और जिसने पर्वतो के पख काट डाले है, परन्तु तुम तो सारे जगत के कर्ता हो और तुम्ही ने रावण के सिरो को काटा था। क्रोध की ज्वालाएँ सबको भयभीत कर रही हैं, परन्तु गोपो के लिए तुमसे बढकर अन्य कौन है ॥ ३६० ॥ ॥ सवैया ॥ हे कृष्ण ! तुम बड़े हो और लोग आठो प्रहर तुम्हारा जाप करते हैं। तुम्ही ने सम्राटो, अग्नि, भूमि, पर्वत एव वृक्षो आदि की स्थापना की है। जब-जब ससार मे ज्ञान का विनाश हुआ है, तो तुम्ही ने वेद-ज्ञान लोगो को दिया है। तुम्ही ने समुद्र का मथन किया और तुम्ही ने मोहिनी रूप धारण कर सुरों और असुरो मे अमृत बांटा ॥ ३६१ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपो ने पुनः कहा कि हे कृष्ण ! तुम्हारे सिवा हमारा कोई आश्रय नही है।

पिख रूप भयानक बहुतु डरै फुन जीउ असाडा । कान्ह अबै पुसतीन ह्वै आप उतार डरो सभ गोपन जाडा ॥३६२॥ ॥ स्वैया ॥ आइस पाइ पुरंदर को घनघोर घटा चहूँ ओर ते आवै । (मू०ग्रं०३००) कै कर क्रुद्ध किधो मन मद्धि ब्रिज ऊपर आनकै बहु बल पावै । अउ अति ही चपला चमकै बहु बूँदन तीरन सी बरखावै । गोप कहे हम ते भई चूक सु याते हमै गरजै औ डरावै ॥ ३६३ ॥ ॥ सवैया ॥ आज भयो उतपात बडो डर मान सभै हरि पास पुकारे । कोप कर्यो हम पै मघवा तिह ते ब्रिज पै बरखे घन भारे । भच्छि भख्यो इह को तुमहू तिह ते ब्रिज के जन कोप सँघारे । रच्छक हो सभ ही जग के तुम रच्छ करो हमरी रखवारे ॥ ३६४ ॥ होइ क्रिपाल अबै भगवान क्रिपा करि कै इन मो तुम काढो । कोप कर्यो हम पै मघवा दिन सात इहा बरख्यो घन गाढो । भ्रात बलो इनि रच्छन को तब ही करि कोप भयो उठ ठाढो । जीव गयो घट मेघन को सभ गोपन के मन आनंद बाढो ॥ ३६५ ॥

मेघों की मार से हम लोग वैसे ही डर रहे है, जैसे बालक भयानक मूर्ति देखकर डर उठता है । हमारा हृदय मेघो के भयानक रूप को देखकर बहुत भयभीत हो रहा है । हे कृष्ण ! आप तैयार होकर गोपों के कष्ट को दूर कर दीजिए ॥ ३६२ ॥ ॥ सवैया ॥ इन्द्र की आज्ञा पाकर चारो दिशाओं से घनघोर दिशाएँ घिरकर आ रही है और मन मे क्रोधित होकर व्रज के ऊपर पहुँचकर और जोर से शक्ति-प्रदर्शन कर रही है । विद्युत् चमक रही है और पानी की बूंदे तीरो की तरह बरस रही है । गोप कहने लगे कि हम लोगो से (पूजा न करने की) भूल हो गयी है, इसीलिए बादल गरज रहे है ॥ ३६३ ॥ ॥ सवैया ॥ आज बहुत बड़ा उपद्रव हो गया है, इसलिए सभी भयभीत होकर कृष्ण को पुकारकर कहने लगे कि इन्द्र हम पर कुपित हो गया है, इसलिए व्रज पर घनघोर वर्षा हो रही है । इन्द्र की पूजा की सामग्री आपने खायी है, इसलिए व्रज के लोगो का कुपित होकर संहार कर रहा है । हे प्रभु ! तुम सबके रखवाले हो, हमारी भी रक्षा करो ॥ ३६४ ॥ हे भगवान ! कृपा करके इन बादलो से हमारा उद्धार कीजिए । इन्द्र हम पर क्रोधित हो गया है और सात दिन से यहाँ घनघोर वर्षा हो रही है । तब क्रुद्ध होकर बलराम इनकी रक्षा करने के लिए उठ खड़े हुए और इन्हें उठते हुए देखकर एक ओर मेघो के प्राण सूखने लगे तथा दूसरी ओर गोपो के मन मे आनन्द बढ़ने लगा ॥ ३६५ ॥

॥ सवैया ॥ गोपन की सुनिकै बिनती हरि गोप सभै अपने कर जाणे। मेघन के बधबे कहु कान्ह चल्यो उठिकै करता जोऊ ताणे। ता छबि के जस उच्च महाँ कबि ने अपने मन मै पहचाणे। इउ चल ग्यो जिम सिंघ म्रिगी पिख आइ है जान किधो मुहि डाणे॥ ३६६॥ ॥ सवैया॥ मेघन के बध काज चल्यो भगवान किधो रस भीतर रत्ता। राम भयो जुग तीसर मधि मर्‌यो तिन रावन कै रन अत्ता। अउध के बीच बधू बरधे कहु कोप कै बोलन ते जिहु सत्ता। गोधन गोपन रच्छन काज तर्‌यो तिह को गज जिउँ मद मत्ता॥ ३६७॥ ॥ सवैया॥ करबे कहु रच्छ सु गोपन की बर पूट लयो नग कोप हथा। तनको न कर्‌यो बल रंचक ताहु कर्‌यो जु हुतो कर बीच जथा। न चली तिन की किछु गोपन पै कबि स्याम कहै गज जाहि रथा। मुखि न्याइ खिसाइ चल्यो ग्रिह पै इह बीच चली जग के सु कथा॥ ३६८॥ ॥ सवैया॥ नंद को नंद बडो सुखकंद रिपआर सुरिंद सबुद्धि बिसारद। आनन चंद प्रभा कहु मंद कहै कबि स्याम जपै जिह नारद। ता गिर कोप उठाइ लयो

॥ सवैया ॥ गोपो की प्रार्थना सुनकर कृष्ण ने सब गोपो को अपने हाथ के इशारे से बुलाया। मेघो का वध करने के लिए शक्तिशाली श्रीकृष्ण चले। इस छवि को अपने मन मे पहचानते हुए कवि कहता है कि श्रीकृष्ण ऐसे चले जैसे मृगो को देखकर मुँह फैलाकर दहाडता हुआ सिंह चलता है॥ ३६६॥ ॥ सवैया॥ कुद्ध होकर श्रीकृष्ण मेघो को नष्ट करने के लिए चले। इन्होने ही त्रेतायुग मे राम बनकर रावण का नाश किया था। अवध मे इन्होने ही सीता-समेत सत्तापूर्वक राज्य किया था। वही श्रीकृष्ण मस्त हाथी की तरह आज गोपो और गायो की रक्षा करने के लिए चल पड़े॥ ३६७॥ ॥ सवैया॥ गोपों की रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण ने क्रोधित होकर पर्वत को उखाड़कर हाथ पर रख लिया। ऐसा करने मे उनका रच मात्र भी बल नही लगा। इन्द्र की कोई भी शक्ति गोपो पर न चल सकी और वह मुख नीचा किए हुए खिसियाकर अपने घर की ओर चल दिया। श्रीकृष्ण के प्रताप की कथा सारे जगत मे चल पड़ी॥ ३६८॥ ॥ सवैया॥ नन्द का पुत्र श्रीकृष्ण सबको सुख देनेवाला, इन्द्र का शत्रु, सद्बुद्धि तथा सर्वकलाओं मे विशारद प्रभु का मुख चन्द्रमा के समान मन्द-मन्द प्रकाश देता रहता है और कवि श्याम का कथन है कि नारद भी उसी श्रीकृष्ण का स्मरण करते है, जो साधुओ के दु ख-दरिद्र का

जोऊ साधन को हरता दुख दारद। मेघ परेउ पर्यो न कछू पछुताइ गए ग्रिह को उठ बारद ॥ ३६९ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह उपार लयो कर मो गिर एक परी नहि बूँद सु पानी। फेर कही हसिकै मुख ते हरि को मघवा जु भयो मुह सानी। (मू०ग्रं०३०१) मार डर्यो मुर मै मधिकीटभ मार्यो हमै मघवा पत मानी। गोपन मै भगवान कही सोऊ फैल परी जग बीच कहानी ॥ ३७० ॥ गोपन की करबे कहु रच्छ सतक्रित पै हरि जी जब कोपे। इउ गिरकै तर भ्यो उठि ठाढि मनै पग कै पग के हरि रोपे। जिउँ जुग अंत मै अंनक ह्वै करि जीवन के सभ के उर घोपे। जिउँ जन को मन होत है लोप तिसी बिध मेघ भए सभ लोपे ॥ ३७१ ॥ होइ सतक्रित ऊपर पसु को राख लई सभ गोप दफा। तिन मेघ बिदार दए छिन मै जिन दैत करै सभ एक गफा। करि कउतक पं रिपु टार दए बिनही धरए सर स्याम जफा। सभ गोपन की करबै कहु रच्छ सु सक्रन लीन लपेट

नाश करनेवाला है, उसी श्रीकृष्ण ने क्रोधित होकर पर्वत को उठा लिया और मेघो का प्रभाव नीचे लोगों पर कुछ भी न पडा और इस प्रकार पछताकर बादल वापस अपने घरो को लौट गये ॥ ३६९ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने पर्वत को उखाडकर हाथ मे ले लिया और पानी की एक भी बूंद धरती पर नही पड़ी। फिर कृष्ण ने हँसकर कहा कि ये इन्द्र कौन है जो मेरा मुकाबला करेगा। मैंने मधु-कैटभ का भी वध कर डाला था और यह इन्द्र मुझे ही मारने के लिए चला था। इस प्रकार गोपो के बीच जो भगवान ने वचन कहे वे कहानी बनकर सारे संसार मे फैल गये ॥ ३७० ॥ गोपो की रक्षा करने के लिए जब कृष्ण इन्द्र पर कुपित हुए तब वह इस प्रकार गिरकर उठा जैसे किसी का पैर फिसल जाने से कोई गिरकर उठता है, अथवा युग के अन्त मे सभी जीव-सृष्टि समाप्त होकर पुनः धीरे-धीरे नयी सृष्टि पैदा होती है; अथवा जैसे सामान्य आदमी का मन कभी नीचे गिरता है और कभी बहुत ऊँची उड़ानें लेता है, इसी प्रकार सभी मेघ लुप्त हो गए ॥ ३७१ ॥ इन्द्र को नीचा दिखाते हुए सभी गोपो और पशुओं को नष्ट होने से श्रीकृष्ण ने बचा लिया। जैसे कोई दैत्य एक ही वार मे किसी को खा जाता है, उसी प्रकार क्षण भर मे सभी मेघ नष्ट कर दिये गए। श्रीकृष्ण ने अपनी लीला से सभी शत्रुओं को खदेड़ दिया और सभी श्याम का आलिंगन करने लगे तथा

सफा ॥ ३७२ ॥ ॥ स्वैया ॥ जु लई सभ मेघ लपेट सभा अरु लीनो है पब्ब उपार जबै। इह रंचक सो इह है गरुओ गिर चिंत करी मन बीच सभै। इह दैतन को मरता करता सुख है दिविया जिय दान अबै। इह को तुम ध्यान धरो सभ ही नहि ध्यान धरो तुम अउर कबै ॥ ३७३ ॥ ॥ स्वैया ॥ सभ मेघ गए घट के जब ही तब ही हरखे फुन गोप सभै। इह भाँत लगे कहने मुख ते भगवान दयो हम दान अभै। मघवा जु करी कुप दउर हमू पर सो तिह को नही बेर लभै। अब कान्ह प्रताप ते है घट बादर एक न दीसत बीच नभै ॥ ३७४ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोप कहै सभही मुख ते इह कान्ह बली बर है बल मै। जिन कूद किलै सत मोर मर्यो जिन जुद्ध संखासुर सो जल मै। इह है करता सभ ही जग को अरु फैल रह्यो जल अउ थल मै। सोऊ आइ प्रतच्छि भयो ब्रिज मै जोऊ जोग जुतो रहै ओझल मै ॥ ३७५ ॥ मोर मर्यो जिन कूद किलै सत सिध जरा जिह सैन सरी। नरकासुर जाहि कर्यो रकसी बिरथी गज की जिह रच्छ करी। जिह

इस प्रकार गोपो की रक्षा करने के लिए इन्द्र ने अपनी माया को समेट लिया ॥ ३७२ ॥ ॥ सवैया ॥ जब मेघ चले गये और इन्होने पर्वत को उखाड़ लिया, तो मन की चिन्ता का निवारण करते हुए वह पर्वत इन्हे अत्यन्त हलका-सा महसूस हुआ। श्रीकृष्ण दैत्यो को मारनेवाले, सुख को देने वाले और जीवनदान करनेवाले है। सबको अन्य सबका ध्यान छोड़ इनका ही ध्यान करना चाहिए ॥ ३७३ ॥ ॥ सवैया ॥ जब मेघ कम होकर चले गए, तब सभी गोप प्रसन्न हो उठे और कहने लगे कि भगावन ने हम सबको अभयदान दिया। इन्द्र ने क्रोधित होकर हम लोगों पर चढ़ाई की थी परन्तु वह अब दिखाई नही देता है और कृष्ण के प्रताप से नभ मे एक भी बादल नही है ॥ ३७४ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी गोप कहने लगे कि कृष्ण अत्यन्त बलशाली हैं। जिसने किले में कूद मुर और जल मे शंखासुर का वध किया था, वह ही सारे जग का कर्ता है और सारे जल-स्थल मे व्याप्त है। जो पहले अप्रत्यक्ष रूप से अनुभव होता था, वही अब प्रत्यक्ष होकर व्रज में आ गया है ॥ ३७५ ॥ जिसने मूर नामक दैत्य को किले मे कूदकर मारा और जिसने जरासंध की सेना का नाश किया, जिसने नरकासुर को नष्ट किया और गज की ग्राह से रक्षा की, जिसने द्रौपदी की लज्जा रखी और जिसके चरण-स्पर्श से शिला बनी

राख लई पति पै द्रुपती सिल त्रा लग तिउ पग पाग परी । अति कोपत मेघन अउ मघवा इह राख लई नंदलाल धरी ॥ ३७६ ॥ ॥ स्वैया ॥ मघवा जिह फेरि दई प्रतना जिह दैत मरै इह कान्ह बली । जिहको जन नाम जपै मन मै जिह को फुन भ्रात है बीर हली । जिह ते सभ गोपन की बिपता हरि के कुप ते छिन माहि टली । तिह को लख कै उपमा भगवान करै (मू०ग्रं० ३०२) जिहको सुत कउल कली ॥ ३७७ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह उपार लयो गरुओ गिर धाम खिसाइ गयो मघवा । सो उपज्यो ब्रिज भूम बिखै जोऊ तीसर जुग्ग भयो रघुवा । अब कउतकि लोक दिखावन को जग मै फुन रूप धर्यो लघवा । थन ऐंच हनी छिन मै पुतना हरिनाम्र के लेत हरे अघवा ॥ ३७८ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह बली प्रगट्यो ब्रिज मै जिन गोपन के दुख काट सटे । सुख साधन के प्रगटे तब ही दुख दैंतन के सुन नाम घटे । इह है करता सभ ही जग को बलि को अरु इंद्रहि लोक बटे । तिह नाम के लेत किधो मुख ते लट जात सभै तन दोख लटे ॥ ३७९ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह बली प्रगट्यो पुतना जिन

अहल्या का उद्धार हुआ, उस श्रीकृष्ण ने अत्यन्त कुपित हो रहे मेघों और इन्द्र से हमारी रक्षा कर ली ॥ ३७६ ॥ ॥ सवैया ॥ जिसने इन्द्र को दौड़ा दिया । पूतना तथा अन्य दैत्यों को मार दिया, वह श्रीकृष्ण है । वह श्रीकृष्ण ही है, जिसके नाम को मन में सभी स्मरण करते है और जिसका भाई वीर हलधर है । उसी कृष्ण के कारण गोपों की विपदा क्षण भर मे समाप्त हो गयी और यह उसी भगवान की उपमा है जो मामूली-सी कलियो को बड़े-वड़े कमल के फूलो मे बदल देता है अर्थात् जन सामान्य को वहुत ऊँचा उठा देता है ॥ ३७७ ॥ ॥ सवैया ॥ इधर कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठा लिया, उधर इन्द्र मन-ही-मन शर्मिन्दा हो कहने लगा कि जो तीसरे युग मे राम था, वही अव व्रजभूमि मे अवतरित हुआ और उसने जग को लीला दिखाने के लिए छोटा-सा मानव-रूप धारण किया है । उसी ने क्षण भर मे पूतना को स्तन खीचकर मार डाला और क्षण भर मे अघासुर नामक दैत्य का नाश कर दिया ॥ ३७८ ॥ ॥ सवैया ॥ महाबली कृष्ण व्रज में पैदा हुआ जिसने गोपों के सब दुःख दूर कर दिए । उसके प्रकट होते ही साधुजनो के सुख वढ़ गए और दैत्यों द्वारा दिये जा रहे दुःख कम हो गये । यही सारे जग का कर्ता है और राजा वालि तथा इन्द्र का गर्व दूर करनेवाला है । इसका नाम लेने

ार डरी न्रिप कंस पठी । इन ही रिपु मार डर्यो सु त्रिनाव्रत
ो जन सो इह थित्त छठी । सभ जापु जपै इह को मन मै
ाभ गोप कहै इह अत्त हठी । अति ही प्रतना फुन मेघन
ी इनहू करि दी छिन माहि मठी ॥ ३८० ॥ ॥ स्वैया ॥ गोप
है इह साधन के दुख दूर करै मन माहि गडै । इह है बलवान
डो प्रगट्यो सोऊ को इह सो छिन आइ अडै । सभ लोक कहै
ुन जापत या कबि स्याम कहै भगवान बडै । तिन मो छलही
छिन मै इह तो जिनके मन मै जररा कु जडै ॥ ३८१ ॥
॥ स्वैया ॥ मेघ गए पछताइ ग्रिहं कहु गोपन के मन आनंद बाढे ।
वै इकठै सु चले ग्रिह को सभ आइ भए ग्रिह भीतर ठाढे ।
ाइ लगे कहने त्रिय सो इनही छिन मै मघवा कुप काढे ।
त्ति लह्यो भगवान हमै इनही हमरे सभ ही दुख काढे ॥३८२॥
॥ स्वैया ॥ कोप भरे पत लोकहि के दल आ बरखे ठट साज
णे । भगवान जू ठाढ भयो करि लै गिर पै करि कै कुछहूँ न
ाणे । अत ता छबि के जस उच महा कबि स्याम किधो इह

दुःख के समूह नष्ट हो जाते हैं ॥ ३७९ ॥ ॥ सवैया ॥ महावली
ृष्ण ने कस द्वारा भेजी हुई पूतना को मार डाला । इसी ने तृणावर्त
ामक शत्रु को मार डाला । सभी इसका स्मरण करो और गोप भी यह
हते है कि यह बहुत ही हठी है अर्थात् जिस काम को करने का निश्चय
र लेता है उसे पूरा करके छोडता है । पुन इसी श्रीकृष्ण ने मेघो की
ाक्ति को ठडा कर दिया ॥ ३८० ॥ ॥ सवैया ॥ गोप कहते है कि साधु
ानो के दु.ख दूर करने से यह सबके मन मे स्थित हो गया है । यह महा
लशाली है और कोई ऐसा नही है, जो इससे टक्कर ले सकता हो । सब
ोग उसी का जाप करते है तथा कवि श्याम का कथन है कि श्री भगवान
बसे बड़े है । जिसने जरा-सा भी मन से इनको देखा, वह अवश्य ही क्षण
र मे इनकी शक्ति और रूप द्वारा छला गया ॥ ३८१ ॥ ॥ सवैया ॥ मेघ
श्चात्ताप करते हुए और गोप आनन्दित होते हुए अपने-अपने घरो को
ले गए । सभी गोप इकट्ठे हो घर के भीतर आ खड़े हुए और स्त्रियो
कहने लगे कि इन्ही श्रीकृष्ण ने क्रोधित हो क्षण भर मे इन्द्र को दौडा
देया । हम सत्य कह रहे है— इन श्री भगवान की कृपा से ही हम सबके
ु:ख नष्ट हुए ॥ ३८२ ॥ ॥ सवैया ॥ गोप पुन. कहने लगे कि क्रोधित इन्द्र
े मेघदलो ने आकर घनघोर वर्षा की और श्री भगवान पर्वतो को हाथ पर
उठाकर बिना किसी भय के खड़े हो गये । इस छवि को कवि श्याम ने

भात भणे। जिमु बीर बडो कर सिप्पर लै कछु कै न गनै पुनि तीर घणे ॥ ३८३ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोप कहै इह साधन को दुख दूर करै मन माहि गडै। इह है बलवान बडो प्रगट्यो सोऊ को इह सो छिन आइ अडै। सभ लोग कहै फुन थापत या कबि स्याम कहै भगवान बडै। तिह मो छलही छिनमै इह ते जिनके मन मै जरा कु जडै ॥ ३८४ ॥ ॥ स्वैया ॥ कर कोप निवार दए मघवा दल कान्ह बडे बरबीर ब्रती। जिम कोप जलं (मू०ग्रं०३०३) धर ईस मर्‍यो जिम चंड चमुंडहि सैन हती। पछुताइ गयो मघवा ग्रिह को न रही तिहकी पति एक रती। इम मेघ बिदार दए हरि जी जिम मोहि निवारत कोप जती ॥ ३८५ ॥ ॥ स्वैया ॥ कुप कै तिन मेघ बिदार दए जिन राख लयो जलभीतर हाथी। जाहि सिला लगि पाइ तरी जिह राख लई द्रुपती सुअनाथी। बैर करै जोऊ पै इह सो सभ गोप कहै इह ताहि असाथी। जो हित सो चित कै इह की फुन सेब करै तिह को इह साथी ॥ ३८६ ॥ ॥ सवैया ॥ मेघन को तबही क्रिशनं दल खातर ऊपरि ना कछु आँदा। कोप

इस प्रकार कहा है कि कृष्ण ऐसे खड़े थे मानो कोई बडा वीर ढाल लेकर खडा हो और बाण-वर्षा की परवाह न कर रहा हो ॥ ३८३ ॥ ॥ सवैया ॥ गोप कहने लगे कि इन्होने साधुओं के दुःख को दूर कर दिया है अतः ये सबके मन मे बस गए है। ये महा बलवान रूप मे प्रकट हुए हैं और कोई ऐसा नही है जो इनके सामने अड़ सकता हो। जिसका मन ज़रा-सा भी इनमे लगा वह अवश्य ही इनकी रूप-शक्ति और सौन्दर्य द्वारा छला गया ॥ ३८४ ॥ ॥ सवैया ॥ महाबली कृष्ण ने इन्द्र के दल को उसी प्रकार दौड़ा दिया, जिस प्रकार शिव ने जलधर का और देवी ने चंड-मुंड की सेना का नाश कर दिया था। इन्द्र पश्चात्ताप करता अपने घर को चला गया और उसका ज़रा-सा भी सम्मान नही बचा। कृष्ण ने मेघो का नाश इस प्रकार कर दिया जैसे कोई बड़ा यति शीघ्र ही मोह का नाश कर देता है ॥ ३८५ ॥ ॥ सवैया ॥ जिस भगवान ने जल के भीतर गज की रक्षा की उसी ने क्रोधित होकर मेघो का नाश कर दिया। जिसने अपने पाँव से शिला रूपी अहल्या को तार दिया, जिसने द्रौपदी की रक्षा की, उस श्रीकृष्ण से जो कोई शत्रुता करेगा, गोप कहने लगे कि यह उन सबका साथ नही देगा और जो प्रेमपूर्वक चित्त लगा उसकी सेवा करेगा यह श्रीकृष्ण उसका साथी होगा ॥ ३८६ ॥ ॥ सवैया ॥ मेघ कृष्ण के दल के

कर्यो अति ही मघवा न चल्यो तिहसो कछु ताहि बसाँदा। ओर चलै किह को तिह सो कहि है सभही जिसको जगु बाँदा। मूँड निवाइ मनै दुख पाइ गयो मघवा उठि धामि खिसाँदा ॥ ३८७ ॥ ॥ सवैया ॥ सक्र गयो पछुताइ ग्रिहं कह फोर दई जब कान्ह अनी। बरखा करि कोप करी ब्रिज पै सु कछू हरि कै नहि एक गनी। फुन ता छबि की अति ही उपमा कबि स्याम किधो इह भाँत भनी। पछुताइ गयो पत लोकन को जिम लूट लए अहि सीस मनी ॥ ३८८ ॥ ॥ सवैया ॥ जाहि न जानत भेद मुनी मनि भाइह जापन को इह जापी। राज दयो इनही बल को इनही कबि स्याम धरा सभ थापी। मारत है दिन थोरन मै रिप गोप कहै इह कान्ह प्रतापी। कारन याहि धरी इह मूरति मारन को जग के सभ पापी ॥ ३८९ ॥ ॥ सवैया ॥ करि कै जिह सो छल पै चतुरानन चोर लई सभ गोप दफा। तिन कउतकि देखन कारन को फुनि राखि रह्यो वह बीच खफा। कान्ह बिना कुपए उह सो सु करे बिनही सर दीन जफा। छिन मद्धि

ऊपर कुछ न कर सके। इन्द्र ने क्रोध तो बहुत किया, परन्तु उसके वश मे जो कुछ था उसका कुछ प्रभाव न हो सका। उस पर भला किसका ज़ोर चल सकता है जिसका सारा जग सेवक हो। अत: सिर नीचा किए दु:खी मन से खिसियाता हुआ इन्द्र अपने घर चला गया ॥ ३८७ ॥ ॥ सवैया ॥ जब कृष्ण ने इन्द्र के गर्व को चूर कर दिया तो वह पछताता हुआ अपने घर चला गया। उसने कुपित हो व्रज पर वर्षा की, परन्तु श्रीकृष्ण ने उसे कुछ भी नही समझा। उसके जाने की उपमा को कवि श्याम ने बताते हुए कहा है कि वह इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ गया जैसे मणि लूट लिये जाने पर सर्प निस्तेज होकर जाता है ॥ ३८८ ॥ ॥ सवैया ॥ जिसका रहस्य मुनिगण भी नही जानते है और जिसका भेद सब प्रकार के जाप-मन्त्र इत्यादि भी नही पा सकते है, उसी श्रीकृष्ण ने राजा बलि को राज दिया था और धरती की स्थापना की थी। गोप कहने लगे कि थोड़े ही दिनो मे यह प्रतापी कृष्ण सभी शत्रुओ का नाश कर देगा क्योंकि जगत के पापियो को मारने के लिए ही इन्होने अवतार धारण किया है ॥ ३८९ ॥ ॥ सवैया ॥ जिससे छल करके ब्रह्मा ने गोपो को चुरा लिया था और इनकी लीला देखने के लिए इन्हे गुफा मे छिपा लिया था। कृष्ण ने उससे भी रुष्ट हुए बिना ही उसको आश्चर्यचकित कर दिया

बनाइ लए बछुरे सभ गोपन की उनही सी सफा ॥ ३९० ॥ कान्ह उपार धर्यो करपै गिरता तरि गोप निकार सभै । बकई बक अउर गडासुर त्रिनाव्रत बीर बधे छिन बीच तबै । जिन काली को नाथ लयो छिन भीतर ध्यान न छाडहु वाहि कबै । सभ संत सुनो सुभ कान्ह कथा इक अउर कथा सुन लेहु अबै ॥३९१॥ ॥ गोप बाच नंद जू सो ॥ ॥ स्वैया ॥ नंद कै अग्रज कान्ह पराक्रम गोपन जाइ कह्यो सु सभै । दैत अघासुर अउर त्रिनाव्रत याहि बध्यो उड बीच नभै । फुन मार डरी बकई सभ गोपन दान दयो इह कान्ह अभै । सुनिऐ पति कोट उपाव करो (मू०ग्रं०३०४) कोऊ पै इह सो सुत नाहि लभै ॥ ३९२ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपन की बिनती सुनिऐ पति ध्यान धरै इह को रण गामी । ध्यान धरै इह को मुन ईशर ध्यान धरै इह काइर कामी । ध्यान धरै इहको सु त्रिया सभ ध्यान धरै इह देखन बामी । सत्ति लख्यो हमकै करता जग सत्ति कह्यो मत कै नहि खामी ॥ ३९३ ॥ ॥ सवैया ॥ है भगवान बली प्रगट्यो सभ गोप कहै पुतना इन मारी । राज

और क्षण भर मे उसी प्रकार के गोप और बछड़ो का सृजन कर लिया ॥ ३९० ॥ कृष्ण ने जब पर्वत को उखाडकर पकड लिया तो सब गोपो को पर्वत के नीचे बुला लिया । इसी कृष्ण ने बकासुर, गजासुर, तृणावर्त आदि वीरो का वध किया, जिसने कालिय नाग को नाथा उस श्रीकृष्ण का ध्यान कभी भी मन से विस्मृत नही करना चाहिए । सब सन्तो ने श्रीकृष्ण की शुभ कथा सुनी । अब एक और कथा को सुनिए ॥ ३९१॥ ॥ गोप उवाच नन्द जी के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण के अग्रज और कृष्ण का पराक्रम गोपो ने जाकर नन्द से कहा और उसे बताया कि कृष्ण ने अघासुर और तृणावर्त दैत्य को नभ मे उड़कर मार डाला । पुनः इसने बकासुर को मारकर गोपों को अभयदान दिया । हे गोपपति ! चाहे कितना ही उपाय किया जाय, परन्तु ऐसा पुत्र प्राप्त नही हो सकता ॥ ३९२ ॥ ॥ सवैया ॥ हे नन्द ! हम यह कह रहे है कि इसी श्रीकृष्ण का ध्यान योद्धा किया करते है । मुनि, शिव, सामान्य व्यक्ति, कामी व्यक्ति आदि सभी इसी का ध्यान करते है । सभी स्त्रियाँ भी इसी का ध्यान करती है । जग ने इसे कर्ता माना है तो सत्य ही माना है, इसमे कोई भी गलती नही है ॥ ३९३ ॥ ॥ सवैया ॥ इस बली भगवान ने पूतना का नाश किया है । इन्ही ने रावण का सहार किया है और

भभीछन याहि दयो इनही कुप रावन दैत सँघारी । रच्छ करी प्रहलादहि की इन ही हरनाखश की उर फारी । नंद सुनो पत लोकन कै इनही हमरी अब देह उबारी ।। ३९४ ।। ।। सवैया ।। है सभ लोगन को करता ब्रिज भीत रहै करता इह लीला । सिक्खयन को बरता हरि है इह साधन को हरिता तन हीला । राख लई इनही सिय की पति राखि लई ब्रिय पारथ सीला । गोप कहै पत सो सुनिऐ इह है क्रिशनं बरबीर हठीला ।। ३९५ ।। ।। स्वैया ।। दिन बीत गए चक ए गिर के हरि जी बछरे संग लै बन जावै । जिउँ धर मूरति घासु चुगै भगवान महाँ मन मै सुख पावै । लै मुरली अपने कर मै कर भाव घने हित साथ बजावै । मोहि रहै जु सुनै पतनी सुर मोहि रहै धुनि जो सुन पावै ।। ३९६ ।। कुप के जिन बालि मर्‍यो छिन मै अरु रावन की जिन सैन मरी है । जाहि भभीछन राज दयो छिन मै जिह की तिह लंक करी है । मुर मारि दयो घटका न करी रिप जा सिय की जिय पीर हरी है । सो ब्रिज भूमि बिखै भगवान सु गउअन के मिस खेल करी है ।। ३९७ ।। ।। सवैया ।। जाहि सहंस्र फनी तन ऊपरि सोइ

विभीषण को राज्य दिया है । हिरण्यकशिपु का उदर फाड़कर इन्हीं ने प्रह्लाद की रक्षा की है । हे लोकपति नन्द ! सुनो, इसी ने अब हम लोगों का उद्धार किया है ।। ३९४ ।। ।। सवैया ।। ये सभी लोको के कर्ता हैं। इधर सारा व्रज भयभीत था और ये लीला कर रहे थे । शिक्षुओं का व्रत भी कृष्ण है और साधुजनों के शरीर का उद्यम भी कृष्ण ही है । इसी ने सीता के तथा द्रौपदी के शील की रक्षा की । हे नन्द ! इन सारे कार्यों को करने वाला हठीला यह श्रीकृष्ण ही है ।। ३९५ ।। ।। सवैया ।। पर्वत को उठाने की घटना को कई दिन बीत गए । अब कृष्ण जी बछड़ो की साथ लेकर वन मे जाने लगे । वहाँ गायो को घास चरते देखकर श्रीभगवान मन मे महासुख पाने लगे । अपने हाथ मे मुरली लेकर श्रीकृष्ण भाव-पूर्ण होकर बजाने लगे । अप्सराएँ तथा जो भी मुरली की ध्वनि सुनता था मोहित हो उठता था ।। ३९६ ।। जिसने क्रोधित होकर बालि को मार दिया और रावण की सेना को नष्ट कर दिया, जिसने विभीषण को राज्य दे दिया और क्षण भर में उसको लंकापति बना दिया, जिसने मुर नामक राक्षस का वध किया और शत्रु को मारकर सीता के दु.ख का हरण किया, वही भगवान व्रज-भूमि मे जन्म लेकर गउओं के साथ खेल खेल रहे है ।। ३९७ ।।

करी जल भीतर क्रीड़ा। जाहि भभीछन राज दयो अरु जाहि दई कुप रावन पीड़ा। जाहि दयो करकै जग भीतर जीव चराचर अउ गज कीड़ा। खेलत सो ब्रिजभूम बिखै जिन कीन सुरासुर बीच झगोड़ा॥ ३९८॥ ॥ सवैया॥ बीर बडे दुरजोधन आदिक जा हिमराइ डरे रन छत्री। जाहि मर्यो सिसपाल रिसै करि राजन मै क्रिशनंबर अत्री। खेलत है सोऊ गउअन मै जोऊ है जग को करता बध सत्री। आग सो धूम्र लपेटत जिउँ फुन गोप कहावत है इह छत्री॥ ३९९॥ ॥ सवैया॥ कर जुद्ध मरे इकले मध कीटभ राज सतक्रित को जिह दीआ। कुंभकरन (मू०ग्रं०३०५) मर्यो जिन है अरु रावन को छिन मै बध कीआ। राज भभीछन पै करि आनंद अउध चल्यो संगि लै करि सीआ। पापन के बध कारन सो अवतार बिखै ब्रिज कै अब लीआ॥ ४००॥ ॥ सवैया॥ जो; उपमा हरि की करी गोपन तउ पत गोपन बात कही है। जो इह को बलु आइ कह्यो गरगै हम सो सोऊ बात सही है। पूतु

॥ सवैया॥ हजारों फनो वाले शेषनाग पर विराजमान होकर जो जल में क्रीड़ा करते हैं, जिसने क्रोधित होकर रावण को पीड़ा दी और विभीषण को राज्य दिया, जिसने दया करके सारे विश्व में चल-अचल और हाथी तथा कीड़े को भी प्राण प्रदान किए है, वही ये भगवान व्रजभूमि मे खेल रहे है जिन्होंने सुरो और असुरों के बीच होते युद्ध को सदैव (तटस्थ होकर) देखा है॥ ३९८॥ ॥ सवैया॥ जिससे दुर्योधन आदि बड़े वीर तथा क्षत्रिय रण मे डरते है, जिसने शिशुपाल को क्रोधित होकर मार डाला, वही वीरवर कृष्ण यही है। वही कृष्ण गायो के साथ क्रीड़ा कर रहा है और यही कृष्ण शत्रुओ को मारनेवाला तथा सारे विश्व का कर्ता है। यही कृष्ण धुएँ में आग की चिनगारी के समान देदीप्यमान है और क्षत्रिय होते हुए भी अपने-आप को गोप कहला रहा है॥ ३९९॥ ॥ सवैया॥ इसी से युद्ध करते हुए मधु तथा कैटभ नामक राक्षस मर गये और इसी ने इन्द्र को राज्य दिया। कुम्भकर्ण भी इसी से युद्ध करता हुआ मरा और इसी ने क्षण भर मे रावण का वध कर दिया। यही विभीषण को राज्य देकर तथा सीता को संग लेकर आनन्दपूर्वक अवध की ओर चला था और अब पापियो का वध करने के लिए इसने व्रज-भूमि मे अवतार लिया है॥ ४००॥ ॥ सवैया॥ जिस प्रकार गोपो ने कृष्ण की प्रशसा की, उसी प्रकार गोपपति नन्द ने कहा कि आप लोगों ने

कह्यो बसुदेवहि को द्विज ताहि मिल्यो फुन मान इही है। जो इह को फुन मारन आयो सु ताहो की देह गही न रहो है ॥ ४०१ ॥

अथ इंद्र आदि दरशन कीआ अरु बेनती करत भया ॥

॥ स्वैया ॥ दिन एक गए बन को हरि जी मघवा तजि मान हरी पहि आयो। पापन के बखशावन कौ हरि के तर पाइन सीस निवायो। अउर करी बिनती हरि की अति ही हित सो भगवान रिझायो। चूक भई हम ते कहयो सक्र सु कै हरि जी तुम कौ नहि पायो ॥ ४०२ ॥ तूँ जग को करता करुनानिधि तूँ सभ लोगन को करता है। तूँ मुर को मरिया रिप रावन भूर सला त्रिय को भरता है। तूँ सभ देवन को पति है अरु साधन के दुख को हरता है। जो तुमरी कछु भूल करै तिहके फुन तूँ तन को मरता है ॥ ४०३ ॥ ॥ स्वैया ॥ जब कान्ह सतक्रित की उपमा तब काम सु धेन गऊ चलि आई। आइ करी उपमा हरि की बहु भाँतन सो कबि स्याम बडाई।

जो कृष्ण के बल का वर्णन किया है वह बिलकुल सत्य है। पुरोहित ने इसे वसुदेव का पुत्र कहा है और यह उसका सौभाग्य है। जो भी इसको मारने आया, वह स्वय शारीरिक रूप से नष्ट हो गया ॥ ४०१ ॥

इन्द्र ने आकर दर्शन किया और प्रार्थना की

॥ सवैया ॥ एक दिन श्रीकृष्ण जी जब वन मे गये तो गर्व को त्यागकर इन्द्र उनके पास आया और उसने अपने पापो की क्षमा माँगने के लिए कृष्ण के पाँव पर सिर झुकाया। उसने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की और भगवान को प्रसन्न किया तथा कहा कि हे प्रभु ! मुझसे भूल हुई है और मैं आपका अन्त नही पा सका ॥ ४०२ ॥ हे करुणानिधि ! तुम जगत के कर्ता हो; मुर नामक दैत्य और रावण को मारनेवाले एवं अहल्या नामक स्त्री का उद्धार करनेवाले हो। तुम सभी देवताओं के स्वामी और साधुओं के दुःख को दूर करनेवाले हो। हे प्रभु ! जो तुम्हारी अवज्ञा करता है तुम उसका नाश करनेवाले हो ॥ ४०३ ॥ ॥ सवैया ॥ जब कृष्ण और इन्द्र की यह बातचीत चल रही थी, तभी वहाँ कामधेनु गाय भी चली आयी। कवि श्याम का कथन है कि उसने कृष्ण की बहुत प्रकार से प्रशसा की।

गावत ही गुन कान्हर के इक इंकर आइ गई हरि पाई। स्याम करो उपमा कहियो पति सो उपमा बहु भाँतन भाई ॥ ४०४ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्हर के पग पूजन कौ सभ देव पुरी तजि कै सुर आए। पाइ परे इक पूजत भे इक नाच उठे इक मंगल गाए। सेव करैं हरि की हित कै कर आवत केसर धूप जगाए। दैतन को बध कै भगवान मनो जग मै सुर फेर बसाए ॥ ४०५ ॥ ॥ दोहरा ॥ देव सक्र आदिक सभै सभ तजिकै मन मान। ह्वै इकत्र करनै लगे क्रिशन उसतती बान ॥ ४०६ ॥ ॥ कबितु ॥ प्रेम भरे लाज के जहाज दोऊ देखिअत बार भरे अभ्रन की आभा को धरत है। सील के है सिंध गुन सागर उजागर के नागर नवल नैन दोखन हरत है। (मू०पं०३०६) शत्रुन सँघारी इह कान्ह अवतारी जू के साधन को देह दुख दूर को करन है। मित्र प्रितपारक ए जग के उधारक है देखकै दुशट जिह जीय ते जरत है ॥ ४०७ ॥ ॥ स्वैया ॥ कान्ह को सीस निवाइ सभै सुर आइस लै चल धाम गए हैं। गोबिंद नाम धर्यो हरि को इह तै मन आनंद याद भए हैं। रात परे चलिकै भगवान सु डेरन आपन बीच

उसने कृष्ण का गुणगान कर प्रभु को प्राप्त किया। कवि का कथन है कि उसकी की हुई प्रशसा भिन्न प्रकार से मन को मोहनेवाली थी ॥ ४०४ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण की चरण-वन्दना के लिए सभी देवता देवलोक छोड़कर आ गए। कोई उनके चरण स्पर्श कर रहा है, कोई मगलगीत गाते हुए नृत्य कर रहा है। कोई सेवा करने के लिए केसर, धूप, बत्ती आदि जलाता हुआ चला आ रहा है कि मानो भगवान ने संसार से दैत्यो का नाश करके इस धरती पर पुनः देवताओ को बसा दिया हो ॥ ४०५ ॥ ॥ दोहा ॥ देवता एव इन्द्र आदि सभी अपने गर्व को भूलकर इकट्ठा होकर कृष्ण की स्तुति करने लगे ॥ ४०६ ॥ ॥ कवित्त ॥ श्रीकृष्ण के नेत्र मानो प्रेम के जहाज हैं और सारे आभूषणो की सुषमा को धारण करनेवाले हैं। ये शील के समुद्र है, गुणो के सागर हैं और लोगो के दु.खो का हरण करनेबाले हैं। श्रीकृष्ण के नेत्र शत्रुओ का संहार करनेवाले और साधुओ के दुःखो को दूर करनेवाले हैं। श्रीकृष्ण मित्रो का पालन-पोषण करनेवाले, जगत के उद्धारकर्ता है, जिन्हे देखकर दुष्ट लोग हृदय मे जलते है ॥ ४०७ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण को शीश झुकाकर और आज्ञा लेकर अपने निवास स्थानों को चले गए। उन्होने आनन्दित होकर श्रीकृष्ण का नाम 'गोविन्द' रख

अए हैं । प्रात भए जग के दिखबे कहु कौन सु सुंदर खेल नए हैं ।। ४०८ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिशनावतारे इंद्र भूल बखशाबन नाम बरननं ।।

अथ नंद को बरन बाँध करि लै गए ।।

।। स्वैया ।। निस एक द्वादस के हरि तात चल्यो जमना महि नावन काजै । आइ पर्यो जल मै बरनंगज कोप गह्यो सभ जोर समाजै । बाध चलै संग लै बरुनं पहि कान्हर के बिन ही कुपि गाजै । जाइकै ठाढि कर्यो जब ही पहचान लयो दरिआवन राजै ।। ४०९ ।। ।। स्वैया ।। नंद बिना पुर सुंन भयो सभ ही मिलकै हरि जी पहि आए । आइ प्रनाम करे पर पाइन नंद त्रियादिक ते घिघिआए । कै बहु भाँतन सो बिनती करिकै क्रिशना भगवान रिझाए । मो पति आज गए उठकै हम ढूँढ रहे कहूँऐ नही पाए ।। ४१० ।। ।। कान्ह बाच ।। ।। स्वैया ।। तात कह्यो हसि कै जसुधा पहि तात

दिया है । इधर रात्रि होने पर श्रीकृष्ण भगवान भी अपने घर को आ गये है और पुन. प्रातः होने पर जगत्-लीला के लिए सुन्दर नये खेलो का उपक्रम किया है ।। ४०८ ।।

।। श्री वचित्र नाटक के कृष्णावतार मे इन्द्र की क्षमायाचना और नाम-वर्णन समाप्त ।।

नन्द को वरुण का बाँधकर ले जाना

।। सवैया ।। द्वादशी की रात्रि को कृष्ण के पिता यमुना मे स्नान करने के लिए गए । वे जल मे नग्न होकर घुसे जिससे वरुण के दूत क्रोधित हो उठे । वे नन्द को बाँधकर क्रोध से गरजते हुए वरुण के पास ले चले और जब उन्होने नन्द को वरुण के समक्ष उपस्थित किया, तो नदियो के राजा वरुण ने उन्हे पहचान लिया ।। ४०९ ।। ।। सवैया ।। नन्द के बिना सारा नगर सूना हो गया और सभी मिलकर श्रीकृष्ण जी के पास आये । सबने आकर चरण छूकर प्रणाम किया और स्त्रियाँ तथा अन्य सब गिड़गिड़ाने लगे । उन्होने बहुत प्रकार से प्रार्थना कर श्रीकृष्ण भगवान को प्रसन्न किया और कहा कि हम अपने स्वामी नन्द को काफी ढूंढ चुके है, परन्तु उनका कही भी पता नही लग रहा है ।। ४१० ।। ।। कृष्ण उवाच ।। ।। सवैया ।। श्रीकृष्ण ने हँसकर यशोदा से कहा कि मै पिता को लेने के लिए जाऊँगा

सिखावन को हम जैहों। सात अकाश पताल सु सातहि जाइ जही तह जाही ते ल्यैहों। जौ मर गयो तउ जा जम के पुर आयुध लै कुप बारथ कैहों। नंद को आन मिलाइहउ हउ फिह जाइ रमै तऊ जान न दैहों॥ ४११॥ ॥ स्वैया॥ गोप प्रनाम गए करकै ग्रिह तो हसिकै इम कान्ह कह्यो है। गोपन के पति को मिल हों इह झूठ नही फुन सत्ति लह्यो है। गोपन के मन को अति ही दुख बात सुने हरि दूर बह्यो है। छाड अधीरज दीन सभो फुन धीरज को मन गाढ गह्यो है॥ ४१२॥ ॥ स्वैया॥ प्रात भए हरि जी उठ कै जल बीच धस्यो वरनं पहि आयो। आइके ठाढि भयो जब ही नदिआपति पाइन सो लपटायो। भ्रित्तन मो अपने तुम तात अन्यो बँध कै कहिकै घिघिआयो। कान्ह छिमापन्ह दोख करो इह भेद हमै लख कै नही (मू०ग्रं०३०७) पायो॥ ४१३॥ जिन राज भभीछनि रीझ दयो रिस कै जिन रावन खेत मर्यो है। जाहि मर्यो मुर नाम अघासुर पै बलि को छल सों जु छल्यो है। जाहि जलंधर की त्रिय को तिह मू रत कै सत जाहि टर्यो है।

और सातो आकाश-पाताल ढूँढकर, वे जहाँ भी होंगे, उन्हे ले आऊँगा। यदि वे मर भी गये होगे तो मैं यमराज से युद्ध करके उन्हे ले आऊँगा और नन्द को लाकर सबसे मिला दूँगा तथा उन्हे इस प्रकार नही जाने दूँगा॥ ४११॥ ॥ सवैया॥ सभी गोप प्रणाम करके अपने घर को चले गये और कृष्ण ने इस प्रकार हँसकर कहा कि मैं सत्य कह रहा हूँ, आप सबको गोपों के पति नन्द से मिलवा दूँगा। इसमे तनिक भी झूठ नही है, बल्कि मैं सत्य कह रहा हूँ। गोपो के मन का दु:ख कृष्ण की वात सुनकर दूर हो गया और वे अधैर्य को छोड़ पुन: धैर्य धारण करते हुए चले गये॥ ४१२॥ ॥ सवैया॥ प्रात: होने पर हरि (श्रीकृष्ण) ने जल मे प्रवेश किया और वरुण के सामने जा पहुँचे। वरुण उसी समय श्रीकृष्ण के पाँवो से लिपट गया और घिघियाकर कहने लगा कि मेरे सेवक आपके पिता को बाँध लाये है। हे कृष्ण! मेरे इस दोष को, क्षमा करो, मुझे पता नही था॥ ४१३॥ जिसने विभीषण को राज्य दिया और कुपित होकर रावण को युद्धस्थल में मार दिया; जिसने 'मुर' तथा 'अघासुर' को मारा तथा राजा वलि को छला; जिसने जलधर की स्त्री का सतीत्व भग किया, उस कृष्ण (विष्णु के अवतार) को आज मैं देख रहा हूँ। मैं बहुत भाग्यशाली हूँ॥ ४१४॥ ॥ दोहा॥ पैरो पर गिरकर वरुण ने नन्द को श्रीकृष्ण

धंनि है भाग किधो हमरे तिह को हम पेखबो आज कर्यो है ॥ ४१४ ॥ ॥ दोहरा ॥ पाइन पर कै बरनि जू दयो नंद को साथ। कह्यो भाग मुहि धंनि है चलै पुस्तकन गाथ ॥ ४१५ ॥ ॥ सवैया ॥ तात को साथ लयो भगवान चल्यो पुर को मन आनंद भीनो। बाहर लोक मिले ब्रिज के कर कान्ह प्रनाम प्राक्रम कीनो। पाइ परे हरि के बहु बारन दान घनो दिज लोकन दीनो। आइ मिलाइ दयो ब्रिज को पति सत्ति हमैं करता कर दीनो ॥ ४१६ ॥ ॥ नंद बाच ॥ ॥ सवैया ॥ बाहर आन कह्यो ब्रिज के पत कान्ह नही जग को करतारे। राज दयो इन रीझ भभीछन रावन से रिप कोटक मारे। भ्रितन लै बरुणै बँधयो तिह ते मुहि आन्यो है याही छडा रे। कै जग को करता समझो इह को करि कै समझो नही बारे ॥ ४१७ ॥ ॥ सवैया ॥ गोप सभो अपने मन भीतर जान हरी इह भेद बिचार्यो। देखहि जाहि बैकुंठ सभै हम पै इह कै इह भाँति उचार्यो। ता छबि को जस उच्च महाँ कबि ने अपनै मुख ते इम सार्यो। ग्यान ह्वै पारस गोपन लोह कौ कान सभै करि कचन डार्यो ॥ ४१८ ॥

के पास भेज दिया। वह कहने लगा कि हे श्रीकृष्ण ! मै धन्य हूँ। यह कथा पुस्तको मे चलती रहेगी ॥ ४१५ ॥ ॥ सवैया ॥ पिता को साथ लेकर श्री भगवान मन मे आनन्दित होकर अपने नगर की ओर चले। नगर के बाहर व्रज के लोग उनसे मिले जिन्होने कृष्ण और उसके पराक्रम को प्रणाम किया। वे सब कृष्ण के चरणो मे आ पडे और उन सबने बहुत प्रकार से द्विजो को दान दिया। वे सब आभारी होकर कहने लगे कि कृष्ण ने वास्तव मे अपना वचन सत्य कर दिखाया और हमे व्रजपति नन्द से मिलवा दिया ॥ ४१६ ॥ ॥ नन्द उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ बाहर आकर नन्द ने कहा कि यह कृष्ण ही नही है, वरन् सारे जगत का कर्ता है। इसी ने प्रसन्न होकर विभीषण को राज्य दिया और रावण जैसे करोड़ों शत्रुओ को मारा है। मुझे वरुण के सेवको ने बाँध दिया था और उन सबसे इसी ने मुझे छुडाया है। इसको बालक मत समझो, यह सारे विश्व का कर्ता है ॥ ४१७ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी गोपो ने अपने मन मे इस रहस्य को समझ लिया है। श्रीकृष्ण ने यह जानकर उनसे वैकुठ के दर्शन कर लेने को कहा और उन्हे दर्शन कराए। इस छवि को कवि ने अनुभव करते हुए कहा है कि यह दृश्य ऐसा लग रहा था मानो श्रीकृष्ण द्वारा दिये हुए ज्ञान

॥ सवैया ॥ जानकै अंतरि को लखिआ जब रैन परी तब ही पर सोए। दुक्ख जिते जु हुते मन मै तितने हरि नाम के लेवत खोए। आइ गयो सुपना सभ को तिह जा पिखए त्रीया नर दोए। जाइ अनूप बिराजत थी तिह जा सम जा फुन अउर न कोए ॥ ४१९ ॥ ॥ सवैया ॥ सभ गोप बिचार कह्यो मन मै इह बैकुंठ ते ब्रिज मोहि भला है। कान समै लखिऐ नहि या ओहु जा पिखिऐ भगवान खला है। गोरस खात उहा हम ते मंग जो करता सभ जोव चला है। सो हमरे ग्रिह छाछहि पीवत जाहि रसी नभ भूम कला है ॥ ४२० ॥ (मू०ग्रं०३०८)

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे किशनावतारे नद जू को बरुण पास ते छडाइ लिआइ बिकुठ दिखावे सभ गोपन को धिआइ समापतम ॥

अथ देवी जू की उसतत कथनं ॥

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ तुही अस्त्रणी शस्त्रणी आप रूपा। तुही अंबका जंभहती अनूपा। तुही अंबका सीतला

रूपी पारस के कारण लौह रूपी सभी गोप कचन के बन गये हो ॥ ४१८ ॥ ॥ सवैया ॥ सबके हृदय की बूझनेवाले हरि अब रात पड़ने पर सो गये। जितने भी दुख है वे हरि-नाम लेने पर नष्ट हो जाते है। सभी नर-नारियो ने स्वप्नो ने वैकुठधाम को देखा और वहाँ देखा कि सब ओर अनुपम रूप से श्रीकृष्ण विराजमान हो रहे है ॥ ४१९ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी गोपो ने विचार कर कहा कि हे कृष्ण ! हमे वैकुठ से अच्छा (तुम्हारे साथ) व्रज लग रहा है। कृष्ण के समान हम किसी को नही देख रहे है और जिधर देखो उधर भगवान ही दिखाई दे रहे है। व्रज मे श्रीकृष्ण हम लोगो से दूध-दही माँगकर खाते है। वही कृष्ण, जो सारे जीवो को नष्ट करने की शक्ति रखते है। जिस भगवान की कला सारे आकाश-पाताल मे व्याप्त है, वही भगवान हमारे व्रज मे छाछ माँगकर हम लोगो से पीते है ॥ ४२० ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार मे नन्द जी को वरुण के पास से छुडाकर लाना, सब गोपो को वैकुठ दिखाना अध्याय समाप्त ॥

देवी जी की स्तुति-कथन

॥ भुजंग प्रयात छंद ॥ हे देवी ! अस्त्र-शस्त्रो को धारण करनेवाली अंबिका और जभासुर का नाश करनेवाली तुम ही हो। तुम अबिका,

तोतला है। प्रिथवी भूम आकाश तै ही किआ है ॥ ४२१ ॥ तुही मुंड मरदी कपरदी भवानी। तुही कालका जालपा राजधानी। महा जोगमाया तुही ईश्वरी है। तुही तेज आकाश थंभो मही है ॥ ४२२ ॥ तुही रिच्टणी पुच्टणी जोग-माया। तुही मोह सो चउदहूँ लोक छाया। तुही सुंभ नैसुंभ हंती भवानी। तुही चउदहूँ लोग की जोति जानी ॥ ४२३ ॥ तुही रिच्टणी पुच्टणी शस्त्रणी है। तुही कष्टणी हरतणी अस्त्रणी है। तुही जोगमाया तुही बाक बानी। तुही अंबका जंभहा राजधानी ॥ ४२४ ॥ महा जोगमाया महाराज धानी। भवी भावनी भूत भव्यं भवानी। चरी आचरणी खेचरणी भूपणी है। महा बाहणी आप निरूपणी है ॥ ४२५ ॥ महाभैरवी भूतनेसुरी भवानी। भवी भावनी भव्य काली क्रिपाणी। जया आजया हिंगुला पिंगुला है। शिवा सीतला मंगला तोतला है ॥ ४२६ ॥ तुही अचछरा

शीतला आदि हो तथा तुम ही पृथ्वी, भूमि, आकाश की स्थापना करने वाली हो ॥ ४२१ ॥ रणस्थल मे मुडो का मर्दन करनेवाली भवानी तुम ही हो और तुम ही कालका तथा जालपा देवी तथा देवों को राज्य दिलवाने वाली हो। तुम ही महायोगमाया तथा पार्वती हो तथा तुम ही आकाश का तेज तथा धरती का आधार हो ॥ ४२२ ॥ तुम ही सबका पालन-पोषण करनेवाली योगमाया हो और तुम्हारे प्रकाश से ही चौदह लोक प्रकाशित होते है। शुभ-निशुभ का नाश करनेवाली भवानी तुम ही हो और तुम ही चौदह लोको की ज्योति हो ॥ ४२३ ॥ तुम ही सबका पालन-पोषण करनेवाली तथा शस्त्र धारण करनेवाली हो। तुम ही सबके कष्टो का हरण करनेवाली तथा अस्त्रो को धारण करनेवाली हो। तुम ही योग-माया और वाणी की शक्ति हो तथा हे देवी! तुम ही अबिकास्वरूप मे जभासुर का नाश कर देवताओ को राज्य दिलानेवाली हो ॥ ४२४ ॥ हे महायोगमाया! तुम ही भूत, वर्तमान और भविष्य मे भवानी-रूप मे स्थित रहनेवाली हो। तुम ही चैतन्यस्वरूपा आकाश मे विचरण करनेवाली साम्राज्ञी हो। तुम्हारा वाहन महान है और तुम ही (सब विद्याओ का) निरूपण करनेवाली हो ॥ ४२५ ॥ तुम ही महाभैरवी और भूतेश्वरी भवानी हो। तुम ही वर्तमान तथा भविष्य मे भव्य रूप से कृपाण धारण कर काली-रूप मे स्थित रहनेवाली हो। सबको जय करनेवाली हिंगलाज पर्वत पर निवास करनेवाली, शिवा, शीतला मद्यमस्त तथा मंगला रूप मे तुम

पच्छरा बुद्ध ब्रिद्ध्या । तुही भैरवी भूपणी सुद्ध सिद्ध्या । महा बाहणी अस्त्रणी शस्त्रधारी । तुही तीर तरवार काती कटारी ॥ ४२७ ॥ तुही राजसी सातकी तामसी है । तुही बालका ब्रिद्धणी अउ जुआ है । तुही दानवी देवणी जच्छणी है । तुही किन्नणी मच्छणी कच्छणी है ॥ ४२८ ॥ तुही देवतेशेशणी दानवेसा । सरह ब्रिष्टणी है तुही अस्त्र भेसा । तुही राज राजेश्वरी जोगमाया । महा मोह सो चउदहूं लोकछाया ॥ ४२९ ॥ तुही ब्राह्मी बैशनवी स्त्री भवानी । तुही बासवी ईश्वरी कार्तक्यानी । तुही अंबका दुष्टहा मुंड माली । तुही कष्टहंती क्रिपा कै क्रिपाली ॥ ४३० ॥ तुमी ब्राह्मणी ह्वै हिरंनाछ मार्यो । हरंनाकशं सिंघणी ह्वै पछार्यो । तुमी बावनी ह्वै तिनो लोग मापे । तुमी देव दानो किए जच्छ थापे ॥ ४३१ ॥ तुमी राम ह्वैकै दसाग्रीव खंड्यो । तुमी क्रिशन ह्वै कंस केसी बिहंड्यो । तुमी जालपा ह्वै बिड़ालाछ (मू०ग्रं०३०९) घायो । तुमी सुंभ नैसुंभ दानो

ही हो ॥ ४२६ ॥ तुम ही अक्षर रूप मे, अप्सरा-रूप मे, बुद्धि के रूप मे, भैरवी के रूप मे, साम्राज्ञी के रूप मे, शुद्ध साध्य रूप मे विराजमान हो । महान वाहन (शेर) वाली और अस्त्र-शस्त्र को धारण करनेवाली तुम ही हो और हे देवि ! तुम ही तीर, तलवार, कटार का स्वरूप हो ॥ ४२७ ॥ तुम ही रजस्, तमस् और सत्त्वरूपा हो और तुम ही बालिका, वृद्धा और नवयुवती हो । तुम ही दानवी, देवी और दक्षिणी हो और तुम ही किन्नर-स्त्री, मत्स्य-कन्या और कच्छप-स्त्री हो ॥ ४२८ ॥ तुम देवताओं की शक्ति और दानवो की नेत्री हो तथा लोहा बरसानेवाली तुम ही अस्त्रों को धारण करनेवाली हो । तुम ही राजराजेश्वरी तथा योगमाया हो और तुम्हारी माया का ही प्रसार चौदह लोको मे छाया हुआ है ॥ ४२९ ॥ तुम ही ब्रह्माणी, वैष्णवी, भवानी, बासवी, पार्वती और कार्तिकेय की शक्ति हो । तुम ही अम्बिका हो और दुष्टों के मुडो की माला धारण करनेवाली हो । हे देवी ! तुम ही सबके कष्टो का नाश करनेवाली और सब पर कृपा करनेवाली हो ॥ ४३० ॥ ब्रह्म की शक्ति के रूप मे तुमने ही और सिंह-रूप होकर तुमने ही हिरण्यकशिपु को पछाडा । तुमने ही वामन की शक्ति के रूप मे तीनो लोको को नाप लिया और तुम ही ने देव-दानव और यक्षो की स्थापना की ॥ ४३१ ॥ तुम ही ने राम-रूप में रावण को मारा, कृष्ण-रूप मे केशी दैत्य का वध किया, जालपा-रूप में

खपायो ॥ ४३२ ॥ ॥ दोहरा ॥ दास जान करि दास परि कीजै क्रिपा अपार । आप हाथ दै राख मुहि मन क्रम बचन बिचार ॥ ४३३ ॥ ॥ चौपई ॥ मै न गनेशहि प्रिथम मनाऊँ । किशन बिशन कबहूँ नह ध्याऊँ । कान सुने पहिचान न तिन सों । लिव लागी मोरी पग इन सों ॥ ४३४ ॥ महाकाल रखवार हमारो । महालोह मै किंकर थारो । अपना जान करो रखवार । बाहि गहे की लाज बिचार ॥ ४३५ ॥ अपना जान मुझै प्रतिपरिऐ । चुन चुन शत्रु हमारे मरिऐ । देग तेग जग मै दोऊ चलै । राख आप मुहि अउरु न दलै ॥ ४३६ ॥ तुम मम करहु सदा प्रतिपारा । तुम साहिब मै दास तिहारा । जान आपना मुझै निवाज । आप करो हमरे सभ काज ॥ ४३७ ॥ तुम हो सभ राजन के राजा । आपे आपु गरीबनिवाजा । दास जान करि क्रिपा करहु मुहि । हार परा मै आठ द्वार तुहि ॥ ४३८ ॥ अपना जान करो

बिडालाक्ष असुर का वध किया और शुभ-निशुभ दानवो को नष्ट किया ॥ ४३२ ॥ ॥ दोहा ॥ दास जानकर मुझ दास पर अपार कृपा कीजिए और मन, कर्म, वचन और विचार से मेरे सिर पर हाथ रखकर मेरी रक्षा कीजिए ॥ ४३३ ॥ ॥ चौपाई ॥ मैं गणेश को पहले नही मनाता हूँ और न ही कृष्ण एव विष्णु का ध्यान करता हूँ । मैने उनके बारे मे केवल कानो से सुना है और मेरी उनसे कोई पहचान नही है । मेरी सुरति महाकाल (परमात्मा) के चरणो मे लगी है ॥ ४३४ ॥ महाकाल परमात्मा मेरा रक्षक है और हे लौहपुरुष परमात्मा ! मैं तुम्हारा दास हूँ । मुझे अपना जानकर मेरी रक्षा कीजिए और मेरी बाँह पकडने का विरद पालन कीजिए ॥ ४३५ ॥ अपना जानकर मेरा पालन कीजिए और चुन-चुनकर मेरे शत्रुओ को नष्ट कीजिए । हे प्रभु ! तुम्हारी कृपा से देग (लगर) और तेग (गरीबो की रक्षा करने के लिए) सदैव मेरे द्वारा चलती रहे और आपके अतिरिक्त मुझे और कोई न मार सके ॥ ४३६ ॥ आप हमेशा मेरा पालन कीजिए, आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ । अपना जानकर मुझ पर कृपा कीजिए और मेरे सब कार्यों को पूर्ण कीजिए ॥ ४३७ ॥ हे प्रभु ! तुम ही सब राजाओ के राजा हो और गरीबो पर कृपा करनेवाले हो । मुझे अपना दास मानते हुए मुझ पर कृपा कीजिए, क्योकि मैं अब हारकर आपके द्वार पर आ पड़ा हूँ ॥ ४३८ ॥ मुझे अपना मानते हुए मेरा पालन कीजिए, आप

प्रतिपारा। तुम साहिबु मै किंकर थारा। दास जान दै हाथ उबारो। हमरे सभ बैरिअन सँघारे॥ ४३९॥ प्रथम धरो भगवत को ध्याना। बहुर करो कबिता बिधि नाना। किशन जथा मत चरित्र उचारो। चूक होइ कबि लेहु सुधारो॥४४०॥

॥ इति स्री देवी उसतति समापतम॥

अथ रास मंडल॥

॥ स्वैया॥ जब आई है कातक की रुत सीतल कान्ह तबै अति ही रसिआ। संग गोपन खेल बिचार कर्यो जु हुतो भगवान महा जसिआ। अपवित्रन लोगन के जिह के पग लागत पाप सभै नसिआ। तिह को सुनि त्रीयन के संग खेल निवारहु कान्ह इहै बसिआ॥ ४४१॥ ॥ स्वैया॥ आनन जाहि निसापति सो द्रिग कोमल है कमला दल कैसे। है भरुटे धन से बरनीसर दूर करै तन के दुख रैसे। काम की सान के साथ

मेरे स्वामी है और मैं आपका सेवक हूँ। मुझे दास मानते हुए अपने हाथों से उद्धार कीजिए और मेरे सब शत्रुओं का नाश कीजिए॥ ४३९॥ सर्व-प्रथम मैं भगवत परब्रह्म का ध्यान करता हूँ और फिर विभिन्न प्रकार की कविता आदि करने का उपक्रम करता हूँ। अपनी बुद्धि के अनुसार मैं कृष्ण-चरित्र का उच्चारण करता हूँ और इसमे यदि कोई चूक रह जाय तो कविवर (कृपया) इसे सुधार ले॥ ४४०॥

॥ इति श्री देवी जी की स्तुति समाप्त॥

रास-मण्डल

॥ सवैया॥ जब कार्तिक मास की शीतल ऋतु आई तब रसिक कृष्ण ने गोपियो के साथ खेल करने का विचार किया। उस कृष्ण के पाँव लगते ही अपवित्र लोगो के पाप भी नष्ट हो जाते है। उस कृष्ण का स्त्रियो के साथ खेल का विचार सुनकर सभी उसके चारो ओर इकट्ठी हो गई॥ ४४१॥ ॥ सवैया॥ उनका मुख चन्द्रमा के समान, कोमल नेत्र कमल के समान, भौहे धनुष के समान, बरौनियाँ तीरों के समान है। ऐसी सुन्दर स्त्रियो को देखकर तन के सभी दुख दूर हो जाते हैं। साधुओ के कष्ट को दूर करने के लिए इन कामिनियो के शरीर मानो काम की सान पर घिसकर तेज किये हुए शस्त्रो की तरह

घसे दुख साधन के कटबे कहु तैसे। कउल के पत्र किधो ससि साथ लगे कबि सुंदर स्याम अरैसे ॥ ४४२ ॥ ॥ स्वैया ॥ बंधक है टटिआ बरुनीधर कोरन की दुत साइक साँधे। ठाढे है कान्ह किधो बन मै तन पै सिर पै अँबुवा रंग बाँधे। चाल चलै हरुए (मू०ग्रं०३१०) हरुए मनो सीख दई इह बद्धक पाँधे। अउ सभ ही ठट बद्ध कसे मन मोहन जाल पीतंबर काँधे ॥४४३॥ सो उठ ठाढि किधे बन मै जुग तीसर मै पति जोऊ सिया। जमना महि खेल के कारन को घस चंदन भाल मै टीको दिया। भिलरा डर नैन के सैनन को सभ गोपन को मन चोर लिया। कबि स्याम कहै भगवान किधो रस कारन को ठग बेस किया ॥ ४४४ ॥ ॥ स्वया ॥ द्रिग जाहि म्रिगीपति की सम है मुख जाहि निसापति सी छबि पाई। जाहि कुरंगन के रिप सी कट कंचन सी तन नै छबि छाई। पाट बने कदली दल द्वै जंघवा पर तीरन सी दुन गाई। अंग प्रतंग सु सुंदर स्याम कछू उपमा कहिऐ नही जाई ॥ ४४५ ॥ ॥ स्वैया ॥ मुख जाहि निसापति की सम है बन मै तिन गीत रिझ्यो अरु गायो। ता

हो अथवा वे सब ऐसे लग रहे है मानो चन्द्रमा के साथ कमल के पत्र जुड़े हुए हो ॥ ४४२ ॥ ॥ सवैया ॥ कमर मे वस्त्र बाँधे हुए और बरौनियो की कोरों को तीरो के समान साधे हुए सिर पर पीले रग का वस्त्र बाँधे हुए वन मे खड़े है। वे धीरे-धीरे चल रहे है, मानो उन्हे धीरे-धीरे चलने के लिए किसी ने शिक्षा दी हो। वे कधे पर पीताम्बर लिये हुए और कमर को कसकर बाँधे हुए अत्यन्त ही शोभायमान प्रतीत हो रहे हैं ॥ ४४३ ॥ तीसरे युग (त्रेता) मे जो सियापति राम थे वही अब वन मे खड़े है और यमुना में खेल खेलने के लिए उन्होने चन्दन का टीका माथे पर लगा रखा है। भील उनके आँखो के सकेतो को देखकर डर रहे हैं और सभी गोपियों का मन श्रीकृष्ण ने चुरा लिया है। कवि श्याम का कथन है कि सबको रस देने के लिए श्रीभगवान ने ठग का वेश धारण किया है ॥ ४४४ ॥ ॥ सवैया ॥ जिनकी आँखे हिरण के समान, मुख की छवि चन्द्र के समान, कमर शेर के समान और तन की छवि कंचन के समान है, उन सुन्दरियों के अग-प्रत्यग की उपमा दी नही जा सकती। उनकी जघाएँ कदली के तनों के समान है तथा उनकी सुन्दरता तीर के समान बेधनेवाली है ॥ ४४५ ॥ ॥ सवैया ॥ चन्द्रमा के समान मुख वाले श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर वन में गीत गाने प्रारम्भ किये

सुर को धुन स्रउनन मै ब्रिजहूँ की त्रिया सभ ही सुन पायो ।
धाइ चली हरि के मिलबे कहु तउ सभ के मन मै जब भायो ।
कान्ह मनो म्रिगनी जुवती छलबे कहु घंटक हेर बनायो ॥४४६॥
॥ स्वैया ॥ मुरली मुख कान्हर के लरुए तर स्याम कहै बिधि
खूब फकी । ब्रिज भामन आ पहुची दबरी सुध हिया जु रही न
कछू मुख की । मुख को पिख रूप के बस्य भई मत ह्वै अति
ही कहि कान्हब की । इक झूम परी इक गाइ उठी तन मै इक
ह्वै हरिगी सु जकी ॥ ४४७ ॥ ॥ स्वैया ॥ हरि की सुनिकै
सुर स्रउनन मै सभ धाइ चली ब्रिज भूम सखी । सभ मैन के
हाथ गई बधकै सभ सुंदर स्याम की पेख अखी । निकरी ग्रिह
ते म्रिगनी सम मानहु गोपन ते नहि जाहि रखी । इह भाँति
हरी पहि आइ गई जनु आइ गई सुध जान सखी ॥ ४४८ ॥
॥ स्वैया ॥ गई आइ दसो दिस ते गुपिआ सभ ही रस कान्ह के
साथ पगी । पिख कै मुखि कान्हु को चंद कला सु चकोरन सी
मन मै उमगी । हरि को पुन सुद्ध सु आनन पेखि किधौ तिन की

हैं और उस स्वर को व्रज की सभी स्त्रियो ने अपने कानों से सुना । वे सब कृष्ण से मिलने के लिए दौड चली है और ऐसा लग रहा है कि मानो कृष्ण तो नादस्वरूप हो और उस नाद से छली हुई युवतियाँ दौड़कर आती हुई मृगियो के समान हों ॥ ४४६ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने मुख में मुरली लगा रखी है और वृक्ष के नीचे वे शोभायमान हो रहे है । अपने तन और मन की सुधि भुलाती हुई तथा दौडती हुई व्रज की स्त्रियाँ वहाँ आ पहुँची हैं और कृष्ण के मुख को देखकर वे उसके रूप के इतना वशीभूत हो गयी है कि कोई तो झूमकर एक ओर जा गिरी, कोई गाते हुए उठ खडी हुई और कोई किंकर्तव्यविमूढ अवस्था मे पड़ी हुई है ॥ ४४७ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण का स्वर कानो मे सुनकर व्रजभूमि की सभी सखियाँ दौड़ कर चल पड़ी । सुन्दर श्रीकृष्ण की सुन्दर आँखों को देखकर वे सब कामदेव के हाथो में बँध गयी हैं । वे घर से मृगो की तरह इस प्रकार दौड़ निकली हैं कि मानो गोपगणो से छूटकर वे भागी हों और इस प्रकार कृष्ण के पास व्याकुल होकर आ पहुँची है मानो एक सखी दूसरी सखी का पता पाकर व्याकुल होकर उससे आ मिली हो ॥ ४४८ ॥ ॥ सवैया ॥ दसो दिशाओ से गोपियाँ कृष्ण के स्वर रस मे पगी हुई आ पहुँची हैं और कृष्ण के मुख को देखकर उनका मन वैसे ही भाव-विभोर हो उठा है जैसे चन्द्रकला को देखकर चकोर प्रसन्न हो उठते हैं । पुनः कृष्ण का सुन्दर

ठग डीठ लगी। भगवान प्रसंन भयो पिख कै कबि स्याम मनो
म्रिग देख म्रिगी ॥ ४४६ ॥ ॥ स्वैया ॥ गोपन की बरजी न
रही सुर कान्हर की सुनबे कहु व्राधी। नाथ चली अपने ग्रिह
इउ जिमु मत्त जुगीश्वर इंद्रहि लाघी। देखन को मुखि ताहि
चली जोऊ काम (मू०ग्रं०३११) कला हू को है फुन बाघी। डार
चली सिर के पट इउ जनु डार चली सभ लाज बहाघी ॥४५०॥
कान्ह के पास गई जब ही तब ही सभ गोपन लीन सु संङा।
चीर परे गिर कै तन भूखन टूट गई तिन हाथन बंङा। कान्ह
को रूप निहार सभै गुपिआ कबि स्याम भई इक रंङा। होइ
गई तनमै सभ ही इक रंग मनो सभ छोड कै सङा ॥ ४५१ ॥
॥ स्वैया ॥ गोपन भूल गई ग्रिह की सुध कान्ह ही के रस भीतर
राची। भउह भरी मधरी बरनी सभ ही सु ढरी जनु मैन कै
साची। छोर दए रस अउरन स्वाद भले भगवान ही सो सभ
माची। सोभत ता तन मै हरि के मनो कंचन मै दुनिआ चुन

चेहरा देखकर उन गोपियो की एकटक दृष्टि श्रीकृष्ण के चेहरे पर टिक
गई है और श्रीकृष्ण भी उनको देखकर ऐसे प्रसन्न हो गये है जैसे मृगी को
देखकर मृग आनन्द का अनुभव करता है ॥ ४४९ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपगणो
द्वारा मना किये जाने पर भी मना न होनेवाली गोपिकाएँ कृष्ण के स्वर
को सुनने के लिए व्याकुल हो उठी। वे अपने घरो को त्यागकर इस
प्रकार मदमस्त होकर चली है, जिस प्रकार योगेश्वर शिव इन्द्र की भी परवाह
किये बिना विचरण करते है। वे कृष्ण का मुख देखने के लिए और
कामकला से परिपूर्ण होकर सिर पर लिये जानेवाले वस्त्रो का भी त्याग
करते हुए इस प्रकार चली जा रही हैं मानो उन्होने सब प्रकार की लज्जा का
त्याग कर दिया हो ॥ ४५० ॥ कृष्ण के पास जब गोपियाँ पहुँची तब
गोपियो को चेतना वापस लौटी और उन्होने देखा कि उनके आभूषण और
वस्त्र गिर चुके है और व्याकुलता मे उनके हाथ की चूडियाँ भी खडित हो
चुकी हैं। कृष्ण के स्वरूप को निहारकर सभी गोपियाँ कृष्ण के रंग में
रँगकर एक हो गयी और वे सब तन-मन से सब प्रकार की लज्जा का
त्याग कर समरूप से मस्त हो उठी ॥ ४५१ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण के रस
मे लीन गोपियो को अपने घरो की सुध भी भूल गयी। उनकी भौहे
और वरौनियाँ मानो मद्य की वर्षा कर रही हो और ऐसा लग रहा था
जैसे स्वय कामदेव ने उनकी रचना की हो। वे सभी स्वादो को भूलकर
भगवान के रस मे लीन हो रही थी और इस प्रकार शोभायमान हो रही

खाची ॥ ४५२ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह को रूप निहार रही ब्रिज मै जु हुती गुपिआ अति हाछी । राजत जाहि म्रिगीपत नैन बिराजत सुंदर है सम माछी । सोभत है ब्रिजमंडल मै जन खेलबे काज नटी इह काछी । देखनहार किधो भगवान दखावत भाव हमै हिय आछो ॥ ४५३ ॥ ॥ सवैया ॥ सोहत है सभ गोपिन के कबि स्याम कहै द्रिग अंजन आँजे । कउलण को जनु सुद्धि प्रभा सर सुंदर साण के ऊपरि माँजे । बैठ घरी इकमै चतुरानन मैन के तात बने कसि साजे । मोहति है मन जोगन के फुन जोगिन के गन बीचक लाजे ॥ ४५४ ॥ ॥ सवैया ॥ ठाढि है कान्ह सोऊ महि गोपन जाहि को अंत मुनी नहि बूझे । कोटि करै उपमा बहु बरखन नैनन सो तऊ नैक न सूझे । ताही के अंति लखैबे कौ कारन सूर घने रन भीतर झूझे । सो ब्रिजभूम बिखै भगवान त्रिया गन मै रस बैन अरूझे ॥४५५॥ ॥ सवैया ॥ कान्हर के निकटै जबही सभही गुपिआ मिलि सुंदर गइयाँ । सो हरि मद्धि सिसानन पेख सभै फुन कंद्रप बेख

थी, मानो कंचन की प्रतिमाएँ चुन-चुनकर ढेर लगाकर रखी हुई हो ॥ ४५२ ॥ ॥ सवैया ॥ व्रज की सुन्दरतम गोपियाँ कृष्ण का स्वरूप निहार रही है । उनके नयन मृग के समान सुन्दर है और उनकी रचना और कटाव मछली के समान है । वे व्रजमण्डल मे घूमनेवाली नटियो के समान चपल हैं और कृष्ण को देखने के वहाने सुन्दर हाव-भाव का प्रदर्शन कर रही हैं ॥ ४५३ ॥ ॥ सवैया ॥ आँखो मे अंजन लगाये हुए सब गोपियों के बीच श्रीकृष्ण शोभायमान हो रहे है । उनकी सुन्दरता कमलों की शुद्ध सुन्दरता के समान दृष्टिमान हो रही है । ऐसा लग रहा है कि मानो ब्रह्मा ने उन्हे कामदेव का सहोदर बनाया हो और वे इतने सुन्दर है कि वे योगियों के भी मन को मोह रहे है । अनुपम सौन्दर्य वाले श्रीकृष्ण गोपियो मे घिरे हुए ऐसे लग रहे है जैसे योगिनियो के बीच घिरा हुआ कोई (शिव का) गण हो ॥ ४५४ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपियों मे वही कृष्ण खड़े हैं, जिनका अन्त मुनिगण भी नही पा सके । उनकी उपमा करोडो प्रकार से की जाती है परन्तु फिर भी उनके बारे मे तनिक भी सूझता नही । उसी श्रीकृष्ण रूपी परमात्मा का अन्त पाने के लिए अनेको शूरवीर रणस्थल मे जूझ मरे है और आज वही भगवान व्रजभूमि मे गोपियो के साथ वार्त्ता मे रसमग्न हैं ॥ ४५५ ॥ ॥ सवैया ॥ जब सभी गोपियाँ कृष्ण के पास पहुँच गयी तो वे श्रीकृष्ण के चन्द्रमुख को देखकर कामदेवस्वरूपा हो गयी ।

बनइयाँ। लै मुरली अपने कर कान्ह किधौ अति ही हित साथ बजइयाँ। घंटक हेरक जिउँ पिखकै म्रिगनी मुहि जात सु है ठहरइयाँ ॥ ४५६ ॥ ॥ सवैया ॥ मालसिरी अरु रामकली सुभ सारंग सावन साथ बसावै। जैतसिरी अरु सुद्ध मलार बिलावल की धुन कूक सुनावै। लै मुरली अपने कर कान्ह किधौ अति ही हित साथ बजावै। पउन चलै न रहै जमुना थिर मोहि रहै धुन जो सुन पावै ॥ ४५७ ॥ सुन कै मुरली धुनि कान्हर की सभ गोपन की सभ सुद्धि (मू०ग्रं०३१२) छुटी। सभ छाड चली अपने ग्रिह कारज कान्ह ही की धुन साथ जुटी। ठगनीश्वर ह्वै कबि स्याम कहै इन अंतर की सभ मत्त लुटी। म्रिगनी सभ ह्वै चलत्यो इनके मग लाज की बेल तराक टुटी ॥ ४५८ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह को रूपु निहार रही त्रिया स्याम कहै कबि होइ इकाठी। जिउँ सुर की धुन कौ सुन कै म्रिगनी चल आवत जात न नाठी। मैन सो मत्त ह्वै कूदत कान्ह सु छोरि मनो सभ लाज की गाठी। गोपन को मन यौ चुर ग्यो जिम छोरर पाथर पै चरनाठी ॥ ४५९ ॥ हसि बात

श्रीकृष्ण ने अपने हाथ मे मुरली लेकर जब प्रेमपूर्वक उसे बजाया तो सभी गोपियाँ इस प्रकार स्थिर हो गयी जैसे घटियो के नाद को सुनकर मृग स्थिर हो जाते है ॥ ४५६ ॥ ॥ सवैया ॥ श्रीकृष्ण मालश्री, रामकली, सारग, जैतश्री, शुद्ध मल्हार और बिलावल आदि रागो की ध्वनि बजाते हुए सुनाने लगे। कृष्ण के हाथ मे आयी हुई तथा प्रेमपूर्वक बजती हुई मुरली की ध्वनि को सुनकर पवन भी स्थिर हो गया और मोहवश यमुना की गति भी रुक गयी ॥ ४५७ ॥ कृष्ण की मुरली की ध्वनि को सुनकर सब गोपियाँ सभी गोपियाँ सुध-बुध भूल गयी। कृष्ण की धुन मे लीन वे अपने घर का काम-काज छोड़ चली। कवि श्याम का कथन है कि श्रीकृष्ण इस समय सबको ठगनेवाले अधीश्वर के रूप मे लग रहे हैं और उसके द्वारा छली हुई गोपियो की मति पूर्ण रूप से लुट चुकी है। गोपियाँ मृगियो के समान चल पड़ी है और उनकी लज्जा की बेल कृष्ण के स्वर को सुनते ही शीघ्रता से टूट गयी ॥ ४५८ ॥ ॥ सवैया ॥ स्त्रियाँ इकट्ठी होकर श्रीकृष्ण के स्वरूप को निहार रही है और इस प्रकार चली आ रही है जैसे नाद को सुनकर मृग चले आते है। वे काम से मस्त होकर सब लज्जा को छोड़ते हुए कृष्ण के चारो ओर विचरण कर रही है। गोपियो के मन का इस प्रकार हरण हो गया है जैसे पत्थर पर घिसा हुआ

करैं हरि सौ गुपिआ कबि स्याम कहै जिन भाग बडे। मोहि सभै प्रगट्यो इनको पिखकै हरि पापन जाल लडे। क्रिशनंतन मद्धि बधू ब्रिज की मन ह्वैकर आतुर अत्ति गडे। सोऊ सत्ति किधो मन जाहि गडे सुअ धंनि जिनो मन है अगडे॥ ४६०॥ नैन चुराइ महा सुख पाइ कछू मुसकाइ भयो हरि ठाढो। मोहि रही ब्रिज बाम सभै अति ही तिहकै मन आनंद बाढो। जा भगवान किधो सिय जीत कै मारि डर्यो रिप रावन गाढो। ता भगवान किधो मुख ते मुकता तुकता सम अंम्रित काढो॥४६१॥ ॥ कान्ह जू बाच गोपी प्रति॥ ॥ सवैया॥ आज भयो झड़ है जमना तट खेलन की अब घात बणी। तजकै डरु खेल करैं हम सो कबि स्याम कह्यो हसि कान्ह अणी। जोऊ सुंदर है तुम मै सोऊ खेलहु खेलहु नाहि जणी रुकणी। इह भाँत कहै हसिकै रस बोल किधो हरिता जोऊ मार फणी॥ ४६२॥ हसिकै सु कही बतिया तिन सौ कबि स्याम कहै हरि जो रस रातो। नैन त्रिगीपति से हित के इम चाल चलै जिम गइयर मातो। देखत मूरत कान्ह की गोपन भूलि

चन्दन विलीन हो जाता है॥ ४५९॥ बड़े भाग्य वाली गोपियाँ श्रीकृष्ण से हँस-हँसकर बात कर रही है। कृष्ण को देखकर सभी मोह-रत हो रही हैं। श्रीकृष्ण व्रजवधुओ के मन मे गड चुके है। जिनके मन में कृष्ण बस चुके है वे भी सत्य के बोध को प्राप्त हो चुकी है और जिनके मन में अभी कृष्ण नही गड़े है वे भी धन्य हैं, क्योकि वे अभी असह्य प्रेम-पीड़ा से बची हुई हैं॥ ४६०॥ आँखो को चुराते हुए, तनिक-सा मुस्कुराते हुए श्रीकृष्ण खड़े हो गए है। यह देखकर मन में अत्यन्त आनन्द को बढाते हुए व्रज की स्त्रियाँ मोहित हो उठी है। जिस भगवान ने घोर शत्रु रावण को मारकर सीता को जीत लिया था, वही भगवान इस समय अपने श्रीमुख से मोतियो के समान सुन्दर और अमृत के समान सुमधुर ध्वनि निकाल रहे हैं॥ ४६१॥ ॥ कृष्ण उवाच गोपियों के प्रति॥ ॥ सवैया॥ आज थोड़े-थोड़े बादल भी आकाश मे है और आज यमुना-तट पर खेलने को मेरा मन व्याकुल हो रहा है। कृष्ण ने हँसकर कहा कि तुम सब भय त्यागकर मेरे साथ विचरण करो। तुममे से जो सबसे अधिक सुन्दरियाँ हैं, वे ही मेरे साथ आये, बाक़ी सब न आये। इस प्रकार ये बाते कालिय नाग का मान हरनेवाले श्रीकृष्ण ने कही॥ ४६२॥ कृष्ण ने हँसकर और रस-मत्त होकर ये बाते कही। उसके नयन मृग के समान है और उसकी चाल

गई ग्रिह की सुध सालो । चीर गए उडकै तन के अरु टूट ग्यो नैन ते लाज को नालो ।। ४६३ ।। कुपि कै मधिकैटभ तान मरे मुर दैत मर्‌यो अपने जिन हाथा । जाहि भभीछन राज दयो रिस रावन काट दए जिह माथा । सो तिह की तिहु लोगन मद्ध कहै कबि स्याम चलै जैसे गाथा । सो ब्रिजभूम बिखै रस के हित खेलत है फुन गोपन साथा ।। ४६४ ।। हसि कै हरि जू ब्रिजमंडल मै संग गोपन के इक होड बदी । सभ धाइ परै हमहूँ तुमहूँ इह भाँत कह्‌यो मिलि बीच नदी । जब जाइ परे (मू०ग्रं०३१३) जमना जल मै संग गोपन के भगवान जदी । तब लै चुभकी हरि जी त्रिय को सु लयो मुख चूम किधो सु तदी ।। ४६५ ।। ।। गोपी बाच कान्ह सो ।। ।। स्वैया ।। मिलकै सभ ग्वारन सुंदर स्याम सो स्याम कही हसि बात प्रबीनन । राजत जाहि म्रिगीपति से द्रिग छाजत चंचलता सम मीनन । कंचन से तन कउलमुखी रस आतुर ह्वै कह्‌यो रच्छक दीनन । नेह बढाइ महा सुखु पाइ कह्‌यो सिर न्याइ कै भात अधीनन ।। ४६६ ।। अति ह्वै रिझवंत कह्‌यो गुपिआ जुग

मस्त हाथी के समान है । श्याम का स्वरूप देखकर गोपियाँ घर-बाहर की सुधि भूल गयी । उनके शरीर के वस्त्र उड़ गये और लज्जा से भी उनका सबध छूट गया ।। ४६३ ।। जिसने कुपित होकर मधु-कैटभ और मुर नामक राक्षस का वध किया, जिसने विभीषण को राज्य दिया और रावण के दसो सिर काट दिये । उसकी विजय-गाथा तीनो लोको मे चल रही है, वही व्रजभूमि मे इस समय गोपियो के साथ रसमग्न होकर क्रीडा कर रहे है ।। ४६४ ।। श्रीकृष्ण ने हँसकर व्रजमण्डल मे गोपियो के साथ एक शर्त वाला खेल खेलने की बात की और कहा कि आओ, मिलकर हम-तुम नदी में छलाँग लगाये । इस प्रकार जब भगवान कृष्ण गोपियो के साथ यमुना के जल मे कूद गये । तो उन्होंने डुबकी लगाकर एक स्त्री का मुख शीघ्रता से चूम लिया ।। ४६५ ।। ।। गोपी उवाच कृष्ण के प्रति ।। ।। सवैया ।। सभी गोपियो ने मिलकर और हँसकर चतुरता से उस कृष्ण से कहा, जिसके सुन्दर नेत्र मृग के समान बड़े-बडे और मछली के समान चचल है, जिसका तन कंचन के समान है । उस कृष्ण को जो दीनो का रक्षक है, उसे प्रसन्न मन से अत्यन्त सुख पाते हुए सिर झुकाकर गोपियो ने अधीन होकर कहा ।। ४६६ ।। गोपियो ने प्रसन्न होकर कहा कि जो तीसरे युग मे वानरो का स्वामी था, जिसने क्रोधित होकर रावण को मार डाला और

तीसर मै पति भ्यो जु कपी । जिन रावन खेत मर्यो कुप कै जिह रीझ भभीछन लंक थपी । जिह की जग बीच प्रसिद्ध कला कबि स्याम कहै कछु नाहि छपी । तिह संग करै रस की चरचा जिनहू तिरिया फुन चंड जपी ॥ ४६७ ॥ जउ रस बात कही गुपिआ तब ही हरि ज्वाब दयो तिन साफी । आई हो छोडि सभै पति कौ तुम होइ तुमै न मरे फुन माफी । हउ तुम सो नहि हेत करौ तुम काहे कउ बात करो रस लाफी । इउ कहि कै हरि मोन भजी सु बजाइ उठ्यो मुरली महि काफी ॥ ४६८ ॥ ॥ कान बाच गोपी सो ॥ ॥ स्वैया ॥ सभ सुंदर गोपिन सो कबि स्याम दयो हसिकै हरि ज्वाब जबै । न गई हरि मान कह्यो ग्रिह कौ प्रभ मोहि रही मुखि देख सभै । क्रिशनं कर लै अपने मुरली सु बजाइ उठ्यो जुत राग तबै । मनो घाइ लगो पिन के ब्रण मै भगवान डर्यो जनु लोन अबै ॥ ४६९ ॥ जिउँ म्रिग बीच म्रिगी पिखिऐ हरि तिउँ गन ग्वारन के मधि सोभै । देखि जिसै रिप रीझ रहै कबि स्याम नही मन भीतर छोभै । देखि जिसै म्रिग धावत आवत चित्त करै न हमै फुन

प्रसन्न होकर विभीषण को लका का राज्य दे दिया, जिसकी कलाओ की चर्चा सारे ससार मे फैली हुई है । उसके साथ रस की चर्चा वे सब स्त्रियाँ कर रही है, जिन्होने चडी का जाप कर कृष्ण को पति के रूप में माँगा है ॥ ४६७ ॥ जब गोपियो ने रस की बात की तो कृष्ण ने उन्हें साफ़ जवाब दिया कि तुम लोग अपने पतियो को छोड़कर आई हो । तुम लोगो को मरने पर भी माफी नही मिलेगी । मैं तुमसे प्रेम नही करता हूँ और तुम मुझसे प्रेम-रस की बाते क्यो करती हो ! इस प्रकार कहकर कृष्ण चुप हो गये । और मुरली पर राग काफ़ी की धुन बजाने लगे ॥ ४६८ ॥ ॥ कृष्ण उवाच गोपियो के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ सुन्दर गोपियो को जब कृष्ण ने हँसकर यह जवाब दिया तो भी वे कृष्ण का कहना मानकर घर को नही गईं, और उनके मुख को देखकर मोहित होती रही । तब कृष्ण ने हाथ मे मुरली लेकर बजाना शुरू कर दिया । मुरली का स्वर गोपियो को इस प्रकार लगने लगा । जैसे भगवान कृष्ण ने उनके घावों पर नमक लगा दिया हो ॥ ४६९ ॥ जैसे मृगियो के बीच मृग दिखाई देता है, उसी प्रकार गोपियो के बीच कृष्ण शोभायमान हो रहे हैं । कृष्ण को देखकर शत्रु भी प्रसन्न हो रहे है और ये उनके मन मे शोभा बढ़ा रहे है । जिसे देखकर वन के मृग भी भागे चले आते है और

कोभै। सो बन बीच बिराजत कान्ह जोऊ पिखवै तिह को मन लोभै ॥४७०॥ ॥ गोपी बाच कान्ह जू सो ॥ ॥ स्वैया ॥ सोऊ ग्वारन बोल उठी हरि सो बचना जिन के सम सुद्ध अमी। तिह साथ लगी चरचा करने हरता मन साधन सुद्ध गमी। तज कै अपने भरता हमरी मति कान्ह जू ऊपरि तोहि रमी। अति ही तन काम करा उपजी तुम को पिखए नहि जात छमी ॥ ४७१ ॥ ॥ कबियो बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ भगवान लखी अपने मन मै इह ग्वारन (मू०ग्रं०३१४) सो पिख मैन भरी। तब ही तजि शोक सभै मन की तिन कै संग मानुख केल करी। हरि जी करि खेल किधौ इन सो जनु काम जरी इह की न जरी। कवि स्याम कहै पिखवो तुम कौतक कान हर्यो कि हरी सु हरी ॥ ४७२ ॥ जो जुग तीसर.मूरत राम धरी जिह अउर कर्यो अति सीला। शत्रन को सु सँघारक है प्रतिपारक साधन को हर हीला। द्वापर मौ सोऊ कान भयो मरिआ अरि को धरिआ पट पीला। सो हरि भूमि बिखै ब्रिज की हसि

जिनका चित्त कृष्ण के दर्शनों से भरता नही, वही कृष्ण वन के बीच मे विराजमान है और जो कोई उनको देखता है उसी का मन लोभ से भर उठता है ॥ ४७० ॥ ॥ गोपी उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ वह ग्वालिन अमृत के समान वचनो को बोलते हुए कहने लगी कि हम उसके साथ चर्चा कर रही है जो सभी साधुओ के कष्टो को दूर करनेवाला है। हम अपने पतियो को छोडकर कृष्ण के पास इसलिए आयी हैं कि हमारे तन मे काम की कलाओ का प्रभाव अत्यन्त विकट रूप से बढ रहा है और तुम्हे देखकर हम उन कलाओ को दवा नही पा रही है ॥ ४७१ ॥ ॥ कवि उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने मन में समझा कि ये ग्वालिनें मुझे देखकर काम से उन्मत्त हो उठी है। तब कृष्ण ने शका को त्याग कर उनके साथ आम मनुष्य की तरह भोग-विलास किया। कृष्ण ने कामदेव के द्वारा जलाई जा रही गोपियो के साथ रमण किया तथा कवि श्याम का कथन है कि इस लीला में यह समझ मे नही आ रहा है कि कृष्ण ने गोपियो को ठग लिया अथवा गोपियो ने कृष्ण को ठग लिया है ॥ ४७२ ॥ जिसने त्रेतायुग मे राम का अवतार लेकर अन्य शीलयुक्त कार्य किए, वही शत्रुओ का संहारक और साधुओ की हर दशा मे रक्षा करनेवाला है। वही राम द्वापर मे पीला वस्त्र धारण कर शत्रुओ को मारनेवाला कृष्ण है, जो हँस-हँसकर व्रजभूमि में गोपियो के साथ रासलीला रचा रहा

गोपन साथ करै रस लीला ।। ४७३ ।। मालसिरी अरु रामकली सुभ सारंग भावना साथ बसावै । जैतसिरी अरु सुद्ध मलहार बिलावल की धुन कूक सुनावै । लै मुरली अपने कर कान्ह किधो अति भावन साथ बजावै । पउण चलै न रहै जमुना थिर मोहि रहै धुन जो सुन पावै ।। ४७४ ।। ।। स्वैया ।। कान्ह बजावत है सुर सो फुन गोपन के मन मै जोऊ भावै । रामकली अरु सुद्ध मलहार बिलावल को अति ही ठट पावै । रीझ रहै सु सुरी असुरी म्रिग छाडि म्रिगी बन की चल आवै । सो मुरली महि स्याम प्रबीन मनो कर रागन रूप दिखावै ।। ४७५ ।। सुनकै मुरली धुन कान्हर की मन मै सभ ग्वारन रीझ रही है । जो ग्रिह लोगन बात कही तिनहूँ फुन ऊपरि सीस सही है । सामुहि धाइ चली हरि के उपमा तिह की कबि स्याम कही है । मानहु पेख समसन के मुख धाइ चली मिलि जूथ अही है ।।४७६।। जिन रीझ भभीछन राजु दयो कुप कै दससीस दई जिन पीड़ा । मारत ह्वै दल दैतन को छिन मै घन सो कर दीन उझीड़ा । जाहि मर्यो मुर नाम महासुर आसन ही लँघ मारग भीड़ा ।

है ।। ४७३ ।। वह मालश्री, रामकली, सारग, जैतश्री, शुद्ध मल्हार और बिलावल का स्वर मुरली के माध्यम से सबको सुना रहा है । अपने हाथ मे बाँसुरी लेकर कृष्ण प्रेमपूर्वक बजा रहे हैं और उसकी आवाज़ को सुनकर पवन और यमुना स्थिर हो गयी है, तथा जो भी उसकी धुन को सुन लेता है वह मोहित हो जाता है ।। ४७४ ।। ।। सवैया ।। गोपियों को जो अच्छा लगता है, कृष्ण वही बजा रहे है । रामकली, शुद्ध मल्हार और बिलावल अत्यन्त ही सुन्दर बन पड रहे हैं । मुरली की ध्वनि को सुन कर देवस्त्रियाँ तथा राक्षसियाँ सभी प्रसन्न हो रही है और वन की मृगियाँ मृगों को छोडकर दौडी चली आ रही है । श्याम मुरली बजाने मे इतने प्रवीण है कि स्तर के माध्यम से रागों को साकार करके दिखा रहे है ।। ४७५ ।। मुरली की धुन सुनकर सभी ग्वालिने प्रसन्न हो रही हैं और लोगो की तरह-तरह की बाते वे प्रेमपूर्वक सहन कर रही है । वे कृष्ण की ओर इस प्रकार दौड़ी चली जा रही है, जैसे लाल रंग के कीड़ों को देखकर नागिनों के झुण्ड उन्हें खाने के लिए लपकते है ।। ४७६ ।। जिसने प्रसन्न होकर विभीषण को राज दिया और कुपित होकर रावण का नाश किया, जो क्षण भर मे दैत्यो के दलो को दीन बनाता हुआ खण्ड-खण्ड कर देता है, जिसने मुर नामक राक्षस का वध किया वही कृष्ण

सो फुन भूमि बिखै ब्रिज की संग गोपन कै सु करै रस क्रीड़ा ॥ ४७७ ॥ ॥ स्वैया ॥ खेलत कान्ह सोऊ तिन सो जिह की सु करै सभ ही जग जात्रा। सो सभ ही जग को पति है तिन जीवन के बल को पर मात्रा। राम ह्वै रावन से जिनहूँ कुपि जुद्ध कर्यो करिकै प्रम छात्रा। सो हरि बीच अहीरन के करिबे कहु कउतक कीन सु नात्रा ॥ ४७८ ॥ ॥ दोहरा ॥ जबै क्रिशन संग गोपिअन करी मानुखी बान। सभ गोपी तब यौ लख्यो भयो बस्य (मू०ग्र०३१५) भगवान ॥ ४७९ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह तबै सग गोपिन के तब ही फुन अंतरिध्यान ह्वै गय्या। खै कह ग्यो धरनी धसि ग्यो किधो मद्धि रह्यो समझ्यो नही पय्या। गोपिन को जब यौ गत भी तब ता छबि को कबि स्याम कहय्या। जिउँ संग मीनन के लरकै तिन त्याग समो मनो बारध रय्या ॥ ४८० ॥ गोपिन को तन की छुटगी सुधि डोलत है बन मै जन बउरी। एक उठै इक झूम गिरे ब्रिज की महरी इक आवत दउरी। आतुर ह्वै अति ढूँढत है तिनकै सिर की गिर गी सु पिछउरी। कान्ह को ध्यान

अब व्रजभूमि मे गोपियो के साथ रस-क्रीडा कर रहा है ॥ ४७७ ॥ ॥ सवैया ॥ वही कृष्ण खेल खेल रहा है। जिसकी सारा ससार प्रशसा करता है, वही सारे ससार का स्वामी है और सारे ससार के जीवन का आधार है। उसी ने राम बनकर अत्यन्त क्रोधित होकर क्षत्रिय-धर्म का पालन करते हुए रावण के साथ युद्ध किया था। वही रासलीला करने के लिए ग्वालिनो के बीच रमण कर रहा है ॥ ४७८ ॥ ॥ दोहा ॥ जब कृष्ण ने गोपियो के साथ मनुष्यो जैसा व्यवहार किया, तो सभी गोपियो ने मन मे ये मान लिया कि अब उन्होने भगवान को वश मे कर लिया है ॥ ४७९ ॥ ॥ सवैया ॥ तब पुनः कृष्ण गोपियो से अलग होकर अन्तर्ध्यान हो गये। वे आकाश मे चले गये या धरती मे धँस गये या कही बीच मे ही रह गये, कोई भी इस तथ्य को समझ नही पाया। गोपियो की जो गति हुई, उसे कवि श्याम ने कहते हुए बताया है कि वे ऐसी लग रही थी, मानो समुद्र से लड़कर मछलियाँ अलग होकर तडप रही है ॥ ४८० ॥ गोपियो को शरीर का होश नही रहा और वे पागलो की भाँति दौडी फिर रही हैं। कोई उठकर बेहोश होकर गिर पड़ती है और कही कोई व्रज की स्त्री दौड़ी चली आ रही है। वे व्याकुल होकर कृष्ण को ढूंढ रही है और उनके सिर के बाल बिखर गये है। कृष्ण का ध्यान

बस्यो मन मै सोऊ जान गहै फुन रूखन कउरी ॥ ४८१ ॥ ॥ सवैया ॥ फेर तजै तिन रूखन कौ इह भाँति कहै नंदलाल कहारे। चंपक मउलसिरी बट ताल लवंगलता कचनार जहारे। पं जिह के हम कारन को पग कंटक का सिर धूप सहारे। सो: हम कौ तुम देहु बताइ परै तुम पाइन जाव तिहारे ॥ ४८२ ॥ बेल बिराजत है जिह जांगुल चंपक का सु प्रभा अति पाई। मौलिसिरी गुल लाल गुलाब धरा तिन फूलन सो छब छाई। चंपक मउलसिरी बट ताल लवंगलता कचनार सुहाई। बार झरै झरना गिर ते कबि स्याम कहै अति ही सुखदाई ॥ ४८३ ॥ ॥ सवैया ॥ तिन कानन को हरि के हित ते गुपिआ ब्रिज की इह भाँत कहै। बर पीपर हेरहि या न कहूँ इह के हित सो सिर धूप सहै। अहो किउ तजि आवत हो भरता बिन कान्ह पिखे नहि धाम रहै। इक बात करै सुन कै इक बोल बरूखन को हरि जान गहै ॥ ४८४ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह बियोग को मान बधू ब्रिज

उनके मन मे बसा हुआ है और वे वृक्षों को आलिगन करते हुए कृष्ण को पुकार रही है ॥ ४८१ ॥ ॥ सवैया ॥ फिर वृक्षो को छोडकर वे नन्दलाल कृष्ण के लिए चम्पक, मौलिश्री, ताल के वृक्षो, लवगलता एवं कचनार आदि की झाडियों से पूछ रही है कि हम जिसके लिए सिर पर धूप आदि सहन करती हुई तथा पैरो मे कांटो की पीडा को झेलती हुई घूम रही है, तुम बताओ वे कृष्ण कहाँ है। हम तुम्हारे पाँव पडती हैं ॥ ४८२ ॥ वे गोपियाँ कृष्ण को ढूंढते हुए वहाँ घूम रही है जहाँ बेल के पेड़, चम्पा की झाडियाँ, मौलिश्री और लाल गुलाव के पौधे शोभा पा रहे है। चम्पक, मौलिश्री, लवगलता, कचन'र आदि के वृक्ष शोभायमान हो रहे है और अत्यन्त सुखदाई झरने बह रहे है ॥ ४८३ ॥ ॥ सवैया ॥ उस कृष्ण के प्रेम मे व्रज की गोपियाँ इस प्रकार कह रही है कि कही वह पीपल के पेड़ के पास तो नही है और इस प्रकार कहती हुई वे सिर पर धूप सहन करती हुई इधर-उधर दौड रही हैं। पुनः वे आपस मे भी विचार-विमर्श करती है कि हम क्यों अपने पतियो को त्यागकर इधर-उधर डोल रही है, परन्तु साथ-ही-साथ वे अपने मन से इसका उत्तर पाती है कि हम इसलिए दौड़ रही है क्योंकि हम कृष्ण के बिना रह नही सकती। इस प्रकार कोई बात कर रही है और कोई वृक्ष को ही कृष्ण समझकर उसका आलिगन कर रही है ॥ ४८४ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण

डोलत है बन बीच दिवानी। कूँजन ज्यों कुरलात फिरै तिह जा जिह जा कछु खान ना पानी। एक गिरै मुरझाइ धरा पर एक उठै कहि कै इह बानी। नेह बढाइ महा हम सो कत जात भयो भगवान गुमानी॥ ४८५॥ ॥ सवैया॥ नैन नचाइ मनो म्रिग से सभ गोपनि को मन चोर लयो है। ताही कै बीच रह्यो गडिकै तिह ते नहि छूटन नैक भयो है। ताही के हेत फिरै बन मै तजि कै ग्रिह स्वास न एक लयो है। सो बिरथा हम सो बन भ्रात कहो हरि जी किह ओर गयो है॥ ४८६॥ जिनहूँ बन बीच मरीच मर्यो (मू०ग्रं०३१६) पुर रावन सेवक जाहि दह्यो है। ताही सो हेत कर्यो हमहूँ बहु लोगन को उपहास सह्यो है। वा सरसे द्रिग सुंदर सो मिलि ग्वारनियाँ इह भाति कह्यो है। ताही की चोट चटाक लगे हमरो मनूँआ म्रिग ठउर रह्यो है॥ ४८७॥ ॥ सवैया॥ बेद पड़ै सम को फल है बहु मंगन को जोऊ दान दिवावै। कौन अकीन लखै फल हो जोऊ आथित लोगन अंनु जिवावै। दान लहै हमरे जिय को इह के सम को न सोऊ फल पावै।

के वियोग मे व्रजवधुएँ दीवानी होकर वन मे इस प्रकार घूम रही है जैसे क्रौच पक्षी चीत्कार करता हुआ घूमता है। उन्हे खाने और पानी की भी कोई सुधि नही है। कोई मुरझाकर धरती पर गिरती है और कोई यह कहते हुए उठती है कि वह अभिमानी कृष्ण हमसे प्रेम बढाकर कहाँ चला गया है॥ ४८५॥ ॥ सवैया॥ कृष्ण ने मानो अपने मृग के समान नयनो को नचाते हुए सभी गोपियो का मन चुरा लिया है। उनका मन उसी के नयनो मे गड़कर रह गया है और वह क्षण भर के लिए भी इधर-उधर नही होता। उसी के लिए साँस रोके हुए वे वन मे इधर-उधर दौड़ती फिर रही है और कह रही है कि हे वन के बन्धुओ! कोई बताओ, श्रीकृष्ण किस ओर गये हैं?॥ ४८६॥ जिसने वन मे मारीच को मारा और रावण के अन्य सेवको को नष्ट किया, उसी से हमने प्रेम किया है तथा बहुत से लोगो के उपहासो को सहन किया है। उसके सरस नेत्रों के बारे मे सभी ग्वालिने एक स्वर से इस भाँति कह रही है कि उन्ही नेत्रो के चोट के कारण हम सबका मन रूपी मृग (घायल होकर) एक ही स्थान पर निश्चल हो गया है॥ ४८७॥ ॥ सवैया॥ जो माँगनेवाले को दान देता है, उसे वेदपाठ के समान फल प्राप्त होता है। जो अतिथि को अन्न खिलाता है, उसे भी अनेको फल प्राप्त होते है। जो हमें एक घड़ी

जो बन मै हमको जररा इक एक घरी भगवान दिखावै ॥४८८॥ ॥ सवैया ॥ जाहि भभीछन लंक दई अरु दैतन के कुपि कै गन मारे। पै तिनहू कबि स्याम कहै सभ साधन राख असाध संघारे। सो इह जा हम ते छप ग्यो अतही करकै संग प्रीत हमारे। पाइ परो कहियो बन भ्रात कहो हरि जी किह ओर पधारे ॥४८९॥ ॥ सवैया ॥ ग्वारन खोजि रही बन मै हरि जी बन मै नही खोजत पाए। एक बिचार कर्यो मन मै फिरकै न गयो कबहूँ उहु जाए। फेर फिरी मन मै गिनती कर पारथ सूत की डोर लगाए। यौ उपजी उपमा चकई मनु आवत है कर मै फिर धाए ॥ ४९० ॥ आइकै ढूढ रही सोऊ ठउर तहाँ भगवान न ढूढत पाए। इउ जु रही सभ ही चकि कै जनु चित्र लिखी प्रितिमा छबि पाए। अउर उपाव कर्यो पुन ग्वारन कान्ह ही भीतरि चित्त लगाए। गाइ उठी तिहके गुन एक बजाइ उठी इक स्वाँग लगाए ॥ ४९१ ॥ होत बकी इक होत त्रिणाव्रत एक अघासुर ह्वै कर धावै। होइ हरी तिन

के लिए भी भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन करा दे, वह बेशक हमारे प्राणों का भी दान हमसे ले ले। इससे बढकर उसे अन्य कोई फल नही मिलेगा ॥ ४८८ ॥ ॥ सवैया ॥ जिसने विभीषण को लका दे दी और क्रोधी होकर दैत्यों को मार दिया; कवि श्याम का कथन है कि उसी ने साधुओ की रक्षा की है और असाधुओ का संहार किया है। वही अब हम से प्रेम करके हमारी आँखो से ओझल हो गया है। हे वनवासियो! हम तुम्हारे पाँव पड़ती है। तुम हमे बता दो कि श्रीकृष्ण किस ओर गये है ॥ ४८९ ॥ ॥ सवैया ॥ ग्वालिने वन मे खोजती रही, परन्तु वे कृष्ण को न पा सकी। फिर उनके मन में विचार आया कि कही वे उस ओर न गये हो। पुनः वे फिर मन मे सोचती है और अपने मन की डोरी को उस कृष्ण के साथ लगाती है। कवि उनके इस प्रकार सोचने और दौड़ने की उपमा देते हुए कहता है कि वे चकोरी के समान कभी इधर, कभी उधर दौड़ती फिर रही है ॥ ४९० ॥ जिस स्थान पर वे कृष्ण को ढूंढ़ने के लिए जाती है, वहाँ वे उसे नही पाती और इस प्रकार पत्थर की प्रतिमा के समान चकित-सी होकर लौट पड़ती है, तब गोपियो ने एक उपाय और किया और कृष्ण मे ही अपना मन लगा दिया। कोई उसके गुणों का गायन कर उठी और कोई कृष्ण का ही वेश धारण कर शोभायमान हो ... किसी ने ... ने तृणावर्त का तथा किसी ने

मै घसिकै धरनी पर ताकहु मार गिरावै। कान सो लाग रह्यो तिनकौ अतही मन नैक न छूटन पावै। इउ उपजी उपमा तनिआ जन सालन के हित रोर बनावै ॥ ४९२ ॥ ॥ राजा परीछत बाच सुक सो ॥ ॥ दोहरा ॥ सुक संग राजे कहु कही जूथ दिजन के नाथ। अगन भाव किह बिध कहै क्रिशन भाव के साथ ॥ ४९३ ॥ ॥ सुक बाच राजा सों ॥ ॥ सवैया ॥ राजन तास बयास को बाल कथा सु अरौचक भात सुनावै। ग्वारन आ बिरहानल भाव करै बिरहानल को उपजावै। पंच भुआतम लोगन को इह कउतक कै अति ही डरपावै। कान्ह को ध्यान (मू०ग्रं०३१७) करै जबही बिरहानल की लपटान बुझावै ॥ ४९४ ॥ ब्रिखभासुर ग्वारन एक बनै बछुरासुर मूरत एक धरै। इक ह्वै चतुरानन ग्वार हरै इक ह्वै ब्रहमा फिरि पाइ परै। इक ह्वै बगुला भगवान के साथ महा करकै मन कोप लरै। इह भाँत बधू ब्रिज खेल करै जिह भाँति किधो नंदलाल करै ॥ ४९५ ॥

धारण कर लिया और किसी ने कृष्ण का वेश धारण कर इन सबको मार गिराया। इन सबका मन एक क्षण के लिए भी कृष्ण से छूटता नही और ऐसा लग रहा है कि जैसे कोई वणिक् सब्ज़ी के रस मे से ही मांस के रस का स्वाद लेने का प्रयत्न कर रहा हो ॥४९२॥ ॥ राजा परीक्षित उवाच शुक के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ राजा परीक्षित ने शुकदेव से कहा कि हे द्विजराज ! मुझे यह बताएँ कि वियोग-अवस्था और गोपियो की कृष्ण के साथ सयोग-भाव का निर्वाह किस प्रकार हुआ ? ॥ ४९३ ॥ ॥ शुकदेव उवाच राजा के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ व्यास के पुत्र शुकदेव ने राजा को तब गोपियो के वियोग और सयोग-भाव वाली रोचक कथा सुनाई और कहा कि गोपियां विरह से जल रही थी और विरहाग्नि को ही चारो ओर पैदा कर रही थी। उनकी इस अवस्था को देखकर सामान्य मनुष्य भयभीत होने लगे। कृष्ण का ध्यान करते ही विरह की अग्नि की लपटें उस ध्यान को अपने मे लेकर गोपियो को कष्ट देने लगे ॥ ४९४ ॥ कोई वृषभासुर बनी हुई है और कोई बछडासुर का रूप धारण किए हुए है। कोई ब्रह्मा बनकर ग्वालो का हरण कर रही है तथा पुनः कृष्ण के पाँव पड़ रही है। कोई बकुल बनकर भगवान के साथ क्रोधित होकर लड़ रही है और इस प्रकार सभी व्रज की वधुएँ वे ही खेल खेल रही है जो श्रीकृष्ण खेला करते थे ॥ ४९५ ॥ कृष्ण के चरित्रों को करते हुए सभी ग्वालिने कृष्ण के गुण

कान्ह चरित्र सभै करके सभ ग्वारन फेर लगी गुन गावन। ताल बजाइ बजा मुरली कबि स्याम कहै अति ही करि भावन। फेरि चितार कह्यो हमरे संग खेल कर्यो हरि जी इह ठावन। ग्वारन स्याम की भूल गई सुध बीच लगी मन के दुखु पावन॥ ४९६॥ अति होइ गई तनमै हरि साथ सु गोपन की सभ ही घरनी। तिह रूप निहारकै बस भई जु हुती अति रूपन की धरनी। इह भाँत परी मुरझाइ धरी कबि ने उपमा तिह की बरनी। जिम घंटक हेर मै भूम के बीच परै गिर बान लगे हरनी॥ ४९७॥ ॥ स्वैया॥ बरुनीसर भउहन को धन कै सु शिगार के साजन सात करी। रस को मन मै अति ही कर कोप सु कान्ह के सामुहि जाइ अरी। अति ही करि नेह को क्रोधु मनै तिह ठउर ते पैग न एक टरी। मनो मैन ही सो अति ही रन कै धरनी पर ग्वारन झूझ परी॥ ४९८॥ तिह ग्वारन को अति ही पिख प्रेम तबै प्रगटे भगवान सिताबी। जोति भई धरनी पर इउ रजनी महि छूटत जिउँ महताबी। चउक परी तबही इह इउ जैसे चउक परै तम मै डरि खवाबी।

गाने लगी और ताल बजाकर, मुरली बजाकर प्रसन्न होने लगी। कोई कह रही है कि कृष्ण ने इस स्थान पर मेरे साथ खेल खेला था और यह कहते-कहते ग्वालिनो को कृष्ण की सुधि भी भूल गयी और वे कृष्ण के वियोग के दुःख मे दुखी हो उठी॥ ४९६॥ इस प्रकार गोपो की स्त्रियाँ श्रीकृष्ण के ध्यान मे तन्मय हो गयी और जो स्वय इतनी रूपवान थी वे श्रीकृष्ण के स्वरूप के वशीभूत हो गई। उनको मुरझाई हुई पडी देखकर कवि ने कहा है कि वे ऐसी पड़ी हुई है मानो हिरणी को बाण लगा हुआ हो और वह भूमि पर पड़ी हुई हो॥ ४९७॥ ॥ सवैया॥ बरौनियो को तीर बनाते हुए भौहो को धनुष मानते हुए शृगार करके और अत्यन्त क्रोधित होकर मानो गोपियाँ कृष्ण के सम्मुख अड़कर खडी हो गयी। वे प्रेम रूपी क्रोध को दिखाते हुए एक भी पाँव पीछे नही हट रही है और ऐसी लग रही हैं कि मानो सभी ग्वालिने कामदेव से युद्ध करते हुए रणस्थल पर जूझकर गिर पड़ी हो॥ ४९८॥ ग्वालिनो का उत्कट प्रेम देखकर भगवान श्रीकृष्ण शीघ्र ही प्रकट हुए। उनके प्रकट होते ही धरती पर इस प्रकार प्रकाश हो गया मानो रात्रि मे फुलझड़ियाँ चल निकली। सभी उनको देखकर इस प्रकार चौंक उठी जैसे कोई स्वप्न मे डरकर चौंक उठता है। उन सबका मन इस प्रकार शरीर को छोड़कर दौड़

छाडि चल्यो तन को मन इउ जिम भाजत है ग्रिह छाडि शराबी ।। ४९९ ।। ।। स्वैया ।। ग्वारन धाइ चली मिलबे कहु जो पिखए भगवान गुमानी । जिउँ म्रिगनी म्रिग पेख चलै जु हुती अति रूप बिखै अभिमानी । ता छबि की अति ही उपमा कबि नै मुख ते इह भाँत बखानी । जिउँ जल चात्रिक बूँद परै जिम कूदि परै मछली पिख पानी ।। ५०० ।। ।। स्वैया ।। राजत है पीअरो पट कंध बिराजत है म्रिग सो द्रिग दोऊ । छाजत है मन सो उर मै नदिआ पति साथ लिए फुन जोऊ । कान्ह फिरै तिन गोपन मै जिह की जग मै सम तुलि न कोऊ । ग्वारन रीझ रही ब्रिज की सोऊ रीझत है चक देखत सोऊ ।। ५०१ ।। ।। कबित ।। (मू०ग्रं०३१८) कउल जिउँ प्रभात तै बिछर्यो मिली रात तै गुनी जिउँ सुर सात तै बचायो चोर गात तै । जैसे धनी धन तै अउ रिनी लोक मन तै लरय्या जैसे रन तै तजय्या जिउँ नसात तै । जैसे दुखी सूख तै अभूखी जैसे भूख तै सु राजा शत्र आपने को सुने जैसे

चला जैसे कुछ शराबी घर को छोड़कर दौड़ पड़ता है ।। ४९९ ।। ।। सवैया ।। अभिमानी भगवान को देखकर सभी ग्वालिने उनसे मिलने के लिए वैसे ही दौड़ चली जैसे अभिमानी मृगियाँ मृग को देखकर उसकी ओर दौड़ पडती है । उस छवि की उपमा का वर्णन इस प्रकार किया है और कहा है कि वे इस प्रकार प्रसन्न हो रही हैं मानो पपीहे को बादल की बूंद मिल गयी हो अथवा मछली पानी को देखकर उसमे कूद पड़ रही हो ।। ५०० ।। ।। सवैया ।। श्रीकृष्ण के कधे पर पीताम्बर विराजमान है और उनके मृग के समान दोनो नेत्र शोभायमान हो रहे है । वे नदियों के स्वामी के रूप में शोभायमान हो रहे है । श्रीकृष्ण उन गोपियो मे विचरण कर रहे हैं जिनकी तुलना का ससार मे अन्य कोई नही है । व्रज की ग्वालिने श्रीकृष्ण को देखकर प्रसन्न और आश्चर्यचकित हो रही है ।। ५०१ ।। ।। कवित्त ।। कमल का फूल जैसे सुबह होने पर प्रसन्न होकर रात का बिछड़ा हुआ सूर्य से मिलता है और आनन्दित होता है, जैसे गायक सात स्वरो मे प्रसन्न रहता है, जैसे चोर अपने शरीर को बचाकर खुश होता है, जैसे धनवान धन को देखकर और कर्जदार मन-ही-मन बचने के उपाय सोचकर प्रसन्न होता है, जैसे योद्धा लड़ने के अवसर को और भागनेवाला भागने के अवसर को देखकर प्रसन्न होता है, जैसे दु.खी सुख को पाकर प्रसन्न होता है, अपच का रोगी

घात तै। होत है प्रसंन जेते एते एती बातन तै होत है प्रसंन्य गोपी तैसे कान्ह बात तै ॥ ५०२ ॥ ॥ कान्ह जू बाच ॥ ॥ स्वैया ॥ हसि बात कही संगि गोपिन कान्ह चलो जमना तट खेल करैं। छिटकारन सो झिरकै तिह जा तुमहूँहूँ तरो हमहूँहूँ तरैं। गुहि कै बन फूलन सुंदर हार सु केल करैं तिन डार गरैं। बिरहा छुध को तिह ठउर बिखै हस कै रस कै संग पेट भरैं ॥ ५०३ ॥ आइस मान तबै हरि को सभ धाइ चली गुपिआ तिह ठउरैं। एक चलै मुसकाइ भली बिध एक चलै हरुए इक दउरैं। स्याम कहै उपमा तिहकी जल मै जमुना कहु ग्वारन हउरैं। रीझ रहै बन के म्रिग देख सु अउर पिखै गज गामन सउरैं ॥ ५०४ ॥ स्याम समेत सभै गुपिआ जमुना जल को तरि पारि परय्या। पार भई जब ही हित सो गिरदा करकै तिह को तिसटय्या। ता छबि की अतिही उपमा कबि नै मुख ते इह भाँत सुनय्या। कान्ह भयो ससि सुद्ध मनो सभ राजत ग्वारन तीर तरय्या ॥ ५०५ ॥ ॥ स्वैया ॥ बात लगी कहने मुख ते कवि स्याम कहै मिल कै

भूख लगने पर प्रसन्न होता है और राजा अपने शत्रु के मारे जाने का समाचार सुनकर प्रसन्न होता है, वैसे ही सभी गोपियाँ कृष्ण की बातो को सुन-सुनकर प्रसन्न हो रही है ॥ ५०२ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने गोपियो से हँसकर कहा कि आओ, यमुना के तट पर खेल खेले। एक-दूसरे को पानी के छीटे मारे। तुम भी तैरो और हम भी तैरे। सुन्दर फूलो के हार गले में डालकर हम क्रीडा करे। विरह की भूख का हम लोग हँस-खेलकर पेट भर दे ॥ ५०३ ॥ कृष्ण की आज्ञा मानकर सभी गोपियाँ उस स्थान की तरफ चल पड़ी। एक मुस्कुराकर चल रही है, दूसरी धीरे-धीरे चल रही है और कोई दौड़कर जा रही है। कवि श्याम कहता है कि ग्वालिने यमुना के जल मे तैर रही हैं और उन्हे गजगामिनियो के इच्छानुसार विचरण को देखकर वन के मृग भी प्रसन्न हो रहे है ॥ ५०४ ॥ कृष्ण के समेत सभी गोपियाँ यमुना को पार करके दूसरी ओर चली गयी और पार होते ही गोल घेरा बनाकर खड़ी हो गयी, यह छवि इस प्रकार लग रही थी कि मानो कृष्ण तो बीच मे चन्द्र के समान हो और ग्वालिने चन्द्र के परिवार के ताराओ के समान उसे घेरे खड़ी हो ५०५ ॥ ॥ सवैया ॥ सभी गोपियाँ, जो कि चन्द्रमुखियाँ और मृगनयनियाँ थी, मिलकर बातें कहने लगी। व्रज की

सभ ग्वारन। चंद्रमुखी म्रिग से द्रिगनी लखिऐ तिन भान अनंत अपारन। कान्ह कै साथ करी चरचा मिलिकै ब्रिज की सभ सुंदर बारन। छोर दई ग्रिह की सभ लाज सु होइ महारस की चमकारन॥ ५०६॥ कै रस के हरि कारन कै करि कष्ट बडो कोऊ मंतर साधो। कै कोऊ जंत्र बडोई सध्यो इन को अपने मन भीतर बाधो। कै केहूँ तंत्र के साथ किधो कबि स्याम कहै अति ही करि धाधो। चोर लयो मनु ग्वारन को छिन भीतर दीन दयानिधि माधो॥ ५०७॥ ॥ गोपी वाच॥ ॥ स्वैया॥ कान्ह के ग्वारन साथ कह्यो हम को तजि कै किह ओर गए थे। प्रीत बढाइ महा हम सो जमुना तट पै रस केल कए थे। यौ तजि गे जिम राह मुसाफर स्याम कह्यो तुम नाहि नए थे। फूल खिरे मुख आए कहा अपनी (मू०ग्रं०३१९) बिरिआ कहूँ भउर भए थे॥ ५०८॥

अथ चतुर पुरख भेद कथनं॥

॥ सवैया॥ नर एक अकीन हो प्रीत करै इक कीन

सुन्दर बालिकाओ ने कृष्ण के साथ प्रेमचर्चा की और इस महा रस के चस्के मे उन्होने घर-बाहर की लज्जा का भी त्याग कर दिया॥ ५०६॥ प्रेम-रस के कारण अथवा कृष्ण के कारण अथवा किसी मन्त्र के कारण या किसी बड़े यन्त्र के कारण गोपियो का मन बडी व्याकुलता से बँधा हुआ और किसी तन्त्र के कारण गोपियो का मन अत्यन्त विकट रूप से जल रहा है। दीन दयानिधि श्रीकृष्ण ने इस गोपिकाओं का मन क्षण भर मे चोरी कर लिया है॥ ५०७॥ ॥ गोपी उवाच॥ ॥ सवैया॥ गोपियो ने कृष्ण से कहा कि हमको छोड़कर कहाँ चले गये थे। तुमने हमारे साथ प्रेम किया था और यमुना के तट पर क्रीडा की थी। तुम हम लोगो के लिए अपरिचित तो नही थे, परन्तु तुम हम लोगो को ऐसे छोड़ गये, जैसे कोई राह चलता मुसाफ़िर अपने साथी को छोड जाता है। यहाँ हम लोगो के मुख फूलो के समान खिले हुए थे, परन्तु तुम भौरा बनकर कही और ही चले गये थे॥ ५०८॥

चतुरपुरुष-भेद-कथन

॥ सवैया॥ एक पुरुष तो ऐसे है जो प्रेम न किये जाने पर भी

करै इक कौन जु जानै। एकन प्रीत के भेद जनै जोऊ प्रीति करै अरकै तिह मानै। सो नर मूड़ बिखै कहिऐ जग जो नर रंच न प्रीत पछानै। सो चरचा रस की इह भाँत सु ग्वारनियाँ संग कान बखानै॥ ५०६॥ ॥ गोपी बाच॥ ॥ सवैया॥ ग्वारनिया इह भाँत कहै करि नेह को अंत दगा कोऊ देहै। दोमन छाडि परो हरि ग्यो जन जो छल सो तिह को हरि लेहै। जो बटहा जन घावत है कोऊ जात चल्यो पिखकै मधि मेहै। पै खिझकै अत ही गुपिआ इह भाँत कह्यो तिन की सम एहै॥ ५१०॥ जब ही इह ग्वारन बात कही तब ही तिनके संग कान्ह हसे। जिह नाम के लेत जरा मुख ते तजके गनका सभ पाप नसे। न जप्यो जिह जाप सोऊ उजरे जिह जाप जप्यो सोऊ धाम बसे। तिन गोपिन सो इह भाँत कह्यो हमहूँ अत ही रस बीच फसे॥ ५११॥ ॥ सवैया॥ कहिकै इह बात हसे हरि जू उठकै जमुना जल बीच तरे। छिन एक लग्यो न तबै तिह को लखिकै जमुना कह पार परे। लखिकै

प्रेम करते है। दूसरे ऐसे है जो प्रेम करने पर ही प्रेम करते है और किये हुए प्रेम का उपकार मानते है। एक ऐसे होते है जो प्रेम के भेद भी जानते है और प्रेम को मन से स्वीकार करते हैं। चौथे प्रकार के पुरुष जगत मे ऐसे होते है जिनको मूर्ख कहा जा सकता है, क्योकि इनको तनिक भी प्रेम की पहचान नही होती। इस प्रकार की चर्चा ग्वालिनें और कृष्ण आपस में कर रहे है॥ ५०९॥ ॥ गोपी उवाच॥ ॥ सवैया॥ ग्वालिने यह कह रही हैं कि देखे, प्रेम का अन्त करके धोखा कौन देता है। कृष्ण तो ऐसा है जो सामने शत्रु को छोडकर दूसरे की भलाई करने जाने के लिए तैयार रहता है और छल से स्वयं छला जाता है। यह तो ऐसा है जैसे कोई वर्षाकाल मे साथ चला जा रहा हो और घात लगाकर डाकू का रूप धारण कर रास्ते मे ही किसी साथी को मार दे। गोपियो ने खीझकर कहा कि यह कृष्ण तो ऐसा ही है॥ ५१०॥ जब गोपियो ने यह वात कही तो उनके साथ कृष्ण हँसने लगे। जिसका नाम लेने से गणिका जैसी पापिन के पाप नष्ट हो गये, जहाँ उसका नाम-स्मरण नही किया गया, वहाँ उजाड हो गयी और उसके नाम का जाप करनेवालो के घर वस गये, उस कृष्ण ने गोपियो से यह कहा कि मैं भी भीपण रूप से (तुम लोगों के) प्रेम-रस मे [illegible] ॥ ५११॥ ॥ सवैया॥ यह वात कहकर हँसते [illegible] कृष्ण जी [illegible] मे कूद पड़े। एक क्षण मे वे यमुना

जल को संग गोपिन के भगवान महा उपहास करे । बहु होरनि तै अरु बहयनि तै कुरकातन तै अति सोऊ खरे ॥ ५१२ ॥
॥ कान्ह बाच ॥ ॥ सवैया ॥ रजनी पर गी तबही भगवान कह्यो हसिकै हम रास करैं । ससि राजत है सित गोपिन के मुख सुंदर सेत ही हार डरैं । हित सो ब्रिजभूमि बिखै सभही रस खेल करै कर डार गरैं । तुमको जोऊ शोक बढ्यो बिछुरे हम सो मिलिकै अब शोक हरैं ॥ ५१३ ॥ ऐहो त्रिया कहि स्त्री जदुबीर सभै तुम रास को खेल करो । गहिकै कर सो कर मंडलकै न कछू मन भीतर लाज धरो । हमहूँ तुमरे संग रास करै नचिहै नचियो नह नैकु डरो । सभ ही मन बीच अशोक करो अत ही मन शोकन कौ सु हरो ॥ ५१४ ॥
॥ सवैया ॥ तिन सो भगवान कही फिर यौं सजनी हमरी बिनती सुन लीजै । आनंद बोच करो मन के जिह ते हमरे तन के मन जीजै । मितवा जिह ते हित मानत है तब ही उठकै सोऊ कारज कीजै । दै रस को सिर पाव तिसै मन (मू०ग्रं०३२०) को सभ शोक बिदा करि दीजै ॥ ५१५ ॥ हसि कै भगवान

गये । श्रीकृष्ण गोपियो और जल को देखकर खिलखिलाकर हँसने लगे । बहुत रोकने पर भी और परिवार की मान-मर्यादा का ध्यान दिलाने पर भी गोपियो को कृष्ण ही अच्छा लगता है ॥ ५१२ ॥ ॥ कृष्ण उवाच ॥
॥ सवैया ॥ रात हो गयी तब भगवान ने हँसकर कहा कि आओ, रासलीला करे । श्वेत चन्द्रमा गोपियो के मुख पर विराजमान है और श्वेत फूलो के हार भी उन्होने गले मे डाल रखे है । ये सब बड़े प्रेम से एक-दूसरे के गले मे हाथ डालकर खेल खेल रहे हैं और कृष्ण कह रहे है कि मुझसे बिछुडने पर जो शोक तुम लोगो को हुआ था, आओ, अब हम लोग मिलकर उस दुःख को दूर करे ॥ ५१३ ॥ स्त्रियाँ कहने लगी कि हे यदुवीर ! जब तुम रास का खेल खेलते हो तो अपने हाथ से दूसरो का हाथ पकड़ते हुए इस मण्डली मे तुम्हे तनिक भी लाज नही आती । हम भी तुम्हारे साथ अभय होकर रास एव नृत्य करती है । हम सबके मन को शोक-रहित करते हुए हम सबो के दुःख को दूर करो ॥ ५१४ ॥ ॥ सवैया ॥ उन स्त्रियो से भगवान कृष्ण ने यह कहा कि हे सजनी ! मेरी प्रार्थना सुनो और अपने मन मे आनन्द भर लो जिससे तुम लोगो का मन मेरे तन मे लगा रहे । हे मित्रो ! जिसमे तुम लोगो का हित हो और जो तुम्हारे मन को भाये, वही काम करो और सिर से पाँव तक प्रेम-रस मे अपने-आपको डुबोते हुए

कही फिरि यो रस की बतिया हम ते सुन लइयै। जा कै लिए मितवा हित मानस सो सुनकै उठ कारज कइऐ। गोपिन साथ क्रिपा करिकै कबि स्याम कह्यो मुसलीधर भइयै। जा संग हेत महा करियै बिन दामन ताही के हाथ बिकइयै ॥५१६॥ कानर की सुनकै बतिआ सम मै तिन ग्वारन धीर गह्यो है। दोख जितो मन भीतर थो रस पावक मो त्रिण तुल्लि दह्यो है। रास करो सभ ही मिलिकै जसुधा सुध को तिन मान कह्यो है। रीझ रही प्रिथमी प्रिथमीगन अउ नभिमंडल रीझ रह्यो है॥ ५१७॥ गावत एक बजावत ताल सभै ब्रिजनार महा हित सौ। भगवान को मान कह्यो तबही कबि स्याम कहै अति ही चित सौ। इन सीख लई गति गासन ते सुर भामन ते कि किधौ कित सौ। अब मोह इहै समझ्यो सु परै जह कान सिखे इनहूँ तित सौ॥ ५१८॥ ॥ सवैया॥ मोर को पंख बिराजत सीस सु राजत कुंडल कानन दोऊ। लाल की माल सु छाजत कंठहि ता उपमा सभ है नहि कोऊ। जो रिप पै मग जात चल्यो सुनकै उपमा चलि देखत ओऊ। अउर की बात

मन के सभी दुःखों को बिदा कर दो ॥ ५१५ ॥ भगवान ने हंसकर फिर कहा कि मुझसे रस की बाते सुन लो और मित्रो। जो तुम्हें अच्छा लगे वही कार्य करो। गोपियो के साथ भाई बलराम से भी श्याम ने कहा कि जिसके साथ प्रेम कर लिया जाय उसके हाथों तो बिना मोल के बिक जाया जाता है ॥ ५१६ ॥ कृष्ण की बाते सुनकर उन ग्वालिनो को धैर्य हुआ और उनके मन मे दुःख रूपी तिनके रस रूपी अग्नि से जलकर नष्ट हो गये। यशोदा ने भी सबसे कहा कि सब मिलकर रासलीला करो और यह दृश्य देखकर पृथ्वी के निवासी और नभमण्डल भी प्रसन्न हो रहा है ॥ ५१७ ॥ व्रज की सभी नारियाँ अत्यन्त प्रेम से गा-बजा रही हैं और चित्त मे भगवान श्रीकृष्ण पर गर्व कर रही है। इनकी चाल को देखने से ऐसा लगता है कि यह गति इन्होने हाथियो से अथवा देव-स्त्रियो से सीखी है। कवि का कथन है कि मुझे तो ऐसा लगता है, मानो यह सब इन्होने कृष्ण से सीखा हो ॥ ५१८ ॥ ॥ सवैया ॥ सिर पर मोर का पख और कानो मे कुण्डल शोभायमान हो रहे है। गले मे लालों की माला विराज रही है और इसकी तुलना किसी से नही की जा सकती। शत्रु भी अपने मार्ग पर चलता हुआ कृष्ण को देखने के लिए विचलित हो उठता है। अब अन्य लोगो की बात क्या कहें, देवगण भी कृष्ण को देख-

कहा कहियै कबि स्याम सुरादिक रीझत सोऊ ॥ ५१९ ॥ गोपन संग तहा भगवान सनै अति ही हित को कर गावैं । रीझ रहै खग ठउर समेत सु या विधि ग्वारनि कान रिझावैं । जा कहु खोजि कई गण गध्रब किंनर भेद न रंचक पावैं । गावत सो हरि जू तिह जा तज कै म्रिगनी चलि कै म्रिग आवैं ॥ ५२० ॥ गावत सारंग सुद्ध मलार बिभास बिलावल अउ फुन गउरी । जा सुर स्रोनन मै सुनकै सुर भामन धावत डार पिछउरी । सो सुनकै सभ ग्वारनिया रसकै सग होइ गई जन बउरी । त्याग कै कानन ता सुन कै म्रिग लै म्रिगनी चलि आवत दउरी ॥ ५२१ ॥ ॥ सवैया ॥ एक नचै इक गावत गीत बजावत ताल दिखावत भावन । रास बिखै अति ही रस सो सु रिझावत काज सभै मनभावन । चाँदनी सुंदर रात बिखै कबि स्याम कहै सु बिखै रुत सावन । ग्वारनिया तजि कै पुर को मिलि खेलि करै रस नीकनि ठावन ॥ ५२२ ॥ सुंदर ठउर बिखै कबि स्याम कहै मिलि ग्वारन खेल (मू०ग्रं०३२१) **कर्यो है । मानहु आप ही ते ब्रहमा सुरमंडल सुद्धि बनाइ**

देखकर प्रसन्न हो रहे है ॥ ५१९ ॥ गोपियो के संग कृष्ण अत्यन्त प्रेमपूर्वक गा रहे है और कृष्ण ग्वालिनो को इस प्रकार रिझा रहे है कि उन्हे देखकर पक्षी भी अपने स्थान पर स्थिर हो गये । जिस प्रभु का रहस्य गण, गन्धर्व, किन्नर आदि भी नही जान सकते, वे प्रभु गा रहे हैं और उनके गायन को सुनकर मृगियाँ मृगो को छोड़कर चली आ रही है ॥ ५२० ॥ वे सारग, शुद्ध मल्हार, विभास, विलावल और गौडी राग गा रहे हैं और उनके स्वर को सुनकर देवस्त्रियाँ भी सिर के वस्त्रो का त्याग करती हुई दौड़ी चली आ रही है । ग्वालिने भी उस रसध्वनि को सुनकर बावली हो गयी है और मृग-मृगियो को साथ लेकर जगल त्यागकर कृष्ण का स्वर सुनने के लिए दौड़ चले आ रहे है ॥ ५२१ ॥ ॥ सवैया ॥ कोई नाच रहा है, कोई गा रहा है और कोई भिन्न प्रकार से भावो का प्रदर्शन कर रहा है । उस रासलीला मे सभी मनमोहक ढग से एक-दूसरे को रिझा रहे है । कवि श्याम का कथन है कि चाँदनी रातो मे और सावन की ऋतु मे ग्वालिने नगर को छोडकर अच्छे स्थानो मे मिलकर कृष्ण के साथ खेल खेल रही है ॥ ५२२ ॥ कवि श्याम का कथन है कि सुन्दर स्थानो पर मिलकर ग्वालिनो ने कृष्ण के साथ खेल खेला है और यह ऐसा लग रहा है मानो ब्रह्मा ने देवमण्डली की रचना की हो । इस दृश्य

धर्‌यो है। जा पिख कै खग रीझ रहै म्रिग त्याग तिसै नही चारो चर्‌यो है। अउर की बात कहा कहियै जिहके पिखए भगवान छर्‌यो है॥ ५२३॥ इत ते नंदलाल सखा लिए संग उतै फुन ग्वारन जूथ सभै। बहसा बहसी तह होन लगी रस बातन सो कबि स्याम तबै। जिह को ब्रहमा नही अंत लखै नह नारद पावत जाहि छबै। म्रिग जिउँ म्रिगनी महि राजत है हरि तिउँ गन ग्वारन बीच फबै॥ ५२४॥ ॥ स्वैया॥ नंदलाल लला इत गावत है उत ते सभ ग्वारनिया मिलि गावैं। फागुन की रुत ऊपरि आँबन मानहु कोकिलका कुहकावैं। तीर नदी सोऊ गावत गीत जोऊ उनके मन भीतर भावैं। नैन नछत्र पसार पिखैं सुरदेवबधू मिलि देखनि आवैं॥ ५२५॥ मंडल रास बचित्र महा सम जे हरि को भगवान नच्यो है। ताही के बीच कहै कबि इउ रस कंचन की सम तुलि मच्यो है। तासो बनाइबे को ब्रहमा न बनी करिकैं जुग कोटि पच्यो है। कंचन कै तनि गोपनि के तिह मद्धि मनो मन तुल्लि गच्यो है॥ ५२६॥ जल मै सफरी जिम केल करै

को देखकर पक्षी प्रसन्न हो रहे है, मृग चारा और पानी की सुध भूल गये है तथा और क्या कहा जाय, इस दृश्य को देखकर भगवान भी धोखा खा गए है॥ ५२३॥ इधर श्रीकृष्ण जी ने सखाओ को साथ लिया और उधर से ग्वालिने भी झुण्ड बाँधकर चल पड़ी। रसयुक्त बातो को लेकर वाद-विवाद होने लगा। भगवान का रहस्य ब्रह्मा और नारद भी नही पा सके। जैसे मृगियो मे मृग शोभायमान होता है, वैसे श्रीकृष्ण गोपियो के बीच विराजमान है॥ ५२४॥ ॥ सवैया॥ इधर कृष्ण गा रहे है, उधर ग्वालिने गा रही हैं। वे ऐसे लग रहे है जैसे फागुन की ऋतु में आम के वृक्षो पर कोयले कूक रही हो। नदी के तट पर वे मनमाने गीत गा रहे है। उन सबकी शोभा को आकाश के नक्षत्र भी आँखें फाड़कर देख रहे हैं और देवपत्नियाँ भी उन्हे देखने के लिए चली आ रही हैं॥ ५२५॥ जहाँ भगवान ने नृत्य किया, वह रासमण्डल भी विचित्र है। उस रासमडल मे कचन के समान शोभायुक्त मण्डली ने रासलीला की धूम मचा दी है। ऐसा अद्‌भुत रासमण्डल करोड़ो युगो तक ब्रह्मा भी प्रयत्न करके नही बना सकता है। गोपियो के तन सोने के समान है और उनके मन मणियो के समान शोभायमान है॥ ५२६॥ जैसे जल मे मछली विचरण करती है, वैसे ही गोपियाँ कृष्ण के साथ रमण कर

तिम ग्वारनिया हरि के संगि डोलै। जिउँ जन फाग को खेलत है तिह भाँत ही कान के साथ कलोलै। कोकिलका जिम बोलत है तिम गावत ताकी बराबर बोलै। स्याम कहै सभ ग्वारनिया इह भाँतन सो रस कान्हनि चोलै॥ ५२७॥ रस की चरचा तिन सो भगवान करी हित सो न कछू कम कै। इह भाँति कह्यो कबि स्याम कहै तुमरे महि खेल बन्यो हम कै। कहिकै इह बात दियो हसिकै सु प्रभा सुभ दंतन यों दमकै। जन दिउस भले रुति सावन की अति अभ्रन मै चपला चमकै॥ ५२८॥ ॥ सवैया॥ ऐहो लला नंदलाल कहै सभ ग्वारनिया अति मैन भरी। हमरे संग आवहु खेल करो न कछू मन भीतरि शंक करी। नैन नचाइ कछू मुसकाइकै भउह दोऊ करि टेढ धरी। मन यौ उपजी उपमा रस की मनो कान्ह के कंठहि फाँस डरी॥ ५२९॥ ॥ सवैया॥ खेलत ग्वारन मध सोऊ कबि स्याम के है हरिजू छबि वारो। खेलत है सोऊ मैन भरी इनहूँ पर मानहु चेटक डारो। तीर नदी ब्रिजभूमि बिखै अति होत है (मू०ग्रं०३२२) सुंदर भाँत अखारो। रीझ रहै प्रिथमी के सभै जन रीझ रह्यो सुरमंडल सारो॥ ५३०॥ गावत एक नचै इक ग्वारनि तारिन किंकन की धुन बाजै।

रही हैं। जैसे लोग अभय होकर होली खेलते है, ऐसे ही गोपियाँ कृष्ण के साथ किलोल कर रही हैं। कोयल की तरह सभी चहक रही है और ये गोपियाँ कृष्ण के रस का पान कर रही है॥ ५२७॥ श्रीभगवान ने उनसे रस-चर्चा खूब खुलकर की। कवि कहता है कि श्याम ने गोपियों से कहा कि मैं भी तुम लोगो के लिए एक खेल ही बन गया हूँ। यह कहकर श्रीकृष्ण हँस पडे और उनके दाँतो की चमक ऐसे पड़ने लगी जैसे सावन की घटा मे बिजली चमक रही हो॥ ५२८॥ ॥ सवैया॥ कामोन्मत्त गोपियाँ श्रीकृष्ण को बुलाती है और कहती है कि आओ कृष्ण! हमारे सग शका-रहित होकर क्रीडा करो। गोपियाँ नयनो को नचा रही है, भौहो को टेढा कर रही हैं और ऐसा लग रहा है मानो कृष्ण के गले मे (मोह-) पाश पड़ गया हो॥ ५२९॥ ॥ सवैया॥ गोपियो के बीच खेल रहे कृष्ण की छवि पर मैं (कवि) न्योछावर हूँ। वे काम से भरी हुई ऐसे खेल रही है मानो उन पर किसी ने जादू कर दिया हो। व्रजभूमि मे नदी के किनारे यह सुन्दर अखाड़ा बना हुआ है और इसे देखकर पृथ्वी के निवासी और समूचा सुरमण्डल प्रसन्न हो रहा है॥ ५३०॥

1

जिउँ म्रिग राजत बीच म्रिगी हरि तिउ गन ग्वारनि बीच बिराजै । नाचत सोऊ महा हित सो, कबि स्याम प्रभा तिन की इम छाजै । गाइब पेखि रिसै गन गंध्रब नाचब देख बधू सुर लाजै ॥ ५३१ ॥ रस कारन को भगवान तहा कबि स्याम कहै रस खेल कर्यो । मन यौ उपजी उपमा हरिजू इन पै जन चेटक मंत्र डर्यो । पिख कै जिह को सुर अछ्रन के गिर बीच लजाइ बपै सु धर्यो । गुपिआ संगि कान्ह के डोलत है इनको मनुआ जब कान्ह हर्यो ॥ ५३२ ॥ ॥ स्वैया ॥ स्याम कहै सभ ही गुपिआ हरि के संगि डोलत है सभ हुइआ । गावत एक फिरै इक नाचत एक फिरै रस रग अकुइआ । एक कहै भगवान हरी इक लै हरि नाम परै गिर भुइआ । यौ उपजी उपमा पिख चुंमक लागी फिरै तिहके संग सुइआ ॥५३३॥ ॥ स्वैया ॥ सग कारन कान कही हसिकै कबि स्याम कहै अध रात समै । हरि हमहूँ तुमहूँ तजिकै सभ खेल समै मिलकै हम धाम रमै । अब आइस मान चली ग्रिह को सभ ग्वारनिया करि दूरि गमै । जाइ हिकै सभ आसन मै करिके सभ प्रात की नेह तमै ॥ ५३४ ॥

कोई गोपी नाच रही है, कोई गा रही है, कोई तारो वाला वाद्य तो कोई किकनी बजा रही है। जैसे मृग मृगियो मे शोभा देता है, वैसे ही कृष्ण गोपियो मे शोभायमान हो रहे है। बड़े प्रेम से सभी नाच रहे हैं और सुन्दर लग रहे है। उनके गायन को देखकर गण-गंधर्वो को ईर्ष्या हो रही है और नृत्य को देखकर देवस्त्रियाँ लजायमान हो रही है ॥ ५३१ ॥ प्रेम-रस मे मत्त होकर श्रीभगवान ने वहाँ रासलीला की। ऐसा लग रहा है जैसे भगवान ने सबको मंत्र से वश में कर लिया हो। उनको देखकर अप्सराएँ लजाकर कन्दराओ मे चुपचाप छुप गयी। कृष्ण ने गोपियो का मन चुरा लिया है और वे सब कृष्ण के साथ डोल रही है ॥ ५३२ ॥ ॥ सवैया ॥ कवि कहता है कि सारी गोपियाँ कृष्ण के साथ घूम रही है। कोई गा रही है, कोई नाच रही है और कोई चुपचाप चली जा रही है। कोई कृष्ण का नाम ले रही है और कोई उसका नाम लेकर धरती पर गिर पड़ रही है। वे ऐसी लग रही हैं मानो चुम्वक के साथ सुइयाँ लगी हों ॥ ५३३ ॥ ॥ सवैया ॥ आधी रात के समय कृष्ण ने गोपियो को कहा कि हम और तुम खेल को छोड़कर भाग चले और घर मे जाकर रमण करे। कृष्ण की आज्ञा मानकर अपने दुःखो को भूलती हुई सभी गोपियाँ घर को चल दी। सब आकर अपने घरों मे सो गयी और प्रात.काल की

हरि सो अरु गोपनि संगि किधौ कबि स्याम कहै अत खेल भयो है। लै हरि जी तिन को संग आपन त्याग कै खेल को धाम अयो है। ता छबि को जसु उच्च महा कबि नै अपनै मन चीन लयो है। कागजिए रस को अति ही सु मनो गनती करि जोर दयो है।। ५३५।।

।। इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे क्रिशनावतारे ।।

अथ करि पकर खेलबो कथनं ।। रास मंडल ।।

।। सवैया ।। प्रात भए हरिजू तजिकै ग्रिह धाइ गए उठ ठउर कहा को। फूल रहे जिह फूल भली बिधि तीर बहै जमना सु तहा को। खेलत है सोऊ भाँत भली कबि स्याम कहै कछु त्रास न ताको। संग बजावत है मुरली सोऊ गउअन के मिस ग्वारनिया को।। ५३६।। ।। स्वैया ।। रास कथा कबि स्याम कहै सुनकै ब्रिखभान सुता सोऊ धाई। जा मुख सुद्ध निसापति सो (मू०ग्रं०३२३) जिह के तन कंचन सी छबि छाई। जाकी प्रभा कबि देत सभै सोऊ तामै रजै बरनी नहि जाई। स्याम की सोभ सु गोपन्न ते सुनिकै तरनी हरनी जिम

प्रतीक्षा करने लगी ।। ५३४ ।। कवि श्याम का कथन है कि इस प्रकार गोपियाँ और कृष्ण का क्रीडा-क्रम चला। कृष्ण ने गोपियो को साथ लिया और खेल छोड़कर घर आ गये। उस दृश्य की शोभा बताते हुए कवि कहता है कि यह ऐसा लग रहा है, मानो सारे हिसाब-किताब का जोड़ लगाकर चरम फल प्राप्त किया जा रहा है ।। ५३५ ।।

।। श्री वचित्र नाटक ग्रथ मे कृष्णावतार की समाप्ति ।।

हाथ पकडकर खेलने का कथन। रास-मण्डल

।। सवैया ।। प्रात: होते ही श्रीकृष्ण घर छोडकर उस स्थान पर गये, जहाँ फूल खिले हुए थे और यमुना बह रही थी। वहाँ वह भलीभाँति अभय होकर खेलने लगे। खेलते-खेलते गोपियो को बुलाने के लिए गायो को सुनाने के बहाने से मुरली बजाने लगे ।। ५३६ ।। ।। सवैया ।। कवि श्याम का कथन है कि रास-कथा को सुनकर वृषभान की पुत्री राधा दौड़ी चली आई। राधा का मुख चन्द्रमा के समान और शरीर सोने के समान सुन्दर है। उसके शरीर की सुन्दरता का वर्णन किया नही जा सकता।

धाई ॥ ५३७ ॥ ॥ कबित्तु ॥ सेत धरे सारी ब्रिखभान की कुमारी जस ही की मनो बारी ऐसी रची है न को दई। रंभा उरबसी अउर सची सु मदोदरी पै ऐसी प्रभा का की जगबीच न कछू भई। मोतिन के हार गरे डार रुच सो सुधार कान्हजू पै चली कबि स्याम रस के लई। से तै साज साज चली सावरे की प्रीत काज चाँदनी मै राधा मानो चाँदनी सी ह्वै गई ॥ ५३८ ॥ ॥ सवैया ॥ अंजन आँड सु धार भले पट भूखन अंग सुधार चली। जनु दूसर चंद्रकला प्रगटी जन राजत कंज की सेत कली। हरि के पग भेटन काज चली कबि स्याम कहै संग राधे अली। जनु जोत तरीयन ग्वारन ते इह चंद की चाँदनी बाल भली ॥ ५३९ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह सो प्रीत बढी तिह की मन मै अति ही नहि नैकु घटी है। रूप सची अरु पै रति तै मन त्रीयन ते नहि नैकु लटी है। रास मै खेलन काज चली सजि साज सभै कबि स्याम नटी है। सुंदर ग्वारन कै घन मै मनो राधका चंद्रकला प्रगटी है ॥ ५४० ॥

वह गोपियो के मुख से कृष्ण की शोभा का वर्णन सुनके हिरणी की तरह, दौड़ी चली आई ॥ ५३७ ॥ ॥ कवित्त ॥ वृषभान की पुत्री सफेद साड़ी पहन रखी है और ऐसा लगता है कि उसके समान सुन्दर परमात्मा ने और किसी को नही बनाया है। रभा, उर्वशी, शचि और मन्दोदरी की सुन्दरता भी राधा के सामने कुछ नही है। वह गले मे मोतियो के हार डालकर और तैयार होकर प्रेम-रस पाने के लिए कृष्णजी की ओर चल पड़ी। वह सज-धजकर चांदनी रात मे चाँदनी के समान दिखती हुई कृष्ण के प्रेमवश कृष्ण की ओर चल पडी ॥ ५३८ ॥ ॥ सवैया ॥ आँखो मे अजन डाल के और रेशमी वस्त्र तथा आभूषण पहनकर वह चलती हुई ऐसे लग रही है मानो चन्द्रकला साकार होकर अथवा श्वेतकली प्रकट होकर जा रही है। राधिका अपनी सहेली के साथ श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श करने के लिए जा रही है और ऐसी लग रही है कि जैसे अन्य गोपियाँ दीपक की ज्योति के समान हो और राधा चन्द्रमा की चाँदनी के समान हो ॥ ५३९ ॥ ॥ सवैया ॥ उसका प्रेम कृष्ण के प्रति बढ़ता ही गया और वह थोड़ा भी पीछे नही हटी। उसका रूप इन्द्र की पत्नी शची और रति के समान है और उससे अन्य स्त्रियों को ईर्ष्या हो रही है। वे सभी नटियो के समान सज-धजकर रासलीला करने के लिए चली है और सुन्दर गोपियो रूपी बादलो मे राधा बिजली के

ब्रहमा पिखि कै जिह रीझ रह्यो जिह को बिख कै शिव ध्यान छुटा है। जा निरखे रति रीझ रही रति के पति को पिख मान टुटा है। कोकिल कंठ चुराइ लियो जिन भावन को सभ भाव लुटा है। ग्वारन के घन बीच बिराजत राधका मानहु बिज्ज छटा है ॥ ५४१ ॥ कान्ह के पूजन पाइ चली ब्रिखभान सुता सभ साज सजै। जिह को पिख कै मन मोहि रहै कबि स्याम कहै दुति सीस रजै। जिन अंग प्रभा कबि देत सभै सोऊ अंग धरे त्रीय राज छजै। जिह को पिख कंद्रप रीझ रहै जिह को दिख चाँदनी चंद लजै ॥ ५४२ ॥ ॥ सवैया ॥ सित सुंदरु साज सभै सजिकै ब्रिखभान सुता इह भाँत बनी। मुख राजत सुद्ध निसापति सो जिस मै अति चाँदनी रूप घनी। रस को करि राधका कोप चली मन साज सो साजकै मैन अनी। तिह पेख भए भगवान खुशी सोऊ त्रीयन ते त्रिय राज गनी ॥५४३॥ ॥ राधे बाच गोपिन सो ॥ ॥ सवैया ॥ ब्रिखभान सुता हरि पेख हसी इह भाँति कह्यो संग ग्वारन कै। सभ दारिम (मू०ग्रं०३२४) दाँत निकास किधो सम चंदमुखी

समान प्रकट हुई दिखाई पड रही है ॥ ५४० ॥ ब्रह्मा भी राधा को देखकर प्रसन्न हो रहे है और राधा को देखकर ही शिव का ध्यान भी भंग हो गया है, इसे देखकर रति भी रीझ रही है और कामदेव का गर्व भी टूट गया है। उसकी वाणी को सुनकर कोयल भी चुप हो गयी है और अपने-आप को लुटी हुई अनुभव कर रही है। गोपियो रूपी बादलो मे विराजमान बिजली के समान सुन्दर लग रही है ॥ ५४१ ॥ कृष्ण के चरणो की पूजा करने के लिए राधा सब भाँति से सज-धजकर चली है। उसको देखकर सबका मन मोहित हो रहा है तथा उसका सौंदर्य उसके मस्तक से प्रकट हो रहा है। उसके अंगो की शोभा ऐसी है कि वह स्त्रियो की राजा प्रतीत हो रही है। उसको देखकर कामदेव भी मोहित हो रहा है और चाँदनी भी लजा रही है ॥ ५४२ ॥ ॥ सवैया ॥ सुन्दर सज-धज मे राधा इस प्रकार लग रही है कि मानो उसका मुख घनी चाँदनी समेटे हुए चन्द्रमा हो। राधा व्याकुल होकर काम के बाणो को चलाती हुई प्रेम-रस के लिए चल पड़ी और उसे देखकर भगवान कृष्ण भी प्रसन्न हो उठे और उन्होने उसको स्त्रियो की राजा के समान अनुभव किया ॥ ५४३ ॥ ॥ राधा उवाच गोपियो के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ राधा कृष्ण को देखकर हँसते हुए गोपियो से कहने लगी। हँसते समय उसके

ब्रिज बारन कै । हम अउ हरि जी अति होड परी रस ही के सु बीच महा रन कै । तजिके सभ शंकि निशंक भिरो संग ऐसे कह्यो हसि ग्वारन कै ।। ५४४ ।। हसि बात कही संग गोपिन के कबि स्याम कहै ब्रिखभान जई । मनो आपही ते ब्रहमा सु रची रुच सो इह रूप अनूप मई । हरि को पिखि कै निहुराइ गई उपमा तिह की कबि भाख दई । मनो जोबन भार सह्यो न गयो तिह तौ ब्रिज भामन नीची भई ।। ५४५ ।। सभ ही मिलि रास को खेल करै सभ ग्वारनिया अति ही हित ते । ब्रिखभान सुता सुभ साज सजे सु बिराजत साज सभै सित ते । फुन ऊच प्रभा अति ही तिन की कबि स्याम बिचार कही चित ते । उत ते घनस्याम बिराजत है हरि राधिका बिद्दुलता इत ते ।। ५४६ ।। ।। सवैया ।। ब्रिखभान सुता तिह खेलत रास सु स्याम कहै सखिया संग लै । उत चंद्रभगा सभ ग्वारन को तन चंदन के संग लेपहि कै । जिनके म्रिग से द्रिग सुंदर राजत छाजत गामनि पै जिन गै । मन यौ उपजी उपमा नहि चंद की चाँदनी जोबन वारन मै ।। ५४७ ।। ।। चंद्रभगा बाच राधे प्रति ।। ।। सवैया ।। बतियाँ फुन चंद्रभगा मुख ते इह भाँति

दाँत अनार की भाँति और मुख चन्द्रमा की भाँति दिखाई दे रहा था। मेरे और कृष्ण के बीच इस चर्चा को लेकर एक शर्त लगी है, इसलिए तुम सब बिना भय के कृष्ण के साथ भिड जाओ ।। ५४४ ।। राधा ने हँसकर गोपियो से यह बात कही और कृष्ण को देखकर सभी गोपियाँ प्रसन्न हो उठी । वे सब ऐसी लग रही थी कि मानो ब्रह्मा ने स्वय उनका निर्माण किया हो । वे यौवन के भार को न सह पाने के कारण कृष्ण के ऊपर झुकी हुई प्रतीत हो रही थी ।। ५४५ ।। सभी ग्वालिने प्रेम से तथा उत्साह से रासलीला मे भाग ले रही थी । राधा ने सुन्दर तरीके से श्वेत रंग मे अपने को सजा रखा था और इस सुन्दर दृश्य को छवि ने विचार कर कहा है कि उधर तो बादल के समान कृष्ण विराजमान है और इधर बिजली के समान राधिका दिखाई दे रही है ।। ५४६ ।। ।। सवैया ।। राधा के साथ इधर श्रीकृष्ण रास रचा रहे है, उधर चन्द्रभगा नामक गोपी सभी ग्वालिनो के तन पर चन्दन का लेप लगा रही है, इन गोपियों के नेत्र मृगो के समान है और वे हाथी की मस्त चाल के साथ चल रही है । ऐसा लग रहा है कि उनको देखकर चन्द्रमा भी अपनी चांदनी का यौवन न्योछावर कर रहा हो ।। ५४७ ।। ।। चन्द्रभगा उवाच राधा के प्रति ।। ।। सवैया ।। चन्द्रभगा

कही ब्रिखभान सुता सो । आवहु खेल करै हरि सो हम नाहक खेल करो तुम कासो । ताकी प्रभा कबि स्याम कहै उपजी है जोऊ अपने मनुआ सो । ग्वारन जोत तरइयन की छपगी दुत राधिका चंद्रकला सो ।। ५४८ ।। ।। राधे बाच ।। ।। स्वैया ।। सुन चंद्रभगा की सभै बतिया ब्रिखभान सुता तब ऐसे कह्यो है । याही के हेत सुनो सजनी हम लोकन को उपहास सह्यो है । स्त्रउनन मै सुनि रास कथा तब ही मन मै हम ध्यान गह्यो है । स्याम कहै अखिआँ पिख कै हमरे मन को तन मोहि रह्यो है ।। ५४९ ।। तब चंद्रभगा इह भाँति कह्यो सजनी हमरी बतिया सुनि लीजै । देखहु स्याम बिराजत है जिह के मुख कै पिखए फुन जीजै । जाके करे मित होइ खुशी सुनिऐ उठकै सोऊ काज करीजै । ताही ते राधे कहो तुमसो अब चार भई तु बिचार न कीजै ।। ५५० ।। ।। कबियो बाच ।। ।। सवैया ।। कान्ह के भेटन पाइ चली बतिया सुन चंद्रभगा फुन कैसे । मानहु नाग सुता इह (मू०ग्रं०३८५) सुंदर त्याग चली ग्रिह पन्न धरैसे । ग्वारन मंदर ते निकसी कबि स्याम कहै उपमा तिह ऐसे । मानहु स्याम घनै तजिकै प्रगटी है सोऊ

ने राधा से यह कहा कि तुम व्यर्थ मे ही किसके साथ खेल रही हो । आओ, हम कृष्ण के साथ खेल खेले । उस छटा का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि राधिका रूपी चन्द्रकला की ज्योति मे ग्वालिनो की दीपक की ज्योतियाँ छिपकर रह गयी ।। ५४८ ।। ।। राधा उवाच ।। ।। सवैया ।। चन्द्रभगा की बात सुन राधा ने कहा कि हे सखि ! इसी कार्य के लिए तो मैंने लोगों के उपहासो को सहन किया । रासलीला की बात सुनकर मेरा ध्यान भी इस ओर लगा हुआ है और श्याम को आँखो से देखकर मेरा मन मोहित हो उठा ।। ५४९ ।। तब चन्द्रभगा ने कहा कि हे सखि ! मेरी बात सुनो और देखो, श्याम वहाँ विराज रहे है और उनके मुख को देखकर ही हम सब जीवित है । जो कार्य करने से मित्र प्रसन्न होता हो वही कार्य करना चाहिए, इसीलिए हे राधा ! मैं तुमसे कह रही हूँ कि अब तो तुम इस राह पर चल ही पडी हो, इसलिए अब और अधिक सोच-विचार न करो ।। ५५० ।। ।। कवि उवाच ।। ।। सवैया ।। कृष्ण को प्राप्त करने के लिए चन्द्रभगा की बात सुन राधा चली और वह ऐसी लग रही है मानो नागकन्या अपना घर छोड़कर चल पडी । मन्दिर से निकलती हुई गोपियो की उपमा देते हुए कवि ने कहा है कि वे ऐसी लग रही है

बिजुली दुति जैसे ।। ५५१ ।। रासहि की रचना भगवान कहै कबि स्याम बचित्र करी है। राजत है तरए जमुना अति ही तह चाँदनी चंद करी है। सेत पटै संग राजत ग्वारन ताकी प्रभा कबि ने सु करी है। मानहु रास बगीचन मै इह फूलन की फुलवार जरी है ।। ५५२ ।। ।। स्वैया ।। चंद्रभगाहूँ को मान कह्यो ब्रिखभान सुता हरि पाइन लागी। मैन सी सुंदर मूरत पेखिकै ताही के देखिबे को अनुरागी। सोवत थी जनु लाज की नीद मै लाज की नीद तजी अब जागी। जागो मुनी नहि अंत लहै इह ताही सो खेल करै बडभागी ।। ५५३ ।। ।। कान्ह बाच राधा सो ।। ।। दोहरा ।। क्रिशन राधका संग कह्यो अति ही बिहसि कै बात। खेलहु गावहु प्रेम सो सुन सम कंचन गात ।। ५५४ ।। क्रिशन बात सुन राधका अति ही बिहसि कै चीत। रास बिखै गावन लगी ग्वारन सो मिलि गीत ।। ५५५ ।। ।। स्वैया ।। चंद्रभगा अरु चंद्रमुखी मिलकै ब्रिखभान सुता संग गावै। सोरठ सारंग सुद्ध मलार बिलावल भीतर तान बसावै। रीझ रही ब्रिजहूँ की त्रिया सोऊ रीझ रहै धुन जो सुन पावै। सो सुन कै इनपै हित

मानो विद्युत्-लताएँ बादलो को छोड़कर प्रकट हुई हो ।। ५५१ ।। भगवान कृष्ण ने विचित्र प्रकार से रासलीला की रचना की है। नीचे शुभ्र चाँदनी-सी धारा वाली यमुना बह रही है। श्वेत वस्त्र धारण किए हुए गोपियाँ शोभायमान हो रही है और वे ऐसी लग रही है मानो रास-उद्यान मे फूलो की फुलवारी लगी हुई हो ।। ५५२ ।। ।। सवैया ।। चन्द्रभगा का कहना मानकर राधा ने कृष्ण के चरणो को स्पर्श किया। कामदेव की-सी सुन्दर मूर्ति श्रीकृष्ण को देखने मे वह लीन हो गयी। अभी तक वह लज्जा की निद्रा मे सो रही थी, परन्तु वह लज्जा की नीद त्यागकर जग गयी। जिसके रहस्य को मुनिगण भी नही समझ सके, उसी के साथ भाग्यशाली राधिका खेल कर रही है ।। ५५३ ।। ।। कृष्ण उवाच राधा के प्रति ।। ।। दोहा ।। कृष्ण ने हँसकर राधा से कहा कि हे कचन के समान शरीर वाले ! तुम हँसकर प्रेम-पूर्वक खेल लो ।। ५५४ ।। कृष्ण की बात सुनकर राधा मन मे मुस्कुराती हुई गोपियो के साथ रासलीला मे गाने लगी ।। ५५५ ।। ।। सवैया ।। चन्द्रभगा और चन्द्रमुखी राधा के साथ मिलकर गाने लगी और सोरठ, सारग, शुद्ध मल्हार तथा बिलावल की तान देने लगी। व्रज की स्त्रियाँ मोहित होने

कै बन त्याग म्रिगी म्रिग अउ चलि आवै ।। ५५६ ।। तिन सेंधर माँग दई सिर पै रस को तिन सो अति ही मन भीनो । बेसर आड सु कंठसिरी अरु मोतिसिरी हूँ को साज नवीनो । भूखन अग सभै सजि सुंदर आँखन भीतर काजर दीनो । ताही सु ते कबि स्याम कहै भगवान को चित्त चुराइ कै लीनो ।।५५७।। ।। स्वैया ।। चंद की चाँदनी मै कबि स्याम जबै हरि खेलन रास लग्यो है । राधे को आनन सुंदर पेखि कै चाँद सो ताही के बीच पग्यो है । हरि को तिन चित्त चुराइ लियो सु किधो कबि को मन यौ उमग्यो है । नैनन को रस दे भिलवा ब्रिखभान ठगी भगवान ठग्यो है ।। ५५८ ।। जिह को पिखि कै मुखि मैन लजै जिह को दिखकै मुखि चंद्र लजै । कबि स्याम कहे सोऊ खेलत है संग कान्हर के सुभ साज सजै । सोऊ सूरतवंत रची ब्रहमा करकै अति ही रुचकै न कजै । (मू०ग्रं०३२६) मन माल के बीच बिराजत जिउँ तिम त्रीयन मै त्रियराज रजै ।। ५५९ ।। गाइ कै गीत भली बिधि सुंदर रीझ बजावत भी फिर तारी । अंजन आड सुधार भले पट साजन के सजकै सु गुवारी । ता

लगीं तथा जो कोई उस ध्वनि को सुनता वह प्रसन्न हो उठता । उस स्वर को सुनकर वन के मृग-मृगियाँ भी चली आ रही थी ।। ५५६ ।। गोपियो ने माँगो मे सिंदूर भर लिया और उनका मन रस से सपृक्त हो उठा । नाक का गहना, कठहार एव मोतियो के हार से उन सबने अपने-आपको सजाया । गोपियो ने सभी अगो पर आभूषणो को सजाते हुए आँखो मे काजल लगाया । कवि श्याम का कथन है कि इस प्रकार उन्होने भगवान के मन को भी चुरा लिया ।। ५५७ ।। ।। सवैया ।। चन्द्रमा की चाँदनी में जब श्रीकृष्ण रासलीला करने लगे तो राधिका का सुन्दर मुख उन्हे चन्द्र के समान दिखाई देने लगा । उसने श्रीकृष्ण का चित्त चुरा लिया और कवि ने कहा है कि अपने नयनो के छल से वृषभानु की पुत्री राधा ने कृष्ण को ठग लिया ।। ५५८ ।। जिसको देख कामदेव और चन्द्रमा लजाते हैं, कवि श्याम का कथन है कि वही राधा कृष्ण के साथ सज-धजकर खेल रही है । ऐसा लगता है कि ब्रह्मा ने उस मूर्ति को स्वय रुचि लेकर बनाया है । जैसे माला मे मणि विराजमान होती है वैसे राधा त्रियराज की भाँति शोभायमान हो रही है ।। ५५९ ।। सुन्दर गीत गाती हुई वे प्रसन्न होकर तालियाँ भी बजा रही है । उन गोपियो ने अजन आँखो मे लगा रखा है और भलीभाँति आभूषण-वस्त्र धारण कर रखे हैं । उस

छबि की अति ही सु प्रभा कबिनै मुखि ते इह भाँत उचारी। मानहु कान्ह ही के रस ते इह फूल रही त्रिय आनंद बारी॥ ५६०॥ ॥ स्वैया॥ ताको प्रभा कबि स्याम कहै जोऊ राजत रास बिखै सखियाँ है। जा मुख उपमा चंद्रछटा सम छाजत कउलन सी अखियाँ है। ताकी किधौ अति ही उपमा कबि नै मन भीतर यौ लखियाँ है। लोगन के मन की हरता सु मुनीनन के मन की चखियाँ है॥ ५६१॥ रूप सची इक चंद्रप्रभा इक मैनकला इक मैन की मूरत। बिज्जु छटा इक दारन दाँत बराबर जाही की है न कछू रत। दामिन्ह अउ म्रिग की म्रिगनी शरमाइ जिसै पिखि होत है चूरत। सोऊ कथा कबि स्याम कहै सभ रीझ रही हरि की पिख मूरत॥५६२॥ ब्रिखभान सुता हसि बात कही तिह के संग जो हरि अंति अगाधो। स्याम कहै बतिया हरि के संग ऐसे कही पट को तजि राधो। रास बिखै तुम नाचहु जो तजकै अति ही मन लाज को बाधो। ता मुख की छबि यौ प्रगटी मनो अब्भ्रन ते निकस्यो ससि आधो॥ ५६३॥ जिनके सिर सेधर माँग बिराजत राजत

छवि की प्रभा को कवि ने इस भाँति कहा है कि ऐसा लग रहा है मानो कृष्ण के आनन्द मे यह स्त्रियों की फुलवारी फल-फूल रही हो॥ ५६०॥ ॥ सवैया॥ उस सौदर्य का वर्णन करता हुआ सखियो की शोभा का वर्णन कवि श्याम करता है और कहता है कि उनके मुखों की उपमा चन्द्रकला के समान है और उनकी आँखे कमल के समान है। कवि उस सौदर्य को देखता हुआ कहता है कि वे आँखे लोगों के मन के क्लेशो को दूर करने वाली और मुनियो के मनो को भी लुभानेवाली है॥ ५६१॥ कोई शचि, कोई चन्द्रप्रभा, कोई कामकला तथा कोई साक्षात् काम की मूर्ति है। कोई विद्युच्छटा के समान है, किसी के दांत अनार के समान है और कोई तो ऐसी है जिसकी कोई तुलना नहीं है। विद्युत् और मृग की मृगी भी लजाकर अपने ही गर्व को चूर कर रही है। वही कथा कहता हुआ श्याम कवि कहता है कि सभी स्त्रियाँ श्रीकृष्ण की मूर्ति को देखकर मोहित हो रही है॥ ५६२॥ वृषभानु-सुता राधा ने अगम-अगाध कृष्ण से हँसकर एक बात कही और बात कहते समय अपने वस्त्र का भी त्याग कर दिया और कहा कि नृत्य के समय यदि तुम भी नृत्य करो तो अच्छा हो अन्यथा हमे लाज लगती रहती है। यह कहते हुए राधा का मुख ऐसा लगने लगा मानो बादलो से आधा चन्द्रमा बाहर आया हो॥ ५६३॥ गोपियो

है बिंदुआ जिन पीले। कंचन मा अरु चंद्रप्रभा जिनके तन लीन सभै फुन लीले। एक धरे सित सुंदर साज धरे इक लाल सजे इक नीले। स्याम कहै सोऊ रीझ रहै पिखिकै द्रिग कंज के कान्ह रसीले ॥ ५६४ ॥ ॥ स्वैया ॥ सभ ग्वारनिया तह खेलत है सुभ अंगन सुंदर साज कई। सोऊ रास बिखै तह खेलत है हरि सो मन मै अति ही उमई। कबि स्याम कहै तिन की उपमा जु हुती तह ग्वारनि रूप रई। मनो स्यामहि को तन गोरन पेखि कै स्यामहि सी सभ होइ गई ॥ ५६५ ॥ ॥ स्वैया ॥ केल कै रास मै रीझ रही कबि स्याम कहै मन आनंद कै कै। चंद्रमुखी तन कंचन भाह सि सुंदर बात कही उमगै कै। पेखत मूरत भी रस के बसि आपन ते बढ वाहि लखैकै। जिउँ म्रिगनी म्रिग पेखत तिउँ ब्रिखभान सुता भगवान चितै कै ॥ ५६६ ॥ ब्रिखभान (मू०ग्रं०३२७) सुता पिखि रीझ रही अति सुंदर सुंदर कान्ह को आनन। राजत तीर नदी जिहके सु बिराजत फूलन के जुत कानन। नैन के भावन सो हरि को मन मोहि लयो रस की अभिमानन। जिउँ रस

के सिर पर सिन्दूर शोभा दे रहा है और पीली बिंदियाँ भी शोभायमान हो रही है। कचनप्रभा और चन्द्रप्रभा का पूर्णशरीर सौदर्य ने आत्मसात् कर लिया है। किसी ने श्वेत, किसी ने लाल और किसी ने नीले वस्त्र धारण कर रखे है। कवि का कथन है कि कृष्ण के रसीले दृग-कजो को देखकर सभी मोहित हो रही है ॥ ५६४ ॥ ॥ सवैया ॥ अपने अगों को सजाकर सभी गोपियाँ वहाँ खेल रही हैं और उस रासलीला मे श्रीकृष्ण के साथ अत्यन्त ही उमगित हो वे क्रीड़ा कर रही है। कवि गोपियो के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि ऐसा लग रहा है, मानो श्याम का रूप देख सभी गोपियाँ श्यामवर्ण हो गयी हो ॥ ५६५ ॥ ॥ सवैया ॥ मन मे आनन्दित होकर क्रीडा के रस मे सभी गोपियाँ लिप्त हो रही है। कचन के समान शरीर वाली चन्द्रमुखी अत्यन्त उमग के साथ यह बात कह रही है कि श्रीकृष्ण की मूर्ति को देखकर उसका प्रेम-रस रोके नही रुकता और जिस प्रकार मृगी मृग को देखती है, उसी प्रकार राधा भगवान कृष्ण को देख रही है ॥ ५६६ ॥ राधा कृष्ण के सुन्दर मुख को देख मोहित हो रही है। कृष्ण के पास ही नदी वह रही है और फूलो के जगल शोभायमान हो रहे है। राधा के सकेतो ने कृष्ण के मन को मोह लिया है और उन्हे ऐसा लग रहा है कि उसकी भौहे धनुष जैसी हैं और नयनों

लोगन भउहन लै धनु नैनन सैन सु कंज से बानन ।। ५६७ ।।
कान सो प्रीत बढी तिन की न घटी कछु पै बढही सु भई है ।
डार कै लाज सभै मन की हरि के सग खेलण कौ उमई है ।
स्याम कहै तिन की उपमा अति ही जु त्रिया अति रूप रई है ।
सुंदर कान्हर कौ पिखि कै तनमै सभ ग्वारन होइ गई है ।।५६८।।
।। सवैया ।। नैन म्रिगी तन कचन के सम चंद्रमुखी मनो सिधरची
है । जा सम रूप न राजत है रति रावन त्रीय न अउर सची
है । ता महि रीझ महा करतार क्रिपा कट केहर कै सु गची है ।
ता संग प्रीत कहै कबि स्याम महा भगवानहि की सु मची
है ।। ५६९ ।। ।। स्वैया ।। रागन अउर सुभावन की अति
ग्वारन की तह मॉड परी । ब्रिज गीतन की अति हासन सो
जह खेलत भी कई एक घरी । गावत एक बजावत ताल कहै
इक नाचहु आइ अरी । कबि स्याम कहै तिह ठउर बिखै जिह
ठउर बिखै हरि रास करी ।। ५७० ।। जदुराइ को आइस पाइ
त्रिया सभ खेलत रास बिखे बिधि आछी । इंद्रसभा जिह सिध
सुता जिम खेलन के हित काछन काछी । कै इह किन्नर की
दुहिता किधौ नागन की किधौ है इह ताछी । रास बिखै इम

के संकेत फूलो के बाण जैसे ।। ५६७ ।। कृष्ण के साथ राधा की प्रीति घटने के बजाय बढती ही गयी और राधा का मन लज्जा को त्यागकर कृष्ण के साथ खेलने के लिए उत्साहित हो उठा । श्याम कवि का कथन है कि वे सभी स्त्रियाँ रूपवती हैं और श्रीकृष्ण के सौन्दर्य को देखकर सभी उसमे तन्मय हो गयी है ।। ५६८ ।। ।। सवैया ।। गोपियों के नयन मृगियों के समान, उनका तन सोने का बना हुआ, मुख चन्द्रमा के समान तथा वे स्वयं लक्ष्मी के समान है । उनके समान मन्दोदरी, रति और शचि का भी रूप नही है । उस पर परमात्मा ने कृपा कर उनकी कटि शेर के समान पतली बनाई है । उन सबके साथ भगवान का प्रेम अत्यन्त विकट रूप से चल रहा है ।। ५६९ ।। ।। सवैया ।। रागों और विभिन्न वेशों की वहाँ मडली लगी हुई है । व्रज के गीतो और हँसी मे लोटपोट सभी वहाँ कई घड़ियो तक खेल रहे हैं । कोई गा रही है, कोई ताल बजा रही है और कोई वहाँ आकर नृत्य कर रही है जहाँ श्याम कृष्ण ने रासलीला की ।। ५७० ।। यदुराज कृष्ण की आज्ञा पाकर सभी स्त्रियाँ भली प्रकार से उसी प्रकार रासलीला करने लगी जैसे इन्द्रसभा मे अप्सरा नृत्य करती है । ये सब मानो किन्नरो की पुत्रियाँ है अथवा नागकन्याएँ हैं ।

नाचत है जिम केल करै जल भीतर माछी ।। ५७१ ।। जिह के मुखि देखि छटा सुभ सुंदर मद्धिम लागत जोति ससी है। भउहन भाइ सो छाजत है मद लै मनो तान कमान कसी है। ताही के आनन सुंदर ते सुर रागह की सभ भाँत बसी है। जिउँ मधु बीच फसै मखियाँ मत लोगन की इह भाँत फसी है ।। ५७२ ।। ।। सवैया ।। फिरि सुंदर आनन ते हरिजू बिधि सुंदर सो इक तान बजायो । सोरठ सारंग सुद्ध मलहार बिलावल की सुर भीतर गायो । सो अपने सुण स्रउनन मै ब्रिज ग्वारनिया अति ही सुखु पायो । मोहि रहे बन के खग अउ म्रिग रीझ रहे जिनहू सुनि पायो ।। ५७३ ।। ।। सवैया ।। तह गावत गीत भले हरिजू कवि स्याम कहै करि भाव छबै । मुरली जुतु ग्वारनि भीतर (मू०ग्रं०३२८) राजत ज्यो म्रिगनी म्रिग बीच फबै । जिह को सभ लोगन मै जसु गावत छूटत है तिनते न कबै । तिन खेलन को मन गोपिन को छिन बीच लियो फुन चोर सबै ।। ५७४ ।। ।। सवैया ।। कबि स्याम कहै उपमा तिन की जिन जोबन रूप अनूप गह्यो है । जा मुख देख अनंद

ये सभी रासलीला मे ऐसे नृत्य कर रही है जैसे जल मे मछली विचरण कर रही हो ।। ५७१ ।। इन गोपियो के सौन्दर्य को देखकर चन्द्रमा की ज्योति भी फीकी लग रही है। उनकी भौहै ऐसे कसी हुई है मानो कामदेव ने अपनी कमान को कस रखा हो। उनके सुन्दर मुख में सभी स्वर बसे हुए है और लोगो का मन उनकी वाणी मे ऐसा फँसा है जैसे मधु के बीच मक्खियाँ फँस जाती है ।। ५७२ ।। ।। सवैया ।। फिर श्रीकृष्ण ने अपने सुन्दर मुख से एक सुन्दर तान बजाई और सोरठ, सारग, शुद्ध मल्हार और बिलावल का सस्वर गायन किया। इसे सुनकर व्रज की ग्वालिनो ने अत्यन्त सुख प्राप्त किया। सुन्दर ध्वनि को पक्षी और मृग भी सुनकर मोहित हो गये और जिसने भी उनके रागो को सुना प्रसन्न हो उठा ।। ५७३ ।। ।। सवैया ।। वहाँ सुन्दर भावो के साथ गीत गाते हुए कृष्ण शोभायमान हो रहे है। मुरली से युक्त वे गोपियो के मध्य ऐसे शोभायमान हो रहे है जैसे मृगियो के बीच मृग शोभा पाता है। जिसके यश का गुणानुवाद सभी करते हैं, वह कभी भी लोगो से दूर नही हो सकता। उसने गोपियो से खेलने के लिए उनका मन चुरा लिया है ।। ५७४ ।। ।। सवैया ।। कवि श्याम उसकी प्रशसा कर रहा है जिसका रूप अनुपम है, जिसके दर्शन करने से आनन्द बढ़ता है और जिसकी बात को सुनकर

बढ्यो जिह को सुन स्त्रउनन शोक दह्यो है। आनंद कै ब्रिखभान सुता हरिके संग ज्वाब सु ऐस कह्यो है। ताके सुनि त्रिय मोहि रही सुनिकै जिह को हरि रीझ रह्यो है॥ ५७५॥ ॥ सवैया॥ ग्वारनिया मिलकै संगि कान्ह के खेलत है कबि स्याम सबै। न रही तिन को सुध अंगन की नहि चीरन की तिन को सु तबै। सु गनो कह लउ तिन की उपमा अति ही गनकै मन ताकी छबै। मन भावन गावन की चरचा कछु थोरी यहै सुन लेहु अबै॥५७६॥ ॥ कान बाच॥ ॥ दोहरा॥ बात कही तिन सो क्रिशन अति ही बिहसि कै चीत। मीत रसहि की रीत सो कह्यो सु गावहु गीत॥ ५७७॥ ॥ सवैया॥ बतिआ सुनि कै सभ ग्वारनिया सुभ गावत सुंदर गीत सभै। सिध सुता रु घ्रिताची त्रिया इनसी नही नाचत इंद्र सभै। दिब्या इनके संगि खेलत है गज को कबि स्याम सु दान अभै। चड़ कै सु बिवानन सुंदर मै सुर देखत आवत त्याग नभै॥५७८॥ ॥ सवैया॥ त्रेतहि हो जिन राम बली जग जीत मर्यो सु धर्यो अति सीला। गाइ कै गीत भली बिध सौ फुन ग्वारनि बीच करै रस लीला। राजत है जिह को तन स्याम

सभी प्रकार के शोको का नाश होता है। वृषभानु की पुत्री राधा आनन्दित होकर श्रीकृष्ण से वार्त्तालाप कर रही है और उसे सुनकर स्त्रियाँ भी मोहित हो रही है और श्रीकृष्ण भी प्रसन्न हो रहे हैं॥ ५७५॥ ॥ सवैया॥ कवि श्याम का कथन है कि सभी ग्वालिने मिलकर कृष्ण के साथ खेल रही हैं और उनको न अगो की तथा न वस्त्रो की सुध है। उनकी शोभा का वर्णन कहाँ तक करूँ, उनकी छवि मन मे गड़ गयी है। अब मैं थोडी चर्चा उनके मनभावन की करूँगा॥ ५७६॥ ॥ कृष्ण उवाच॥ ॥ दोहा॥ कृष्ण ने मन मे मुस्कुराकर गोपियो से कहा कि हे मित्रो! रस की रीति निभाते हुए कुछ गीत गाओ॥ ५७७॥ ॥ सवैया॥ बात को सुनकर सभी ग्वालिने सुन्दर गीत गाने लगी। लक्ष्मी और इन्द्र के दरबार की अप्सरा घृताची भी इनके समान नृत्य-गान नही कर सकती। ये गजगामिनियाँ अभय होकर दिव्य रूप से कृष्ण के संग खेल रही है और इनकी रासलीला को देखने के लिए आकाश छोड़कर विमानों पर बैठकर देवगण भी आ रहे है॥ ५७८॥ ॥ सवैया॥ त्रेतायुग मे जिस राम बली ने जगत को जीतकर शील-धर्म का निर्वाह किया था, वही अब भलीभाँति गीत गाता हुआ ग्वालिनो के संग रासलीला कर रहा है।

बिराजत ऊपर को पट पीला । खेलत सो संगि गोपन के कबि स्याम कहै जदुराइ हठीला ॥ ५७९ ॥ ॥ सवैया ॥ बोलत है जह कोकिलका अरु शोर करै चहूँ ओर रटासी । स्याम कहै तिह स्याम की देह रजै अति सुंदर सैन घटा सी । ता पिखि कै मन ग्वारन ते उपजी अति ही मनो घोर घटा सी । ता महि यौ ब्रिखभान सुता दमकै मनो सुंदर बिज्जु छटा सी ॥ ५८० ॥ ॥ सवैया ॥ अंजन है जिह आँखन मै अरु बेसर को जिह भाव नवीनो । जा मुख की सम चंद प्रभा जस ता छबि को कबि ने लख लीनो । साज सभै सजकै सुभ सुंदर भाल बिखै बिंदुआ इक दीनो । देखत ही हरि रीझ (मू०ग्रं०३२६) रहै मन को सभ शोक बिदा करि दीनो ॥ ५८१ ॥ ॥ सवैया ॥ ब्रिखभान सुता संग खेलन की हसि कै हरि सुंदर बात कहै । सुनऐ जिह के मन आनंद बाढत जा सुनकै सभ शोक दहै । तिह कउतक कौ मन गोपिन को कबि स्याम कहै दिखबोई चहै । नभि मै पिखिकै सुर गंध्रब जाइ चल्यो नही जाइ सु रीझ रहै ॥ ५८२ ॥ ॥ सवैया ॥ कबि स्याम कहै तिह को उपमा जिह के फुन ऊपर पीत पिछउरी । ताही के आवत है चलिकै ढिग सुंदर गावत

उसके सुन्दर शरीर पर पीताम्बर शोभायमान हो रहा है और गोपियों के साथ क्रीड़ा करनेवाला वह हठीला यदुराज कहला रहा है ॥ ५७९ ॥ ॥ सवैया ॥ जिसको देखकर कोयल बोल रही है और मोर भी रट लगा रहा है, उस श्याम का शरीर कामदेव की घटाओ के समान लग रहा है। कृष्ण को देखकर गोपियों के मन मे भी घनघोर घटाएँ उठने लगी और इन सबमे राधा विजली के समान दमक रही है ॥ ५८० ॥ ॥ सवैया ॥ जिन आँखो मे अंजन है और नाक मे नाक का गहना है, जिस मुख की शोभा कवि ने चन्द्रप्रभा के समान देखी है, जिसने सब प्रकार से सज-धजकर माथे पर बिन्दी लगा रखी हो, उस राधा को देखते ही श्रीकृष्ण मोहित हो गये और उनके मन का सारा शोक समाप्त हो गया ॥ ५८१ ॥ ॥ सवैया ॥ श्रीकृष्ण ने हँसकर राधा के साथ खेलने की वह बात कही, जिसको सुनकर मन आनन्दित होता है और शोक का नाश हो जाता है। गोपियों का मन इस लीला को देखते ही रहना चाहता है। गगनमडल में भी देवता और गन्धर्व यह देखकर आगे नही बढ़ रहे है और मोहित हो रहे है ॥ ५८२ ॥ ॥ सवैया ॥ कवि श्याम उसकी प्रशंसा करता है, जिस पर पीताम्बर है। उसी के पास सारंग और गौड़ी राग गाती हुई

सारंग गउरी। सावलियाँ हरि के ढिग आइ रही अति रीझ इकावत वउरी। इउ उपमा उपजी लखि फूल रही लपटाइ मनो त्रिय भउरी॥ ५८३॥ ॥ सवैया॥ स्याम कहै तिह की उपमा जोऊ दैतन को रिपु बीर जसी है। जो तप बीच बडो तपिआ रस बातन मै अति ही जू रसी है। जाही को कठ कपोत सो है जिह भा मुख की सम जोति ससी है। ता म्रिगनी त्रिय मारन कौ हरि भउहनि की अर पंच कसी है॥ ५८४॥ ॥ सवैया॥ फिरिकै हरि ग्वारन के संग हो फुन गावत सारंग रामकली है। गावत है मन आनंद कै ब्रिखभान सुता संग जूथ अली है। ता संग डोलत है भगवान जोऊ अति सुंदर राधे भली है। राजत है जिह को सस सो मुख छाजत भा म्रिग कंज कली है॥ ५८५॥ ॥ सवैया॥ ब्रिखभान सुता संग बात कही कबि स्याम कहै हरि जू रस वारे। जा मुख की सम चंद्रप्रभा जिह के म्रिग से द्रिग सुंदर कारे। केहरि ही जिह की कट है तिनहूँ बचना इह भाँत उचारे। सो सुनि कै सभ ग्वारनिया मन के सभि शोक बिदा करि डारे॥ ५८६॥ ॥ सवैया॥ हसि कै तिह बात कही रस की सु प्रभा जिनहू

स्त्रियाँ चली आ रही है। श्याम रग की सुन्दरियो मे मोहित होकर (धीरे-धीरे) और कोई दौडकर चली आ रही है। वे ऐसी लग रही मानो कृष्ण रूपी फूल को देखकर भौरो के रूप मे स्त्रियाँ दौड़कर फूल से लिपट रही हो॥ ५८३॥ ॥ सवैया॥ श्याम कवि उसकी प्रशसा करता है जो दैत्यों का शत्रु है, यशस्वी है, जो तपियो मे बड़ा तपी और रसिको मे महान् रसिक है। जिसका कठ कपोत (कबूतर) के समान है और मुख की आभा चन्द्र के समान है। उसी ने मृगी रूपी स्त्रियो को मारने के लिए भौहो के बाण कसे हुए है॥ ५८४॥ ॥ सवैया॥ श्रीकृष्ण ग्वालिनों के साथ घूमते हुए सारग और रामकली राग गा रहे है। इधर राधा भी सखियो के झुड के साथ आनन्दित होकर गा रही है। उसी झुड मे अत्यन्त सुन्दर राधा के साथ भगवान विचरण कर रहे है। उस राधिका का मुख चन्द्र के समान है और नेत्र कमल की कलियो के समान है॥ ५८५॥ ॥ सवैया॥ रसिक श्रीकृष्ण ने राधा के साथ बात की। राधा के मुख की शोभा चन्द्र के समान और आँखे मृग की काली आँखों के समान है। जिस राधा की कमर शेर के समान पतली है, उसको जब इस भाँति श्रीकृष्ण ने कहा तो ग्वालिनों के मन के सब शोक नष्ट हो गये॥ ५८६॥

बड़वानल लीली। जो जग बीच रह्यो रवि कै नर कै तरु कै गज अउर पपीली। मुख ते तिन सुंदर बात कही सग ग्वारन के अति ही सु रसीली। ता सुनिकै सभ रीझ रही सुन रीझ रही ब्रिखभान छबीली॥ ५८७॥ ॥ सवैया॥ ग्वारनिया सुनि स्रउनन मै बतिआ हरि की अति ही मन भीनो। कंठसिरी अरु बेसर मॉग धरे जोऊ सुंदर साज नवीनो। जो अवतारन ते अवतार कहै कबि स्याम जु है सु नगीनो। ताहि किधौ अति ही (मू०ग्रं०३३०) छलकै सु चुराइ मनै मन गोपिन लीनो॥ ५८८॥ कान्हर सौ ब्रिखभान सुता हसि बात कही संग सुंदर ऐसे। नैन नचाइ महा म्रिग से कबि स्याम कहै अति ही सु रुचै से। ता छबि की अति ही उपमा उपजी कबि के मन ते उमगैसे। मानहु आनंद कै अति ही मनो केल करै पति सो रति जैसे॥ ५८९॥ ॥ सवैया॥ ग्वारन कौ हरि कंचन से तन मै मन की मन तुल्लि खुभा है। खेलत है हरिके संग सो जिनकी बरनी नही जात सुभा है। खेलन को भगवान रची रस के हित चित्र बचित्र सभा है। यौ उपजी उपमा तिन मैं

॥ सवैया॥ जिस भगवान ने बडवानल को भी पी लिया था, उसने हँसकर बात की। वह भगवान, जो सारे जगत मे और जगत के समस्त पदार्थों, सूर्य, नर, हाथी और कीड़े तक मे विराजमान है, उसने ग्वालिनो के साथ अत्यन्त रसदायक बाते की। उनकी बातो को सुनकर सभी गोपियाँ और राधा मोहित हो रही॥ ५८७॥ ॥ सवैया॥ ग्वालिने कृष्ण की बाते सुनकर अत्यन्त ही आनन्दित हुई। वे गले मे हार, मॉग मे बेसर धारण करके सज-धज गयी। उन सबने अवतारो के अवतार श्रीकृष्ण रूपी नगीनें को भी धारण कर रखा है और अत्यन्त छलपूर्वक उसको चुराकर गोपियो ने अपने मन मे छिपा रखा है॥ ५८८॥ राधा ने कृष्ण के साथ हँसकर बात करते हुए नयनो को नचाया। उसके नयन मृग के समान अत्यन्त सुन्दर हैं। उस छवि की प्रशसा करते हुए कवि कहता है कि वह इस प्रकार से प्रेम-क्रीड़ा आनन्दपूर्वक कर रही है जैसे रति कामदेव के साथ रमण कर रही है॥ ५८९॥ ॥ सवैया॥ गोपियो का मन कृष्ण के तन के साथ नग की तरह जड गया है। वे उस कृष्ण के साथ खेल रही है जिसके स्वभाव का वर्णन नही किया जा सकता। भगवान ने भी खेलने के लिए इस विचित्र सभा की रचना की है और इसमे राधा चन्द्रकला के

ब्रिखभान सुता मनो चंद्रप्रभा है ॥५६०॥ ॥ सवैया ॥ ब्रिखभान सुता हरि आइस मान कै खेलत भी अति ही स्रम कै । गहि हाथ सो हाथ त्रिया सभ सुंदर नाचत रास बिखै भ्रम कै । तिह की सु कथा मन बीच बिचार करै कबि स्याम कही क्रम कै । मनो गोपिन के घन सुंदर मै ब्रिज भामन दामन जिउं दमकै ॥ ५६१ ॥ ॥ दोहरा ॥ पिखिकै नाचत राधका क्रिशन मनै सुख पाइ । अति हुलास जुत प्रेम छक मुरली उठ्यो बजाइ ॥ ५६२ ॥ ॥ सवैया ॥ नट नाइक सुध मल्हार बिलावल ग्वारन बीच धमारन गावै । सोरठ सारंग रामकली सु बिभास भले हित साथ बसावै । गावहु ह्वै म्रिगनी त्रिय कौ सु बुलावत है उपमा जिय भावै । मानहु भउहन को कसिकै धनु नैनन के मनो तीर चलावै ॥५६३॥ ॥ सवैया ॥ मेघ मल्हार अउ देवगंधार भले गवरी करिकै हित गावै । जंतिसिरी अरु मालसिरी नट नाइक सुंदर भांत बसावै । रीझ रही ब्रिज की सभ ग्वारनि रीझ रहे सुर जो सुनि पावै । अउर की बात कहा कहियै तज इंद्रसभा सभ आसन आवै ॥ ५६४ ॥ खेलत रास मै स्याम कहै अति ही रस संग त्रिया मिलि तीनो । चंद्रभगा अरु

समान शोभायमान हो रही है ॥ ५९० ॥ ॥ सवैया ॥ राधा कृष्ण की आज्ञा मानकर पूर्ण मन लगाकर श्रम के साथ खेल रही है । सभी स्त्रियाँ हाथ में हाथ पकडकर रासलीला में घूम-घूमकर नृत्य कर रही है । उनकी कथा को कहते हुए कवि कहता है कि गोपियो के झुड रूपी बादलों मे व्रज की वे सुन्दरतम स्त्रियाँ विजली के समान दमक रही है ॥ ५९१ ॥ ॥ दोहा ॥ राधिका को नृत्य करते देखकर कृष्ण को मन मे सुख प्राप्त हुआ और अत्यन्त उल्लसित तथा प्रेम-पूर्ण होकर वे मुरली बजा उठे ॥ ५९२ ॥ ॥ सवैया ॥ नटनायक कृष्ण शुद्ध मल्हार, बिलावल, सोरठ, सारग, रामकली तथा विभास आदि राग गाने और बजाने लगे । वे गाकर मृग रूपी स्त्रियों को बुलाने लगे और ऐसा लगने लगा कि मानो भौहो के धनुष पर नयनो के बाणो को कसकर वे चला रहे हैं ॥ ५९३ ॥ ॥ सवैया ॥ मेघमल्हार, देवगन्धर्व, गौडी, जैतश्री, मालश्री आदि सुन्दर रागो को श्रीकृष्ण गा रहे है और बजा रहे है । व्रज की सभी गोपियाँ और सभी देवगण जो भी इसको सुन रहे हैं, सभी मोहित हो रहे है । और क्या कहा जाय, इन्द्रसभा भी अपने आसनो को त्यागकर इन रागों को सुनने के लिए चली आ रही है ॥ ५९४ ॥ रास मे खेलते हुए श्रीकृष्ण

चंद्रमुखी ब्रिखभान सुता सज साज नवीनो। अंजन आँखन दै बिंदुआ इक भाल में सेधर सुंदर दीनो। यौ उपजी उपमा त्रिय के सुभ भाग प्रकाश अबै सनो कीनो ॥ ५९५ ॥ ॥ सवैया ॥ खेलत कान्ह सो चंद्रभगा कबि स्याम कहै रस जो उमह्यो है। प्रीत करी अति ही तिह सो बहु लोगन को उपहास सह्यो है। मोतिन माल ढरी गर ते (मू०ग्रं०३३१) कबि ने तिह को जस ऐसे कह्यो है। आनन चंद्र मनो प्रगटै छपि कै अंधिआर पतार गयो है ॥ ५९६ ॥ ॥ दोहरा ॥ ग्वारन रूप निहार कै इउ उपज्यो जिय भाव। राजत ज्यो महि चाँदनी कंजन सहित तलाव ॥ ५९७ ॥ ॥ सवैया ॥ लोचन है जिन के सु प्रभा धर आनन है जिन को सम मैना। कै कै कटाछ चुराइ लयो मन पै तिन को जोऊ रच्छक धैना। केहरि सी जिन की कट है सु कपोत सो कंठ सु कोकिल बैना। ताहि लयो हरि कै हरि को मन भउह नचाइ नचाइकै नैना ॥ ५९८ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह बिराजत ग्वारन मै कबि स्याम कहै जिन को कछु भउ ना। तात की बात को नैक सुनै जिम कै संग भ्रात

सजी-धजी चन्द्रभगा, चन्द्रमुखी और राधा से अत्यन्त रसपूर्ण बाते कर रहे हैं। इन गोपियो की आँखो मे अजन, माथे पर बिंदिया और सिन्दूर शोभायमान हो रहा है और ऐसा लग रहा है कि इन स्त्रियो का भाग्य मानो अभी-अभी उदित हुआ हो ॥ ५९५ ॥ ॥ सवैया ॥ चन्द्रभगा और कृष्ण के साथ-साथ खेलने पर घनघोर रस-वर्षा हुई। इन गोपियों ने भी श्रीकृष्ण से प्रेम करके बहुत से लोगो के उपहास को सहा। इसके गले से मोतियो की माला गिर गयी है और कवि कहता है कि ऐसा लग रहा है मानो चन्द्रमुख प्रकट होते ही अन्धकार पाताललोक मे जा छिपा है ॥ ५९६ ॥ ॥ दोहा ॥ गोपियो के रूप को देखकर ऐसा लगता है मानो चाँदनी रात मे कमल के फूलो वाला सरोवर शोभायमान हो रहा है ॥ ५९७ ॥ ॥ सवैया ॥ जिनके नेत्र कमल के समान है और बाकी शरीर कामदेव के समान है। उन सबका गायो के रक्षक श्रीकृष्ण ने सकेत कर-करके मन चुरा लिया है। जिनकी कमर शेर के समान, कठ कपोत के समान और वाणी कोयल के समान है, उनके मन को श्रीकृष्ण ने भौहो और नयनो के सकेत कर-करके हर लिया है ॥ ५९८ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण उन गोपियो मे विराजमान है जिनको किसी का भय नही है। वे उस राम रूपी कृष्ण के साथ रमण कर रही है, जो पिता की बात सुनते ही

क्र्यो बन गउना। ताकी लटै लटकै तन मो जोऊ साधन के मन ग्यान दिवउना। संदल पै उपजी उपमा मनो लाग रहे अहिरांजन छउना ॥ ५९९ ॥ ॥ सवैया ॥ खेलत है सोऊ ग्वारन मै जोऊ ऊपर पीत धरेउ परउना। जो सिर शत्रन के हरिता जोऊ साधन को बरदान दिवउना। बीच रह्यो जग के रवि के कबि स्याम कहै जिह को पुन छउना। राजत यों अलकै तिमकी मनो चंदन लाग रहै अहि छउना ॥ ६०० ॥ ॥ सवैया ॥ कीर से नाक कुरंग से नैनन डोलत है सोऊ बीच त्रिया मै। जो मन शत्रन बीच रव्यो जु रह्यो रवि साधन बीच हिया मै। ता छबि को जस उच्च महाँ इह भाँतन सो फुन उचरी या मै। ता रस की हम बात कही जोऊ रावन के सु बस्यो है जिया मै ॥ ६०१ ॥ ॥ सवैया ॥ खेलत संग ग्वारन के कबि स्याम कहै जोऊ कान्हर काला। राजत है सोइ बीच खरो सु बिराजत है गिरदे तिह बाला। फूल रहै जह फूल भली बिधि है अति ही जह चंद उजाला। गोपिन नैनन की सु मनो पहरी भगवान सु कजन माला ॥ ६०२ ॥

भाई के साथ वन को गमन कर गया था। उसकी केशराशि की लटे ऐसी है, जो साधुओ को भी ज्ञान से प्रकाशित करनेवाली है और वे ऐसी भी लग रही है, मानो चन्दन पर काले नागो के बच्चे चढे हुए है ॥ ५९९ ॥ ॥ सवैया ॥ जिसने पीताम्बर धारण कर रखा है वह गोपियो के साथ खेल रहा है। यही शत्रुओ का नाश करनेवाला और साधुओ को वरदान देनेवाला है। वह जगत मे, आकाश मे, सूर्य, मे सबमे विराजमान है और कभी भी उसका क्षय नही होता। उसकी अलके मस्तक पर ऐसे शोभायमान हो रही हैं, मानो चन्दन पर साँप के बच्चे लटक रहे हैं ॥ ६०० ॥ ॥ सवैया ॥ जिसकी नासिका तोते के समान, नेत्र हिरण के समान है, वह स्त्रियो के साथ विचरण कर रहा है। जो हमेशा शत्रुओं के मन मे भी तथा साधुओ के मन मे भी बना रहता है, उसकी छवि का वर्णन करता हुआ मैं कहता हूँ कि यह वही (राम) है जो रावण के हृदय मे भी विराजमान था ॥ ६०१ ॥ ॥ सवैया ॥ श्याम वर्णवाले कृष्ण गोपियो के साथ खेल रहे है। वे बीच मे खड़े है और उनके चारो ओर बालिकाएँ है। वे ऐसे लग रहे हैं, मानो फूल भली प्रकार खिले हुए हो अथवा चन्द्रमा की चाँदनी बिखरी हुई हो। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो श्री भगवान ने गोपियों के नयन रूपी फूलो की माला धारण कर रखी हो ॥ ६०२ ॥

।। दोहरा ।। बरनन चंद्रभगा कह्यो अति निरमल कै बुद्ध। उपमा ताहि तनउर की सूरज सी है सुद्ध ।। ६०३ ।।
।। सवैया ।। स्याम के धा पिखि स्याम कहै अति लाजहि को फुन जाल अटे हैं। जाकी प्रभा अति सुंदर पै सुभ भावन भाव सु वार सुटे हैं। जिह को पिखि कै जन रीझ रहै सु मुनीन के पेखि धिआन छुटे हैं। राजत राधे अहीर तनउर के मानहु सूरज से प्रगटे हैं (मू०ग्रं०३३२) ।। ६०४ ।। ।। सवैया ।। खेलत है सोऊ ग्वारन मै जिह को ब्रिज है अति सुंदर डेरा। जाही के नैन कुरंग से है जसुधा जू को बालक नंदहि केरा। ग्वारन सो तहि घेर लयो कहिबे जस को उमग्यो मन मेरा। मानहु मैन सो खेलन काज कर्यो मिल कै मनो चाँदन घेरा ।। ६०५ ।। ग्वारन रीझ रही हरि पेखि सभै तजि लाजि सु अउ डर सासो। आई है त्याग सोऊ ग्रिह पै भरतार कहे न कछू कहि मासो। डोलत है सोऊ ताल बजाइ कै गावत है करि कै उपहासो। मोहि गिरै धर पै सु त्रिया कबि स्याम कहै चितवै हरि जासो ।। ६०६ ।। ।। सवैया ।। जो जुग तीसर है करता जोऊ

।। दोहा ।। अति निर्मल बुद्धि वाली चन्द्रभगा का वर्णन किया गया है, उसका तन सूर्य के समान शुद्ध रूप से देदीप्यमान है ।। ६०३ ।। ।। सवैया ।। श्याम के पास जाकर वे कृष्ण नाम लेकर अत्यन्त लजायमान होकर पुकार रही है। उसकी सुन्दर प्रभा पर अनेको भाव न्योछावर हो रहे है, जिसको देखकर सभी लोग प्रसन्न हो रहे है और मुनियो के भी ध्यान छूट गये हैं। वह राधिका सूर्य के समान प्रकट होकर शोभायमान हो रही है ।। ६०४ ।। ।। सवैया ।। गोपियो के साथ वे कृष्ण खेल रहे है, जिनका सुन्दर घर व्रज मे है। उसी के नेत्र हिरण के समान हैं और वही नन्द और यशोदा का बालक है। गोपियो ने उसको घेर लिया है और मेरा मन भी उसकी प्रशंसा करने के लिए उत्साहित हो उठा है। वे ऐसे लग रहे हैं मानो कामदेव के साथ खेलने के लिए अनेको चन्द्रमाओ ने कामदेव को घेर लिया है ।। ६०५ ।। सास इत्यादि का डर और लज्जा को त्यागते हुए कृष्ण को देखकर सभी गोपियाँ मोहित हो रही है। वे अपने घरो पर बिना कुछ कहे पतियो को भी त्यागकर चली आईं और हँसती हुई तथा ताल बजाती-गाती हुई इधर-उधर घूम रही हैं। जिसको भी श्रीकृष्ण देख लेते है, वही मोहित होकर धरती पर गिर पडती है ।। ६०६ ।। ।। सवैया ।। जो त्रेतायुग का स्वामी है और जिसने पीताम्बर धारण कर रखा है; जिसने महाबली

है तन पै धरिया पट पीले । जाहि छल्यो बलिराज बली जिन शत्र हने कर कोप हठीले । ग्वारन रीझ रही धरनी जु धरे पट पीतन पै सु रंगीले । जिउँ म्रिगनी सर लाग गिरै इह तिउँ हरि देखत नैन रसीले ।। ६०७ ।। ।। सवैया ।। कान्हर के संग खेलत सो अति ही सुख को करकै तन मै । स्याम ही सो अति ही हित कै चित कै नहि बंधन अउ धन मै । धर रंगनि बस्त्र सभै तहि डोलत यौं उपमा उपजी मन मै । जोउ फूल मुखी तह फूल कै खेलत फूल सी होइ गई बन मै ।। ६०८ ।। ।। सवैया ।। सभ खेलत है मन आनंद कै भगवान को धार सभै मन मैं । हरि के चितबे की रही सुध एक न अउर रही न कछू तन मैं । नही भूतलु मैं अरु मातलु मैं इन सो नहि देवन के गन मैं । सोऊ रीझ सो स्याम कहै अति ही फुन डालत ग्वारन के गन मैं ।। ६०९ ।। ।। सवैया ।। हसिकै भगवान कही बतिया ब्रिखभान सुता पिख रूप नवीनो । अंगन आड धरे पुन बेसर भाव सभै जिन भावन कीनो । सुंदर सेंधर को जिन लै करि भाल बिखै बिंदुआ इक दीनो । नैन नचाइ मनै सुख पाइ चितै

राजा बलि को छला था और क्रोधित होकर हठीले शत्रुओं का नाश किया था; उसी पर ये गोपियाँ मोहित हो रही है, जिसने रँगीले पीले वस्त्र धारण कर रखे है। जिस प्रकार मृगियाँ बाण लगने से गिर पड़ती है, उसी प्रकार का प्रभाव श्रीकृष्ण के रसिक नेत्रो का हो रहा है ।। ६०७ ।। ।। सवैया ।। मन मे अत्यन्त सुख मानते हुए गोपियाँ श्रीकृष्ण के साथ खेल रही है और कृष्ण के साथ प्रेम करने मे किसी भी प्रकार का बन्धन नही मान रही है। उनके वस्त्र और वे सब इस प्रकार डोलती फिर रही हैं, जिस प्रकार फूलो का रस लेनेवाली मक्खी फूलो के साथ खेलते हुए वन में फूलो के साथ ही एकात्म हो जाती है ।। ६०८ ।। ।। सवैया ।। मन मे भगवान को धारण किए हुए आनन्दित होकर सभी खेल रही है और उनको केवल कृष्ण को देखने के अलावा किसी और की सुधि नही रही। इनका मन न तो पाताल मे, न इस मृत्युलोक मे और न देवलोक मे है, अपितु वे मोहित होकर गोपीराज कृष्ण के साथ ही डोल रही हैं ।। ६०९ ।। ।। सवैया ।। राधा का नवीन सुन्दर रूप देखकर भगवान श्रीकृष्ण ने उससे बाते की। उसने अंगो पर विभिन्न भावो को दर्शानेवाले आभूषण धारण कर रखे थे। उसने सिन्दूर की बिन्दी मुख पर लगा रखी थी और नयनो को नचाते हुए मन को अत्यन्त सुख दे रही थी। उसको देखकर

जदुराइ तबै हसि दीनो ॥ ६१० ॥ ॥ सवैया ॥ बीन सी ग्वारनि गावत है सुनके कहु सुंदर कान्हर कारे। आनन है जिनको ससि सो सुर ब्राजत कंजन से द्रिग भारे। झाझन ताकी उठी धर पै धुन ता छवि को कबि स्याम उचारे। ढोलक संग तंबूरन होइ उठे तह बाज म्रिदंग नगारे॥ ६११ ॥ खेलत ग्वारनि प्रेम (मू०ग्रं०३३३) छकी कबि स्याम कहै संग कान्हरे कारे। छाजत जा मुख चंद्रप्रभा सम राजत कंजन से द्रिग भारे। जा पिखि कंद्रप रीझ रहै पिखिए जिह के म्रिग आदिक हारे। केहरि कोकिल के सभ भाव किधो इन पै गन ऊपर वारे ॥६१२॥ ॥ सवैया ॥ जाहि भभीछन राज दियो जिनहूँ बर रावन सो रिपु साधो। खेलत है सोऊ भूमि बिखै ब्रिज लाज जहाजन को तज बाधो। जाहि निकास लयो मुर प्रान सु माप लियो बल को तन आधो। स्याम कहै संग ग्वारन के अत ही रस कै सोऊ खेलत माधो ॥६१३॥ ॥ सवैया ॥ जो मुर नाम महा रिप पै कुप कै अति ही डरिया फुन भीरनि। जो गज संकट को कटिया हरि ता जोऊ साधन के दुखपीरनि। सो ब्रिज मै जमुना तट पै

यदुराज श्रीकृष्ण मुस्कुरा दिये ॥ ६१० ॥ ॥ सवैया ॥ वीणा की-सी मधुर वाणी मे गोपियाँ गा रही है और कृष्ण सुन रहे है। इनका मुख चन्द्रमा के समान और नेत्र वडे-वड़े कमलों के समान, उनकी झांझरो की झंकार ऐसी उठी है कि उसी मे ढोलक, तानपूरा, मृदग, नगाड़े आदि वाद्यो के स्वर सुनाई पड़ रहे हैं ॥ ६११ ॥ गोपियाँ प्रेम-पूर्वक उन्मत्त होकर काले कृष्ण के साथ खेल रही है। उनके मुख की शोभा चन्द्रमा के समान और उनके नेत्र बड़े-वड़े कमलो के समान है, जिनको देखकर कामदेव भी मोहित हो रहा है और मृग आदि भी हृदय हार बैठे है। शेर और कोयल मे अवस्थित सभी भाव श्रीकृष्ण इन पर न्योछावर कर रहे हैं ॥ ६१२ ॥ ॥ सवैया ॥ जिसने विभीषण को राज्य दिया और रावण जैसे शत्रु का नाश किया, वही सब प्रकार की लज्जा को त्यागकर व्रजभूमि मे खेल रहा है। जिसने मुर नामक राक्षक का प्राण निकाल लिया था और बलि का आधा तन नाप लिया था श्याम कवि कहता है कि वही माधव गोपियो के साथ रसपूर्वक क्रीडा कर रहा है ॥ ६१३ ॥ ॥ सवैया ॥ महा शत्रु मुर नामक दैत्य जिससे भयभीत हो उठा था। जिसने गज के सकट को काटा और जो साधुओ के दु:खो का हरण करनेवाला है, उसी ने व्रज मे यमुना के तट पर गोपियो के वस्त्र चुराये हैं और रस के चस्के मे फँसी

कबि स्याम कहै हरिया त्रिय चीरनि । ता करकै रस को चस को इह भाँत कह्यो गन बीच अहीरनि ।। ६१४ ।। ।। कानजू बाच गुवारन सो ।। ।। सवैया ।। केल करो हम संग कह्यो अपने मन मै कछु शंक न आनो । झूठ कह्यो नहि मानहु री कहियो हमरो तुम साच पछानो । ग्वारनिया हरि की सुन बात गई तज लाज कबै जस ठानो । रात बिखै तज झीलहि को नभ बीच चल्यो जिम जात टनानो ।। ६१५ ।। ।। स्वैया ।। ब्रिखभान सुता हरि के हित गावत ग्वारन के सु किधौ गन मै । इम नाचत है अति प्रेम भरी बिजली जिह भाँत घने घन मै । कबि ने उपमा तिह गाइब की सु बिचार कही अपने मन मै । रुत चेत की मै मन आनंद कै कुहकै मनो कोकिलका बन मै ।। ६१६ ।। ।। सवैया ।। हरि के संग खेलत रंग भरी सु त्रिया सज साज सभै तन मै । अति ही कर कै हित कान्हर सो कर कै नही बंधन औ धन मै । फुन ता छबि की अति ही उपमा उपजी कबि स्याम के यौ मन मै । मनो सावन मास के मद्ध बिखै चमकै जिम बिज्जुलता घन मै ।। ६१७ ।। स्याम सो सुंदर खेलत है कबि स्याम कहै अति ही रंग राची । रूप सची

हुई अहीर लड़कियो के वीच रमण कर रहा है ।। ६१४ ।। ।। कृष्ण उवाच गोपियो के प्रति ।। ।। सवैया ।। मेरे साथ नि:शक होकर क्रीड़ा करो । मैं तुमसे सच कह रहा हूँ, झूठ नही कह रहा हूँ । गोपियों ने कृष्ण की वात सुनकर लज्जा का त्याग कर कृष्ण के साथ क्रीड़ा करने की मन मे ठान ली । वह ऐसी लग रही थी जैसे रात्रि के समय कोई जुगनू झील के किनारे से उठकर आकाश की ओर बढ़ता है, इस प्रकार गोपियाँ कृष्ण की ओर वढ चली है ।। ६१५ ।। ।। सवैया ।। गोपियो के झुण्ड मे राधा कृष्ण के लिए गा रही है और इस प्रकार नृत्य कर रही है मानो वादलो मे बिजली चमक रही हो । कवि उसके गायन की प्रशसा करते हुए कहता है कि वह ऐसी लग रही है मानो चैत्र ऋतु मे वन मे कोयल कूक रही है ।। ६१६ ।। ।। सवैया ।। सभी स्त्रियाँ सज-धजकर कृष्ण के साथ अत्यन्त प्रेम करते हुए और सव बन्धनो का त्याग करते हुए प्रेम के रग मे रँगकर खेल रही है । पुन. कवि कहता है कि वे ऐसी लगती हैं, मानो सावन के महीने मे बादलो मे विजलियाँ चमक रही हो ।। ६१७ ।। कृष्ण के रग मे रँगी हुई वे सुन्दरियाँ सुन्दर खेल खेल रही है । उनका रूप शचि और रति के समान है और हृदय मे सच्चा प्रेम है । यमुना के

अरु पै रस की मन मै कर प्रीत सो खेलत साची। रास को खेल तटै जमना रजनी अरु द्योस बिद्धरक माची। चंद्रभगा अरु चंद्रमुखी ब्रिखभान सुता तज लाजहि नाची॥ ६१८॥ रास की खेल सु ग्वारनिया अति ही तह सुंदर भाँति रची है। लोचन है (मू०ग्रं०३३४) जिनके म्रिग से जिन के सम तुल्ल न रूप सची है। कंचन सो तिन को तन है मुख है ससि सो तह राधि गची है। मानो करी कर लै करता सुध सुंदर ते जोऊ बाकी बची हैं॥ ६१९॥ आई है खेलन रास बिखै सजकै सु त्रिया तन सुंदर बाने। पीत रँगे इक रंग कसुंभ के एक हरे इक केसर साने। ता छबि के जस उच्च महा कबि नै अपने मन मैं पहिचाने। नाचत भूम गिरी धरनी हरि देख रहो नही नैन अघाने॥ ६२०॥ ॥ सवैया॥ तिनको इतनो हित देखत ही अति आनंद सो भगवान हसे है। प्रीत बढी अति ग्वारन सो अति ही रस के फुन बीच फसे है। जा तन देखत पुंनि बढै जिह देखत ही सभ पाप नसे है। जिउँ ससि अग्र लसै चपला हरि दारम से तिम दाँत लसे है॥ ६२१॥ सँग गोपिन बात कही रस की जोऊ कान्ह रहै सभ दैत मरइया। साधन को

तट पर दिन-रात इनके रासलीला की धूम मची हुई है और वहाँ पर लज्जा का त्याग कर चन्द्रभगा, चन्द्रमुखी और राधा नृत्य कर रही हैं॥ ६१८॥ रासलीला का खेल इन गोपियो ने भली प्रकार से प्रारम्भ कर दिया है। इनकी आँखे मृग के समान है और शचि भी रूप मे इनके तुल्य नही है। इनका तन सोने के समान है और मुख चन्द्र के समान है। ऐसा लगता है कि जैसे समुद्र से निकले हुए बचे हुए अमृत से इनकी रचना की है॥ ६१९॥ सुन्दर वस्त्र पहनकर स्त्रियाँ खेल खेलने आयी है। किसी का वस्त्र पीले रग का है, किसी का लाल रग का है और किसी का केसर के साथ भीगा हुआ है। कवि कहता है कि नाचते-नाचते गोपियाँ धरती पर गिर जाती, परन्तु फिर भी उनका मन कृष्ण को देखने से नही भरता है॥ ६२०॥ ॥ सवैया॥ उनका इतना प्रेम देखकर भगवान कृष्ण हँस रहे है। उनका प्रेम गोपियो से इतना बढ गया है कि अब वे उनके प्रेम-रस मे फँस गये है। कृष्ण के शरीर को देखने से पुण्य की बृद्धि होती है और पापो का नाश होता है। जैसे चन्द्रमा शोभायमान होता है अथवा बिजली चमकती है अथवा अनार के दाने सुन्दर प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण के दाँत अच्छे लग रहे हैं॥ ६२१॥ दैत्यो का नाश करनेवाले श्रीकृष्ण गोपियो के साथ प्रेम की

जोऊ है बरता अउ असाधन को जोऊ नास करइया। रास बिखै सोऊ खेलत है जसुधा सुत जो मुसलीधर भइया। नैनन के कर कै सु कटाछ चुराइ मनो मति गोपिन लइया॥ ६२२॥ देवगंधार बिलावल सुद्ध मलार कहै कबि स्याम सुनाई। जैतसिरी गुजरी की भली धुन रामकली हूँ की तान बसाई। सथावर ते सुन कै सुरजो जड़ जंगम ते सुरजा सुन पाई। रास बिखै संग ग्वारनि के इह भाँत सो बंसुरी कान्ह बजाई॥ ६२३॥ दीपक अउ नट नाइक राग भली बिधि गउरी की तान बसाई। सोरठ सारंग रामकली सुर जैतसिरी सुभ भाँत सुनाई। रीझ रहै प्रिथमी के सभै जन रीझ रह्यो सुन कै सुर राई। तीर नदी संग ग्वारनि के मुरली करि आनंद स्याम बजाई॥ ६२४॥ ॥ सवैया॥ जिहके मुख की सम चंद्रप्रभा तन की तिह भा मनो कंचन सी है। मानहु लै कर मै करता सु अनूप सी मूरत याकी कसी है। चाँदनी मै गन गारनि के इह ग्वारन गोपिन ते सु हछी है। बात जु थी मन कान्हर के ब्रिखभान सुता सोऊ पै लख ली है॥६२५॥ ॥ कान्ह जू बाच राधे सो॥ ॥ दोहरा॥ क्रिशन राधका तन निरख कही बिहसि कै बात। म्रिग के अरु

[ब]ाते की। श्रीकृष्ण साधुओ के रक्षक और असाधुओं के नाश करनेवाले [है]। रासलीला मे यही यशोदा के पुत्र और बलराम के भाई खेल खेल [र]हे हैं तथा इन्होने ही आँखो के संकेतो से गोपियो के मन को चुरा लेया है॥ ६२२॥ राग देवगधारी, बिलावल, शुद्ध मल्हार, जैतश्री, गूजरी [औ]र रामकली की तान श्रीकृष्ण ने सुनाई, जिसे जड, जगम, देवकन्याओं [आ]दि सबने सुना। कृष्ण ने इस प्रकार गोपियो के साथ मुरली को [ब]जाया॥ ६२३॥ राग दीपक, गौड़ी, नट नायक, सोरठ, सारग, रामकली [औ]र जैतश्री की धुन श्रीकृष्ण ने भलीभाँति सुनाई, इसे सुनकर पृथ्वी के [नि]वासी और देवराज इन्द्र भी मोहित हो उठे। इस प्रकार गोपियो के [सा]थ आनन्दित होकर कृष्ण ने नदी के तट पर मुरली बजाई॥ ६२४॥ [॥] सवैया॥ जिसके मुख की शोभा चन्द्रप्रभा के समान है और जिसका [श]रीर सोने के समान है, जिसको परमात्मा ने मानो स्वय अनुपम [रू]प से बनाया हो, वह गोपियो के झुण्ड मे सबसे सुन्दर गोपी राधा [है] और उसने कृष्ण के मन मे जो बात थी उसको जान लिया है॥ ६२५॥ कृष्ण उवाच राधा के प्रति॥ ॥ दोहा॥ कृष्ण ने राधा के तन को [दे]खकर हँसते हुए कहा कि तुम्हारा तन मृग और कामदेव के समान सुन्दर

फुन मैन के तो मै सभ है गात ॥ ६२६ ॥ ॥ सवैया ॥ भाग को भाल (मू०ग्रं०३३५) हर्‌यो सुन ग्वारन छीन लई मुख जोत ससी है। नैन मनो सर तीछन है भ्रिकुटी मनु जान कमान कसी है। कोकिल बैन कपोत सो कंठ कही हमरे मन जोऊ बसी है। एते पै चोर लयो हमरो चित भामन दामन भाँत लसी है ॥ ६२७ ॥ कानर लै ब्रिखभान सुता संग गीत भली बिधि सुंदर गावै। सारंग देवगंधार बिभास बिलावल भीतर तान बसावै। जो जड़ स्रउनन मै सुन कै धुन त्याग कै धाम तहा कहु धावै। जो खग जात उडे नभि मै सुन ठाढ रहै धुन जो सुन पावै ॥ ६२८ ॥ ग्वारन संग भले भगवान सु खेलत है अरु नाचत ऐसे। खेलत है मन आनंद कै न कछू जररा मन धार कै भै से। गावत सारंग ताल बजावत स्याम कहै अति ही सु रुचै से। सावन की रुत मै मनो नाचत मोरनि मै मुरवानर जैसे ॥ ६२९ ॥ ॥ सवैया ॥ नाचत है सोऊ ग्वारनि मै जिह को ससि सो अति सुंदर आनन। खेलत है रजनी सित मै जह राजत थो जमुना जुत कानन। भान सुता ब्रिख की जह

है ॥ ६२६ ॥ ॥ सवैया ॥ हे राधा ! सुनो, इन सबने तो भाग्य का भाग्य भी छीन लिया है और चन्द्रमा की ज्योति चुरा ली है। इनके नयन तीक्ष्ण बाणो के समान और भृकुटी कमान के समान है। इनकी वाणी कोयल के समान और गला कपोत के समान है। मुझे जो जैसे अच्छा लग रहा है, मैं कह रहा हूँ। इस सबसे बढ़कर बात तो यह है कि बिजली के समान शोभायमान होनेवाली स्त्रियो ने मेरा मन चुरा लिया है ॥ ६२७ ॥ कृष्ण राधा को साथ लेकर सुन्दर गीत गा रहे हैं तथा सारंग, देवगधारी, विभास, बिलावल आदि की स्वरलहरी निकाल रहे हैं। बेजान वस्तुएँ भी इसे सुनकर अपना स्थान त्यागकर दौड़ पड़ी हैं तथा जो पक्षी आकाश मे उड रहे है, वे भी इस ध्वनि को सुनकर स्थिर हो गये है ॥ ६२८ ॥ ग्वालिनो के साथ भगवान खेल और गा रहे है। वे बिलकुल अभय होकर तथा आनन्दित होकर खेल रहे है। गा रहे है और ताल बजा रहे है और ऐसे लग रहे है, मानो सावन की ऋतु मे मोर मोरनियो के साथ क्रीडा कर रहा हो ॥ ६२९ ॥ ॥ सवैया ॥ जिसका चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख है, वह ग्वालिनो के साथ नृत्य कर रहा है। चाँदनी रात मे वह यमुना के तट पर जंगल मे शोभायमान हो रहे हैं। वहाँ अभिमानिनी चन्द्रभगा और राधा है और श्रीकृष्ण ऐसे शोभायमान

थी सु हुती जह चंद्रभगा अभिमानन। छाजत ता महि यौ हरिजू जिउं बिराजत बीच पन्नानग खानन॥ ६३०॥ सु संगीत नचै हरि जू तिह ठउर सु स्याम कहै रस के संग भीनो। खोर दए फुन केसर की धुतिया कसि कै पट ओढ नवीनो। राधका चंद्रभगा मुख चंद लए जह ग्वारन थी संग तीनो। कान नचाइकै नैनन को सभ गोपिन को मनुआ हरि लीनो॥ ६३१॥ ब्रिखभान सुता की बराबर मूरति स्याम कहै सु नही घ्रितची है। जा सम है नही काम त्रिया नही जिसकी सम तुल्लि सची है। मानहु लै ससि को सभ सार प्रभा करतार इही मै गची है। नंद के लाल बिलासन को इह मूरत चित्र बचित्र रची है॥६३२॥ राधिका चंद्रभगा मुख चंद सु खेलत है मिलि खेल सभै। मिलि सुंदर गावत गीत सभै सु बजावत है कर ताल तबै। पिखवै इह को सोऊ मोह रहै सभ देखत है सुर याहि छबै। कबि स्याम कहै मुरली धर मैन की मूरति गोपिन मद्धि फबै॥६३३॥ ॥ सवैया॥ जिह की सम तुल्लि न है कमला दुति जा पिखि कै कट केहर लाजै। कंचन देखि लजै तन को तिह देखत ही मन को दुखु भाजै। जा सम रूप न कोऊ त्रिया (मू०ग्रं०३३६) कबि

हो रहे हैं, मानो खान मे पन्ना तथा अन्य नग (हीरे) शोभायमान हो रहे हो॥ ६३०॥ श्याम कवि का कथन है कि संगीत रस मे भीगकर श्रीकृष्ण उस स्थल पर नृत्य कर रहे है। केसर से रँगा हुआ श्वेत वस्त्र उन्होने कसकर पहन रखा है। वहाँ राधा, चन्द्रमुखी और चन्द्रभगा तीनों ही गोपियाँ है और श्रीकृष्ण ने नयनो के सकेत से तीनो का मन हर लिया है॥ ६३१॥ घृताची नामक अप्सरा भी राधा के समान सौन्दर्य-शालिनी नही है। उसके समकक्ष तो रति और शचि (इन्द्राणी) भी नही है। ऐसा लगता है कि चन्द्रमा का सम्पूर्ण तेज ब्रह्मा ने इसी राधा मे व्याप्त कर दिया हो और नन्दलाल कृष्ण के विलास के लिए इसकी विचित्र रचना की हो॥ ६३२॥ राधिका, चन्द्रभगा और चन्द्रमुखी सभी मिलकर खेल खेल रही है। सभी मिलकर सुन्दर गीत गा रही है और ताल बजा रही है। देवगण भी इस छवि को देखकर मोहित हो रहे है। कवि श्याम का कथन है कि मुरलीधारी कामदेव की मूर्ति गोपियो के मध्य शोभायमान हो रही है॥ ६३३॥ ॥ सवैया॥ जिसके समान लक्ष्मी भी नही है और जिसकी कमर को देखकर शेर भी लज्जित होता है। जिसके तन की शोभा देखकर स्वर्ण भी लजायमान होता है और जिसको देखकर

स्याम कहै रति की सम राजै। जिउँ घन बीच लसै चपला इह तिउँ घन ग्वारन बीच बिराजै ॥ ६३४ ॥ खेलत है संग त्रीयन के सजि साज सभै अरु मोतिन माला। प्रीत कै खेलत है तिह सो हरि जू जोऊ है अति ही हितवाला। चंद्रमुखी जह ठाढी हुती जह ठाढी हुती ब्रिखभान की बाला। चंद्रभगा को महा मुख सुंदर ग्वारनि बीच कर्यो उजिआला ॥ ६३५ ॥ कान को रूप निहारकै सुंदर मोहि रही त्रिय चंद्रमुखी। तब गाइ उठी कर ताल बजाइ हुती जि किधो अति ही सु सुखी। करकै अति ही हित नाचत भी करि आनंद ना मन बीच झुखी। सभ लालच त्याग दए ग्रिह के इक स्याम के प्यार की है सु भुखी ॥ ६३६ ॥ ॥ दोहरा ॥ क्रिशन मनै अति रीझ कै मुरली उठ्यो बजाइ। रीझ रही सभ गोपिया महा प्रमुद मन पाइ ॥ ६३७ ॥ ॥ सवैया ॥ रीझ रही ब्रिज की सभ भामन जउ मुरली नंदलाल बजाई। रीझ रहे बन के खग अउ म्रिग रीझ रहे धुन जा सुन पाई। चित्र की होइ गई प्रितमा सभ स्याम की ओर रही लिव लाई। नीर बहै नही कान त्रिया सुन कै तहि पउन रह्यो उरझाई ॥ ६३८ ॥ पउन रह्यो उरझाइ

मन का दुःख दूर हो जाता है। जिसके समान किसी का स्वरूप नही है और रति के समान शोभायुक्त है वही (राधा) गोपियो के वीच वादलो मे विजली की तरह शोभायमान है ॥ ६३४ ॥ सभी स्त्रियाँ सज-धजकर मोतियो की माला पहनकर खेल रही है। उनके साथ अत्यन्त प्रेम करने वाले श्रीकृष्ण जी भी क्रीड़ा कर रहे है। वही पर चन्द्रमुखी और राधा भी खड़ी है और चन्द्रभगा का सौदर्य ग्वालिनो के वीच उजाला कर रहा है ॥ ६३५ ॥ चन्द्रमुखी कृष्ण का स्वरूप देखकर मोहित हो रही है और वह देखते-देखते ताल बजाती हुई गा उठी है। वह अत्यन्त प्रेम मे नाचने भी लगी और कृष्ण के प्रेम की भूखी होने के कारण उसने घर-वाहर का सभी लालच त्याग दिया है ॥ ६३६ ॥ ॥ दोहा ॥ श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर मुरली वजा उठे और उसे सुनकर सभी गोपियाँ मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी ॥ ६३७ ॥ ॥ सवैया ॥ नन्दलाल की मुरली वजते ही व्रज की सभी स्त्रियाँ मोहित हो उठी। वन के पक्षी, पशु जिसने भी सुनी वह रीझ उठा। स्त्रियाँ सभी चित्रवत् होकर कृष्ण की ओर मन लगाकर स्थिर हो गयी। यमुना का जल स्थिर हो गया और कृष्ण तथा गोपियो की कलरव ध्वनि सुनकर पवन भी उलझन मे पड़कर रुक गया ॥ ६३८ ॥

घरी इक नीर नदी को चले सु कछू ना। जे ब्रिजभामन आई हुती धरखासन अंग दिखै अरु झूना। सो सुन कै धुन बासुरी की तन बीच रही तिन के सुध हू ना। ता सुध गी सुर के सुन ही रहगी इह मानहु चित्र नमूना ॥ ६३९ ॥ रीझ बजावत है मुरली हरि पै मन मै करि शंक कछू ना। जा की सुने धुन स्रउनन मै करके खग आवत है बन सूना। सो सुन ग्वारनि रीझ रही मन भीतर शंक करी कछहू ना। नैन पसार रही पिख कै जिम घंटक हेर बजे मिलि मूना ॥ ६४० ॥
॥ सवैया ॥ सुर बासुरी की कबि स्याम कहै मुख कानर के अति ही सु रसी है। सोरठ देवगंधार बिभास बिलावल हू की सु तान बसी है। कंचन सो जिहको तन है जिह के मुख की सम सोभ ससी है। ता के बजाइबे कौ सुन कै मति ग्वारनि की तिह बीच फसी है ॥ ६४१ ॥ देवगंधार बिभास बिलावल सारंग की धुन ताँ मै बसाई। सोरठ सुद्ध मलार किधौ सुर (मू०ग्रं०३३७) मालसिरी की महा सुखदाई। मोहि रहे सभ ही सुर अउ नर ग्वारन रीझ रही सुन धाई। यौ उपजी

एक घड़ी तक पवन उलझन मे पड गया और नदी का जल भी आगे नही बढा। जितनी भी व्रज की स्त्रियाँ वहाँ आईं, उनकी धडकन बढी हुई और अग थरथरा रहे थे। उन्हे बाँसुरी सुनकर तन की तनिक भी सुधि न रही। वे बाँसुरी के स्वर को सुनकर चित्रवत् होकर रह गयी ॥ ६३९ ॥ कृष्ण निर्भय होकर हाथ मे मुरली लेकर बजा रहे है और उसकी ध्वनि सुनकर वन के पक्षी जगल को सूना करके चले आ रहे है। उसे सुनकर ग्वालिने भी रीझ रही हैं और अभय हो रही है। जिस प्रकार नाद को सुनकर काले हिरण की मादा मंत्रमुग्ध हो जाती है, उसी प्रकार बाँसुरी को सुनकर गोपियाँ मुँह फैलाए आश्चर्यचकित खड़ी है ॥ ६४० ॥
॥ सवैया ॥ बाँसुरी का स्वर कृष्ण के मुख से निकलकर शोभा दे रहा है और उसमे सोरठ, देवगन्धार, विभास तथा बिलावल की तान बसी हुई है। कृष्ण का तन कचन के समान और उसके मुख की शोभा चन्द्रमा के समान, बाँसुरी-वादन को सुनकर गोपियो का मन उसी मे उलझकर रह गया है ॥ ६४१ ॥ देवगधारी, विभास, बिलावल, सारग, सोरठ, शुद्ध मल्हार तथा मालश्री की सुखदायक ध्वनि बाँसुरी में बज रही है। उसको सुनकर सभी सुर और नर प्रसन्न होकर दौड़ रहे है और सभी उस स्वर के मोह मे [illegible] र [illegible] है मानो भगवान श्रीकृष्ण ने कोई प्रेम-पाश

सुर चेटक की भगवान मनो धर फास चलाई ।। ६४२ ।। आनन है जिह को अति सुंदर कध धरे जोऊ है पट पीलो। जाहि मर्यो अघ नाम बडो रिपु तात रख्यो अहि ते जिन लीलो। असाधन कौ सिर जो कटिया अरु साधन को हरता जोऊ हीलो। चोर लयो सुर सो मन तास बजाइ भली बिधि साथ रसीलो ।। ६४३ ।। जाहि भभीछन राज दयो अर रावन जाहि मर्यो करि क्रोहै। चक्र के साथ किधो जिनहू सिसपाल को सीस कट्यो कर छोहै। मैन सु अउ सिय को भरता जिह मूरत की सम तुलि न कोहै। सो कर लै अपने मुरली अब सुंदर गोपिन के मन मोहै ।। ६४४ ।। ।। सवैया ।। राधिका चंद्रभगा मुख चंद सु खेलत है मिलि खेल सबै। मिलि सुंदर गावत गीत भले सु बजावत है कर ताल तबै। फुन त्याग सभै सुरमंडल को सभ कउतक देखत देव सबै। अब राकश मारन की सु कथा कछु थोरी अहै सुन लेहु अबै ।। ६४५ ।। नाचत थी जिह ग्वारनिया जह फूल खिरे अरु भउर गुंजारैं। तीर बहै जमुना जह सुंदर कान्ह हली मिलि गीत उचारैं। खेल करै

चलाकर सबको बांध लिया है ।। ६४२ ।। जिसका मुख अत्यन्त सुन्दर है और जिसने कधे पर पीताम्बर धारण कर रखा है, जिसने अघासुर का नाश किया और जिसने सर्प से बन्धुगण की रक्षा की थी, जो असाधुओं का नाश करनेवाला और साधुओ के दुःखो को दूर करनेवाला है, उस श्रीकृष्ण ने रसदायक वांसुरी वजाकर देवताओ का मन मोह लिया है ।। ६४३ ।। जिसने विभीषण को राज्य दिया, रावण को क्रोधित होकर मारा, शिशुपाल का अपने चक्र से वध किया तथा जो कामदेव के समान रूपवान तथा सीता का पति राम है, जिसके स्वरूप के समान अन्य कोई नही है, वही श्रीकृष्ण अपने हाथो मे बांसुरी लेकर अव सुन्दर गोपियो के मन को मोह रहा है ।। ६४४ ।। ।। सवैया ।। राधा, चन्द्रभगा और चन्द्रमुखी सभी मिलकर सुन्दर गीत गा-वजा रही हैं और खेल रही है। देवमण्डली भी अपना स्थान त्यागकर इनकी लीला को देख रही है। अब राक्षस के मारने की थोडी-सी कथा है, उसे भी सुन ले ।। ६४५ ।। जहाँ गोपियाँ नृत्य कर रही थी वहाँ फूल खिले हुए थे तथा भौंरे गुजार कर रहे थे, वही पर यमुना बह रही थी और कृष्ण तथा बलराम मिलकर गीत गा

रीझ कबित

अति ही हित सो न कछू मन भीतर शंकहि धारैं ।

पढ़ैं रस के बहसैं दोऊ आहस मै नही हारैं ॥ ६४६ ॥

अथ जक्खछ गोपिन कौ नभ को ले उडा ॥

॥ सवैया ॥ आवत थो इक जखछ बडो इह रास को

कउतक ताहि बिलोक्यो । ग्वारनि देखिकै मैन बढ्यो तिहते तन

मै नही रंचक रोक्यो । ग्वारनि लै सु चल्यो नभि कौ किनहू

तिह भीतर ते नही टोक्यो । जिउँ मधि भीतरि लै मुसली हरि

केहरु है म्रिग सो रिपु रोक्यो ॥ ६४७ ॥ ॥ सवैया ॥ जखछ

के संग किधौ मुसली हरि जुद्ध कर्‍यो अति कोपु सँभार्‍यो ।

लै तर बीर दोऊ कर भीतर भीम भए अति ही बल धार्‍यो ।

दैत पछार लयो इह भाँत कबै जसु ता छबि ऐस उचार्‍यो ।

ढोके छुटे ते महाँ छुधवान किधो चकवा उठि बाजहि

मार्‍यो ॥ ६४८ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिशनावतारे गोपि छुराइबो जखछ बधह ॥

और दोनों प्रसन्न होकर

रहे थे । वे अभय होकर प्रेमपूर्वक खेल रहे थे

कविता आदि कहने में एक-दूसरे से हार नहीं रहे थे ॥ ६४६ ॥

यक्ष का गोपियों को आकाश मे ले उड़ना

॥ सवैया ॥ एक यक्ष आया और उसने यह लीला देखी । गोपियों

को देखकर वह कामातुर हो उठा और तनिक भी अपने को रोक नही

पाया । वह बिना रोक-टोक गोपियो को लेकर आकाश मे उड़ चला ।

उसी समय बलराम और कृष्ण ने उसको ऐसे रोक लिया, जैसे शेर मृग को

रोक लेता है ॥ ६४७ ॥ ॥ सवैया ॥ अत्यन्त क्रोधित होकर बलराम

और कृष्ण ने यक्ष के साथ युद्ध किया । दोनो वीरो ने भीम के समान

बल धारण करके वृक्षो को हाथ मे लेते हुए युद्ध किया । इस प्रकार

उन्होने दैत्य को पछाड़ दिया । यह दृश्य ऐसा लग रहा था कि मानो

भूखा बाज़ क्रौंच पक्षी को झपटकर मार देता है ॥ ६४८ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार मे गोपी-हरण, यक्ष-वध समाप्त ॥

॥ सवैया ॥ मारकै ताहि किधौ मुसली हरि बंसी बजाई न कै (मू०ग्रं०३३७) कछु शका। रावन खेत मर्‌यो कुप कै जिन रीझ भभीछन दीन सु लका। जाको लख्यो कुबजा बल बाहन जाको लख्यो मुर दैंत अतंका। रीझ बजाइ उठ्यो मुरली सोई जीति दियो जस को मनो डंका॥ ६४६॥ रूखन ते रस चूवन लाग झरैं झरना गिर ते सुखदाई। घास चुगै न म्रिगा बनके खग रीझ रहे धुन जा सुन पाई। देवगंधार बिलावल सारंग की रिझ कै जिह तान बसाई। देव सभै मिलि देखत कउतक जउ मुरली नंदलाल बजाई॥ ६५०॥ ॥ सवैया॥ ठाढ रही जमुना सुनकै धुन राग भले सुनबे को चहे है। मोहि रहे बन के गज अउ इकठे मिलि आवत सिंघ सहे है। आवत है सुरमंडल के सुर त्याग सभै सुर ध्यान फहे है। सो सुनिकै बन के खगवा तर ऊपर पंख पसार रहे है॥ ६५१॥ जोऊ ग्वारनि खेलत है हरि सो अति ही हित कै न कछू धन मै। अति सुंदर पै जिह बीच लसै फुन कंचन की सु प्रभा तन मै। जोऊ चंद्रमुखी कट केहरि सी सु बिराजत ग्वारनि के गनि मै।

॥ सवैया॥ यक्ष को मारकर बिना किसी डर के कृष्ण और बलराम ने बाँसुरी बजाई। कृष्ण ने ही कुपित होकर रावण को मारा था और विभीषण को लका का राज्य दिया था। उसी की दृष्टि से कुब्जा दासी का उद्धार हुआ था और उसी की दृष्टि से मुर नामक दैत्य आतंकित हुआ था। वही कृष्ण यश का डका बजवाते हुए मुरली बजा उठा॥ ६४९॥ मुरली की ध्वनि को सुनकर वृक्षो से रस चूने लगा और सुखदायक झरने बहने लगे। मुरली को सुनकर मृगो ने घास चरना छोड़ दिया और वन के पक्षी भी मोहित हो उठे। मुरली से देवगन्धार, बिलावल, सारग की तान बजने लगी और नन्दलाल कृष्ण को मुरली बजाता हुआ देखकर देवगण भी इस लीला को मिलकर देखने लगे॥ ६५०॥ ॥ सवैया॥ राग सुनने की इच्छा से यमुना भी स्थिर हो गई। वन के गज, सिह और खरगोश आदि भी मोहित हो रहे है तथा देवगण भी देवलोक को त्यागकर मुरली की ध्वनि के वश मे होकर चले आ रहे है। इसी मुरली को सुनकर वन के पक्षी भी पेड़ो पर पख पसारकर ध्यानावस्थित हो गये है॥ ६५१॥ जो ग्वालिने कृष्ण के साथ खेल रही हैं, उनके मन मे अत्यन्त प्रेम-भाव है। वे स्वर्ण के तन की शोभा वाली अत्यन्त सुन्दर है। और सिह के समान पतली कमर वाली जो चन्द्रमुखी नामक

सुनि कै मुरली धुन स्रउनन मै अति रीझ गिरी सु मनो बन मै ॥ ६५२ ॥ इह कउतक कै सु चले ग्रिह को फुन गावत गीत हली हरि आछे। सुंदर बीच अखारे किधौ कबि स्याम कहै नटुआ जन काछे। राजत है बलभद्र के नैन यों मानों ढरे इह मैन के साछे। सुंदर है रति के पति तै अति मानहु डारत मैनहि पाछे॥ ६५३ ॥ बीच मनै सुख पाइ तबै ग्रिह कौ सु चले रिप कौ हनि दोऊ। चंद्रप्रभा सम जा मुख उप्पम जा सम उप्पम है नहि कोऊ। देखत रीझ रहै जिह को रिप रीझति सो इन देखत सोऊ। मानहु लछमन राम बडे भट मार चले रिप को घर ओऊ ॥ ६५४ ॥

अथ कुंजगलीन को खेलबो ॥

॥ सवैया ॥ हरि संग कह्यो इम ग्वारन के अब कुंज गलीन मै खेल मचइयै। नाचत खेलत भाँत भली सु कह्यो यौं सुंदर गीत बसइयै। जाके किए मनु होत खुशी सुनियै उठिकै

गोपी है, वह गोपियो के मध्य विराजमान है तथा मुरली की ध्वनि को सुनकर मोहित होकर वन मे गिर पडी ॥ ६५२ ॥ यह लीला करके कृष्ण और बलराम गाते हुए घर को चले आये। नगर मे सुन्दर अखाड़े और नटो के क्रीडास्थान शोभायमान हो रहे है। बलराम के नेत्र ऐसे शोभायमान हो रहे है, मानो कामदेव के साँचे मे ढले हुए हो और इतने सुन्दर है कि कामदेव को भी पीछे छोड़ रहे हैं ॥ ६५३ ॥ मन मे प्रसन्न होकर और शत्रु को मारकर दोनो घर की ओर चले है। चन्द्रकला के समान उनका मुख है और उनके मुख की तुलना किसी अन्य से नही की जा सकती। उनको देखकर शत्रु भी मोहित हो रहे है और वे ऐसे लग रहे है मानो राम-लक्ष्मण बड़े शत्रु को मारकर वापस घर को आ रहे हो ॥ ६५४ ॥

कुंजगलियों में खेल

॥ सवैया ॥ कृष्ण ने गोपियो से कहा कि अब कुज तथा गलियों मे खेल खेला जाय। नाचते, खेलते हुए सुन्दर गीत गाये जायँ। जिस कार्य को करने से मन को प्रसन्नता होती हो वही कार्य करना चाहिए। नदी के किनारे हमारी शिक्षा लेकर जैसा किया था, उसी प्रकार से सुख का

सोऊ कारज कइयैं। तीर नदी हमरा सिख लै सुख आपन वै हमहूँ सुख दइयैं ॥ ६५५ ॥ कान्ह को आइस मान त्रिया ब्रिज कुंजगलीन मै खेल मचायो। गाइ उठी सोई गीत भली बिधि जो हरि के मन भीतर (मू०ग्रं०३३६) भायो। देवगंधार अउ सुद्ध मलहार बिखै सोऊ भाखि खिआल बसायो। रीझ रह्यो पुर मंडल अउ सुरमंडल पै जिनहूँ सुन पायो ॥ ६५६ ॥ कान्ह कह्यो सिर पै धर कै मिलि कुंजन मै सुभ भाँत गई है। कंजमुखी तन कंचन से सभ रूप बिखै मनो मैन मई है। खेल बिखै रसकी सो त्रिया सभ स्याम के आगे ह्वै ऐसे धई है। यौ कबि स्याम कहै उपमा गजगामन कामन रूप मई है ॥ ६५७ ॥ ॥ सवैया ॥ कान्ह छुह्यो चहै ग्वारनि को सोऊ भाग चलै नही देत छुहाई। जिउँ म्रिगनी अपने पति को रति केल समे नही देत मिलाई। कुंजन भीतर तीर नदी ब्रिखभान सुता सु फिरै तह धाई। ठउर तहा कबि स्याम कहै इह भाँत सो स्याम जू खेल मचाई ॥ ६५८ ॥ रात करी छठ मासन की अति उज्जल पै सोऊ अरध अँधेरी। ताही समै तिह ठउर बिखै कबि स्याम सभै हरि ग्वारनि घेरी। नैन की कोर

उपभोग करो और मुझे भी सुख दो ॥ ६५५ ॥ कृष्ण की आज्ञा मानकर स्त्रियो ने व्रज की कुजगलियो मे खेल प्रारम्भ कर दिया और जो कृष्ण को अच्छे लगते थे, वही गीत गाने शुरू कर दिये। वे गन्धार और शुद्ध मल्हार मे ख्याल का गायन शुरू कर दिया और धरती तथा देवलोक मे जिसने भी सुना वह मोहित हो उठा ॥ ६५६ ॥ कृष्ण को सभी गोपियाँ कुजो मे मिल गईं। उनका मुख कमल के समान, तन कचन के समान और पूर्ण स्वरूप कामोन्मत्त है। खेल के मध्य ही स्त्रियाँ कृष्ण के आगे-आगे दौड रही है और कवि का कथन है कि वे सभी गजगामिनियाँ अत्यन्त कमनीय स्वरूप वाली दिखाई दे रही हैं ॥ ६५७ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण गोपियो का जो भाग छूना चाहते है, वे उन्हे उसी प्रकार नही छूने दे रही हैं जिस प्रकार मृगी अपने पति मृग को पति के रतिक्रीड़ा समय हाथ नही आती। कुजों के भीतर नदी के किनारे राधा भी इधर-उधर दौड़ी फिर रही है और इस प्रकार कवि-कथनानुसार श्रीकृष्ण ने खेल की धूम मचा दी ॥ ६५८ ॥ छः माह की उजियाली रात अब कृष्ण के खेल की धूम के साथ अँधेरी रात मे बदल गयी। उसी समय श्रीकृष्ण ने सभी गोपियो को घेर लिया। कोई तो उसके नयनो के कटाक्ष को देखकर

कटाछन पेखत झूम गिरी इक ह्वै गई चेरी। यौ उपजी उपमा जियं मै सर सो म्रिगनी जिम धावत हेरी ॥ ६५६ ॥ फेर उठै उठते ही भगं जदुरा कौ न ग्वारन देत मिलाई। पाछै परै तिन के हरि जू चड़ कं रस कं हय ऊपर धाई। राधे को नैनन के सर संग बधै मनो भउह कमान चड़ाई। झूम गिरे धरनी पर सो म्रिगनी म्रिगहा मनो मार गिराई ॥ ६६० ॥ सुध लै ब्रिखभान सुता तब ही हरि अग्रज कुंजन मै उठ भागै। रस सो जदुराइ महा रसिआ तब ही तिह के पिछुआन सो लागै। मोछ लहै नर सो छिन मै हरि के इह कउतक जो अनुरागै। यौ उपजे उपमा मन मै म्रिगनी जिम घाइल स्वार के आगै ॥६६१॥ ॥ सवैया ॥ अति भागत कुंजगलीन बिखै ब्रिखभान सुता को गहे हरि ऐसे। कैधौ नवाइ धवाइ महा जमना तट हारत मानक जैसे। पै चढिकै रस है मन नैनन भउह तनाइकै मारत लैसे। यौ उपजी उपमा जिम स्यार मनो जित लेत म्रिगी कहु तैसे ॥ ६६२ ॥ गहि कै ब्रिखभान सुता जदुराइ जू बोलत ता संग अंम्रित बानी। भागत काहे के हेत सुनो हमहूँ ते तूं किउ

मदमस्त होने लगी और कोई तत्क्षण दासी बन गयी। वे इस प्रकार चली आ रही थी जिस प्रकार तालाव की तरफ मृगियाँ झुड बाँधकर चली आ रही हो ॥ ६५९ ॥ श्रीकृष्ण उठे और दौड़ पड़े, परन्तु फिर भी गोपियाँ उनकी पकड़ मे नही आ सकी। श्रीकृष्ण प्रेम-रस के घोड़े पर सवार होकर उनके पीछे पड़ गये। राधा उनकी भौहो के कमान से छूट रहे नयन-बाणो से बिध गयी है और वह इस प्रकार पृथ्वी पर गिर पड़ी है जैसे शिकारी द्वारा मृगी को मार गिराया गया हो ॥ ६६० ॥ पुन: चेतनावस्था मे आते ही राधा कृष्ण के आगे-आगे कुजगलियो मे दौड़ने लगी। महारसिक कृष्ण तभी फिर उसके पीछे हो गये। इस लीला को देखकर प्राणी मुक्त हो गए और राधा इस प्रकार लग रही थी मानो किसी घुड़सवार के आगे-आगे घायल मृगी चली जा रही हो ॥ ६६१ ॥ ॥ सवैया ॥ कुजगलियो मे भागते हुए श्रीकृष्ण ने राधा को इस प्रकार पकड़ लिया जैसे यमुना तट पर कोई मणियो को धोकर प्रेम-पूर्वक धारण कर लेता है। अथवा ऐसा लगता है कि कामदेव रूपी कृष्ण अपनी भौहो को तानकर रस के बाण मार रहा हो। कवि उस दृश्य की उपमा देते हुए कहता है कि जिस प्रकार घुडसवार वन मे मृगी को जीत लेता है, उसी प्रकार कृष्ण ने राधा को पकड़ लिया ॥ ६६२ ॥ राधा को पकड़कर

सुन ग्वारनि रानी । कंजमुखी तन कंचन से हम त्वै मन की सभ बात पछानी । स्याम के प्रेम छकी मन (मू०ग्रं०३४०) सुंदर ह्वै बन खोजत स्याम दिवानी ॥ ६६३ ॥ ब्रिखभान सुता पिखि ग्वारन कौ निहराइ कै नीचे रही अखियाँ । मनो या म्रिगभा सभ छीन लई कि मनो इह कंजन की पखियाँ । सम अंम्रित की हसि के त्रिया यौ बतिया हरि के संग है अखियाँ । हरि छाडि दै मोहि कह्यो हम कौ सु निहारत है सभ ही सखियाँ ॥ ६६४ ॥ सुनकै हरि ग्वारनि की बतियाँ इह भाँत कह्यो नही छोरत तोकौ । देखत है तो कहा भयो ग्वारनि पै इनते कछु शंक न मोकौ । अउ हमरी रस खेलन की इह ठउर बिखै की नही सुध लोकौ । काहे कउ मोसो बिबाद करै सु डरै इन ते बिनही सु तू टोकौ ॥ ६६५ ॥ ॥ सवैया ॥ सुनिकै जदुराइ की बात त्रिया बतियाँ हरि के इम संग उचारी । चाँदनी राति रही छकि कै दिजियै हरि होवन रैन अंध्यारी । सुनके हमहूँ तुमरी बतियाँ अपने मन मै इह भाँत बिचारी । शंक करो नही ग्वारन की सु मनो तुम लाज बिदा करि डारी ॥६६६॥ भाखत हो बतियाँ हम सो हसि कै हरि कै अति ही हित धारी ।

कृष्ण अमृत-वचन बोलते हुए कहने लगे कि हे गोपियो की रानी ! तुम मुझसे दूर क्यो भाग रही हो ? हे कजमुखी और कचन के समान देह वाली ! मैंने तुम्हारे मन की बात को जान लिया है, तुम प्रेम-रस में मस्त होकर वनो मे कृष्ण को खोजती फिर रही हो ॥ ६६३ ॥ गोपियों को साथ देखकर राधा ने आँखे नीची कर ली । वह ऐसी लग रही थी मानो उसके कमलवत नेत्रो की आभा छिन गई हो । श्रीकृष्ण की आँखो की ओर देखते हुए वह मुस्कुराकर कहने लगी कि हे कृष्ण ! मुझे छोड़ दो, क्योकि सभी सखियाँ देख रही है ॥ ६६४ ॥ राधा की बात सुनकर कृष्ण ने कहा कि मैं तुम्हे नही छोड़ूँगा । ये गोपियाँ यदि देख रही हैं तो क्या हुआ । मुझे इनसे कोई भय नही है और क्या लोग नही जानते हैं कि यह हम लोगो का रासलीला-स्थल है । तुम मुझसे व्यर्थ ही विवाद कर रही हो और बिना कारण इनसे डर रही हो ॥ ६६५ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण की बाते सुनकर राधा ने कहा कि हे कृष्ण ! अभी तो पूर्ण चाँदनी रात है, थोडी अँधेरी रात हो लेने दीजिए । मैंने भी तुम्हारी बातो को सुनकर अपने मन मे विचार किया है कि तुम इन गोपियो का विचार न करो और यह मानो कि लज्जा को बिदा कर दिया गया है ॥ ६६६ ॥ हे कृष्ण ! इधर

मुसकात है ग्वारन हेर उतै पिखि कै हमरो इह कउतक सारो। छोर दै कान कह्यो हमको अपने मन बुद्धि अकाम को धारो। ताही ते तो संग मो सो कहो जदुराइ घनी तुम शंक बिचारो ॥ ६६७ ॥ भूख लगे सुनियै सजनी लगरा कहूँ छोरत जात बगी कौ। तात को स्याम सुनी तै कथा बिरही नहि छोरत प्रीत लगी को। छोरत है सु नही कुटवार किधौ गहिकै पुरहू को ठगी कौ। ताते न छोरत हउ तुमकौ कि सुन्यो कहूँ छोरत सिंघ म्रिगी कौ ॥ ६६८ ॥ कही बतिया इह बाल के संग जु थी अत जोबन के रस भीनी। चंद्रभगा अरु ग्वारन ते अति रूप के बीच हुती जु नवीनी। जिउँ म्रिगराज म्रिगी को गहै कबि ने उपमा बिधि या लखि लीनी। कान्ह तबै करवा गहिकै अपने बल संगि सोऊ बसि कीनी ॥ ६६९ ॥

॥ सवैया ॥ करिकै बसि वा संगि ऐसे कही कबि स्याम कहै जदुराइ कहानी। पै रस रीतिहु की अत ही जु हुती सम मानहु अंम्रित बानी। तेरो कहा बिगरै ब्रिज नारि कह्यो इह भाँत सियाम गुमानी। अउर सभै त्रिय घेरन है ब्रिखभान सुता तिन मै हैं तू रानी ॥ ६७० ॥ जहाँ चंद की चाँदनी

तुम हमारे साथ बात कर रहे हो और उधर सारी लीला देखकर गोपियाँ मुस्करा रही है। हे कृष्ण ! तुम अकाम होकर, मेरी बात मानकर मुझे छोड दो। इसीलिए हे कृष्ण ! मैं तुमसे प्रेम करती हूँ, परन्तु तुम फिर भी मन मे शका कर रहे हो ॥ ६६७ ॥ हे सजनी ! भूख लगने पर कही बन्दर बाग मे लगे फलो को छोड देता है। इसी प्रकार प्रेमी प्रेमिका को, कोतवाल ठग को नही छोडता है। इसीलिए मै तुमको भी नही छोड़ रहा हूँ। क्या तुमने कभी सिह द्वारा मृगी को छोडे जाते सुना है ॥ ६६८ ॥ इस प्रकार उस यौवन के रस मे सनी हुई बालिका को कृष्ण ने कहा। राधा चन्द्रभगा और गोपियों के बीच नवीन रूप से शोभायमान हो रही थी। जिस प्रकार मृगराज मृगी को पकड़ लेता है, कवि का कथन है कि उसी प्रकार कृष्ण ने राधा की कलाई पकड़कर बल-पूर्वक उसे अपने [illegible] कर लिया ॥ ६६९ ॥ ॥ सवैया ॥ इस प्रकार राधा को वश [illegible] श्रीकृष्ण ने रस-कथा को आगे [illegible] और इस रस-रीति [illegible] न वाणी से और रससिक्त कर गर्वीले कृष्ण ने कह[illegible] तुम्हारा इसमे क्या बिगड़ेगा स्त्रियां तो तुम्हारे [illegible] और इन सबमे तुम्ही

छाजत (मू०ग्रं०३४१) है जह पात चंबेली के सेज डही है। सेत महा गुल राजत है जिह के जमुना ढिग आइ बही है। ताही समै हरि राधे ग्रसी उपमा तिह की कबि स्याम कही है। सेत त्रिया तन स्याम हरी मनो सोमकला इह राह गही है ॥ ६७१ ॥ तिह को हरि जू फिर छोर दयो सोऊ कुंज गली कै बिखै बन मै। फिर ग्वारनि मै सोऊ जाइ मिली अति आनंद कै अपने तन मै। अति ता छबि की उपमा है कही उपजी जु कोऊ कबि कै मन मै। मनो केहरि ते छुटवाइ मिली म्रिगनी को मनो म्रिगिया बन मै ॥ ६७२ ॥ फिरि जाइकै ग्वारनि मै हरिजू अति ही इक सुंदर खेल मचायो। चंद्रभगा हू के हाथ पै हाथ धर्यो अति ही मन मै सुखु पायो। गावत ग्वारन है सभ गीत जोऊ उनके मन भीतर भायो। स्याम कहै मन आनंद कै मन को फुन शोक सभै बिसरायो ॥ ६७३ ॥ ॥ सवैया ॥ हरि नाचत नाचत ग्वारन मै हसि चंद्रभगा हू की ओर निहार्यो। सोऊ हसी इत ते ए हसे जदुरा तिह सो बचना है उचार्यो। मेरो महा हित है तुम सो ब्रिखभान सुता इह हेर बिचार्यो। आन तिया संग हेत कर्यो हम ऊपरि ते हरि हेत बिसार्यो ॥ ६७४ ॥

हो ॥ ६७० ॥ जहाँ चन्द्रमा की चाँदनी शोभायमान है और चमेली के फूलों की शय्या बनी हुई है, जहाँ श्वेत पुष्प शोभायमान है और पास मे यमुना बह रही है, वही पर कृष्ण ने राधा को आलिंगनबद्ध कर लिया। श्वेतवर्ण राधा और श्यामवर्ण कृष्ण दोनो मिले हुए ऐसे लग रहे है मानो चन्द्रकला इस मार्ग पर चली जा रही है ॥ ६७१ ॥ तब श्रीकृष्ण ने उसको कुंजगली मे छोड़ दिया और वह प्रसन्न होती हुई फिर गोपियो मे जा मिली। उस छवि का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह उसी प्रकार गोपियो से जा मिली जैसे शेर के पंजे से छूटने पर मृगी मृगो के झुण्ड मे जा मिलती हे ॥ ६७२ ॥ कृष्ण ने गोपियो के बीच मे एक सुन्दर खेल खेलना शुरू कर दिया। उन्होने चन्द्रभगा के हाथ पर हाथ रख दिया, जिससे उसे अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ। गोपियाँ मन को भानेवाला गीत गाने लगी और श्याम कवि का कथन है कि उनका मन अत्यन्त प्रसन्न हो उठा और उनके मन का सम्पूर्ण शोक समाप्त हो गया ॥ ६७३ ॥ ॥ सवैया ॥ नाचते-नाचते श्रीकृष्ण ने गोपियों में से हँसकर चन्द्रभगा की ओर देखा। इधर से ये हँसी और उधर से श्रीकृष्ण हँसते हुए उससे बात करने लगे। यह देखकर राधा ने विचार किया कि अब श्रीकृष्ण दूसरी स्त्री के साथ प्रेम

हरि राधका आनन देखत ही अपने मन मै इह भाँत उचार्यो । स्याम भए बसि अउर त्रिया तिह ते अति पै मनसा नही धार्यो । आनंद थो जितनो मन मै तितनो इह भाख बिदा करि डार्यो । चंद्रभगा मुख चंदु दुतै सभ ग्वारनि ते घट मोहि बिचार्यो ।। ६७५ ।। कहिकै इह भाँत सोऊ तब ही अपने मन मै इह बात बिचारी । प्रीत करी हरि आनहि सो तजि खेल सभै उठ धाम सिधारी । ऐसि करी गनती मन मै उपमा तिह को कबि स्याम उचारी । त्रीयन बीच चलैगी कथा ब्रिखभान सुता ब्रिजनाथ बिसारी ।। ६७६ ।।

अथ राधका को मान कथनं ।।

।। सवैया ।। इह भाँत चली कहिकै सु त्रिया कबि स्याम कहै सोऊ कुंजगली है । चंदमुखी तन कंचन के सम ग्वारन ते जोऊ खूब भली है । मान कियो निखरी तिन ते म्रिगनी सो मनो सु बिना ही अली है । यों उपजी उपमा मन मै पति सो

कर रहे हैं और मुझ पर से उनका प्रेम समाप्त हो गया है ।। ६७४ ।। राधा ने कृष्ण का मुख देखते ही अपने मन मे कहा, श्रीकृष्ण अब अन्य स्त्रियो के वश मे हो गये हैं । इसीलिए वे अब मन से हमे स्मरण नही करते । इतना कहकर उसने अपने मन से आनन्द के भाव को बिदा कर दिया । वह सोचने लगी कि श्रीकृष्ण के लिए चन्द्रभगा का मुख ही चन्द्रमा के समान है और मुझे श्रीकृष्ण सब गोपियो मे से कम मानते हैं ।। ६७५ ।। इस प्रकार कहते हुए अपने मन मे कुछ विचार किया और यह सोचते हुए कि श्रीकृष्ण अब किसी अन्य से प्रेम करते है, वह अपने घर को चल पड़ी । कवि श्याम का कथन है कि अब स्त्रियो के बीच मे यह बात चलेगी कि राधा को कृष्ण भूल गये ।। ६७६ ।।

राधा का मान-कथन

।। सवैया ।। इस प्रकार कहकर राधा कुंजगली मे से जा रही है । गोपियो में से सबसे सुन्दर राधा का मुख चन्द्रमा के समान है और तन सोने के समान है । वह मान करते हुए अपनी सहेलियो से ऐसे [illegible] जैसे मृगियो के झुण्ड से कोई मृगी अलग हो जाती है । [illegible] से ऐसा [illegible] था कि मानो रति कामदेव से [illegible] रही

रति मानहु रूठ चली है ।। ६७७ ।। ।। सवैया ।। इत ते हरि खेलत रास बिखै (मू०ग्रं०३४२) ब्रिखभान सुता करि प्रीत निहारी । पेख रह्यो न पिखी तिन मै कबि स्याम कहै जु हुती सोऊ प्यारी । चंद्रप्रभा सम जा मुख है तन कंचन सो अति सुंदर नारी । कं ग्रिह मान कै नीद गई कि कोऊ उनमान की बात बिचारी ।।६७८।। ।। कान्ह बाच ।। ।। सवैया ।। बिज्जछटा जिह नाम सखी को है सोऊ सखी जदुराइ बुलाई । अंगप्रभा जिह कचन सी जिह ते मुख चंद छटा छबि पाई । ता संग ऐसे कह्यो हरिजू सुन तूं ब्रिखभान सुता पहि जाई । पाइन पै बिनतीअन कै अति हेत के भाव सो ल्याउ मनाई ।। ६७९ ।। जदुराइ की सो सुनकै बतिआ ब्रिखभान सुता जोऊ बाल भली है । रूप मनो सम सुंदर मैन के मानहु सुंदर कंज चली है । ताके मनाइबे काज चली हरि को फुन आइस पाइ अली है । यों उपजी जिय मै उपमा कर ते चकई मनो छूट चली है ।।६८०।। ।। सखी बाच ।। ।। सवैया ।। बिज्जछटा जिह नाम सखी को सोऊ ब्रिखभान सुता पहि आई । आइकै सुंदर ऐसे कह्यो सुन तूं री त्रिया ब्रिजनाथ बुलाई । को ब्रिजनाथ कह्यो ब्रिजनार सु को कन्हइया कह्यो कउन

हो ।। ६७७ ।। ।। सवैया ।। इधर रास खेलते-खेलते कृष्ण ने राधा को देखा और सबसे सुन्दर राधा उन्हे दिखाई न दी । जिसका मुख चन्द्रमा के समान है, तन कचन के समान है और जो अत्यन्त सुन्दर है, वह राधा या तो निद्रावश घर चली गयी है या किसी गर्व के कारण कुछ विचारकर यहाँ से हट गयी है ।। ६७८ ।। ।। कृष्ण उवाच ।। ।। सवैया ।। विद्युच्छटा नामक सखी को कृष्ण ने बुलाया । उसके शरीर की चमक-दमक सोने के समान और मुख की छवि चन्द्रमा के समान थी । उसको श्रीकृष्ण ने बुलाया और कहा कि तुम राधा के पास जाओ और उसके पाँव पड़कर उससे प्रार्थना करके उसको मनाकर ले आओ ।। ६७९ ।। यदुराज श्रीकृष्ण की बातें सुनकर राधा को, जो कि कामदेव और कमल के समान सुन्दर है, मनाने के लिए सखी आज्ञा पाकर चल पडी । वह इस प्रकार चली मानो हाथ से छूटकर चक्र चला जा रहा हो ।। ६८० ।। ।। सखी उवाच ।। ।। सवैया ।। विद्युच्छटा नाम की सखी राधा के पास आई और आकर कहने लगी कि हे सखी ! तुमको व्रजनाथ श्रीकृष्ण ने बुलाया है । राधा कहने लगी कि यह व्रजनाथ कौन है ? तो सखी ने कहा कि वही

कन्हाई। खेलहु ताही त्रिया संग लालरी को जिहके संग प्रीत लगाई॥ ६८१ ॥ सजनी नंदलाल बुलावत है अपने मन मै हठ रंच न कीजै। आई है हउ चलिकै तुम पै तिह ते सु कह्यो अब मानही लीजै। बेग चलो जदुराइ के पास कछू तुमरो इह ते नही छीजै। ताही ते बात कहो तुम सो सुख आपन लै सुख अउरन दीजै॥ ६८२ ॥ ता ते करो नही मान सखी उठ बेग चलो सिख मान हमारी। मुरली जिह कान्ह बजावत है बहसै तह ग्वारन सुंदर गारी। ताही ते तोसो कहो चलिऐ कछु शंक करो न मनै ब्रिजनारी। पाइन तोरे परो तजि शंक निशंक चलो हरि पास हहारी॥ ६८३ ॥ शंक कछू न करो मन मै तजि शंक निशंक चलो सुनि मानिनि। तेरे मै प्रीत महा हरि की तिह ते हउ कहो तुहि संग गुमानिनि। नैन बने तुमरे सरसे सु धरे मनो तीछन मैन की सानिनि। तोही सो प्रेम महा हरि को इह बात ही ते कछु हउहूँ अजाननि॥ ६८४ ॥ ॥ सवैया ॥ मुरली जदुबीर बजावत है कबि स्याम कहै अति

जिसे कन्हैया भी कहते हैं। तब राधा ने कहा कि ये कन्हैया कौन है? अब बिद्युच्छटा ने कहा कि वही जिसके साथ तुमने खेल खेले है और सभी स्त्रियों ने प्रीति की है॥ ६८१ ॥ हे सखी! तुम तनिक भी मन में हठ न करो, तुम्हें नन्दलाल बुला रहे है। मैं तुम्हारे पास इसी काम के लिए चलकर आई हूँ। इसलिए मेरा कहना तुम मान ही जाओ। तुम शीघ्र ही कृष्ण के पास चलो, इससे तुम्हारा कुछ कम नही हो जायेगा। इसीलिए मैं तुमको कह रही हूँ ताकि तुम स्वयं भी सुख लो और दूसरों को भी सुख प्रदान करो॥ ६८२ ॥ हे सखी! तुम ज्यादा मान मत करो और मेरी शिक्षा को मानते हुए शीघ्र वहाँ चलो जहाँ कृष्ण मुरली बजा रहे हैं और गोपियो की सुन्दर गालियाँ सुन रहे है। इसीलिए मैं तुमसे कह रही हूँ। हे व्रजनारी! तुम अभय होकर वहाँ चलो। मैं तुम्हारे पांव पड़ती हूँ और तुमसे कहती हूँ कि श्रीकृष्ण के पास चली चलो॥ ६८३ ॥ हे मानिनि! तुम शका को त्यागकर चलो, क्योकि श्रीकृष्ण की प्रीति तुममे बहुत अधिक है। तुम्हारे नयन रस-पूर्ण है और ऐसा लग रहा है जैसे कामदेव के बाणों के समान तीखे हो। हमें तो पता भी नही है कि श्रीकृष्ण का तुम्ही से सबसे अधिक प्रेम क्यों है॥ ६८४ ॥ ॥ सवैया ॥ कबि स्याम का कथन है कि सुन्दर स्थान पर खड़े होकर श्रीकृष्ण मुरली वजा

सुंदर (मू०ग्रं०३४३) ठउरै। ताही ते तोरे हउ पास पठी सु कह्यो तिह ल्यावसु जाइकै दउरै। नाचत है जह चंद्रभगा अरु गाइकै ग्वारनि लेत है भउरैं। ताही ते बेग चलो सजनी तुमरे बिन ही रस लूटत अउरैं॥ ६८५॥ ताही ते बाल बलाइ लिउ तेरी मैं बेग चलो नंदलाल बुलावै। स्याम बजावत है मुरली जह ग्वारनिया मिलि मंगल गावै। सोरठ सुद्ध मलार बिलावल स्याम कहै नंदलाल रिझावै। अउर की बात कहा कहिये सुर त्याग सभै सुर मंडल आवैं॥ ६८६॥ ॥ राधे बाच प्रति-उत्तर॥ ॥ सवैया॥ मै न चलो सजनी हरि पै जु चलो तब मोहि ब्रिजनाथ दुहाई। मो संग प्रीत तजी जदनंदन चंद्रभगा संग प्रीत लगाई। स्याम की प्रीत महा तुम सो तज मान हहा री चलो दुचिताई। तोरे बिना नही खेलत है चहयो खेलहु जाहु सो प्रीत लगाई॥६८७॥ ॥ दूती बाच॥ ॥ सवैया॥ पाइ परो तुमरे सजनी अतही मन भीतर मान न कइयै। स्याम बुलावत है सु जहा उठकै तिह ठउर बिखै चलि जइयै। नाचत

रहे है। मुझे इसीलिए तुम्हारे पास भेजा गया कि मैं दौड़कर जाकर तुम्हे ले आऊँ। वहाँ चन्द्रभगा और अन्य गोपियाँ गाकर कृष्ण के चारो ओर चक्कर लगा रही है। इसीलिए, हे सखी! तुम शीघ्र चलो, क्योंकि तुम्हारे विना सभी दूसरी गोपियाँ रस लूट रही है॥ ६८५॥ इसीलिए, हे सखी! मै तुम पर न्योछावर हो रही हूँ। तुम शीघ्र वहाँ चलो जहाँ तुम्हे नन्दलाल बुला रहे है, वे मुरली वजा रहे है और गोपियाँ मिलकर मंगलगीत गा रही है। श्रीकृष्ण वहाँ पर सोरठ, शुद्ध मल्हार और बिलावल गाकर सबको प्रसन्न कर रहे है। अन्यो की बात क्या कहूँ, देवतागण भी अपना मडल छोड़कर वहाँ चले आ रहे है॥ ६८६॥ ॥ राधिका उवाच प्रतिउत्तर॥ ॥ सवैया॥ हे सखी! मुझे व्रजनाथ की कसम है, मै श्रीकृष्ण के पास नही जाऊँगी। श्रीकृष्ण ने मेरे से प्रीति त्याग कर चन्द्रभगा के साथ नेह जोड़ लिया है। तब विद्युच्छटा नामक सहेली ने राधा से कहा हे राधा! तुम दुविधा को त्यागकर वहाँ चलो। कृष्ण का प्रेम तुम्हारे साथ सबसे अधिक है। वे तुम्हारे बिना खेलना नही चाह रहे हैं, क्योकि क्रीड़ा उसी के साथ होती है जिसके साथ प्रेम होता है॥ ६८७॥ ॥ दूती उवाच॥ ॥ सवैया॥ हे सखी! मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। तुम मन मे इस प्रकार का गर्व न रखो। तुम्हे श्याम जिस स्थान पर बुला रहे है, तुम वहाँ चली चलो। जिस प्रकार गोपियाँ

है जिम ग्वारनिआँ नचियै तिम अउ तिह भाँत ही गइयै । अउर अनेकिक बात करो पर राधे बलाइ लिउ सउह न खइयै ।।६८८।।
।। राधे बाच ।। ।। सवैया ।। जैहउ न हउ सुन री सजनी तुहि सी हरि ग्वारनि कोट पठावै । बंसी बजावै तहा तु कहा अरु आप कहा भयो मंगल गावै । मै न चलो तिह ठउर बिखै ब्रहमा हमको कह्यो आन सुनावै । अउर सखी की कहा गनती नही जाउ री जाउ हरि आपन आवै ।। ६८९ ।। ।। दूती बाच राधे सो ।। ।। सवैया ।। काहे को मान करै सुन ग्वारनि स्याम कहै उठकै कर सोऊ । जाकै किए हरि होइ खुशी सुनियै बल काज करो अब जोऊ । तउ तुहि बोलि पठावत है जब प्रीत लगी तुमसो तब कोऊ । नातर रास बिखै सुन री तुहिसी नहि ग्वारनि सुदर कोऊ ।। ६९० ।। संग तेरे ही प्रीत घनी हरि की सभ जानत है कछु नाहि नई । जिह की मुख उप्पम चंद प्रभा जिह की तन भामनो रूप मई । तिह संग को त्याग सुनो सजनी ग्रिह की उठ कै तुहि बाट लई । ब्रिजनाथ के संग सखी बहु तेरी री तो सी गुवार भई न भई ।। ६९१ ।।
।। कबियो बाच ।। ।। सवैया ।। (मू०ग्रं०३४४) सुन कै इह

नाच-गा रही है, तुम भी नाचो, गाओ। हे राधा ! तुम और सब बातें करो परन्तु न जाने की कसम मत खाओ ।। ६८८ ।। ।। राधा उवाच ।।
।। सवैया ।। हे सखी ! तुम्हारे जैसे करोड़ो गोपियाँ भी यदि कृष्ण भेजे तो भी मैं नही जाऊँगी। जहाँ वह वंशी बजा रहा है और मंगल-गीत गा रहा है, मुझे ब्रह्मा भी आकर कहे, तो मैं वहाँ नही जाऊँगी। मै किसी सखी-सहेली को कुछ नही गिनती। तुम सब जाओ और यदि कृष्ण चाहे तो खुद आवे ।। ६८९ ।। ।। दूती उवाच राधा के प्रति ।।
।। सवैया ।। अरी गोपी ! क्यो मान कर रही है, जो कृष्ण ने कहा है वही कर। जिसको करने से कृष्ण प्रसन्न हो, वही कार्य करो। तुमसे उनकी प्रीति है, इसीलिए तुमको बुलाने के लिए हमे भेजा है, अन्यथा क्यो तुम्हारे समान सुन्दर गोपी सारी रासलीला मे और कोई नही है ? ।। ६९० ।।
तुम्हारे साथ उसकी गहरी प्रीति है, इसे सब जानते है और यह कोई नई बात नही है। जिसके मुख की शोभा चन्द्रमा के समान है और जिसका शरीर सौंदर्यमय है, उसके साथ को छोड़कर, हे सखी ! तुम घर का रास्ता पकडकर चली आई हो। व्रजनाथ कृष्ण के संग तो बहुत सी सखियाँ हैं, परन्तु तेरे जैसी गँवार अन्य कोई नही है ।। ६९१ ।। ।। कवि उवाच ।।

ग्वारन की बतिया ब्रिखभान सुता मन कोप भई है। कान्ह बिना पठए री त्रिया हमरे उनके उठ बीच पई है। आई मनावन है हमको सु कही बतिया जु नही रुचई है। कोप कै उत्तर देत भई चल री चल तूँ किन बीच दई है॥ ६९२॥ ॥ दूती बाच कान्ह सो॥ ॥ सवैया॥ कोप कै उत्तर देत भई इन आइ कह्यो फिरि संग सुगानै। बैठ रही हठ मान त्रिया हउ मनाइ रही जड़ किउहू न मानै। साम दिए न मनै नही दंड मनै नही भेद दिए अरु दानै। ऐसी गुवार सो हेत कहा तुमरी जोऊ प्रीत को रंग न जानै॥ ६९३॥ ॥ मैनप्रभा बाच कान्ह जू सो॥ ॥ सवैया॥ मैनप्रभा हरि पास हुती सुनकै बतिया तब बोल उठी है। ल्याइहो हउ इह भाँत कह्यो तुमते हरि जू जोऊ ग्वार रुठी है। कान्ह को पाइन पै तबही सु लियावन ताही के काज उठी है। सुंदरता मुख ऊपर ते मनो कंजप्रभा सभ वार सुटी है॥ ६९४॥ हरि पाइन पै इह भाँत कह्यो हरिजू उहके ढिग हउ चलि जैहो। जाही उपाव ते आइ है सुंदरि ताही उपाइ मनाइ लियैहो। पाइन पै बिनतीअन

॥ सवैया॥ गोपी की ये बाते सुनकर राधा कुपित हो उठी और कहने लगी कि तुम कृष्ण के भेजे बिना ही हमारे और कृष्ण के बीच मे आ पडी हो। तुम आई तो हमको मनाने ही, परन्तु जो बाते तुमने की हैं मुझे अच्छी नही लगी हैं। राधा क्रोधित होकर कहने लगी, तुम यहाँ से चली जाओ और व्यर्थ ही हमारे बीच मे मत पडो॥ ६९२॥ ॥ दूती उवाच कृष्ण के प्रति॥ ॥ सवैया॥ क्रोधित होकर उस दूती ने कृष्ण को कहा कि राधा कुपित होकर उत्तर दे रही है। वह स्त्री हठ मानकर बैठ गयी है और वह जड़-बुद्धि किसी प्रकार भी नही मान रही है। वह साम, दाम, दण्ड और भेद में से किसी प्रकार भी नही मानी है। तुम्हारे प्रेम के रंग को भी जो नही समझ रही है, ऐसी गँवार गोपी से प्रेम करने का क्या अर्थ है॥ ६९३॥ ॥ मैनप्रभा उवाच कृष्ण के प्रति॥ ॥ सवैया॥ मैनप्रभा नामक गोपी, जो कृष्ण के पास थी, सुनकर बोल पडी कि हे कृष्ण! जो गोपी तुमसे रूठ गयी है, उसे मैं लेकर आऊँगी। उसे कृष्ण के पास लाने के लिए यह गोपी उठ खड़ी हुई है। इसके सौन्दर्य को देखकर ऐसा लगता है, मानो कमल ने अपना सब सौन्दर्य इस पर न्योछावर कर दिया है॥ ६९४॥ कृष्ण के पास खड़ी होकर मैनप्रभा ने कहा कि मैं स्वयं उसके पास चलकर जाऊँगी और जिस उपाय से भी वह सुन्दरी

कै रिझवाइकै सुंदर ग्वार मनैहो। आज ही सो ढिग आन मिलैहो जू ल्याइ बिना तुमरी न कहैहो ॥ ६९५ ॥
॥ सवैया ॥ हरि पाइन पै तिह ठउर चली कबि स्याम कहै फुन मैनप्रभा। जिह के नही तुल्लि मदोदर है जिह तुल्लि त्रिया नहि इंद्रसभा। जिह को मुख सुंदर राजत है इह भाँत लसै त्रिया वाकी अभा। मनो चंद कुरंगन कैहर कीर प्रभा को सभो धन याहि लभा ॥ ६९६ ॥ ॥ प्रतिउत्तर बाच ॥
॥ सवैया ॥ चलि चंद्रमुखी हरि के ढिग ते ब्रिखभान सुता पहि पै चलि आई। आइकै ऐसे कह्यो तिह सो बल बेग चलो नंदलाल बुलाई। मै न चलो हरि पाह हहा चलु ऐसे कह्यो न करो दुचिताई। काहे को बैठ रही इह ठउर मै मोहन को मनो चित्तु चुराई ॥ ६९७ ॥ जिह घोर घटा घन आए घनै चहू ओरन मै जह मोर पुकारै। नाचत है जह ग्वारनिया तिह पेखि घनो बिरही तन वारै। तउन समै जदुराइ सुनो मुरली को बजाइ कै तोहि चितारै। ताही ते बेग चलो सजनी तिह कउतक कों हम जाइ निहारै (मू०ग्रं०३४५) **॥ ६९८ ॥**

यहाँ आयेगी, मनाकर ले आऊँगी। मैं पाँव पड़कर, प्रार्थना करके, प्रसन्न करके उस सुन्दर गोपी को मना लूँगी। आज ही मैं उसे आपके पास ले आऊँगी अन्यथा आपकी नही कहलाऊँगी ॥ ६९५ ॥ ॥ सवैया ॥ श्रीकृष्ण के चरणो के पास से उठकर पुनः मैनप्रभा चल पड़ी। मन्दोदरी भी सुन्दरता मे इसके तुल्य नही है तथा इन्द्रसभा की कोई भी स्त्री सौन्दर्य मे इसके समकक्ष नही है। सुन्दर मुख की शोभावाली इस स्त्री की आभा इस भाँति लग रही है मानो चन्द्रमा, हिरण, शेर और तोता, सबने सौन्दर्य का धन इसी से प्राप्त किया ॥ ६९६ ॥ ॥ प्रतिउत्तर उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ वह चन्द्रमुखी गोपी कृष्ण के पास से चलकर राधा के पास आ पहुँची। उसने आते ही कहा कि शीघ्र चलो, नन्दलाल ने तुम्हे बुलाया है। तुमने यह क्यों कहा कि मैं कृष्ण के पास नही जाऊँगी। तुम यह दुबिधा छोड़ो। तुम क्यों स्थान पर मनमोहन कृष्ण से चित्त चुराकर बैठी हुई हो ॥ ६९७ ॥ जब घनघोर घटाएँ छा जाती है, चारो ओर मोर पुकारते है, गोपियाँ नृत्य करती है और विरही जन उन पर न्योछावर होते है, उस समय हे सखी ! सुनो, श्रीकृष्ण मुरली बजाकर तुम्हारा स्मरण करते है। हे सखी ! तुम शीघ्र चलो ताकि हम लोग पहुँचकर इस लीला को देख सके ॥ ६९८ ॥ ॥ सवैया ॥ इसलिए

॥ सवैया ॥ ता ते न मान करो सजनी हरि पास चलो नहि शंक बिचारो। बात धरो रस हूँ की मनै अपने मन मै न कछू हठ धारो। कउतक कान्ह को देखन को तिह को जस पै कबि स्याम उचारो। काहे कउ बैठ रही हठ कै कह्यो देखन कउ उमग्यो मन सारो॥ ६९९॥ हरि पास न मै चल हो सजनी पिखबे कहु कउतक जीय न मेरो। स्याम रचे संग अउर त्रिया तजकै हम सो फुन नेह घनेरो। चंद्रभगा हूँके संग कह्यो नहि नारी कहा मुहि नैनन हेरो। ताते न पास चलो हरि हउ उठि जाहि जोऊ उमग्यो मन तेरो॥ ७००॥ ॥ दूती बाच॥ ॥ सवैया॥ मै कहा देखन जाउ त्रिया तुहि ल्यावन को जदुराइ पठाई। ताही ते हउ सभ ग्वारनि ते उठकै तब ही तुमरे पहि आई। तूँ अभिमान कै बैठ रही नही मानत है कछु सीख पराई। बेग चलो तुहि संग कहो तुमरो मगु हेरत ठाढ कन्हाई॥ ७०१॥ ॥ राधे बाच॥ ॥ सवैया॥ हरि पास न मै चलहों री सखी तू कहा भयो जो तुहि बात बनाई। स्याम न मोरे तूँ पास पठी इह बातन ते कपटी लखि पाई।

हे सखी! तुम मान न करते हुए शका का त्याग करो और कृष्ण के पास चलो। तुम मन मे रस की भावना को भरो और हठ को धारण मत करो। कवि श्याम का कथन है कि उस कृष्ण की लीला को देखे बिना क्यो यहाँ हठ करके तुम बैठी हुई हो। हमारा मन तो उसकी लीला को देखने के लिए उछल रहा है॥ ६९९॥ राधा ने कहा कि हे सखी! मैं कृष्ण के पास नही जाऊँगी और उसकी लीला देखने की मेरी कोई इच्छा नही है। कृष्ण मेरे साथ प्रेम को त्यागकर अन्य स्त्रियो के प्रेम मे लीन हैं। वह चन्द्रभगा के साथ प्रेम मे लीन है और मेरी ओर आँख उठाकर भी नही देखते। इसलिए तुम्हारे मन की उछाल के बावजूद मैं कृष्ण के पास नही जाऊँगी॥ ७००॥ ॥ दूती उवाच॥ ॥ सवैया॥ मैं स्त्रियो को देखने के लिए क्या जाऊँगी। मुझे तो कृष्ण ने तुम्हे लाने के लिए भेजा है। इसीलिए तो मैं सभी गोपियो से दूर होकर तुम्हारे पास आयी हूँ। इधर तुम अभिमानवश बैठी हो और किसी की भी शिक्षा नही सुन रही हो। तुम शीघ्र चलो क्योकि तुम्हारा रास्ता श्रीकृष्ण देख रहे होगे॥ ७०१॥ ॥ राधिका उवाच॥ ॥ सवैया॥ हे सखी! मैं कृष्ण के पास नही जाऊँगी। तुम क्यो व्यर्थ मे ही बाते बना रही हो। कृष्ण ने तुम्हे मेरे पास नही भेजा है, क्योकि मुझे तुम्हारी इन बातों मे

भी कपटी तु कहा भयो ग्वारनि तूँ न लखै कछु पीर पराई । यों कहिकै सिर न्याइ रही कहि ऐसो न मान पिख्यो कहूँ माई ॥ ७०२ ॥ ॥ दूती बाच ॥ ॥ सवैया ॥ फिरि ऐसे कह्यो चलियै री हहा बल मै हरि के पहि यों कहि आई । होहु न आतर स्री ब्रिजनाथ हउ ल्यावत हों उह जाइ मनाई । इत तूं करि मान रही सजनी हरि पै तु चलो तजिकै दुचिताई । तो बिन मो पै न जात गयो कह्यो जानत है कछु बात पराई ॥ ७०३ ॥ ॥ राधे बाच ॥ ॥ सवैया ॥ उठ आई हुती तु कहा भयो ग्वारन आई न पूछ कह्यो कछु सोरी । जाहि कह्यो फिरिकै हरि पै इह ते कछु लाज न लागत तोरी । मो बतिया जदुराइ जू पै कबि स्याम कहै कहियो सु अहोरी । चंद्रभगा संग प्रीत करो तुम सौ नही प्रीत कह्यो प्रभ मोरी ॥ ७०४ ॥ सुनिकै इह राधका की बतिया तब सो उठ ग्वारन पाइन लागी । प्रीत कह्यो हरि की तुम सौ हरि चंद्रभगाहू सों प्रीत तिआगी । उनकी कबि स्याम सबुद्ध कहै तुहि देखन के रस मै अनुरागी । ताही ते बाल

हे गोपी ! तुम भी छलिया हो गयी हो और पराई पीड़ा को अनुभव नही कर रही हो । यह कहते हुए राधा सिर झुकाकर बैठी रही और कवि का कथन है कि मैंने ऐसा अभिमान अन्यत्र कहीं नही देखा ॥ ७०२ ॥ ॥ दूती उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ फिर उसने ऐसा कहा कि हे सखी ! तुम चलो, क्योंकि मैं कृष्ण से वादा करके आई हूँ । मैं कृष्ण से कहकर आई हूँ कि हे व्रजनाथ ! आप व्याकुल न हो, मैं अभी राधा को मनाकर लाती हूँ, परन्तु इधर तुम मान करके बैठी हुई हो । हे सखी ! तुम दुबिधा को छोड़कर श्रीकृष्ण के पास चली चलो । मै तुम्हारे विना नहीं जा सकूँगी । तुम कुछ पराई बात का भी विचार करो ॥ ७०३ ॥ ॥ राधिका उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ हे गोपी ! तुम वैसे ही क्यो चली आई । किसी जादूगर से कुछ जादू पूछकर तुम्हे आना चाहिए था । तुम जाकर कृष्ण से कह दो कि राधा को तुम्हारी कुछ भी लज्जा नही है । मेरी सब बातें तुम विना किसी रोक-टोक के यदुराज से कह देना और साथ-ही-साथ यह भी कह देना कि हे कृष्ण ! तुम्हारी प्रीति केवल चन्द्रभगा से है, मेरे साथ तुम्हारा कोई प्रेम नही है ॥ ७०४ ॥ राधा की इन बातों को सुनकर वह गोपी राधा के पाँव पर पड़ गयी और कहने लगी कि हे राधा ! कृष्ण का प्रेम केवल तुम्हारे साथ है और उन्होने चन्द्रभगा के प्रेम को त्याग

बलाइ (मू०ग्रं०३४६) लिउ तेरी मै बेग चलो हरि पै बडभागी ।। ७०५ ।। ।। सवैया ।। ब्रिज लाल बुलावत हैं चलियै कछु जानत हैं रस बात इयानी । तोही को स्याम निहारत हैं तुमरै बिन री नही पीवत पानी । तूँ इह भाँत कहै मुख ते नही जाउगी हउ हरि पै इह बानी । ताही ते जानत हौं सजनी अब जोबन पाइ भई हैं दिवानी ।।७०६।। ।। सवैया ।। मान कर्यो मन बीच त्रिया तज बैठ रही हित स्याम जू केरो । बैठ रही बक ध्यान धरे सभ जानत प्रीत को भावन नेरो । तो संग तौ मै कह्यो सजनी कहबे कहु जो उमग्यो मन मेरो । आवत है इम भो मन मै दिन चारकु पाहुन जोबन तेरो ।।७०७।। ताके न पास चलैं उठकै कबि स्याम जोऊ सभ लोगन भोगी । ता ते रही हठ बैठ त्रिया उनको कछु जैगो न आपन खोगी । जोबन को जु गुमान करै तिह जोबन की सु दशा इह होगी । तो तजिकै सोऊ यों रमि है जिम कंध पै डार बघंबर जोगी ।। ७०८ ।। नैन कुरंगन से तुमरे सम केहरि की कटिरी

दिया है । कवि श्याम का कथन है कि वह दूती कह रही है कि मैं तुम्हें देखने के लिए व्याकुल हूँ । हे रूपवती कन्या ! मै तुम पर न्योछावर हूँ, अब तुम शीघ्र ही श्रीकृष्ण के पास चली चलो ।। ७०५ ।। ।। सवैया ।। हे सखी ! तुम अनजान हो और रस की बात को कुछ समझ ही नही रही हो, तुम्हे श्रीकृष्ण बुला रहे है, चलो । तुम्ही को ही श्रीकृष्ण इधर-उधर ढूंढ रहे हैं और तुम्हारे बिना पानी नही पी रहे है । तुमने तो यह कह दिया है कि मैं कृष्ण के पास नही जाऊँगी । मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम यौबन को प्राप्त कर पगला गई हो ।। ७०६ ।। ।। सवैया ।। वह गोपी (राधा), कृष्ण के प्रेम को त्यागकर मन मे अहंकार करते हुए बैठ गयी है। उसने बगुले के समान ध्यान लगा रखा है । वह जानती है कि प्रेम का घर अब पास ही है । तव मैनप्रभा ने पुनः कहा कि हे सखी ! मेरे मन में जो आया था वह मैने कह दिया है । परन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम्हारा यौवन केवल चार दिन का मेहमान है ।। ७०७ ।। जो सब लोगो को भोगनेवाला है । तुम उसके पास उठकर नही जा रही हो । हे गोपी ! तुम हठ करके बैठी हो परन्तु कृष्ण का तो कुछ नही जाएगा, तुम्हारी ही हानि होगी । यौवन का जो अभिमान करता है, उसकी यह दशा होगी कि उसे कृष्ण उसी प्रकार छोड़कर चला जाएगा जिस प्रकार योगी शेर की खाल कधे पर डालकर घर-बार छोड़कर चल देता है ।। ७०८ ।। तुम्हारे

सुन त्वै है। आनन सुंदर है ससि सो जिह को फुन कंज बराबर क्वै है। बैठ रही हठ बाँध घनो तिह ते कछु आप नही सुन खवैहै। ए तन सो तुहि बैर कर्‌यो हरि सिउँ हठि ए तुमरो कहु ह्वैहै ॥ ७०९ ॥ ॥ सवैया ॥ सुनकै इह ग्वारन की बतिया ब्रिखभान सुता अति रोस भरी। नैन नचाइ चड़ाइकै भउहन पै मन मै संग क्रोध जरी। जोऊ आई मनावन ग्वारनि थी तिह सो बतिया इम पै उचरी। सखी काहे कौ हउ हरि पास चलौ हरि की कछु मो परवाह परी ॥ ७१० ॥ यौ इह उत्तर देत भई तब या बिधि सो उन बात करी है। राधे बुलाइ लिउ रोस करो नहि किउ करि कोप के संग भरो है। तू इत मान रही करिकै उत हेरत पै रिपु चंद हरी है। तूँ न करै परवाह हरी हरि कौ तुमरी परवाह परी है ॥ ७११ ॥ ॥ सवैया ॥ यों कहि बात कही फिरि यौ उठ बेग चलो चलि होहु सँजोगी। ताही के नैन लगे इह ठउर जोऊ सभ लोगन को रस भोगी। ताके न पास चलै सजनी उनको कछु जैहै न आपन खोगी। त्वै मुख री बल देखन को जदुराइ के

नेत्र हिरण के समान और कमर शेरनी के समान पतली है। तुम्हारा मुख चन्द्रमा और कमल के समान सुन्दर है। तुम हठ बाँधकर बैठी हो। इससे उसका कुछ भी नही जाएगा। कुछ न खा-पीकर तुम स्वय अपने शरीर से शत्रुता कर रही हो, क्योकि कृष्ण के साथ तुम्हारा हठ चल नही पायेगा ॥ ७०९ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपी की यह बात सुनकर राधा क्रोध से भरकर, नयन नचाते हुए, भौहो और मन मे क्रोध भरते हुए जो गोपी उसे मनाने आई थी, उससे कहने लगी कि हे सखी ! मैं कृष्ण के पास क्यो जाऊँ, मुझे कृष्ण की क्या परवाह पड़ी है ॥ ७१० ॥ जब इस प्रकार का उत्तर राधा ने दिया तो सखी ने पुन: कहा, हे राधा ! तुम कृष्ण को बुला लो। तुम व्यर्थ ही क्रोध से भरी हुई हो। तुम इधर अहंकार करके अड़ी हुई हो और उधर श्रीकृष्ण को चन्द्रमा की चाँदनी भी शत्रु के समान दिखाई दे रही है। तुम्हे बेशक कृष्ण की कोई परवाह नही, परन्तु कृष्ण को तुम्हारी पूरी परवाह है ॥ ७११ ॥ ॥ सवैया ॥ यह कहकर उस सखी ने फिर कहा, हे राधा ! तुम जल्दी चलो और कृष्ण से जल्दी मिलो। जो सब लोगो के रस को भोगनेवाला है। उसकी आँखें तुम्हारे इस निवास स्थान पर लगी हुई है। हे सखी ! उसके पास न जाओगी तो उनका तो कुछ नही जाएगा अपितु तुम्हारी ही हानि होगी। तुम्हारा मुख

नैन भे दोउ बिओगी ।। ७१२ ।। पेखत है नही (मू०ग्रं०३४७) अउर त्रिया तुमरो ई सुनो बलि पंथि निहारै । तेरे ही ध्यान बिखै अटके तुमरी ही किधौ बलि बात उचारै । झूम गिरै कबहूँ धरनी पर त्वै मधि आपन आप सँभारै । तउन समै सखी तोहि चितारि कै स्याम जू मैन को मान निवारै ।। ७१३ ।।

।। सवैया ।। ता ते न मान करो सजनी उठि बेग चलो कछु शंक न आनो । स्याम की बात सुनो हम ते तुमरे चित मै अपनो चित मानो । तेरे ही ध्यान फसे हरिजू करिकै मन शोक अशोक बहानो । मूड़ रही अबला करि मान कछू हरि को नही हेत पछानो ।। ७१४ ।। ग्वारनि की सुन कै बतिया तब राधका उत्तर देत भई । किह हेत कह्यो तजि कै हरि पास मनावन मोहू के काज धई । नहि हउ चलिहो हरि पास कह्यो तुमरी धउ कहा गति ह्वैहै दई । सखी अउरन नाम सु मूड़ धरै न लखै इह हउहूँ कि मूड़ मई ।। ७१५ ।। सुन कै ब्रिखभान सुता को कह्यो इह भाँत सो ग्वारन उत्तर दीनो । री सुन ग्वारनि मो बतिया तिनहूँ सुन स्रौन सुनैबे कउ कीनो ।

देखने के लिए कृष्ण की दोनो आँखे वियोगी हो गयी हैं ।। ७१२ ।। हे राधा ! वह अन्य किसी स्त्री की ओर नही देखते है, अपितु तुम्हारी ही राह देख रहे है । उनको तुम्हारा ही ध्यान लगा हुआ है और तुम्हारी ही वाते करते है । कभी वे अपने-आप को सँभाल लेते है और कभी झूमकर धरती पर गिर पडते है । हे सखी ! जिस समय कृष्ण तुम्हे याद करते है तो ऐसा लगता है कि वे मानो कामदेव का गर्व चूर कर रहे है ।। ७१३ ।।
।। सवैया ।। इसलिए हे सखी ! तुम मान मत करो और शका को त्यागकर शीघ्र चलो । हमसे अगर श्याम की बात पूछती हो तो यह समझो, उसका चित्त तुम्हारे चित्त मे ही लगा हुआ है । वे कई बहाने करके तुम्हारे ही ध्यान मे फँसे हुए है । हे मूर्ख स्त्री ! तुम व्यर्थ ही मान कर रही हो और कृष्ण के हित को पहचान नही रही हो ।। ७१४ ।। गोपी की वात सुनकर राधा ने उत्तर दिया कि तुमसे किसने कहा था जो तुम हरि को छोड़कर मुझे मनाने के लिए चल पड़ी हो । मैं कृष्ण के पास नही जाऊँगी । तुम्हारी तो वात ही क्या, यदि विधाता की भी यही इच्छा हो तव भी मैं नही जाऊँगी । हे सखी ! उसके मन में औरो का नाम बसा हुआ है और वह मुझ मूर्ख को नही देख रहा है ।। ७१५ ।। राधा की वात मुनकर गोपी ने उत्तर दिया कि हे गोपी ! तुम मेरी बात सुनो ।

मोहि कहै मुख ते कि तूँ मूड़ मै मूड़ तुही मन मै करि चीनो । मै जदुराइ की भेजी अई सुनि तैं जदुराइ हूँ सो हठ कीनो ॥ ७१६ ॥ यों कहि कैं इह भाँत कह्यो चलियै उठ कैं बलि शंक न आनो । तोही सों हेतु घनो हरि को तिह ते तुमहूँ कह्यो साच ही जानो । पाइन तोरे परो ललना हठ दूर करो कबहूँ फुन मानो । ता ते निशंक चले तजि शंक किधो हरि की वह प्रीति पछानो ॥ ७१७ ॥ ॥ सवैया ॥ कुंजन मैं सखी रास समै हरि केल करे तुम सो बन मै । जितनो उनको हित है तुहि सो हित ते नही आधिक है उन मैं । मुरझाइ गए बिन त्वै हरिजू नहि खेलत है फुन ग्वारनि मै । तिह ते सुन बेग निशंक चलो करकै सुध पै वन की मन मै ॥ ७१८ ॥ स्याम बुलावत है चलियै बल पै मन मैं न कछू हठु कीजै । बैठ रही करि मान घनो कछु अउरनहू को कह्यो सुन लीजै । ता ते हउ बात करो तुम सो इह ते न कछू तुमरा कह्यो छीजै । नैंकु निहार कह्यो हम ओर सभै तजि मान अबै हसि दीजै ॥ ७१९ ॥ ॥ राधे बाच दूती सो ॥ ॥ सवैया ॥ मै

उसने भी मुझे तुमसे कुछ कहने-सुनने को कहा है । तुम मुझे मूर्ख कह रही हो, परन्तु तुम मन मे समझो कि वास्तव मे मूर्ख तुम ही हो । मैं तो कृष्ण की भेजी हुई यहाँ आई हूँ और तुमने कृष्ण से हठ ठान रखा है ॥ ७१६ ॥ इस प्रकार कहकर गोपी ने कहा कि हे राधा ! तुम शका मत करो और चलो । तुम सत्य जानो कि श्रीकृष्ण का प्रेम सबसे अधिक तुम्ही से है । हे ललना ! मैं तुम्हारे पांव पडती हूँ, तुम हठ का त्याग करो और कृष्ण के प्रेम को पहचानते हुए शकारहित होकर चलो ॥ ७१७ ॥ ॥ सवैया ॥ हे सखी ! कुजो मे और वन में कृष्ण तुम्हारे साथ ही क्रीडा करते थे । जितना उनका प्रेम तुममे है उतना अधिक और गोपियों में नही है । श्रीकृष्ण तुम्हारे विना मुरझा गये और अब गोपियो मे खेलते भी नही । इसलिए तुम वन की रासलीला को स्मरण करते हुए नि:सकोच चली चलो ॥ ७१८ ॥ हे सखी ! तुम्हे कृष्ण बुला रहे है, तुम हठ छोड़ो और चलो । तुम मन में अभिमान करके बैठ गयी हो, परन्तु तुम्हे दूसरो का कहा भी सुन लेना चाहिए । इसी से मैं तुमसे कह रही हूँ कि तुम्हारा कुछ नही बिगड़ेगा यदि तुम थोड़ा सा मेरी ओर देखकर और अभिमान को त्यागकर हँस दो ॥ ७१९ ॥ ॥ राधिका उवाच दूती के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ न तो मैं हँसूगी और बेशक तुम्हारे जैसी करोड़ो सखियाँ

न हसों हरि (मू०ग्रं०३४८) पास चलो नही जउ तुहि सी सखी कोटक आवै। आइ उपाव अनेक करै अरु पाइन ऊपर सीस निआवै। मै कबहूँ नही जाउ तहाँ तुह सी कहि कोटक बात बनावै। अउर की कउन गनो गनती बल आपन कानजू सीस झुकावै ॥ ७२० ॥ ॥ प्रतिउत्तर बाचु ॥ ॥ सवैया ॥ जो इन ऐसी कही बतिया तबही उह ग्वारनि यौ कह्यो होरी। जउ हम बात कही चलियै तु कहै हम स्याम सो प्रीत ही छोरी। स्याम सो माई कहा कहियै इह साथ करै हितवा बर जोरी। भेजत है हम को इह पै इह सी तिहके पहि ग्वारन थोरी ॥७२१॥ भेजत है इह पै हमको इह ग्वारनि रूप को मान करै। इह जानत वै घट है हम ते तिहते हठ बाँध रही न टरै। कबि स्याम पिखो इह ग्वारनि की मत स्याम के कोप ते पै न डरै। तिह सो बलि जाउ कहा कहियै तिह ल्यावहु यों मुख ते उचरै ॥ ७२२ ॥ ॥ सवैया ॥ स्याम करै सखी अउर सो प्रीत तबै इह ग्वारनि भूल पछानै। वाके किए बिन री सजनी सु रही कहिकै सु कह्यो नही मानै। याको बिसार डरे मन ते

आवे, न तो मैं चलूंगी। तुम्हारी जैसी सखियाँ चाहे अनेक उपाय करे और मेरे पाँव पर सिर झुकाये, मैं वहाँ नही जाऊँगी। वेशक कोई करोड़ो वाते वनाये। मैं अन्य किसी की गणना नही करती हूँ और कहती हूँ कि कृष्ण जी (स्वयं आकर) मेरे सामने सिर को झुकाये ॥ ७२० ॥ ॥ प्रतिउत्तर उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ जब इस प्रकार राधा ने कहा तो गोपी ने उत्तर दिया कि हे राधा! जब मैंने चलने की वात कही तो तुमने यह कह दिया कि मुझे कृष्ण के पास प्रेम ही नही है। हे मेरी माँ! मैं क्या कहूँ, कृष्ण तो इसके साथ ज़बरदस्ती प्रेम कर रहे हैं और हमको इसके पास भेज रहे है। क्या इस जैसी गोपियाँ कृष्ण के पास कम है? ॥ ७२१ ॥ हमको इसके पास भेजते है और यह अपने रूप का अभिमान कर रही है। यह भी जानती है कि सभी गोपियाँ सौंदर्य मे मुझसे कम हैं, इसीलिए यह हठ बाँधे हुए वैठी है। कवि श्याम का कथन है कि देखो इस गोपी (राधा) को कृष्ण के क्रोध का जरा भी भय नही है। मैं इसकी वहादुरी पर न्योछावर हूँ जो मुख से कह रही है कि कृष्ण को लेकर आओ ॥ ७२२ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण किसी अन्य से प्रीति करते है, इस बात को यह गोपी समझ नही रही है। उसके द्वारा कुछ किए जाने के विना ही यह कहे जा रही है और मान नही रही है। इसको जब कृष्ण

तबही इह मानहि को फल जानै । अंत खिसाइ घनी अकुलाइ कह्यो तब ही इह मानै तु मानै ॥ ७२३ ॥ यौ सुनकै ब्रिखभान सुता तिह ग्वारनि को इम उत्तर दीनो । प्रीत करी हरि चंद्रभगा संग तउ हमहूँ अपमान सु कीनो । तउ सजनी कह्यो रूठ रही अति क्रोध बढ्यो हमरे जब जीनो । तोरे कहे बिनरी हरि आगे हूँ मोहू सो नेहु बिदा कर दीनो ॥ ७२४ ॥ ॥ सवैया ॥ यौ कहि ग्वारनि सो बतिया कबि स्याम कहै फिर ऐसे कह्यो है । जाहि री काहे को बैठी है ग्वारनि तेरो कह्यो अति ही मै सह्यो है । बात कही अति ही रस की तुहि ताको न सो सखी चित्त चह्यो है । ताही ते हउ न चलो सजनी हम सौ हरि सौ रस कउन रह्यो है ॥ ७२५ ॥ यौ सुन उत्तर देत भई कबि स्याम कहै हरि के हित केरो । कान्ह के भेजे ते या पहि आइकै कै कै मनावन को अति झेरो । स्याम चकोर मनैब्रन जो सुन री इह भाँत कहै मन मेरो । ताही निहार निहार सुनो ससि सो मुख देखत ह्वैहै री तेरो ॥ ७२६ ॥ ॥ राधे बाच ॥ ॥ सवैया ॥ देखत है तु कहा भयो (मू०ग्रं०३४६)

भुला देगा तभी यह ऐसा मानने का फल जान पाएगी और अन्त मे खिसियाकर फिर उसको मनाएगी । फिर वह मानेगा कि नही (कुछ कहा नही जा सकता) ॥ ७२३ ॥ यह सुनकर राधा ने उसको उत्तर दिया कि कृष्ण ने चन्द्रभगा से प्रेम कर लिया है, इसी से मैंने भी उसका अपमान किया है । इस पर तुमने इतना सब कहा, इसलिए मेरे मन में क्रोध बढ गया । तुम्हारे ही कहने पर मैंने कृष्ण से प्रेम किया और अब उसी ने मुझसे प्रेम छोड दिया है ॥ ७२४ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपी से इस प्रकार कहते हुए राधा ने कहा कि हे गोपी ! तुम जाओ, मैंने तुम्हारा कहा बहुत सहन किया है । तुमने बहुत सी रस की बाते की है, जिन्हे मेरा चित्त नही चाहता था । हे सखी ! मैं इसीलिए कृष्ण के पास नहीं जाऊँगी, क्योकि मेरे और कृष्ण के बीच मे अब कौन सा प्रेम बाकी रह गया है ॥ ७२५ ॥ राधा का यह उत्तर सुनकर कृष्ण के हित की बात करते हुए गोपी ने कहा कि कृष्ण के कहने पर इसको आ-आकर मनाना एक बहुत बड़ा झञ्झट है । हे राधा ! मेरा मन कह रहा है कि चकोर रूपी कृष्ण तुम्हारा चन्द्रमुखी मुख देखने के लिए बेचैन है ॥ ७२६ ॥ ॥ राधा उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ बेचैन है तो मैं क्या करूँ ? मैने जो कह दिया है कि मैं वहाँ नही जाऊँगी । किसके लिए मैं व्यग्य सहन करूँ ! मैं तो

ग्वारनि मै न कह्यो तिह के पहि जैहो। काहे के काज उराहन री सहौहि अपनो पति देख अघैहो। स्याम रचै संग अउर त्रिया तिहके पहि जाइ कहा जस पैहो। ता ते पधारहु री सजनी हरि कौ नहि जीवत रूप दिखैहो ॥ ७२७ ॥

अथ मैनप्रभा क्रिशन की पास फिर आई ॥

॥ दूती बाच कान्ह जू सो ॥ ॥ सवैया ॥ यौ जब ताहि सुनी बतिया उठकै सोऊ नंदलला पहि आई। आइके ऐसे कह्यो हरि पै हरि जू नहि मानत मूड़ मनाई। कै तजि वाहि रचो इनसो नही आपन जाइ कै ल्याउ मनाई। यौ सुन बात चल्यो तिह को कबि स्याम कहै हरि आपही धाई ॥ ७२८ ॥ ॥ सवैया ॥ अउर न ग्वारनि कोऊ पठी चलिकै हरि जू तब आप ही आयो। ताही को रूपु निहारत ही ब्रिखभान सुता मन मै सुख पायो। पाइ घनो सुखु पै मन मै अति ऊपर मान सो बोल सुनायो। चंद्रभगाहूँ सो केल करो इह ठउर कहा तजि लाजहि आयो ॥ ७२९ ॥ ॥ राधे बाच कन्ह जू सो ॥

अपने पति के साथ ही प्रसन्न रहूँगी। कृष्ण तो अन्य स्त्रियों के साथ रमण कर रहे हैं, उनके पास जाकर मुझे कौन सा सुयश प्राप्त होगा। इसलिए हे सखी! तुम जाओ, मैं जीते-जी अब कृष्ण को दिखाई नही पड़ूँगी ॥ ७२७ ॥

मैनप्रभा का कृष्ण के पास आगमन

॥ दूती उवाच श्रीकृष्ण जी के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ मैनप्रभा ने जब ये सब बाते सुनी तो वह उठकर नन्दलाल के पास आ गयी और कहने लगी कि हे कृष्ण! उस मूर्ख को बहुत मनाया गया पर वह नही मान रही है। आप अब उसको छोड़कर इन्ही गोपियों के साथ रमण करो अन्यथा स्वय जाकर उसे मनाकर ले आओ। यह सुनकर कवि श्याम का कथन है कि कृष्ण स्वय उस ओर चल पड़े ॥ ७२८ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने और किसी गोपी को नही भेजा और स्वय ही चलकर आये। उनको देखते ही राधा को परमसुख प्राप्त हुआ। मन मे तो उसे बहुत सुख हुआ, परन्तु फिर भी ऊपर-ऊपर से अभिमान दिखाते हुए राधा बोली कि आप चन्द्रभगा के साथ क्रीड़ा करो। आप यहाँ लज्जा त्यागकर क्यों चले आये है ॥ ७२९ ॥ ॥ राधा उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे कृष्ण! तुम

।। सवैया ।। रासहि किउ तजि चंद्रभगा चलिकै हमरे पहि किउ
कह्यो आयो। किउ इह ग्वारनि की सिख मान कै आपन ही
उठ कै सखी धायो। जानत थी कि बडो ठगु है इह बातन ते
अब ही लख पायो। किउ हमरे पहि आइ कहयो हम तो तुम
को नही बोल पठायो ।। ७३० ।। ।। कान्ह जू बाच राधे सो ।।
।। सवैया ।। यों सुन उत्तर देत भयो नहि री तुहि ग्वारनि बोल
पठायो। नैनन के करि भाव घने सर सो हमरो मनुआ म्रिग
घायो। ता बिरहागनि सो सुनियै बल अंग जर्यो सु गयो न
बचायो। तेरो बुलायो न आयो हो री तिह ठउर जरे कहु
है किनि आयो ।। ७३१ ।। ।। राधे बाच कान्ह सो ।।
।। सवैया ।। संग फिरी तुमरे हरि खेलत स्याम कहै कबि आनंद
भीनी। लोगन को उपहास सह्यो तुहि मूरत चीन कै अउर न
चीनी। हेत कर्यो अति ही तुम सों तुमहू तजि हेत दशा
इह कीनी। प्रीत करी संग अउर त्रिया कहि स्वास लयो अखियाँ
भर लीनी ।। ७३२ ।। ।। कान्ह जू बाच ।। ।। सवैया ।। मेरो
घनो हितु है तुम सों सखी अउर किसी नहि ग्वारनि माही।

चन्द्रभगा को रासलीला मे छोडकर क्यों मेरे पास चले आये। इन गोपियों
की बात मानकर तुम क्यो स्वय चल पड़े हो। मैं जानती थी कि तुम बहुत
बड़े ठग हो और अब यह तुम्हारी इन बातो से स्पष्ट हो गया है। तुम
मुझे क्यो बुला रहे हो, मैंने तो तुम्हे बुलाया नही ।। ७३० ।। ।। कृष्ण
उवाच राधा के प्रति ।। ।। सवैया ।। यह उत्तर सुनकर कृष्ण ने कहा कि
तुम्हे तुम्हारी सखी गोपियाँ वहाँ बुला रही है। तुम्हारे नयनो के घने
बाणो के कारण मेरा मन रूपी मृग घायल हो गया है। मैं विरह की
अग्नि मे जल रहा हूँ और अपने-आपको बचा नही पा रहा हूँ। मैं तुम्हारे
बुलाने पर नही आया हूँ, मैं तो वहाँ जल रहा था, इसलिए यहाँ आ गया
हूँ ।। ७३१ ।। ।। राधा उवाच कृष्ण के प्रति ।। ।। सवैया ।। कवि
श्याम का कथन है कि राधा ने कहा कि हे कृष्ण ! मैं परम आनन्दित होकर
तुम्हारे साथ खेलती और घूमती रही। मैंने लोगो का उपहास सहन
किया और तुम्हारे सिवा और किसी को नही पहचाना। मैंने केवल तुम्ही
से प्रेम किया, परन्तु तुमने मेरा प्रेम त्यागकर मेरी यह दशा कर दी। तुमने
अन्य स्त्रियो के साथ प्रेम किया है। यह कहते हुए राधा ने लम्बी साँस
लिया और उसकी आँखे भर आयी ।। ७३२ ।। ।। कृष्ण उवाच ।।
।। सवैया ।। हे सखी राधा ! मेरा तुम्हारे में ही प्रेम है। अन्य किसी गोपी

तेरे खरे तुहि देखत हों बिन ह्वै तुहि सूरत की परछाही। यों कहि कान्ह गही बहियाँ चलियै हमसों (मू०ग्रं०३५०) बन मै सुख पाही। हहा चलु मेरी सौं मेरी सौं मेरी सौं तेरी सौं तेरी सौं नाही जू नाही ॥ ७३३ ॥ यो कहि कान गही बहिया तिहु लोगन को भुगिया रस जो है। केहरि सी जिह की कट है जिह आनन पै ससि कोटक को है। ऐसे कह्यो चलियै हमरे संग जो सभ ग्वारनि को मन मोहै। यों कहि काहे करो बिनती सुन कै तुहि लाल हिऐ मधि जो है ॥ ७३४ ॥ काहे उराहन देत सखी कह्यो प्रीत घनी हमरी संग तेरे। नाहक हूँ भरमी मन मै कछु बात न चंद्रभगा मन मेरे। ता ते उठो तजि मान सभै चल खेलहि पै जमुना तट केरे। मानत है नहि बात हठी बिरहातुर ह्वै बिरही जन टेरे ॥ ७३५ ॥ त्याग कह्यो अब मान सखी हमहूँ तुमहूँ बन बीच पधारैं। नाहक ही तूँ रिसी मन मै नही आन त्रियामन बात हमारैं। ताँ ते अशोक के साथ सुनो चल तीर नदी सभ सो कहि डारैं। याते न अउर भली

मे नही। तुम रहती हो तो मै तुम्हें देखता हूँ और तुम नही रहती हो तो तुम्हारी परछाई देखता हूँ। यह कहकर कृष्ण ने राधा की बाँह पकड़ ली और कहा कि चलो हम वन मे शुभ प्राप्त करे। तुम्हे मेरी क़सम है, मेरी कसम है, तुम चलो। राधा कहने लगी, मुझे तुम्हारी कसम है, मैं नही जाऊँगी ॥ ७३३ ॥ इस प्रकार कहकर तीनो लोको के रस को भोगने वाले कृष्ण ने राधा की बाँह पकड़ ली। कृष्ण की कमर शेर के समान पतली और उसका मुख करोड़ो चन्द्रमा के समान सुन्दर है। गोपियो के मन को मोहित करनेवाले कृष्ण ने कहा कि तुम हमारे साथ चलो। तुम ऐसा क्यो कर रही हो। मेरी प्रार्थना है कि तुम्हारे मन मे जो है मुझसे कहो ॥ ७३४ ॥ हे सखी राधा ! तुम क्यो मुझ पर व्यंग्य कर रही हो। मेरी प्रीति तो तुम्हारे साथ ही है। तुम तो व्यर्थ ही भ्रम मे पड गयी हो। चन्द्रभगा के लिए तो मेरे मन मे कोई बात नही। इसलिए तुम अभिमान को त्यागकर यमुना-तट पर खेलने के लिए चलो। हठी राधा बात मान नही रही है, जबकि विरह मे व्याकुल कृष्ण उसे बुला रहे हैं ॥ ७३५ ॥ हे सखी ! तुम मान को त्यागो और आओ, हम-तुम दोनो वन मे चलें। तुम व्यर्थ ही मन मे नाराज हो, क्योंकि मेरे मन मे अन्य कोई स्त्री नही है। इसलिए तुम प्रसन्नता के साथ सुनो और चलो नदी के किनारे चलकर हम यही बात कह देते है कि तुमसे भली और कोई गोपी नही है। तत्पश्चात्

कछु है मिलि कै हम मैन को मान निवारै ॥ ७३६ ॥ कान्ह रसातुर ह्वै अति ही ब्रिखभान सुता ढिग बात उचारी। ताहि मनी हरि बात सोऊ तिन मान की बात बिदा करि डारी। हाथ तिसो बहिआ गहि स्याम सु ऐसे कह्यो अब खेलहि यारी। कान्ह कह्यो तब राधका सो हमरे संग केल करो मोरी प्यारी ॥ ७३७ ॥ ॥ राधे बाच कान्ह सो ॥ ॥ सवैया ॥ यौं सुनिकै ब्रिखभान सुता नंदलाल लला कहु उतर दीनो। ताही सो बात कहो हरिजू जिह के संग नेहु घनो तुम कीनो। काहे कउ मोरी गही बहिआ सु दुखावत काहे कउ हो मुहि जीनो। यौ कहि बात भरी अखिआँ करि कै दुखु स्वास उसास सु लीनो ॥ ७३८ ॥ ॥ सवैया ॥ केल करो उन ग्वारनि सो जिन संग रच्यो मन है सु तुमारो। स्वासन लै अखिआँ भरकै ब्रिखभान सुता इह भाँत उचारो। संग चलो नहि हउ तुमरे कर आयुध लै कह्यो किउ नही मारो। साच कहो तुम सों बतियाँ तजिकै हम को जदुबीर पधारो ॥ ७३९ ॥ ॥ कान्ह जू बाच राधे सो ॥ ॥ सवैया ॥ संग चलो हमरे उठकै सखी मान कछू मन मै नही आनो। आइहो हउ तजि शंक निशंक

आओ हम दोनों मिलकर कामदेव के गर्व को चूर करे ॥ ७३६ ॥ कृष्ण ने अत्यन्त व्याकुल होकर जब राधा के साथ बाते की तो उसने कृष्ण की बात मान ली और मान को त्याग दिया। कृष्ण ने राधा का हाथ पकड़कर कहा कि आओ मेरे मित्र और प्यारी राधा ! तुम हमारे साथ खेलो और क्रीड़ा करो ॥ ७३७ ॥ ॥ राधा उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण की बात सुनकर राधा ने कृष्ण को उत्तर दिया कि हे कृष्ण ! तुम उसी के साथ बाते करो। जिसके साथ तुमने प्रेम किया है। तुमने मेरी बाँह क्यों पकड़ ली है और मेरे हृदय को क्यो दुखा रहे हो ? यह बात कहकर राधा ने आँखें भर ली और उसने लम्बी साँस ली ॥ ७३८ ॥ ॥ सवैया ॥ लम्बी साँस लेते हुए और आँखे भरते हुए राधा ने कहा कि हे कृष्ण ! तुम उन्ही गोपियो के साथ रमण करो, जिनके साथ तुम्हारा मन लगा हुआ है। तुम मुझे हाथो मे शस्त्र लेकर चाहे मार ही क्यो न दो, परन्तु मैं तुम्हारे साथ नही जाऊँगी। हे कृष्ण ! मैं तुमसे सत्य कह रही हूँ कि तुम मुझे छोड़कर यहाँ से चले जाओ ॥ ७३९ ॥ ॥ कृष्ण उवाच राधा के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे प्रिये ! तुम मान का त्याग करते हुए मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारे पास सब शंकाओ को त्याग

कछू तिह ते रस रीत पछानो। मित्र के बेचे किधौ बिकियै इह स्रउन सुनो सखी प्रीत कहानो। ताते हउ तेरी करो (मू०ग्रं०३५१) बिनती कहिबो मुहि मान सखी अब मानो ॥ ७४० ॥ ॥ राधे बाच ॥ ॥ सवैया ॥ यों सुनिकै हरि की बतिया हरि को तिन या बिध उत्तर दीनो। प्रीत रही हम सो तुमरी कहाँ यौ कहिकै द्रिग बार भरीनो। प्रीत करी संग चंद्रभगा अति कोप कढ्यो तिह ते मुहि जीनो। यौ कहिकै भरि स्वास लयो कबि स्याम कहै अतही कपटीनो ॥७४१॥ ॥ सवैया ॥ क्रोध भरी फिरि बोल उठी ब्रिखभान सुता मुख सुंदर सिउ। तुम सौं हम सों रस कउ न रह्यो कबि स्याम कहै बिध के पहि जिउ। हरि यौ कही मोहित है तहि सो उन कोप कह्यो हम सो कहु किउ। तुमरे संग केल करे बन मै सुनियै बतिया हमरी बल इउ ॥७४२॥ ॥ कान्ह जू बाच राधे सो ॥ ॥ सवैया ॥ मोह्यो हउ तेरो सखी चलिबो पिख मोह्यो सु हउ द्रिग पेखत तेरे। मोहि रह्यो अलकै तुमरी पिखि जात गयो

कर चला आया हूँ। अब तुम कुछ तो प्रेम की रीति पहचानो। मित्र तो बेचने पर भी विकने के लिए तैयार रहता है। तुमने यह प्रीति की कहानी अपने कानो से अवश्य सुनी होगी। इसलिए हे प्रिये ! मैं तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि अब तुम मेरा कहना मान जाओ ॥ ७४० ॥ ॥ राधा उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण की बाते सुनकर राधा ने इस प्रकार उत्तर दिया और कहा कि हे कृष्ण ! हमारी और तुम्हारी प्रीति रही ही कब है ? यह कहते हुए राधा की आँखो मे आँसू भर आये। उसने पुनः कहा कि तुम्हारा प्रेम तो चन्द्रभगा के साथ है और तुमने तो क्रोधित होकर मुझे रासमडली से चले जाने के लिए विवश किया या। कवि श्याम का कथन है कि इतना कहकर उस छलना ने एक लम्बी साँस ली ॥ ७४१ ॥ ॥ सवैया ॥ क्रोध से भरकर अपने सुन्दर मुख से राधा बोल उठी कि हे कृष्ण ! तुम्हारे और मेरे मे अब प्रेम-रस नही रह गया। शायद विधाता को यही मजूर था। कृष्ण कहते है कि हम तुम्हारे पर मुग्ध है, परन्तु वह क्रोधित होकर कहती है कि तुम अब हम पर मोहित क्यों हो। तुम्हारे साथ तो (चन्द्रभगा) वन मे क्रीड़ा करती है ॥ ७४२ ॥ ॥ कृष्ण उवाच राधा के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ हे प्रिये ! मैं तुम्हारी चाल देखकर तथा नयन देखकर तुम पर मुग्ध हूँ। मैं तुम्हारी केशराशि को देखकर मोहित हूँ, इसलिए इसे त्याग करके मैं अपने घर तक नही

तजि या नही डेरे । मोहि रह्यो तुहि अंग निहारत प्रीत बढी तिह ते मन मेरे । मोहि रह्यो मुख तेरो निहारत जिउँ गन चंद चकोरन हेरे ।। ७४३ ।। ता ते न मान करो सजनी मुहि संग चलो उठके अब ही । हमरी तुम सो सखी प्रीत घनी कुपि बात कहो तजि कै सभ ही । तिह तै इह छुद्रन बात की रीत कह्यो न अरी तुमकों फब ही । तिह ते सुन मो बिनती चलियै इह काज किए न कछू लभ ही ।। ७४४ ।। ।। सवैया ।। अत ही जब कान्ह करी बिनती तब ही मन रंक त्रिया सोऊ मानी । दूर करी मन की गनती जबही हरि की तिन प्रीत पछानी । तउ इम उत्तर देत भई जोऊ सुंदरता महि त्रीयन रानी । त्याग दई दुचितई मन की हरि सो रस बातन सो निज ठानी ।।७४५।। मोहि कहो चलियै हमरे संग जानत हो रस साथ छरोगे । रास बिखै हमको संग लै सखी जानत ग्वारनि संग अरोगे । हउ नही हारिहउ पै तुमते तुम ही हम ते हरि हारि परोगे । एक न जानत कुंजगलीन लवाइ कह्यो कछु काज करोगे ।। ७४६ ।।

जा सका । तुम्हारे अंगो को देखकर ही मैं मोहित हूँ । इसीलिए मेरे मन मे तुम्हारे लिए प्रेम वढा है । मै तुम्हारा मुख देखकर उसी प्रकार विमोहित हूँ, जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर चकोर मुग्ध हो जाता है ।। ७४३ ।। इसलिए हे सजनी ! तुम अब मान मत करो और मेरे साथ अभी उठकर चलो । मेरी तुम्हारे साथ गहरी प्रीति है । तुम क्रोध का परित्याग कर मुझसे बात करो । तुमको यह छुद्र ढंग से बात करना शोभा नही देता है । तुम मेरी प्रार्थना सुनकर चलो, क्योंकि इस प्रकार वने रहने से कुछ लाभ नही होगा ।। ७४४ ।। ।। सवैया ।। जब कृष्ण ने बहुत बार प्रार्थना की तो वह गोपी (राधा) थोड़ा-सा मानी । उसने मन का भ्रम दूर करके कृष्ण के प्रेम को पहचाना तथा सुन्दरता में स्त्रियों की रानी राधा ने कृष्ण को उत्तर दिया । उसने मन की दुविधा को त्याग दिया और कृष्ण से प्रेम-रस की बातें प्रारम्भ कर दी ।। ७४५ ।। राधा ने कहा, तुमने मोहित होकर मुझे साथ चलने के लिए कह दिया, परन्तु मैं जानती हूँ कि तुम प्रेम-रस के द्वारा मुझे छलोगे । रासलीला मे साथ तो तुम मुझे लेकर चलोगे, परन्तु मैं जानती हूँ कि वहाँ तुम अन्य गोपियो के साथ विहार करोगे । हे कृष्ण ! मैं तो तुमसे नही हारी हूँ, परन्तु भविष्य मे भी तुम ही मुझसे हारोगे । किसी भी कुंजगली के बारे मे तुम कुछ जानते नही हो, मुझे वहाँ ले जाकर क्या करोगे ।। ७४६ ।। कवि श्याम

ब्रिखभान सुता कबि स्याम कहै अति जो हरि के रस भीतर भीनी। री ब्रिजनाथ कह्यो हसिकै छबि दातन की अति सुंदर चीनी। ता छबि की अति ही उपमा मन मै जु भई कबि के सोऊ कीनी। जिउँ घन बीच लसै (मू०ग्रं०३५२) चपला तिह को ठग गे ठगनी ठग लीनी॥ ७४७॥ ब्रिखभान सुता कबि स्याम कहै अति जो हरि के रस भीतर भीनी। बीच हुलास वढ्यो मन के जब कान्ह की बात सभै मन लीनी। कुंजगलीन मै खेलहिगे हरि के तिन संग कह्यो सोऊ कीनी। यों हसि बात निशंग कह्यो मन की दुचितई सभ ही तजि दीनी॥ ७४८॥ ॥ सवैया॥ दोऊ जउ हसि बातन संग ढरे तु हुलास बिलास बढे सगरो। हसि कंठ लगाइ लई ललना गहि गाड़े अनंग ते अंक भरे। तरकी है तनी दरकी अंगिआ गर माल ते तूटकै लाल परे। पिय के मिल ए त्रिय के हिय ते अंगरा बिरहागिन के निकरे॥ ७४९॥ हरि राधका संग चले बन लै कबि स्याम कहै मन आनंद पायो। कुंजगलीन मै केल करे मन को सभ शोक हुते बिसरायो। ताही कथा को

कवि का कथन है कि राधा कृष्ण के रस मे विभोर हो गयी। उसने हँसकर व्रजनाथ से कहा और उसके हँसने से उसके दाँतो की सुन्दर चमक कवि के कथनानुसार इस प्रकार दिखाई देने लगी जैसे बादलों मे बिजली चमक रही हो। इस प्रकार उस छलना ने उस ठग (श्रीकृष्ण) को ठग लिया॥ ७४७॥ राधा कृष्ण के प्रेम-रस में सराबोर हो गयी और उनकी बातो को स्मरण करते हुए उसके मन मे आनन्द भर उठा। उसने कहा कि मैं कुजगलियो में कृष्ण के साथ खेलूँगी और वह जो कहेगे वही करूँगी। यह कहते हुए निःसकोचभाव से उसने मन की सभी दुबिधाओ का त्याग कर दिया॥ ७४८॥ ॥ सवैया॥ जब दोनो हँसकर बाते करते हुए गिर पड़े तो उनका प्रेम और विलास बढ चला। कृष्ण ने हँसकर उस ललना को गले से लगा लिया और बलपूर्वक उसे अंक मे भर लिया। इसी क्रम मे राधा की चोली खिच गयी और उसकी तनी टूट गयी तथा उसके गले की माला के लाल टूटकर गिर पडे। प्रियतम से मिलकर राधा के अग विरह की अग्नि से बाहर निकल आये॥ ७४९॥ कवि का कथन है कि मन मे आनन्दित होते हुए कृष्ण राधा को लेकर वन की ओर चले गये। वे कुजगलियों मे विचरण करते हुए मन के शोक को विस्मरण करने लगे। इसी प्रेम-कथा को शुकदेव आदि ने गाकर सुनाया है। जिस कृष्ण का

किधौ जग मै मन मै सुक आदिक गाइ सुनायो । जोऊ सुनै सोऊ रीझ रहै जिह को सभ ही धर मै जस छायो ॥ ७५० ॥
॥ कान्ह जू बाच राधे सो ॥ ॥ सवैया ॥ हरि जू इम राधका संग कही जमना मै तरो तुमको गहिहै । जल मै हम केल करैगे सुनो रस बात सभै सु तहाँ कहिहै । जिह ओर निहार बधू ब्रिज की ललचाइ मनै पिखिबो चहिहै । पहुचैगी नही तिह ग्वारनि ए हमहूँ तुम रीझ तहा रहिहै ॥ ७५१ ॥
॥ सवैया ॥ ब्रिखभान सुता हरि के मुख ते जल पैठन की बतिया सुन पाई । धाइकै जाइ परी सर मै करिकै अति ही ब्रिजनाथ बजाई । ताही के पाछे ते स्याम परे कबि के मन मै उपमा इह आई । मानहु स्याम जू बाज पर्यो पिखि कै ब्रिज नार को जिउ मुरगाई ॥ ७५२ ॥ ब्रिजनाथ तबै धसिकै जलि मै ब्रिजनार सोऊ तब जाइ गही । हरि को तन भेट हुलास बढ्यो गिनती मन की जल भाँत बही । जोऊ आनंद बीच बढ्यो मन के कबि लउ मुख ते कथ भाख कही । पिख्यो जिनहूँ सोऊ रीझ रह्यो पिखि कै जमुना जिह रीझ रही ॥ ७५३ ॥ जल ते कढिकै फिर ग्वारन सो कबि स्याम कहै फिर रास मचायो । गावत भी ब्रिखभान सुता अति ही मन भीतर आनंद पायो ।

यश सपूर्ण पृथ्वी पर छाया हुआ है, उसकी कथा जो भी सुनता है मोहित हो उठता है ॥ ७५० ॥ ॥ कृष्ण उवाच राधा के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ राधा को कृष्ण ने कहा कि हम तुमको पकडते है, तुम यमुना में तैरो । जल में ही हम प्रेम-क्रीड़ा करेंगे और वही तुमसे प्रेम की सभी बाते करेंगे । इधर जब व्रज की स्त्रियाँ ललचाकर तुम्हे देखना चाहेंगी तो वे वहाँ तक पहुँच नही पायेगी । हम तुम प्रसन्नतापूर्वक वही रहेगे ॥ ७५१ ॥ ॥ सवैया ॥ जल मे जाने की कृष्ण की बात को सुनकर राधा दौड़कर राधा जल मे कूद गयी । उसी के पीछे कृष्ण भी कूद पड़े और कवि के कथनानुसार वे ऐसे लगे जैसे राधा रूपी पक्षी को पकडने के लिए कृष्ण रूपी बाज ने झपट्टा मारा हो ॥ ७५२ ॥ कृष्ण ने जल मे तैरते हुए राधा को जा पकड़ा । कृष्ण को शरीर समर्पित करते हुए राधा का उल्लास बढ़ चला और मन के भ्रम जल की भाँति बह गये । उनके मन का आनन्द बढ गया तथा कवि के कथनानुसार जिसने भी उन्हे देखा, वह मोहित हो उठा । यमुना भी विभोर हो उठी ॥ ७५३ ॥ जल से निकलकर श्रीकृष्ण ने फिर गोपियो के साथ रासलीला प्रारम्भ कर दी ।

ब्रिजनारिन सो मिल कै ब्रिजनाथ जू सारंग (मू०ग्रं०३५३) मै इक तान बसायो। सो सुनकै म्रिग आवत धावत ग्वारनिया सुनकै सुखु पायो ॥ ७५४ ॥ ॥ दोहरा ॥ सत्रह सै पैताल मै कीनी कथा सुधार। चूक होइ जह तह सु कबि लीजहु सकल सुधार ॥ ७५५ ॥ बिनत करो दोऊ जोरि करि सुनो जगत के राइ। मो मसतक त्वै पग सदा रहै दास के माइ ॥ ७५६ ॥

॥ इति स्री दसम सिकंधे पुराणे बचित्र नाटक ग्रथे क्रिशनावतारे रास मंडल बरननं धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥

सुदरशन नाम ब्रहमणु भुजंग जोन ते उधार करन कथनं ॥

॥ स्वैया ॥ दिन पूजा को आइ लग्यो तिह को जोऊ ग्वारनिया हितकै अति सेवी। जा रिप सुंभ निसुंभ मर्यो कबि स्याम कहै जगमात अभेवी। नास भए जग मै जन सो जिनहू मन मै कृपकै नहि सेवी। ताही के हेत चले तजिकै पुर ग्वारन गोप सु पूजन देवी ॥ ७५७ ॥ आठ भुजा जिह की जग

राधा भी मन में आनन्दित होकर गाने लगी। व्रज की स्त्रियों से मिलकर व्रजनाथ श्रीकृष्ण ने राग सारंग मे एक तान छेड़ी जिसे सुनकर मृग दौड़ते हुए आने लगे और गोपियों को सुख प्राप्त होने लगा ॥ ७५४ ॥ ॥ दोहा ॥ संवत् १७४५ मे इस काव्य की कथा मे सुधार किया गया और यदि इसमे कोई भूल-चूक रह गयी हो, तो कविगण (कृपापूर्वक) इसे सुधार लेगे ॥ ७५५ ॥ मैं दोनो हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि हे जगत के स्वामी ! इस दास की भावना सदैव यही बनी रहे कि मेरा मस्तक हो और इसका प्रेम तुम्हारे चरणो से सदा बना रहे ॥ ७५६ ॥

॥ इति श्री दशम स्कध पुराण मे बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार के रासमडल-वर्णन अध्याय की शुभ सत् समाप्ति ॥

सुदर्शन नामक ब्राह्मण का सर्प-योनि से उद्धार करना

॥ सवैया ॥ गोपियो ने जिस देवी की पूजा की थी, उसकी पूजा का दिन आ गया। यह वही देवी थी, जिसने शुभ-निशुभ राक्षसो को मारा था और जो जगत मे अभेद जगत्माता के नाम से जानी जाती है। जिन लोगो ने उसका स्मरण नही किया, ससार मे उनका नाश हो गया। उसी की पूजा करने के लिए गोपियाँ तथा गोप नगर से बाहर जा रहे है ॥ ७५७ ॥ जिसकी आठ भुजाएँ है और जो शुभ का संहार करनेवाली

मालम सुंभ सँघारन नाम जिसी को। साधन दोखन की हरता कवि स्याम न मानत व्रास किसी को। सात अकाश पतालन सातन फैल रह्यो जस नाम इसी को। ताही को पूजन द्योस लग्यो सभ गोप चले हित मान तिसी को ॥ ७५८ ॥ ॥ दोहरा ॥ महा रुद्र अरु चंड के चले पूजबे काज। जसुधा त्रिय बलभद्र अउ संग लिए ब्रिजराज ॥ ७५९ ॥ ॥ सवैया ॥ पूजन काज चले तजकै पुर गोप सभै मन मै हरखे। गहि अचछत धूप पचांम्रित दीपक सामुहे चंड सिवैह रखे। अति आनंद प्रापति भे तिन को दुख थे जु जिते सभ ही घरखे। कवि स्याम अहीरन के जु हुते सुभ भाग घरी इह मै परखे ॥ ७६० ॥ ॥ सवैया ॥ एक भुजंगन कान्ह बबा कहु लील लयो तन नैक न छोरै। स्याह मनो अबनूसहि को तर कोप डस्यो अत ही कर जोरै। जिउ पुर के जन लातन मारत जोर करै अति ही मख मोरै। हारि परे समनो मिलिकै तब कूक करी भगवान की ओरै ॥ ७६१ ॥ ॥ सवैया ॥ गोप पुकारत है मिलिकै सभ स्याम कहै मुसलीधर मय्ये। दोखन को हरता करता सुख आवहु टेरत दैत मरय्ये। मोहि ग्रस्यो अहि स्याम बडे

है, जो साधुओ के दुःखों को दूर करनेवाली तथा अभय है, जिसका सातों आकाशो और पातालो मे यश फैला हुआ है, सभी गोप आज के दिन उसकी पूजा करने के लिए जा रहे हैं ॥ ७५८ ॥ ॥ दोहा ॥ महारुद्र और चंडी की पूजा करने के लिए यशोदा और बलराम को साथ लिये कृष्ण जा रहे है ॥ ७५९ ॥ ॥ सवैया ॥ गोपगण प्रसन्न होकर नगर छोड़कर पूजा करने के लिए गये। उन्होंने चंडी और शिव के सामने दीपक, पचामृत, धूप और चावल चढाये। उनको अत्यन्त आनन्द हुआ और उनके सभी दुःखो का नाश हो गया। कवि श्याम के कथनानुसार यही समय उन सबके लिए शुभ भाग्य का समय है ॥ ७६० ॥ ॥ सवैया ॥ इधर एक सर्प ने कृष्ण के पिता का सारा तन मुँह मे डालकर निगल लिया। वह सर्प आबनूस की लकड़ी के समान काला था। उसने क्रोधित होकर नन्द को हाथ जोड़ते हुए डस लिया। नगर के सभी लोगो ने मार-पीटकर नन्द बाबा को उससे छुड़ाना चाहा, परन्तु जब सभी थक गये और न छुडा सके तो वे सब भगवान कृष्ण की ओर देखकर पुकारने लगे ॥ ७६१ ॥ ॥ सवैया ॥ गोप और बलराम सब मिलकर कृष्ण को पुकारने लगे। तुम दुःखों को दूर करनेवाले हो, दैत्यों को मारनेवाले हो और सुखों को देनेवाले हो। नन्द भी कहने

हमरो वह या बध कारज कय्ये। रोग भए जिम बैद बुलइअत (मू०ग्रं०३५४) भीर परे जिम बीर बुलय्ये ॥७६२॥ सुन स्रउनन मैं हरि बात पिता उहि सापहि को तन छेद कर्‌यो है। साप की देह तजी उनहूँ इक सुंदर मानुख देह धर्‌यो है। ता छबि को जस उच्च महा कबि नैं बिधि या मुख ते उचर्‌यो है। मानहु पुंनि प्रतापन ते ससि छीन लयो रिपु दूर कर्‌यो है॥ ७६३ ॥ ॥ सवैया ॥ बामन होइ गयो सु वहै फुन नाम सुदरशन है पुन जाको। कान्ह कही बतियाँ हसि कै तिह सो कहु रे तै ठउर कहा को। नैन निवाइ मनै सुख पाइ सु जोर प्रनाम कर्‌यो कर ताको। लोगन कौ करता हरता दुख स्याम कहै पति जो चहू घाको॥ ७६४ ॥ ॥ दिज बाच ॥ ॥ सवैया ॥ अत्र रखीशर के सुत को अति हासि कर्‌यो तिन स्राप दयो है। जाहि कह्‌यो तुअ साप सु हो बचना उन या बिधि मोहि कस्यो है। ताही कै स्राप लगे हमरो तन बामन ते अहि स्याम भयो है। कान्ह तुमै तन छूवत ही तन को सभ पाप पराइ गयो है॥ ७६५ ॥ पूजत ते जगमात सभै जन पूज

लगे कि हे कृष्ण ! मुझे सर्प ने पकड़ लिया है या तो तुम इसका वध करो अन्यथा मैं मारा जाऊँगा। जिस प्रकार रोगी होने पर वैद्य को बुलाया जाता है, उसी प्रकार मुसीबत पड़ने पर वीरों का स्मरण किया जाता है॥ ७६२ ॥ पिता की बात सुनकर कृष्ण ने सर्प के शरीर को छेद डाला। सर्प ने देह त्यागकर एक सुन्दर मनुष्य का रूप धारण कर लिया। उस छवि की उच्च महिमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि ऐसा लग रहा है मानो पुण्य प्रताप के प्रभाव से चन्द्रमा की आभा छिनकर उस मनुष्य मे आ गई हो और शत्रु समाप्त हो गया हो॥ ७६३ ॥ ॥ सवैया ॥ जब वह ब्राह्मण पुनः सुदर्शन नामक मनुष्य बन गया तो कृष्ण ने हँसकर उससे पूछा कि तुम्हारा घर कहाँ है ? उसने आँखे झुकाकर मन मे सुख प्राप्त कर तथा हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा कि प्रभु ! आप लोगों के पालक और दुःखो को दूर करनेवाले है और आप ही सर्वलोको के स्वामी है॥ ७६४ ॥ ॥ द्विज उवाच ॥ ॥ सवैया ॥ अत्रि ऋषि के पुत्र का मैंने उपहास किया था, अतः उसने मुझे श्राप दिया था और सर्प हो जाने के लिए कहा था। उसी का वचन सत्य हुआ और मेरा तन ब्राह्मण से काले सर्प का हो गया। हे कृष्ण ! तुम्हारे द्वारा मेरा तन छुए जाने पर मेरे तन का सभी पाप दूर हो गया है॥ ७६५ ॥ जगत्माता की पूजा कर सभी

सभै तिह डेरन आए । कान्ह पराक्रम को उरधार सभो मिलिकै उपमा जस गाए । सोरठि सारंग सुद्ध मलहार बिलावल भीतर तान बसाए । रीझ रहे ब्रिजके जु सभै जन रीझ रहे जिनहूँ सुन पाए ।। ७६६ ।। ।। दोहरा ।। पूज चंड को भट बडे घर आए मिलि दोइ । अंन खाइकै मात ते रहे सदन मै सोइ ।। ७६७ ।।

।। इति स्री बचित्र नाटके ग्रंथे क्रिशना अवतारे दिज उधार चड पूज धिआइ समापतम ।।

अथ ब्रिखभासुर दैत बध कथनं ।।

।। सवैया ।। भोजन कै जसुधा पहि ते भट रात परे सोऊ सोइ रहे है । प्रात भए बन बीच गए उठ सेजह डोलत सिंघ सहे है । ब्रिखभासुर को तिह ठउर खरो जिह के दोऊ सींग अकाश खहे है । देखिकै सो कुप कै हरिजू दुहूँ हाथन सो कर जोर गहे है ।। ७६८ ।। ।। सवैया ।। सींगन ते गहि डार दयो सु अठारह पैग पै जाइ पर्यो है । फेरि उठ्यो कर कोप मनै हरि के फिर सामुहि जुद्ध कर्यो है । फेरि बगाइ

लोग अपने घरों को लौट आए । सभी ने कृष्ण के पराक्रम का गुणानुवाद किया । सोरठ, सारंग, शुद्धमल्हार और बिलावल की तान बजने लगी, जिसे सुनकर व्रज के सभी नर-नारी तथा जिसने भी सुना प्रसन्न होने लगे ।। ७६६ ।। ।। दोहा ।। इस प्रकार चडी की पूजा कर दोनो महावीर (कृष्ण और बलराम) वापस घर आए और अन्न-जल ग्रहण कर घर मे सो गए ।। ७६७ ।।

।। श्री बचित्र नाटक ग्रथ मे कृष्णावतार मे द्विज-उद्धार, चडी-पूजा अध्याय समाप्त ।।

वृषभासुर दैत्य-वध-कथन

।। सवैया ।। रात का भोजन यशोदा माता के हाथ से ग्रहण कर दोनों वीर सो गए है । प्रात होते ही वे वहाँ वन मे जा पहुँचे, जहाँ सिंह-खरगोश विचरण कर रहे थे । वहाँ वृषभासुर नामक दैत्य खड़ा था जिसके दोनों सीग आकाश को छू रहे थे । उसे देखकर श्रीकृष्ण ने कुपित होकर जोर से उसके सीगो को हाथ से पकड़ लिया है ।। ७६८ ।। ।। सवैया ।। सीगो से पकड़कर कृष्ण ने उसे अठारह कदम दूर फेक दिया । वह फिर कुपित होकर उठा और कृष्ण के समक्ष युद्ध करने लगा ।- कृष्ण ने उसे एक बार फिर उठाकर गिरा दिया और वह पुन. नही उठ सका । उसका

दियो हरि जू कही जाइ गिर्यो सु नही उवर्यो है। मोछ भई तिहको हरि के कर छूवत (मू०ग्रं०३५५) ही सु लर्यो न मर्यो है ॥ ७६६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे क्रिशना अवतारे ब्रिखभासुर दैत बधह ध्याइ समापतम सतु सुभम सतु ॥

अथ केसी दैत बध कथनं ॥

॥ सवैया ॥ जुद्ध बडो करकै तिह के संग जउ भगवान बडो अरि मार्यो। नारद तउ मथुरा मै गयो बचना संग कंस के ऐसे उचार्यो। तू भगनीपत नंद सुता हरि त्वै रिपवा घर भीतर डार्यो। दैत अघासुर अउ बक बीर मर्यो तिनहूँ जब पउरख हार्यो ॥ ७७० ॥ ॥ सवैया ॥ ॥ कंस बाच प्रतिउत्तर ॥ कोप भर्यो मन मै मथुरापति चित्त करी इह को अब मरियै। इह की सम कारज अउर कछू नहि ता बध आपन ऊबरियै। तब नारद बोल उठ्यो हसि कै सुनियै न्रिप कारज या करियै। छल सो बल सो कबि स्याम कहै अपने अरि को सिरवा हरियै ॥ ७७१ ॥ ॥ कंस बाच नारद सो ॥ ॥ सवैया ॥ तब

श्रीकृष्ण के हाथो से मोक्ष हो गया और बिना लडे ही मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥ ७६९ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक ग्रथ के कृष्णावतार मे वृषभासुर दैत्य-वध अध्याय समाप्त ॥

केशी दैत्य-वध-कथन

॥ सवैया ॥ वृषभासुर के साथ युद्ध करके भगवान ने जब बड़े शत्रु को मार डाला तो नारद मथुरा मे गए और उन्होने कस को कहा कि तेरी बहिन का पति, नद की पुत्री और कृष्ण —ये सब तुम्हारे शत्रु तुम्हारे ही राज्य मे फल-फूल रहे है। इन्ही के द्वारा अघासुर और बकासुर अपना पौरुष हारकर मारे जा चुके है ॥ ७७० ॥ ॥ सवैया ॥ ॥ कस उवाच प्रति-उत्तर ॥ मथुरापति कस ने क्रोधित होकर यह मन मे ठान लिया कि अब जैसे भी-हो इनको मारना चाहिए। इसके समान बड़ा काम अब मेरे सामने और कोई नही है। मुझे शीघ्रातिशीघ्र यह कार्य करके अपने वध करनेवालो से उबर जाना चाहिए। तब नारद ने हँसकर कहा कि हे राजन् ! एक यह कार्य अवश्य करो और छल-बल अथवा किसी भी तरीके से अपने शत्रु का सिर काट डालिए ॥ ७७१ ॥ ॥ कस उवाच नारद के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ तब

कंस प्रनाम कही करिकै सुनियै रिख जू तुम सत्ति कही है। वाकी ब्रिथा रजनी दिन मै हमरै मन मै बसिकै सु रही है। जाहि मर्यो अघ दैत बली बक पूतना जा थन जाइ गही है। ता मरिये छल कै किधो संग कि कै बल के इह बात सही है ॥ ७७२ ॥ ॥ कंस बाच केसी सो ॥ ॥ सवैया ॥ मुन तउ मिलिकै न्रिप सो ग्रिह ग्यो तब कंस बली इक दैत बुलायो। मारहु जाइ कह्यो जसुधा सुत पै कहिकै इह भाँत पठायो। पाछे ते पै भगनी भगनीपति डार जंजीरन धाम रखायो। संग चंडूर कह्यो इह भेद तबै कुबिल्यागिर बोल पठायो ॥ ७७३ ॥ ॥ कस बाच अक्रूर सो ॥ ॥ सवैया ॥ भाख कही संग भ्रित्तन सो इक खेलन को रंगभूम बनइयै। संग चंडूर कह्यो मुसटे दरवाजे बिखै गज को थिर कइयै। बोलि अक्रूर कही हमरो रथ लैकरि नंद पुरी महि जइयै। जगि अबै हमरे ग्रिह है इह बातन कों करकै हरि ल्यइयै ॥ ७७४ ॥ ॥ सवैया ॥ जाहि कह्यो अक्रूरहि कौ ब्रिज के पुर मै अति कोपहि सिउता। जगि अबै हमरे ग्रिह है रिझवाइ कै ल्यावहु वाकहि इउता।

कस ने प्रणाम करते हुए कहा कि हे ऋषिवर ! आपने सत्य कहा है। इन वधो की कहानी तो मेरे हृदय रूपी दिन मे रात्रि की छाया के समान व्याप्त है। जिसने अघ और बली बक तथा पूतना को मार डाला और छल-बल या किसी भी तरीके से मार डालना ठीक ही है ॥ ७७२ ॥ ॥ कंस उवाच केशी के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ जब मुनि कस से मिलकर गए तो कस ने केशी नामक एक बलशाली दैत्य को बुलाया और उससे कहा कि जाओ यशोदा के पुत्र कृष्ण को मार डालो। इधर कस ने बहिन और उसके पति वसुदेव को जजीरो से जकड़कर घर मे रखा। चडूर को कंस ने भेद की कुछ बाते बताई और कुवलयापीड (नामक हाथी) को मँगवा भेजा ॥ ७७३ ॥ ॥ कंस उवाच अक्रूर के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ कस ने अपने अनुचरो से कहा कि एक रगभूमि का निर्माण करो। चडूर से कहा कि रगभूमि के द्वार पर (कुवलयापीड) हाथी को खडा किया जाय। अक्रूर से कहा कि तुम हमारा रथ लेकर नदपुरी मे जाओ और यह कहकर कि हमारे घर मे एक यज्ञ का आयोजन है, कृष्ण को यहाँ ले आओ ॥ ७७४ ॥ ॥ सवैया ॥ कस ने क्रोधित होकर अक्रूर से कहा कि व्रज मे जाकर कहो [illegible] रे घर मे यज्ञ है। इस प्रकार रिझाकर कृष्ण को [illegible] के कथनानुसार यह छवि ऐसी लग रही

ता छबि को जस उच्च महाँ उपज्यो (मू०ग्रं०३५६) कबि के मन मैं इह बिउता। जिउँ बन बीच हरे स्रित के सु पठ्यो स्रिगवा कहि के हरि निउता।। ७७५।। ।। कबियो बाच।। ।। दोहरा।। न्रिप भेज्यो अक्रूर कहु हरि मारन के घात। अब बध केसी की कथा भई कहो सोई बात।। ७७६।। ।। सवैया।। प्रात चल्यो तह को उठ सो रिप ह्वै हय दीरघ पै तह आयो। देखत जाहि दिनेश डर्‌यो मघवा जिह पेखत ही डरपायो। ग्वार डरे तिह देखत ही हरि पाइन ऊपर सीस झुकायो। धीर भयो जदुराइ तबै तिह सो कुप कै रन बुंद मचायो।। ७७७।। कोप भयो रिप के मन मै तब पाउ की कान्ह को चोट चलाई। दीन न लागन स्याम तनै सु भली बिधि सो जदुराइ बचाई। फेर गह्यो सोऊ पाइन ते कर मो न रह्यो सु दयो है बगाई। जिउँ लरका बट फैंकत है तिम चार सै पैग पर्‌यो सोऊ जाई।। ७७८।। ।। सवैया।। फेर सँभार तबै बल वारि पतुंड पसारि हरि ऊपरि धायो। लोचन काढ बडे डरवान किधौं जिन तै नभलोक डरायो। स्याम दयो तिहके मुख मै करि ता छबि को मन मै जसु भायो। कान्ह

है, मानो शेर को मारने के लिए मृग को अग्रिम रूप से शेर को ललचाने के लिए भेजा जा रहा हो।। ७७५।। ।। कवि उवाच।। ।। दोहा।। कस ने अक्रूर को कृष्ण के मारने की घात लगाने के लिए भेजा। अब इसी के साथ केशी-वध की कथा कहता हूँ।। ७७६।। ।। सवैया।। केशी प्रातः होते ही चला और एक बड़े घोड़े का रूप धारण करके व्रज पहुँचा। इसे देखकर सूर्य और इन्द्र भी डर जाते थे। डरते हुए गोपों ने भी उसे देखकर कृष्ण के पैरो पर सिर झुका दिया। कृष्ण यह सब देखकर धैर्य से स्थिर हो गए और इधर केशी ने भीषण युद्ध मचा दिया।। ७७७।। केशी शत्रु ने कुपित होकर पाँव से कृष्ण पर प्रहार किया, जिसे कृष्ण ने अपने तन से लगने नही दिया और अपने-आपको भलीभाँति बचा लिया। फिर कृष्ण ने केशी के पैर पकड़कर उसे उठाकर इस प्रकार दूर फेक दिया, जैसे लड़के लकड़ी को फेकते है। केशी चार सौ कदम दूर जा गिरा।। ७७८।। ।। सवैया।। पुनः सँभलकर और मुँह फैलाकर कृष्ण पर टूट पड़ा। वह नभलोक को भी डराने मे सक्षम बडी-बड़ी आंखे निकालकर डराने लगा। कृष्ण ने उसके मुँह मे हाथ डाल दिया और यह ऐसा लग रहा था मानो कृष्ण काल-रूप होकर केशी के तन से प्राण

को ह्वैकर काल मनो तन केसी ते प्रान निकासन आयो ॥७७९॥
तिन बाह कटी हरि दाँतन सो तिहके सभ दाँत तबै झरगे।
जोऊ आइ मनोरथ कै मन मै सम ओरन की सोऊ है गरगे।
तब ही सोऊ जूझ परो छित पै न सोऊ फिरकै अपने धरगे।
अब कान्हर के करि लागत ही मरि ग्यो वहु पाप सभै
हरगे ॥ ७८० ॥ ॥ सवैया ॥ रावन जा बिधि राम मर्यो
बिधि जो करकै नरकासुर मार्यो। जिउँ प्रहलाद के रच्छन
को हरनाकश मारि डर्यो न उबार्यो। जिउँ मधु कैट मरै कर
चक्र लै पावक लील लई डर टार्यो। तिउँ हरि संतन रावन
को करिकै अपनो बल देत पछार्यो ॥७८१॥ ॥ सवैया ॥ मारि
बडे रिप को हरि जू संगि गउअन लै सु गए बन मै। मन
शोक सभै हर कै सभ ही अति कै फुन आनंद पै तन मै। फुन
ता छबि की अति ही उपमा उपजी कबि स्याम के इउ मन मै।
जिम सिंघ बडो म्रिग जान बध्यो छल सो म्रिगवा के मनो गन
मै ॥ ७८२ ॥ (मू०ग्रं०३५७)

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिशनावतारे केसी बधहि धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥

निकाल रहे हो ॥ ७७९ ॥ उसने दाँतों से बाँह को काटा, परन्तु उसके (केशी के) दांत तत्क्षण झड़ गए। जिस मनोरथ को लेकर वह आया था, उसका मनोरथ विफल हो गया। वह वापस घर न गया और जूझकर धरती पर गिर पड़ा। कृष्ण के हाथ लगते ही वह (केशी) मर गया और उसके सभी पाप नष्ट हो गये ॥ ७८० ॥ ॥ सवैया ॥ राम ने जिस विधि से रावण को मारा और नरकासुर जिस विधि से मरा; जिस विधि से प्रह्लाद की रक्षा के लिए हिरण्यकशिपु को भगवान ने मारा; जिस प्रकार मधु-कैटभ को मारा और दावानल को प्रभु ने पी लिया, उसी प्रकार सतों की रक्षा करने के लिए अपने बल से कृष्ण ने (केशी) दैत्य को पछाड़ दिया (और मार दिया) ॥ ७८१ ॥ ॥ सवैया ॥ बड़े शत्रु को मारकर कृष्ण गायों को लेकर वन मे गए। मन से सभा शोकों का त्याग करते हुए वे आनन्दित हो उठे। कवि के कथनानुसार वह छवि ऐसी लग रही थी मानो मृगों के झुंड में से शेर ने एक बड़े मृग को मार दिया हो ॥ ७८२ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार मे केशी-वध अध्याय की शुभ सत् समाप्ति ॥

अथ नारद जू क्रिशन पहि आए ॥

॥ अड़िल ॥ तब नारद चलि गयो निकटि भट क्रिशन के। करो उदर पूरना मनो हित रिसन के। रह्यो मुनी सिर ल्याइ स्याम तर पगन के। हो मन बिचार कह्यो स्याम महाँ संग लगन के ॥ ७८३ ॥ ॥ मुन नारद जू बाच कान्ह जू सो ॥ ॥ सवैया ॥ अक्रूर के अग्र ही जा हरि सो मुन पा परि कै इह बात सुनाई। रीझ रह्यो अपने मन मै सुनि हारि कै सुंदर रूप कन्हाई। बीर बडो रन बीच बधो तुम ऐसे कह्यो अति ही छबि पाई। आयो हो हउ सु घने रिप घेरि शिकार की भाँत बधो तिन जाई ॥ ७८४ ॥ ॥ सवैया ॥ तब हउ उपमा तुमरी करहो कुबलियागिर को तुम जो मरिहो। मुसटक बल साध चंडूरहि सों रंगभूम बिखै बध जो करिहो। फिरि कस बडे अपने रिपु को गहि केस ते प्रानन को हरिहो। रिप मार घने बन आसुर को कर काट सभै धर पै डरिहो ॥७८५॥ ॥ दोहरा ॥ इह कहि नारद क्रिशन सो बिदा

नारद जी का कृष्ण के पास आगमन

॥ अडिल ॥ तब नारद चलकर सुभट कृष्ण के पास गए। उन्होने पूर्ण रूप से ऋषि की उदर-पूर्ति करवाई। मुनि नारद श्रीकृष्ण के पैरो पर सिर झुकाकर खड़े रहे और मन-बुद्धि से विचारकर उन्होने श्रद्धापूर्वक श्रीकृष्ण को कहा ॥ ७८३ ॥ ॥ मुनि नारद उवाच कृष्ण के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ अक्रूर के पहुँचने से पहले ही मुनि ने कृष्ण जी को सब कुछ बता दिया। कृष्ण सब सुनकर अपने मन-ही-मन प्रसन्न हो उठे। नारद ने कहा कि हे कृष्ण! आपने बड़े-बड़े वीरो को रण मे मार गिराया है और छवि को प्राप्त किया है। मैं आपके बहुत से शत्रुओ को घेरकर छोड़ आया हूँ। आप (मथुरा जाकर) उनका वध कर दे ॥ ७८४ ॥ ॥ सवैया ॥ मै आपका गुणानुवाद करूँगा यदि आप कुवलयागिरि (हाथी) को मार दे, मुट्ठियो से रगभूमि मे चंडूर को मार दें, कस जैसे वड़े शत्रु को केशो से पकड़कर मार दे और नगर तथा वन के वडे असुरो को काट कर धरती पर डाल दे ॥ ७८५ ॥ ॥ दोहा ॥ यह कहकर नारद कृष्ण से बिदा लेकर चले गये। वे मन मे सोचने लगे कि अब कस के

भयो मन माहि । अब दिन कंसहि के कह्यो त्रितु के फुन निज काहि ॥ ७८६ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक ग्रथे क्रिशनावतारे मुन नारद जू किशन जू को सभ भेद दे फिर बिदिआ भए धिआइ समापतम सतु सुभम सतु ॥

अथ बिस्वासुर दैत जुद्ध ॥

॥ दोहरा ॥ खेलत ग्वारनि सो किशन आदि निरंजन सोइ । ह्वै मेढा तसकर कोऊ कोऊ पहरुआ होइ ॥ ७८७ ॥ ॥ सवैया ॥ केसव जू संगि ग्वारनि के ब्रिजभूम बिखै सुभ खेल मचायो । ग्वारनि देखि तबै बिस्वासुर ह्वै चुरवा तिन भच्छन आयो । ग्वार हरे हरि के बहुते तिह को फिरकै हरि जू लखि पायो । धाइकै ताही की ग्रीव गही बल सो धरनी पर मार गिरायो ॥७८८॥ ॥ दोहरा ॥ बिस्वासुर को मारकै कर साधन के काम । हली संग सभ ग्वार लै आए निस को धाम ॥७८९॥

॥ इति स्री बचित्र नाटक क्रिशना अवतारे बिस्वासुर दैत बधह धिआइ समापत ॥

मृत्यु के दिन थोड़े ही उसके अपने हैं अर्थात् वह शीघ्र ही समाप्त हो जायगा ॥ ७८६ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक ग्रथ के कृष्णावतार मे मुनि नारद जी कृष्ण जी को सब भेद देकर विदा हुए अध्याय समाप्त ॥

विश्वासुर दैत्य-युद्ध-कथन

॥ दोहा ॥ आदिनिरंजन कृष्ण गोपियो के साथ खेलने लगे । कोई बकरा, कोई चोर और कोई सिपाही बनकर सभी खेलने लगे ॥ ७८७ ॥ ॥ सवैया ॥ केशव जी कृष्ण ने ग्वालिनो के साथ व्रजभूमि मे खेल की धूम मचा दी । विश्वासुर दैत्य ग्वालिनो को देखकर उनका भक्षण करने के लिए चोर का रूप धारण करके आया । उसने कई गोपो का हरण कर लिया और कृष्ण ने घूम-फिरकर उसको पहचान लिया । कृष्ण ने दौड़कर उसकी गर्दन पकड ली और पटककर उसे धरती पर मार गिराया ॥ ७८८ ॥ ॥ दोहा ॥ विश्वासुर को मारकर इस प्रकार संतों का कार्य करते हुए बलराम को साथ लेकर श्रीकृष्ण रात मे घर आ गए ॥ ७८९ ॥

॥ इति श्री बचित्र नाटक के कृष्णावतार मे विश्वासुर दैत्य-वध अध्याय समाप्त ॥

अथ हरि को अक्रूर मथुरा को लै जैबो ॥

॥ सवैया ॥ रिपु को हरि मार गए जबही अक्रूर किधौ चलिकै तिह आयो । स्याम को देखि प्रनाम कर्‌यो (मू०ग्रं०३५८) अपने मन मै अति ही सुखु पायो । कंस कही सोऊ कै बिनती जबुरा अपने हित साथ रिझायो । अंकसि लो गज जिउँ फिरियै हरि को तिम बातन ते हिर ल्यायो ॥ ७९० ॥ सुनिकै बतिया तिह की हरिजू पित धाम गए इह बात सुनाई । मोहि अबै अक्रूर के हाथ बुलाइ पठ्यो मथुरा हू के राई । पेखत ही तिह मूरत नंद कही तुम्हरे तन है कुसराई । काहे की है कुसरात कह्यो इह भांत बुल्यो मुसलीधर भाई ॥ ७९१ ॥

अथ मथुरा मै हरि को आगम ॥

॥ सवैया ॥ सुनिकै बतिया संगि ग्वारनि लै ब्रिजराज चल्यो मथुरा को तबै । बकरे अति लै पुन छीर घनो धरकै मुसलीधर स्याम अगै । तिह देखत ही सुखु होत घनो तन को

हरि को अक्रूर द्वारा मथुरा ले जाया जाना

॥ सवैया ॥ जब शत्रु को मारकर कृष्ण चले तो उसी समय अक्रूर वहाँ आ पहुँचे । उसने कृष्ण को देखकर अत्यन्त सुखी होते हुए उन्हें प्रणाम किया । जैसा कि कंस ने कहा था वैसा ही करके उसने कृष्ण को प्रसन्न कर लिया । जिस प्रकार अंकुश के द्वारा हाथी को इच्छानुसार घुमा लिया जाता है, इसी तरह अक्रूर ने कृष्ण को बातो के बल से अपना कहना मना लिया ॥ ७९० ॥ उसकी बाते सुनकर कृष्ण पिता नन्द के पास गए और कहा कि मुझे मथुरा के राजा कंस ने अक्रूर के साथ बुला भेजा है । कृष्ण को देखते ही नन्द ने कहा कि कुशल तो है कृष्ण ने कहा कि कुशलता क्या है (आप चिन्ता न करे) । यह कहते हुए कृष्ण ने हलधर बलराम को भी बुला लिया ॥ ७९१ ॥

मथुरा में कृष्ण का आगमन

॥ सवैया ॥ उनकी बातों को सुनकर ग्वालो को साथ लेकर तब कृष्ण मथुरा की ओर चल दिये । उन्होने साथ में काफ़ी बकरे, दूध

जिह देखत पाप भगै। मनो ग्वारनि को बन सुंदर मै सम केहरि की अदुराइ लगै ॥ ७९२ ॥ ॥ दोहरा ॥ मथुरा हरि के जान की सुनी जसोधा बात। तबै लगी रोदनि करन भूल गई सुध सात ॥ ७९३ ॥ ॥ सवैया ॥ रोवन लाग जबै जसुधा अपुने मुखि ते इह भाँत सो भाखै। को है हितू हमरो ब्रिज मै चलते हरि को ब्रिज मै फिरि राखै। ऐसो को ढीठ करै जिय मो न्रिप सामुहि जा बतिया इह भाखै। शोक भरी मुरझाइ गिरी धरनी पर सो बतियाँ नहि भाखै ॥७९४॥ ॥ सवैया ॥ बारह मास रख्यो उदरो महि तेरहि मास भए जोऊ जइया। पाल बडो सु कर्‌यो तबही हरि को सुन मै मुसलीधर भय्या। ताही के काज किधौ न्रिपधा बसुदेव को कै सुन बोल पठइया। पै हमरे घट भागन के घर भीतर पै नही स्याम रहइया ॥ ७९५ ॥ ॥ दोहरा ॥ रथ ऊपर महराज गे रथ चड़कै तजि ग्रेह। गोपिनि कथा बिलाप की भई संत सुन लेह ॥ ७९६ ॥ ॥ सवैया ॥ जब ही चलिबे की सुनी बतिया तब ग्वारनि नैन ते नीर ढर्‌यो। गिनती तिन के मन बीच

आदि लिये। बलराम और कृष्ण आगे-आगे चल पड़े। उन्हे देखकर अत्यन्त सुख प्राप्त होता है और सब पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रीकृष्ण ग्वालो के वन मे शेर के समान दिखाई दे रहे है ॥ ७९२ ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण के मथुरा जाने की वात जब यशोदा ने सुनी तो वह सुधि भूलकर रुदन करने लगी ॥ ७९३ ॥ ॥ सवैया ॥ रोती हुई यशोदा ने इस प्रकार कहना शुरू किया कि क्या कोई व्रज मे ऐसा है, जो जाते हुए कृष्ण को व्रज मे रोके। कोई ऐसा साहसी है जो राजा के समक्ष जाकर मेरा दु:ख रखे। इतना कहकर शोक से मुरझा यशोदा धरती पर गिर पडी और चुप हो गयी ॥ ७९४ ॥ ॥ सवैया ॥ मैंने बारह मास तक कृष्ण को उदर मे रखा। हे बलराम ! सुनो, मैंने तुम्हारे भाई कृष्ण को पाल-पोसकर वड़ा किया। क्या इसी कारण से कस ने उसे वसुदेव का पुत्र जानकर बुलवा भेजा है। क्या मेरा भाग्य वास्तव मे क्षीण हो गया है, जो अव श्याम मेरे घर मे नही रहेगा ॥ ७९५ ॥ ॥ दोहा ॥ अपने घर को छोड़कर श्रीकृष्ण रथ पर चढ गये। अब, हे सज्जनो ! गोपियो के विलाप की कथा भी सुन लीजिए ॥ ७९६ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण के चले जाने की बात जब गोपियो ने सुनी तो उनकी आँखो मे आँसू भर आए। उनके मन मे अनेक शंकाएँ उठने लगी और उनके मन का आनन्द समाप्त

भई मन को सभ आनंद दूर कर्यो। जितनो तिन मै रस जोबन थो दुख की सोई ईंधन माहि जर्यो। तिन ते नही बोल्यो जात कछू मन कान्ह की प्रीत को संग जर्यो॥ ७९७॥ ॥ सवैया॥ जा संग गावत थी मिलि गीत करै मिलिकै जिह संग अखारे। जा हित लोगन हास सहयो तिह संगि फिरै नहि शक बिचारे। जा हमरो अति ही हित कै लरि (मू०ग्रं०३५६) आप बली तिन दैत पछारे। सो तजिकै ब्रिजमंडल कउ सजनी मथुरा हू की ओर पधारे॥ ७९८॥ ॥ सवैया॥ जाही के संग सुनो सजनी हमरो जमुना तट नेहु भयो है। ताही के बीच रहयो गड कै तिह ते नही छूटन नेकु गयो है। ता चलबे की सुनी बतिया अति ही मन भीतर शोक छयो है। सो सुनियै सजनी हम कउ तजिकै ब्रिज कउ मथुरा को गयो है॥ ७९९॥ अति ही हित सिउ संग खेलत जा कबि स्याम कहै अति सुंदर कामन। रास के भीतर यौं लशकै रुत सावन की चमकै जिम दामन। चंदमुखी तन कंचन से द्रिग कंजप्रभा जु चलै गज गामन। त्याग तिनै मथुरा को चल्यो जदुराइ सुनो सजनी अब धामन॥ ८००॥ कंजमुखी तन कंचन से बिरलाप करै

हो गया। उनका जितना भी प्रेम-रस और यौवन था, वह दुःख की अग्नि मे जलकर भस्म हो गया। उनका मन कृष्ण के प्रेम मे इतना झुलस चुका है कि अब उनसे कुछ बोला नही जा रहा है॥ ७९७॥ ॥ सवैया॥ जिसके साथ के अखाडे मे मिलकर गीत गाती थी, जिसके कारण उन्होने लोगो का उपहास सहा परन्तु फिर भी वे निस्संकोच उसके साथ घूमती रही, जिसने हमारे हित के लिए बली दैत्यो को पछाड़ दिया; हे सखी! वही कृष्ण व्रजमण्डल को त्यागकर मथुरा की ओर जा रहे है॥ ७९८॥ ॥ सवैया॥ हे सखी! यमुना तट पर जिसके साथ हमने प्रेम किया है, वह अब हमारे मन मे गड़कर रह गया है और निकल नही रहा है। उसके चलने की बातें सुनकर अब हमारे मन मे अत्यन्त शोक व्याप्त हो गया है। हे सजनी! सुनो, वही श्रीकृष्ण अब हमको छोड़कर मथुरा की ओर चला जा रहा है॥ ७९९॥ कवि का कथन है कि जिसके साथ अत्यन्त प्रेम-पूर्वक सभी सुन्दर स्त्रियाँ खेलती थी। वह रासलीला मे ऐसा दमकता था जैसे सावन की घटा मे बिजली चमकती हो। चन्द्रमुखियाँ, कंचन के समान शरीर वाली, हाथियो के समान मस्त चाल वाली स्त्रियो को छोड़कर हे सखियो! अब देखो, श्रीकृष्ण मथुरा जा रहे हैं॥ ८००॥

हरि सों हित लाई । शोक भयो तिन के मन बीच अशोक गयो तिनहूँ ते नसाई । भाखत है इह भाँत सुनो सजनी हम त्याग गयो है कन्हाई । आप गए मथुरा पुर मै जदुराइ न जानत पीर पराई ।। ८०१ ।। अंग बिखै सजकै भगवो पट हाथन मै चिपिआ हम लैहैं । सीस धरैगी जटा अपने हरि मूरति भिच्छ कउ माँग अघैहैं । स्याम चलै जिह ठउर बिखै हमहूँ तिह ठउर बिखै चलि जैहैं । त्याग कह्यो हम धामन को सभ ही मिलकै हम जोगन ह्वैहैं ।। ८०२ ।। बोलत ग्वारनि आपसि मै सुनियै सजनी हम काम करैंगी । त्याग कह्यो हम धामन कउ चिपिआ गहि सीस जटान धरैंगी । कै बिख खाइ मरैंगी कह्यो नही बूड मरैं नही जाइ जरैंगी । मान बयोग कहै सभ ग्वारनि कान्ह कै साथ ते पै न टरैगी ।। ८०३ ।। जिनहू हमरे संग केल करे बन बीच दए हम कउ सुख भारे । जा हमरे हित हास सहै हमरे हित कै जिह दैत पछारे । रास बिखै जिह ग्वारनि के मन के सभ शोक बिदा कर डारे । सो सुनियै हमरे हित कों तजिकै सु अबै मथुरा को पधारे ।। ८०४ ।। मुंद्रक का पहरै

स्वर्ण के समान शरीर वाली और कमल के समान मुख वाली कृष्ण के प्रेम में विलाप कर रही है । उनके मन में शोक व्याप्त हो गया है और सुख उनसे दूर भाग गया है । सभी कह रही है कि हे सजनी ! देखो कृष्ण हम सबको छोडकर चला गया है । स्वय यदुराज तो मथुरा चले गये हैं और हम लोगो की पराई पीड़ा को नही अनुभव कर रहे है ।। ८०१ ।। हम भगवा वस्त्र धारण करके हाथो मे खप्पर ले लेगी; सिर पर जटाएँ धारण कर लेगी और कृष्ण की ही भिक्षा माँगकर प्रसन्नता का अनुभव करेगी । जहाँ कृष्ण गये हैं हम भी वही चली जाएँगी । हमने कह दिया है कि हम घर छोड़कर योगिन बन जायँगी ।। ८०२ ।। गोपियाँ आपस मे कह रही है कि हे सखी ! हम एक काम करेगी कि घर को त्यागकर सिर पर जटाएँ और हाथो मे खप्पर धारण कर लेगी । हम लोग जहर खाकर मर जायँगी, डूब जायँगी, नही तो जलकर मर जायँगी । वियोग को मानकर सभी कहने लगी कि हम कृष्ण का साथ कभी नही छोड़ेगी ।। ८०३ ।। जिसने हमारे साथ केलि-क्रीड़ा की और वन मे भारी सुख दिया, जिसने हमारे लिए व्यग्य सहे और दैत्यो को पछाड़ दिया, जिसने रासलीला मे गोपियो के सभी शोको को दूर कर दिया, वही कृष्ण अब हमारे प्रेम को त्यागकर मथुरा को चले गये है ।। ८०४ ।।

हम कानन अंग बिखे भगवे पट कैहैं। हाथन पै चिपिआ धरिकै अपुने तन बीच बिभूत लगैहैं। पैकसि कै सिङिआ कटि मै हरिके संग गोरखनाथ ज गैहैं। ग्वारनिया इह भाँत कहै तजिकै हम धामन जोगन ह्वैहैं (मू०ग्रं०३६०) ॥ ८०५ ॥ ॥ सवैया ॥ कै बिख खाइ मरैगी कह्यो अपने तन को नहि घात करैहैं। मार छुरी अपने तन मै हरि के हम ऊपर पाप चड़ैहैं। नातर ब्रहम के जा पुर मै बिरथा इह की सु पुकार करैहैं। ग्वारनियाँ इह भाँत कहै ब्रिज ते हरि को हम जान न दैहैं ॥ ८०६ ॥ ॥ सवैया ॥ सेली डरैगी गरै अपुने बटुआ अपनो कटि साथ कसैहैं। लै करि बीच त्रिसूल किधो फरुआ तिह सामुहि धूप जगैहै। घोट कै ताही के ध्यान की भाँग कहै कवि स्याम सु वाही चड़ैहैं। ग्वारनियाँ इह भाँत कहै न रहै हम धामन जोगन ह्वैहैं ॥ ८०७ ॥ धूम डरै तिह के ग्रिह सामुहि अउर कछू नहि कारज कै हैं। ध्यान धरैगी किधौ तिह को तिह ध्यान की भाँगहि सो मति ह्वैहैं। लै तिहके फुन पाइन धूर किधौ सु बिभूत की ठउर चड़ैहैं। कै हित ग्वारनिऐ

हम कानों में मुद्राएँ धारण करके भगवा वस्त्र धारण कर लेंगी; हाथों मे कमडल पकड़कर तन पर भभूत लगा लेगी; कमर मे सिंगी धारणकर गोरखनाथ की अलख जगाएँगी। गोपियाँ कहने लगी कि इस प्रकार हम योगिनियाँ बन जाएँगी ॥ ८०५ ॥ ॥ सवैया ॥ या तो हम विष खा लेगी या किसी अन्य तरीके से आत्मघात कर लेगी। अपने तन पर छुरी से वार कर हम मर जाएँगी और कृष्ण पर पाप चढ़ाऊँगी, नही तो ब्रह्मा के पास हम पुकार लगाएँगी कि हमारे साथ अन्याय न किया जाय। गोपियाँ यह कहने लगी कि हम किसी भी प्रकार व्रज से कृष्ण को जाने नही देगी ॥ ८०६ ॥ ॥ सवैया ॥ हम गले मे सेली टोपी धारण कर कमर के साथ बटुआ धारण कर लेगी। हाथ मे हम त्रिशूल पकडकर पुनः धूप मे आसन लगाकर हम जगेगी। कृष्ण के ध्यान की भाँग को पीकर हम नशे में हो जाएँगी। इस भाँति गोपियाँ यह कहने लगी कि हम घरो में नही रहेगी और योगिनियाँ बन जाएँगी ॥ ८०७ ॥ हम कृष्ण के घर के सामने धूनी रमा देगी तथा अन्य कोई कार्य नही करेगी। उसी का ध्यान करेगी और उसी के ध्यान रूपी भाँग के नशे मे मदमस्त रहेंगी। उसके पाँव की धूल को भभूत के समान शरीर पर मल लेगी। गोपियाँ कह रही है कि उस कृष्ण के हित मे हम घर-बाहर छोडकर

सु कहै तजिकै ग्रिह कउ हम जोगन ह्वैहैं ।। ८०८ ।। कै अपने मन की फुन माल कहै कबि वाही को नामु जपैहैं । कै इह भाँत की पै उपमा हित सो तिह ते जदुराइ रिझैहैं । माँग सभै तिह ते मिलिकै बरु पाइन पै तिह ते हम ल्यैहैं । याते बिचार कहै गुपिया तजिकै हम धामन जोगन ह्वैहैं ।। ८०९ ।। ठाढी है होइ इकत्र त्रिया जिम घंटक हेर बजै मिरगाइल । स्याम कहै कबि चित हरं हरि को हरि ऊपर ह्वै अति माइल । ध्यान लगै द्रिग मूंद रहो उघरै निकटै तिह जान उताइल । यों उपजी उपमा मन मै जिम मीचत आँख उघारत घाइल ।। ८१० ।। ।। सवैया ।। कंचन के तन जो सम थी जु हुती सम ग्वारन चंदक रासी । मैन की सान सो सान बनी दोऊ भउह मनो अखिया सम गासी । देखत जा अति ही सुखहो नहि देखत ही तिह होत उदासी । स्याम बिना सस पै जल की मनो कंजमुखी भई सूक जरा सी ।। ८११ ।। ।। सवैया ।। रथ ऊपरि स्याम चड़ाइ के सो संगि लै सभ गोप तहाँ को गए है ।

योगिनियाँ हो जाएँगी ।। ८०८ ।। अपने मन को माला बनाकर हम उसी के नाम का जाप करेगी । इस प्रकार तपस्या कर हम यदुराज कृष्ण को प्रसन्न करेगी । उसका वरदान मिलने पर हम उसी को उससे माँगकर ले आएँगी । यही विचार करके गोपियाँ कह रही है कि हम घर-बाहर छोड़कर योगिनियाँ हो जाएँगी ।। ८०९ ।। वे स्त्रियाँ इस प्रकार इकट्ठी होकर खड़ी हो गयी जैसे नाद की आवाज़ सुनकर मृगो का झुड स्थिर हो जाता है । ये गोपियो के झुंड का दृश्य सर्वचिन्ताओ को दूर करनेवाला है । ये सभी गोपियाँ श्रीकृष्ण पर आसक्त है । वैसे वे आँखो को बन्द किए हुए है, परन्तु भ्रमवश कृष्ण को पास अनुभव कर वे कभी-कभी शीघ्रता से आँखे खोलती है । वे ऐसा कर रही है मानो कोई घायल कभी आँख बन्द करता हो तथा कभी आँख खोलता हो ।। ८१० ।। ।। सवैया ।। जिनका तन कचन के समान और रूपराशि चन्द्रमा के समान थी; जिनकी शोभा कामदेव के समान बनी थी और जिनकी दोनो भौहें तीरो के समान थी; जिन्हे देखने पर अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती थी और न देखने पर मन उदास हो जाता था, वे गोपियाँ उसी प्रकार मुरझा गईं जैसे जल मे कंजमुखी (कुमुदिनी) चन्द्रमा की किरणो के बिना मुरझा जाती है ।। ८११ ।। ।। सवैया ।। सभी गोपो को रथ पर चढ़ाकर श्याम वहाँ से चल पड़े है । गोपियाँ घरो मे ही रही और उनके मन का शोक

ग्वारनिया सु रही ग्रह मै जिनकै मन बीच सु शोक भए है।
ठाढ उडीकत गोपि जहाँ तिह ठउर बिखै दोऊ एसु अए है।
सुंदर है सस से जिनके मुख कंचन से तन रूप छए है ॥ ८१२ ॥
॥ सवैया ॥ जब ही अक्रूर के संग किधौ जमना पै गए ब्रिज
लोक सबै । (मू०पं०३६१) अक्रूर ही चित करी मन मै अति पाप
कर्‌यो हमहूँ सु अबै । तब ही तजकै रथ बीच धस्यो जल के
संध्या करबे को तबै । इह को मरि है न्रिप कंस बली जु भई
इह को अति चित जबै ॥ ८१३ ॥ ॥ दोहरा ॥ नात जबै
अक्रूर मन हरि को कर्‌यो बिचार । तब तिह को जल मै तबै
दरशन दयो मुरार ॥ ८१४ ॥ ॥ सवैया ॥ मुंड हजार भुजा
सहसे दस शेश के आसन पै सु बिराजै । पीत लसै पट चक्र करै
जिहके कर भीतर नंदग छाजै । बीच तबै जमुना प्रगट्‌यो फुन
साधनि के हरबे डर काजै । जाको कह्‌यो सभ ही जग है जिह
देखत ही घन सावन लाजै ॥ ८१५ ॥ ॥ सवैया ॥ जल ते
कढकै मन मै सुख कै मथुरा को चल्यो तन आनंद पाई । धाइ

बहुत बढ गया है । जहाँ गोपियाँ मिलकर श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रही थी, वहाँ ये दोनो भाई (कृष्ण और बलराम) गये है । दोनो भाइयो के मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर और तन कचन के समान शोभायमान हो रहे हैं ॥ ८१२ ॥ ॥ सवैया ॥ जब सब लोगों के साथ अक्रूर यमुना तट पर पहुँचे तो अक्रूर को भी (उन सबका प्रेम देखकर) मन में पश्चात्ताप होने लगा । वे सोचने लगे कि मैंने भी व्यर्थ ही में पाप किया (जो कृष्ण को यहाँ से ले जा रहा हूँ) । यह सोचता हुआ वह सध्या करने के लिए जल मे प्रवेश कर गया और यह सोचकर चिन्तित होने लगा कि बली कस अब कृष्ण को मार डालेगा ॥ ८१३ ॥ ॥ दोहा ॥ स्नान करते समय जब अक्रूर ने कृष्ण भगवान का स्मरण किया, तब मुरारि ने अक्रूर को (भगवान रूप मे) दर्शन दिये ॥ ८१४ ॥ ॥ सवैया ॥ (अक्रूर ने देखा कि) हजारो सिर और हजारो भुजाओ वाले कृष्ण शेषनाग की शय्या पर विराजमान हैं । पीताम्बर वस्त्र, चक्र और तलवार उनके हाथ मे शोभायमान है । इसी रूप मे कृष्ण यमुना मे अक्रूर के सामने प्रकट हुए । अक्रूर ने देखा कि सतो के दुःखो को दूर करनेवाले श्रीकृष्ण के ही नियन्त्रण मे सारा ससार है और वह ऐसा तेजवान है कि उसे देखकर सावन के बादल भी लजायमान हो रहे है ॥ ८१५ ॥ ॥ सवैया ॥ तब अक्रूर जल से निकलकर सुख प्राप्त कर मथुरा की ओर चल पड़े । वे दौड़कर राजा

गयो न्रिप के पुर मै हर मारन कीन करी दुचिताई। कान्ह को रूप निहारन को मथुरा की जुरी सभ आन लुकाई। जाके कछू तन मै दुखु है हरि देखत ही सोऊ पार पराई॥ ८१६॥ हरि आगम की सुनकै बतिया उठकै मथुरा की सभै त्रिय धाई। आवत थो रथ बीच चड़्यो चलिकै तिह ठउर बिखै सोऊ आई। मूरत देखकै रीझ रही हरि आनन ओर रही लिव लाई। शोक कथा जितनी मन थी इह ओर निहार दई बिसराई॥ ८१७॥

॥ इति स्री दसम सिकंधे पुराणे बचित्र नाटक क्रिशनावतारे कानजू नद अउ गोपन सहत मथरा प्रवेश करण॥

कंस बध कथनं॥

॥ दोहरा॥ मथुरा पुर की प्रभा कबि मन मै कही बिचार। सोभा जिह देखत सु कबि करि नहि सकति उचार॥ ८१८॥ ॥ सवैया॥ जिह के जट ते नग भीतर है चमकै दुत मानहु बिज्ज छटा। जमुना जिह सुंदर तीर बहै सु

के महल मे पहुँचे और अब उन्हे कृष्ण के मारे जाने का कोई भय नही था। कृष्ण के स्वरूप को देखकर सभी मथुरावासी उन्हें देखने के लिए आ जुटे। जिसके शरीर मे ज़रा-सा भी कोई दुःख था वह कृष्ण को देखते ही दूर हो गया॥ ८१६॥ कृष्ण के आगमन की बात सुनकर मथुरा की सभी स्त्रियाँ दौडी हुई आई। जिधर से रथ आ रहा था, सभी उसी ओर आकर एकत्र हो गयी। वे कृष्ण की सुन्दर छवि को देखकर रीझ गयी और उसी ओर देखने लगी। उनके मन में जितना भी शोक था, वह सब कृष्ण को देखकर दूर हो गया॥ ८१७॥

॥ श्री दसम स्कन्ध पुराण मे बचित्र नाटक के कृष्णावतार मे कृष्ण का नन्द और गोपियो-सहित मथुरा-प्रवेश समाप्त॥

कंध-वध-कथन

॥ दोहा॥ कवि ने विचारकर मथुरा नगरी की छटा का वर्णन किया है। उसकी शोभा ऐसी है कि कवि उसका वर्णन नही कर सकते॥ ८१८॥ ॥ सवैया॥ मणियो से जटित नगरी ऐसी है मानो विद्युच्छटा चमक रही हो। उसके पास से यमुना बह रही और उसकी अट्टालिकाएँ शोभायमान हो रही हैं। उसे देखकर शिव और ब्रह्मा भी

बिराजत है जिह भाँत अटा। ब्रहमा जिह देखत रीझ रहै रिझवै दिख ता धर सीस जटा। इह भाँत प्रभा धर है पुर धाम सु बात करै संग मेघ घटा ॥ ८१९ ॥ हरि आवत थो मग बीच चल्यो रिपु के धुबिआ मग एक निहार्यो। जउ सु गहे तिह ते पट लउ कुपि कै न्रिप को तिह नाम उचार्यो। कान्ह तबै रिसकै मन मै संग अंगुलका तिह के मुख (मू०ग्रं०३६२) मार्यो। इउ गिर गयो धरनी पर सो पट जिउँ धुबिआ पट संग प्रहार्यो ॥ ८२० ॥ ॥ दोहरा ॥ सभ ग्वारन सों हरि कही रिप धुबिआ कहु कूट। बस्त्र जिते न्रिप के सकल लेहु सभन को लूट ॥ ८२१ ॥ ॥ सोरठा ॥ ब्रिज के ग्वार अजान बस्त्र पहर जानत नही। बाकतता त्रिय आन चीर पैनाए तिन तनै ॥८२२॥ ॥ राजा प्रीछत बाक सुक सो ॥ ॥ दोहरा ॥ वै बरु ता त्रिय को क्रिशन मूँड रहै निहुराइ। तब सुक सो पूछ्यो न्रिपै कहो हमै किह भाइ ॥ ८२३ ॥ ॥ सुक बाच राजा सो ॥ ॥ सवैया ॥ चतुराभुज को वर वाहि दयो बर पाइ सुखी रहु ताहि कहे। हरि बाक को होवत पै तिनहूँ अमरा पुर कै फल है सु लहे। बहु दैकर लज्जत होत बडो इम लोक ए नीत बिखै

रीझ रहे है। नगरी के घर इतने ऊँचे हैं, मानो घटाओ से बात कर रहे हो ॥ ८१९ ॥ जब कृष्ण चले आ रहे थे तो उन्होंने मार्ग मे एक धोबी को देखा। जब कृष्ण ने उससे कपडे लिये तो वह क्रोधित होकर राजा का नाम लेने लगा। कृष्ण ने मन मे क्रोधित होकर एक थप्पड उसे दे मारा। वह मार खाकर वैसे ही धरती पर गिर पड़ा जैसे धोबी कपड़े को पृथ्वी पर दे मारता है ॥ ८२० ॥ ॥ दोहा ॥ धोबी को पीटकर कृष्ण ने सभी गोपों से कहा कि राजा के जितने वस्त्र है सभी लूट लो ॥ ८२१ ॥ ॥ सोरठा ॥ व्रज के अनजान गोप वस्त्र पहनना नही जानते थे। धोबी की स्त्री ने उन्हे आकर वस्त्र पहनाये ॥ ८२२ ॥ ॥ राजा परीक्षित उवाच शुक के प्रति ॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण उस धोबी की स्त्री को वर देकर सिर हिलाते हुए बैठ गये। तब परीक्षित ने शुक से पूछा कि हे ऋषि ! यह बताओ ऐसा क्यो हुआ कि कृष्ण सिर हिलाते हुए बैठ गए ? ॥ ८२३ ॥ ॥ शुक उवाच राजा के प्रति ॥ ॥ सवैया ॥ चतुर्भुज श्रीकृष्ण ने उसे वर दिया कि तुम सुखी रहो। प्रभु के वाक्य से तो तीनो लोको के अमरफल प्राप्त होते है, परन्तु यह रीति है कि बड़ा व्यक्ति कुछ देकर भी लज्जा का यह सोचकर अनुभव करता है कि मैंने कुछ नही

है कहे। हरि जान कि मै इह थोर दयो तिहते मुँडिआ निहुराइ रहे ॥ ८२४ ॥

॥ इति स्री बचित्र नाटके ग्रंथे धोबी को बध ता त्रिय को बर देत भए ॥

अथ बागवान को उधार ॥

॥ दोहरा ॥ बध कै धोबी कौ क्रिशन करि ता त्रिय को काम। रथ धवाइ तब ही चले न्रिप कै सामुहि धाम ॥८२५॥ ॥ सवैया ॥ आगे ते स्याम मिल्यो बगवान सु हार गरे हरि के तिन डार्‌यो। पाइ पर्‌यो हरि के बहु बारन भोजन धाम लिजाइ जिवार्‌यो। ताको प्रसंनि कै माँगत भ्यो बर साध की सगति को जिय धार्‌यो। जान लई जिय की घनस्याम तबै बरवा इह भाँत उचार्‌यो ॥ ८२६ ॥ ॥ दोहरा ॥ बर जब माली कउ दयो रीझ मनै घनस्याम। फिर पुर हाटन मै गए करन कूबरी काम ॥ ८२७ ॥

॥ इति बागवान को उधार कीआ ॥

दिया। श्रीकृष्ण भी यह जानकर कि मैंने इसे थोड़ा ही दिया है, सिर हिलाकर पछताने लगे ॥ ८२४ ॥

॥ श्री बचित्र नाटक ग्रथ मे धोबी-वध तथा उसकी स्त्री को वरदान-प्रदान समाप्त ॥

माली का उद्धार-कथन

॥ दोहा ॥ धोबी का वध करके और उसकी स्त्री का कार्य करके श्रीकृष्ण रथ चलवाकर राजा के महल के समक्ष जा पहुँचे ॥ ८२५ ॥ ॥ सवैया ॥ आगे से कृष्ण को माली मिला जिसने उनके गले मे हार डाला। वह बहुत बार कृष्ण के पैरो पर पड़ा और उन्हे ले जाकर उसने भोजन ग्रहण करवाया। उससे श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए और वर माँगने को कहा तो उसने मन-ही-मन साधु-सगति का वरदान माँगने का विचार किया। कृष्ण ने उसके मन की बात जान ली और उसे यही वरदान दिया ॥ ८२६ ॥ ॥ दोहा ॥ मन में प्रसन्न होकर कृष्ण ने माली को वरदान दिया और फिर नगर मे कुब्जा का कार्य करने के लिए चल दिये ॥ ८२७ ॥

॥ इति माली का उद्धार किया ॥

अथ कुबजा को उधार करन ॥

॥ सवैया ॥ हरि आवत अग्र मिली कुबजा हरि को तिन सुंदर रूप निहार्‌यो। गंध लए न्रिप लावन को सु लगाऊँ हुउ या मन बीच बिचार्‌यो। प्रीत लखी हरि संगि लगी हमरे तब ही इह भाँत उचार्‌यो। ल्यावहु लावहु री हमको कबि नै जसु ता छबि को इम सार्‌यो ॥ ८२८ ॥ ॥ सवैया ॥ जदुराइ को आइस मान त्रिया न्रिप को इह चंदन देह लगायो। स्याम को रूपु निहारत ही कबि स्याम मनै अति ही सुखु पायो। जा को न अंत लख्यो ब्रहमा (मू०ग्रं०३६३) करिकै मन प्रेम कई दिन गायो। भाग बडो इह मालन के हरि के तन को जिन हाथ छुहायो ॥ ८२९ ॥ ॥ सवैया ॥ हरि एक धर्‌यो पग पाइन पै अरु हाथ सो हाथ गह्यो कुबजा को। सीधी करी कुबरी ते सोऊ इतनो बल है जग मै कहु का को। जाहि मर्‌यो बक बीर अबै करिहै बध सो पति पै मथुरा को। भाग बडे इह को जिह को उपचार कर्‌यो हरि बैद ह्वै ताको ॥८३०॥

कुब्जा का उद्धार करना

॥ सवैया ॥ कृष्ण को आते समय सामने से कुब्जा मिली जिसने कृष्ण के सुन्दर स्वरूप को देखा। वह नृप को लगाने के लिए लेप ले जा रही थी। उसने मन मे यह सोचा कि कितना अच्छा हो यदि मुझे कृष्ण को यह लेप लगाने का अबसर मिले। जब कृष्ण ने उसकी प्रीति को देखा तो स्वयं कहा कि लाओ, लाओ (और यह मुझे लगाओ)। कवि ने उस छवि का वर्णन किया है ॥ ८२८ ॥ ॥ सवैया ॥ यदुराज की आज्ञा मानकर उस स्त्री ने राजा का लेप उन्हे लगा दिया। कृष्ण के रूप को देखकर कवि श्याम को अत्यन्त ही सुख प्राप्त हुआ है। यह वही भगवान है, जिसके लिए गायन करने पर भी ब्रह्मा तक उसके रहस्य को नही जान पाये। यह दासी बड़े भाग्य वाली है, जिसने अपने हाथ से कृष्ण के शरीर का स्पर्श किया है ॥ ८२९ ॥ ॥ सवैया ॥ कृष्ण ने कुब्जा के पैर पर पैर रखा और हाथ मे उसका हाथ पकड़ा। उस कुबड़ी को सीधा कर दिया और ऐसा करने की शक्ति ससार मे अन्य किसी के पास नही। जिसने बकासुर का वध किया, वही अब मथुरानरेश कस को मार डालेगा। इस कुबड़ी का भाग्य सराहनीय है जिसका उपचार स्वयं भगवान ने वैद्य बनकर किया ॥ ८३० ॥ ॥ प्रतिउत्तर उवाच ॥

॥ प्रतिउत्तर बाच ॥ ॥ सवैया ॥ प्रभ धाम अबै चलियै हमरे इह भांत कह्यो कुबजा हरि सों। अति ही मुख देखकै रीझ रही सु कह्यो न्रिप के बिनती डर सों। हरि जान्यो कि मो मै रही बस ह्वै इह भाँति कह्यो तिह सो छर सों। करिहौ तुमरो सु मनोरथ पूरन कंस को कै बध हुउ बर सों॥ ८३१॥ ॥ सवैया ॥ कुबजा को सुवार कै काज तबै पुर देखन के रस मै अनुराग्यो। धाइ गयो तिह ठउर बिखै धन सुंदर कों सोऊ देखन लाग्यो। भ्रित्तन ते कर ते सु मनै हरि कै मन मै अतही कुपि जाग्यो। गाड़ी कसीस दई धनको त्रिड़कै जिह ते न्रिप को धन जाग्यो॥ ८३२॥ गाड़ी कसीस दई कुपिकै रुप ठाढ भयो तिह ठउर बिखे। बर सिंह मनो द्रिग काढ कै ठाढो है पेखै जोऊ गिरै भूम बिखे। देखत ही डरप्यो मघवा डरप्यो ब्रहमा जोऊ लेख लिखे। धन के टुकरे संग जो धन मारत स्याम कहै अति ही सु तिखे॥ ८३३॥ ॥ कबियो बाच ॥ ॥ दोहरा ॥ धनख तेज मै बरनियों किशन कथा के काज। अति ही चूक मो ते भई छिमियै सो महाराज॥ ८३४॥ ॥ स्वैया ॥ धन को टुकरा करि लै हरि जी बरबीरन को सोऊ

॥ सवैया ॥ कुब्जा ने भगवान से अपने घर चलने के लिए कहा। वह श्रीकृष्ण का मुख देखकर मोहित हो रही थी, परन्तु उसे राजा का डर भी बना हुआ था। कृष्ण समझ रहे थे कि यह मुझ पर मुग्ध हो रही है, इसलिए उसे भ्रम में डाले रखने के लिए भगवान ने कहा कि मैं कंस के वध के बाद तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा॥ ८३१॥ ॥ सवैया ॥ कुब्जा का कार्य कर श्रीकृष्ण नगर को देखने मे लीन हो गये। जहाँ स्त्रियाँ खड़ी थीं वही पहुँचकर उन्हे देखने लगे। राजा के अनुचरो द्वारा मना करने पर श्रीकृष्ण के मन मे क्रोध भर उठा। उन्होने अपने धनुष को ज़ोर से खीचा और उसकी टकार से राजा की स्त्रियाँ भय से जाग गयी॥ ८३२॥ क्रोधित होकर कृष्ण ने भय उत्पन्न कर दिया और उसी स्थान पर खड़े हो गए। वे ऐसे खडे थे, जैसे कोई सिंह आँखें निकालता हुआ खड़ा है, उसे जो भी देखता है भूमि पर गिर पड़ता है। यह दृश्य देखते ही ब्रह्मा और इन्द्र भी डर गए। धनुष को तोडकर कृष्ण उन तीखे टुकड़ो से मारने लगे॥ ८३३॥ ॥ कवि उवाच॥ ॥ दोहा ॥ कृष्ण-कथा के निमित्त मैंने धनुष-तेज का वर्णन किया है। हे महाराज! मुझसे अत्यन्त बड़ी चूक हो गयी है, मुझे क्षमा कीजिए॥ ८३४॥ ॥ सवैया ॥ धनुष

मारन लाग्यो । धाइ परे न्रिप बीर तबै तिनके मन मै अतही कुपि जाग्यो । फेरि लग्यो तिनको हरि मारन जुद्धह केर समो अनुराग्यो । शोर भयो अति ठउर तहा सुनकै जिहको शिवजू उठ भाग्यो ।। ८३५ ।। ।। कबितु ।। तीन लोक पति अति जुद्धु करि कोप भरै तउनै ठउर जहाँ बरबीर अति स्वै रहे । ऐसे बीर गिरे जैसे बाढी के कटे ते रूख गिरैं बिस्वंभर असहाथन नही गहे । अति ही तरंगनी उठी है तहाँ जोधन तै सीस सम बटे असि नक्र भाँत ह्वै बहे । गोरे पै बरद चड़ि आए थे बरदपति गोरी गउरा (मू०ग्रं०३६४) गोरे रुद्र राते राते ह्वै रहे ।। ८३६ ।। ।। कबितु ।। क्रोध भरे कान्ह बलभद्र जू नै कीनो रन भाग गए भटन सुभट ठाढ क्वै रह्यो । ऐसे भूम परे बीर मारे धन टूकन के मानो कस राजा जू के सारो दल स्वै रह्यो । केते उठ भागे केते जुध ही को फेरि लागे सोऊ सम बनहरि हरि तातो ह्वै रह्यो । गजन के सुंडन ते ऐसे छीटै छुटी जाते अंबर अनूप लाल छीट छबि ह्वै रह्यो ।। ८३७ ।। ।। दोहरा ।। क्रिशन हली धन टूक सौ धन दल दयो निघाइ ।

का टुकडा हाथ में लेकर श्रीकृष्ण वहाँ बड़े-बडे वीरो को मारने लगे । वहाँ के वीर भी कुपित होकर कृष्ण पर टूट पड़े । श्रीकृष्ण भी युद्ध में लिप्त होते हुए उन्हे मारने लगे । वहाँ पर इतना भयकर शोर हुआ कि उसे सुनकर शकर भी उठकर भाग गए ।। ८३५ ।। ।। कवित्त ।। जहाँ बड़े-बडे वीर स्थिर है, तीनो लोको के पति श्रीकृष्ण कुपित होकर वही युद्ध कर रहे है । वीर ऐसे गिर रहे हैं जैसे बढई के काटने से वृक्ष गिरते है । वहाँ वीरो की बाढ आ गयी है और सिर एव तलवारे रक्त मे बह रही है । शिवजी और गौरी श्वेत वर्ण के बैल पर सवार होकर आये थे, परन्तु यहाँ आकर वे लाल रग मे रँग गए ।। ८३६ ।। ।। कवित्त ।। क्रोधित कृष्ण और बलराम ने युद्ध किया, जिससे सभी शूरवीर भाग खड़े हुए । धनुष के टुकडो की मार खाकर वीर ऐसे गिरे कि मानो राजा कस का सारा दल यही धराशायी हो गया । कितने ही योद्धा उठ भागे और कितने ही पुनः युद्ध में लग गये । ईश्वर कृष्ण भी जंगल मे गर्म जल के समान क्रोध से तमतमाने लगे । हाथियो की सूँडो से रक्त के छीटे छूट रहे है और सारा आकाश लाल छींट के समान छविमान दिखाई दे रहा है ।। ८३७ ।। ।। दोहा ।। कृष्ण और बलराम ने धनुष के टुकड़े से भारी शत्रुदल को नष्ट कर दिया । सेना के वध की बात सुनकर कंस ने पुनः और सैनिकों

1

दयो पठाइ ।। ८३८ ।।
तिन सुनकै बध स्त्रउन न्त्रिप अउ पुन दयो पठाइ ।। ८३८ ।।
।। सवैया ।। बीच चमूं पस बीरन को धन टूकन सो बहु बीर
सँघारे । भाग गए सु बचे तिन ते जोऊ फेरि लरे सोऊ फेरि
ही मारे । झूझ परी चतुरंग चमूं तह स्त्रउनत के सु चले परनारे ।
यौ उपजी उपमा जिय मै रनभूम मनो तन भूखन धारे ।।८३९।।
।। सवैया ।। जुद्ध कर्‌यो अति कोप दुहूँ रिप बीर के बीर घने
हनि दीने । हान बिखै जोऊ ज्वान हुते सजि आए हुते जोऊ साज
नवीने । सो झट भूम गिरे रन को तिह ठउर बिखै अति सुंदर
चीने । यौं उपमा उपजी जिय मै रन भूम को मानहु भूखन
दीने ।। ८४० ।। ।। सवैया ।। धन टूकन सो रिप मार घने
चलकै सोऊ नंद बबा पहि आए । आवत ही सभ पाइ लगे
अति आनंद सो तिह कंठ लगाए । गे थे कहा पुर देखन को
बचना उन पै इह भाँत सुनाए । रैन परी ग्रिह सोइ रहे अति ही
मन भीतर आनद पाए ।। ८४१ ।। ।। दोहरा ।। सुपन पिखा
अति ब्याकुल जिय होइकै इक कंस नै अतै भयानक रूप ।
भ्रित्त बुलाए भूप ।। ८४२ ।। ।। कंस बाच भ्रित्तन सों ।।
।। सवैया ।। भ्रित्त बुलाइकै राजै कही इक खेलन को रंगभूम

को वहाँ भेज दिया ।। ८३८ ।। ।। सवैया ।। वीरो की चतुरंगिणी सेना
को धनुष के टुकडो से कृष्ण ने मार डाला । जो उनमे से भाग गये वे
बच गये और जो पुनः लड़े वे मारे गए । चतुरंगिणी सेना का घमासान
युद्ध हुआ और रक्त की नदियाँ बहने लगी । युद्धस्थली ऐसा दिखाई दे
रही थी जैसे किसी स्त्री ने आभूषण धारण कर रखे हो ।। ८३९ ।।
।। सवैया ।। दोनो भाइयो ने क्रोधित होकर युद्ध किया और अनेको वीरों को
नष्ट कर दिया । जितने वीरो का नाश हुआ, उतने ही वीर नई सज्जा के
साथ आ पहुँचे । आये हुए वीर भी शीघ्र ही मारे गए और उस स्थान पर
यह सौंदर्य ऐसा दिखाई दे रहा है, मानो रणभूमि को आभूषणो का दान किया
जा रहा है ।। ८४० ।। ।। सवैया ।। धनुष के टुकड़ो से शत्रुओं को मार
कर श्रीकृष्ण नन्दलाल के पास आ गये । आते ही वे चरण-स्पर्श किए
और नन्दलाल ने उन्हे गले से लगा लिया । कृष्ण ने बताया कि हम लोग
नगर देखने गये थे । इस प्रकार मन में आनन्दित होते हुए रात होने
पर सभी सो रहे ।। ८४१ ।। ।। दोहा ।। इधर कस ने रात्रि मे भयानक
स्वप्न देखा और व्याकुल होकर उसने सबको बुलवाया ।। ८४२ ।। ।। कंस
उवाच सेवको के प्रति ।। ।। सवैया ।। सेवको को बुलाकर राजा ने

बनावहु। गोपन को इकठाँ रखियो हमरे सभ ही दल को सो बुलावहु। कारज शीघ्र करो सु इहै हमरे इक पैग न कउ तिसटावहु। खेल बिखै तुम मल्लन ठाँढ कै आप सजै कसिकै कट आवहु ॥ ८४३ ॥ ॥ सवैया ॥ भ्रित्त सभै न्रिप की बतिया सुनकै उठकै सोऊ कारज कीनो। ठाढ कियो गज पउर बिख सु रच्यो रंगभूम को ठउर नवीनो। मल्ल जहा रिप बीर घने पिखिए रिप आवत जाहि पसीनो। ऐसो बनाइकै ठउर सोऊ (मू०ग्रं०३६५) हरि के ग्रिह मान सभै जसु दीनो ॥ ८४४ ॥ ॥ सवैया ॥ न्रिप सेवक लै इन संग चल्यो चलिकै न्रिप कंस के पउर पै आयो। ऐकै कह्यो न्रिप को घर है तिह ते सभ ग्वारन सीस झुकायो। आगे पिख्यो गज मत्त महाँ कह्यो दूर करो गजवान रिसायो। धाइ पर्यो हरि ऊपरि यों मनो पुंन के ऊपरि पाप सिधायो ॥ ८४५ ॥ कोप भरे गज मत्त महाँ भर सुंड लए भट सुंदर सोऊ। सो तब ही घन सो गरज्यो जिहकी सम उप्पम अउर न कोऊ। पेट तरे तिह के पसरे कबि स्याम कहै वधिया अर दोऊ। यों उपजी उपमा जिय मै अपने

कहा कि खेलने के लिए एक रंगभूमि का निर्माण किया जाय। गोपो को एक स्थान पर इकट्ठा रखो और हमारे सम्पूर्ण दल को भी बुला लो। यह कार्य शीघ्र करो और इससे एक भी कदम पीछे मत हटो। उस खेल मे मल्लो को भी तैयार होकर आने के लिए कहो और उन्हे वहाँ खड़ा रखो ॥ ८४३ ॥ ॥ सवैया ॥ सेवको ने राजा की बात सुनकर वही सब कार्य किया। हाथी को द्वार पर खड़ा करते हुए एक नई रंगभूमि का निर्माण किया। उस रगभूमि मे महाबली वीर खड़े थे, जिन्हे देखकर शत्रुओ को भी पसीना आ जाता। सेवको ने ऐसे स्थान का निर्माण किया कि उससे उनको सब प्रकार का यश प्राप्त हुआ ॥ ८४४ ॥ ॥ सवैया ॥ राजा का सेवक इन सबको लेकर राजा कस के महल मे आया। उसने सबको बताया कि यह राजा का घर है, इसलिए सभी ग्वालों ने अपने सिर झुकाकर अभिनन्दन किया। आगे देखा कि मदमस्त हाथी खडा है और पीलवान इन सबको हट जाने के लिए कह रहा है। हाथी दौडकर इस प्रकार कृष्ण पर टूट पड़ा जैसे पुण्य को नष्ट करने के लिए उस पर पाप टूट पड़ता है ॥ ८४५ ॥ कुपित गज ने दोनो सुन्दर भटो (कृष्ण-बलराम को) सूंड मे भर लिया और अनुपम तरीके से गर्जन करने लगा। दोनों भाई, जो कि शत्रुओ का वध करनेवाले है, हाथी के पेट के

रिप सो मनो खेलत दोऊ ॥ ८४६ ॥ ॥ सवैया ॥ कोपु कर्‌यो मन मै हरिजू तिह को तब दाँत उखार लयो है। एक दई गज सुंड बिखै कुपि दूसर सीस के बीच दयो है। चोट लगै सिर बीच घनी धरनी पर सो मुरझाइ पयो है। सो मर ग्यो रिप के बध को मथरा हूँ को आगम आज भयो है ॥ ८४७ ॥

॥ इति स्री दसम सकधे बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिशना अवतारे गज बधहि ध्याइ समापत ॥

अथ चंडूर मुसट जुद्ध ॥

॥ सवैया ॥ कंध धर्‌यो गज दाँत उखार कै बीच गए रंगभूम के दोऊ। बीरन बीर बडोई पिख्यो बलवान लख्यो इन मल्लन सोऊ। साधन देखि लख्यो करता जग या सम दूसर अउर न कोऊ। तात लख्यो करकै लरका न्रिप कंस लख्यो मन मै घरि खोऊ ॥ ८४८ ॥ तौ न्रिप बैठ सभा हू के भीतर मल्लन सो जदुराइ लरायो। मुसट के साथ लर्‌यो मुसली सु चंडूर सो स्याम जू जुद्धु मचायो। भूमि परै रन

नीचे झूलने लगे और ऐसे लगने लगे मानो दोनों भाई अपने शत्रु से खेल खेल रहे हो ॥ ८४६ ॥ ॥ सवैया ॥ तब कृष्ण ने कुपित होकर हाथी का दाँत उखाड़ लिया। एक प्रहार उन्होने हाथी की सूंड पर किया और दूसरा वार उसके सिर पर किया। भीषण आघात लगने पर हाथी निस्तेज होकर धरती पर गिर पड़ा। हाथी मर गया और ऐसा लग रहा था कि कस के वध के लिए ही आज कृष्ण का आगमन मथुरा मे हुआ है ॥ ८४७ ॥

॥ श्री दसम स्कंध के बचित्र नाटक के कृष्णावतार मे गज-वध अध्याय समाप्त ॥

चाणूर-मुष्टिक-युद्ध

॥ सवैया ॥ हाथी के दाँत को उखाड़कर उसे कधे पर रखते हुए दोनो भाई रंगभूमि मे पहुँचे। वीरो को वे बड़े वीर दिखाई दिये और वहाँ के पहलवानो ने भी उन्हे बलवान समझा। साधुओ ने उन्हें अद्वितीय मानते हुए जगत के कर्ता के रूप में देखा, पिता ने उन्हे पुत्रों के समान देखा और राजा कस को वे अपने (कंस के) घर को नाश करनेवाले लगे ॥ ८४८ ॥ राजा ने सभा में बैठकर यदुराज को अपने मल्लों के साथ लडाया। बलराम ने मुष्टिक नामक मल्ल से युद्ध किया और इधर कृष्ण ने चाणूर के साथ लड़ाई मचा दी। जैसे ही कृष्ण

की गिरि सो हरि जो मन भीतर कोपु बढायो। एक लगो न तहा घटका धरनी पर ताकहु मार गिरायो ।। ८४९ ।।

।। इति स्री दसम सिकंधे बचित्र नाटक ग्रंथे क्रिशनावतारे चंडूर मुसट मल बधहि ध्याइ समापतम सत ।।

अथ कंस बध ।।

।। सवैया ।। मार लए रिप बीर दोऊ न्रिप तउ मन भीतरि क्रोध भर्यो। इन को भट मारहु खेत अबै इह भांत कह्यो अर शोर कर्यो। जदुरा भरथू तब पान लगो अपने मन मै नही नैकु डर्यो। जोऊ आइ पर्यो हरि पै कुपकै हरि था पर सो सोऊ (मू०ग्रं०३६६) मार डर्यो।। ८५० ।। ।। सवैया ।। हरि कूद तबै रंगभूमहि ते न्रिप थो सु जहाँ वह ही पगु धार्यो। कंस लई कर ढाल संभार कै कोप भर्यो अस खैंच निकार्यो। दउर दई तिह कै तन पै हरि फाध गए अति दाव सँभार्यो। केसन ते गहिकै रिप को धरनी पर कै बल ताहि पछार्यो।। ८५१ ।। गहि केसन ते पटक्यो धर सों गहि

क्रोधित हुए ये सब पहलवान पर्वतो के समान धरती पर गिर पड़े और श्रीकृष्ण ने घडी भर में उन सबको मार गिराया ।। ८४९ ।।

।। श्री दशम स्कध मे वचित्र नाटक ग्रन्थ के कृष्णावतार मे चाणूर-मुष्टिक मल्ल-वध अध्याय समाप्त ।।

कंस-वध

।। सवैया ।। दोनो वीरों ने जब शत्रुओ को मार दिया तो राजा क्रोध से भर उठा। उसने शोर मचाते हुए अपने वीरो से कहा कि इन दोनो को अभी मार डालो। यदुराज और उनका भाई एक-दूसरे का हाथ पकड़े अभय हो वहाँ खड़े रहे तथा जो भी क्रोधित हो उन पर टूट पड़ा उसे उसी स्थान पर कृष्ण-बलराम ने मार गिराया ।। ८५० ।। ।। सवैया ।। अब श्रीकृष्ण ने रगभूमि से कूदकर अपने पाँव वहाँ जा जमाये जहाँ राजा कस बैठा था। कस ने क्रोधित होकर ढाल सम्हालते हुए तलवार खीच ली और दौडकर श्रीकृष्ण पर वार किया। श्रीकृष्ण कूदकर अलग हो गये और उन्होंने इस दाँव को बचा लिया तथा शत्रु को केशों से पकड़कर बलपूर्वक धरती पर पछाड़ दिया ।। ८५१ ।। केशो को पकड़कर उसे धरती पर फेंका और टाँग पकड़कर उसे घसीट दिया।

गोडन ते तब घीस दयो। न्रिप मार हुलास बढ्यो जिय मै अति ही पुर भीतर शोर पयो। कबि स्याम प्रताप पिखो हरि को जिन साधन राख कै शत्र छयो। कट बंधन तात दए मन के सभ ही जग मै जस वाहि लयो ॥ ८५२ ॥ ॥ सवैया ॥ रिप को बध कै तब हरिजू बिसरात के घाट कै ऊपर आयो। कंस के बीर बली जु हुते तिन देखत स्याम कौ क्रोप बढायो। सो न गयो तिन पास छिम्यो हरि के संग आइ कै जुद्धु मचायो। स्याम सँभार तबै बल को तिन को धरनी पर मारि गिरायो ॥ ८५३ ॥ ॥ सवैया ॥ गज सौ अति ही कुप जुद्ध कर्यो तिह तो डरि कै नही पैगु टरे। दोऊ मल्ल मरे रंगभूम बिखै स्याम तहाँ पहरेकु लरे। न्रिप राज को मार गए जमना तट बीर भिरे सोऊ आन मरे। रख साधन शत्र सँघार दए नभि ते तिह ऊपरि फूल परे ॥ ८५४ ॥

॥ इति स्री दसम सिकधे पुराणे बचित्र नाटक ग्रथे क्रिशनावतार न्रिप कंस बधहि धिआइ समापतम ॥

राजा कस को मारकर कृष्ण का मन उल्लसित हो उठा और उधर महलों मे हाहाकार मच गया। कवि कहता है कि भगवान का प्रताप देखो जिसने साधुओ की रक्षा की है और शत्रुओ का नाश किया है। उसने सभी के बन्धन काट दिये हैं और इस प्रकार ससार मे यश अर्जित किया है ॥ ८५२ ॥ ॥ सवैया ॥ शत्रु का वध करके श्रीकृष्ण जी यमुना के घाट पर आ गये और वहाँ उन्होने जब कस के अन्य वीरो को देखा तो वे और क्रोधित हो उठे। जो उनके पास नही आया उसको श्रीकृष्ण ने क्षमा कर दिया, परन्तु फिर भी कुछ वीरों ने आकर कृष्ण से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। श्रीकृष्ण ने अपने बल को सम्हालते हुए उन सबको मार गिराया ॥ ८५३ ॥ ॥ सवैया ॥ पहले क्रोधित हो श्रीकृष्ण ने गज के साथ डटकर युद्ध किया, पुनः लगभग एक प्रहर तक लड़ने के बाद उन्होने दोनो मल्लो को रगभूमि मे मार गिराया। फिर राजा कस को मारकर यमुना के किनारे पहुँचकर इन वीरो से भिड़े और इन्हे मारा। आकाश से पुष्प-वर्षा होने लगी, क्योकि श्रीकृष्ण ने साधुओ की रक्षा की और शत्रुओं का संहार किया ॥ ८५४ ॥

॥ इति श्री दशम स्कन्ध पुराण मे श्री वचित्र नाटक ग्रथ के कृष्णावतार मे राजा कस-वध अध्याय समाप्त ॥

अथ कंस बधू कान्ह जू पहि आवत भई ॥

॥ सवैया ॥ राजसुता दुखु मान मनै तज धामन को हरि जू पहि आई । आइ कै सो घिघिआत भई हरि पै दुख की सभ बात सुनाई । डार दयो सिर ऊपर को पट पै तिह भीतरि छार मिलाई । कंठ लगाइ रही भरता हरिजू तिह देखत ग्रीव निवाई ॥ ८५५ ॥ रिप करम करे तब ही हरि जी फिरकै सोऊ मात पिता पहि आए । तातन मात भए बसि मोह के पुत्र दुहून को सीस निवाए । ब्रहम लख्यो तिन को करि कै हरि जी तिनके मन मोह बढाए । कै बिनती अति भाँत के भाव कै बंधन पाइन ते छुटवाए ॥ ८५६ ॥ (मू०ग्रं०३६७)

॥ इति स्री दसम सिकंधे पुराणे बचित्र नाटक ग्रथे क्रिशनावतारे कस के करम कर तात मात को छुरावत भए ॥

॥ इति प्रथम संची ॥

कस-वधू का कृष्ण जी के पास आगमन

॥ सवैया ॥ राजपुत्री मन मे अत्यन्त दु.खी होते हुए महलो को छोड़ कृष्ण के पास आई । वह रोते हुए कृष्ण जी को अपने दु:ख की बात सुनाने लगी । उसके सिर का वस्त्र भी गिर चुका था और सिर मे धूल पड़ रही थी । उसने आकर अपने पति को गले से लगा लिया और श्रीकृष्ण ने यह देख अपना सिर झुका लिया ॥ ८५५ ॥ राजा का अन्तिम संस्कार कर श्रीकृष्ण पुन: माता-पिता के पास आये । माता-पिता ने भी दोनों पुत्रो के मोह एव आदर मे अपने सिर को झुकाया । उन्होने श्रीकृष्ण को परमात्मा के रूप मे जाना और श्रीकृष्ण ने भी उनके मन मे और अधिक मोह का संचार किया । श्रीकृष्ण ने उन्हे विनम्रतापूर्वक विभिन्न प्रकार से समझाया और उनको बन्धनों से (मोह-ममता के बन्धन और के लोहे के बन्धनों से) छुटकारा दिलाया ॥ ८५६ ॥

॥ इति श्री दशम स्कन्ध पुराण मे बचित्र नाटक ग्रथ मे कृष्णावतार के कंस के अन्तिम सस्कार करने के बाद श्रीकृष्ण ने माता-पिता को छुडाया ॥

॥ इति प्रथम संची ॥

' प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी ।
सम्पूर्ण विश्व मे घर-घर है पहुँचानी ।। '

प्रतिष्ठाता— पद्मश्री नन्दकुमार अवस्थी